Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर ग्रन्थावली

1

रमेशचन्द्र मिश्र

सुन्दर सद्गुरु है सही
सुन्दर सिक्षा दीन्ह ।
सुन्दर बचन सुनाइ कै
सुन्दर सुन्दर कीन्ह ॥
सम्वाद पीर मुरीद का
यह भेद पावै कोइ ।
जो कहै सुन्दर सुनै सुन्दर
उही सुन्दर होइ ॥

R
०८१
६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

106290

प्रस्तुत **सुन्दर ग्रन्थावली** संकलनकर्त्ता, सम्पादक और भूमिका लेखक डा. रमेशचन्द्र मिश्र संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। विगत तीन दशकों से वे निरन्तर संत साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान में पूरी श्रद्धा, निष्ठा, तत्परता और लगन के साथ संलग्न हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि उनकी शोध-प्रवृत्ति में कहीं अंधानुकरण नहीं है। 'पुराणमित्येव न साधुसर्वम्' का पाठ उन्होंने सत्यानुसंधान की पाठशाला में पढ़ा है। 'सुन्दर ग्रंथावली' के संकलन-सम्पादन में उन्होंने जिस अध्यवसाय का परिचय दिया है वह विस्मयजनक है। पूर्व प्रकाशित ग्रंथों में संत सुन्दरदासजी के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसके अक्षर-अक्षर पर उनकी समीक्षक दृष्टि सतत बनी रही है। 'सुन्दर ग्रन्थावली' केवल वाणी-संग्रह नहीं है। इस प्रामाणिक ग्रंथावली में डा. मिश्र ने शब्दार्थ, भावार्थ, व्यंग्यार्थबोधक विस्तृत टिप्पणियाँ देकर ग्रंथावली को पठनीय, विचारणीय और संग्रहणीय बना दिया है। मैं इस ग्रंथावली को संत-साहित्य की अनुपम देन मानता हूँ। संत साहित्य के विषय में जो प्रवाद हिन्दी जगत् में फैले हुए हैं उनका इस ग्रंथावली से उच्छेद होगा। संत सुन्दरदास का पांडित्यपूर्ण ज्ञान, सत्यानुभव और काव्य-सौष्ठव उद्घाटित होगा। मैं इस विद्वत्तापूर्ण ज्ञानवस्तु को प्रकाश में लाने के लिए रमेशचन्द्र मिश्र को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी संत-साहित्य-समीक्षा इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में योग देती रहेगी।

10 नवम्बर 1992 **विजयेन्द्र स्नातक**

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
आगत नं. 106290
रमेशचन्द्र
सुन्दर ग्रन्थावली

सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

ISBN - 81—7016 -140 -1
मूल्य : रु. 600/- (दो खंड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R०८१
६८

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ०८१/६८ आगत संख्या 106290

पुस्तक—वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर ग्रन्थावली

भाग : एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा शिक्षा विभाग,
भारत सरकार द्वारा प्रदत्त अनुदान के सहयोग से मुद्रित

किताब घर
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

106290
106290
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
106290

सुन्दर ग्रन्थावली

रमेशचन्द्र मिश्र

एम० ए० [हिन्दी, संस्कृत]
पी-एच० डी०, डी० लिट्०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

62
62
R
0८१
६८

ISBN—81-7016-140-1

© रमेशचन्द्र मिश्र

प्रकाशक
किताबघर
24, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण
1992

कलापक्ष
सत्यसेवक मुखर्जी/बलदेव सिंह

मूल्य
छः सौ रुपये [दो खंड]

मुद्रक
चोपड़ा प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

SUNDER GRANTHAVALEE [Hindi]
by Dr. R. C. Mishra
Price : Rs. 600.00 [Two Volumes]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर ग्रन्थावली के प्रथम सम्पादक :

पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा

समग्र सुन्दर-वाणी को सम्पादित करने में जीवन के चालीस वर्ष होम देने वाले स्व० पुरोहित जी की स्मृति में प्रस्तुत अष्ट वर्षीय अध्यवसाय सादर **समर्पित** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

—रमेशचन्द्र मिश्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमत : गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'**मध्ययुगेर साधक** कबिरा हिन्दी-भाषाय जे भावरसेर ऐश्वर्ज्य **विस्तार कॅरियाछेन ताँहार मध्ये असामान्य** विशेषत्व आछे। सेइ विशेषत्व **एइ जे, ताँहादेर** रचनाय उच्च अंगेर कवि एकत्रे मिलित हइयाछेन। एमन **मिलन सर्वत्र दुर्लभ।**............ प्राचीन साहित्ये जे सकल साधक कबि **उच्च स्थान** अधिकार करियाछेन, ताँहारा केहइ पाण्डित्येर जन्य बिख्यात **छिलेन ना**—ए कथा बोलिले अत्युक्ति हॅय ना। स्वच्छ जलेर उत्स जेमुन भूगर्भ हॅयते आपुन आन्तरिक बेगे आपनि उत्सारित हॅय ताँहादेर भावरसेर धारा तेमिनि आपनि अविमिश्र आनन्देर प्रेरणा बेगे उत्सारित हॅइया छिलो।........... भारतेर मध्ययुगेर हिन्दी साहित्येर जाँहारा सन्धान राखिते चान पुरोहित श्रीजुक्त हरिनारायण शर्मा विद्याभूषणेर सम्पादित समग्र सुन्दर ग्रन्थावली ताँहादेर आदरणीय हॅइबे।'

कलकत्ता : १ मार्च. १९३७ **—रवीन्द्रनाथ ठाकुर**

अनुवाद

मध्ययुग के साधक कवियों ने हिन्दी-भाषा में जिस भाव-रस का ऐश्वर्य विस्तार किया था, यह उनकी असाधारण विशेषता कही जा सकती है। उनकी विशेषता इस बात में भी है कि उनकी रचना में उच्चकोटि के साधक और कवि एक साथ प्राप्त होते हैं। ऐसा संयोग विरल है। सुन्दरदास की रचनाओं में यह अद्‌भुत संयोग है।........... प्राचीन साहित्य में उच्चकोटि के जितने साधक कवि हुए हैं, उनमें कोई भी अपने पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध न थे। स्वच्छ पानी की धारा जैसे भूगर्भ से अपने अकृत्रिम आनन्द की प्रेरणा से फूट पड़ती है, उनके भाव-रस की धारा भी अपने अकृत्रिम आनन्द की प्रेरणा से फूट पड़ी है।........... भारत के मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में जो लोग गवेषणा करना चाहते हैं, उन्हें पुरोहित श्रीयुक्त हरिनारायण शर्मा विद्याभूषण सम्पादित समग्र 'सुन्दर ग्रन्थावली' अवश्य ही आदरणीय लगेगी।'

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पुरोवाक्

दादूदयाल की शिष्य परम्परा में अगाध प्रतिभा के धनी **'अपर शंकराचार्य'** [संक्राराचारज दूसरो दादू कैं सुन्दर भयौ'—राघवदास] एवं काव्य-गुण ओज में प्रखर **'दिनकर'** ['दादू दीनदयाल के चेले दोय पचास। केई उडगण केई इन्दु हैं, दिनकर सुन्दरदास।' —राघवदास] के समान सन्त कवि सुन्दरदास [सं० 1653-1746 वि०], भाषा-काव्य-दर्शन-संस्कृति की दृष्टि से, हिन्दी-सन्त-काव्य-धारा के रचनाकारों में बेजोड़ हैं। निर्गुण सन्त कवियों के प्रति प्राय: अनुदार दृष्टि रखने वाले **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे** समीक्षक भी, सुन्दरदास जी की सुशिक्षा और 'वाणी' के काव्य-कौशल और भाषा-प्रवणता को देखकर रीझे हैं। तभी तो अत्यन्त नपी-तुली भाषा में वे कहने को विवश हुए हैं कि 'निर्गुण पंथियों में ये ही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्य-कला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। अत: इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। भाषा भी काव्य की मंजी हुई ब्रजभाषा है।...संत तो ये थे ही, पर कवि भी थे, इससे समाज की रीति-नीति और व्यवहार आदि पर भी पूरी दृष्टि रखते थे।...इन्होंने, और निर्गुणियों के समान लोक-धर्म की उपेक्षा नहीं की है। पतिव्रत का पालन करने वाली स्त्रियों, रण-क्षेत्र में कठिन कर्तव्य पालन करने वाले शूरवीरों के प्रति, इनके विशाल हृदय में, सम्मान केलिए पूरी जगह थी।' [—हि० सा० इति०]। आचार्य शुक्ल का यह कथन एक साहित्य-समीक्षक का कथन है। सुन्दरदास मात्र 'कवि' ही नहीं थे। अपितु, वे अपने युग के समाज-संस्कृति-दर्शन और भाषा के प्रति जागरूक बने रहकर पूरे जीवन-परिवेश के प्रति उत्तरदायी रहे हैं। सच तो यह है कि अपने देश-काल की अस्मिता को इन्होंने वाणी-बद्ध किया है। ऐसे मनीषी रचनाकार केलिए गुरुदेव **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने, 'सुन्दर ग्रन्थावली' [पुरोहित जी] के 'प्राक्कथन' में आत्मबोध परक अपने मन्तव्य को बड़ी आस्था के साथ रेखांकित किया है। उत्तर मध्ययुग के समर्थ रचनाकार सन्त सुन्दरदास की समूची वाणी को, अनथक परिश्रम और अध्यवसाय के साथ प्रकाशित करने वाले **पं० हरिनारायण शर्मा** के प्रति मैं कृतज्ञता अनुभव करता हूँ। मध्य-कालीन श्रेष्ठ ग्रन्थ-रत्नों के सम्पादन-प्रकाशन और अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता पर जोर देते हुए गुरुदेव टैगोर ने लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कोई भी भाषा अपने साहित्य की दृष्टि से ही अपने प्रति श्रद्धा आकर्षित कर सकती है। इसप्रकार का विशेष महत्त्व हिन्दी भाषा के साहित्य में यथेष्ट रूप में पाया जाता है। मध्ययुग के साधक कवियों ने हिन्दी भाषा में जिस भावधारा का ऐश्वर्य विस्तार किया है, उसमें असाधारण विशेषता पाई जाती है।...स्वच्छ जल का स्रोत जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से, अपने आन्तरिक वेग के साथ स्वतः ही उत्सारित होता रहता है, उसी प्रकार इन कवियों की भावधारा अपने शुद्ध आनन्द की प्रेरणा से स्वतः प्रवाहित हुई है। इसप्रकार के साधक कवियों में एकमात्र सुन्दरदास ही शास्त्रज्ञ पंडित थे।...भारत के मध्ययुग के हिन्दी-साहित्य से जो लोग परिचित होना चाहते हैं, उनके लिए पुरोहित श्रीयुत हरिनारायण शर्मा, विद्याभूषण, बी० ए० द्वारा सम्पादित समग्र 'सुन्दर ग्रन्थावली' विशेष रूप से आदरणीय प्रतीत होगी।"

यही नहीं, जब मैंने आज से लगभग नौ वर्ष पूर्व सन् 1983 में 'सुन्दर-वाणी' के संकलन-सम्पादन करने का संकल्प किया था, तब मेरे सामने केवल यही लक्ष्य नहीं था कि पुरोहित जी द्वारा सम्पादित 'सुन्दर ग्रन्थावली' का पुनः संस्करण किया जाए। अपितु, गुरुदेव टैगोर के ये प्रेरक शब्द भी थे कि 'जो लोग हिन्दी भाषा के प्राचीन श्रेष्ठ ग्रन्थों का, जनसाधारण के अनादर एवं उपेक्षा से उद्धार करके उन्हें प्रकाश में लाने तथा उसके प्रचार के कार्य में प्रवृत्त होते हैं, वे अवश्य ही हम लोगों की कृतज्ञता के भाजन हैं।' यद्यपि, 'राजस्थान रिसर्च सोसायटी' के मन्त्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया के शब्दों में 'सुन्दर ग्रन्थावली' का सम्पादन [-'पुरोहित जी ने 40 वर्षों की खोज से, बड़े ही परिश्रम पूर्वक किया है, जिससे भारतीय सन्त-साहित्य में चिर प्रतीक्षित एक नई ज्योति का प्रकाश हुआ है और राजस्थानी साहित्य का एक बहुत बड़ा काम हुआ है।'] एक श्रमसाध्य एवं महत्त्वपूर्ण कार्य था, जो सन् 1936 में प्रकाशित होकर सामने आ गया था। किन्तु, सन् साठ के दशक तक आते-आते उक्त पुस्तक 'सुन्दर-ग्रन्थावली' प्रायः अनुपलब्ध हो गई। यद्यपि, साहित्य-शोध-समीक्षा के विद्यार्थियोंको इस ग्रन्थ की आज भी महती आवश्यकता बनी हुई है। अतः इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की अनुपलब्धि अखरने लगी। तब जिज्ञासा प्रयत्न-पूर्वक मैंने एक पुराने पुस्तकालय से 'सुन्दर ग्रन्थावली' की जीर्ण-शीर्ण प्रति हस्तगत की और सुन्दर-वाणी के प्रकाशन के इतिहास को देखा और समझा। फलतः इसके सम्पादन में दत्तचित्त होकर विगत आठ-नौ वर्षों से लग रहा हूँ।

सुन्दर-वाणी के प्रकाशन इतिहास को देखकर ऐसा लगता है कि इसका 'सवैया ग्रन्थ' सर्वाधिक प्रचलन और प्रकाशन में आया है। यह ग्रन्थ सर्वप्रथम सं० 1900 [सन् 1843] वर्ष के आसपास 'राग कल्पद्रुम' के अन्तर्गत, अलग-अलग समय पर कई खण्डों में, कृष्णानन्द व्यासदेव 'राग सागर' के सम्पादकत्व में खण्ड-खण्ड रूप में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। बाद में सुन्दर-वाणी को लेकर जो भी संकलन-संपादन हुए, उनमें 'सवैया' ग्रन्थ के छन्दों को प्रतिनिधित्व अवश्य मिलता रहा है। पर, सच तो यह है कि सुन्दर-दास की रचनाओं के संकलन-संग्रह-प्रकाशन का एकमात्र श्रेय, यदि किसी एक समर्पित साहित्य-प्रेमी को दिया जाए, तो वह नाम है—पुरोहित हरिनारायण शर्मा। उन्होंने सुन्दर-वाणी के सम्पादन के कार्य का प्रारम्भ सन् 1902 में कर दिया था। पुरोहित जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लगभग 34-35 वर्षों के अनथक परिश्रम के बाद, सुन्दर कृत समग्र वाङ्मय 'सुन्दर ग्रन्थावली' नाम से सन् 1936 में प्रकाशित। उक्त प्रकाशन के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपनी राय दी है। सुन्दर-वाणी के प्रकाशन के सम्बन्ध में यह जान लेना भी कम आवश्यक नहीं है कि स्वयं पुरोहित जी ने, सुन्दर-वाङ्.मय से चुन-चुनकर, 'सुन्दर-सार' शीर्षक से एक संग्रह, ना० प्र० सभा द्वारा सन् 1918 में प्रकाशित कराया था। वह संग्रह अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ था। फिर, उसी का पुन:संस्करण 1928 में, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग से हुआ। 'सुन्दर-सार' में सुन्दरदास कृत समूची छन्द संख्या 3787 बताई गई है। इसमें 252 छन्द केवल 'सवैया-ग्रन्थ' से ही थे। पुरोहित जी द्वारा सम्पादित 'सुन्दर ग्रंथावली' की एक विशेषता यह भी रही कि उन्होंने अपने संकलन का आधार उस हस्तलिखित प्रति को बनाया था, जो सुन्दरदास जी के जीवन-काल काल में ही [उनकी मृत्यु के चार वर्ष पूर्व] अर्थात् आषाढ़ सुदी छठ, शनिवार संवत् 1742 [सन् 1685] को लिखकर तैयार हुई थी। पुरोहित जी की यह प्रति फतहपुर के दादूपन्थी महन्त गंगाराम जी से प्राप्त हुई थी। जिस प्रामाणिक प्रति के आधार पर पुरोहित जी ने सुन्दर-वाणी-सम्पादन का कार्य सम्पन्न किया है, उसी पाठ को प्रस्तुत 'ग्रन्थावली' के पाठ का आधार बनाया गया है। किन्तु, पुरोहित जी ने अपनी ग्रन्थावली में सुन्दर-वाणी में जो 'विभाग' [—जैसे 1. प्रथम विभाग : ज्ञान समुद्र, 2. द्वितीय विभाग : लघु ग्रन्थावली, 3. तृतीय विभाग : सवैया [-सुन्दर विलास], 4. चतुर्थ विभाग साखी ग्रन्थ, 5. पंचम विभाग : पद [-भजन] और 6. षष्ठ विभाग : फुटकर काव्य] किए हैं, वे हमें अधिक वैज्ञानिक नहीं जान पड़े। वास्तव में रचनाकार की प्रत्येक रचना चाहे वह लघु हो या बड़ी, रचना-प्रक्रिया में उसका अपना एक महत्त्व होता है। आकार के आधार पर महत्त्व आँकना उचित नहीं। हमने तो सुन्दरदास की प्रत्येक छोटी-बड़ी रचना को एक पूर्ण रचना माना है। अत: प्रस्तुत ग्रन्थावली के संख्या-क्रम में निर्दिष्ट प्रत्येक रचना नियोजित एवं व्यवस्थित की गई है। हाँ, मूल पाठ की वर्तनी यथावत् रखने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

पुरोहित जी द्वारा सम्पादित 'सुन्दर ग्रन्थावली' और प्रस्तुत 'ग्रन्थावली' में केवल 'मूल पाठ' की व्यवस्था का ही अन्तर नहीं है, अपितु समीक्षा-विवेचन प्रस्तुत करने के दृष्टिकोण में भी अन्तर है। कारण स्पष्ट है कि जहाँ पुरोहित जी एक साहित्य-मनीषी की श्रद्धा-भावना को लेकर बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में सुन्दर-वाणी के प्रति आकर्षित हुए थे, वहीं प्रस्तुत ग्रन्थावली का लेखक-सम्पादक बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में, भारतीय साहित्य-दर्शन परम्परा एवं समाज-चेतना के सारे सन्दर्भों को अपने में समेटे हुए, सन्त-वाणी के रचना-संसार में निहित अन्तर्मुखता की उपेक्षित 'शक्ति' को पहचान करते हुए, प्रवृत्त हुआ है। उदाहरण केलिए 'काव्य' एवं 'यश' की जिन मान्यताओं को लेकर पुरोहित जी ने सुन्दरदास जी का, हिन्दी-साहित्य के कवियों में स्थान निर्धारित किया है, वह कसौटी या पद्धति अब समीचीन नहीं लगती। वे लिखते हैं—

'सरस्वती के विशाल दरबार में, भारत भारती की राजसभा में, हिन्दी-साहित्य के समर्थ शक्तिशाली पद-प्राप्त महारथियों की भव्य-मण्डली में, इन स्वामी कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिरोमणि महात्मा सुन्दरदास जी की कुरसी, उनका आसन, उनकी बैठक इसप्रकार है—

1. 'सर्वप्रथम तो महात्मा कवि सम्राट् भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास। 2. महामहिम श्री रसिक शिरोमणि अनन्य भक्त श्री सूरदास जी। 3. ज्ञान कोटि की उच्चता, योग मार्ग की परमोत्तम कर्त्तव्यशील पारंगतता वाले योगीश्वरनाथ गणनाथ श्री गोरखनाथ जी। 4. अध्यात्म तत्त्व के रहस्यों की पहुँच में अत्युन्नत पद प्राप्त, सर्वश्रेष्ठ सत्य के खोजी, उत्तम सुन्दर स्पष्ट गम्भीर हृदयस्पर्शी कविता में गहन पदार्थों को लोकोपकार की उदारता के साथ दर्पणवत, सूर्य के प्रकाश के समान प्रतिभासित करने वाले पहुँचवान् महात्मा श्री कबीर जी। 5. काव्य की आचार्यता की पदवी प्राप्त, प्रधान महाकवि, श्री रामचन्द्र के गुणगान करने में तुलसीदास की समता रखने वाले प्रशस्त भक्त और ज्ञान के प्रकरणों को, शृंगारी कविता परायण होकर भी, बहुत मर्मज्ञता के साथ परिष्कृत, टकसाली कविता में बढ़िया रचना करने वाले श्री केशवदास जी। 6. अति मिष्ट अमृतोपम वाणी में अध्यात्म के रहस्यों को, ज्ञान के परमोत्कृष्ट तत्त्वों को लोकप्रिय सुन्दर सरल, सुरस काव्य में रुचिकर रूप में प्रगट करने वाले, परम दयालु महात्मा, स्वयं सुन्दरदास जी के गुरु श्री दादूदयाल जी। 7. लोकप्रिय अपने रंग-ढंग के 'आप अकेले', कठिन विषयों को सरस काव्य में माखन-मिसरी कर देने वाले, भक्ति-ज्ञान मिश्रित उच्च विचारों को भाषा में विभूषित करने वाले, कवि श्रेष्ठ महात्मा कविवर स्वामी श्री सुन्दरदास जी विराजमान होते हैं।' [—भूमिका, पृ० 185-86]।

वास्तव में कवि-रचना को परखने के आध्यात्मिक, दार्शनिक, काव्यशास्त्रीय एवं पिंगलाशास्त्रीय परम्परित मापदण्ड अब उस रूप में ग्राह्य नहीं रहे। वैसे भी, अब सन्त-वाणी को काव्य-शास्त्रीय अथवा रसवादी मूल्यों पर परखना असमीचीन-सा लगता है। सन्त-वाणी के विगत वर्षों के अध्ययन से हमें लगता रहा है कि मनीषी सन्तों की '**वाणी**' भारतीय भूखण्ड के बहुत बड़े हिस्से में अंकुरित और पल्लवित हुई है। इस वाणी ने भारत के बहुत बड़े 'भूभाग' के निवासियों की मानसिकता को 'सम-भाव' में पोषित किया है। अतः ऐसी चेतना पुष्ट वाणी का समीक्षा-अध्ययन मात्र काव्यशास्त्रीय रसवादी अथवा अलंकार-छन्दादि परम्परित ढर्रे की कसौटी पर करना, न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। जिन सन्त-रचनाकारों ने, समाजेतिहास की उन विषम परिस्थितियों में, परिवेश की विसंगति से दायित्वपूर्वक संघर्ष किया था और चेतना-व्यवहार अथवा कथनी और करनी की लड़ाई में, लोकमंगल का संकल्प लेकर समतावादी ऊर्जस्वित वाणी-बोल को मुखर किया था, वह आज हमारे बीच **मंगल-काव्य** बनकर प्रतिष्ठित है। उस वाणी ने जन-हृदय को निरन्तर अमृत ऊष्मा का अनुभव कराया है। वास्तव में ये वाणी-रचनाकार, तथाकथित इतिहासकार तो नहीं हैं। क्योंकि, इनकी बाणी को अब तक शास्त्र-शासन में कहीं '**प्रमाण**' रूप में स्वीकार नहीं किया गया। किन्तु, इतिहास के उस माहौल से गुज़रते हुए, अपने चिन्तन-अनुभव के धनी, ये रचनाकार संवेदनशील '**मनुष्य**' अवश्य बने रहे हैं। यह भी कि इनकी वाणी इतिहास न होते हुए भी, ऐतिहासिक परिवेश का ठोस प्रामाण्य प्रस्तुत करने में समर्थ है। क्योंकि, इन सन्तों ने उपेक्षित, शोषित एवं शास्त्रज्ञान [-भाषा] से रहित,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु श्रम से जुड़े हुए सामान्य जन में, 'आदमी' होने की अस्मिता को निरन्तर जीवित रखा है। इसी अर्थ में अपनी प्रतिबद्ध-समर्पित जीवन-चेतना से ये रचनाकार सुषुप्त समाज को यह कहकर कि 'सूते की भैंसि पड़ाइ जनैंगी' [-सुन्दरदास] अर्थात् 'सोए हुए की भैंस हमेशा पड्डे [-कटड़े] को जन्म देती रहेगी', सावधान करते रहे हैं।

परम्परागत मापदण्डों से सन्त-साहित्य की समीक्षा करना इसलिए भी समीचीन नहीं कहा जा सकता कि भारतीय जन-इतिहास की लगभग एक हज़ार वर्षों की लोकाभिमुख वाणी [-अभिव्यक्ति], जो 'शम' एवं 'दर्द' की पृष्ठभूमि में लोक-शील का निर्माण करना चाहती थी, आभिजात्यवादी प्रवृत्ति के कारण उपेक्षित एवं तिरस्कृत बनी रही है। अथवा दर्शनशास्त्र के प्रतिबिम्ब के रूप में विवेचित होती रही है। फलतः युग-सन्दर्भ के प्रति जागरूक सुन्दरदास कृत 'वाणी' की समीक्षा, अब तक एक घेरे में सीमित बनी रहना स्वाभाविक है। तभी तो डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित जैसे समीक्षकों ने 'सुन्दर-दर्शन' जैसे ग्रन्थों में केवल साधना, दार्शनिक विचार तथा प्रबोधन जैसे शीर्षकों में, दर्शन-पक्ष को ही किसी-न-किसी रूप में प्रस्तुत किया है। मुझे लगता है कि सन्त-वाणी मात्र शब्द-योजना, उपदेशक की वाणी अथवा जीवन-संग्राम से भगाने वाली निर्वेद-प्रधान वैराग्यपूर्ण वाणी नहीं है। सच तो यह है कि परिवेश की मरणोन्मुख विसंगति में इन सन्त-रचनाकारों के मन झुलसते रहे हैं। वे अपने परिवेश के **'जन'** के प्रति निरन्तर संवेदनशील बने रहे हैं। इसीलिए इनकी वाणी, अपनी विचार-ऊष्मा को लेकर, समताकाश में ऊर्ध्वमुखी बनी रहकर भी, धरती के **'मानस'** की तपन को बुझाती रही है। इनकी वाणी, व्यास गद्दी पर बैठे हुए पुरोहित कथावाचक द्वारा दिया गया एकतरफा उपदेश नहीं है। यह वाणी जन-हृदय का **'संवाद'** है, जो कुटिलता और अपराध-वृत्ति की दुनिया से निकाल कर चेतना को 'साधु' बनाने की ओर अग्रसर करती है। यह वाणी [गोष्ठी-] विमर्श का परिणाम है—

'गोष्टि रु ज्ञान अनन्त चलै जहं, सुन्दर जैसैं प्रवाह नदी कौ।
ताहि तें जानि करै निस बासर, साध कौ संग सदा अति नीकौ॥'
—सवैया०, साधु० 20/1

यह वाणी आचार्य शंकर के 'मायावाद' जन्य 'जगन्मिथ्या' का परिणाम नहीं। अपितु, सृष्टि के कण-कण में सत् 'सत्ता' की अस्मिता का अनुभव में होने का परिणाम है। देखिए—

'एकहि ब्रह्म रह्यौ भरपूरि तो, दूसर कौन बताब निहारौ।
जो कहै जीव भयौ जगदीस तें, तौ रवि माँहि कहां कौ अंधारौ॥'
'प्रगट जोति यह चेतनि दीसै, जातैं भयौ सकल संसार।'
—संत् काव्य संग्रह, पृ० 351

'मनुष तन यह बड़े भाग्य तें पाम जी।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी॥'
—सु० ग्रं०, रामाष्टक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी वाणी की मूल चेतना को परखने की कसौटी न तो नायक-नायिका-भेद प्रधान शृंगार या शान्तरस हो सकता है, क्योंकि गृह-वैराग्य प्रधान शान्तरस, 'निर्वेद' पर आधारित है। दूसरी ओर जीवन-निरपेक्ष दार्शनिक वृत्ति भी उसकी परख का आधार नहीं बन सकती। वास्तव में सन्त-वाणी जीवन-दृष्टि है, दर्शन-शास्त्र नहीं। सन्तों का 'दर्शन' जीवन के धरातल पर एक आचरित अथवा आचरणशील जीवन-दृष्टि है, जिसमें सामाजिक सन्दर्भ स्वयं व्यंजित हैं। सन्तों ने 'करनी' और 'रहनी' के आधार पर **'जीवन'** का, स्वयं अपनी 'आँखों' से साक्षात्कार किया है। अतः वाणी में प्रेम तत्त्व, विरह-दर्द, आनन्द भाव, पद-साधना, पतिव्रता-साधु-सती और सूरमा की प्रतिष्ठा जैसे गुरु-मूल्य निहित हैं। ये जीवन-मूल्य, आचरण के धरातल पर नीति[-वाणी], परस्पर साम्प्रदायिक सौमनस्य के भावों द्वारा सहस्राब्दियों से पोषित बने रहे हैं। फलतः वाणी में आडम्बर-पाखण्ड का तिरस्कार करके, सहज जीवन जीने की प्रेरणा निहित होती रही है।

सबसे महत्त्वपूर्ण है महत् मूल्यों की संवाहिका **'भाषा'**। वास्तव में सन्त-वाणी को मात्र 'कविताई' नहीं कह सकते। रचना के धरातल समग्र मन से निःसृत इस 'वाणी' की अपनी जो मान्यताएँ हैं। उन्हीं को आधार बनाकर, युगों से पोषित-संचित इस मनीषी-धरोहर की समीक्षा अपेक्षित है। आज साहित्य-समाज और इतिहास के धरातल पर उपादेयता देखना ही इस सन्त-वाणी की सही समीक्षा कही जा सकती है। इस दृष्टि से जब हम सुन्दर-वाणी का अध्ययन करते हैं, तो वहाँ स्पष्ट रूप से ऐसे कथन-संकेत प्राप्त होते हैं, जिनमें सुन्दरदास प्रतिपादित सन्त-विचारधारा में पूर्व सन्त-रचनाकारों के अभिमत की व्यंजना दिखाई देती है। प्रस्तुत ग्रन्थावली में 'भूमिका' रूप जीवन-परिवेश और साहित्य-सन्दर्भ में, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर अध्ययन-दिशा के संकेत दिए गए हैं।

अध्ययन-विवेचन की उक्त दिशा निर्धारित करने के सम्बन्ध में एक बात और कह सकते हैं कि लोकवादी सन्त-साहित्य का विकास हिन्दी-साहित्य के **'उत्तर मध्यकाल'** में भी, पूरे वेग के साथ होता रहा है, वैसा ही जैसे 'पूर्व मध्यकाल' के सन्त-कवियों ने अपनी वाणी को लोक-मानस की भूमिका पर पल्लवित एवं पुष्पित किया था। फिर भी, इस वाणी की समीक्षा काव्यशास्त्र की रसवादी कसौटी पर ही अधिक हुई है। वास्तव में सन्तों का उद्देश्य 'शृंगार-रस अथवा नख-शिख प्रधान नायक-नायिका-भेद' वाली सामन्ती प्रवृत्ति की रचना करते हुए, रसिकों के मन की तुष्टि करना कभी नहीं रहा। वैसे काव्यशास्त्र में भी आचार्य आनन्दवर्धन और पण्डितराज जगन्नाथ जैसे मनीषी आचार्य 'आत्मशोध' वाली वाणी को श्रेष्ठ मानते रहे हैं। सुन्दरदास के समसामयिक पण्डितराज ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि शृंगारादि रसों में उत्तम रचना करने वाले चतुर कवि-जन संसार में बहुत हैं। परन्तु, जिनकी वाणी आत्म-ज्ञान केलिए हो, ऐसे कवि विरले होते हैं। देखिए—

> 'शृंगारादि समज्वल रचना पटवः क्षितौ न के कवयः।
> से तु नितान्त विरला आत्म ज्ञानाय वाग्येषाम्॥'

—रस गंगाधर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त सुन्दरदास ने भी विचारधारा मूलक अपना अभिमत स्पष्ट शब्दों में बताया है। सन्त-वाणी में उच्च वर्ग की शृंगारी प्रवृत्ति का स्पष्ट शब्दों में विरोध पढ़ने को मिलता है। सन्तों की मान्यता है कि 'वासना' में जीना ही सब कुछ जीना नहीं है। वासना-मुक्ति का जीवन-फलक भी सही जीवन हो सकता है। वासना-मुक्ति के बाद चित्त को जिस विश्राम-दशा का अनुभव होता है, उसमें जिस समता-भावना का उदय होता है, उसमें भी सामाजिक उत्साह, आचरणगत निष्ठा, व्यवहारगत ईमानदारी और सात्विक प्रतिबद्धता देखी जा सकती है। समरसता प्रधान ऐसी प्रतिबद्धता निश्चित ही व्यापक परिवेश में जीवन जीने की प्रेरणा देती है। और सन्त-काव्य ऐसे ही विश्रान्त चित्त की उपज है, जो समग्र जीवन के प्रति उत्तरदायी रहा है। अतः ऐसे 'काव्य' की परख, मनोविकारों की भूमिका वाले रस-निकष पर करना समीचीन नहीं है। सन्तों की विचारधारागत दृष्टि को प्रतिपादित करने में सन्त कवि सुन्दरदास बहुत ही महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश करते हैं। इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी वाणी में विद्यमान हैं। जिस 'विषयासक्ति' और 'चतुराई' का प्रतिपादन, आचार्य भानुदत्त [14वीं शती] 'रस मंजरी' में और रसिक कवि केशवदास [सं० 1612-72] 'रसिक प्रिया' द्वारा करते हुए, जिस वर्ग विशेष को उन्मत्त कर रहे थे, लगभग उसी समय सुन्दरदास ने 'रसिकता' की अतिशय प्रवृत्ति का प्रतिवाद किया है। अपने परिवेश को सम्बोधित करते हुए सुन्दरदास कहते हैं—

'रसिक प्रिया रस मंजरी और सिंगारहि जांनि।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आंनि।।
विषै बनाई आंनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नख शिख नारी।।
ज्यौं रोगी मिष्ठान षाइ, रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तौ रसिक प्रिया धारै।।'

उक्त कथन सन्त कवि का मात्र वैचारिक कथन नहीं है। अपितु, इसमें सम्पूर्ण सन्त-साहित्य की मूल चेतना प्रतिबिम्बित हुई समझनी चाहिए। सन्तों की मान्यता रही है कि प्रबल 'काम' अथवा वासना, व्यापक 'राम' [-रस] अथवा 'आनन्द रस' का 'मौला' [-रसिया] बनने में सबसे बड़ी बाधा बनता रहा है। काम-वासना की हीन वृत्ति आध्यात्मिक निश्चय को ही नहीं, लौकिक आचरण को भी शिथिल एवं विचलित करती है। सुन्दरदास का ऐसा विचार-पक्ष अब तक अनालोचित बना रहा है। यही नहीं, 'रसिक प्रिया रस मंजरी' जैसे छन्द हिन्दी-साहित्य-समीक्षा के इतिहास में 'पुस्तक-समीक्षा' के प्रथम उदाहरण कहे जा सकते हैं। साथ ही सुन्दर कृत 'देशाटन के सवैये' हिन्दी-साहित्य में यात्रा-संस्मरण के प्रथम उदाहरण होने की स्थिति में हैं। इनमें सुन्दरदास ने देशाचार में हुए अनुभवों, वहाँ के लोगों के रहन-सहन और छुआछूत की अवधारणाओं का निःसंकोच आकलन किया है। इन सवैयों में लाहौर-यात्रा का संस्मरण सुखानुभूति पूर्ण लगता है। यही नहीं, जीवन का जहाँ सर्वाधिक समय व्यतीत हुआ उस फतहपुर नगर की स्त्रियों के फूहड़पन के प्रति सुन्दर की बेलाग खिन्नता पठनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरदास जीवन भर इतने स्वाभिमानी रहे कि अपने गुरु दादू जी के अतिरिक्त उन्होंने किसी अन्य की वाणी-स्तुति नहीं की। यहाँ तक कि दादू-पोषित [-मानस पुत्र] गरीबदास जी द्वारा एक बार बचपन में उपेक्षा भरी अवहेलना होने के कारण, सुन्दरदास जीवन भर उनकी प्रशंसा नहीं कर सके। उन्हीं गरीबदास जी की पुत्रियों को उन्होंने कितना वत्सल-भाव दिया है, यह अनुभव 'बाईजी के भेंट के सवैये' शीर्षक रचना को पढ़कर किया जा सकता है।

सुन्दरदास की 'भाषा' के सम्बन्ध में 'ग्रन्थावली' के साहित्य-सन्दर्भ में विचार हुआ है। यहाँ यह कहना संगत लगता है कि सुन्दरदास की वाणी पारस्परिक सौहार्द बढ़ाने में कितनी सक्षम दिखाई देती है, इसका बहुत बड़ा श्रेय उनकी भाषा को है। जिस भाषा को उन्होंने अपने मन्तव्य की वाहिका बनाया है और जितने छन्दों को उन्होंने अपनी बात का माध्यम बनाया है, वह सब उनकी समन्वित समाज-चेतना का ही प्रतिफलन है। संस्कृत भाषा के पारंगत विद्वान् सुन्दरदास जब त्रिविध **'अंतःकर्ण भेद'** लिखते हैं तो 'बहिर्बुद्धि रज तम गुण रक्ता। अंतर्बुद्धि सत्व आसक्ता।।' जैसी भाषा का प्रयोग करते हैं और जब वे **'बावनी'** रूप में लोक-बोध की रचना करते हैं तो 'ऊँच नीच सम देषै दोऊ। ऊरा पूरा है नहिं कोऊ।।' जैसी आम बोलचाल की भाषा को अपनाते हैं। जब सूफी विचार-परम्परा जैसा **'पीर मुरीद अष्टक'** लिखते हैं, तो 'चामर' छन्द में भी अरबी-फारसी शब्दावली प्रधान ऐसी उर्दू का इस्तेमाल करते हैं, मानो वे उसी माहौल से आए हों—'औवलि कदम उस्ताद के मैं गहे दोऊ दस्त। उनि मिहर मुझ पर करी ऐसी ह्वै गया मैं मस्त।।' अथवा **'अजब ख्याल अष्टक'** में 'गीतक' छन्द में भी वैसी ही भाषा का इस्तेमाल है—'उस्ताद सिर पर चुस्त दम कर इश्क अल्लह लाइये। गुजरान उसकी बंदगी मौं इश्क बिन क्यौं पाइये।।' पर, वे ही सुन्दरदास जब **'पंजाबी भाषा अष्टक'** रचते हैं तो ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं—

'वहु दिलदा मालिक दिलदी जाणै दिल मौं बैठा देषै।
हुंण तिसनौं कोई क्यौं करि पावै जिसदै रूप न रेषै।।'

देशाटन-प्रसंग में उनकी भाषा देखिए—

'काहू की छोति न मानत कोउ जी भट्ठ दी रोटी रु षूह दा पानी।' अथवा 'हिक्क लाहोर दा नीर भी उत्तम हिक्क लाहोर दा बाग सिराहे।' वे ही सुन्दरदास जब **'पूरबी भाषा बरवै'** रचते हैं तो 'पूर्वी बोली' का इसीप्रकार प्रयोग करते हैं जैसे पश्चिम से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा हो। देखिए—

'अंब डार पर बैसल कोकिल कीर।
मधुर मधुर धुनि बोलइ सुखकर सीर।।
'एक सेज बर कामिनि लागलि पाइ।
पिय कर अंगहि परसत गइलि बिलाइ।।'

इतना ही नहीं, वे जब गुजराती और राजस्थानी के माहौल से गुजरते हुए रचते हुए गाते हैं, तब भी वे अपने श्रोता-पाठक की मानसिकता को नहीं भूलते। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भाजे कांई रे भिडि भारथ साम्हौं सूरा तन जिणि हारै।
दुहौं पवाड सुजस् ताहरौ कै मरसी कै मारै ॥'

अथवा

'सोई गाढ रे रण रावत बांकौ पाछा पाव न मेल्है।
साचै मतै स्यांम रे आगै सीस उतार्यां षेल्है ॥'

किन्तु, पदों अथवा सवैया छन्दों में कहीं भी ब्रजभाषा का माधुर्य ओझल नहीं दिखाई देता—

'देखौ भाई आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहि रागत ॥'

इसीलिए सुन्दर-वाणी में लोकरस प्रतिपादक लोक-गीत धुन और साज-वाद्य पर शास्त्रीय संगीत का सम्मिलन हुआ है। वे 'भरहु परस्पर आतमा रंग हो हो होरी।' कहकर सामाजिक के परस्पर सौमनस्य और सौहार्द को पुरस्सर भी करते हैं और 'चलतैं फिरतैं जागत सोवत दरदवंद अति भारी' होकर, अपने मालिक का स्मरण करते-कराते हुए अत्याचारी को हाथ से 'छुरी' फेंक देने केलिए प्रेरित भी करते हैं—

'मीयाँ हर्दम हर्दम रे अपने सांई को संभाल।
मुसलमान ईमान राषिलै करद हाथ तैं डाल ॥'

सुन्दरदास भ्रान्त लोगों को ऐसी भाषा में समझाते हैं जो उनके आसपास की भाषा थी। सुनने-समझने वाला, चाहे राजा हो अथवा रंक, हिन्दू हो अथवा मुसलमान, पंडित हो अथवा काज़ी, वे एक सन्त का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में कहीं संकोच नहीं करते। देखिए—

'सब कोऊ भूलि रहे इहिं बाजी।
आप आपुने अहंकार मैं पातिसाहि कहा पाजी ॥
पातिसाहि कै बिभौ बहुत बिधि षात मिठाई ताजी।
पेट पयादौ भरत आपनौ जीमत रोटी भाजी ॥
पण्डित भूले बेद पाठ करि पढि कुरान कौं काजी।
वै पूरब दिशि करैं दण्डवत वै पच्छिमहि निवाजी ॥
तीरथिया तीरथ कौं दौडे हज कौं दौडै हाजी।
अन्तर गति कौं षोजै नाहीं भ्रमणै ही सौं राजी ॥
अपने अपने मद के मांते, लषैं न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये जिनकै भई दुराजी ॥'

—पद 132

यह वह भाषा है जो 'विचार' की भूमिका में, पारस्परिक समन्वय की शक्ति और 'संवाद' के माध्यम से पूरे समाज को जोड़ने का प्रयत्न कर रही थी। भक्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर भी सन्त सुन्दरदास कहीं लोक-पक्ष को नहीं भूले हैं। साहित्य-परम्परा के विकास की दृष्टि से विचार करें तो कह सकते हैं कि सुन्दरदास ने काव्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा और छन्द-पद्धति को, तुलसीदास के पश्चात् पूरे संबल से पुरस्सर किया है। जैसा कि आचार्य शुक्ल ने तुलसी के सम्बन्ध में लिखा है—'भाषा-पद्य के स्वरूप को लेते हैं तो गोस्वामीजी के सामने कई शैलियाँ प्रचलित थीं, जिनमें ये मुख्य हैं—[क] वीर गाथा काल की छप्पय पद्धति, [ख] विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, [ग] गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति, [घ] कबीरदास की नीति संबंधी बानी की दोहा-पद्धति, जो अपभ्रंश काल से चली आती थी, और [ङ] ईश्वरदास की दोहे-चौपाई वाली प्रबंध-पद्धति'। [-हि० सा० इति०, पृ० 123]। इन पद्धतियों और जन-भाषा-सामर्थ्य को अपनाकर तुलसी की वाणी तो जन-हृदय की कण्ठहार बन ही गई है। रचना के धरातल पर 'शक्ति' के इन प्रेरणामयी स्रोतों का सुन्दरदास ने भी अपनी अभिव्यक्ति में पूरा इस्तेमाल किया है। साथ ही अपनी भ्रमणशील प्रवृत्ति के कारण सुन्दर-वाणी में, अंचल की शब्द-ध्वन्यात्मकता और देश-देशान्तर की शब्द-सम्पदा स्वयं समर्पित होती रही है। ऐसे बहु आयामी रचनाकार की वाणी को, केवल दार्शनिक ऊहापोह, भक्ति की भूमिका और सन्तों की निर्वेद प्रधान वृत्ति अथवा शान्त रस की सीमाओं में रखकर कैसे आँका जा सकता है? इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थावली में प्रत्येक छोटी-बड़ी रचना और उसके अंग-उपांगों के साथ 'प्रवेशार्थ', विशेष रूप से टिप्पणी एवं शब्दार्थ रूप में 'चूर्णिका' देकर रचनाकार के मन्तव्य को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। ये टिप्पणियाँ साहित्य-समीक्षा के विद्यार्थी को जहाँ रचनाकार के निहित मन्तव्य को उजागर करने में सहयोगी होंगी, वहीं सामान्य पाठक को अर्थ-ग्रहण करने में उपयोगी सिद्ध होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बात और। 'ग्रन्थावली' में वर्तनी की दृष्टि से वही वर्णाक्षर अपनाए गए हैं, जो पुरोहित जी की ग्रन्थावली में विद्यमान हैं और जो मध्यकालीन लेखन-वर्तनी के अनुरूप लगते हैं। जैसे—'ख' केलिए 'ष' और ब्रजभाषा प्रकृति के अनुरूप 'ण' केलिए 'न' 'श' केलिए 'स' और कहीं-कहीं 'ष' और 'श' भी। यही नहीं, 'और' केलिए 'वोर', 'क्ष' केलिए 'छ' का प्रयोग भी मिलता है। प्राय: 'ड़' और 'ढ़' के नीचे बिन्दी लगी नहीं मिलती। अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु में भी प्राय: अन्तर दिखाई नहीं देता। अत: चन्द्रबिन्दु केलिए भी प्राय: अनुस्वार का ही प्रयोग है।

ग्रन्थावली के अन्त में परिशिष्ट' 1, 2, 3, 4 में दी गई साषी[-साखी], सवैया, एवं सूक्तियों और पदों की अकारादि क्रम सूची नियोजित की गई हैं, जो सुन्दर-वाणी को कण्ठ-वाणी के रूप में ग्राह्य बनाने में सहायक होगी। परिशिष्ट 5 में लाघव-चिह्नों की सूची है।

अन्त में उन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सुन्दर-ग्रन्थावली के सम्पादन में विरोध या सहयोग के रूप में मुझे प्रेरणा दी है। वास्तव में इस कार्य की सम्पन्नता में गुरु-प्रभु-कृपा के साथ ही **'मानव संसाधन विकास मंत्रालय'** शिक्षा विभाग, भारत सरकार, के सार्थक आर्थिक अनुदान के प्रति भी आभारी हूँ, जिससे प्रस्तुत 'ग्रन्थावली' का प्रकाशन सम्भव हो सका है।

गुरु नानक जयन्ती
10 नवम्बर, 1992

—रमेशचन्द्र मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुतीकरण

पृष्ठ संख्या

पुरोवाक् — पाँच—चौदह

अनुक्रम — I—VI

सुन्दरदास : जीवन-परिवेश और साहित्य-सन्दर्भ — इक्कीस—एक सौ बाईस

जीवन-परिचय और परिवेश : — 21—50

'सुन्दर' नाम, जीवन-परिचय, समकालीन-अनुयायी और सुन्दरदास, सुन्दर-साहित्य का विधायकपक्ष, सुन्दर-वाणी का संकलन : प्रकाशित संग्रह।

ग्रन्थावली में संकलित सुन्दर-रचनाओं का सामान्य-परिचय : — 51—83

सुन्दर-वाणी का अन्तरंग एवं शैली पक्ष : — 83—122

उलटवाँसी पद-रचना [-शैली], भाषा-सामर्थ्य और छन्द, ब्रजभाषा, भाषा सम्बन्धी अन्य पक्ष : षट्भाषा, पंजाबी-प्रयोग, उर्दू-फारसी-अरबी भाषा की शब्दावली, पूरबी भाषा, ब्रजभाषा-क्षेत्र के प्रति लगाव, बोलचाल की भाषा का उपयोग, गुजराती भाषा का प्रयोग, संस्कृत के प्रति लगाव, लोक-भाषा के तत्त्व, लेखकीय मन्तव्य।

सुन्दर ग्रन्थावली : भाग एक

1. ज्ञान समुद्र :

प्रथम उल्लास : — 1—79

प्रवेशार्थ, ग्रन्थ-वर्णन इच्छा, ग्रन्थ-वर्णन, यज्ञास लक्षण, गुरुदेव दुर्लभता, गुरु लक्षण, गुरु प्राप्ति, प्रार्थनाष्टक। — 2—13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय उल्लास : 14—28

प्रवेशार्थ, नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, बन्दन, दास्यत्व, सख्यत्व, आत्म-निवेदन, प्रेम-लक्षणा भक्ति, परा भक्ति।

तृतीय उल्लास : 29—54

प्रवेशार्थ, **दस यम**—अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्ज्जव, मिताहार, शौच। **दस नियम**—तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, पूजा, श्रवण, ह्री, मति, जाप, होम। **आसन**—सिद्धासन, पद्मासन, प्राणायाम। चक्र अनुक्रम, नाद-वर्णन, मुद्रा, प्रत्याहार। **पंच तत्त्वों की धारणा**—पृथ्वी तत्त्व, जल तत्त्व, तेज तत्त्व, वायु तत्त्व, आकाश तत्त्व। ध्यान वर्णन, समाधि वर्णन।

चतुर्थोल्लास : 54—65

प्रवेशार्थ, सांख्य योग वर्णन, पंच स्वभाव, राजसाहंकार, सात्विकाहंकार, स्थूल देह वर्णन, **त्रिपुटी भेद**—कर्मेन्द्रिय त्रिपुटी, अन्तःकरण त्रिपुटी, लिंग शरीर। **अवस्था भेद**—जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्तावस्था, तुर्यावस्था।

पंचमोल्लास : 66—79

प्रवेशार्थ, **चतुर्भाव**—प्रागभाव, अन्योन्याभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव।

2. सर्वांगयोग प्रदीपिका : 80—115

प्रवेशार्थ, **प्रथम उपदेश** : प्रवेशार्थ, पंच प्रहार। **द्वितीय उपदेश** : प्रवेशार्थ, भक्ति योग, मंत्र योग, लय योग, चर्चा योग। **तृतीय उपदेश** : प्रवेशार्थ, हठयोग, राजयोग, लक्षयोग, अष्टांगयोग। **चतुर्थ उपदेश** : प्रवेशार्थ, सांख्य योग, ज्ञान योग, ब्रह्म योग, अद्वैत योग।

3. पंचेन्द्रिय चरित्र : 116—152

प्रथम उपदेश : प्रवेशार्थ, गज चरित्र। **द्वितीय उपदेश** : प्रवेशार्थ, भ्रमर चरित्र। **तृतीय उपदेश** : प्रवेशार्थ, मीन चरित्र। **चतुर्थ उपदेश** : प्रवेशार्थ, पतंग चरित्र। **पंचम उपदेश** : प्रवेशार्थ, मृग चरित्र। **षष्ठ उपदेश** : प्रवेशार्थ, पंचेन्द्रिय निर्णय।

4. सुख समाधि : 153—158

प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

5. स्वप्न प्रबोध : 159—163

प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

6. वेद विचार : 164—168

प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

7. उक्त अनूप : 169—172

प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. अद्भुत उपदेश : 173—183
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
9. पंच प्रभाव : 184—189
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
10 गुरु सम्प्रदाय : 190—198
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
11. गुन उत्पत्ति नीसांनी : 199—202
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
12. सद्गुरु महिमा नीसांनी : 203—206
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
13. बावनी ग्रन्थ : 207—218
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
14. गुरु दया षट्पदी : 219—221
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
15. भ्रम विध्वंस अष्टक : 222—229
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
16. गुरु कृपा अष्टक : 230—231
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
17. गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक : 232—236
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
18. गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक : 237—239
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
19. रामाष्टक : 240—242
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
20. नामाष्टक : 243—245
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
21. आतमा अचलाष्टक 246—249
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
22. पंजाबी भाषा अष्टक : 250—253
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
23. ब्रह्मस्तोत्र अष्टक : 254—255
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
24. पीर मुरीद अष्टक : 256—258
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
25. अजब ख्याल अष्टक : 259—264
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26. ज्ञान झूलना अष्टक : 265—267
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
27. सहजानन्द : 268—272
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
28. गृह वैराग बोध : 273—277
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
29. हरिबोल चितावनी : 278—283
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
30. तर्क चितावनी : 284—293
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
31. विवेक चितावनी : 294—300
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
32. पवंगम छन्द : 301—305
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
33. अडिला छन्द : 306—311
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
34. मडिल्ला छन्द : 312—316
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
35. बारहमासो : 317—320
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
36. आयुर्बल भेद आत्मा विचार : 321—323
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
37. त्रिविध अन्तःकरण भेद : 324—325
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
38. पूरबी भाषा बरवै : 326—329
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
39. साखी ग्रन्थ : 330—543
साखी [-साषी]-काव्यरूप, सुन्दर-साखी 330—332
1. गुरुदेव कौ अंग : 333—346
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
2. सुमिरन कौ अंग : 347—354
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
3. बिरह कौ अंग : 355—362
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
4. बंदगी कौ अंग : 363—366
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. पतिव्रत कौ अंग : 367—373
प्रवेशार्थ, मूल पाठ चूर्णिका
6. उपदेश चितावनी कौ अंग : 374—381
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
7. काल चितावनी कौ अंग : 382—388
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
8. नारी पुरुष श्लेष कौ अंग : 389—393
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
9. देहात्मा बिछोह कौ अंग : 394—397
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
10. तृष्णा कौ अंग : 398—401
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
11. अधीर्य उरांहने कौ अंग : 402—405
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
12. विश्वास कौ अंग : 406—409
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
13. देह मलिनता गर्ब प्रहार कौ अंग : 410—413
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
14. दुष्ट कौ अंग : 414—417
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
15. मन कौ अंग : 418—427
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
16. चाणक कौ अंग : 428—432
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
17. बचन बिबेक कौ अंग : 433—436
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
18. सूरातन कौ अंग : 437—441
प्रवेशार्थ, मूल पाठ चूर्णिका
19. साधु कौ अंग : 442—449
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
20. बिपर्ज्जय कौ अंग : 450—462
प्रवेशार्थ, मुल पाठ, चूर्णिका, प्रतीकार्थ
21. समर्थाई आश्चर्य कौ अंग : 463—470
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका
22. आपने भाव कौ अंग : 471—474
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23. स्वरूप विस्मरण कौ अंग : 475—481
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

24. सांख्य ज्ञान कौ अंग : 482—490
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

25. अवस्था कौ अंग : 491—498
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, अवस्था भेद—प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ पंचम, षष्ठ और चूर्णिका

26. बिचार कौ अंग : 499—506
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

27. अक्षर बिचार कौ अंग : 507—511
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

28. आत्मानुभव कौ अंग : 512—519
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

29. अद्वैत ज्ञान कौ अंग : 520—527
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

30. ज्ञानी कौ अंग : 528—535
प्रवेशार्थ, मूल पाठ, चूर्णिका

31. अन्योऽन्य भेद अंग : 536—543
प्रवेशार्थ, मूल पाठ : भेद—प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और चूर्णिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दादूदयाल - सुन्दरदासजी [गुरु - शिष्य] एवं राजा मान सिंह (जयपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरदास जी की चरण-चौकी (साँगानेर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
८८१
६८

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

106290

सुन्दरदास : जीवन-परिवेश और साहित्य-सन्दर्भ

'सुन्दर' नाम अपनी व्युत्पत्ति [—सु-सुष्ठु+उन्द-क्लेदने+अर:] में ही नहीं, अपनी शब्द-सामर्थ्य में भी [—मनोहर, रुचिर, मनोरम, मनोज्ञ, मंजुल, सौम्य, अभिराम, आनन्दकारी, दिव्य, रूपवान् आदि ध्वनियों को श्लेषत्व में सँजोए हुए] शताब्यिों से व्यवहार में प्रासादिक शब्द बना रहा है। सन्त कवि सुन्दरदास को यह नाम सहज ही अपने बचपन में मिल गया था। कहा जाता है कि गुरु दादू ने, सबसे छोटे [-शिशु[, रुचिर और रूपवान् होने के कारण इन्हें 'सुन्दर' कहकर पुकारा था। स्वयं सुन्दरदास ने अपने एक दोहे में कृतज्ञतापूर्वक इसकी संकेत-साक्षी दी है। द्रष्टव्य है—

'सुन्दर सद्गुरु हैं सही, सुन्दर सिक्षा दीन्ह।
सुन्दर बचन सुनाइ कैं, सुन्दर सुन्दर कीन्ह॥'

लगभग उन्हीं के समकालीन भक्तमाल के रचयिता राघवदास ने इसी बात को दूसरे ढंग से कहा है कि 'सुन्दर जे हैं आपुहि सुन्दर, तिनकौ कहा सिंगार।' बालपन में गुरु के द्वारा किए गए इस उपकार को सुन्दरदास ने शिरोधार्य कर अपनी रचना के प्रत्येक छन्द में 'सुन्दर' शब्द-प्रयोग की छाप के द्वारा, गुरु-प्रदाय के स्मृति-पटल पर अंकित प्रभाव को वाणी-अभिव्यक्ति के साथ-साथ साकार करते हुए, स्वीकार किया है। ऐसे सुनाम धन्य सुन्दरदास का जन्म तत्कालीन जयपुर राज्य में द्यौसा नगर में हुआ था।[1]

1. **टिप्पणी :** 'द्यौसा' को जयपुर-राज्य की प्रथम राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त है। इस नगर को महाराजा सोढ़देव जी के पुत्र दूलहराय जी ने वि० सं० 1023 में विजय प्राप्त करके अपने अधिकार में लिया था [दे०—राजस्थान का इतिहास, ले० बारहठ रामनाथ जी रत्नू, पृ० 87-88]। द्यौसा के भूगोल के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि यह पुराना कस्बा है। इसका खण्डहरनुमा किला एक पहाड़ी पर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरदास का जन्म-वर्ष और मृत्यु-वर्ष प्रमाणित और सुनिश्चित हैं। इसके दो आधार हैं—एक तो उनके ही समकालीन माधवदास रचित **'दादू जन्म लीला'** और दूसरी **'संत गुण सागर सिद्धान्त'** की रचना। इसग्रन्थ की 19वीं तरंग में सुन्दरदास जी की जन्मतिथि कार्तिक शुक्ला अष्टमी बताई गई है और मृत्यु-तिथि चैत्र शुक्ला नवमीं। देह-त्याग सम्बन्धी सुन्दर कृत एक साखी को भी प्रामाणिक माना गया है। उनकी वाणी में यह साखी 'देह-त्याग' अथवा 'अन्त समय की साखी' नाम से प्रसिद्ध है—

'सात बरस सौ में घटै, इतने दिन का देह।
सुन्दर न्यारौ आतमा, देह षेह की षेह॥'

सौ मैं से सात वर्ष कम अर्थात् 93 वर्ष का शरीर-जीवन। आपका देह-त्याग साँगानेर कस्बे में संवत् 1746 [सन् 1689 ई०] को होना निश्चित है। फलतः इनका जन्म संवत् 1653 [सन् 1596 ई०] भी निश्चित है। इन वर्ष-तिथियों को, न तो दादू-शिष्य परम्परा में, न सन्त-साहित्य के इतिहास-समीक्षकों ने और न ही इतिहासकारों ने कहीं विवाद या सन्देह का विषय बनाया है।

वंश-परिवार की दृष्टि से आपके पिता का नाम चोखा या चोखाराम था। ये ही बाद में परमानन्द नाम से जाने गए थे। ये 'बूसर' गोत्र के खंडेलवाल वैश्य कुल से सम्बद्ध थे। सुन्दरदास के ही समकालीन राघवदास ने अपने **'भक्तमाल'** में इनके पिता का नाम 'चोखा' या 'चोखाराम' दिया है। इन्होंने ही नहीं, जन गोपाल कृत 'दादू जन्म लीला' एवं वासुदेव कवि कृत 'दादू चरित चन्द्रिका' में भी सुन्दर के पिता का नाम 'चोखा' ही बताया गया है। हाँ, स्वामी गंगाराम जी ने सुन्दर के पिता का नाम परमानन्द बताया है। यह 'परमानन्द' नाम, लगता है सुन्दरदास के जन्म के बहुत दिनों बाद, सम्मान-सूचन केलिए प्रचलन में आया होगा। सुन्दर की माता 'सती', आँबेर नगर के 'सौंकिया [-साँकिया] गोत्र के खंडेलवाल वैश्य कुल की पुत्री थीं। वास्तव में राजस्थान में ही नहीं, समूचे उत्तर भारत में अग्रवाल और खंडेलवाल ये दो वंश-कुल-परम्पराएँ प्रसिद्ध रही

है। यह जयपुर शहर से पूर्व की ओर 30-35 मील दूर बसा हुआ है। यहाँ रेलवे स्टेशन भी है। जहाँ सुन्दरदास जी का जन्म हुआ था, वह गली-मुहल्ला आज 'बूसरों वाली जायगाँ' नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु, वहाँ अब सुन्दरदास जी के स्थान के खण्डहर अथवा उनके जीवन सम्बन्धी अवशेष दिखाई नहीं देते। यहाँ तक कि सुन्दरदास जी के वंश का भी अब द्यौसा में कोई अता-पता नहीं है। सुन्दर का जन्म द्यौसा में हुआ, इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं। देखिए—

'दादू जी जब द्यौसह आये। बालपने हम दरसन पाये।'
—गुरु सम्प्रदाय ग्रन्थ,

दिवसा [-द्यौसा] है नग्र, 'चोषो' बूसर है साहूकार,
सुन्दर जनम लियौ ताही घर आइकैं।'
—भक्तमाल, राघवदास, छन्द 421

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। 'खंडेलवालों' का सम्बन्ध खंडेला नगर से माना गया है, जिन्हें 'खंडेला वाले' कहा जाता था। विचारधारा की दृष्टि से खंडेलवालों की दो परम्पराएँ कही जा सकती हैं— 1. वैष्णव परम्परा और 2. जैन परम्परा। इन्हीं में इनके 84 गोत्र प्रचलित हुए हैं। उन्हीं में से एक 'बूसर' गोत्र भी है। '**खंडेलवाल हितैषी**' पत्रिका [दे०—अंक 5-6, वर्ष 7, सन् 1921 ई०] के एक लेख में खंडेलवालों की विचार-परम्परा के सम्बन्ध में उल्लेख है कि 'जिनसेनाचार्य जैन यती ने खण्डेले में जैन धर्म फैलाया, उन्हीं से खण्डेलवाल हुए।' इस पक्ष का प्रतिवाद करते हुए कहा गया है कि 'खण्ड' नामक ऋषि के नाम से 'खण्डेला' प्रसिद्ध हुआ है। क्योंकि, खंडेलवाल ब्राह्मण भी 'खंडेल' से ही प्रसिद्ध हुए हैं। ये राजस्थान के गौड़ ब्राह्मण माने जाते हैं। इसीप्रकार 'बूसर' का सम्बन्थ कोई 'भूसुर' से बताते हैं, तो कोई 'बूसरिया' का संक्षिप्त रूप बताते हैं। किसी ने बूसरों का सम्बन्ध इसी नाम के किसी कस्बे से जोड़ा है, तो कोई 'बोहरा' से 'बूसर' की व्युत्पत्ति मानते हैं। 'बूसर' का प्राचीन उल्लेख 'स्कन्ध पुराण' [—रेवा खण्ड, अध्याय 40] में देखा जा सकता है। किन्तु, 'बूसर' का जातिगत अथवा वंशगत अर्थ में उल्लेख स्वयं सुन्दरदास ने अपनी रचनाओं में किया है। यही नहीं, इनकी जाति के बारे में इनके समकालीनों ने भी उल्लेख किया है। कहा जाता है कि लाहौर-यात्रा में इन्होंने एक 'दूसर' ब्राह्मण को शास्त्रार्थ में पराजित करके कहा था—

'बूसर कहै तूं सुन हो दूसर, बाद बिबाद न करना।
यह दुनियां तेरी नहिं मेरी, नाहक क्यों अड़ मरना॥'

राघवदास ने 'भक्तमाल' में कहा है—'दादू के सुन्दर बूसर परम प्रवीन है।' और चत्रदास कहते हैं— 'सुन्दरदास बूसर सु फतेहपुर गाजहीं।' सुन्दरदास अपनी अभिव्यक्ति में भी अपने को 'बनिया' या 'कोठीवाल' बनिया कहते हैं। देखिए—

'सम्रथ की कोठी आये, तब कोठीवाल कहाये।'
'बनिजै हरि नांव निवासा, यह बनिया सुन्दरदासा॥'
'संतनि लीयौ हरि हीरा, तिनस्यौं कीयौ हम सीरा।
दुख दालिद्र निकट न आवै, यौं सुन्दर बनिया गावै॥'.

—सुं० ग्रं०, भाग 2, पद 123-24

सुन्दर के जन्म के सम्बन्ध में एक जनश्रुति यह भी है कि दादू के प्रमुख शिष्यों में से गुजरात के एक जग्गा [-जगदीश] जी एक बार भिक्षाटन केलिए आँबेर के सौंकियों के घर पहुँच गए थे। वहाँ सुन्दर की माँ, अपने [कन्या-जीवन में] पिता के घर में थीं। भिक्षा लेते समय जग्गा जी ने आशीर्वचन में कहा था कि—'दे माई सूत, ले माई पूत'। कहते हैं कि उस कन्या के विवाहित होने पर स्वयं जग्गा जी को अपना शरीर-त्याग करके 'सुन्दर' के रूप में जन्म लेना पड़ा था। यह जन-विश्वास ही '**चोखा के घर जग्गा जन्मो**' के रूप में प्रसिद्ध हुआ है।

सुन्दरदास, दादूजी के सबसे कनिष्ट एवं प्रिय शिष्यों में गिने जाते हैं। आयु में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे छोटे होने के कारण ये **'सुन्दरदास छोटे'** नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। एक अन्य **'सुन्दरदास बड़े'** भी दादू के शिष्य थे, जो बाद में **'नागा जमात'** में शामिल हो गए थे। दादूजी सं० 1658-59 वि० के ग्रीष्मकाल में द्यौसा आए थे, तब बालक सुन्दर 5-6 वर्ष का रहा होगा। तब ही दादूजी से उसका साक्षात्कार हुआ होगा। मान्यता है कि तभी (शिशु काल में ही) दादूजी से उसने दीक्षा ग्रहण की थी। इस बात को **'बावनी'** [-छन्द 57] एवं **'गुरु सम्प्रदाय ग्रन्थ'** में स्वयं सुन्दरदास ने स्वीकार किया है—

'सुन्दरदास गुरू मुख जाना। खिरै नहीं तासौं मन माना।'
'दादू जी जब द्यौसह आये। बालपने हम दरसन पाये।
तिन के चरननि नायौ माथा। उनि दीयौ मेरैं सिर हाथा।'

दादूजी के प्रति समर्पित गुरु-भाव, उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र रेखांकित किया जा सकता है। कुछ उल्लेख द्रष्टव्य हैं—

'सुन्दर सतगुरु आप तैं, किया अनुग्रह आइ।
मोह निसा मैं सोवते, हम को लिया जगाइ॥'
'तिनही दीया आपुतैं, सुन्दर के सिर हाथ।'

'स्वामी दादू गुरु है मेरौ। सुन्दरदास शिष्य तिनि केरौ।'
—गुरु सम्प्रदाय छन्द-7

'दादू का चेला चेतनि भैला, सुन्दर मारग बूझेला।'
—गुरु दया षटपदी, छं०1

'नमो देव दादू' —गुरु महिमा स्तोत्र अष्टक,
'दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम है।'—गुरु उप०
'दादूदयाल कौ हूं नित चेरौ।' —सवैया, गुरुदेव कौ अंग,
'दादू सद्गुरु बन्दिये, सो मेरे सिरमौर।'—साखी ग्रन्थ, गुरुदेव०,

गुरु का सान्निध्य एवं गुरु से प्रत्यक्ष ज्ञान-प्राप्ति का अवसर सुन्दर को बहुत कम मिला होगा। क्योंकि, वर्ष संवत् 1660 वि० में ही दादूजी ने, नराणे नगर में देह-त्याग दी थी। हाँ, सुन्दरदास जी तव नराणे में भी कुछ समय तक दादू के सान्निध्य में रहे थे। अपना अन्तिम समय समझ कर दादूजी ने अपने प्रिय शिष्य जगजीवणदास को बालक सुन्दर की देख-रेख एवं शिक्षा-दीक्षा का दायित्व सौंपा था। उस दायित्व सम्पूर्ति के लिए ही संवत् 1664 वि० में बालक सुन्दर, जगजीवणदास, रज्जब अली एवं अन्य गुरु-भाइयों के साथ, शिक्षा-प्राप्ति केलिए काशी गए थे। स्वामी माधवदास ने तब इनकी आयु 'द्वादश वर्ष' लिखी है। काशी में ये संवत् 1664-82 वि० तक रहे थे। कहा जाता है कि ये काशी के असी घाट, गंगा तट पर कहीं गुफा बनाकर रहते थे और भिक्षा एवं सदावर्त के आधार पर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। इनके ग्रन्थों को पढ़कर ऐसा लगता है कि सुन्दरदास ने काशी में वेदान्त, सांख्य, योग आदि षट्दर्शन एवं ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य, उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थ तो पढ़े ही होंगे, व्याकरण एवं साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र आदि का भी गंभीर अध्ययन किया होगा और छन्द-अलंकार, रस आदिकाव्यांगों का इन्होंने अध्ययन के साथ ही अभ्यास भी किया होगा। यही नहीं, भाषा-काव्यों के समस्त स्रोतों एवं अंगों को भी इन्होंने समझा होगा। अपना अध्ययन-कार्य समाप्त करके ये संवत् 1682 वि० में राजस्थान के फतहपुर जिलान्तर्गत शेखावटी कस्बे में लौट आए थे। उल्लेख है कि, तब अत्यन्त वैराग्य-भावना से प्रेरित होकर ये लगभग 12 वर्ष तक किसी एकान्त प्रदेश में साधनाभ्यास करते रहे थे। हाँ, थोड़े-बहुत दिनों केलिए ये इधर-उधर भ्रमण अवश्य करते रहे थे। इसप्रकार प्रायः संवत् 1700 वि० तक ये फतेहपुर क्षेत्र में ही रहे थे। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि सुन्दरदास आजीवन अविवाहित ही रहे थे।

अध्ययन और साधनाभ्यास में स्थान विशेष से जुड़े रहने के बावजूद भी सुन्दरदास का जीवन देशाटन-प्रिय माना जाता है। इसप्रकार के मानने में उनकी रचनाओं के अन्तःप्रमाणों का साक्ष्य बहुत महत्त्वपूर्ण गवाही पेश करता है। सामान्यतः 'फतहपुरिया' कहे जाने वाले सुन्दरदास जी ने अपनी रचनाओं में अनेक नगरों-कस्बों एवं अन्यान्य स्थानों का उल्लेख किया है। रचनाओं के उक्त उल्लेखों में उन-उन नगर-स्थानों अथवा क्षेत्रों की भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा वहाँ के निवासियों की सामाजिक स्थिति एवं जन-जीवन की मानसिकता के अनेक संकेत-सूत्र मिलते हैं। अतः प्रकारान्तर से यही प्रमाणित होता है कि सुन्दरदास भ्रमणशील थे। वे एक स्थान पर बहुत दिनों तक रहना पसन्द नहीं करते थे। रचना में वर्णित यात्रा-वृत्तान्तों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुन्दरदास पूर्व में बिहार-बंगाल-उड़ीसा तक, पश्चिम में पंजाब के लाहौर नगर एवं अन्य दादू पन्थी स्थानों का पर्यटन करते हुए दक्षिण में गुजरात प्रदेश के द्वारिका क्षेत्र और मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में घूमे थे। उत्तर में वे हिमालय क्षेत्र में घूमते हुए बद्रिकाश्रम तक गए होंगे। नगरों में इन्होंने काशी के अतिरिक्त आगरा, मथुरा, वृन्दावन, बरसाना, दिल्ली, बीकानेर, बूँदी, हाड़ौती, नगरचाल, खराड़, टोडा-टोंक आदि को भलीप्रकार देखा होगा, ऐसा जान पड़ता है। किन्तु, अपने जीवन-काल के अधिकांश समय में ये राजस्थान-क्षेत्र में ही रमे रहे हैं। लाहौर ये दो-तीन बार गए होंगे, ऐसे संकेत मिलते हैं। अपने 'देशाटन के सवैयों' में इन्होंने अनेक क्षेत्रों एवं नगरों पर टिप्पणियाँ की है। जो क्षेत्र या नगर-ग्राम इन्हें जलवायु, जन-जीवन-व्यवहार अथवा क्षेत्रीय समृद्धि की दृष्टि से अच्छा लगा, उसकी इन्होंने प्रशंसा की है। ग्राम-नगरों एवं उनके निवासियों को देखकर होने वाली प्रतिक्रिया रूप में इन्होंने वहाँ-वहाँ के लोगों की मानसिकता एवं आचार-व्यवहार तथा प्रवृत्तियों को भी सम्यक् रूप से अंकित करने का प्रयत्न किया है। वर्णन में लोगों के जीवन, रहन-सहन के स्तर में जहाँ आर्थिक दशा की व्यंजना देखने को मिलती है, वहीं जलवायु सम्बन्धी टिप्पणियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। लाहौर में 'छज्जू भक्त का चौबारा' इनके ठहरने का स्थान बताया गया है। उदाहरण केलिए जब ये पहली बार लाहौर गए थे, तब लगता है इन्हें वह शहर देखकर निराशा हुई थी। तभी तो इन्होंने लिखा है--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आए थे कछु और को, होय गई कछु और ।
कपड़े फाड़े गाँठि के, देख चले लाहौर ।।'

लेकिन, जब दूसरी या तीसरी बार ये लाहौर गए होंगे, इनकी लाहौर शहर के प्रति धारणा ही बदल गई जान पड़ती है। देखिए—

'हिक्क लाहोर दा नीर भी उत्तम हिक्क लाहोर दा बाग सिराहे ।
हिक्क लाहोर दा चीर भी उत्तम हिक्क लाहोर दा मेवा सिराहे ।।
हिक्क लाहोर दे हैं बिरही जन हिक्क लाहोर दे सेवग भाये ।
कितइक बात भली लाहोर दी ताहि तें सुन्दर देषनैं आये ।।'
—सुं० ग्रं०, देशाटन०, सवैया 4

मालवा-क्षेत्र की समृद्धि के सम्बन्ध में बहुत पहले से ही आकर्षण माना जाता रहा है। इस 'आकर्षण' को आँखों से देखने केलिए ही सम्भव है कबीर उस क्षेत्र में गए होंगे और देखकर सहज ही उनकी यह साखी मुखर हो गई होगी—

'देस मालवा गहर गंभीर। डग डग रोटी पग पग नीर।'—क० ग्रं०, पद 68

सुन्दरदास मालवा के जनमानस, वहाँ की प्राकृतिक छटा एवं मिट्टी की उर्वरा शक्ति को और अधिक गहराई से निहार सके हैं। मालवा के सम्बन्ध में उनका यह सवैया प्रसिद्ध है—

'भूमि पवित्रहु लोग विचित्रहु राग रु रंग उठत्त वहीं तें ।
उत्तम अन्न असन्न बसन्न प्रसन्न ह्वै मन्न जु षात तहीं तें ।।
बृच्छ अनंत रु नीर बहंत सु सुन्दर संत बिराजै जहीं तें ।
नित्य सुकाल पडै न दुकाल सु मालव देस भलौ सब ही तें ।।'
—सुं० ग्रं०, देशाटन०, सवैया 7

साधु-सन्तों को गृहस्थों के आश्रय में सदा से भोजन-सुविधा मिलती रही है। घर की स्त्रियों का विरोध करके वे भोजन की पनाह प्राप्त नहीं कर सकते थे। किन्तु, सुन्दरदास अपनी बात कहने में बड़े स्पष्टवादी रहे हैं। वे राजस्थान के फतहपुर नगर में बहुत दिनों तक रहे हैं। किन्तु, स्वच्छता की दृष्टि से उन्होंने वहाँ की स्त्रियों की कभी प्रशंसा नहीं की। यही नहीं, उनके फूहड़पन की खुले शब्दों में आलोचना भी की है। देखिए—

'सुच्चि अचार कछू न बिचारत मास छठै कबहूंक सन्हांहीं ।
मूंड षुजावत बार परै गिर ते सब आटे मैं वोसनि जांहीं ।।
बेटी रु बेटन कौ मल धोवत वैसैंहि हाथन सौं अंन पांहीं ।
सुन्दरदास उदास भयौ मन फूहड़ नारि फतेपुर मांहीं ।।'
—सुं० ग्रं०, देशाटन०, सवैया 9

एकान्त क्षेत्र एवं उत्तम जलवायु के कारण सुन्दरदास को राजस्थान का 'कुरसाना' ग्राम-क्षेत्र, जो मारवाड़ में पीपाड़ और खांगटा स्टेशनों के बीच, चार-पाँच मील की दूरी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसा हुआ है, अत्यन्त प्रिय लगा। यहीं दादू-पन्थियों का गुरुद्वारा या अखाड़ा भी है। इस क्षेत्र के साथ सुन्दरदास ने अपने भ्रमण-स्थल संबंधी अनुभवों को बड़ी बेलाग भाषा में अभिव्यक्त किया है। यह भी उल्लिखित है कि वहीं-कहीं बैठकर आपने अपने 'सवैया' आदि प्रमुख ग्रंथों के अधिकांश भाग रचे थे। कुरसाना के सम्बन्ध में उनके विचार देखिए—

'पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देस बिदेस फिरे सब जाने।
केतक द्यौस फतेपुर मांहिं सु केतक द्यौस रहे डिडवाने॥
केतक द्यौस रहे गुजरात उहांहुं कछू नहिं आयौ है ठाने।
सोच बिचारि कै सुन्दरदास जु याहि तें आनि रहे कुरसाने॥'

—सुं० ग्रं०, देशाटन०, सवैया 8

लगता है कि भ्रमण सम्बन्धी अनुभवों को सुन्दरदास सहज ही चलते-फिरते अभिव्यक्त करते-रहते होंगे। लेकिन, एक बात विशेष ध्यान देने की है कि जिस प्रदेश-क्षेत्र या नगर का वे वर्णन करते हैं, वहाँ की भाषा-बोली में प्रचलित शब्दों [-प्रयोगों] को वे किसी-न-किसी रूप में, प्राथमिकता दे ही देते थे। यहाँ तक कि जिस क्षेत्र का वे वर्णन करते हैं, वहाँ का प्राकृतिक दृश्य भी आँखों के सम्मुख उभरता प्रतीत होने लगता है, वहाँ के लोगों की खास-खास आदतों की भी वे व्यंजना करा देते हैं। उदाहरण केलिए जब वे मरु प्रदेश का वर्णन करते हैं तो वहाँ की उजाड़ भूमि के साथ गोंखुरू [=कंटीली छोटी झाड़ी] तथा वहाँ के लोगों द्वारा छाछ में अधिक गुड़ मिलाकर पीने की आदत का उल्लेख करना वे नहीं भूले। यह आदत 'रतौंधी' की बीमारी का कारण बताई गई है। देखिए—

बृच्छ न नीर न उत्तम चीर सु देसन मैं गत देस है मारू।
पांव मैं गोंषरू भुर्ट गडै अरु आंषि मैं आइ परै उडि बारू॥
राबरि छाछि पिवै सब कोइ जु ताहि तैं षाज रतैंधुर न्हारू।
सुन्दरदास रह्यौ जिन बैठिकै बेगि करौ चलिबे कौ विचारू॥'

—वही, देशाटन०, सवैया 6

नगरों में कुछ नगरों का वर्णन काल्पनिक ढग से किया गया जान पड़ता है। जिन नगर-क्षेत्रों का वर्णन मिलता है उनमें बलख-बुखारा, काबुल, काश्मीर, आगरा, दिल्ली, पटना राजमहल, बिलाइति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। देखिए—

'बलकल वोढें का भयौ, काबिल माहिं रहाइ।
का समीर साधन किये, लाहो नूर दिषाइ॥
आगरा सु मम पीव है, दिलि मैं और न कोइ।
पट नारी तातें भई, राजमहल मैं सोइ॥'

—वही, चोबोला 13-14

'देश बिलाइति हाथी घोरे। ज्यौं ज्यौं बांधे त्यौं त्यौं थोरे॥

—वही, तर्क चितावनी 30-26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरदास के समकालीन

मनुष्य, विशेषतः रचनाकार, अपने मित्र, सम्पर्कियों एवं अपने समय की उल्लिखित घटनाओं से भी भलीप्रकार जाना-समझा जा सकता है। मित्र-परिचितों के माध्यम से व्यक्ति के स्वभाव के अनेक पक्ष उद्घाटित होते हैं। सुन्दरदास **दादू-स्कूल** के साधक, विचारक एवं कवि-रचनाकारों में एक ऐसे प्रमुख घटक हैं, जिनका सम्बन्ध [-सम्पर्क] दादू-शिष्यों से ही नहीं, दादू-परिवेश से बाहर भी था। यहाँ तक कि तत्कालीन राज्य-व्यवस्था के लोगों का भी इनके साथ सम्पर्क था। समकालीन रचनाकारों की रचनाओं में प्राप्त उल्लेखों से भी यह बात प्रमाणित होती है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना अपेक्षित है कि इतिहास में और भी कई 'सुन्दर' या 'सुन्दरदास' नामक रचनाकार हुए हैं। उनसे हमारे सन्त सुन्दरदास का पृथकत्व किसप्रकार जाना जा सकता है, यह महत्त्वपूर्ण बात है। सन्त सुन्दरदास के अतिरिक्त तीन अन्य 'सुन्दर' नामक रचनाकारों का उल्लेख साहित्य-इतिहास में मिलता है। इनमें से एक ही हमारे विवेच्य सुन्दरदास के समकालीन थे। शेष दो तो इनके बहुत बाद के हैं। ये हैं—**1. सुन्दर कविराय** : ये ग्वालियर नगर के नागर ब्राह्मण थे। शाहजहाँ के दरबारी कवियों में इनकी गणना है। शाहजहाँ ने ही इन्हें 'कविराय' की उपाधि भी प्रदान की थी। इनकी रचना 'सुन्दर श्रृंगार' नायिका-भेद प्रधान ग्रंथ है, जो संस्कृत 'श्रृंगार मंजरी' की अनुकृति पर रचा गया है [दे०—मिश्र बन्धु विनोद,]। सुन्दरदास जी ने इसी 'श्रृंगार मंजरी' ग्रन्थ पर व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष किया है। सम्भव है कि सुन्दरदास अपने आगरा-भ्रमण के समय कवि सुन्दर से मिले भी हों। जैसाकि, वहाँ उनका जैन कवि बनारसीदास के साथ मिलना और उनके साथ सत्संग प्रसिद्ध है। इन्हीं सुन्दर कविराय की तीन रचनाएँ— सुन्दर श्रृंगार', 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बारहमासा' उल्लिखित हैं। इनमें 'सुन्दर श्रृंगार' की रचना संवत् 1688 वि० में हुई थी। **2. सुन्दर कवि** : ये राजस्थान के 'असनी' ज़िला फतहपुर के रहने वाले थे और 'भाट कवि' के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी एक रचना 'रस प्रबोध' नाम से प्रसिद्ध है। ये संवत् 1930 वि० में विद्यमान थे। **3. सुन्दरदास** : ये बनारस के रहने वाले थे। इनका रचनाकाल संवत् 1857-69 वि० तक उल्लिखित है। इनकी तीन रचनाएँ—'सुन्दर श्याम विलास', 'विनयसार' और 'सुन्दर श्रृंगार शतक' हैं। अतः उक्त तीनों ही 'सुन्दर' नामों में सन्त सुन्दरदास के नाम के भ्रम की गुंजाइश बहुत कम है। समीक्ष्य सुन्दरदास के कुछ अन्य समकालीन व्यक्ति-रचनाकारों के नाम यहाँ दिए जारहे हैं—

गरीबदास : दादू-दरबार में बालक सुन्दरदास का सबसे पहला परिचय दादू-पोष्य पुत्र-शिष्य गरीबदास से हुआ था। इनके परिचय को सुन्दरदास जीवन भर नहीं भूल पाए थे। अपने चोला-त्याग के समय गुरु दादू जी, बालक सुन्दर को गुरुद्वारे के योग्य शिष्य जीवणदास आदि को सौंप गए थे। जब बालक सुन्दर लगभग 11 वर्ष का रहा होगा, तब अन्य गुरु भाइयों के साथ सुन्दर अध्ययन केलिए काशी जाने की तैयारी कर रहा था। तभी एक सभा में, बिना किसी दुर्भावना के, गरीबदास ने बालक सुन्दर का विनोद में उपहास कर दिया था। उस विनोद-उपहास का बाल-मन पर ऐसा आघात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा कि प्रतिक्रियास्वरूप बालक सुन्दर ने तत्काल उसी सभा में ये पंक्तियाँ गढ़ कर सुना दी थीं—

'कूड़ा वचन जिन्होंने भाष्या बिल्ली मरै न मूंसे से।
जन सुन्दर अलमस्त दिवाना शब्द सुनाया धूंसे से ।।'

यही नहीं, श्रद्धा-प्रेम वश बाद में दादू-अनुयायी रज्जब आदि अनेक सन्त कवियों ने, गरीबदास के प्रति आदर भावना व्यक्त की है। किन्तु, सुन्दरदास ने आजीवन गरीबदास के प्रति, प्रशंसा में फिर कुछ भी नहीं लिखा। वैसे, गरीबदास जी दादू-शिष्य-परम्परा में अच्छे गायक, वीणा वादक, वाणी-कोशकार एवं सन्त रचनाकार माने जाते हैं। यहाँ तक कि बादशाह जहाँगीर ने इनकी गान-विद्या की प्रशंसा की थी और प्रसन्न होकर नराणे में, जल-व्यवस्था केलिए ऐतिहासिक **'गरीब सागर'** कूप का निर्माण तक कराया था। यही कारण है कि राघवदास ने **'भक्त माल'** में आदरपूर्वक इनका उल्लेख किया है। स्वयं रज्जब अली ने इनके विषय में **'भेंट के सवैये'** शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है—

'दादू के पाटि दिपै दिन ही दिन, दास गरीब गोव्यंद कौ प्यारौ।'
'दादू जी के पाट परि बैठायौ जु आप हरि,
उपज्यौ सु बीर भरि भगति भौमि भूप है।'

सुन्दरदास ने यद्यपि गरीबदास के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। किन्तु, उनके बाद दादू-गद्दी पर आसीन होने वाली उनकी बेटी [-दोनों] को उन्होंने बड़े सम्मान और स्नेह की दृष्टि से देखा है। हो सकता है 'बाईजी' नाम से प्रसिद्ध बेटियों ने किसी उत्सव में सुन्दरदास को बुलाया हो। तभी सुन्रददास ने **'बाईजी की भेंट के सवैये'** शीर्षक से 7 या 8 [क्योंकि, अन्तिम मनहर छन्द 'सवैया ग्रंथ' में पहले से ही मौजूद है] छन्द [जो सुं०ग्रं० में 'परिशिष्ट ख' शीर्षक में संकलित हैं। ये छन्द ही गंगाराम जी के शिष्य ख्यालीरामजी ने पुरोहित हरिनारायण शर्मा को प्रकाशनार्थ भेजे थे] रचे हैं। पुरोहित जी के अभिमत में ये छन्द सन्त सुन्दरदास द्वारा ही रचित हैं। इन छन्दों में **'जग में प्रसिद्ध दोऊ दादूजी की नन्दनी'** शीर्षक मनहर छन्द बहुत मार्मिक बन पड़ा है।

जगजीवणदास : सुन्दरदास के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा में बड़े गुरुभाई जगजीवणदास का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अपनी देह-त्याग के समय दादूजी ने बालक सुन्दर को इन्हीं के हवाले कर दिया था। इनका सहयोग और प्रोत्साहन ही सुन्दर केलिए काशी-अध्ययन में सहायक बना है। वैसे भी, दादू-वाणी के मर्म को समझाने एवं कविता-क्षेत्र में प्रवेश कराने में जगजीवणदास का सुन्दर के प्रति विशेष सहयोग माना जाता है। सुन्दरदास भी इन्हें गुरु-समान सम्मान देते रहे थे। कहते हैं कि जब जगजीणदास आँबेर [जहाँ दादू जी लगभग 14 वर्षों तक ठहरे थे] में दादू जी से मिले थे, तब प्रारम्भ में तो वे दादूजी के विरोधी बनकर आए थे। इन्होंने दादूजी से शास्त्रार्थ भी किया था। किन्तु, दादूजी के सरल-निर्मल स्वभाव ने जगजीवण जी के चेतना-दर्प को शांत कर सहज बना दिया था। तभी से वे उनके शिष्य बन गए। इनकी वाणी का एक संग्रह 'जगजीवणदास की बानी' शीर्षक से प्रसिद्ध है। इनके कई शिष्य—दामोदरदास, ध्यान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास और कान्हड़दास तो वाणी-रचनाकार ही हुए हैं। इनके विषय में राघवदास ने **भक्त माल** में लिखा है—

'महा पण्डित परबीन ग्यांन गुन कहत न आवै।
बाणी बहु बिस्तरी साषि दृष्टान्त सुहावै॥
सबद कवित्व में राम राम हरि हरि यौं करणां।
गुरु गोविंद जस गाइ मिटयौ जामंण मरणां॥'—छन्द 39।

जगजीवणदास जीवन भर सुन्दरदास के प्रति सहृदय बने रहे थे।

रज्जब अली : सुन्दर से पहले ही रज्जब [सं० 1624-1746 वि०] दादू जी के शिष्य हो गए थे। पठानवंशीय लोह-कर्मी लौहपुरुष रज्जब जब संवत् 1644 वि० में विवाह कराने साँगानेर से आँबेर आए थे, तभी वे दादू जी के शिष्य हो गए थे। संवत् 1660 वि० में दादू जी के शरीर-त्याग के समय भी रज्जब उनके निकट नराणे में ही थे। वहीं, सुन्दर का रज्जब जी से प्रथम साक्षात्कार हुआ था। यह सम्पर्क निरन्तर बढ़ता ही गया। इसका एक कारण यह भी रहा कि दादू जी की आज्ञानुसार जगजीवणदास जी संवत् 1663-64 में, सुन्दर के साथ फड़सीदास, नारायणदास और रज्जब अली को भी अपने साथ काशी ले गए थे। इसीलिए सुन्दर जी का रज्जब के प्रति प्रेम एवं बड़े भाई के समान सम्मान होना स्वाभाविक ही था। सुन्दर जी जब फतहपुर में ठहरे थे, तब भी साँगानेर में, रज्जब जी से मिलने जाया करते थे। सुन्दर ने रज्जब से बहुत कुछ सीखा है। इसीलिए शायद रज्जब की 13 रचनाओं की तुलना में, सुन्दर की 40 से अधिक रचनाएँ, प्रतियोगी रचनाएँ कही जा सकती हैं। कुछ काव्यरूप तो दोनों ने समान रूप से ही रचे हैं। किन्तु, रज्जब जी के अरिल एवं त्रिभंगी छन्दों में जहाँ सूफियों जैसी मस्ती एवं सिद्ध रचनाकार जैसा छन्द-प्रवाह देखने को मिलता है, वहीं सुन्दर को 'सवैया सम्राट्' कहा जाता है। यही नहीं, सुन्दर की रचनाओं में शास्त्रज्ञता एवं पाण्डित्य की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। दोनों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव की प्रगाढ़ता इसी से समझी जा सकती है कि संवत् 1746 वि० में, अपनी घोर वृद्धावस्था में भी सुन्दरदास रज्जब से भेंट, करने साँगानेर गये थे। किन्तु वहाँ उनकी देह-त्याग की बात सुनकर सुन्दर अवाक् रह गए थे। शायद उसी आघात का परिणाम समझना चाहिए कि उसी वर्ष, वहीं साँगानेर में ही सुन्दरदास ने भी अपना चोला छोड़ दिया था। आज भी साँगानेर में सुन्दरदास की समाधि विद्यमान है। बड़ी विचित्र बात और विरोधाभास तो यह कहा जा सकता है कि रज्जब द्वारा सम्पादित **'सबंगी'** में सुन्दर की रचना सम्मलित नहीं है। कारण कुछ भी रहा हो।

सुन्दर और मोहनदास जी : रज्जब जी के 12 शिष्यों में मोहनदास जी वरिष्ठ और योग्य शिष्य माने गए हैं। ये सभी सुन्दरदास जी को प्रेम एवं सम्मानपूर्वक मानते थे। सुन्दर की ज्ञान-गोष्ठी मोहनदास जी के साथ अधिक हुआ करती थी। मोहन जी सुन्दरदास के काव्याध्यात्म से बहुत प्रभावित थे। इसीलिए उन्हें गुरु तुल्य मानते थे। वे सुन्दरदास के साथ, उनकी काव्य-रचना के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार भी किया करते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुन्दर भी उन्हें, योग्य पाठक समझकर अपनी रचना भेजा करते थे। 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ के सम्बन्ध में मोहन जी ने सुन्दर को लिखा था—**'सुन्दर सुधा समुद्र ग्रन्थ मोहि भायौ है।'** इससे यही प्रकट होता है कि सुन्दर के जीवन-काल में ही उनकी रचनाओं की ख्याति चारों ओर फैलने लगी थी।

घड़सीदास एवं नारायणदास : ये दोनों भी सुन्दरदास के साथ काशी-अध्ययन केलिए गए थे और वहाँ से लौटने पर ये फतहपुर की गुफा [भहरा अथवा तहखाना] में उनके साथ एकान्तवास करते हुए साधना-निरत रहे थे। नारायणदास, घड़सीदास के शिष्य थे। इनके सम्बन्ध में यही जानकारी मिलती है कि घड़सीदास मारवाड़ के 'चाँपासर' गाँव के जाट थे और नारायणदास उसी गाँव के कल्याण जाट का बेटा था। बाद में संयोग से ये दोनों दादूजी के शिष्य हो गए और मारवाड़ के ही एक गाँव **'कड़ेल'** में थाँभा बनाकर रहने लगे। सुन्दरदास जी संवत् 1710 वि० में चाँपासर गए थे। नारायणदास के प्रति सुन्दरदास का अगाध प्रेम था। कारण यह कि वे उनके विद्यार्थी [-शिष्य] भी रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्रमाण रूप में कहा जा सकता है कि जब जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह [संवत् 1691-1735 वि०] ने, सुन्दरदास के मान-सम्मान में ग्राम-भूमि प्रदान की थी, तो सुन्दरदास ने वह भूमि नारायणदास को दिला दी थी। नारायणदास जब मारवाड़ में रहने लगे थे, तब भी सुन्दर ने उन्हें एक पत्र लिखा था, जिसमें पूर्व स्मृतियों को सँजोए हुए, भावना की ही अभिव्यक्ति है—

'पढ़े थे बाराणसी कियौ बिराहे बास।
भूंच देस में रम रहे, भले नरायणदास ॥'

इसके उत्तर में नारायणदास ने लिखा था—

'दूध दही घृत सालणां थली भला है थोक।
ओढण ऊना कप्पड़ा, लक्खण लावा लोग ॥'

सुन्दर और प्रागदास : प्रागदास [मृ० सं० 1688 वि०] सुन्दर जी से आयु में बहुत बड़े थे। ये किरडोली गाँव के अग्रवाल वैश्य जाति के एक धनाढ्य महाजन के पुत्र थे। किन्तु, वैराग्य भावना से ओतप्रोत होकर इन्होंने, दादूजी के संवत् 1634 बि० में किरडोली आने पर, उनकी शिष्यता ग्रहण कर ली थी। बाद में ये डीडवाणे रहने लगे। इसप्रकार ये सुन्दर जी के साथ बहुत दिनों तक निकट सम्पर्क में रहे। संवत् 1688 वि० में ये सुन्दरदास जी से मिलने फतहपुर भी आए थे। वहीं इनका देहावसान हुआ था। इन्होंने सुन्दर के सम्बन्ध में लिखा है—

'संवत् सोलासै वर्ष अठ्यासी मैं दास प्रयाग फतहपुर आया।
भ्रात कनिष्ट सु सुन्दर तिष्टत यौग की अग्नि से कर्म जराया ॥'

सन्तदास, चतर [-चत्र] दास एवं भीषन जी : सन्तदास उन्हीं साधक-सन्तों में से हैं, जो सुन्दरदास के साथ 12 वर्ष तक फतहपुर के भहरे [-गुफा] में साधना निरत रहे थे। फतहपुर में ही इनकी समाधि विद्यमान हैं। उस पर शिलालेख भी है। ये दादूजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 52 प्रधान शिष्यों में से थे। कहा जाता है कि इन्होंने 12 हज़ार अनुष्टुप छन्दों की रचना की थी। इसीलिए इन्हें 'बारा हजारी' कहा जाने लगा था। इन्होंने संवत् 1686 वि०में फतहपुर में ही जीवित-समाधि ली थी, जिस का गढ़ा [-गुफा] इन्होंने स्वयं खुदवाया था। तब फतहपुर में अलफ खाँ का बेटा दौलत खाँ नवाब था और वह सन्तदास के समाधि-मेले को देखने भी आया था। यह बात सन्तदास की समाधि-छतरी के शिला-लेख में उल्लिखित हैं। इसीप्रकार **चत्रदास या चतुरदास** भी सुन्दरदास के शिष्य-मित्रों में माने गए है। इन्होंने भागवत् का भाषा-छन्दों में अनुवाद किया था। **'एकादश स्कन्ध भाषा'** संवत् 1692 वि०की अनुवादित रचना है। यह रचना आज भी उपलब्ध है। **भीषन जी** सन्तदास के शिष्य थे और सुन्दरदास के समकालीन थे। ये फतहपुर के ही महाब्राह्मण बताए गए हैं। इन्हें अन्य ब्राह्मणों ने हीन बताकर मन्दिर-प्रवेश से वंचित किया था। इनकी **'भीषन बावनी'** शीर्षक से 53 छप्यय-छन्दों की नीति-प्रधान रचना प्रसिद्ध है। यह रचना संवत् 1683 वि० में हुई मानी जाती है। इस सम्बन्ध में भीषन जी का कथन-साक्ष्य द्रष्टव्य है—

'संवत् सोलासह बरष जब हुतौ तियासी।
पोष मास पष सेत हेत दिन पूरनमासी॥
सुभ निषत्र गुन कर्यौ अषिर धर्यौ जु आरज।
कथ्यौ भीषजन ज्ञान जाति द्विज कुल आचारज॥'

इस सम्बन्ध में राघवदास की मान्यता है कि 'भीष बावनी प्रसिद्धि सु तै सारे जग होई।' फतहपुर में सुन्दरदास और भीषन जी का अच्छा सत्संग समागम हुआ करता था, यह बात प्रसिद्ध है।

बषना जी : बषना जी भी उन नौ साधक सन्तों में से हैं, जिन्होंने फतहपुर की गुफा में सुन्दरदास के साथ साधना-तप किया था। वैसे तो ये सुन्दर से पहले ही दादूजी के शिष्य हो गए थे। ये जाति के मीरासी और गाने में उस्ताद थे। इन्होंने राजस्थानी की ढूँढाहड़ी बोली में ही सन्त-विचारधारा की साखियाँ और पदों की रचना की है। इनका संकलन रज्जब जी ने 'सर्बंगी' में भी किया है। सुन्दरदास भी बषना की वाणी को प्रमाण रूप में उद्धृत करते थे। जनगोपाल रचित 'जन्म लीला' में इन्हें 'गान विद्या का गन्धर्व' कहा गया है और राघवदास ने इन्हें 'बानैत बड़' [-भक्तमाल, छन्द 412] कहा है।

बाजिद जी : सुन्दर और बाजिद ये दोनों समकालीन मित्र एवं सहकर्मी बानी-रचनाकार थे। पठानवंशीय बाजिद जी अपने हिंसा-कर्म [-आखेट-वृत्ति] के प्रति ग्लानि-पूर्वक विरत होकर दादूजी की शरण में आए थे और दादू-दरबार में सत्संगियों के संसर्ग एवं वैचारिक सत्संग से साधु-जीवन अपनाते हुए ये बानी-रचनाकार हो गए थे। अरिल छन्द-रचना में ये सिद्धहस्त थे। अरिल-रचना के हर छन्द के पीछे 'हाँ, बाजीद या बाजीदा' की 'टेक' इनकी अपनी छाप की द्योतक है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कई रचनाएँ हस्तलिखित रूप में पड़ी हुई हैं। इनके जीवन-परिवर्तन और वृत्ति रूपान्तरण को राघवदास ने 'भक्तमाल' में इसप्रकार रेखांकित किया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'छांड़ि कैं पठांण कुल राम नांम कीनों पाठ,
भजन प्रताप सौं वाजींद बाजी जीत्यौ है ।
हिरणी हतत उर डर भयौ भय करि,
सील भाव उपज्यौ दुसील भाव बीत्यौ है ।।'—छन्द 428

माधवदास जी : माधवदास जी दादू के 52 शिष्यों में प्रमुख माने जाते हैं। ये मारवाड़ क्षेत्र के गूलर ग्राम में थाँभा बना कर रहते थे और सुन्दरदास के समकालीन थे। इन्होंने **'दादू जन्म लीला'** की रचना की है, जिसका शीर्षक 'सन्त गुण सागर सिद्धान्त' रखा है। इसकी रचना संवत् 1661 वि० में हुई थी। यह रचना 24 तरंगों [-अध्यायों] में व्यवस्थित है। इसमें दादू जी के चरित्र-वर्णन के साथ-साथ परिवेश के अनेक साधक-सन्तों का उल्लेख भी है। सन्त सुन्दरदास के विषय में इसमें कई महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। कवि वासुदेव भट्ट ने 'दादू चरित्र चन्द्रिका' में इस ग्रंथ का पूरा उपयोग किया है।

प्रह्लाददास जी : प्रह्लाददास सुन्दरदास [-बड़े] के शिष्य थे, जो पुरोहित-कर्म भी करते थे। सुन्दरदास [-बड़े] क्षत्रिय थे और युद्ध-कर्म से जुड़े रहते थे। अपने गुरु के साथ ही प्रह्लाददास दादूजी की शरण में आए थे। इनका थाँभा घाटड़े और छींण में था। बाद में प्रह्लाददास जी के भी कई शिष्य हुए। इनमें राजा मानसिंह के हापाजी एवं हरिदास जी प्रमुख हैं। इन हरिदास जी ने ही दादू-पन्थ में **'नागा जमात'** का प्रचलन किया था। यह 'नागा जमात' ही बाद में कई ऐतिहासिक घटनाओं केलिए इतिहास-प्रसिद्ध हुई है। प्रह्लाद जी ने साखी और पद इन दोनों काव्यरूपों में रचना की है। इनका पाठ आज भी नागा-जमात में आदर के साथ होता है। हमारे अभीष्ट सुन्दरदास जी का सम्पर्क भी उस नागा-जमात से हुआ था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उस जमात में सुन्दर रचित कई अष्टकों का पाठ बड़े प्रेमभाव से होता था। इसका उल्लेख राघवदास कृत 'भक्त माल' एवं मंगलराम कृत 'सुन्दरोदय' में सम्यक् रूप से हुआ है।

सुन्दर और राघो[-राघव] दास : 'भक्तमाल' के रचयिता राघवदास सुन्दरदास के समकालीन थे। वैसे ये प्रह्लाददास जी के शिष्य थे। इन्होंने गुरु-आज्ञा से 'भक्तमाल' की रचना संवत् 1770 वि० में पूर्ण कर दी थी। इसका उल्लेख 'भक्तमाल' में भी है। ये जाति के क्षत्रिय थे और दीर्घायु होकर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। इनकी सुन्दरदास के साथ भेंट ही नहीं, अपितु भलीप्रकार सत्संग-लाभ की बैठकें भी हुई थीं। भक्तमाल में सुन्दरदास का ही नहीं, उनके पाँच शिष्यों[—दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास]तक का वर्णन मिलता है। इनका सुन्दर-विषयक उल्लेख प्रत्यक्षदर्शी जैसा जान पड़ता है। सुन्दर के सम्बन्ध में राघवदास का यह छप्पय छन्द बहुत प्रसिद्ध है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'द्वैत भाव करि दूरि एक अद्वैतहि गायौ।
जक्त भक्त षट दरसन सबन कै चांणक लायौ॥
अपणौं मत मजबूत थप्यौ अरु गुरु पखि भारी।
आन धर्म करि खंड अजा षट तैं निरवारी॥
भक्ति ज्ञान हठ सांख्य लौं सब सास्त्र पारहि गयौ।
संक्राचारज दूसरौ दादू कैं सुन्दर भयौ॥'—छन्द 419

राघवदास ने सुन्दरदास के जीवन [-घटनाओं] के सम्बन्ध में तीन कवित्त [1. 'दादू जी के पंथ में सुन्दर सुखादाई संत', 2. 'द्यौसा है नगर, चोखा बूसर है साहूकार', 3. 'आयौ है नबाव फतेहपुर में लग्यौ है पाय'] रचे हैं। राघवदास [छन्द 372] मानते हैं कि सुन्दरदास का व्यक्तित्व 'ज्ञानांकुर' रूप में कृतित्व बनकर उदित हुआ है—

'इम रांम रजा रजबंसी बड़ौ सति सुन्दरदास जी पंथ मैं पूरौ।
गोपि रह्यौ पसर्‍यौ न पसारे मैं न्यारे मैं ऊपज्यौ ग्यांन अंकूरौ॥'

राघवदास के भक्तमाल से ही यह भी जानकारी मिलती है कि उनके शिष्य नारायणदास इनके जीवन-काल में ही दिवंगत हो गए थे और तब उनके शिष्य रामदास, सुन्दरदास के स्थान फतेहपुर के महन्त हुए थे।

सुन्दर और जनगोपाल जी : जनगोपाल जी दादूजी के शिष्य थे, जो सुन्दरदास के समकालीन रहे हैं। इन्होंने **'दादू जन्मलीला परची'** की रचना की है। ये दादू-शिष्यों में वाणी-रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये फतहपुर [-सीकरी] के रहने वाले वैश्य कुलोत्पन्न थे। इन्होंने और भी कई आख्यान काव्य लिखे हैं। रज्जब जी ने 'सर्वंगी' में इनके पदों को स्थान दिया है। 'लीला परची' में, इन्होंने दादू के शिष्यों में, सुन्दरदास का आदर भाव से उल्लेख किया है।

सुन्दर और गुरुदास जी : सिक्ख जीवन-पद्धति में पले ज्ञानी भाई गुरुदास जी [सं० 1608-99 वि०] का जन्म अमृतसर जिले के गोयन्दवाल गाँव में हुआ था। ये गुरु अमरदास जी के भतीजे एवं भल्ला खत्री गोत्र से सम्बद्ध थे। सुन्दरदास जी की तरह ये भी जीवन भर अविवाहित रहे। इधर, सुन्दरदास जी पंजाब के लाहौर आदि क्षेत्रों में देशाटन केलिए कई बार निकले थे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। यही नहीं, पंजाबी भाषा-शब्दावली का अपनी रचना में उपयोग एवं 'पंजाबी अष्टक' जैसी पंजाबी भाषा की रचनाओं से यह स्वतः सिद्ध है कि सुन्दरदास पंजाबी भाषी-क्षेत्रों में खूब घूमे-फिरे होंगे। यही नहीं, इन्होंने वहाँ के पंजाबी भाषी सन्त-रचनाकारों से सम्पर्क-सत्संग भी किया होगा। भाई गुरुदास ने भी सुन्दरदास के समकालीन जीवन-यापन किया है। दोनों की रचनाओं में एक विचित्र संयोग यह देखा जाता है कि दोनों ने प्रमुख रूप से कवित्त-सवैया छन्दों में ही रचना की है। उसमें भी ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, नीति, चेतावनी आदि विषयों को ही दोनों ने अपनी रचना का प्रतिपाद्य बनाया है। गुरुदास जी की रचनाओं में शिक्षाशास्त्रीय पक्ष भी बड़े स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत हुआ है। विचित्र बात यह है कि पंजाबी भाषा में कवित्त-सवैया-घनाक्षरी आदि छन्दों की प्राचीन परम्परा नहीं रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी, गुरुदास जी ने इन छन्दों की, वह भी ब्रजभाषा सम्मत हिन्दी में रचना करके, पंजाब क्षेत्र का ही गौरव नहीं बढ़ाया है, अपितु भाषा के धरातल पर समस्त देश की भावात्मक एकता एवं हिन्दी की भाव-क्षमता को जन-मानस के सम्मुख प्रस्तुत किया है। यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि इनके कवित्त-सवैया छन्द पहले-पहल गुरुमुखी लिपि में ही प्रकाशित हुए थे। गुरुदास जी की ऐसी अभिव्यक्ति, उनकी गुण-ग्राहकता तो सुन्दरदास जैसे सन्त मनीषी लोगों के सान्निध्य और सम्पर्क का ही परिणाम कही जा सकती है। नमूने केलिए भाई गुरुदास का एक कवित्त [-सवैया] यहाँ प्रस्तुत है—

'जैसे जैसे गंग संग मिलत सलिल मिल
होइ तैसो तैसो जगत मैं जानिए।
चन्दन सुगन्ध मिलि पवन सुगन्ध संग
मल मूत्र सूत्र निरगन्ध उनमानिए॥
जैसे जैसे पाक साक बिंजन मिलत घृत
तैसो तैसो स्वाद रस रसना कै मानिए।
तैसे ही असाध साध संगत सुभाव गति
मूली और तम्बोल रस खाय पहिचानिए॥'

—कवित्त सवैया, छन्द 174

सुन्दर और अनाथदास जी : 'मिश्र बन्धु विनोद' में इन्हें दादू पन्थी महात्मा लिखा गया है। ये सुन्दरदास के समकालीन सन्त-रचनाकार हैं। जैसाकि स्वयं इन्हीं का अन्तःसाक्ष्य है, इनका 'विचारमाला' नामक एक ग्रन्थ संवत् 1726 वि० की रचना है, जिसमें आठ विश्राम [-अध्याय] हैं। यह रचना वेदान्त विचारधारा की, भाषा-साहित्य में, उत्तम रचना कही जा सकती है। इस रचना को पढ़कर लगता है कि ये सुन्दरदास जी के सम्पर्क में आए होंगे और उनसे रचना करने की प्रेरणा प्राप्त की होगी। अपनी रचना के सम्बन्ध में इन्होंने लिखा है—

'गीता भरथरि कौ मतौ, एकादश की जुक्ति।
अष्टावक्र बशिष्ट पुनि, कछूक अपनी उक्ति॥'—छन्द 512

सुन्दर और जैन कवि बनारसीदास : महात्मा कवि बनारसीदास [सन् 1556-1643 ई०] की मैत्री सुन्दरदास जी से रही थी, इसके उल्लेख मिलते हैं। निश्चित ही वे सुन्दरदास की योग्यता, कविता एवं योग सम्बन्धी ज्ञानाधिकार के प्रति आकर्षित हुए होंगे। वैसे तो, वे स्वयं भी कम मेधावी एवं व्युत्पन्न नहीं थे। सुन्दरदास भी उनसे निश्चित ही प्रभावित हुए होंगे। बनारसीदास जी की रचनाओं का संग्रह, सम्पादन करके श्री नाथूराम जी प्रेमी ने निर्णय सागर प्रेस से, सन् 1905 ई० में प्रकाशित कराया था। इस संग्रह का नाम 'बनारसी विलास' है, जो सर्वप्रथम बनारसीदास की मृत्यु के तत्काल बाद [सन् 1644 ई० में] श्री जगजीवनदास ने सम्पादित किया था। इसमें नाटक 'समय सार', 'ज्ञान बावनी', 'सूक्ति मुक्तावली', 'अर्ध कथानक' आदि छोटी-बड़ी 57 रचनाओं का संकलन है। नाटक 'समयसार' संवत् 1693 वि० में रचा गया ग्रन्थ है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ जैन मनीषी 'कुन्दकुन्दाचार्य' के ग्रन्थ का भाषान्तर है। यह जैन विचारधारावलम्बी सन्त कवियों की परम्परा में बहुत महत्वपूर्ण रचना मानी गई है। इसकी रचना उनके आगरा-निवास के समय हुई थी। 'सूक्ति मुक्तावली', सोमप्रभाचार्य रचित संस्कृत ग्रन्थ 'सिन्दूर प्रकार' का भाषानुवाद है। यह संवत् 1691 वि० की रचना है। 'ज्ञान बावनी' संवत् 1686 वि० की रचना है। इन रचनाओं का वाक्य-विन्यास, छन्द-प्रवाह एवं प्रतिपाद्य को देखकर सुन्दरदास और बनारसीदास के प्रगाढ़ सम्बन्धों की अवधारणा और प्रबल हो जाती है। मान्यता है कि बनारसीदास ने 'कीच सौ कनक जाकै' यह छन्द सुन्दरदास को लिखकर भेजा था। पूरा छन्द इसप्रकार है—

'कीच सौ कनक जाकै नीच सौ नरेस पद
मीच-सी मिताई गरुवाई जाकै गारसी।
जाहर सी जोग जाति कहर सी करामाति
हहर सी हौंस पुद्गल छवि छार सी॥
जाल सौ जग विलास भाल सौ भवन वास
काल सौ कुटंब काज लोक लाज लारसी।
सीठ सौ सुजस जाने बीठ सौ बखत मानै
ऐसी जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी॥'

—नाटक समयसार, बन्धद्वार 19

उक्त छन्द के उत्तर में, विभिन्न समयों पर सुन्दरदास ने उन्हें तीन छन्द लिखकर भेजे थे, ऐसा प्रसिद्ध है। तीसरा छन्द सर्वप्रथम भेजा या सुनाया गया माना जाता है। छन्द ये हैं—

1. 'धूलि जैसौ धन जाकै सूलि से संसार सुख
भूलि जैसौ भाग देखै अन्त की सी यारी है।
× × ×
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी
सुन्दर कहत ताहि वंदना हमारी है॥'

—सवैया०, साधु०, छन्द 15

2. 'कामहीन क्रोध जाकै लोभहीन मोह ताके
मदहीन मच्छर न कोउ न बिकारौ है।
× × ×
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति
ऐसौ कोउ साधु सु तौ राम जी कौ प्यारौ है॥'

—सवैया०, साधु०, छन्द 16

3. 'प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और
चित्त सौ न चन्दन सनेह सौ न सेहरा।
हृदै सौ न आसन सहज सौ न सिंघासन
भाव सी न सौंज और शून्य सौ न गेहरा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सील सौ सनान नाहिं ध्यान सौ न धूप और
ज्ञान सौ न दीपक अज्ञान तम के हरा।
मन सी न माला कोऊ सोहं सौ न जाप और
आतम सौ देव नाहिं देह सौ न देहरा ॥'
—सुं० ग्रं०, सवैया० सांख्य०, 25/21

वैसे भी, काव्य-रचना में, जैसे 'निमात' और ह्रस्वाक्षर छन्द [दे०—'समयसार' नाटक] तथा मात्रिक और वर्णिक सवैया एवं अडिला छन्दों की उठान आदि दोनों रचनाकारों में बहुत कुछ समान-भूमि पर उदित हुए जान पड़ते हैं।

सुन्दरदास और गोस्वामी तुलसीदास : गो० तुलसीदास [सं० 1589-1680 वि०] का जीवन-काल अधिकांशतः काशी में ही बीता है और इनका कविता-रचनाकाल प्रायः संवत् 1620 वि० से 1670-75 वि० तक माना जाता है। इधर, सुन्दरदास [सं० 1653-1746 वि०] का कविता-काल संवत् 1663 वि० से 1743 तक माना जाता है। सुन्दरदास का काशी-निवास का समय संवत् 1663-64 से 1682 वि० तक माना गया है। इस लगभग 18-20 वर्ष के समय में सुन्दरदास ने गोस्वामी तुलसीदास के काशी में अवश्य दर्शन किए होंगे और सत्संग-लाभ भी किया होगा। गोस्वामी जी अपने अन्तिम समय में काशी में ही रहे और उनका संवत् 1680 वि० में ['असी गंग के तीर'] निधन की बात प्रसिद्ध है। तब सुन्दरदास जी 26-27 वर्ष के उत्साही तपस्वी युवक विद्यार्थी थे। अतः यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि साहित्य-रचना का ऐसा व्युत्पन्न साधु-जिज्ञासु, इतने बड़े तपस्वी-यशस्वी महात्मा-भक्त प्रवर तुलसीदास से अवश्य मिला होगा। वैसे भी सुन्दरदास, तुलसीदास के परमधाम जाने के लगभग दो-ढाई वर्ष बाद ही, काशी से फतहपुर [-राजस्थान] लौटे थे। इस सम्बन्ध में यह कहना कि निर्गुण चेतना के युवक सुन्दर, वैष्णव भक्त तुलसी से नहीं मिले होंगे, उचित नहीं लगता। क्योंकि, दादू के 'ब्रह्म सम्प्रदाय' में ज्ञान और भक्ति का अद्भुत समन्वय है। दादू का ज्ञान-विचार, भक्ति विरोधी नहीं है। और फिर, 'निर्गुण भक्ति' भी तो भक्ति ही है। अपनी साहित्य-रचना पद्धति में सुन्दरदास ने अपने प्रतिपाद्य को जिस ढंग से प्रस्तुत किया है और दोहा-चौपाई शैली को जिस ढंग से अपनाया है तथा कवित्त-सवैयों में जैसी उत्कृष्ट सूक्तियों का समायोजन किया है, उस पर गोस्वामी जी की काव्य शैली की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। वैसे भी, सुन्दरदास काशी में 'असीघाट' पर ही रहा करते थे। उधर, तुलसी भी 'असीघाट' पर बहुत वर्षों तक रहे और शरीरान्त भी वहीं हुआ। अतः पूरे विवेक से यह कह पाना सही जान पड़ता है कि युवक सुन्दरदास, तुलसीदास की अन्तिम-यात्रा में सम्मिलित हुए होंगे। क्योंकि, वे तब वहीं उसी क्षेत्र में रहते थे।

सुन्दरदास और आचार्य केशवदास : आचार्य केशवदास [संवत् 1608 वि० हिन्दी नव रत्न, संवत् 1612-1674 वि०] के जीवन-काल में ही किशोर और युवक सुन्दरदास का मन लौकिक-शृंगार की धारा से रूपान्तरित होकर 'राम रस' के सागर में अवगाहन करने लगा होगा। सुन्दर-ग्रन्थावली में केशव कृत 'रसिक प्रिया' पर स्पष्ट टिप्पणी देख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर ऐसा लगता है जैसे सुन्दरदास ने केशव की सभी रचनाओं का पारायण किया हो। निष्कर्ष रूप में सुन्दरदास ने केशव के 'श्रृंगार रस' और उनके रसिकता प्रतिपादक दृष्टिकोण को, सन्त-विचारधारा के प्रतिकूल एवं लोक-संग्रह की दृष्टि से घातक समझ-कर, स्पष्ट शब्दों में उनके श्रृंगारी पक्ष का प्रतिरोध किया है। उस समय केशवदासादि 'रसिक प्रिया' जैसी रचनाओं से जिस वर्ग-समाज को उन्मत्त करना चाह रहे थे, वहीं सुन्दरदास जैसे सन्त, वाणी की सात्विकता से उससे भी बड़े समुदाय को उद्‌बुद्ध करने की प्रेरणा देना चाहते थे। अतः सुन्दरदास को ही नहीं, पूरे सन्त-साहित्य के दृष्टिकोण को समझने केलिए सुन्दरदास के निम्नलिखित दो कुण्डलिया छन्दों के प्रतिपाद्य को समझना आवश्यक है—

'रसिकप्रिया रस मंजरी और सिंगारहि जांनि।
चतुराई करि बहुत बिधि बिषै बनाई आंनि॥
बिषै बनाई आंनि लगत बिषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहै नख शिख नारी॥
ज्यौं रोगी मिष्ठान षाइ रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तौ रसिकप्रिया धारै॥1॥
रसिकप्रिया कै सुनत ही उपजै बहुत विकार।
जो या मांहीं चित्त दे वहै होत नर ष्वार॥
वहै होत नर ष्वार बार तौ कछुव न लागै।
सुनत विषय की बात लहरि विष ही की जागै॥
ज्यौं कोइ ऊंघै हुतौ लही पुनि सेज बिछाई।
सुन्दर ऐसी जांनि सुनत रसिकप्रिया भाई॥2॥'

—सुं० ग्रं०, नारी० 9/5-6

उक्त छन्द में सन्त सुन्दरदास का जो प्रतिपाद्य है, वह मात्र उनकी व्यक्तिगत अवधारणा न होकर, सम्पूर्ण सन्त-साहित्य की मूल चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाला विचार है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अन्यत्र इसप्रकार अपनी राय अभिव्यक्त की है—'सन्त-वाणी का मूलाधार मन का रूपान्तरण अथवा मनोशमन है, जबकि सिद्धान्त-गत 'रस' की समीक्षा मनोविकारों पर आधारित है। जिन राग-रति, क्रोध, घृणा, शोक, हास्यादि भावों की रस-सिद्धान्त में मुख्य भूमिका होती है, सन्त-काव्य में काम अथवा आसक्ति के कारण उन्हें हीन मानकर शमित, रूपान्तरित अथवा उनसे 'अतीत' बने रहने का निर्देश है। क्योंकि, यह प्रबल काम अथवा वासना व्यापक **'राम रस'** अवथा **'आनन्द रस'** के **'रसिया'** बनने में सबसे बड़ी बाधा है। यह **'हीन'** काम अथवा वासना आध्यात्मिक निश्चय को ही नहीं, लौकिक आचरण को भी विचलित करती-रहती है। प्रबल बनी रहने वाली काम-वासना अथवा प्रबल तृष्णा कभी तृप्त नहीं होती। इसलिए श्रृंगार रस का मूल **'काम'** अथवा स्थायी भाव **'रति'**, सिर सौंप कर पिए जाने वाले सन्तों के 'राम रस' के अनुकूल नहीं पड़ते। क्योंकि, राम रस का 'रसिया' तो साक्षात्कार की दशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, अपने आलम्बन का निरन्तर अनुभव करता रहता है। वास्तव में राम-रस का खुँभार तो कभी नहीं उतरता। फलतः जीवन में निरन्तर वैचारिक समरसता का होना उसके लिए स्वाभाविक है। क्योंकि, मन के रूपान्तरित होकर 'उन्मन' होने पर जीवन में सहज-सन्तुलन हो जाता है। उक्त 'काम' को जीतने वाले, जीवन-मार्ग पर सन्तुलित बने रहने वाले साधु, सती [-पतिव्रता] और शूरवीरों को, सन्त कवियों ने पूरा सम्मान दिया गया है। वास्तव में सहज समरसता के अभाव में इन्द्रिय-स्वाद, भक्ति-पथ के पथिकों को विचलित करता हुआ अमूल्य जीवन के लक्ष्य को नष्ट करता है। '[दे०—उलटवाँसी शैली और सन्त कबीर, पृ० 240-2]। अतः सुन्दरदास द्वारा रचित उक्त छन्द, साहित्यिक महत्त्व का ही नहीं, उनकी युग-चेतना का भी परिचायक है।

सुन्दरदास और नवाब अलफ खाँ : सुन्दरदास फतहपुर कस्बे में बहुत दिनों तक रहे थे। फलतः उनके परिचित-परिवेश का बड़ा होना स्वाभाविक ही है। सुन्दरदास का सन्त स्वभाव, मिलनसारिता, योग्यता, विद्या व्यसन, ज्ञान-ध्यान, काव्य-चातुरी एवं छन्द-भाषाधिकार आदि उनके प्रति आकर्षण के सहज कारण बनते रहे होंगे। इसीलिए फतहपुर के तत्कालीन नवाब अलफ खाँ भी धीरे-धीरे सुन्दरदास की प्रभाव-परिधि में आए होंगे। सच तो यह भी है कि वहाँ के नवाबों का भी अपना एक इतिहास रहा है। ये सभी अपने को क्षत्रिय वंश का मानते थे। **'कायमखानी'** नवाब अपने को चौहान क्षत्रिय मानते थे। कहा जाता है कि मोटा राजा नामक चौहान-क्षत्रिय का बेटा करण सिंह, फीरोज़शाह तुग़लक [शासन काल सन् 1351-88 ई० तक] के समय, संवत् 1441 [-सन् 1384 ई०] में मुसलमान हो गया था। उसी का नाम कायम खाँ रखा गया। उसी से 'कायमखानी' वंश चला। यह कायम खाँ हिसार का सूबेदार बनाया गया था। उसके ताज खाँ और फतह खाँ दो बेटे थे। फतह खाँ ने फतहपुर नगर बसाया था। उसी वंश में अलफ खाँ, दौलत खाँ, ताहर खाँ और सरदार खाँ आदि नवाब हुए हैं। दौलत खाँ ने फतहपुर नगर में क़िले का निर्माण कराया था। सुन्दरदास फतहपुर में नवाब अलफ खाँ के समय में ही आ गए थे। नवाब अलफ खाँ संवत् 1693 वि० में 'तलबाड़े' के युद्ध में मारे गए थे। इन अलफ खाँ से ही सुन्दरदास की अच्छी संगति थी। इसका एक कारण यह भी था कि अलफ खाँ शूरवर होने के साथ ही अच्छे कवि भी थे। इनका काव्य-उपनाम 'जान कवि' था। इनके रचे गए ग्रन्थों में चार—1. रत्नावली, 2. सतवन्ती सत, 3. मदन विनोद तथा 4. कवि वल्लभ, प्रसिद्ध हैं। ये रचनाएँ संवत् 1670-1704 वि० के बीच रची गई थीं। सुन्दर का उक्त कालावधि का उत्तरार्ध फतहपुर में ही, रचना-कर्म करते हुए व्यतीत हुआ था। रचनाधर्मी सगोत्रता एवं साधु स्वभाव के कारण ही नवाब अलफ खाँ, सुन्दरदास का भक्त हो गया था। सुन्दरदास का भी उसके एवं उसके उत्तराधिकारियों के प्रति सहज स्नेह था। बाद में दौलत खाँ भी सुन्दरदास का स्नेहपात्र हुआ। राघवदास ने 'भक्तमाल' में, सुन्दरदास द्वारा दौलत खाँ को चमत्कार दिखाने की घटना का वर्णन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन एवं पश्चात्वर्ती अनुयायी और सुन्दरदास

दादू-शिष्य-परम्परा में साहित्य-रचना, शास्त्रज्ञता, साधना-विचार एवं सिद्धान्त-प्रतिपादन आदि की दृष्टि से सुन्दरदास सबसे अग्रणी हैं । दादू पन्थी एक साधु ने तो यहाँ तक लिखा है कि—

'दादू दीनदयाल के चेले दोय पचास ।
केई उडगण केई इन्दु हैं, दिनकर सुन्दरदास ।।'

वैसे भी, सुन्दरदास के जीवन-परिचय, घटनाओं और साहित्य-साधना में उनके योगदान को लिखित-अलिखित आदि अनेक स्रोतों से जाना जा सकता है। आज भी जो स्रोत हमारे सामने उपलब्ध हैं उनमें—जनगोपाल कृत 'दादू जन्म लीला परची' [-परिचयी] राघवदास कृत 'भक्तमाल' एवं माधवदास कृत 'दादू जीवन चरित्र' का तो उल्लेख ऊपर हो ही चुका है। इनके अतिरिक्त चत्रदास कृत 'प्रणाली छन्द', 'महन्त लीला प्रदीप', मोहनदास आदि सन्त-महात्माओं के पत्र, फतहपुर के पत्रे एवं लेख, मोर तथा साँगानेर के शिलालेख, फखरुत्तवारीख़, फतहपुर का इतिहास एवं सुन्दरदास के ग्रन्थों के अन्तः-प्रमाण ऐसी जानकारी केलिए महत्त्व पूर्ण स्रोत हैं।

साँगानेर का शिलालेख, सुन्दरदास की समाधि छतरी पर लगा हुआ है। वैसे भी साँगानेर सुन्दर के मित्र रज्जब की साधना-स्थली थी। यहाँ संवत् 1746 वि० में सुन्दर उनसे मिलने आए थे। किन्तु, रज्जब के देह-त्याग की बात सुनकर वे शोक से अवाक् होकर अन्तर्मुखी चेतना में डूब गए थे। कभी-कभी होश में आने पर तब वे कुछ बानी लिख दिया करते थे। अन्ततः उसी वर्ष, वहीं कार्तिक शुक्ला अष्टमी, दिन बृहस्पतिवार को तृतीय प्रहर के समय सुन्दर ब्रह्मलीन हो गए। वहाँ उनका निधन-समाचार सुनकर साँगानेर का जन-समाज उमड़ पड़ा था। तब बडी श्रद्धा से उनकी 'वैकुण्ठी' [=अर्थी] सजाई गई थी और नगर के उत्तर की ओर उनका दाह-संस्कार उसी स्थान पर किया गया, जहाँ उनके प्रिय शिष्य-मित्र नारायणदास जी का संवत् 1738 वि० में संस्कार किया गया था। वहीं इन दोनों की समाधि पर निम्नलिखित पंक्तियों वाला शिलालेख जड़ा हुआ है—

'संबत सत्रा सै छीयाला। कार्तिक सुदि अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरसपतिवार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार।'
'समंत सत्रा सै अड़तीस का पौषवार सनीवार।
नारायण नरहर मीलै करके ब्रह्म विचार।।'

इसीप्रकार मोर गाँव का उक्त शिलालेख है। वैसे, सुन्दरदास ने अपने देह-त्याग को मृत्यु-महोत्सव के रूप में उल्लिखित किया है—

'सुन्दर संसै को नहीं, बड़ौ महोच्छव येह।
आतम परमातम मिले, रहौ कि बिनसौ देह ।।6।।'

—अन्त समय की साखी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राघवदास ने भक्तमाल में सुन्दरदास की विद्वता एवं वाणी की अर्थ-गंभीरता का आदरपूर्वक उल्लेख किया है—

'दादू जी के पंथ में सुन्दर सुषदाई सन्त
षोजत न आवै अन्त ग्यानी गलतांन है।
× × ×
बैसि कुल जनम विचित्र विग बांणी जाकी
राघो कहै ग्रन्थन के अर्थन कौ भांन है ॥'—छन्द 420
'राघो घोरे रचि लीये दबते नवाव केर
सुन्दर ग्यांनी कौ पार नहीं पायौ है।'—छन्द 422
'बुधि बिबेक चातुरी ग्यांन गुर गमि गरवाई।
क्षमा सील सत्यता सुहृद सन्तन सुखदाई ॥
गाहा गीत कबित छन्द पिंगुल प्रवांनैं।
सुन्दर सौं सब सुगम, काव्य कोइ कला न छांनै ॥'
—छन्द 425
'नागन मैं श्री सेस जी बागन सारद मांनियौ,
दादू जी कै सिषन मैं यौं सुन्दर बूसर जांनियौं ॥'
—छन्द 426

सन्तदास जी के शिष्य एवं सुन्दरदास जी के स्नेही शिष्य बालकराम जी ने सुन्दर की प्रशंसा में यह छप्पय रचा है—

'सतगुरु सुन्दरदास जगत में पर उपगारी।
धन्नि धन्नि अवतार धन्नि सब कला तुम्हारी ॥
सदा येक रस रहै दुष द्वन्दर को नाहीं।
उत्तम गुन सो आहि सकल दीसै मन मांहीं ॥
सांषि जोग अरु भक्ति पुनि सबद ब्रह्म संजुक्ति है।
कहि बालक राम बबेक निधि देषै जीवन मुक्ति है ॥'

इसीप्रकार महन्त सन्तोषदास के शिष्य चतुरदास [-चत्रदास] ने सुन्दरदास जी की प्रशंसा में कुछ छन्द रचे हैं। वास्तव में इन चतुरदास जी ने ही सुन्दरदास की रचना की कई प्रकार से सुरक्षा की है। एक तो यह कि इन्होंने अनेक अनुपलब्ध रचनाओं को पुनः जुटाया है। दूसरे अनेक खोए हुए पत्रों को खोज करके पुनः उपलब्ध कराया है। इनकी राघवदास कृत 'भक्त माल' के टीकाकारों में महत्त्वपूर्ण गिनती है। जहाँ-जहाँ भी सुन्दर के सम्बन्ध में भक्त माल में छन्द आए हैं, वहीं-वहीं इन्होंने अपने आस्था-विश्वास को, छन्दबद्ध करके टीका रूप में प्रस्तुत किया है। राघवदास कृत छन्द—'दादूजी के सिषन में [यौं-] सुन्दर बूसर जांनिये।' के बाद टीका करते हुए चतुरदास ने दो पंक्तियाँ दी हैं—

'जगत भगत बिष्यात पै 'चातुरजन' अैसैं कही।
सब कवियन सिरताज है, दादू सिष सुन्दर मही ॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगलदास चारण कृत **'भक्त नाम स्मरणी'** [रचना सं० 1972 वि० की प्रति] में सुन्दरदास का उल्लेख इसप्रकार है—

'सजन फरीदा बषना सैंना रज्जब सुन्दर दादू।
नानग जन मलूक कर्मानन्द सबै राम रस स्वादू ॥'

साहित्य-इतिहास लेखक : समीक्षकों की दृष्टि में सुन्दरदास

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध एवं बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही सुन्दरदास की रचनाओं के साहित्यिक गुणों की ओर इतिहास-लेखकों, साहित्य-समीक्षकों की निगाह जाने लगी थी। इसी के परिणाम स्वरूप इनकी वाणी अनेक संकलनों केलिए चुनी जाने लगी। यही नहीं, इनकी सम्पूर्ण वाणी में से चुनाव करके भी अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं। इस बात की चर्चा अन्यत्र की गई है। यहाँ संक्षेप में कुछ प्रमुख विद्वान्-समीक्षकों, साहित्य-इतिहास लेखकों, संगीत पारखियों एवं विदेशी पादरियों की राय के कुछ अंश प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनके द्वारा रचना से प्रादुर्भूत सुन्दर के समग्र व्यक्तित्व एवं उनकी प्रभाव-क्षमता का अनुमान लगाया जा सके। पहले वास्तव में व्यक्ति-रचना की स्वीकृति तुलनात्मक ढंग से पद्यात्मक ही हुआ करती थी। जैसाकि बताया जा चुका है कि मंगलदास चारण कृत 'भक्त नाम स्मरणी', उन्नत विचारधारा के लोगों की श्रेणी में ही सुन्दरदास को आदरपूर्वक स्मरण करती है। साहित्यिक दृष्टि से जिन समीक्षक विद्वानों ने सुन्दरदास की वाणी को निरखा-परखा है, उनमें से कुछ के नाम एवं उनके समीक्ष्य-वक्तव्य इसप्रकार हैं—

मिश्र बन्धु : सन् 1913 ई० में मिश्र बन्धुओं द्वारा तैयार किया गया तीन खण्डों का कविवृत्त संग्रह **'मिश्र बन्धु विनोद'** के भाग 1-2 में कई महत्त्वपूर्ण विशेषणों के साथ सुन्दरदास के कृतित्व पर टिप्पणी की गई है। **'विनोद'** के अनुसार सुन्दरदास जी 'उत्कृष्ट कवि', दादू-विचारधारा के अनुयायिओं में 'सर्वोत्तम' और 'सुकवि' हैं। भाग-2 में इन्हें 'हिन्दी के पूर्वालंकृत भाग को पुनीत करने वाला एवं दादू-पंथ को उन्नत करने वाला बताया गया है। मिश्र बन्धुओं की मान्यता है कि सुन्दरदास भक्त कवियों में प्रमुख थे, जिन्होंने भाषा को अलंकृत करने पर विशेष बल दिया है।

शिव सिंह : कवि-रचनाकारों का इतिहास-वृत्त देने वालों में, प्रथम प्रयास समझा जाने वाला शिवसिंह कृत **'सरोज'** [प्रका० वर्ष : सन् 1883 ई० : आ० रामचन्द्र शुक्ल; सन् 1877 ई० : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय; सन् 1878 ई० : डा० माताप्रसाद गुप्त] सुन्दरदास के सम्बन्ध में, प्रारम्भिक जानकारी देते हुए मात्र इतना कहता है कि 'सुन्दर कवि, दादू के शिष्य मेवाड़ देश के हैं। 'सुन्दर सांख्य' नामक इनका बनाया हुआ ग्रंथ भी सुना जाता है।'

रामचन्द्र शुक्ल : आचार्य शुक्ल का अपने 'इतिहास' [प्रका० वर्ष : सन् 1927 ई०] में सुन्दर के प्रति, एक ओर तो सन्त-साहित्य-धारा के अनुरूप सुविचारित महत्त्वपूर्ण पक्ष है तथा दूसरी ओर अपनी 'दृष्टि' के आग्रह वाला अभिमत है। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निर्गुण पंथियों में ये [-सुन्दरदास] ही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्यकला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। अतः इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। भाषा भी काव्य की मँजी हुई ब्रजभाषा है। भक्ति और ज्ञान-चर्चा के अतिरिक्त नीति और देशाचार आदि पर भी इन्होंने बड़े सुन्दर पद्य कहे हैं।...यों तो छोटे-मोटे इनके अनेक ग्रंथ हैं, पर **'सुन्दर विलास'** ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जिसमें कवित्त सवैये ही अधिक हैं। इन कवित्त सवैयों में यमक, अनुप्रास और अर्थालंकार आदि की योजना बराबर मिलती है। इनकी रचना, काव्य-पद्धति के अनुसार होने के कारण और संतों की रचना से भिन्न प्रकार की दिखाई पड़ती है। सन्त तो ये थे ही, पर कवि भी थे। इससे समाज की रीति-नीति और व्यवहार आदि पर भी पूरी दृष्टि रखते थे।...व्यर्थ की तुकबन्दी और ऊटपटाँग बानी इनको रुचिकर न थी।... सुशिक्षा द्वारा विस्तृत दृष्टि प्राप्त होने से इन्होंने, और निर्गुणवादियों के समान लोकधर्म की उपेक्षा नहीं की है। पतिव्रत का पालन करने वाली स्त्रियों, रणक्षेत्र में कठिन कर्तव्य-पालन करने वाले शूरवीरों आदि के प्रति इनके विशाल हृदय में सम्मान केलिए पूरी जगह थी।...इसीप्रकार इन्होंने जो सृष्टि तत्त्व आदि विषय कहे हैं, वे भी औरों के समान मनमाने और ऊटपटांग नहीं हैं, शास्त्र के अनुकूल हैं।' [—हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्क० वर्ष सन् 1942, पृ० 87-89]

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : आपने सुन्दरदास के सम्बन्ध में लिखा है—'दादू के कुल मिलाकर 108 चेले थे, जिनमें से सुन्दरदास सबसे प्रसिद्ध हुआ। प्रसिद्ध सुन्दरदास छोटा था। वह छः ही वर्ष की अवस्था में दादू की शरण में भेज दिया गया था। किन्तु उनकी देखभाल में वह एक ही वर्ष रह सका, क्योंकि एक साल बीतते-बीतते दादूदयाल की मृत्यु हो गई। इसीलिए सुन्दरदास का गुरु भाई जगजीवनदास उसे काशी ले आया, जहाँ उसने अठारह वर्ष तक व्याकरण, दर्शन और धर्मशास्त्र की शिक्षा पाई। निर्गुण सन्तों में वही एक व्यक्ति है, जिसे पोथी-पत्रों की शिक्षा मिली थी।...छोटे सुन्दरदास ने 'ज्ञान समुद्र', 'सुन्दर विलास' ये दो प्रमुख ग्रन्थ लिखे। इनकी साखियों और पदों की भी संख्या काफी है। [—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, संस्क० वर्ष सन् 1934, पृ० 131-32]

रामकुमार वर्मा : सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्य थे। ये बहुज्ञ और बहुश्रुत थे। हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत और फारसी पर समान अधिकार रखते थे। संस्कृत के पंडित होते हुए भी ये हिन्दी में कविता लिखते थे, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना ही था।...ये शृंगार रस के बहुत विरुद्ध थे और उसे छोड़ अन्य रसों के वर्णन में इनकी प्रतिभा खूब प्रस्फुटित हुई है। इनके पर्यटन ने इनके अनुभव को और बढ़ा दिया था और इन्होंने सभी स्थानों के विषय में रचनाएँ की हैं। ...सुन्दरदास दादूदयाल के आयु में सबसे छोटे शिष्य थे, पर प्रसिद्धि में सबसे बड़े। [—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, संस्क० वर्ष सन् 1938, पृ० 279]

गणेशप्रसाद द्विवेदी : 'संत कवियों में यही ऐसे थे, जिनकी शिक्षा और प्रतिभा दोनों ही विलक्षण थीं। इसके सिवा शास्त्रोक्त काव्य कला में भी यही एक प्रवीण थे। अन्य संत कवियों की भाँति इन्होंने केवल भजन के योग्य शब्द और पद ही नहीं कहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च कोटि के प्रथम श्रेणी के कवियों के समकक्ष इन्होंने अनेक कवित्त सवैये भी रचे हैं। भाषा भी इनकी वही सधुक्कड़ी बोली नहीं, बल्कि सुन्दर मँजी हुई सुव्यवस्थित पर ईषत् राजस्थानी रंजित ब्रजभाषा है।'

[—हिन्दी सन्त काव्य संग्रह, प्र० वर्ष सन् 1939, पृ० 167]

परशुराम चतुर्वेदी : 'संत सुन्दरदास दादूदयाल के योग्यतम शिष्यों में थे और इनकी प्रायः सभी रचनाएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। दादूपंथ के प्रसिद्ध अनुयायियों में सबसे अधिक जानकारी अभी तक इन सुन्दरदास के ही सम्बन्ध में प्राप्त हो सकी है।··· सुन्दरदास ने कुल छोटे-बड़े मिलाकर 42 ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें से सभी 'सुन्दर ग्रंथावली' के अन्तर्गत बड़े अच्छे ढंग से सम्पादित किए जा चुके हैं।'

[—उत्तरी भारत की संत-परम्परा, प्र० वर्ष सन् 1951, पृ० 427-31]

वियोगी हरि : 'भाषा पर इस संत महाकवि का पूरा अधिकार था। अच्छी परिष्कृत साधु भाषा है। मुख्यतः ब्रजभाषा है, पर खड़ी हिन्दी और राजस्थानी का भी स्वभावतः उसमें मेल हुआ है। मुहावरों और लोकोक्तियों का स्थान-स्थान पर बहुत उपयुक्त प्रयोग किया गया है। भारत की अनेक प्रान्तीय भाषाओं के कितने ही शब्द इनके काव्यों में मिलते हैं। फारसी के भी अनेक शब्दों का मुक्त प्रयोग हुआ है।'

[—संत सुधा सार, प्र० वर्ष सन् 1953, पृ० 340]

त्रिलोकी नारायण दीक्षित : 'संसार से विरक्ति, ब्रह्म से सच्ची अनुरक्ति तथा मानव समाज से सहानुभूति के भावों ने उन्हें [-सुन्दरदास को] आध्यात्मिकता के क्षेत्र में अग्रसर किया। सुन्दरदास अपनी साधना में दृढ़ थे। अतः उनके लक्ष्य की पूर्ति हुई और वे आध्यात्मिक क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हुए। समाज से बहिष्कृत एवं चिर उपेक्षित अन्त्यजों के उद्धार केलिए भी सुन्दरदास ने भगीरथ प्रयत्न किए। हिन्दू-मुसलमान, कुलीन-अन्त्यज, उच्च-नीच सभी उनके जीवन-दर्शन एवं उच्चादर्शों से प्रभावित हुए। सुन्दरदास ने उपदेशात्मक वाणी को काव्य का स्वरूप प्रदान किया है।

[—सुन्दर दर्शन, प्र० वर्ष सन् 1953, प्राक्कथन]

हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'असल में सुन्दरदास संतों में अपने बाह्य उपकरणों के कारण विशेष स्थान के अधिकारी हो सके हैं। फिर भी इस विषय में तो कोई सन्देह नहीं कि शास्त्रीय ढंग के वे एकमात्र निर्गुणिया कवि हैं। सुन्दरदास का अनुभव विस्तृत था। देशान्तर घूमा हुआ था। जब कभी वेदान्त का तत्त्व ज्ञान छोड़कर वे अन्य विषयों पर लिखते थे, तब निःसन्देह रचना उत्तम कोटि की होती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि सुन्दरदास एकमात्र ऐसे निर्गुणिया साधक थे, जिन्होंने सुशिक्षित होने के कारण लोक-धर्म की उपेक्षा नहीं की है। लेकिन यह भ्रम है। कबीर दादू आदि सन्तों ने पतिव्रता के अंगों में, पतिव्रता धर्म का खूब बखान किया है।'

[—हिन्दी साहित्य, प्र० वर्ष सन् 1969, पृ० 91]

क्षितिमोहन सेन : मध्यकालीन धर्म-साधना के जिज्ञासु शोधार्थी एवं शान्ति निकेतन के मनीषी शिक्षक क्षितिमोहन सेन ने दादू के 'ब्रह्म सम्प्रदाय' के सम्बन्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करते हुए सुन्दरदास के विषय में लिखा है--

'सुन्दरदास, हू वाज ए वेदान्तिक, बीअर्स टेस्टीमनी टु दि यूनिवर्सैलिटी आफ दादूज़ पाथ ।'

[—मैडीवल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया, वर्ष सन् 1929, परि० 1, पृ० 189]

रवीन्द्रनाथ टैगोर : 'दुर्भाग्यवश हिन्दी भाषा पर मेरा अधिकार नहीं है। किन्तु बन्धुवर श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन की सहायता से हिन्दी-भाषा में लिखित सन्त-साहित्य के प्रति मेरे हृदय में गम्भीर श्रद्धा एवं अनुराग उत्पन्न हो गया है।···कोई भी भाषा अपने साहित्य की दृष्टि से ही अपने प्रति श्रद्धा आकर्षित कर सकती है। इसप्रकार का विशेष महत्त्व हिन्दी-भाषा के साहित्य में यथेष्ट रूप में पाया जाता है। मध्य युग के साधक कवियों ने, हिन्दी-भाषा में जिस भावधारा का ऐश्वर्य विस्तार किया है, उसमें असाधारण विशेषता पाई जाती है। वह विशेषता यही है कि उनकी रचनाओं में उच्च कोटि के साधक एवं कवियों का एकत्र सम्मिश्रण हुआ है। इसप्रकार का सम्मलिन दुर्लभ है। ···स्वच्छ जल का स्रोत जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से अपने आन्तरिक वेग के साथ स्वतः ही उत्सारित होता रहता है, उसीप्रकार इन कवियों की भावधारा अपने शुद्ध आनन्द की प्रेरणा से स्वतः प्रवाहित हुई है। इसप्रकार के साधक कवियों में एकमात्र सुन्दरदास ही शास्त्रज्ञ पंडित थे। वे केवल कवि ही नहीं थे, बल्कि एक अनुसन्धानकर्ता भी थे।'

[—सुन्दर ग्रन्थावली, प्र० वर्ष सन् 1936, प्राक्कथन]

पुरोहित हरिनारायण शर्मा : 'कविवर महात्मा स्वामी श्री सुन्दरदास जी की ख्याति भाषा संसार में, कवि सम्राट् श्री तुलसीदास जी, सूरदास जी, योगिश्रेष्ठ श्री गोरखनाथ जी, अध्यात्म रहस्य पारंगत श्री कबीर जी, भाषा विज्ञान विशारद कवि श्री केशवदास जी तथा तत्वज्ञानामृत प्रवाहक स्वामी श्री दादूदयाल जी के अनन्तर, सम्मान्य और फैली हुई है।···काव्य-रचना बाहुल्य में दादूदयाल के शिष्यों में ही नहीं, भाषा वाङ्मय के सिद्धहस्त रचनाकारों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी अपनी निराली और सुन्दर कविता शैली में, सुन्दरदास जी अनेक बातों में निराले, एकाकी और अद्वितीय हैं। अपनी काव्य गुण-गरिमा और ज्ञान गम्भीरतादि के कारण सुन्दरदास जी, दादूदयाल के सबसे पिछले शिष्य होने पर भी सबसे प्रथम गिने जाते हैं।'

[—सुन्दर ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, प्र० वर्ष सन् 1936, भूमिका]

पादरी एडविन ग्रीव्स : 'सुन्दरदास रियासत जयपुर में जन्मे थे। उनके लिए ऐसा कहा जाता है कि वे दादू के एक शिष्य के अवतार थे। यह प्रसिद्ध है कि वे बहुत-सी भाषाएँ जानते थे। वे अपने काव्य को अलंकारादि से सजाने को हेय समझते थे, जिसके करने में अन्य कवि प्रायः जुटे रहते हैं।'

[—ए स्कैच आफ हिन्दी लिटरेचर, पृ० 66]

पादरी एफ० ई० केई साहब : 'दादू के शिष्यों में सबसे प्रधान कवि सुन्दरदास [छोटा] था, जिसे 'बूसर' भी कहते हैं। दादू पंथी उसे हिन्दी के सर्वोत्तम कवियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं, जो हिन्दी-साहित्य में सर्वोच्च नामों में प्रतिष्ठा पाने योग्य है। उसके अत्यन्त प्रशंसित ग्रंथों में उसके 'सवैया' और 'ज्ञान समुद्र' हैं।'

[—हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर,]

पुरोहित सूर्यकिरण : 'सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्यों में प्रधान शिष्य हुए हैं। ···निर्गुण पंथी सन्तों में यही महात्मा ऐसे हैं, जिनको उच्च कोटि की शिक्षा मिली और जो काव्य कला-रीति से पूर्णतः परिचित थे। इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। इनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा है। भक्ति, ज्ञान-विवेचन, नीति, देशाचार आदि विषयों पर इन्होंने उत्तम काव्य रचना की है। सन्त होते हुए भी ये उत्कृष्ट कवि थे।'

[—राजस्थान की हिन्दी सेवा, पृ० 9]

सुन्दर-रचना का विधायक पक्ष

सन्त सुन्दरदास की सभी रचनाओं में उनका रचना-काल नहीं मिलता। सच तो यह है कि केवल दो रचनाओं—'पंचेन्द्रिय चरित्र' [रचना-काल सं० 1691 वि०] एवं 'ज्ञान समुद्र' [रचना-काल सं० 1710 वि०] में ही रचना-काल मिलता है। ज्ञान-समुद्र के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह रचना काशी में, किसी कथावाचक से कथा सुनकर उसी ज्ञान-अनुभव को पद्य में बाँधने के रूप में, रची गई है। परन्तु, इस मान्यता का कोई प्रमाण नहीं है। सुन्दरदास संवत् 1682 वि० में ही कभी काशी छोड़कर फतहपुर चले आए थे। वैसे भी 'ज्ञान समुद्र' के रचना-काल के सम्बन्ध में दी गई अन्तःसाक्ष्य की ये पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं—

'संवत सत्रह सै गये, वर्ष दशोत्तर और।
भाद्रव सुदि एकादशी, गुरुवासर सिरमौर ॥65॥
ता दिन संपूरण भयौ, ज्ञान समुद्र सु ग्रन्थ।
सुन्दर औगाहन करै, लहै मुक्ति कौ पन्थ ॥66॥'

ज्ञान-समुद्र जैसी प्रौढ़ रचना को देखकर ऐसा नहीं लगता कि यह 29-30 वर्ष के नवयुवक की रचना है। पुस्तक में उल्लिखित वर्ष संवत् के आधार पर उस समय इनका 57 वर्ष की प्रोढ़ावस्था में होना स्वाभाविक जान पड़ता है। 'ज्ञान समुद्र' जैसी सुसम्बद्ध रचना वह भी सन्त-काव्यधारा के भाषा-काव्यों में दूसरी नहीं दिखाई देती। इसका महत्त्व इससे भी ध्वनित होता है कि स्वामी सुन्दरदास ने अपनी रचनाओं के क्रम में इसे प्रथम स्थान दिया है। यह अलग बात है कि सन्त सुन्दरदास को रचनाकार की दृष्टि से, कहीं अधिक यश 'सवैया' [—सुन्दर विलास] ग्रन्थ से मिला है। वास्तव में पद, साखी और सवैया छन्द, रचनाकार की निरन्तर लेखन-प्रक्रिया में अभिव्यक्त होते रहे हैं। इसीलिए उनका सुनिश्चित रचनाकाल दे पाना सम्भव नहीं है।

वाणी-रचना की दृष्टि से सुन्दरदास के जीवन की कालावधि बहुत लम्बी रही है। यह समय संवत् 1664 वि० से संवत् 1742 अथवा संवत् 1746 वि० [-मृत्यु वर्ष] तक माना जा सकता है। बाल योगीके समान ही ये बाल कवि भी थे। अपनी ग्यारह वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अवस्था में ही इन्होंने अपने प्रति की गई सन्त गरीबदास की उपहास-वृत्ति का जवाब, पद्य रूप में ही दिया था। इसलिए इनकी समग्र रचना में सभी कुछ श्रेष्ठ अथवा उच्च कोटि का हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रारम्भिक जीवन के कुछ कवित्त-सवैया और साखियाँ प्रारम्भिक मानसिकता की ही रचनाएँ हैं, उसीप्रकार जैसे प्रौढ़ावस्था के समय 'देशाटन' की एवं अन्तिम 4-6 वर्षों की रचनाएँ तथा 'बाईजी की भेंट के सवैये' अथवा अनेक विषयों पर पुनरावृत्ति या द्विरावृत्ति की रचनाएँ, परिष्कृत कविता-रचना के नमूने नहीं कहे जा सकते। यही नहीं, अभिधा काव्य के अन्तर्गत 'बन्ध' रचनाएँ अथवा प्रहेलिका आदि रचनाओं में इनकी व्युत्पन्नता एवं कला कुशलता तो सिद्ध हो सकती है, किन्तु उन्हें अच्छी रचना के उदाहरण नहीं कहा जा सकता।

सुन्दरदास ने प्रभूत काव्य रचना की है। वे अपनी ग्रन्थ-रचना के सम्बन्ध में निरन्तर जागरूक बने रहे हैं। इसीलिए शायद ग्रन्थ-संख्या एवं उनके क्रम के सम्बन्ध में भी विद्वानों में अधिक मतभेद नहीं है। क्योंकि, सुन्दरदास ने स्वयं ही अपने जीवन-काल में अपने ग्रन्थों की पाण्डुलिपि तैयार करायी थी। फतहपुर में ही इनके एक शिष्य ने संवत् 1742 वि० में इनके ग्रंथों का पुनर्लेखन प्रारम्भ किया था, जो लगभग दो वर्षों में पूरा हो गया था। उसके बाद ये संवत् 1746 वि०में साँगानेर चले गए थे। वहीं, उसी वर्ष ये परम गति को प्राप्त हो गए थे। लेकिन, यह निश्चित है कि सुन्दरदास अनेक सत्संगों में अपनी रचनाएँ शिष्यों, सहृदय साधुओं और काव्य-रसिकों को निरन्तर सुनाते रहे होंगे और उनकी प्रतिलिपि भी कराते रहे होंगे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। उनके जीवन की घटनाएँ, पत्रादि में हस्तलेख आदि अनेक साधुओं से मिले हैं। रज्जब जी के शिष्य मोहन दफ्तरी ने तो अपनी रचना में यह बात स्वीकार भी की है। पुरोहित हरिनारायण जी को संवत् 1715 वि० के सुन्दरदास जी के हस्तलेख मिले थे और संवत् 1720 वि० का हस्त लेख महन्त गंगादास जी के पास सुरक्षित रहा था। सुन्दरदास के रचना-ग्रन्थों का नामोल्लेख, दादू-स्कूल के साथी-सहयोगी मित्र-शिष्यों ने अनेक स्थानों पर किया है। ये उल्लेख इतिहास काल-क्रम की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। सुन्दरदास ने कौन-कौन से और कितने ग्रन्थों की रचना की है तथा उनमें से कितने उपलब्ध हैं और कितनों की मात्र सूचना मिलती है, आदि जिज्ञासा-प्रश्नों के समाधान में, उक्त प्रकार के उल्लेखों के आधार पर खोजने पर, सहायता मिल सकती है। इस सम्बन्ध में राघवदास कृत 'भक्त माल' के प्रथम टीकाकार चत्रदास [—चतुरदास] का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने पद्यबद्ध टीका-छन्दों में सुन्दरदास के सभी ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है। भक्तमाल में दिए गए कुछ ग्रन्थ-नामों के बाद टीकाकार चत्रदास ने सवैया-छन्द में सुन्दर कृत ग्रन्थों की नामावली इसप्रकार दी है—

स्वामी श्री सुन्दरजी कणी यह रसाल करी,
भगत जगत बांचै सुणैं सब प्रीति सौं।
साषी अरु सबद सबइया, सरबांग जोग,
ग्यान कौ समुद्र पंचेन्द्रियां उजीति सौं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुषहू समाधि स्वप्न बोध बेद को विचार,
उकत अनूप अदभुत ग्रंथ नीति सौं।
पञ्च प्रभाव गुरु संप्रदाय उतपत्ति नीसांनी,
गुरु की महिमा बावनी सु रीति सौं ॥548॥
षटपद भरम बिध्वंसन गुरु कृपा,
सतगुरु दया गुरु म्हैमां सतोतर आंनिये।
रामजी नामाष्टक आत्मा अचल,
भाषा पंजाबी सतोत्र ब्रह्म पीर मुरीद जांनिये॥
अष्टक अजब ष्याल ग्यान झूलना है आठ,
सहैजानंद ग्रह वैराग बोध परमांनिये।
हरि बोल तरक बिबेक चितावनि त्रिय,
पवगम अडिल मडिल सुभ गांनिये ॥549॥
बारामासौ आयु भेद आत्मा विचार येही,
त्रिबिधि अन्तःकरण भेद उर धारिये।
बरवै पूरबी भाषा चौबोला गूढा अरथ,
छप्पै छंद गण अरु अगण बिचारिये॥
नव निधि अष्ट सिधि सात बारहू के नाम,
बारामासा ही के बार रासि सो उचारिये।
छत्र बंध कमल मध्याक्षरा कंकणबंध चौकी-
बंध जीन पोस बंध ऊ संभारिये ॥550॥
चौपड़ि विरक्ष बंध दोहा अद्य अक्षरी सु,
आदि अन्त अक्षरी गोमूत्रिका जु कीये हैं।
अन्तर बहिरलापिका निमात हारबंध,
जुगल निगड़ बंध नागबंध भी ये हैं॥
सिंहा अवलोकनी स प्रतिलोम अनुलोम,
दीरघ अक्षर पञ्च विधानी सुनी ये हैं।
गजल सलोक और बिबिध प्रकार भेद,
पंडित कवीसुरनि मानि सुष लीये हैं ॥551॥

उक्त ग्रन्थों की गणना करने पर ये 42 ठहरते हैं। इनमें 'पंच विधानी' और 'गजल' ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुए। एक और रचना 'अलंकार भूषण' उनके नाम से प्रसिद्ध है, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुई। 'बिबिध प्रकार' कहने से 'देशाटन के सवैये' और 'बाईजी की स्तुति के सवैये' माने जा सकते हैं। किन्तु, यह संख्या सुन्दर-वाणी के सभी शीर्षकों का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाई है। प्रस्तुत संग्रह-सम्पादन में यह ग्रन्थ-रचना-संख्या क्रमशः 48 सुनिश्चित हुई है। 'अलंकार भूषण', 'गजल' और 'पंच विधानी' इनके अतिरिक्त हैं। यहाँ 'बिबिध प्रकार' अथवा 'फुटकर' रचनाओं को भी संख्या-बद्ध किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर-वाणी का संकलन : प्रकाशित संग्रहों में

सन्त-वाणी संग्रह की प्रवृत्ति सोलहवी-सत्रहवीं शताब्दी से ही सम्यक् रूप में देखने को मिलती है। जिन संग्रहों में 'संत वाणी' के रूप में, सन्त-रचनाकारों की वाणी का संग्रह हुआ है, उनमें नामदेव, सदना, पीपा, धना, जैदेउ, कबीर, रैदास, नानक, हरिदास निरंजनी, दादूदयाल, रज्जब, सुन्दर, मलूक, गुरु अंगद, अमरदास, अर्जुन देव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस सन्दर्भ में गुरु अर्जुनदेव द्वारा संकलित-सम्पादित 'गुरुग्रन्थ साहिब' अथवा 'आदि ग्रन्थ' का नाम उल्लेखनीय है। वैसे, रज्जब अली द्वारा सम्पादित दादूदयाल की वाणी 'अंगबंधू' एवं 'सबंगी' इसी दिशा में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रयत्न कहे जा सकते हैं। 'सबंगी' में दादू-स्कूल के, दादू के अतिरिक्त बषना, गरीबदास, जनगोपाल, रज्जब आदि की बानियाँ संकलित हैं। किन्तु, न जाने किन कारणों से सुन्दर की वाणी सर्वंगी में नहीं है। इधर, उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में आकर ऐसे अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं, जिनमें सुन्दरदास की वाणी को विशेष महत्त्व मिला है। उनमें से कुछ के नाम इसप्रकार हैं—

1. संगीत राग कल्पद्रुम : संगीताचार्य 'राग सागर' श्री हरिव्यास देव जी द्वारा राग-रागिनियों के निर्देशन के साथ तैयार किया गया यह महत्त्वपूर्ण संग्रह है, जो सन् 1849 ई० में कलकत्ते से छपा था। इसमें सुन्दरदास के अनेक छन्द एवं समूचा 'सवैया ग्रन्थ' विभिन्न राग-रागिनियों के निर्देश के साथ छपा था। इस संग्रह से यह भलीप्रकार स्पष्ट होता है कि सुन्दर-वाणी संगीत केलिए उपयोगी मानी जाती थी। इसीलिए हरिव्यास देवजी जैसे संगीताचार्य ने अपने संकलन में सुन्दर-वाणी को, प्रमाण रूप में संकलित करके प्रकाशित किया था।

शिवसिंह 'सरोज' : सन् 1878 [अथवा सन् 1883] में, नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित 'सरोज' में उदाहरण स्वरूप सुन्दरदास के 2 छन्द संग्रहीत किए गए हैं।

मिश्र बन्धु विनोद : सन् 1913 में प्रकाशित इस कवि वृत्त संग्रह में सुन्दरदास के 3 कवित्त-सवैया और 1 साखी सकलित है।

बृहद् राग रत्नाकर : इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1908 [सं० 1965 वि०] का है, जो लक्ष्मी वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से प्रकाशित हुआ था। इसमें सुन्दरदास के 'सवैया ग्रंथ' के 41 छन्द तथा अन्य 26 पद संकलित हैं। जैसाकि संग्रह के नाम से स्वयं ध्वनित है, सुन्दरदास के इतने [छन्द-] पदों को गायन-योग्य ठहराना उनकी रचना की गेयता को ही सिद्ध करता है।

छन्द प्रभाकर और काव्य प्रभाकर : ये संकलन भी, उक्त संग्रह के आस-पास ही वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से प्रकाशित हुए है। इनमें बाबू जगन्नाथ दास 'भानु' ने सुन्दरदास की रचना के अनेक छन्द संकलित लिए हैं।

भाषा काव्य संग्रह : पं० महेशदत्त शुक्ल द्वारा सम्पादित एवं 'नवल किशोर प्रेस से सन् 1879 ई० में प्रकाशित इस संग्रह में सुन्दरदास के 13 छन्द संकलित हैं।

हफ़ीजुल्ला खाँ का हजारा : यह संग्रह भी 'नवल किशोर प्रेस' से सन् 1905 में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हुआ था। इसमें सुन्दरदास कृत 80 से भी अधिक छन्द 'सवैया ग्रन्थ' से लिए गए हैं।

बल्लभ संग्रह एवं साहित्य सुषमा : ये दोनों संग्रह क्रमशः जयपुर निवासी पं० हरि वल्लभ एवं बिहार में जन्मे तथा उत्तर प्रदेश को कार्यक्षेत्र बनाने वाले आधुनिक हिन्दी-साहित्य के काव्य शास्त्रीय विद्वान् पं० रामदाहिन मिश्र द्वारा संगृहीत एवं सम्पादित हैं। ये दोनो क्रमशः सन् 1913 एवं सन् 1918 ई० में प्रकाशित हुए थे। प्रथम संग्रह में सुन्दरदास के 20 छन्द तथा द्वितीय में 'तृष्णा को अंग' में से 5 छन्द संकलित किए गए हैं। यही नहीं, कुछ ऐसे संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें सुन्दरदास की वाणी के साथ-साथ यथोचित रूप में उनका जीवन-परिचय भी देने का प्रयत्न किया गया है। इनमें निम्नलिखित चार-पाँच संग्रह उल्लेखनीय हैं—

सुन्दरदास कृत काव्य : सुन्दर कृत कई ग्रंथों से संकलन करते हुए सन् 1890 [सं० 1947 वि०] में, तत्त्व विवेचन प्रेस, मुम्बई से उक्त शीर्षक से संग्रह प्रकाशित हुआ था। तुकाराम तात्या द्वारा लिखित इस ग्रन्थ की भूमिका में, अनेक भूलों के साथ, सुन्दरदास का सामान्य-सा परिचय दिया गया है। जैसे—'सुन्दरदास जी की कविता और छन्द आबाल वृद्धों को वहुत प्रिय है, क्योंकि इसमें शब्द-रचना बहुत उत्तम है और अर्थ भी गंभीर रखा गया है। इस ग्रंथ में भक्ति-ज्ञान और वैराग्य ये विषय अत्यन्त खुलासा से वर्णन किए गए हैं और ज्ञान-प्रकरण में सांख्य-योग और वेदांत इन विषयों का क्रम से बयान किया गया है कि तिस के पढ़ने से मुमुक्षु जनों को बहुत सहज रीति से आत्म-ज्ञान प्राप्ति का मार्ग मालूम हो।···ये महात्मा जाति के ब्राह्मण थे।'

सुन्दर-विलास, ज्ञान समुद्र : सुन्दर काव्य : यह संग्रह ग्रन्थ पं० पीताम्बर जी द्वारा सम्पादित एवं सूफी वेदान्ती शरीफ स्वाहेल मुहम्मद द्वारा सन् 1891 [सं०1947वि०] में 'निर्णय सागर प्रेस' मुम्बई से, पाकेट साइज में प्रकाशित हुआ है। इस की प्रस्तावना में सुन्दरदास का सामान्य-सा परिचय दिया गया है। विशेषता यह है कि इसमें सम्पादक पीताम्बर जी ने 'विपर्यय कौ अंग' की टीका की है, जो 'पीताम्बरी टीका' नाम से, अर्थोद्घाटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान कही जा सकती है।

सुन्दर विलास : पं० बालेश्वर प्रसाद वकील द्वारा संकलित- सम्पादित इस ग्रंथ का प्रकाशन सन् 1914 [सं० 1971 वि०] में 'वेलवेडियर प्रेस' प्रयाग से हुआ है। इसमें दिया गया सुन्दरदास जी का परिचय, एक अन्य पुस्तक 'दादूदयाल की बानी' में प्रकाशित त्रुटिपूर्ण परिचय को सुधार कर, दिया गया है।

संत बानी संग्रह : ये संग्रह भाग 1-2 के रूप में 'बेलवेडियर प्रेस' प्रयाग से सन् 1915 [सं० 1972 वि०] में प्रकाशित हुए हैं। प्रथम संग्रह में सुन्दर की 62 साखियाँ हैं और दूसरे संग्रह में उनके 57 कवित्त-सवैयादि छन्द संकलित हैं। प्रारम्भ में संक्षिप्त-सा जीवन-परिचय भी है।

पंचेन्द्रिय चरित्र : 'वेंकटेश्वर प्रेस', मुम्बई से सन् 1913 [सं० 1970 वि०] में पं० चन्द्रिका प्रसाद द्वारा सम्पादित सुन्दरदास कृत उक्त ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। सम्पादक ने भूमिका में सुन्दर को गो० तुलसीदास की बराबरी का कवि कहा है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय प्रामाणिक और परिश्रम से तैयार किया गया लगता है। सम्पादक ने 'देशाटन के सवैये' [—पुराहित हरिनारायण द्वारा प्रदत्त शीर्षक] को 'चार दिशा के सवैये' शीर्षक दिया है। अन्यों ने इसे 'दशों दिशा के दोहे' भी कहा है।

उक्त संग्रहों के अतिरिक्त 'जगदीश्वर छापा खाना' बम्बई से छपा 'बृहद् भजन रत्नमाला', 'भारत जीवन प्रेस' काशी से छपे 'गोविन्द लहरी' [-दो भाग] आदि-आदि अनेक संग्रहों में संकलित सुन्दरदास की रचना यह प्रमाणित करती है कि यह वाणी अपने उदयकाल से लेकर ही समुचित लोकप्रियता ग्रहण करती रही है। अनेकानेक साहित्य-मनीषी रचनाकार-समीक्षकों ने सुन्दर-वाणी को अपना पूरा सम्मान प्रदान किया है। वैसे भी, ऐसे समर्थ रचनाकार को वे छोड़ भी कैसे सकते थे? इसका एक ज्वलन्त उदाहरण सन् 1925 ई० में प्रकाशित पं० राम नरेश त्रिपाठी द्वारा आठ भागों में सम्पादित **'कविता कौमुदी'** संग्रह है। इस संग्रह में सुन्दर-वाणी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अतः ऐसे सन्त-रचनाकार की वाणी को सँजोने वाले प्रत्येक ग्रन्थ-शीर्षक का सामान्य परिचय अपेक्षित है।

ग्रन्थावली में संकलित रचनाओं का सामान्य परिचय : जैसा कि ऊपर बताया गया है सुन्दरदास अपने युग के ही नहीं, परवर्ती युगों में भी प्रमुख रचनाकार के रूप में सम्मानित, विवेचित, ग्राह्य एवं पठनीय बने रहे हैं। इनकी छोटी-बड़ी सभी रचनाओं का संकलन-प्रकाशन, साहित्य केलिए ही नहीं, तत्कालीन समाज-साहित्य-इतिहास की प्रवृत्ति एवं उसकी अन्तरंग बेचैनी को समझने केलिए आवश्यक बना रहा है। वैसे तो, प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने संकलित ग्रंथ-रचना के साथ-साथ ही, पाद-टिप्पणी अथवा 'चूर्णिका' में ग्रन्थ-निहित विशेषताओं को यथा-स्थान उजागर करने का प्रयत्न किया है। किन्तु, यहाँ भी ग्रंथ-क्रम से संक्षेप में उनका परिचय अपेक्षित जान पड़ता है। संकलित ग्रन्थों का रचना-क्रम से परिचय इसप्रकार है—

1. ज्ञान समुद्र : सुन्दरदास की रचनाओं में कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि, प्रसिद्धि 'सवैया' या 'सवइया' [=सुन्दर विलास] ग्रंथ को ही अधिक मिली है। रचना-काल की दृष्टि से इस ग्रंथ की रचना, कई अन्य ग्रन्थों की रचना के बाद हुई है। तब सुन्दरदास की आयु प्रौढ़ि में पहुँच चुकी थी। रचनाकाल इस ग्रन्थ में [संवत् 1710 वि० अथवा सन् 1653] दिया हुआ है। सम्भव है रचनाकार ने आत्म-तृप्ति के कारण ही इसका नामकरण 'ज्ञान समुद्र' रखा हो। अपने ग्रंथ-क्रम में उन्होंने स्वयं इसको प्रथम स्थान दिया है। उक्त कालावधि हिन्दी-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से 'रीतिकाल' के अन्तर्गत आती है। यह युग भाषा-काव्यों में 'रीति-गन्थ' रचना का युग माना गया है। इस कालखण्ड में 'श्रृंगार रस' की प्रधानता के साथ ही **'नायिका-भेद'** भी रीतिकालीन कवियों का प्रिय विषय बना रहा है। इस दृष्टि से सन्त सुन्दरदास ने 'ज्ञान-समुद्र' रचना के माध्यम से, 'रीतिकाल' में साहित्य की **'ज्ञानमार्गी धारा'** का रीति-ग्रन्थ देकर, एक ओर तो आचार्य का कर्त्तव्य-कर्म किया है और दूसरी ओर समाज अथवा सामाजिक की चेतना को, भोग-वासना वाली लोलुप पंकिल वृत्ति से हटाकर, पवित्रता की भूमिका में प्रतिष्ठित करने का सामाजिक दायित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी निभाया है। यह उस समय के सामन्ती-समाज के समक्ष रचनाकार का क्रान्तिकारी कदम है।

पाँच उल्लासों में परिसमाप्त 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ में, योग एवं सांख्य की तत्त्व-मीमांसा को, 'भक्ति' में समाहित करते हुए, रचनाकार ने वेदान्त-चेतना की समता-भावना को व्यवहार-भूमिका में उतारा है। रचनाकार का मन्तव्य रचना में पुकार-पुकार कर कहता है कि 'काव्य' का प्रतिपाद्य मात्र श्रंगारादि रस ही नहीं हैं और न नायिका-भेद के अन्तर्गत '**सुन्दरी**' के नख-शिख वर्णन के द्वारा युवक-चेतना को वासना के गर्त्त में फँसाते रहना ही रचनाकार का लक्ष्य कहा जा सकता है। अपितु 'शिवेतरक्षतये' के उद्देश्य से, उस सामन्ती-विलासी दल-दल से निकाल कर, चेतना को समाज की व्यापक भूमिका में लाना एवं व्यक्ति को सात्विकता में प्रतिष्ठित करके ऊर्ध्वमुखी बनाना भी रचना का लक्ष्य हो सकता है। 'वासना' में जीना ही समूचा जीवन नहीं है। अतः कह सकते हैं कि सुन्दरदास ने चेतना को '**उज्ज्वल रस**', जिसे उन्होंने '**अमृत रस**' कहा है, का आस्वाद कराने केलिए 'ज्ञान-समुद्र' की रचना की है। अपने मन्तव्य को एक रूपक के द्वारा रचनाकार ने इसप्रकार समझाया है—

जो या ज्ञान समुद्र महिं, डुबकी मारै आइ।
कोई मुक्ता फल लहै, दुख दरिद्र सब जाइ ॥59॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र की, महिमा कहिये कौंन।
अमृत रस सौं है भर्यौ, तुम जिनि जांनहु लौंन ॥60॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र महिं, बहुते रत्न अमोल।
मृतक होइ सो पैठिहै, पैठि न सकई लोल ॥61॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र कौ, वारापार न अन्त।
बिषई भागै झझकि कैं, पैठे कोई सन्त ॥62॥

कुल मिलाकर विभिन्न छन्दों में रचित यह रचना, सन्त-काव्यधारा की एक सुविचारित काव्य-रचना है, जिसमें श्रृंगार रस की मानसिकता के समानान्तर ज्ञान-भक्ति के विचार-पक्ष को, आचार्य कवि सन्त सुन्दरदास ने, बड़ी सामर्थ्य के साथ युग-विचारकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। सारांश में कहें तो कह सकते हैं कि 'ज्ञान-समुद्र' भाषा-काव्यों में, ज्ञान-धारा का रीति ग्रन्थ है। अर्थात् इसमें 'भक्ति' को ज्ञान-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में निरूपित किया गया है।

2. सर्वांगयोग प्रदीपिका : दोहा-चौपाई [-चौपई] छन्द शैली में रचा गया यह ग्रन्थ चार 'उपदेशों' [-अध्यायों] में परिसमाप्त है। छन्दों की कुल संख्या 203 है। इस ग्रन्थ को योग-विचारधारा का शास्त्र-ग्रन्थकहना अधिक समीचीन लगता है। इसमें '**भक्ति**'-परिवेश की विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का समावेश करते हुए '**योग**' के विभिन्न पक्षों का विवेचन हुआ है। 'पंच प्रहार' नामक प्रथम उपदेश में योग-विचारधारा के आद्याचार्यों का उल्लेख करते हुए भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग में निर्धारित विचारों का विवेचन है। साथ ही योग-विचारधारा के आलोक में, समाज में व्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न मतमतान्तरों को मानने वाले लोगों की संकीर्णता का संकेत करते हुए रचनाकार ने पाखण्ड-मिथ्यावाद को निरस्त करने का प्रयत्न किया है। इसमें भूत-प्रेतों के भय से ग्रस्त जन-जीवन एवं विभिन्न प्रकार के चमत्कार-पाखण्ड दिखाकर समाज-जन को भ्रान्त करके अपना अनुयायी बनाने अथवा 'साधना' करने के बहाने से विभिन्न प्रकार के मादक पदार्थों का सेवन करने वाले मिथ्याचारी साधकों पर सुन्दरदास ने, एक समाज-चेता सन्त के समान, तीखे प्रहार किए हैं। उनकी वाणी में निहित मन्तव्य को पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं—

'केचित् धूम्रपान करि भूलैं। औंधे होइ बृच्छ सौं झूलैं॥
केचित् मेलहिं मूंड ठगौरो। सब लै जांहिं देषते त्यौरी॥
केचित् सिहर लगावहिं अंगा। बालक चलै लागि करि संगा।
केचित् मूठि चलावैं काहू। नारसिंह भैरव तुम जाहू॥
केचित् आक धतूरा षांहीं। पुनि अंगार मेलहिं मुख मांहीं॥
केचित् आफू पोसत भंगी। निपट मूढ मति आहि तरंगी॥
ऐसैं भ्रम सु कहां लग कहिये। संमुझि संमुझि गुरु के पग ग्रहिये॥'

—प्रथमोपदेश, छ० 40-49

'भक्ति योग' नामक द्वितीयोपदेश में मंत्रयोग, लययोग और चर्चायोग का विचार-पक्ष प्रस्तुत किया गया है। इन प्रसंगों में निर्गुण-भक्ति का स्वरूप बताते हुए भक्ति का **'आलम्बन'** इसप्रकार बताया गया है—

'सार ग्रहै कूकस सब नाषै। रमिता राम इष्ट सिर राषै॥
आंन देव की करै न सेवा। पूजै एक निरंजन देवा॥
शून्य सु मंदिर अधिक अनूपा। ता महिं मूरति जोति स्वरूपा॥
सदा अषण्डित सेवा लावै। सोई भक्ति अनन्य कहावै॥'

इसीप्रकार **'मन्त्रयोग'** की चर्चा करते हुए निर्गुण 'राम' को **'बीज-मंत्र'** के रूप में स्वीकार किया गया है—

'सहस्रनाम की कौंन चलावै। नाम अनन्त पार को पावै॥
राम मन्त्र सब कै सिरमौरा। ताहि न कोई पूजत औरा॥
पुनि तहां प्रगट होइ रंकारा। आपुहि आपु अखण्डित धारा॥
तन मन बिसरि जाइ तहां सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई॥
जैसैं पांनी लौंन मिलावै। ऐसैं ध्वनि महिं सुरति समावै॥'

'लययोग' की मानसिकता को उदाहण द्वारा इसप्रकार बताया गया है—

'जैसैं कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हँसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन संझा॥'

'चर्चायोग' में उस निर्गुण-निराकार तत्त्व अर्थात् उसका नित्यत्व, सर्वव्याप्ति और अखण्डता का अनुभव ही मुख्य लक्ष्य बताया गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निराकार है नित्य स्वरूपं । अचल अभेद्य छांह नहिं धूपं ।।
अव्यक्त पुरुष अगम अपारा । कैसैं कै करिये निर्द्धारा ।।
आदि अन्त कछु जाइ न जांनी । मध्य चरित्र सु अकथ कहांनी ।।'

'हठयोग' नामक तृतीय उपदेश में हठयोग, राजयोग, लक्षयोग एवं अष्टांग योग का सांगोपांग वर्णन है । इस विवेचन में सुन्दरदास ने बहुत कुछ शास्त्रों से ही लिया है । किन्तु, कुछ-कुछ अपने अनुभव से जोड़कर उसे भाषा-काव्यों में ग्राह्य बना दिया है । जैसे-'ध्यान' सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार का बताया है—

'ध्यान सु आहि उभै जु प्रकारा । एक सगुण इक निर्गुन सारा ।।
सगुन सु कहिये चक्र स्थानं । निर्गुण रूप आतमा ध्यानं ।।'

'सांख्ययोग' नामक चतुर्थ उपदेश में सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग और अद्वैतयोग का प्रतिपादन हुआ है । विशेषता यह है कि 'ब्रह्मयोग' एवं 'अद्वैतयोग' इन दोनों में सूक्ष्म अन्तर बताते हुए सुन्दरदास ने अद्वैत दर्शन को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया है। **'ब्रह्मयोग'** के सम्बन्ध में लिखा है—

'ब्रह्म योग का कठिन बिचारा । अनुभव बिना न पावै पारा ।।
ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिये । परचा होइ तबहिं तौ लहिये ।।
ब्रह्मयोग पावै निःकामी । भ्रमत सु फिरै इन्द्रियारामी ।।
× × ×
आपु ब्रह्म कछु भेद न आनैं । अहं ब्रह्म ऐसैं करि जानैं ।।
अहं परात्पर अहं अखण्डा । व्यापक अहं सकल ब्रह्मण्डा ।।'

'अद्वैतयोग' के सम्बन्ध में सुन्दरदास की स्पष्टोक्ति सिद्ध करती है कि यह रचना, अनेकानेक शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त अनुभव का, भाषा में 'सार' रूप है । देखिए—

'न तहां धर्म अधर्म न करता । न तहां पाप न पुण्य न धरता ।।
न तहां पंडित मूरख कौंना । न तहां बाद विवाद न मौंना ।।
न तहां शास्तर वेद पुराना । न तहां होम न यज्ञ विधाना ।।
न तहां संध्या सूत्र न शाषा । न तहां देव मनुष्य न भाषा ।।
ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहं ध्ये ध्याता नहिं ध्यान ।
कहनहार सुन्दर नहीं यह अद्वैत बषान ।।'

3. पंचेन्द्रिय चरित्र: प्रस्तुत रचना का रचना-काल सं० 1691 वि० [सन् 1734] दिया गया है । यह रचना कुल 221 दोहा-चौपई [-चौपाई] छन्दों में परिसमाप्त है । प्रतीक शैली में पंचेन्द्रियों की आसक्ति मूलक अतिशयता को निवारण करने केलिए इस रचना में उपदेश शैली का सहारा लिया गया है । शब्द-स्पर्श-रूप-रस- गन्ध के आकर्षण में वशीभूत होकर मनुष्य अपनी सम्यक् चेतना को विकृत करते हुए क्षय करता-रहता है । इसीलिए वह अपने आत्म-स्वरूप को पहचानने में असमर्थ बना रहता है । साधना-पक्ष के इसी सत्य-अनुभव को, सुन्दरदास ने गज [-काम की स्पर्श-आसक्ति का प्रतीक]-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया है—

'काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बंध्या ग्राम।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचायाकाम ।।'

इसीप्रकार **भ्रमर** [-काम की घ्राण-आसक्ति का प्रतीक]-चरित्र के द्वारा गन्ध-आसक्ति की प्रबलता में मनुष्य-चेतना के विखण्डित होते-रहने से बचने की चेतावनी है—

'जिनि गंध बिषै मनु दीना। ते भये भ्रमर ज्यौं छीना ।।
जिन के नासा बसि नाहीं। ते अलि ज्यौं देषि बिलाहीं ।।
यह रुचि हरि नाम भुलावै। यह रुचि सौं काम जगावै ।।
तब काम तैं उपजै क्रोधा। पुनि लोभ मोह बड़ जोधा ।।'

मीन एवं बन्दर [-काम की स्वादासक्ति के प्रतीक]-चरित्रों में स्वादेन्द्रिय की अतिशयता को रेखांकित किया गया है। देखिए—

'शठ जिह्वा स्वाद भुलाना। उनि कंटक काल न जाना।
जौ जिह्वा नहीं संभारा। तौ नाचै घर घर बारा ।।
यह स्वाद कठिन अति भाई। यह स्वाद सबनि कौं षाई ।।
× × ×
मीन चरित्र बिचारि कैं, स्वाद सबैं तजि जीव।
सुन्दर रसना राति दिन, राम नाम रस पीव ।।'

पतंग[-काम की रूपासक्ति का प्रतीक]-चरित्र के माध्यम से 'रूप' में दृष्टि-आसक्ति की अतिशयता को निरूपित करते हुए बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से सुन्दरदास ने सुन्दरी [-छवि] की आसक्ति को, दीप-ज्योति के प्रति पतंगासक्ति से प्रतीकित किया है। देखिए—

'देह दीप छवि तेल त्रिय, बाती बचन बनाइ।
बदन ज्योति दृग देषि कैं, परत पतंगा आइ ।।
× × ×
यह दृष्टि निहारै बामा। यह दृष्टि जगावै कामा ।।
जब देषै दृष्टि स्वरूपा। तब जाइ परै अन्ध कूपा ।।
पहिले मन दृष्टि पठावै। तब सकल संदेसा पावै।
जब दृष्टिहि दृष्टि मिलानी। तब अन्तर की मन जानी ।।
इहिं दृष्टि मरम जब पावा। तब पीछै तें मन धावा ।।
मन के पीछै तन जाई। तब सब ही धर्म नसाई ।।'

मृग [-काम की कर्ण-ध्वनि-आसक्ति का प्रतीक]-चरित्र में नादासक्ति की अतिशय प्रबलता के दुष्परिणाम को दर्शाया गया है—

'मृग नाद विषै मन दीना। इहिं नाद प्राण हति लीना।
यह नाद विषै मन लावै। सो मृग ज्यौं नर पछितावै ।।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचेन्द्रिय चरित्र के छठे उपदेश 'पंचेन्द्रिय निर्णय' के अन्तर्गत इन चरित्रों में प्रतीकित सन्देश को, स्वयं रचनाकार ने चेतना को विकृत करने वाली रसासक्ति की प्रबलता के निवारण के रूप में, रेखांकित किया है। रीतिकालीन दरबारी-साहित्य में जिस 'शृंगार' की गूँज थी, प्रतिरोध में उसके ही समानान्तर इस रचना की सार्थकता देखी जा सकती है। देखिए—

'गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष बिनाश।
जाकै तन पंचौं बसैं, ताकी कैसी आश॥
पंचौ नर कै घट माहैं। अपना अपना रस चाहैं॥
× × ×
अध इन्द्रिय भोगहिं राती। नहिं तृप्त होइ मदमांती॥
ये पंचौ पंच अहारा। अपना अपना रस न्यारा॥
ये पंचौं षोवैं लाजा। ये पंचौं करहिं अकाजा॥
ये पंच पंच दिश दौरैं। ये पंच नरक मैं बोरैं॥
ये पंच करैं मति हीना। ये पंच करैं आधीना॥
ये पंच विकर्म करावैं। ये पंचौं मान घटावैं॥'

4. सुख समाधि : रचना-क्रम में इन्द्रिय-निरोध के बाद जिस मानसिकता का अनुभव होता है, उसको सुन्दरदास ने 32 'अर्ध सवैया' छन्दों वाली 'सुख समाधि' शीर्षक लघु रचना में बड़ी मार्मिकता से अभिव्यंजित किया है। जैसाकि इस रचना के शीर्षक से व्यंजित हो रहा है, इसमें साधक के आनन्दातिरेक को सांकेतिक भाषा में मुखर करने का प्रयत्न है। वास्तव में सूक्ष्म एवं निरावयव अपरोक्षानुभूति को भाषाबद्ध करने में बड़ी कठिनाई होती है। वैसी ब्रह्मानुभूति को इस रचना में 'सुख' या सुखानुभूति कहा गया है। ऐसा समाधि-सुख ही 'गूँगे का गुड़', 'सद्य नवनीत' या 'शुद्ध घृत-आस्वाद' से उपमित हुआ है। कहावत है कि 'जिन जाना, तिन न बखाना।' फिर भी, जिज्ञासा तृप्ति केलिए उस अनुभव को सन्त-धारा की रचनाओं में सांकेतिक रूप से बताने का प्रयत्न है। शंकराचार्य ने 'प्रश्नोत्तर रत्न मालिका' में ऐसे ही अनुभव-सुख को 'शतै सुखं कस्तु समाधि-निष्ठः' कह कर अभिव्यक्त किया है। आसक्ति [-वासनाओं] से मुक्ति पा जाने के बाद ऐसा अनुभव होना स्वाभाविक ही है। देखिए—

'अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं, मोक्ष आदि सब छाडी आस।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास॥'
'देह अनित्य उपजि करि बिनसै, आतम नित्य अजर अविनाश।'
'जाकौं अनुभव होइ सु जाणैं, पायौ परमानन्द निवास।'

5. स्वप्न प्रबोध : 26 दोहों में परिसमाप्त प्रस्तुत लघु रचना में जागतिक दशा को स्वप्न-दशा की तरह से असत् या मिथ्या रूप में निरूपित किया गया है। यह निरूपण मनुष्य की अनेक प्रकार की भ्रान्तियों का निवारण भी करता है और मिथ्याहंकार से मुक्ति भी दिलाता है। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्वप्नै मैं योगी भयौ, स्वप्नै मैं संन्यास।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, ना घर ना बनबास ।।16।।
स्वप्नै मैं ब्राह्मण भयौ, स्वप्नै मैं शूद्रत्व।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं तम रज नहिं सत्व ।।18।।
स्वप्नै मैं काशी मुवौ, स्वप्नै मगहर मांहि।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, मुक्ति रासिभौ नांहि ।।22।।
स्वप्नै मैं निन्दा भई, स्वप्नै मांहि प्रशंस।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं कृष्ण नहिं कंस ।।24।।'

तात्पर्य है कि वेदान्त के तात्विक अनुभव में यह सकल संसार अवस्तु या मिथ्या प्रतीति मात्र है।

6. वेद विचार : समास शैली प्रधान 21 दोहों में परिसमाप्त प्रस्तुत लघु रचना में वेदान्त प्रतिपादित गूढ़ विचार-तत्त्व को रूपक-उपमा-उदाहरणों द्वारा अभिव्यक्त किया है। यहाँ 'वेद' शास्त्र, विचार या चिन्तन का पर्याय होकर आया है। इसमें सांसारिक को दिशा-निर्देश करते हुए 'विधि-कर्म' के आदर्श का प्रतिपादन है। 'वेद ईश्वरीय बचन है', यह मानने के कारण उसके परम विस्तार एवं गहन सूक्ष्मता का पार-पाना कठिन बताया गया है। भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक स्थितियों को एक वृक्ष रूपक के माध्यम से 'पत्र-पुष्प और फल' रूप में निरूपित करने में कवि का मनीषत्व मुखर है। 'कर्म' इस वृक्ष के पत्र हैं, 'भक्ति' [-उपासना] पुष्प है और 'ज्ञान' फल है। लोक को कर्म-आदर्श में नियोजित करने केलिए ही 'कर्म' के विधि-निषेध पर भी विचार हुआ है। सुन्दरदास की मान्यता है कि निषिद्ध-कर्मों के प्रति विरति एवं विहित कर्मों के प्रति रुचि पैदा करने केलिए ही **'वेद-विचार'** नामक रचना का विधान हुआ है। देखिए—

'कर्म पत्र करि जानिये, मंत्र पुष्प पहिचानि।
अन्त ज्ञान फल रूप है, कांड तीन यौं जानि ।।6।।
बिषई देष्यौ जगत सब, करत अनीति अधर्म।
इन्द्रिय लंपट लालची, तिनहिं कहे विधि कर्म ।।7।।
निषिध छुड़ावण कारनै, भय उपजायौ आइ।
मद्य मांस पर त्रिय गवन, इनतें नरकहिं जाइ ।।8।।
कर्म पत्र महिं नीकसै, भक्ति जु पुष्प सुबास ।।17।।
तब ही प्रगटै ज्ञान फल, समझै अपनौं रूप ।।19।।
'ज्ञान'सु फल ऊपर लग्यौ, जाहि कहैं वेदान्त ।।21।।'

7. उक्त अनूप : 21 दोहों वाले इस लघु ग्रन्थ में सुन्दरदास ने तम-रज और सत् इन तीन गुणों के प्रभाव एवं व्यवहार का विवेचन करते हुए, कर्म-शुद्धता के साथ-साथ हृदय की शुचिता पर विशेष ज़ोर दिया है। जैसे सिंहनी का दूध स्वर्ण-पात्र में ही सुरक्षित रहने की बात कही जाती है, वैसे ही सद्गुरु-ज्ञान शुद्ध हृदय में ही ठहरता है। यही 'उक्ति' की अनूपता अथवा सूक्तिमय श्रेष्ठता है। यहाँ गुरु-वचन को सुनकर उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन एवं निदिध्यासन की प्रेरणा दी गई है। गुरु की शिष्य के प्रति ऐसी सदुपदेशमय उक्ति या कथन ही 'उक्त अनूप' रचना का प्रतिपाद्य है। देखिए—

'सद्गुरु देष्यौ शुद्ध अति, मन वच काय सहेत।
भली भूमि मैं बीजिये, तब वह निपजै षेत ॥14॥
तासौं सद्गुरु यौं कह्यौ, तू है ब्रह्म अखण्ड।
चिदानन्द चैतन्य घन, व्यापक सब ब्रह्मण्ड ॥15॥
कनक पात्र मैं रहत है, ज्यौं सिंहनि कौ दुद्ध।
ज्ञान तहां ही ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध ॥20॥'

8. अद्भुत उपदेश : 57 दोहों की इस रचना में मन-इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को अनुशासित करने केलिए रचनाकार ने रूपक का सहारा लेते हुए उपमा-उत्प्रेक्षा और उदाहरणों द्वारा अपने मन्तव्य को अभिव्यक्त किया है। इसमें उपदेश को 'अद्भुत' बताने से तात्पर्य शायद यह रहा हो कि इसमें 'पुत्र क्रम' के आधार पर अपनी बात कही गई है और पंचेन्द्रियों में श्रवणेन्द्रिय को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। ऐसा प्राय: कम ही होता है। पंचेन्द्रियों को नैंनू, नथुवा, चरमू, श्रवनू और रसनू इन पंच-चरित्रों में निरूपित करना भी अपने में विस्मयकारी हो सकता है। रचना को पढ़ते हुए एक प्रकार की पठनीय उत्सुकता निरन्तर प्रतीत होती रहती है। अन्त में रचनाकार जहाँ पाठक की चेतना को ले जाता है, वहाँ वह विवेक-विचार करने केलिए विवश-सा दिखाई देता है। कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं, जिनमें मन की [धूर्त्त-]प्रपंचमय वृत्ति में रचनाकार सहज सात्विकता के शिवोदय के प्रति अपना लक्षित समर्थन दे रहा है। देखिए—

'परमातम सुत आतमा, ताकौ सुत मन धूत।
मन के सुत ये पंच हैं, पंचौं भये कपूत ॥2॥
रवि समान परमातमा, दर्प्पन बुद्धिहिं जांनि।
तामहिं प्रतिबिंबित भयौ, जीवातमा पहिचांनि ॥3॥
मन हित बंध्यौ पंच सौं, लपटि गयौ तिनि संग।
पिता अपनौं छाडि कै, रच्यौ सुतनि कै रंग ॥8॥
सुनि श्रवनूं तौसौं कहौं, तू है जान प्रवीन।
बे चारौं समुझैं नहीं, महा मुग्ध मति हीन ॥24॥
अहो पिता हम सब ठगे, पंच शत्रु हैं लार।
शब्द स्पर्श जु रूप रस, गंध महा बटमार ॥27॥
तब मन यह उपदेश सुनि, चार्यौं लिये बुलाइ।
नैंनूं नथवा रसनुवा, चमूं बैठे आइ ॥48॥
तुम पंचिन कौ मन पिता, मन कौ आतम जानि।
आतम पित परमातमा, ताहि लेहु पहिचानि ॥52॥
प्रसरे हू ये शक्ति मय, संकोचे शिव होइ।
सद्गुरु यह उपदेश करि, किये बस्तुमय सोइ ॥55॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसप्रकार 'उत्पत्ति' से 'लय' तक जो 'है' वही बना देना या अनुभव करा देना, गुरु-कार्य के रूप में 'अद्‌भुत उपदेश' ग्रन्थ का कथ्य कहा जा सकता है।

9. पंच प्रभाव : 30 दोहों में परिसमाप्त इस लघु रचना में सात्विक भाव को प्रतिपादित करते हुए 'ज्ञान मार्ग' की मर्यादा में कवि ने प्रेम तत्त्व के अमोघ प्रभाव को अंकित किया है। 'पंच प्रभाव' का अर्थ उत्तम, मध्यम, अधम, अधमाधम और ज्ञानी ये मनुष्य [-भक्त] के पाँच प्रभाव या प्रकार कहे गए हैं। रूपक इसप्रकार है—'भक्ति' परमब्रह्म की युवती वेटी है, जो अपना 'वर' ढूंढने केलिए संसार में आई है। उसके संसार-आगमन के समय पिता ने उसके साथ एक दासी 'माया' को भी भेज दिया है। निरन्तर ढूंढने के बाद भी उसे कोई वर पसन्द नहीं आया। अन्त में वह सन्तों के अद्‌भुत गुणों को देखकर उन्हीं पर रीझ गई। तब उसने स्वयं-वरण केलिए प्रार्थना की। पर, दासी सदा उसके साथ बनी रही है। सारांश में कहें तो कह सकते हैं कि जो **'युवती भक्ति'** में तन्मय रहते हैं, वे ही श्रेष्ठ सन्त जन [-पति] मर्यादा वाले हैं और जो **'दासी'** के प्रेम में आसक्त रहते हैं, वे वृषली-लम्पट-मायावी होते हैं। देखिए—

'भक्ति सुता परब्रह्म की, आई इहिं संसार।
उत्तम वर ढूंढत फिरै, माया दासी लार ॥2॥
तब सन्तनि कै ढिग गई, देषे शीतल रूप।
क्षमा दया धृति दीनता, सब गुन अजब अनूप ॥5॥
भक्ति बिवाही सन्त जन, माया दासी संग।
जुवती सौं निशदिन रमैं, दासी सौं नहिं रंग ॥7॥
जो दासीं सौं मिलि गयौ, अंग अंग लपटाइ।
जीमैं लागौ हाथ तिहिं, जुवती निकट न जाइ ॥18॥
सो तौ वृषली पति भयौ, कुलहि लगाई गारि।
जुबती उठि पीहरि गई, वाकौं माथै मारि ॥19॥
भक्ति भक्त माया जगत, ज्ञानी सब कौ सीस।
पंच प्रभाव वषानिया, सुन्दर दोहा तीस ॥30॥'

10. गुरु सम्प्रदाय : सुन्दरदास ने प्रस्तुत 53 दोहा-चौपई छन्दों में स्वयं से प्रारम्भ करते हुए [-प्रतिलोम पद्धति से] अपनी गुरु-परम्परा को बताया है। इसमें उन्होंने दादू जी से द्यौसा नगर में शिष्यत्व प्राप्त करने के बाद परब्रह्म तक 38 परम्परा-गुरुओं का उल्लेख किया है। इस गुरु-परम्परा को ही उन्होंने 'गुरु-सम्प्रदाय' नाम से अभिहित किया है। अन्त में उन्होंने प्रतिलोम पद्धति को भी समझाया है। देखिए—

'यह पद्धति प्रतिलोम सुनाई। जहं तें भई तहां पहुंचाई॥

परम्परा परब्रह्म ते, आयौ चलि उपदेश।
सुन्दर गुरु तें पाइये, गुरु बिन लहै न लेश॥
संप्रदाय इहिं बिधि चली, प्रगट करी जगदीश।
सुन्दर सिर तें नख गनहिं, नख तें गनिये शीश॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. गुन उत्पत्ति नीसांनी : यह लघु रचना 1 दोहा और 20 नीसांनी छन्दों में परिसमाप्त है। ग्रन्थ-शीर्षक में प्रयुक्त **'नीसांनी'** शब्द में श्लेष है। इसका एक अर्थ 'पहिचान या लक्षण' है तो दूसरा अर्थ छन्दविशेष ['नीसांनी' छन्द में 13+10 की यति से, प्रत्येक चरण में 23 मात्राएँ होती हैं]। प्रतिपाद्य की दृष्टि से इस रचना में त्रिगुणात्मक सृष्टि का प्रसार और त्रिगुणातीत होते हुए उसका विलय क्रम समझाया गया है। सृष्टि-प्रसार में विभागमय नानात्व एवं अनेकत्व के साथ ही सर्वव्यापक और सर्व नियन्ता की रूप-चैतन्य-सत्ता का प्रतिपादन हुआ है। सृष्टि के सम्बन्ध में सन्त कवि का यह दार्शनिक मन्तव्य उल्लेखनीय है—

'प्रथम निरंजन आपुही मन मैं यहु आंनी।
पंच तत्व गुन तीन तें सब सृष्टि उपांनी ॥3॥
रज गुण तें ब्रह्मा किये राजस अभिमानी।
सात्विक विष्णु उपाइया प्रतिपालक प्रांनी ॥5॥
तम गुण तें शंकर भये संहारक जांनी।
ऐसी बिधि भव पथ चलै यह रचना ठांनी ॥6॥
चेतनि शक्ति जहां तहां घट घट नहिं छांनी।
हलन चलन जातें भया सो हैं सेनानी ॥19॥'

12. सद्गुरु महिमा नीसांनी : पूर्व रचना के समान ही यह लघु रचना भी दो दोहे एवं बीस नीसांनी छन्दों में परिसमाप्त है। यह पूरी रचना, सुन्दरदास ने अपने सद्गुरु दादूदयाल के प्रभाव, चरित्र और उनकी भक्ति-भावना के विचार को उजागर करने के उद्देश्य से रची है। गुरु-महिमा-बखान में शिष्य के भावोद्‌गारों को जो गति मिलती है, वह 'काव्य' के बहुत निकट पहुँच जाती है। इस वर्णन में दादू जी के शील-स्वभाव एवं भक्ति-पद्धति बताते हुए सन्त कवि सुन्दर ने उन्हें वृक्ष के समान शीतल छाया प्रदायक, समुद्र के समान गंभीर, आकाश की तरह विशाल हृदय वाला, गोरखनाथ की तरह योगिराज और कबीर के समान साधु बताया है। ऐसे कथनों में गुरु-परम्परा के चरित्रों एवं रचनाकारों में समीक्ष्य का स्थान-निर्धारण भी सहज ही होता चलता है। उन्हीं के शब्दों में देखिए—

'पार उतारन हार जी गुरु दादू आया।
जीवनि के उद्धार कौं हरि आपु पठाया ॥
× × ×
अति गंभीर समुद्र ज्यौं तरुवर ज्यौं छाया।
बानी बरिषै मेघ ज्यूं आनन्द बढ़ाया ॥
पवन जिसा सब सारिषा को रंक न राया।
ब्यौम जिसा हृदये बड़ा कहुं पार न पाया ॥
टेक जिसी प्रह्लाद है ध्रुव ज्यौं मन लाया।
ज्ञान गह्यौ शुकदेव ज्यौं, पर ब्रह्म दिषाया ॥
योग युगति गोरक्ष ज्यौं धंधा सुरझाया।
हद्द छाड़ि बेहद्द मैं अनहद्द बजाया ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसें नाम कबीर जी यौं साधु कहाया।
आदि अंत लूं आइ कैं रमि राम समाया।।'

13. बावनी : पाँच दोहे और तिरपन चौपई [-चौपाई] छन्दों वाली यह रचना सन्त-परम्परा की रचना है। सन्त-परम्परा में 'ककहरा' अथवा 'बावनी' काव्यरूपों के माध्यम से, 'बारहखड़ी' पर आधारित अ-आ से क्ष-त्र-ज्ञ तक, पद्य-क्रम में अक्षर-ज्ञान कराने की रचना-परिपाटी प्रधान रही है। सुन्दरदास ने उसी परम्परा का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है। रचनाकार की सक्षमता यहाँ इस बात में है कि अपने गुरु-विचार को भी सहज-सरल भाषा-शैली में प्रस्तुत करते हुए, सन्त-विचारधारा का पूरा निर्वाह किया है। उन्होंने 'शब्द' का आदि 'ओंकार' बताते हुए, 'ज्ञान' अथवा बोध को 'अक्षर' रूप में 'क्षर' से परे बताया है। इसप्रकार सामान्य जन में अध्यात्म चेतना को जाग्रत करना ही इस 'बावनी' रचना का लक्ष्य कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'इक अक्षर है एक रस, क्षरै सु है ओंकार।
तरवर ज्यौं का त्यौं रहै, छाया बहुत प्रकार।।
बावन अक्षर सब कथै, पण्डित वेद पुरान।
इक अक्षर सो अगम घर, बूझै सन्त सुजान।।
× × ×
रमिता राम रह्या भरपूरा। राषि हृदै पण छाड़ि न सूरा।।
ज्ञान उहै कोई जो पावै। ज्ञाता कैं हृदये ठहरावै।।
ज्ञेय बस्तु कौं जानैं सोई। ज्ञानी उहै और नहिं कोई।।'

14. गुरुदया षट्पदी : इस अति लघु रचना में कुल दो दोहे एवं छः त्रिभंगी छन्द हैं। इनमें गुरु दादू की दया-कृपा का गुणगान है। प्रत्येक त्रिभंगी छन्द के साथ 'दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला 'पंक्ति-छाप की पुनरावृत्ति हुई है। 'मारग बूझैला' यह पंक्ति निर्णायक रूप में 'मार्ग' की 'सही दिशा' की व्यंजना कराती है। छः त्रिभंगी छन्द-संख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि इस रचना का शीर्षक, छन्द को प्रधानता देने वाला है। आगे के 12 लघु ग्रन्थों के शीर्षक भी छन्द-संख्या को ही प्रधानता देते जान पड़ते हैं।

15-26. अष्टक ग्रन्थ : उक्त संख्या क्रम में क्रमशः भ्रम विध्वंस अष्टक, गुरु कृपा अष्टक, गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक, गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक, रामाष्टक, नामाष्टक, आत्मा अचलाष्टक, पंजाबी भाषा अष्टक, ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, पीर मुरीद अष्टक, अजब ख्याल अष्टक और ज्ञान झूलनाष्टक ये 12 लघु रचनाएँ हैं। इन अष्टकों की सामान्य विशेषता यह है कि ये प्रायः आठ छन्दों के हैं। आठ छन्दों से अधिक छन्द होने पर भी इनका नाम 'अष्टक' ही रखा गया है। ये अष्टक दादूद्वारों, गोष्ठियों, मेलों, मन्दिरों और सत्संगों में बड़े प्रेम-भाव से गाए जाते रहे हैं। नित्य-नेम के रूप में भी ये आरती के समय गाए जाते रहे हैं। आकार में लघु होते हुए भी ये प्रभाव में 'नावक के तीर' माने गए हैं, क्योंकि ये अर्थ में गम्भीर और भावों में मधुरता से भरे एवं गेय हैं। प्रत्येक अष्टक-शीर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निहित भाव को, उसके कलेवर में पूरी तरह समहित करने का प्रयत्न है। रचनाकार ने अपनी या अपने गुरु की छाप के रूप में, इन अष्टकों की सबसे बड़ी विशेषता शायद यह मानी है कि इनके प्रायः प्रत्येक छन्द में, अन्तिम पंक्ति अथवा अन्तिम चरण की आवृत्ति को प्रधानता दी है। हिन्दी-रचना में यह विशेषता संस्कृत भाषा के अष्टकों से भिन्न प्रकार की है। उदाहरण केलिए 'भ्रम विध्वंस अष्टक' में 'दादू का चेला भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै षेला', 'गुरु कृपा अष्टक' में 'दादू गुरु आया शब्द सुनाया, ब्रह्म बताया अबिनाशी', 'गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक' में 'दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं', 'गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक' में 'नमो देव दादू नमो देव दादू', 'रामाष्टक' में 'तुम सदा एक रस राम जी राम जी', 'नामाष्टक' में ईश्वर के नामों की आवृत्ति, जैसे—'हे हरे हे हरे हे हरे', 'केशवे केशवे केशवे केशवे' आदि प्रयोग संस्कृत-भाषा के अष्टकों से भिन्न प्रवृत्ति के हैं। 'आत्मा अचलाष्टक' में कुण्डलिया छन्द होने के कारण प्रथम चरण और अन्तिम चरण एक जैसे हैं। 'पंजाबी भाषा अष्टक' में यह छाप-प्रवृत्ति, पंजाबी भाषा-शब्दावली की बहुलता के कारण निर्वाहित नहीं हो सकी है। किन्तु 'सुन्दर' की छाप वहाँ भी विद्यमान है। 'ब्रह्म स्तोत्र अष्टक' में ब्रह्म-पद विशेषणों के साथ अन्य प्रकार की आवृत्ति, जैसे—'नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं', 'नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं।' आदि उल्लेखनीय हैं। 'पीर मुरीद अष्टक' में अरबी-फारसी की शब्दावली की प्रधानता के कारण पंक्ति या चरण-आवृत्ति का निर्वाह नहीं हो पाया है। किन्तु, उसी शब्दावली की प्रधानता वाले 'अजब ष्याल अष्टक' में 'यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है' के रूप में पंक्ति की आवृत्ति है। इसमें 'गीतक' छन्द तो कुल 8 ही हैं, पर 10 दोहा छन्दों को मिलाकर यह 18 छन्दों की रचना बन गई है। 'ज्ञान झूलनाष्टक' में कवि ,सुन्दर' प्रयोग की आवृत्ति के साथ चरणान्त में 'रे' अक्षर की आवृत्ति गेयत्व को मुखर करती है। कुल मिलाकर सभी अष्टकों में छन्द की लय के साथ-साथ भाषा-प्रवाह मार्मिक बन पड़ा है।

27. सहजानन्द : चार दोहे एवं बीस चौपई छन्दों वाली यह लघु रचना, दादू-विचार-परम्परा एवं सन्त-वाणी की विचारधारा को प्रतिपादित करती है। सन्त-परम्परा में प्रसिद्ध सन्त-साधक-रचनाकारों के उल्लेख के साथ ही इस रचना में प्रधानतः दादू-विचारधारा को पुष्ट किया गया है। पन्थ-सम्प्रदाय-भेद अथवा जातिगत श्रेष्ठता-हीनता का तिरस्कार करते हुए सन्त सुन्दर ने इसमें हिन्दू-मुस्लिम सौमनस्य को अग्रसारित किया है। ऐसे विचार-प्रसार में पूजा-विधियों अथवा सम्प्रदायगत विधि-निषेधों को नकारना सहज स्वाभाविक होता है। समता की ऐसी मानसिकता में जो सहज सुख मिलता है, उसी को सुन्दरदास ने 'सहजानन्द' कहा है। कुल मिलाकर यह वाणी पूरी सन्त-चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। देखिए—

'चिन्ह बिना सब कोई आये। इहां भये दोइ पन्थ चलाये॥
हिन्दू तुरक उठ्यौ यह भर्मा। हम दोऊ का छाड्या धर्मा॥
माला जपौं न तसबी फेरौं। तीरथ जाऊं न मक्का हेरौं॥
न्हाइ धोइ नहिं करूं अचारा। ऊजू तें पुनि हूवा न्यारा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू की हदि छाड़ि कै तजी तुरक की राह ।
सुन्दर सहजै चीन्हियां एकै राम अलाह ।।6।।
नामदेव जब सहज पिछांनां । आतम राम सकल मैं जांनां ।।
दास कबीर सहज सुख पाया । सब मैं पूरण ब्रह्म बताया ।।'

28. गृह बैराग बोध : चरणान्त में 'जू' आवृत्ति के साथ 21 रुचिरा छन्दों में परिसमाप्त यह लघु रचना सन्त-विचार-धारा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। सन्त-चेतना में गृह-त्याग का समर्थन नहीं है, अनासक्ति अथवा निष्काम-भाव की प्रधानता अवश्य है। यहाँ गृहस्थ और विरक्त के संवाद के माध्यम से सुन्दरदास ने गृहस्थ-जीवन के सुख और वैरागी-जीवन की एकांगी सात्त्विकता की पक्षधरता को आग्रही बताते हुए गृहस्थ में वैराग्य अथवा विरक्ति में प्रवृत्ति-चेतना का सम्पोषण किया है। वे कहते हैं कि संन्यासी की आश्रय-भूमि भी तो गृहस्थ-धर्म ही है। गृही और वैरागी की कुछ उक्तियाँ यहाँ उदाहरणीय हैं—

'गृही कहै जु पुत्र धन देषत, सब दुख दूरि बिसारूं जू ।
नव जोबना जबहिं हंसि बोलै, कोटि मुक्ति गहि बारूं जू ।।
बैरागी कहै जो जहां राता, सोई तहां सुख पावै जू ।
नरकहिं रचै नरक कौ कीड़ा, चन्दन ताहि न भावै जू ।।
गृही कहै जु चन्द्र बदनी त्रिय अंग अंग छवि सोहै जू ।
चन्दन लेपन कुच मंडल पर, देव दानवा मोहै जू ।।
बैरागी कहै नव द्वार मैं, निश दिन नरक बहाई जू ।
लोहू मांस कुचन कै भीतर, ताकी कहा बड़ाई जू ।।'

इसी संवाद-शैली में सुन्दरदास का निर्णय देखिए—

'बिरक्त धर्म रहै जु गृही तें, गृहि कौं बिरक्त तारै जू ।
ज्यौं बन करै सिंघ की रक्षा, सिंघ सु बनहिं उबारै जू ।।
विरक्त सु तौ भजै भगवन्तहिं, गृही सु ता की सेवा जू ।
अश्व के कान बराबर दोऊ, जती सती कौ भेवा जू ।।'

29. हरि बोल चितावनी : यह 30 दोहों की लघु रचना है। दोहे के चतुर्थ चरण में '[सु] हरि बोलौ हरि बोल' की आवृत्ति हुई है। कथ्य की दृष्टि से इस रचना में 'मनुष्य जन्म' के महत्त्व का प्रतिपादन है। जीवनाविधि को निरर्थक नष्ट न करने की चेतावनी इस रचना का केन्द्रीय भाव है। 'जीवन' विनष्ट होने की उलाहनापूर्ण व्यंजना इसके प्रत्येक छन्द में मुखर है। जीवन का परम सत्य आत्मा अथवा परम मूल्य परमात्मा का अनुभव यदि इस जीवन में न हो पाया तो, प्राप्त सारे भोग-विलास अथवा सम्पत्ति-संग्रह, सन्त-दृष्टि में तुच्छ और व्यर्थ ही माने जाते हैं। रचना उपदेश-प्रधान होते हुए भी, तत्कालीन वैभव-विलासयुक्त जीवन एवं अभिमान भरी ज़िन्दगी में, जीवन की सार्थकता खोजने की प्रेरणा देने में समर्थ है। कुछ उदाहरण देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'किये रुपइया एकठे चोंकूटे अरु गोल।
रीते हाथिन वै गए [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।
मूंछ मरोरत डोलई ऐंठ्यौ फिरत ठठोल।
ढेरी ह्वै हैं राष की [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।
माल मुलक हय गय घने कामिन करत कलोल।
कतहू गये बिलाइकें [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।
हिरदै भीतर पैठि करि अंतःकरण बिरोल।
को तेरौ तूं कौन कौ [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।'

30. तर्क चितावनी : लगता है कि यह रचना पिछली रचना के मन्तव्य को और अधिक विस्तार से समझाने केलिए रची गई है। 56 चौपई छन्दों वाली इस रचना में भी, रचनाकार ने अनेक युक्तियों एवं उक्तियों द्वारा 'मनुष्य जीवन' की महत्ता और सार्थकता को प्रतिपादित किया है। यह 'मनुष्य देह' ही अनेक सुकर्मों का परिणाम है। अतः प्रभु-स्मरण के द्वारा ही इसकी सार्थकता सिद्ध हो सकती है। जबकि, जीवन में मनुष्य अज्ञान-भ्रमजनित अपने-पराए की आसक्ति में पड़कर, आयुष्य की अपनी चारों अवस्थाओं में लक्षित लक्ष्य से विचलित बना रहता है। अपने मन्तव्य को रचनाकार ने, प्रत्येक छन्द के चतुर्थ चरण में 'अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी' अर्थात् अरे मनुष्यो, यही तुम्हारी समझ [=बुद्धि] है? कहकर व्यंजित किया है। कवि की दृष्टि में उस पूर्ण **'सत्य'** को भुलाकर मनुष्य-जीवन के लक्ष्य से विचलित होना उचित नहीं। मूल-रचना से कुछ उदाहरण देखिए—

'देश बिलाइति हाथी घोरे। ज्यौं ज्यौं बांधै त्यौं त्यौं थोरे ।।
करि संतोष न बैठै हारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।26।।
संचि संचि करि राषी माया। औरहिं दिया न आपु न षाया ।।
हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुवारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।47।।
सकल सिरोमनि है नर देहा। नारायन कौ निज घर येहा।
जामहिं पइये देव मुरारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।55।।'

31. विवेक चितावनी : यह **'चेतावनी'** सम्बोधन-प्रधान रचना है। इसमें कुल 40 चौपई छन्द हैं। संसार की अनित्यता बताते हुए, सुन्दरदास जीवन में ही जीवन की सार्थकता खोजने की प्रेरणा देते हुए हर छन्द के चौथे चरण में **'संमुझि देषि निश्चै करि मरना'** कहकर अनित्य जीवन में नित्य जीवन-सत्य का अनुभव करने की प्रेरणा देते हैं। 'मृत्यु' जीवन का निश्चित सत्य है। फलतः शुभ आचरण में व्यक्ति-विवेक की तलाश अपेक्षित है। कर्म-सिद्धान्त में जो 'कर्म' बोया जाता है, उसी की फसल कटती है। अधिक धन-संग्रह एवं दुःखदायक कर्मों का निषेध करते हुए तृष्णा और अहंकार से बचने की चेतावनी ही साधु-विवेक है। देखिए—

'जोरि जोरि धन भरे भंडारा। अर्ब्बं षर्ब्बं कछु अन्त न पारा ।।
षोषी हांडी हाथि पकरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश बिलाइति घोरा हाथी। इन मैं कोउ न तेरा साथी ॥
कबहू काहू दु:ख न दीजै। अपनी घात आप क्यौं कीजै ॥
जो बाहै लुनियेगा सोई। अंमृत षाइ कि विष फल होई ॥
इहै बिचारि अशुभ सौं टरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥
गर्व न करिये राजा राना। गये बिलाइ देव अरु दाना ॥
तिन के कहूं षोज हू षुर ना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥'

32-34. पवंगम-अडिला-मडिल्ला छन्द : ये तीनों छन्द-अलंकार प्रधान रचनाएँ हैं, जो क्रमश: 18, 30 और 20 छन्दों में परिसमाप्त हैं। इनमें रचनाकार ने श्लेष-यमक के बलबूते पर, शब्द-प्रयोग-कौशल के द्वारा चमत्कार भरने का प्रयत्न किया है। किन्तु, किसी भी छन्द-रचना में सन्त विचारधारा का तिरस्कार या तिरोभाव दिखाई नहीं देता। अपने लक्ष्य पर केन्द्रित बने रहकर ही सन्त सुन्दरदास ने लाटानुप्रास अलंकार प्रयोग-रीति से, एक-एक शब्द में चार-चार अर्थ निहित किए हैं। तीसरी छन्द-रचना में दो-दो अर्थ ही हैं। इन रचनाओं में छन्द-प्रवाह में अपना प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। पवंगम [=अरिल] छन्द में विरहिणी [-जीवात्मा] की विरह-दशा स्वयं व्यंजित है। तीनों रचनाओं से क्रमश: एक-एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

1. 'विरह जरावत मोहि न कबहूं आरसी ॥
बिरहनि अति बेहाल न देखत आरसी ॥
शीतल मंद सुगन्ध पवन पुनि आरसी ॥
[परि हां] सुन्दर पिय परदेश न आयौ आरसी ॥'

2. 'पिय बिन सीस न पारूं पाटी। पिय बिन आंषिनि बांधौं पाटी ॥
पिय बिन और लिषूं नहिं पाटी। सुन्दर पिय बिन छतियां पाटी ॥'

3. 'मूंछ मरोरत टेढी पागा। रोमहि रोम विषै रस पागा ॥
काल अचानक आइ पछारा। सुन्दर भया छिनक मैं छारा ॥'

35. बारहमासो : 13 पवंगम [=अरिल] छन्दों में परिसमाप्त 'बारहमासा' रचना में सुन्दरदास ने, सन्त-वाणी परम्परा के अनुरूप, देश की लोक-सांस्कृतिक चेतना को वाणी बद्ध किया है। इस बारहमासे में विरहिणी [-जीवात्मा] की मानसिकता को, कलात्मक कौशल के साथ अभिव्यक्ति मिली है। इसमें काव्य-रूढ़ियों का पूरा सहकार देखने मिलता है। विरहिणी की बेचैनी [-तालाबेली] प्रत्येक छन्द में मुखर है। इसमें सम्वत्सर काल-गणना के अनुरूप चैत्र से फाल्गुण तक क्रमश: बारह महीनों पर एक-एक छन्द की रचना की गई है। फाल्गुण मास में सुहागिनों के बीच विरहिणी की मानसिकता द्रष्टव्य है—

'फागुन घर घर फाग सु षेलहिं कंत सौं।
केसरि चन्दन अगर गुलाल बसंत सौं ॥
मेरै नख शिख अगिन बारि बिरहा दई।
[परि हां] सुन्दर मृतक समान देषि बिरहनि भई ॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

36. **आर्युबल भेद आत्मा बिचार** : यह कुल 13 चौपई छन्दों की लघु रचना है। इसका विचार पक्ष यह है कि भौतिक शरीर की आयु [=काल]-सीमा होती है। वह शरीर चाहे ब्रह्माजी का हो अथवा लघु कीट-पतंग का। सृष्टि में सब को जन्म लेकर मरना है, विलय होना पड़ता है। अतः अपनी-अपनी आयु-सीमा में अजर-अमर अखण्ड-अविनाशी आत्म चैतन्य का अनुभव करना ही मनुष्य-जीवन का लक्षित लक्ष्य होना अपेक्षित है। मिथक व्यंजित धारणाओं पर आधारित मनुष्य की आयु सतयुग में एक लाख, त्रेता में दस हजार, द्वापर में एक हजार एवं कलियुग में एक सौ वर्ष बताई गई है। मनुष्य-जीवन को भोगते या व्यतीत करते हुए अन्त में मृत्यु-काल आ ही पहुँचता है। पर, सारा जीवन समाप्त करते हुए, मनुष्य [भौतिक शरीर-]आयु से बाहर नहीं सोच पाता। वह यह नहीं सोच पाता कि इस जीवन में एक और अखण्ड जीवन है, जो न घटता है, न बढ़ता है। वह सदा [-वर्तमान] सम रूप में व्याप्त बना रहता है। इसी विचार को सन्त सुन्दरदास ने प्रस्तुत रचना में रेखांकित किया है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'यौं आयुर्बल घटतौ जाइ। काल निरंतर सब कौं षाइ ॥
ब्रह्मा आदि पतंग जहां लौं। उपजै बिनसै देह तहां लौं ॥
यौं लघु दीरघ घट कौ नाश। आतम चेतन स्वयं प्रकाश ॥
अजर अमर अबिनाशी अंग। सदा अखंडित सदा अभंग ॥
घटै न बढ़ै न आवै जाइ। आतम नभ ज्यौं रह्यौ समाइ ॥'

37. **त्रिबिध अंतःकरण भेद** : नौ चौपाई छन्दों वाली इस लघु रचना में प्रश्नोत्तर शैली का आश्रय लिया गया है। इसमें अन्तःकरण चतुष्टय [=मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का समवाय] के बाह्य, आन्तरिक [-सूक्ष्म] और परम ये तीन-तीन भेद बताए गए हैं और तीनों ही स्तर-भेदों में उनकी प्रकृति, प्रभाव और प्रवृत्ति को दर्शाया गया है। मन एवं अहंकार के तीन स्तर-भेद देखिए—

'उहै बहिर्मन भ्रमत न थाकै। इंद्रिय द्वार बिषै सुख जाकै ॥
अंतर्मन यौं जानै कोहं। सुन्दर ब्रह्म परम मन सोहं ॥2॥
बहि जो अहं देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौं प्रानी ॥
अंतः अहं कहै हरिदासं। परम अहं हरि स्वयं प्रकासं ॥8॥'

38. **पूरबी भाषा बरबै** : 'बरवै' छन्द को यद्यपि देश के पूर्वी भू-भाग की लोक-भाषा शैली का प्रिय छन्द माना गया है। किन्तु, सुन्दरदास ने इसे अपनी प्रयोग-क्षमता से पश्चिमी भू-भाग [-राजस्थान] में भी बखूबी निरूपित किया है। इस लघु रचना में 20 बरवै छन्द हैं, जिनमें सांकेतिक [-गूढार्थ प्रधान प्रतीक] शब्दावली यद्यपि सन्त-वाणी के व्यवहार-क्षेत्र की ही है, किन्तु शब्दावली का चयन, छन्द-प्रवाह में उसकी सहज योजना और तरलता तथा विरहिणी [-सुहागिनी] की मानसिकता की मार्मिक व्यंजना कवि-कौशल की देन है। छन्दों में निहित गूढ़ार्थ भी जन-चेतना केलिए दुरूह नहीं कहा जा सकता। प्रयुक्त सांकेतिक शब्दावली, सन्त-चेतना की अनुभूति को शताब्दियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभविष्णु बनाती रही है। रचना में रचनाकार का भाषाधिकार पद-पद पर स्वयं मुखर है। ऋतु-प्रभाव एवं प्रेम-हिंडोले के रूपक में रचनाकार वेदान्त प्रतिपादित सन्त-चेतना का कहीं विस्मरण नहीं कर पाया है। साथ ही लोकगीतमय आंचलिक भाव-स्पर्श रचना को और अधिक मार्मिक बनाने में सहायक हुआ है। एक अंश द्रष्टव्य है—

'सब के हू मन भावन सरस बसंत। करत सदा कौतूहल कामिनि कंत ॥
झूलत बैसि हिंडोरनि पिय कर संग। उत्तम चीर बिराजल भूषन अंग ॥
एक सेज वर कामिनी लागलि पाइ। पिय कर अंगहि परसत गइलि बिलाइ ॥
रस महिया रस होइहि नीरहि नीर। आतम मिलि परमातम षीरहि षीर ॥'

39. **साखी [-साषी] ग्रन्थ** : सभी 31 अंगों में समायोजित साखियों की कुल संख्या 1351 है। जैसाकि बताया गया है, 'साखी ग्रन्थ' बहुत अंशों में 'सवैया ग्रन्थ' का सार ही है। यद्यपि, कुछ 'अंग' साखी के सवैया से और कुछ सवैया के साखी-अंगों से मेल नहीं खाते। पर, विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उनमें विचार-पार्थक्य नहीं दिखाई देता। अंगों की संख्या और उनके शीर्षकों के उल्लेख की दृष्टि से, साखी-भाग में आए अंगों का विवरण-विवेचन सभी साखी अंगों के साथ-साथ अलग से किया गया है। वहीं पर 'साखी' और 'सवैया' अंगों की मिलान-विवरणिका भी दी गई है। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन से लगता है कि शायद 'सवैया ग्रन्थ' की रचना के बाद अथवा उसके अधिकांश अंगों की रचना के बाद ही सुन्दरदास ने साखी-ग्रन्थ की रचना की होगी। क्योंकि [क] मूल प्रति के सब से अन्त में, साखियों के बाद संस्कृत के 5 छन्द [2 शार्दूलविक्रीड़ित, 1 अनुष्टुप, 1 भुजंगप्रयात और पुनः 1 अनुष्टुप] दिए गए हैं, जो [ख] मूल प्रति में 'फुटकर काव्य' के बाद दिए गए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थावली में संस्कृत छन्दों को तथा 'बाई जी की भेंट के सवैये' और 'अंत समय की साखी' को भी मूल रचना-ग्रन्थों के क्रम में व्यवस्थित किया गया है। वैसे, साखी जैसे लघु आकार के छन्द में अध्यात्म-विषय को प्रभावी ढंग से समाहित कर पाना सन्त कवि सुन्दर के कवि-कौशल की सामर्थ्य ही कहा जा सकता है।

40. **सवैया ग्रन्थः सुन्दर विलासः** : सुन्दरदास कृत काव्य-ग्रन्थों में [सवइया-] 'सवैया' या 'सुन्दर विलास' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुआ है। इसका नामकरण स्वयं रचनाकार ने, सवैया छन्द की बहुलता के कारण, 'सवैया' [-सवइया] ही निर्धारित किया है। किन्तु, बाद में उन्हीं की परम्परा के किसी साधु ने अथवा किसी कल्पनाशील सम्पादक ने इस ग्रन्थ का शीर्षक 'सुन्दर विलास' दे दिया है। रुचि के अनुकूल होने के कारण यह 'सुन्दर विलास' शीर्षक अधिक प्रचलित हुआ है। वैसे, सन्त कवि सुन्दरदास को हिन्दी-काव्यधारा में सवैया-छन्द-रचना में सर्वश्रेष्ठ एवं सिद्धहस्त रचनाकार कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। छन्द की प्रकृति की दृष्टि से 'सवैया' छन्द वर्णिक भी है और मात्रिक भी। सुन्दरदास ने दोनों ही प्रकृति के सवैया छन्दों का समायोजन इस ग्रन्थ में किया है।

उक्त समूचे 'सवैया ग्रन्थ' में कुल 563 छन्द हैं। इनमें सवैया के चार उपभेदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ही कुल 272 छन्द है। 'सवैया' को किरीट, वीर, केतकी, सवाया आदि नामों से भी उल्लिखित किया जाता है। किन्तु, रचना में सवैया के प्रमुख रूप में चार भेद निर्देशित: हैं, जिनकी अलग-अलग छन्द संख्या है—**'सवैया'** कुल छन्द 42, **'इंदव'** [-मत्तगयन्द] कुल छन्द 222, **'दुमिला'** कुल छन्द 2, **'हंसाल'** कुल छन्द 6, इसप्रकार इसमें कुल 272 सवैया छन्द हैं। सवैया छन्द के आसपास ही, आकार की दृष्टि से, कवित्त और कुण्डलिया छन्दों की भी गणना होती है। कवित्त में 'मनहर' छन्द रीतिकाल का प्रिय छन्द माना गया है। यद्यपि 'कवित्त' सवैया छन्द नहीं है, फिर भी इसकी मनोहर प्रवाह-गति और विषय-प्रतिपादन की क्षमता के कारण कवियों का यह प्रिय छन्द बना रहा है। 'सवैया ग्रन्थ' में सुन्दरदास ने 289 मनहर छन्दों का संयोजन किया है, जबकि कुण्डलिया छन्द कुल 2 ही हैं। इसप्रकार 'सवैया ग्रन्थ' की कुल छन्द संख्या 563 है। यह छन्द-संख्या प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से कुल 34 अंगों [=अध्यायों] में व्यवस्थित है।

प्रतिपाद्य की दृष्टि से 'सवैया ग्रन्थ', कुल मिलाकर उपासना अर्थात् ज्ञान-भक्ति और वैराग्य का ग्रन्थ है। लोकाचरण की दृष्टि से नीति-कथन रचना का प्रमुख अंग कहा जा सकता है। साथ ही 'पतिव्रत कौ अंग', 'सूरातन कौ अंग', 'दुष्ट कौ अंग', 'विपरीत ज्ञानी कौ अंग' एवं 'वचन विवेक कौ अंग' आदि प्रसंगों को पढ़कर ऐसा लगता है कि सुन्दर-वाणी में रचनाकार की समाज-चेतना, उसकी अध्यात्म-चेतना से किसी प्रकार भी शिथिल अथवा कम महत्त्व की नहीं है। इन प्रसंगों में वस्तु जगत् स्वयं मुखर है। समाज-जन के समक्ष रचनाकार ने व्यवहार या आचरण की जो मर्यादा अथवा आदर्श प्रस्तुत किया है, वह उसे, अध्यात्म चेता सन्त-साधक की परिधि से निकाल कर समाज चेता सन्त कवि की व्यापक भूमिका में प्रतिष्ठित करता है। हमारे समाज में परिवार-इकाई, पूरे समाज की बुनावट की रीढ़ मानी गई है। इस रीढ़ में जो जीवन्त ऊर्जा संचारित होती है, वह नारी के कारण। उस नारी के 'आचरण' को 'पतिव्रत' की कसौटी [-खासतौर पर मध्यकाल एवं विशेषत: रीतिकाल की विलासी मानसिकता के वातावरण में] प्रदान करना, लोक-चेतना को सामाजिक सन्दर्भ में तेजस्विता प्रदान करना ही है। भक्ति को प्रधानता देते हुए भी पतिव्रत का ऐसा समर्थन रचनाकार की सामाजिक दृष्टि का ही प्रतिफलन है। सामाजिक भूमिका में 'पति' बिना 'पति' [-मर्यादा] होना कितना कठिन था, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। देखिए—

> 'पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुन्य दान,
> पति ही तीरथ न्हान पति ही को मत है।
> पति बिन पति नाहिं पति बिन गति नाहिं
> सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है॥'

—पतिव्रत०, छन्द 7

वैसे भी, पत्नी की सामाजिक मर्यादा का निर्वाह दुष्ट, असाधु अथवा कायर [-भीरु-विलासी] पुरुष के रहते हुए, लोकादर्श की कसौटी पर खरा उतर पाना कठिन था। अत: पुरुष को पुरुषार्थी बनाना, ध्येय-निष्ठ करना एवं अपने सम्बन्धों के प्रति साधु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाए रखना सुन्दर-वाणी की सहज व्यंजना कही जा सकती है। इस बात को 'सूरातन कौ अंग', 'दुष्ट कौ अंग', 'चाणक' और 'साधु कौ अंग' आदि प्रसंगों के अभिमत भी पुष्ट करते हैं। चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री, यदि वह अपने 'एक व्रत' से विचलित होता है, तो सदाचरण में हेय ही समझा जाता था। ऐसे हेय व्यक्ति को धिक्कारते हुए सुन्दर कहते हैं—

'आनकि वोर निहारत ही जैसैं जात पतिव्रत एक व्रती कौ।
होत अनादर ऐसी हि भांति जु पीछै फिरै पुनि सूर सती कौ॥'
'सुन्दर ताहि न आदर मांन फिरै बिमुखी अपनी पति षोई।
बूडि मरै किनि कूप मंझार कहा जग जीवत है सठ सोई॥'

—सवैया०, पतिव्रत०, छन्द 1, 2

एक व्रती मनुष्य ही है, जो अपने आदर्श केलिए, अपने जीवन-सत्य केलिए प्राणों तक की आहुति देने में कभी हिचक नहीं करता। ऐसे लक्ष्य-लक्षित मनुष्य को 'शूरवीर' से कम क्या कहा जा सकता है ? देखिए—

'षाइ लौंन स्याम कौ हरामषोर कैसें होइ
नामजाद जगत मैं जीत्यौ पन तीनौं है।
सुन्दर कहत ऐसौ कोऊ एक सूरबीर
सीस कौं उतारि कैं सुजस जाइ लीनौं है॥'
'पांव रोपि रहै रन मांहि रजपूत कोऊ
हय गय गाजत जुरत जहां दल है।
बाजत झुझाऊ सहनाई सिंधूराग पुनि
सुनत ही काइर की छूटि जात कल है॥'

—सवैया०, सूरातन०, छन्द 2, 3

समाज में ऐसे चरित्र के विपरीत चाटुकार अथवा छली-कपटी का चरित्र होता है। सन्तों ने ऐसे चरित्र को दुष्ट, असाधु अथवा असामाजिक कहा है। ऐसा दुष्ट चरित्र समाज में भेड़िये की तरह घातक होता है। देखिए—

'घात अनेक रहैं उर अंतर दुष्ट कहै मुख सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्याघ्रहिं ज्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥'
'आपुन काज संवारन कै हित और कौ काज बिगारत जाई।
आपुन कारज होउ न होउ बुरौ करि और कौ डारत भाई॥'

—सवैया०, दुष्ट०, छन्द 2, 3

ऐसे ही छली-कपटी पाखंडी 'ज्ञानियों' के आचरण से दुखी होकर सुन्दरदास कहते हैं—

'जैसैं कोउ भांडे मांहिं प्याज कौं छिपाइ राषै
चीथरा कपूर कौ लै मुख बांधि धर्यौ है।
सुन्दर कहत ऐसैं ज्ञानी है जगत मांहि
तिन कौं तौ देषि करि मेरौ मन डर्यौ है॥'

—सवैया०, बिपरीत ज्ञानी०, छन्द 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राग तत्त्व' साधु में भी होता है और दुष्ट में भी, राजा में भी होता है और वैभव-विलासी में भी। किन्तु, 'राग' की समता-सामर्थ्य का विस्तार कुछ साधु-जनों में ही हो पाता है। राग-स्वार्थ की प्रवृत्ति के आधार पर कुछ को तो, जनहित अथवा प्राणी मात्र का हित-साधक माना जाता है और कुछ को इन्द्रिय-लोलुपता के कारण, तुच्छ संकीणी वृत्ति का समझकर. हेय बताया जाता है। ऐसे ही लोगों के सम्बन्ध में सुन्दरदास का अभिमत द्रष्टव्य है—

'इन्द्रानी शृंगार करि चन्दन लगायौ अंग
वाहि देषि इन्द्र अति काम बस भयौ है।
शूकरी हू कर्दम के चहले मैं लोटि करि
आगै जाइ शूकर कौ मन हरि लयौ है॥
जैसौ सुख शूकर कौं तैसौ सुख मघवा कौ
तैसौ सुख नर पशु पंषिन कौं दयौ है।
सुन्दर कहत जाकै भयौ ब्रह्मानन्द सुख
सोई साधु जगत मैं जन्म जीति गयौ है॥'

—सवैया०, साधु०, छन्द 14

समाज-सन्दर्भ में साधु-सन्त जाति-वर्ण अथवा वैभव-विलास के साधनों की प्राप्ति-अप्राप्ति के आधार पर ऊँच-नीच के भेद को नहीं मानते। साधु की मान्यता तो उस नाविक जैसी होती है, जिसकी नाव में सब जाति-वर्णों के मनुष्य बैठते हैं और वह उन सबको एक साथ ही, एक जैसे आचरण-व्यवहार के आधार पर, दूसरे तट तक पहुँचाने का दायित्व-निर्वाह करता है। देखिए—

'ज्यौं कणिहार न भेद करै कछु आइ चढ़ै तिहिं नाव चढ़ावै।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हू शूद्र मलेछ चण्डालहि पार लंघावै॥'

—सवैया०, साधु०, छन्द 8

सामाजिक धरातल पर सुन्दरदास ने कहीं भी जन्मगत जातियों की श्रेष्ठता या हीनता को स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि में 'कर्म' ही व्यक्ति को श्रेष्ठ और हीन बनाते हैं। मनुष्य के कर्म भी मात्र शारीरिक [-भौतिक] धरातल पर नहीं आँके जा सकते। अपितु, सन्तों ने मानसिक धरातल पर, कर्त्ता के कर्म में निहित मन्तव्य के आधार पर, व्यक्ति की श्रेष्ठता और हीनता का निर्धारण किया है। देखिए—

'देह ई कौं आपु मानि देह ई सौ होइ रह्यौ
जडता अज्ञान तम शूद्र सोई जांनिये।
इन्द्रिनि के व्यापारनि अत्यन्त निपुनि बुद्धि
तमो रज दुहुं करि वैश्य हू प्रमांनिये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतहकरण मांहि अहंकार बुद्धि जाकै
रजोगुण वर्द्धमान क्षत्री पहिचांनिये।
सत्व गुण बुद्धि एक आतमा विचार जाकै
सुन्दर कहत वह ब्राह्मन बषांनिये॥'
'क्षत्री तूं कहावै तौ तूं प्रजा प्रतिपाल करि
सीस पर एक ज्ञान क्षत्र कौं फिराइये।
वैश्य तूं कहावै तौ तूं एक ही ब्यापार जानि
आतमा कौ लाभ होइ अनायास पाइये॥'
—सवैया०, विचार०, छन्द 12, 25

कुल मिलाकर 'सवैया ग्रन्थ' जन-विश्वास, लोक-साधना एवं लोक-ग्राह्य सात्विक भावों की अभिव्यक्ति का 'महाकाव्य' है। इसमें अभिव्यक्त भावों में ज्ञान-विचार, भाव-भक्ति, साधना-वैराग्य, नीति-सूक्ति एवं सामाजिक के सदाचरण और सदाशयता की मार्मिक व्यंजना हुई है। इन्हीं भावों के आधार पर सन्त-वाणी के समीक्षकों ने, 'सवैया ग्रन्थ' को **'शान्त रस का महाकाव्य'** अथवा **'ज्ञान संहिता'** की संज्ञा दी है। वास्तव में रचना की मार्मिकता उसके प्रतिपाद्य में ही निहित नहीं होती। अपितु, प्रतिपादन-क्षमता में भी होती है। भाषा-छन्द का 'मुहावरा' ही, रचनाकार का अन्तःबाह्य व्यक्तित्व बनकर, साहित्य-इतिहास में युगों तक अपनी विशिष्ट पहिचान बनाए रखता है। वैसे तो, सुन्दरदास के अभिव्यक्ति पक्ष पर सवैया ग्रंथ के मूल-प्रारम्भ में विचार किया गया है। पर, यहाँ यह बता देना अपेक्षित है कि सुन्दरदास का सवैया-रचना के प्रति अतिरिक्त लगाव था। इसका एक प्रमाण यह है कि उन्होंने, अन्य सन्तों से अलग हटकर, सवैया [-मनहर] छन्दों को अपने विचार-चिन्तन की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम बनाया है। सन्त-काव्य-धारा में 'साखी' और 'पद' की रचना प्रायः सभी सन्तों ने की है। किन्तु, सुन्दरदास ने [-रज्जब ने भी], समाज-अध्यात्म के विषय की गहनता और विस्तार के कारण, साखी-अंगों में निहित, प्रायः उसी विचार-विषय को, साखी से बड़े सवैया [-मनहर] छन्द में बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही नहीं, सुन्दर कृत साखी-अंग तो कुल 31 ही हैं, जबकि सवैया-अंग 34 हैं। सवैया-अंगों में 10 वे अंग भी हैं, जो साखी-अंगों में नहीं हैं, जबकि साखी-अंगों में 8 वे अंग हैं जो सवैया-अंगों के शीर्षकों में नहीं हैं, अथवा कुछ भिन्नता के साथ हैं। सच तो यह भी है कि सवैया-अंगों के बहुत से भाव-प्रसंगों को ही दोहा [=साखी] जैसे छोटे छन्द में सार रूप में समाहित किया गया है।

41. पदावली ग्रन्थ : प्रस्तुत संग्रह में सुन्दरदास के 212 पद संकलित हैं, जो 27 विभिन्न रागों में विनियोजित हैं। रागों की यह विभिन्नता, रचनाकार की दक्षता के साथ ही प्रसंग, आशय एवं अर्थ-सन्निवेश आदि की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यह प्रसिद्ध है कि सुन्दरदास जी गान-विद्या में निपुण थे। इन पदों में ताल-लय सूचना तो पद के शीर्ष पर अंकित है ही। वैसे भी ये पद, संगीत या गान्धर्व-कला के विनियोजन की दृष्टि से समीक्षा की अपेक्षा रखते हैं। पदों में निहित भाव-प्रवणता, विचारधारा की दृष्टि से अर्थ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाम्भीर्य एवं संगीत कला की दृष्टि से वर्ण-मैत्री, शब्द-संयोजन एवं ताल-लय का कौशल, संगीत पारखी केलिए सुखद विस्मय का कारण बनता है। 'पद' शब्द यहाँ अपने श्लेषत्व में भी द्रष्टव्य है—**'सन्तो पद में अचरज भारी'** [-राग ललित, पद 8]। अर्थ-गंभीरता, प्राय: दार्शनिक पक्ष की अतिशयता के कारण देखने को मिलती है। रचनाकार जब यह कहता है कि **'पद में निर्गुण पद पहिचाना**। पद कौ अर्थ विचारै कोई पावै पद निर्वाना।' [-राग देवगंधार, पद 3] तो पाठक की चेतना को कुछ 'अधिक' सोचने केलिए विवश होना पड़ता है। पदों में जहाँ कहीं पंजाबी, गुजराती, ठेठ राजस्थानी अथवा संस्कृत या फारसी की शब्दावली का प्रयोग मिलता है, वहाँ-वहाँ पाठक को अर्थ-ग्रहण करने में थोड़ी कठिनाई अवश्य होती है। वैसे, संकलित सभी पद प्राय: टकसाली ब्रजभाषा में हैं। ये पद भाषा के स्थानीय रंग के साथ-साथ मुहावरा-लोकोक्ति तथा सूक्तियों से सम्पुष्ट होकर, सन्त-चेतना के भाव-विचारों की सफल अभिव्यक्ति करने में समर्थ हैं। इन पदों का प्रतिपाद्य भक्ति की अनन्यता तो है ही, लोक-भाव का सहज सम्वर्द्धन भी है। ज्ञान-विरह की सफल अभिव्यक्ति हो अथवा मनोद्गारों का मार्मिक प्रकाशन, सभी केलिए सुन्दर-पद उदाहरणीय हैं। पदों की रागों में निबद्धता संगीत की सुर-ताल की कसौटी पर खरी उतरती है। इन पदों में 'अष्टयाम सेवा' की पूरी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

यहाँ समय-बोध की दृष्टि से प्रयोग में आए रागों पर संक्षिप्त दृष्टिपात अपेक्षित है। वैसे तो, सुन्दरदास जी के सवैये, अष्टक आदि भी गायन-वादन के संवेत-संपुट पर खरे उतरते हैं। सत्संग-गोष्ठियों में भक्ति-वैराग्य, विनय-पुकार, चेतावनी अथवा उपालम्भ आदि भावों के उत्साह भरे उल्लास की सृष्टि अथवा भक्ति-तन्मयता के वातावरण-निर्माण में सुन्दर के पदों का विशेष महत्त्व स्वीकृत हुआ है। इन पदों में शब्द और वर्ण-योजना ने पदों के गीति तत्त्व को धारदार एवं मार्मिक बनाया है। वैसे तो साधु-मण्डलियों में, संगीत-शास्त्र की कसौटी को सामने रखकर पद नहीं गाए जाते। उल्लास-उमंग और मौज-मस्ती में अथवा प्रसंगानुसार भाव-निर्वाह केलिए संवेत रूप में पद गाए जाते रहे हैं। इन्हीं मौज-मस्ती वालों में से किसी ने यह प्रचलित कर दिया कि 'साँझ की राग सकारे गावै। सो साधू मोरे मन भावै।' पर यह कोई सिद्धान्त नहीं है। और न ऐसे कथनों से रागों की समयबद्धता पर कोई आँच आती है। सुन्दर-पदों में उल्लिखित 27 रागों का पुरोहित जी ने अपनी ग्रन्थावली की भूमिका में गम्भीरता से विवेचन किया है। यह विवेचन पदों के साथ राग-ताल का उल्लेख करते हुए, ऋतु-समय अथवा भाव-रस निर्वाह की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विवेचन है। वैसे, रागों की गहनता को समझने केलिए यह जान लेना आवश्यक है कि इनमें पारंगत होना पुस्तक-ज्ञान से सम्भव नहीं है। अपितु रुचि, अभ्यास एवं गुरु-निर्देशन के परिणामस्वरूप ही यह दक्षता प्राप्त हो सकती है। वास्तव में संगीत-विद्या कान-हाथ और वाणी-स्वर के साथ वृत्ति-केन्द्रीकरण की विद्या है। साधु-सम्प्रदायों में रागों का नियमानुसार गाया जाना किसी संगीत-सिद्धान्त के अधीन नहीं रहा है। हाँ, दादू-स्कूल के रचनाकारों में सुन्दरदास सगीत-कला में अन्य पद-रचनाकारों से अधिक पारंगत एवं प्रयोग-कुशल माने जाते हैं। उदाहरण के लिए 'एराक' राग है, जो फारस देश से आया हुआ माना गया है। इस राग को सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने पंजाब अथवा पश्चिम-क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए, किन्हीं सूफी फकीरों से सुनकर ग्रहण किया होगा। इस राग का, दादूजी एवं रज्जब जी से भी अधिक कुशल प्रयोग सुन्दरदास ने किया है। इसीप्रकार 'जैजैवन्ती' एवं 'संकरा' रागों का प्रयोग भी मानना चाहिए। सुन्दर-उल्लिखित रागों में, संगीत शास्त्र की दृष्टि से 'भैरव' ही एकमात्र राग है। शेष सब रागिनियाँ हैं, जो रागों की पुत्र-वधुएँ अथवा पुत्री मानी जाती हैं। उक्त रागों के साथ-साथ कहीं-कहीं रागिनियों का भी उल्लेख है। जैसे राग 'कल्याण' के साथ 'इमन' और 'श्याम' आदि भी हैं। रागों में निबद्ध उक्त पदों को यदि निर्गुण-काव्यधारा के मूल-विचार की दृष्टि से देखें तो कह सकते हैं कि इनके द्वारा उद्भूत [-अनुभूय] ध्वनि से नित्य विराजमान 'नाद ब्रह्म' की अनुभूति में सहायता मिलती है। इसी बात को संगीताचार्य आदित्य राम ने अपनी 'संगीतादित्य' रचना में, ब्रह्म और राग को एक बताते हुए, सन्त-हृदयों को 'अच्युत' के जय-उल्लास में लगा हुआ बताया है—

'वसति रसवति हृदि सतां नानाकारन् वहन्नलङ्कारान्।
श्रुति मात्र वेद्य विभवो वहुतर रागोदयोऽच्युतो जयति ।।'

अतः सुन्दर-पदों में निहित संगीत तत्त्व और अधिक समीक्षा की अपेक्षा रखता है।

42. **गूढार्थक रचना** : प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत सुन्दरदास की उन रचनाओं का संग्रह है, जो गूढ़ रचना-पद्धति का अवलम्ब लेकर रची गई हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत संकलित काव्यरूपों को पुरोहितजी ने 'फुटकरकाव्य' की संज्ञा दी है। वास्तव में ये रचनाएँ, रीतिकालीन अलंकरण प्रवृत्ति अथवा बुद्धि-विलास के नमूने हैं। इनमें रचनाकार की विदग्धता अथवा रचना-कौशल स्वयं मुखर है। सच तो यह है कि गूढ़ार्थक रचना, अभिव्यक्ति के ऋजु-मार्ग की द्योतक न होकर वक्र-मार्ग की अनुगामिनी बनी रहती है। इस वर्ग के अन्तर्गत कुल 12 प्रकार के गूढार्थक काव्यरूपों का उल्लेख है। ये हैं—

1. **चौबोला** : यह शब्दालंकार प्रधान गूढ़ार्थक काव्य रचना है। इस लघु रचना में कुल 17 दोहे हैं। प्रत्येक दोहे में, श्लेष के बल पर, एक अर्थ तो प्रत्यक्ष भाषित रहता है, पर दूसरा अर्थ थोड़े सन्धि-विग्रह के अवलम्ब से उद्घाटित होता है। लेकिन, प्रत्येक दोहे में चार नाम—संज्ञाओं की योजना अवश्य रहती है। इसीलिए इस काव्यरूप को **'चौबोला'** कहा गया है। एक उदाहरण देखिए, जिसमें आगरा, दिल्ली, पटना और राजमहल नगरों का उल्लेख एक ही दोहे में, शब्द-संयोजन के चमत्कार के साथ, प्रस्तुत किया है—

'आगरा सु मम पीव है, दिलि मैं और न कोइ।
पट नारी तातें भई, राजमहल मैं सोइ ।।'

उक्त दोहे को छोड़कर अधिकांश में रचनाकार ने राजस्थान के ही नगरों-कस्बों को, अभंग और सभंग पद-श्लेष के बल पर संयोजित किया है। वैसे, हिन्दी में चौबोल या चौबोला नाम से एक छन्द भी प्रसिद्ध है।

2. **गूढार्थ** : वैसे तो उक्त **'चौबोला'** रचना गूढार्थक रचना ही है। किन्तु 22 दोहों वाली इस रचना का शीर्षक ही 'गूढार्थ' दिया गया है। चौबोला में जहाँ एक छन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, श्लेष के बल पर चार नाम निकलते हैं, वहीं 'गूढार्थ' काव्यरूप में दो या दो से अधिक अर्थ निकलने की संभावना रहती है। यह काव्यरूप 'अन्तर्लापिका' पद्धति के अन्तर्गत मानी गई है। एक उदाहरण में 'देवकी', 'जसोमति' और 'कुरुषेत' शब्दों का प्रयोग स्पष्टतः द्विअर्थक है। ये शब्द-प्रयोग गोपी-कान्ह सन्दर्भ में भी निहित अर्थ की व्यंजना कराने में समर्थ हैं। देखिए—

'त्यागी माया देवकी कियौ जसोमति हेत।
पिवै अमीरस गोपिका कान्ह मिले कुरुषेत ॥5॥'

इसप्रकार अर्थ करते हुए शब्दालंकार प्रधान काव्यरूप अर्थालंकार में संक्रमित होता हुआ जान पड़ता है।

3. आद्यक्षरी : यह भी कवि कौशल की सूचना देने वाला काव्यरूप है। 'अलंकार मंजूषा' के अनुसार यह अन्तर्लापिका शैली का ही एक भेद है, जिसे **चित्रकाव्य** के अन्तर्गत गिना गया है। इस 'आद्यक्षरी' रचना में कुल 8 दोहे हैं, जिनमें प्रत्येक दोहे के, प्रत्येक चरण के प्रथमाक्षर को लेकर एक नया सार्थक दोहा बना देने में ही कवि-लक्षित कौशल देखा जा सकता है।

4. आदि अन्त अक्षर भेद : यह भी कवि कौशल को प्रदर्शित करने वाला अन्तर्लापिका का एक भेद है, जो **चित्रकाव्य** के अन्तर्गत गिना जाता है। यह 16 दोहा छन्दों की रचना है, जिसके प्रत्येक चरण का प्रथम अक्षर और अन्तिम अक्षर एक ही होता है। किन्तु, ये आदि एवं अन्त अक्षर मिलकर कोई नया शब्द नहीं बनाते। इसके लिए प्रत्येक चरण का प्रथम-प्रथम अक्षर संयुक्त होकर नया छन्द बनाते हैं। वह छन्द नया अर्थ भी देता है। आदि-अन्त अक्षरों की निश्चित पहचान केलिए, मूल पाठ में इन अक्षरों की वर्तनी को आकार-प्रकार में कुछ भिन्न रूप देकर छापा गया है।

5. मध्याक्षरी : प्रस्तुत 'मध्याक्षरी' काव्यरूप, प्रश्नोत्तर के विधान के साथ, छन्द के बाहर से उत्तर खोज निकालने के कारण, **बहिर्लापिका** शैली का भेद कहा जा सकता है। वैसे, प्रश्न का उत्तर छन्द-विधान के बीच से ही निकलना अपेक्षित है। इसीलिए इसे अन्तर्लापिका का ही भेद मानना चाहिए। इसे 'मध्याक्षरी' इसीलिए कहा जाता है कि इसमें निहित उत्तर, छन्द-मध्य के कुछ अक्षरों को छोड़ने-चुनने से निकलता है। अर्थात् उत्तर सूचक शब्दों के आदि-अन्त के अक्षर छोड़ दिए जाते हैं और बीच के अक्षर चुन लिए जाते हैं, तभी उत्तर मिल पाता है। उदाहरण केलिए तीसरे चौपई छन्द में उत्तर, सामान्य बोध-वृत्ति से ही मिल जाता है। कुल मिलाकर यह काव्यरूप कूट वर्ग की शैली का ही एक भेद है। इसमें कुल तीन छन्दों की रचना हुई है—दो छप्पय छन्द और एक चौपाई छन्द। लेकिन इन छन्दों की विशेषता यह है कि इनमें सन्त-विचारधारा को ही प्रमुख रूप से वाणी मिली है।

6. अन्तर्लापिका : इस शीर्षक के अन्तर्गत तीन छप्पय छन्द संकलित हैं, जिनमें छन्द के भीतर से श्लेष, काव्यरूढ़ि, अन्तर्कथा अथवा कवि-समयों के आधार पर, निहित अर्थ को निकालना [-निकलवाना] रचनाकार का अभिधेय है। रचनाकार ने 'प्रश्न' को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्द के कलेवर में ही समाहित कर दिया है। साथ ही 'उत्तर' भी उसी छन्द के विधान के भीतर से निकलता है। इसीलिए यह **अन्तर्लापिका**-पद्धति कही गई है। यह शैली राजस्थान अथवा पश्चिम प्रान्तों में, मध्यकाल के लोक-जीवन में प्रचलित शैली रही है। यहाँ सुन्दरदास की यह विशेषता कही जा सकती है कि ऐसी कूट प्रधान, चमत्कार प्रिय शैलियों में भी वे अपने प्रतिपाद्य अर्थात् सन्त-चेतना को संवाहित करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं।

7. बहिर्लापिका : इस काव्यरूप के निर्वाह भर केलिए सुन्दरदास ने मात्र एक छप्पय छन्द की रचना की है। वैसे तो, यह छन्द **अन्तर्लापिका** शैली के अन्तर्गत गिना जा सकता है। इसका निहित अर्थ छन्द के भीतर से ही निकलता है। छप्पय का अन्तिम चरण 'नमोनाथ सब सुख कर' है। इसके अन्तिम 'र कार' को प्रत्येक उत्तर-शब्द के अन्त में लगाने से अभिधीत उत्तर मिलता है। जैसे 'नर', 'मोर', 'नार', 'थर' [=मलाई], 'सर', 'बर' [=वट वृक्ष], 'सुर', 'दृग' [=नेत्र], 'कर' आदि। रचना की कूटता को स्वयं भेदकर उसके कूटत्व के समाधान का सुख भी स्वयं ही प्राप्त किया जा सकता है।

8. निमात छन्द : इसमें केवल एक छन्द की रचना है। यह 'सवैया ग्रंथ' में 'चाणक कौ अंग' के अन्तर्गत समायोजित दूसरा छन्द है। इस छन्द की विशेषता यह है कि इसमें कोई भी अक्षर-शब्द-पद मात्रा-संयुक्त नहीं है। इसीलिए इसे निमात [=मात्रा रहित] छन्द कहा गया है।

9. दीर्घाक्षरी : इस शीर्षक के अन्तर्गत एक छन्द की रचना है। यह छन्द **सवैया ग्रन्थ** के 'काल चितावनी कौ अंग' का 25वाँ छन्द है। इस छन्द की मौलिक विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक वर्ण-अक्षर का समायोजन गुरु [=दीर्घ] मात्रिक है। रचना-कौशल की विशेषता वाले इस छन्द में सन्त-चेतना को रचनाकार ने बड़ी प्रतिबद्धता के साथ विनियोजित किया है।

10. सिंहावलोकनी : अर्थात् सिंह की तरह चतुर्दिशि दृष्टि घुमाकर देखने की अदा से अपने परिवेश को निहारना। यह शीर्षक स्वयं व्याख्येय है। प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत केवल एक छप्पय छन्द है, जिसकी चार पंक्तियों में आठ-नौ प्रश्न हैं। ये प्रश्न, पूरे प्रतिपाद्य [-क्षेत्र] का सिंहावलोकन करते हैं। 'सदा मारसी काम' के माध्य से सभी प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

11. प्रतिलोम-अनुलोम : इस शीर्षक के अन्तर्गत भी एक छप्पय छन्द का नियोजन है। इसमें रचनाकार ने गूढ़ार्थक शैली में प्रतिलोम और अनुलोम-क्रम पद्धति को समझाया है। **प्रतिलोम** शैली क्रम में विन्दु से विस्तार [-अन्दर से बाहर] और **अनुलोम** शैली क्रम में बिन्दु [-बाहर से अन्दर] मूल की ओर गति रहती है। 'यह रस कथा दयाल की' निष्कर्ष-कथन में प्रतिलोम-अनुलोम दोनों ही क्रम-पद्धतियों को समझाया गया है।

12. ज्ञान प्रश्नोत्तर [-प्रष्णोत्तर] : इस शीर्षक के अन्तर्गत चार छप्पय छन्द हैं, जिनमें दो प्रश्न शैली में हैं और दो [गुरू-] उत्तर रूप में हैं। प्रश्नोत्तर शैली लोक-बोध की सहज सुलभ शैली है। इसके माध्यम से रचनाकार ने, जिज्ञासु के अनुरूप अपने सन्त-मन्तव्य को सहज [-ग्राह्य] रूप में प्रस्तुत किया है। इसके बाद एक 'कुण्डलिया' छन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया गया है, जो इस बात की सूचना देता है कि ज्ञान-विचार-अनुभव के फलस्वरूप [काया-] गढ़-विजय पूर्ण रूप से सम्पन्न हुई है । सुन्दरदास ने इस बात को **'सुन्दर यौं गढ़ लियौ बिषम होतौ गढ़ काया'** कहकर अपने मन्तव्य की पुष्टि की है ।

43. चित्रकाव्य : काव्य शास्त्र के अन्तर्गत, काव्य-प्रकारों में **चित्रकाव्य** को अधम काव्य माना है । चित्रकाव्य के दो भेद बताए गए हैं—शब्द-चित्र और अर्थ-चित्र । शब्द-चित्र में शब्दालंकार प्रधान रहता है और अर्थ-चित्र में अर्थालंकार । शब्दालंकार प्रयोग में जहाँ पद्य रचना में शब्द-चित्र निर्मित हो वहाँ चित्रालंकार होता है । अर्थात् वर्णों के संयोजन से जहाँ चित्र-आकृति बनती हो, वह रचना चित्रकाव्य के अन्तर्गत आती है । इसप्रकार की निर्मिति या संयोजन में रचनाकार को बड़ा परिश्रम एवं रचना-नैपुण्य का प्रयोग करना पड़ता है । पर, न जाने क्यों इसे 'अधम काव्य' कहकर काव्यशास्त्रियों ने इसकी उपेक्षा की है । रचनाकार अपना बुद्धि-कौशल वर्ण-विन्यास एवं पद-संयोजन में दिखाता है । वह शब्द-सौष्ठव एवं अर्थ-सौन्दर्य पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता । आचार्य मम्मट ने इसे शब्द-चित्र, वाच्य-चित्र एवं व्यंग्य [-चित्र] कहकर 'कष्ट-काव्य' की संज्ञा दी है । देखिए—'शब्दचित्रं वाच्यचित्रम् अव्यंग्यंत्ववरं स्मृतम्', 'तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृति हेतुता । कष्टं काव्यमेतदिति' [—काव्यप्रकाश, 1/5 तथा 9/85, वृत्ति] । आचार्य मम्मट से पहले आचार्य दण्डी ने इसकी विवेचना तो की है, पर कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी । आचार्य रुद्रट ने इसका लक्षण बताते हुए कहा है कि क्रमिक वर्ण-योजना के आधार पर जब पदार्थों की आकृति [-चित्र] निर्मित हो, तो 'चित्रालंकार' होता है । इसमें वैचित्र्य [-तत्त्व] का रहना अनिवार्य है । वर्णों के क्रमिक विन्यास, बन्ध अथवा नियमादि से जब चक्र, पद्म आदि वस्तुओं के चित्र तैयार हों तो वे चित्रालंकार होते हैं । ये चित्रालंकार ही **चित्रकाव्य** के अन्तर्गत आते हैं । चित्रालंकार-रचना की उक्त परम्परा में सन्त कवि सुन्दरदास ने चित्र-काव्य-बन्धों की रचना की है । चित्रकाव्य के अन्तर्गत आने वाले छन्दों में भी ज्ञान-वैराग्य, भक्ति और नीति की मूल चेतना निहित है । ऐसे ही चित्रकाव्यों की रचना सुन्दरदास के समकालीन एवं स्नेही नबाब अलिफ़ खाँ [उपनाम 'जान कवि'] ने भी अपने रीति-ग्रन्थ 'कवि वल्लभ' [रचना सं० 1704 वि०] में की है । स्वामी जगजीवणदास जी की वाणी में भी चित्रकाव्यों की रचना है । इस काव्य-भेद के अन्तर्गत सुन्दरदास ने 11 विशेष बन्धों का नामोल्लेख करते हुए 26 छन्दों की रचना की है । इन छन्दों में से कुछ तो मूल-ग्रन्थ में भी आ चुके हैं । किन्तु, सात नए छन्द भी हैं । पाण्डुलिपि के प्राचीन गुटके में इन चित्रकाव्य-बन्धों में से 7 के चित्र भी दिए गए हैं । ये बन्ध हैं—छत्र बन्ध, कमल बन्ध, चौकी बन्ध, गौमूत्रिका बन्ध, चौपड़ बन्ध, ज़ीनपोस बन्ध, वृक्षबन्ध, नाग बन्ध, हार बन्ध, कंकण बन्ध, निगड़ बन्ध हैं । इनमें से एक-दो छन्दों के तो दो-दो चित्र भी हैं । 14 चित्रों सहित इन सब बन्धों का विवेचन मूल पाठ के अन्तर्गत यथास्थान किया गया है । ये चित्र बन्ध क्रमशः इसप्रकार हैं—

1. छत्र बन्ध : इस बन्ध के अन्तर्गत 1 छप्पय छन्द की रचना है । यह छप्पय वैसे तो अन्तर्लापिका का ही एक भेद है । इस छन्द के अन्त में, प्रत्येक चरण के आदि अक्षर को ले-लेकर जो 'सुं-द-र-भ-ज-हु-नि-रं-ज-नं' पादार्ध बनता है, वही कवि का अभिधेय है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण [-शब्द] अथवा छन्द-चरणों में निहित जो सम्भावित अर्थ निकलते हैं, वह रचनाकार के कौशल का ही प्रतिफल है। उदाहरण केलिए विधि-सुत—चार, भोजन-रस—छः, योयांग—आठ आदि। अन्तिम पंक्ति में 'सब साधन कै सिर छत्र' 'कहकर छत्र' बन्ध को कवि ने स्वयं शिरोमणि रूप में रख दिया है। ग्रन्थावली में मूल पाठ के साथ 'छत्र बन्ध' का चित्र दिया गया है।

2. कमल बन्ध : इस बन्ध के विनियोजन केलिए सुन्दरदास ने 2 छप्पय छन्दों की रचना की है। ये हैं—'दरसन अति दुख हरन' और 'गगन धर्‍यौ जिनि अधर'। इस बन्ध के रचना-विधान के साथ कमल के चित्र भी दिए गए हैं। चमत्कार प्रधान चित्रकाव्य के अन्तर्गत होते हुए भी, इन दोनों छन्दों में सन्त-काव्य की मूल-चेतना का ही प्रसार लक्षित है।

3. चौकी बन्ध : इसमें चामर और चौपईया इन दो छन्दों की रचना है। चामर छन्द में फारसी-उर्दू शब्दों का बाहुल्य है और चौपईया छन्द में लोक-भाषा का मिठास प्रमुख है। पर, सन्त-साधना का चैतन्य इन दोनों में अभिव्यंजित है। चित्रकाव्य शैली के होते हुए भी छन्दों को पढ़ने से सन्त-वाणी पढ़ने जैसा सुख मिलता है। ग्रन्थावली के मूल-पाठ में 'चौकी बन्ध' के चित्र दिए गए हैं।

4. गोमूत्रिका बन्ध : जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है, 'गो' [=बैल, वृषभ अथवा गाय या 'गो' इन्द्रिय] के चलते [-रहते] हुए, भूमि पर जो टेढ़ी-मेढ़ी मूत्रधारा पड़ती-चलती है, उस मूत्र-लहरी के द्वारा उभरने वाले आकार से जो [चित्र-] आकृति बनती है, उसी के आधार पर 'गोमूत्रिका बन्ध' नामकरण हुआ है। इस चित्र-बन्ध को हिन्दी काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में इसप्रकार परिभाषित किया गया है—

> 'सूधी पंक्ति युगल लिखौ तिर्यक बांच सुजान।
> सूधे तिर्यक शब्द इक गोमूत्रिका प्रमान।।'
>
> —चित्र चन्द्रिका,

इस बन्ध के मूल पाठ के साथ चित्र दिए हुए हैं। छन्द की वर्ण-योजना में चमत्कार-कौशल तो है ही, सन्त-विचारधारा का प्रतिपादन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है।

5. चौपड़ बन्ध : इसके अन्तर्गत केवल एक चौपाई छन्द है। इसी की वर्ण-योजना के आधार पर चित्र दिया गया है। चौपड़ की आकृति में, छन्द की कसौटी पर वर्णों की योजना करना इस छन्द-बन्ध का चमत्कार-विधायक पक्ष है।

6. ज़ीनपोस बन्ध : इसमें 2 उल्लाला छन्दों की वर्ण-योजना के माध्यम से रचनाकार ने अपने अभिप्रेत की सिद्धि की है। छन्द में वर्णों की योजना इसप्रकार हुई है, जो 'ज़ीन पोश' की आकृति में सहज रूप से व्यवस्थित कर दी गई है। ग्रन्थावली के मूल पाठ में बन्ध-चित्र द्रष्टव्य है।

7. वृक्ष बन्ध : ग्रन्थवली में इसके दो उदाहरण हैं और दो चित्र दिए गए हैं। पहला उदाहरण 'मनहर' छन्द में है, जो मूल सवैया ग्रन्थ में 'मन कौ अंग' के अन्तर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23वें छन्द 'संसार विटप' के रूप में नियोजित है। दूसरे उदाहरण के रूप में पृथक् से रचनाकार ने नौ दोहों की रचना की है। वह भी संसार-वृक्ष के रूप में निरूपित है। यह ऐसा वृक्ष है जिसका सांगोपांग वर्णन, सन्त-विचार-दर्शन के अनुरूप ही चौबीस तत्त्वों से निर्मित है। इसप्रकार चमत्कार-प्रियता का सहारा लेते हुए सुन्दरदास ने 'वृक्ष बन्ध' के माध्यम से, संसार-वृक्ष को चित्र के रूप में निरूपित करके सन्त-कवि होने के दायित्व का सम्यक् निर्वाह किया है।

8. नाग बन्ध : इस बन्ध के अन्तर्गत केवल एक 'मनहर' छन्द है, जो मूलतः सवैया ग्रन्थ के 'उपदेश चितावनी कौ अंग' में 29वें छन्द के रूप में नियोजित है। 'जनम सिरानो …नाग पासि परि है' इस छन्द को आधार बनाकर ही बन्ध का चित्र मूल-पाठ में दिया गया है।

9. हार बन्ध : छन्द को 'हार' के आकार में नियोजित करना अपने आप में रचनाकार की कलाप्रियता को ही द्योतित करता है। इस बन्ध के अन्तर्गत 1 'मनहर' छन्द है, जो मूल सवैया ग्रन्थ में 'उपदेश चितावनी कौ अंग' क्रम में 30वाँ छन्द है। मूल-पाठ में बन्ध के साथ चित्र भी है।

10. कंकण बन्ध : इस बन्ध के उदाहरण के रूप में 2 डुमिला छन्दों का उल्लेख है, जो पहले से ही मूल सवैया ग्रन्थ के 'उपदेश चितावनी कौ अंग' के छन्द संख्या 32-33 के रूप में नियोजित हैं। 'कंकण' आभूषण की आकृति में छन्दों के वर्णों को नियोजित कर पाने की कुशलता किसी कारीगर से कम नहीं है। उस पर भी सन्त-चेतना को छन्द में प्राण तत्त्व के रूप में प्रवाहित कराना सन्त-रचनाकार की उल्लेखनीय विशेषता है। बन्ध के साथ चित्र भी ग्रन्थावली के मूल पाठ में संलग्न है।

11. निगड़ बन्ध : 'निगड़ बन्ध' के अन्तर्गत 2 छप्पय छन्दों की रचना है। प्रथम छन्द के अन्तिम चरण 'सुन्दर भजि परमानन्दहि' के वर्णाक्षर इसप्रकार एक-दूसरे से गुंफित या गुँथे हुए हैं, जो अलग करके नहीं देखे जा सकते। इसीलिए इस बन्ध का नाम 'निगड़' [=जंजीर, शृंखला, बेड़ी] रखा गया है। इसी को ग्रन्थावली [चित्र नहीं] में सुनियोजित किया गया है। दूसरे छन्द के आखिरी चरण 'करन देत काहू कछू' का भी संयोजन निगड़ शैली में ही हुआ है। श्लेष के बल पर कला-कौशल का प्रदर्शन तो है ही, प्रश्न और गूढ़ार्थता की बौद्धिकता भी है। इसमें भी सुन्दरदास सन्त-भाव-भूमिका को कहीं विस्मृत नहीं कर पाए हैं।

44. कविता लक्षण : काव्य-रचना-परम्परा में कविता-सम्बन्धी तत्कालीन अवधारणा को सुन्दरदास ने एक छप्पय छन्द के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कविता सम्बन्धी यह अवधारणा, संस्कृत काव्य-परम्परा में विकसित होती हुई हिन्दी-आचार्यों द्वारा ग्रहण होती-रही है। रीतिकालीन काव्य-लक्षणों में कविता के अभिव्यक्ति पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया जाने लगा था। रीतिकाल में ही अपनी काव्य-साधना करने वाले, आचार्य कोटि के सन्त कवि सुन्दरदास ने भी, कविता के इस बाह्य पक्ष को सम्यक् सम्मान दिया है। तभी तो वे 'नख शख शुद्ध कवित्त' को सर्व प्रिय मानते हैं और 'अंगहीन' एवं 'अर्थहीन' काव्य को 'अन्धा काव्य' की संज्ञा देते हैं। सन्त कवि होने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषता यही है कि वे कविता के अन्तरंग एवं बहिरंग पक्षों को महत्त्व देते हुए भी रचना का प्राण तत्त्व 'हरिजस' ही मानते हैं। काव्य-लक्षण-विचार के बाद ही काव्य-रचना में काम आने वाले गण, गणों के देवता, काव्य में संख्या-रूढ़ि तथा विशेष संख्याओं के महत्त्व का उल्लेख किया है। छन्द-रचना में लक्षण-परिभाषा को समेट कर प्रस्तुत करना सुन्दरदास की विशेषता कही जा सकती है। ग्रन्थावली मूल-पाठ में प्रस्तुत काव्यांग विवेचन इसप्रकार है—

1. गण विचार : इस उपशीर्षक के अन्तर्गत एक छप्पय छन्द है, जिसमें आठों गणों का उल्लेख एवं उनका लक्षण-विचार प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार का कहना है कि जो इनके भेद-मर्म को नहीं समझता, [कवि की दृष्टि में] वह सठ संज्ञक है। गणों का विवेचन करते हुए भी सुन्दरदास 'हरिनाम' उच्चारण नहीं भूले हैं—'हरि नाम सहित जे उच्चरहिं, तिनकौं सुभ गण अट्ठ हैं।'

2. गण-देवता और उनका फल वर्णन : इस उपशीर्षक के अन्तर्गत चार मनहर छन्दों का संकलन है, जिनमें वर्णिक छन्द-रचना में काम आने वाले आठ गणों और उनके गण-वर्ण-संयोजन का महत्त्व बताया गया है। साथ ही देवता और उनके उल्लेख से होने वाले फल, उनकी परस्पर मित्रता तथा छन्द-पाठक के जीवन पर होने वाले प्रभाव को भी अंकित किया गया है। वास्तव में इन छन्दों को पढ़कर सुन्दरदास के अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। उन्होंने समास [-संकेत] शैली में गुरु-लघु का विचार देते हुए, संस्कृत-हिन्दी-काव्य [-विचार] परम्परा का निष्कर्ष इसप्रकार दिया है—'दूषन चालीस और भूषन च्यारि सत, पिंगल व्याकरण काव्य दोस सौं पिछांन है।' 'काव्यप्रकाश' में ये दोष 70 [=शब्द दोष 16, वाक्य दोष 21, अर्थदोष 23 और रस दोष 10] बताए गए हैं, जबकि 'काव्य प्रभाकर' में 39 तथा 'काव्य कल्पद्रुम' [='रस मंजरी' का प्रथम भाग] में ये दोष 60 बताए गए हैं। सुन्दरदास ने इन्हें 40 कहा है तथा काव्य-गुण-अलंकारादि मिला कर गुण [-भूषण]-संख्या कुल 400 बताई है।

3. संख्या वर्णन : प्रस्तुत उपशीर्षक में 5 मनहर कवित्तों की रचना है, जिनमें 1-24 तक की संख्याओं का विवेचन करते हुए रचनाकार ने काव्य-रूढ़ि के रूप में निहित, विशेष-विशेष संख्याओं के साथ प्रसिद्ध वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान आदि को सिद्धान्त के रूप में निरूपित किया है। उदाहरण केलिए 'एक' संख्या केलिए प्रसिद्ध गणेश दन्त, पृथ्वी, सूर्य-रथ-चक्र, चन्द्र, शुक्राचार्य का नेत्र, आतमा आदि काव्य-रूढ़ अर्थों को, रचनाकार ने अपने बुद्धि-कौशल से निरूपित किया है। कवियों केलिए इन संख्याओं का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा है—'एक तें चौबीस लग संख्या संज्ञा कही यह, सुन्दर मिलावौ जति कवि पुनि पुनियां।' कुल मिलाकर इन पाँच छन्दों एवं आगे आने वाले नवनिधि, अष्ट सिद्धि, सप्तवार, बारहमास एवं बारह राशि सम्बन्धी छन्दों को **'काव्य-संख्या-कोश'** सम्बन्धी छन्द भी कहा जा सकता है।

4. नव निधि वर्णन : इसके अन्तर्गत एक छप्पय छन्द में काव्य-रूढ़ि में प्रसिद्ध नव निधियों का उल्लेख है। किन्तु-सन्त-विचार के कवि सुन्दरदास का अभिमत है कि सन्त-जन इन नव निधियों को जानने की जिज्ञासा तो रखते हैं, पर इनकी कामना नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी कामना तो लालची [-सकामी] लोग ही करते-रहते हैं।

5. अष्ट सिद्धि वर्णन : पुराण-परम्परा-ग्रन्थों में उल्लिखित एवं रूढ़ि रूप में प्रसिद्ध आठ सिद्धियों का नामोल्लेख एक छप्पय छन्द में किया गया है। ये सिद्धियाँ साधक-भक्तों के अधीन रहती हैं। अर्थात् वे इन्हें अपनी स्वामिनी नहीं मानते। ये तो सेविका बनकर ही रहती हैं। इनकी सिद्धि में चमत्कार का आश्रय लिया जाता है और चमत्कार-प्रदर्शन सच्चे महात्मा का लक्षण नहीं है।

6. सप्त वार वर्णन : सात दिनों के नामों में सन्त-चेतना को निहित करते हुए आदित्यवार से शनिवार तक के दिनों का उल्लेख एक छप्पाय छन्द में हुआ है। किन्तु दिनों के मर्म [-रहस्य] की जानकारी, स्वयं विचार के द्वारा सद्गुरु के निर्देशन में ही सम्भव बताई गई है। वैसे तो ये सभी दिन एक अखण्ड काल-सत्ता की निरन्तरता में ही सार्थक हैं।

7. बारह मास वर्णन : एक छप्पय छन्द में सम्वत्सर के बारह महीनों का [-कार्तिक से आश्विनि तक]वर्णन करते हुए सन्त-साधना [-चेतना] का सन्निवेश किया गया है। 'अश्विनी' [अ+श्व+नि=जिसमें 'कल' नहीं है] को यहाँ 'शान्ति' का विश्लेषक बताया गया है।

8. बारह राशि वर्णन : एक छप्पय छन्द में मेष से मीन राशि तक फलित-ज्योतिष की 12 राशियाँ और उनका फलागम वर्णित है। किन्तु, सुन्दर का इस वर्णन में भी सन्त-भाव प्रधान मन्तव्य प्रमुख है। सुन्दरदास का कहना है कि मनुष्य अपनी इन्द्रियों के स्वाद में आबद्ध बना रहकर, राशियों के भ्रान्त चक्कर में पड़ा रहता है और अन्त में 'कुम्भ' [-राशि] रूप नर-तन [=मनुष्य जीवन] फूट कर विनष्ट हो जाता है।

45. ज्ञान-विचार : छप्पय एकादशी : जैसाकि प्रस्तुत उपशीर्षक से व्यंजित है, इसमें 11 छप्पय छन्दों का संकलन है, जिनका प्रतिपाद्य विषय ज्ञान-विचार है। यहाँ जिज्ञासा होती है कि ज्ञान-विचार प्रतिपादन का अब कौन-सा पक्ष शेष रह गया था, जिसका प्रतिपादन सुन्दरदास इन छन्दों में करना चाहते थे ? जिज्ञासा को सन्तुष्ट करते हुए सुन्दरदास ने इन छन्दों में 'मन' का स्वभाव, उसकी शक्तिमत्ता एवं दुर्निग्रही वृत्ति को 'गयंद' के सांगरूपक में निरूपित किया है। उनका कहना है कि मन-गयन्द को ज्ञान-अंकुश की सूक्ष्मता एवं अध्यात्म चेतना के अनुशासन से ही आत्म-चेतना युक्त किया जा सकता है। योग-भूमिका अर्थात् योग-सिद्धान्तों में वर्णित कुछ पारिभाषिक शब्दों पर विचार एवं कार्य-क्षेत्र बताते हुए इस रचना में आत्म-विचार को ही प्रमुखता मिली है। लक्ष्य वही—'कहि सुन्दर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनिये' है। किन्तु, ज्ञान-विचार के प्रभाव को यहाँ एक रूपक के सहारे बताया गया है। इसमें 'ज्ञान' को शहज़ादा और 'परब्रह्म' को बादशाह कहा है। देखिए—

'परब्रह्म पतिशाह ज्ञान कहिये सहजादौ।
सांख्य योग अरु भक्ति बड़े उमराव अनादौ॥
और क्रिया सब रैति जज्ञ जप तप ब्रत जेते।
तीर्थ अटन स्नान दान यम नियम सुकेते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यौं ब्याह समै अपने सुतहिं सहजादौ करि गाइयौ ।
कहि सुन्दर सहजादौ उहै पातिशाह उर लाइयौ ॥'

'पादशाही' के उस युग में सुन्दरदास द्वारा प्रतिपादित यह 'पादशाह' सामाजिक-ऐतिहासिक सम्भावनाओं की भी व्यंजना करने में समर्थ है।

46. देशाटन-सवैया छन्द : प्रस्तुत दस सवैया [-इन्दव] छन्दों में सुन्दरदास का देशाटन सम्बन्धी अनुभव मुखर हुआ है। हिन्दी-साहित्य में यात्रा-वृतान्त के सम्बन्ध में ये सुव्यवस्थित छन्द यात्रा-साहित्य के प्रथम हिन्दी-छन्द कहे जा सकते हैं। इनमें यायावर की वृत्ति, उसकी दृष्टि तो व्यंजित है ही, भूगोल एवं समाज-संस्कृति-अध्ययन के कुछ प्रामाणिक सूत्र भी हाथ लगते हैं। इन छन्दों से प्रकट होता है कि सुन्दरदास को लाहौर की जलवायु, वहाँ के लोगों का रहन-सहन और उनका स्वभाव बहुत प्रिय लगे होंगे। कुछ क्षेत्रों की गरीबी एवं रूढ़िग्रस्तता से भी वे पीड़ित हुए हैं। उन्हें उत्तर-क्षेत्र हिमालय की भूमि पवित्रता, साधना एवं प्रकृति-प्रेम की दृष्टि से, बहुत प्रिय लगी है। किन्तु, जहाँ वे सर्वाधिक रहे, उस फतहपुर क्षेत्र की अस्वच्छता वाली जीवन-चर्या से वे बहुत दुःखी रहे होंगे, ऐसा लगता है। यह बात 'फूहड़ नारि फतेपुर मांहीं' सवैया पढ़ने से स्वयं मुखर है।

47. बाईजी की भेंट के सवैए : इस उपशीर्षक के अन्तर्गत 8 छन्दों का संकलन है, जिनमें छः मनहर और दो इन्दव सवैया छन्द हैं। ये छन्द पुरोहित जी द्वारा सम्पादित ग्रन्थावली में परिशिष्ट [ख] के अन्तर्गत, **'जीवन चरित्र'** विवेचन में दिए गए हैं। कारण वहाँ यह बताया गया है कि सम्पादक के पास ये छन्द, ग्रन्थावली के वाणी-भाग के प्रकाशन के बाद पहुँचे थे। इन छन्दों में 8वाँ मनहर छन्द 'सवैया ग्रन्थ' के अन्तिम अंग में [15वें छन्द के बाद-] 16वें छन्द के रूप में नियोजित है। इसका प्रतिपाद्य परमात्मा की महिमा-स्तुति की व्यंजना कराना है। यदि, इसको दादूजी के पोष्य पुत्र गरीबदास जी के प्रति सम्बोधित माना जाए तो भी इसको **'भेंट के सवैयों'** के अन्तर्गत ही संयोजित करना अपेक्षित है। वैसे, सामान्यतः यह माना जाता है कि सुन्दरदास ने, गुरु दादू के अतिरिक्त किसी अन्य की, वाणी में प्रशंसा नहीं की। गरीबदास जी के प्रति तो वे जीवन भर उदासीन ही बने रहे थे। माना जाता है कि बालक सुन्दरदास के प्रति एक बार उन्होंने उपहास-वृत्ति में कुछ कह दिया था। गरीबदास जी के दिवंगत होने पर, दादूजी द्वारा पालित-पोषित दो [पुत्रियों-] बहिनों को दादू-गद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया था। उन दोनों बहिनों द्वारा किसी उत्सव [-मेले] में बुलाए जाने पर सुन्दरदास अपनी प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था में कभी वहाँ गए होंगे। यह भी व्यंजित है कि वहाँ उनका बहुत मान-सम्मान हुआ था। लगता है तभी उन्होंने इन भेंट के सवैयों की रचना की होगी। विषय-प्रतिपादन और छन्द-कौशल को देखते हुए निश्चित ही ये छन्द सुन्दर कृत जान पड़ते हैं। इनमें 'बाई जी' की स्तुति तो है ही, वहाँ उनसे विदा माँगने का उल्लेख भी है। इन छन्दों में निहित विनम्रता, आतिथ्य भाव के प्रति कृतज्ञता और सहज भावना की अभिव्यक्ति सुन्दरदास के जीवन-विचार पर नया प्रकाश डालती है। क्योंकि, सुन्दर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी में ऐसी अतिशय विनम्रता अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देती। और 'सीख' देने या लेने की बात तो और भी विचित्र लगती है। देखिए—

1. 'दादूजी के पीछै तौ चलाई है गरीबदास
ताकै पीछे बाईजी चलावत है चौगुनी।'
2. 'जग मैं प्रसिधि दोऊ दादूजी की नन्दनी।'
3. 'बार बार कर जोरि वीनती करत राजि,
सुन्दर कौं हंसि करि सीष दीजै बाईजी।'
4. 'बाईजी बेगि रजा मोहि दीजै।'
5. 'बाईजी आयस पाऊं तुम्हारौ।'

सम्भव है सद्गुरु दादू के प्रति सम्मान-श्रद्धा के अतिरेक में ही, उनकी मानस-पुत्रियों को सुन्दरदास ने इतना आदर-भाव प्रदान किया होगा।

48. संस्कृत श्लोक : इस अन्तिम उपशीर्षक में सुन्दरदास कृत छः संस्कृत-भाषा-छन्दों का संकलन हैं। यद्यपि, संस्कृत-भाषा में दो पद [संख्या 209, 210] भी सुन्दरदास ने रचे हैं। संस्कृत-भाषा में जो पद-रचना करने की क्षमता, मौलिकता एवं रुचि रखता हो, उसका संस्कृत-भाषा-ज्ञान का अनुमान स्वयं लगाया जा सकता है। किन्तु, प्रस्तुत संस्कृत-श्लोक, संस्कृत-पिंगल में उनकी दक्षता को प्रतिपादित करते हैं। इनमें 2 शार्दूलविक्रीडित, 3 अनुष्टुप और 1 भुजंगप्रयात छन्द है। इन छंदों को पढ़कर सुन्दरदास के प्रखर पाण्डित्य एवं संस्कृत-भाषा के प्रति उनकी अभिरुचि साकार हुई दिखाई देती है। संस्कृत-भाषा के माध्यम से वे अपनी भावाभिव्यक्ति को कितनी सामर्थ्य से प्रस्तुत कर सकते थे, यह इन छन्दों को पढ़कर भली-भाँति जाना जा सकता है। उल्लेखनीय यह भी है कि इन छन्दों का प्रतिपाद्य पूर्ण रूपेण सन्त-वाणी-विचार के अनुरूप है। देखिए—

'अहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेति निश्चयम्।
ज्ञाता ज्ञेयं भवेदेकं द्विधा भाव विवर्जितम्॥'

यहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि **'भाषा-काव्य-रचना'** को सर्वोपरि मान्यता देने वाला सन्त कवि, अपनी ग्रन्थ-रचना के समापन में, संस्कृत-श्लोकों को समायोजित करने [या कराने] में अपनी आन्तरिक तृप्ति का अनुभव करता है। स्वयं सुन्दर द्वारा तैयार कराई गई वाणी-पाण्डुलिपियों के समापन में ये संस्कृत श्लोक लिखे मिलते हैं।

अंत समय की साखियाँ : यह उपशीर्षक सुन्दरदास कृत वाणी-पाण्डुलिपियों में नहीं है। वास्तव में सुन्दरदास ने स्वयं ही, फतहपुर में रहते हुए अपनी देख-रेख में अपने शिष्य [-शिष्यों] से संवत् 1742 वि० में अपनी वाणी की पाण्डुलिपि तैयार कराईं थी। बाद में वे संवत् 1746 वि० में अपने प्रिय गुरु भाई रज्जब से मिलने साँगानेर चले गए थे। साँगानेर में रज्जब के दिवंगत होने की बात सुनकर सुन्दरदास बहुत खिन्न हुए थे। फलतः रुग्णता प्राप्त हुए और फिर वहीं उन्होंने अपना चोला-त्याग दिया था। अतः संवत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1742-46 वि० तक वे कितने दिन फतहपुर में रहे, नहीं कहा जा सकता। वैसे भी, उक्त शीर्षक के अन्तर्गत जो 6 साखियाँ संकलित हैं, वे उक्त समयावधि के बीच ही कभी-कभी सुन्दरदास जी के मुख से मुखर होती रही होंगी। मृत्यु-बोध की अनुभूति को ही उनके निकटवर्ती प्रियजनों [-शिष्यों] ने, अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर संकलित किया होगा, ऐसा लगता है। पाँचवी साखी में सुन्दरदास के इहलोक को छोड़कर जाने एवं कुल आयु [-93]-वर्ष का उल्लेख है। इन साखियों का प्रतिपाद्य सन्त-वाणी की विचारधारा के अनुरूप ही है। देह-त्याग को, आत्मा-परमात्मा मिलन के रूप में, महोत्सव [-महोच्छव] कहना किसी परम तपस्वी और विचारक की वाणी का ही परिणाम कहा जा सकता है।

सुन्दर-वाणी का अन्तरंग पक्ष

सुन्दर-वाणी का केन्द्रीय भाव [-विचार] क्या है? ऐसी जिज्ञासा होते ही अनेक विचार-तर्क उठ खड़े होते हैं। बात यह है कि सुन्दर कृत वाणी की मात्रा बहुत अधिक है। अतः उसमें अनेक तर्क-सिद्धान्त या पक्ष खोज लेना कठिन काम नहीं है। उदाहरण केलिए कह सकते हैं कि सुन्दर-काव्य का केन्द्रीय भाव या रस '**शान्त**' अथवा 'भक्ति' है। अथवा कहा जा सकता है कि सुन्दर-वाणी की आत्मा '**हरि यश**' है। जैसाकि स्वयं कवि ने कहा है—

'माधुर्योत्तर सुन्दरां मम गिरां गोबिन्द सम्बन्धिनीम्।
यो नित्यं श्रवणं करोति सततं स मानवो मोदते॥'
'एकं ब्रह्म बिराजते च सततं आनन्द सच्चित्मयम्।'

'हरि यश' से हीन काव्य उनकी दृष्टि में प्राणहीन कलेवर के समान है—

'कहि सुन्दर हरि जस जीव है, हरि जस बिन मृतकहि तथा।'

लेकिन, ऐसे कथनों से सुन्दर-वाणी का सम्यक् मूल्यांकन सम्भव नहीं है। कारण स्पष्ट है कि जिस रचनाकार का कृतित्व पूरी एक शताब्दी के फलक पर अंकित हो और जो स्वयं एक विचार-परम्परा [—स्कूल] से जुड़कर, अपनी वाणी की सार्थकता अनुभव करता रहा हो, ऐसे रचनाकार की वाणी के केन्द्रीय भाव-विचार को मात्र काव्यशास्त्रीय 'रस'-उल्लेख अथवा काव्यांगों के उदाहरण जुटाने तक ही सीमित करके देखना कहाँ तक समीचीन कहा जा सकता है? वैसे तो सुन्दर-वाणी के अनेक पद्य, वर्णन-कोटि के होने के कारण मात्र उपदेश-वचन कहे जा सकते हैं। आपके अनेकानेक छन्द विभिन्न विषयों के परिभाषा-लक्षण मात्र हैं, जो गद्य-पद्य का काम करते हैं। पर, सुन्दर-वाणी का भाव-विचार इतना भर नहीं है। जो रचनाकार अपनी वाणी का केन्द्रीय तत्त्व '**हरि यश**' मानता है और उसे ही अभिव्यक्ति-कौशल से आभूषित करना चाहता है, उसके काव्यादर्श को सम्यक् रूप से समझना आवश्यक है। वे भूषण-वसनों से सुसज्जित और रूपवती वाणी को, जिसमें 'अधिक' [=हरि] विराजमान है, प्रथम कोटि की उत्तम मार्मिक वाणी मानते हैं। उनकी दृष्टि में दूसरे प्रकार की वाणी 'हरि' [=मूल्य] रहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी है। यह वाणी उस शरीर के समान है, जो एक ओर तो मलिन और फटे-पुराने वस्त्र पहने है, साथ ही तेजहीन भी है। तीसरे प्रकार की वाणी वे उसे मानते हैं, जो वासना वर्धक शृंगारी-वाणी है। ऐसी वाणी विषयी-लोलुप लोगों को तो अच्छी लगती है, पर लोक-चेता साधु-सन्त को मृतक [-शरीर] शृंगार के समान भयद एवं दुष्परिणामी जान पड़ती है। अपने मन्तव्य को सुन्दरदास ने एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है--

'एक वांणी रूपवंत भूषन वसन अंग
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है।
एक वांणी फाटे टूटे अंबर उढाये आंनि
ताहू मांहि विपरीति सुनियत तैसी है॥
एक वांणी मृतकहि बहुत सिंगार किये
लोकनि को नीकी लगे संतनि कौं भै सी है।'

—सवैया०, वचन विवेक०, छन्द 2

रचना की अर्थवत्ता, विचार-प्रतिपादन की प्रधानता एवं श्रवण-सुखद वाणी होने में ही सुन्दरदास का काव्यादर्श निहित है। वे रचनाकार को [वाणी-] बोलने का '**शऊर**' होने पर ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होने की सलाह देते हैं। अन्यथा चुप रहना उनकी दृष्टि में अधिक श्रेयस्कर है। उनकी दृष्टि में काव्य-रचना-संयोजन, खण्डित कवि-बोध के आधार पर, उचित नहीं है। देखिए—

'बोलिये तौ तब जब बोलिवे की सुधि होइ
न तो मुख मौन करि चुप होइ रहिये।
जोरियेऊ तब जब जोरिबोऊ जांनि परै
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये॥
गाइयेऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ
श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुक-भंग छंद-भंग अरथ मिलै न कछु
सुन्दर कहत ऐसी बानी नहिं कहिये॥'

—सवैया०, वचन विवेक०, छन्द 4

सुन्दर की काव्य सम्बन्धी अवधारणा को समझने केलिए तत्कालीन युग-बोध समझना भी आवश्यक है। सच तो यह है कि सन्त-काव्य की समीक्षा, सामाजिक भूमिका, परम्परा और तत्कालीन परिस्थितियों को जाने-समझे बिना, सीमित लक्ष्यों और उद्देश्यों की पूर्ति कर लेना समीक्षा का समूचा दायित्व नहीं कहा जा सकता। आज के युग-बोध के सन्दर्भ में भी सन्तों द्वारा निर्देशित [-संकेतिक] काव्य-मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। प्रमुख रूप से, अब तक उपेक्षित सन्तों की सामाजिक चेतना को ध्यान में रखकर विचार करना आवश्यक है। वास्तव में कविता [-रचना] करना न तो सन्तों का लक्ष्य था और न कविता करने के काव्यशास्त्रीय मूल्यों से वे सुपरिचत थे। सुन्दरदास जैसे एकाध रचनाकार ही इस कथन के अपवाद कहे जा सकते हैं। किन्तु, सुन्दरदास भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन मूल्यों से जुड़े हुए थे, उनमें वाणी-रचना प्रमुख या प्रथम न होकर, लक्ष्य या विचार-प्रतिपादन अर्थात् आध्यात्मिक अनुभव-चेतना की अभिव्यक्ति और प्रसार तथा लोक-जीवन में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा ही उनके प्राथमिक लक्ष्य कहे जा सकते हैं। भक्ति-काल के उत्तरार्ध और विशेष रूप से रीतिकाल में कवि लोग, राजाश्रय में रहते हुए जिस भाव-चेतना के अभियोजन में लगे रहकर, जिन उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे थे, सन्त-रचना-कारों ने उस मार्ग का अनुसरण नहीं किया। अपितु, उन्होंने तत्कालीन श्रृंगारी प्रवृत्ति से अपनी असहमति प्रकट करते हुए स्थान-स्थान पर अपने प्रतिपादित विचारकों की सोद्देश्यता को भलीप्रकार रेखांकित किया है। उस विचार सोद्देश्यता को समझते हुए ऐसा लगता है कि अब तक सन्त-काव्य की परख जिन आरोपित मूल्यों पर होती रही है, उनमें सन्तों की रचना-प्रक्रिया, उनके काव्य-प्रयोजन एवं जीवन-मूल्यों को पूरे सन्दर्भ में नहीं देखा-परखा गया। जब तक सन्तों की सामाजिक समता-संवेदना और रचना की काव्य-संवेदना को नहीं समझा जाता, तब तक उनकी रचना का मूल्यांकन भी अधूरा या एकांगी कहा जाएगा। लेकिन, सुन्दरदास की काव्य-रचना अपने कलेवर में अन्य सन्तों की वाणी से कुछ भिन्न है। सच तो यह है कि सुन्दरदास संस्कृतज्ञ, भारतीय काव्य-शास्त्र के ज्ञाता, विविध काव्यांगों के अधिकारी रचनाकार एवं काव्य-भाषा मर्मज्ञ थे। फिर भी, उनकी वाणी का स्वभाव वही है, जो पूरे सन्त-काव्य की आत्मा कहा जाता है। अर्थात् सुन्दर-वाणी में 'कथनी' का कौशल होते हुए भी, 'करनी' और 'रहनी' की सात्विकता को ही **'वाणी'** का प्रयोजन माना गया है। यह वाणी **'शम'** अर्थात् निर्विषयी चित्तभूमि अथवा **'विश्राम दशा'** की उपज कही जा सकती है, यह वाणी लोकमंगल वाले **'राम रस'** से सिंचित होकर अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुई है। सन्तों के काव्य-रस को काव्यशास्त्रीय रस-रीति, गुण, अलंकार आदि की कसौटी पर परख कर कुछ निष्कर्ष देना समीचीन नहीं जान पड़ता। कारण स्पष्ट है कि सन्तों का भाव-बोध, काव्यशास्त्रीय रस-विवेचन की परधि में पूरी तरह से समाहित नहीं हो पाता।

सुन्दर-वाणी के परिप्रेक्ष्य में काव्यशास्त्रीय 'रस-सिद्धान्त' के लागू करने की प्रासंगिकता पर थोड़ा और विचार कर लें। भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित रसों का मूलाधार **'भाव'** अथवा **'मनोविकार'** हैं। जबकि, सन्त-काव्य की प्रेरणा-भूमि **'शम'** अथवा प्रकृत अवस्था ['शान्तस्तु प्रकृतिर्मत:'—नाट्यशास्त्र 6/61] है। विकार की अवस्था में मन की सात्विकता सम्भव नहीं। इस बात को एक सन्त-रचनाकार ने इस प्रकार कहा है—

'विद्या वेद पुराण पढै सो बावरौ।
हरि हां, सब फोकट जन ध्यान भरोसौ रावरौ।।'
'जब लग विषै विकार, कहां मन सूधरै।
अजा कंठ अस पान नहीं टुक दूध रै।।
कबहूं विसर न जाय धनी कौ नांव रै।
हरि हां, एक जीव की कहा तिरै सब गांव रै।।'

—हरि० वा० [उत्तरा०], ध्यानदास, पृ० 56-58

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर हिन्दी-समीक्षा में, विशेषत: रीति-काव्य की समीक्षा में संस्कृत-काव्यशास्त्र और उसमें भी श्रृंगार रस के रस-राजत्व की सिद्धि का बोल-बाला रहा है। यही नहीं, हिन्दी-रीति ग्रन्थ-रचना भी उसी ढर्रे पर होती रही और दरबारी संस्कृति में सामन्ती मनोवृत्ति को पोषित करने वाली काव्य-रचना को प्रोत्साहन मिलता रहा। फलतः सन्त-काव्य में निहित काव्य-मूल्यों के आधार पर सन्त-वाणी की समीक्षा की ओर ध्यान ही नहीं गया। जो थोड़ा बहुत ध्यान गया भी है, वह भक्ति-काव्य के 'आस्वाद' पक्ष को ध्यान में रखकर ही गया है। कहना न होगा कि वहाँ भी भक्ति-काव्य के आस्वादक या पाठक को, विशिष्ट संस्कारों से वासित होने के कारण, न तो शुद्ध 'सहृदय' माना गया और न भक्ति को 'रस' [दे०—रस सिद्धान्त, डॉ० नगेन्द्र, पृ० 267-69]। लेकिन, जब हम सन्त-काव्य में सम्बोधित जीवन-प्रसंगों और उनमें निहित रचनाकारों की आनुभूतिक विविधताओं को देखते हैं, तो उनको नौ-दस या ग्यारह रसों के साँचे में ढालना सम्भव नहीं जान पड़ता। कोई भी रचनाकार रसों की मेड़ बाँध कर जीवन-धाराओं को अपने मन-मुताबिक प्रवाहित नहीं कर सकता। और सन्तों का 'अनुभव' तो निश्चित रूप से सीमित दायरे में कभी बँध ही नहीं सका है। जैसा कि स्वयं सन्तजन जातिगत, भाषागत एवं देश-प्रदेश की सीमाओं में आबद्ध नहीं रह सके हैं। सन्तों केलिए सुन्दरदास के समकालीन [मित्र-गुरुभाई] रज्जब का यह कथन, जिसमें उन्होंने सन्त-चेतना में सम्पूर्ण सृष्टि को **'शास्त्र'** और समूची पृथ्वी को **'पुस्तक'** मानने की बात कही है, महत्त्वपूर्ण है। देखिए—

'सिष्टि सास्तर है सही, बेत्वा करै बखान।
रज्जब कागद क्या पढ़ै, पिरथी पुस्तग जान॥'
—र० बा०, 37/2

दूसरी ओर, यह भी सही है कि जीवन-प्रवाह को दिशा-निर्देश करने में अनेकशः राग-तरंगों एवं भाव-मनोविकारों का विशेष हाथ रहता है। जीवन के अधिकांश क्रिया-कलाप राग-द्वेषादि मनोविकारों से प्रेरित और संचालित बने रहते हैं। पर, सन्त-वाणी का एक-मात्र सम्बोधन यही है कि 'वासनाओं में जीना ही सब कुछ या समूचा जीना नहीं है। वासना-मुक्ति भी जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है अथवा हो सकता है। जीवन में अन्य अनेक कामनाओं के समान ही वासना-मुक्ति की अभिकांक्षा भी तो चित्त की एक दशा है, अथवा हो सकती है। इस कामना-सिद्धि में चित्त जिस 'विश्राम दशा' का अनुभव करता है अर्थात् समता प्रधान चेतना में जो सामाजिक उत्साह, आचरणगत-निष्ठा एवं पारस्परिक सात्विकता का अनुभव करता है, उससे निश्चित ही व्यापक जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है अथवा मिल सकती है।' ऐसी अनुभूति प्रधानता वाला सन्त-काव्य निश्चित ही विश्रान्त चित्त की उपज बना रहा है। ऐसा काव्य 'समग्र जीवन' के प्रति उत्तरदायी होता है। ऐसी वाणी किसी विशिष्ट धारा, सम्प्रदाय अथवा वाद-सिद्धान्त की सीमाओं में बाँधकर नहीं रखी जा सकती। इसीलिए रचना की परख, मनोविकारों की भूमिका वाले रस-निकष पर करना समीचीन नहीं है। वैसे भी, 'कौशल' प्रधान रस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका का संयोजन, व्यापक अर्थ-भूमिका में चित्त को पहुँचा पाने में, अल्पावधि केलिए ही समर्थ हो पाता है। समर्थ गुरु रामदास का [दे०—हिन्दी दास बोध, पृ० 327] इस सम्बन्ध में अभिमत है—'अनुमान की सहायता से किया गया अर्थ, अनुमान की ही सृष्टि करता है। इसीप्रकार नौ रसों के आधार पर अर्थ करने से श्रोता 'कुअर्थी' हो जाते हैं।' अत: सन्त-वाणी की समीक्षा केलिए सन्तों की काव्य-दृष्टि को देखना-समझना आवश्यक है। सन्तों की काव्य-कसौटी केलिए सन्तों का जीवन-दर्शन समझना भी अधिक सार्थक एवं सही काव्य-कसौटी मानना चाहिए।

यहाँ सन्तों का, विशेषत: सुन्दरदास का, काव्य-रचना सम्बन्धी लक्ष्य प्रस्तुत करना हमारा ध्येय है। वासना-विकारों का पोषण करने वाली काव्य-रचना के प्रति सन्तों की क्या दृष्टि रही है? इस पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि सन्तों ने **'विकारों'** से मुक्ति दिलाने केलिए ही ज्ञान-विचार और प्रेम-भक्ति का आश्रय लिया है। इस सम्बन्ध में गुरु दादू जी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है—

'प्रेम भगति जब ऊपजै, पंगुल ज्ञान विचार।
दादू हरि रस पाइये, छूटै सकल विकार।।'

—दादू० बा०, भा० 1, उपज०, साखी 2

अत: सन्तों द्वारा प्रतिपादित 'प्रेम-भक्ति' में निहित 'दृष्टि' पर विचार करना आवश्यक है। ऐसा करते हुए ही सुन्दरदास के ज्ञान-विचार और प्रेम-भक्ति की चेतना को सम्यक् रूप से समझा जा सकता है। सन्त-विचारधारा के आगमन से पूर्व तत्कालीन समाज में जिस रति-आसक्ति [-भाव] और 'चतुराई' का प्रतिपादन आचार्य भानुदत्त [14वीं शती] अपनी **'रस मंजरी'** जैसी रचनाओं द्वारा कर रहे थे और जिस श्रृंगार रस एवं नायिका भेद का पुष्टि-संवर्धन आचार्य कवि **केशवदास** [सं० 1612-1674 वि०] ने **'रसिक प्रिया'** में तथा सुन्दर के ही समकालीन ग्वालियर के सहनामी श्रृंगारी कवि सुन्दर ने **'सुन्दर श्रृंगार'** रचना में किया है, वह सुन्दरदास [सं० 1653-1746 वि०] की दृष्टि में, सामाजिक की चेतना को उन्मत्त-प्रमत्त करके, हीन और क्षीण बनाने की प्रक्रिया ही थी। प्रश्न यह है कि तत्कालीन श्रृंगारी कविता से किस वर्ग की मानसिकता को शक्ति और पोषण मिल रहा था? इससे तो शासक वर्ग तथा उच्च धनाढ्य वर्ग की वासनाओं का ही पोषण होता था। जन-सामान्य ऐसे काव्यों को पढ़कर अपने जीवन लक्ष्य के प्रति सावधान कैसे रह सकता था? इसीलिए अपने परिवेश को प्रबुद्ध करने के उद्देश्य से सन्त सुन्दरदास ने, सन्त-काव्य-चेतना के पूरे विचार-पक्ष को स्पष्ट रूप से निम्नलिखित दो छन्दों में प्रस्तुत किया है। वास्तव में रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों के प्रतिपाद्य को देखकर सुन्दरदास को ग्लानि हुई होगी और ऐसा करके उन्होंने सन्त-वाणी-सिद्धान्त प्रतिपादन में अपनी मनीषा को सन्त-भाव-रचना में लगाकर एक सच्चे आचार्य का दायित्व निर्वाह किया है। उदाहरण की पुनरावृत्ति करते हुए पुन: उनको यहाँ दिया जा रहा है। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रसिक प्रिया रस मंजरी और सिंगारहि जांनि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आंनि ।।
विषै बनाई आंनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचंड सराहैं नख शिख नारी ।।
ज्यौं रोगी मिष्ठान खाइ रोगहि विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तौ रसिक प्रिया धारै ।।'
'रसिक प्रिया कै सुनत ही उपजै वहुत विकार।
जो या मांही चित्त दे वहै होत नर ष्वार ।।
वहै होत नर ष्वार बार तौ कछुव न लागै।
सुनत विषय की बात लहरि विषयन को जागै ।।
ज्यौं कोइ ऊंघै हुतौ लही पुनि सेज बिछाई।
सुन्दर ऐसी जांनि सुनत रसिक प्रिया भाई ।।'—सवैया०, 9/5-6
'चन्द वदन मृग लोचनी हो कहत सकल संसार।
कामिनि विषकी बेलड़ी हो नख शिख भरी विकार ।।'
—सुं० ग्रं०, भा० 2, पद 180

सन्त कवि सुन्दरदास के उक्त छन्दों का मन्तव्य, उनके कवि व्यक्तित्व का परिचायक न होकर समूचे सन्त-साहित्य का विचार-पक्ष है, जो उन्होंने रीतिकालीन श्रृंगारी मानसिकता, राजाश्रय में विकसित और पल्लवित विलासी प्रवृत्ति एवं उच्च वर्ग अथवा धनाढ्य सामन्ती वर्ग की 'नारी' [=सुन्दरी-कामिनी नारी] के प्रति भोग्या दृष्टि के प्रतिरोध में एक ऐसा विचार-पक्ष दिया है, जो सुन्दरी, के शरीरांगों को आधार-बनाकर, उसके नख-शिख वर्णन में रीतिकालीन श्रृंगारिकता के समानान्तर, बहुजन समाज की मानसिकता को सात्विकता प्रदान करने में समर्थ है। यह विचार-पक्ष समाज जन की चेतना को, हीन अथवा संकीर्ण भोग-वृत्ति की आसक्ति से उबारते हुए, लोक-जीवन में आचरण केलिए नैतिक मूल्य-प्रस्तुति में भी सहायक बना रहा है। 'काम' के बीच 'राम' की प्रतिष्ठा के रूप में सन्त कवियों का यह काव्यादर्श सामाजिक मूल्य बन कर सामने आया है।

सामन्ती अथवा आभिजात्य वर्ग की 'कविताई' [-रसवादी कविता] में, कामिनी नायिका का अथवा कंचन और कामिनी दोनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है।[1] जबकि,

1. 'जिन्हें रसिकता का चसका लगा था, वे रसिकता भरी बात कहकर ही, राजा-बादशाह-रईसों को रिझाकर, हाथी, पालकी, आभूषण, इज्जत आदि इसी श्रृंगारी कविता से प्राप्त करते थे। हिन्दी-काव्य में श्रृंगार एवं वीर का मेल बहुत दिनों तक चला। केशवदास ने 'रसिकप्रिया', 'नखशिख' वर्णन की रचनाओं में श्रृंगार की चर्चा भक्ति से अलग करके की है। उनके देखादेखी अनेक कवियों ने नायिकाभेद के द्वारा नग्न श्रृंगार का वर्णन किया है। जिसमें मर्द, गर्द हुए, घराने नष्ट हुए, कामी पुरुषों की भरमार हुई, धीर-वीर हिजड़े हो गए, भारत कायरता से गारत हुआ।' —सुं० ग्रं०, भूमिका : शान्त रस, पुरो० हरिनारायण शर्मा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-काव्य में चित्त की समता को विगाड़ने वाली कामिनी नारी, पराई नारी अथवा कामी नर का डट कर विरोध देखने को मिलता है। साधु-जीवन को पुरस्सर करने वाली सन्त-वाणी, सामाजिक के सदाचरण पर सर्वाधिक बल देती रही है। कारण स्पष्ट था कि स्वार्थ की संकीर्ण मानसिकता को, जनहित में बदल देने की अभिलाषा रखने वाले सन्त जन, सामाजिक की चेतना को, वासना की सँकरी गली से निकाल कर, 'प्रेम' के राज-मार्ग पर चलाना चाहते थे। इसीलिए सन्त-काव्य-चेतना से कभी ओझल न होने वाला यह प्रेम-भाव 'आलम्बन' कहा जा सकता है। इस काव्य में समर्पण ही समर्पण है। व्यापक जीवन के प्रति प्रतिबद्धता ही प्रतिबद्धता है। इस प्रेम की साधना अपने आप में वीर्यवती साधना है। इस प्रेम-लता का पल्लवन, सात्विक भाव-भूमिका में, विरह-जल के निरन्तर सिंचन से ही सम्भव हो सका है। शरीर-आसक्ति वाली वृत्तियों की खरपतवार अथवा वासना-कीट, उक्त उपज की स्वस्थ वृद्धि में सदा बाधक बने रहते हैं। प्रेम-मार्ग पर चलते हुए निष्ठा-परिवर्तन केलिए विषय-प्रलोभन निरन्तर आड़े आते-रहते हैं। जबकि, साधु-जीवन में, निश्चयी भूमिका पर ही भाव-भवन निर्मित होते हैं। काव्य-साधना में यही कारण रहा कि प्रेम-साधना, स्फूर्ति बनकर आचरित होती रही है। अपनी चेतना में समरस और व्यापक होने के कारण ही सन्तों का प्रेम-पन्थ कठिन [-दुस्तर] बना रहा है। वास्तव में किसी भी प्रतिबद्धता का जीवन भर निर्वाह कर पाना बड़ा कठिन होता है। इसीलिए सुविधाजीवी एवं कायर-चेतना वाला व्यक्ति इस पथ पर चलने से कतराता रहता है। इस पन्थ पर चलने वाले को तो अपना शीश काट कर, अपने ही पैरों तले डालना पड़ता है। अर्थात् अहंकार का शमन करते हुए पूर्ण समर्णण का जीवन ही उसे स्वीकार्य होता है। इसके लिए उसे अपने परिवेश के विषंगति भरे मैदान में 'चहुँगिर्द' लड़ना पड़ता है। जबकि, नाट्यधर्मी रस, शृंगारादि की स्फूर्ति, लघु अवधि वाले आलम्बन-साक्षात्कार तक ही सीमित बनी रह पाती है। ऐसी लघु-अवधि वाले 'आलम्बन' के आधार पर रीतिकालीन काव्य में अनेक रसों का आभास देखा जा सकता है। ये सभी रस-भाव, सन्तों द्वारा प्रतिपादित सात्विक 'शम' [=शान्त रस] के पोषक हैं। उल्लेख के रूप में सुन्दर ग्रन्थावली के सवैया-ग्रन्थ में 'सूरातन' के छन्द 1, 2, 3 तथा सुन्दर-पदावली में वीरभाव प्रधान 'सिंधूडो राग' के पद 1, 2, 5 एवं शृंगार पोषक 'राग बिहागड़ौ' का पद 1, 'बिलावल' का पद 3, 'बसन्त' का पद 6 तथा 'काफी' राग का पद 2 आदि उदाहरण 'शम भाव' में ही पर्यवसित होते हैं। सन्त-वाणी का वीर भाव [=वीर रस], शम [=शान्त रस] का उद्बोधक भी है और परिणाम भी। काव्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली में कहें तो कह सकते हैं कि सन्त-वाणी का शान्त रस, शृंगार और वीर रसों का 'अंगी' है। जैसे 'साधु' को 'सूरमा' कहने में वही वीर रस, शान्त रसात्मक हो जाता है। सन्त ध्यानदास ने इस मन्तव्य को इसप्रकार कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सोलासै सिंणगार, रहैं डिंग भामनी।
लियां पियालां हाथि, दसों दिस कामिनी ।।
चोधडिया लष कोड़ि, षड़ा दरबार मैं।
हरि हाँ,
ध्यानदास विणि राम, गये मिलि छार मैं ।।'

—हरि० वा० [उत्तरा०], पृ० 59

सन्त चरणदास को पराई'शीतलता' भी, अपने घर की 'धूप' की तुलना में त्याज्य लगी है

'रंग होय तो पीव को, आन पुरुष विष रूप।
छांह बुरी पर घरन की, अपनी भली जु धूप ।।'

—सं० बा० संग्र०, भा० 1, पृ० 147

'नख-शिख' वर्णन से सन्तों को इतनी चिढ़ नहीं थी, जितनी कि सुन्दरी-कामिनी नारी के शरीरांगों पर केन्द्रित करके श्रृंगारी वृत्तियों को उभारने से थी। विषय-वासना प्रतिपादक कवियों को सुन्दरदास ने 'काक कवीश्वर' की संज्ञा दी है और सार्थक-रचना के माध्यम से अर्थ-उद्घाटन करने वाले सन्त-रचनाकार को वे हंस-पदवी से अभिव्यंजित करते हैं। देखिए—

हंस चुगै मुक्ताफल अर्थहिं, सुन्दर मांनसरोवर न्हांहिं।
काक कवीश्वर बिषई जेते ते सब दौरि करंकहिं जांहिं ।।'

—सुं० ग्रं०, सवैया० 22/30

वैसे, गुरु-भाव की नख-शिख शोभा पर न्यौछावर होना वे अपना गौरव मानते रहे थे—

'गुरु अविनाशी पुरुष है, घट का दादू नांव।
सुन्दर शोभा का कहूं, नख शिख पर बलि जांव ।।'

—सुं० ग्रं०, भाग 1, बावनी 13/1

इसप्रकार रीतिकालीन 'श्रृंगारवाद', जो कामिनी-सुन्दरी के नख-शिख चित्रण को महत्त्व देता रहा है, का प्रतिरोध सन्तों की काव्य-रचना में भरपूर लक्षित हुआ है। उनकी दृष्टि में काव्य-रचना का श्रृंगारी पक्ष समाज-चेतना की जागृति में सहायोगी न होकर, हीन प्रवृत्ति को जगाने में सहायक होता है। वास्तव में सन्त-काव्य जागृति का, विशेषतः जागे हुए को जगाने का, काव्य है, उँघाने या सुलाने का काव्य नहीं है। वहाँ नारी के वासना उद्बोधक पक्ष का ही नहीं, अपितु उस सभी प्रकार के असामाजिक फूहड़पन का भी विरोध मिलता है, जो मनुष्य-चेतना में सात्विकता के स्थान पर घृण्य भाव [-भदेसपन] या अविश्वासी भावना जगाता है। देखिए—

'सुच्चि अचार कछू न विचारत मास छठै कबहूंक सन्हांहीं।
मूंड षुजावत बार परैं गिर ते सब आटे मैं वोसनि जांहीं ।।
बेटी रु बेटन कौ मल धौवत वैसैंहि हाथन सौं अंन षांहीं।
सुन्दरदास उदास भयौ मन फूहड़ नारि फतेपुर मांहीं ।।'

—देशाटन के सवैए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन, इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पूरे नारी-स्वरूप के प्रति उनमें कोई कुण्ठा थी। नारी [-पुरुष के भी] के केवल कामी-व्यभिचारी पक्ष की ही उन्होंने अवहेलना की है। अन्यथा, नारी मर्यादा में बहू, प्रिया, पतिव्रता, सती और माँ के पक्षों का वे जितना सम्मान करते हैं, वैसा मध्यकालीन काव्य में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। कुछ उदाहरण देखिए—

'कामी लज्जा नां करै, मन मांहीं अहलाद।'—क० ग्रं० [पा०], 30/23
'नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम।'—क० ग्रं०, 20/7
'कबीर धनि सो सुंदरी, जिन जाया बैसनों पूत।'—क० ग्रं० [पा०], 4/38
'कबीर जे को सुंदरी, जाणि करै बिभचार।
ताहि न कबहूं आदरै, प्रेम पुरिष भरतार॥'—क० ग्रं०, 52/2
'हरि जननीं मैं बालिक तेरा। काहे न औगुण बकसहु मेरा।'
'हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।'—क० ग्रं०, पद 111, 117
'नारी को अपराध नहीं, पुरुष पातकी होय।
कहै प्रीतम एक हाथ सूं, ताली पड़ै न कोय॥
स्त्री पुरुष आनंदमय, सबहिं हरि के रूप।
प्रीतम जाकूं जे भावना, ताकूं ता फल रूप॥
—गुज० सं० हि० बा०, पृ० 207

'जो हरि कौं तजि आन उपासत सो मति मन्द फजीहति होई।
ज्यौं अपनैं भरतारहि छाडि भई बिभचारिनि कामिनि कोई॥
सुन्दर ताहि न आदर मांन फिरै बिमुखी अपनी पति षोई।
बूडि मरै किनि कूप मंझार कहा जगजीवत है सठ सोई॥'
—सुं० ग्रं०, सवैया०, पतिव्रत० 16/2

कुल मिलाकर, कबीरादि अन्य सन्तों के समान ही सुन्दरदास ने सन्त-काव्य की मूल चेतना के अनुरूप, मनोविकारों पर आधारित 'रसवादी' शृंगारवाद को, अपनी काव्य-रचना-कसौटी का आदर्श नहीं माना। काम, राग अथवा आसक्ति के कारण वे मनोविकारों वाले 'हीन रस' से, शमित-रूपान्तरित अथवा उससे अतीत बने रहने की ही बात कहते रहे हैं। क्योंकि, आसक्ति प्रबल **'काम रस'**, व्यापक 'राम रस' अथवा 'आनन्द रस' का 'रसिया' बनने में विकट बाधा पैदा करता रहता है। 'काम' [-वासना] की प्रबलता में आध्यात्मिक निर्णय [-निश्चय] अथवा संकल्प बनने-बनाने में बाधा पड़ती है। वासना की प्रबलता में लौकिक आचरण का 'आदर्श' भी शिथिल और भ्रष्ट होता रहता है। जागी हुई तृष्णा, चाहे वह कामिनी की हो अथवा कंचन की, अपनी पूर्ति के मार्ग पर चलते हुए, मन को कभी शान्त नहीं रहने देती। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'त्रिरनां सीची नां बुझै, दिन दिन बधती जाइ।'—क०ग्रं०, 16/14
'जन हरीदास नारी नरां, मोटी बिथा विकार।
रूप दीप सुर नर पतंग, जल बलि तन मन छार॥'
—हरि० वा०, प० 323

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जौ दस बीस पचास भये सत होहिं हजारनि लाष मंगैगी ।
कोटि अरब्ब षरब्ब असंषि पृथीपति हौंन की चाह जगैगी ।।
स्वर्ग पताल कौ राज करौं, तृसना अधिकी अति आगि लगेगी ।
सुन्दर एक सन्तोष बिना सठ तेरी तौ भूष न क्यौहुं भगैगी ।।'

—सुं॰ ग्रं॰, सवैया॰, तृष्णा॰ 5/3

दूसरी ओर राम-रस [=आनन्द रस] का 'रसिया' जिसे सन्तों ने 'जन' या 'भक्त' कहा है और उसकी मौज-मस्ती को खुँमारी, चेतना के साक्षात्कार में अपने आलम्बन 'राम' [=रमता राम] का निरन्तर अनुभव करता-रहता है। इसीलिए उसका खुँमार कभी नहीं उतरता। फलतः वह अपने जीवन में जिस निरन्तर समरस-वैचारिकता का अनुभव करता है, उसमें आसक्ति मूलक रस, उसकी चेतना को ग्राह्य नहीं हो पाते। उसे तो अपने आनन्द रस की प्राप्ति 'सिर' [=अहंकार, सीमित अहं]-सौंप देने के बाद ही हो पाती है। देखिए—

'सिर सौंपै सोइ पिवै, नहीं तो पिया न जाइ।'
'हरि रस पीया जांणिये, जे कबहुं न जाइ खुंमार।'—क॰ ग्रं॰, 6/3,4
'नैंनू रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ।' —क॰ ग्रं॰, 11/4
रांम रस पाइया रे, ताथें बिसरि गये रस और।'—क॰ ग्रं॰, पद 75
'दादू निरंतर पिउ पाइआ, तीन लोक भरपूरि।'

—सं॰ बा॰ संग्र॰ 1, पृ॰92

'राम रसाइण अजब है, दूजा रस करि दूरि।'

—हरि॰ वा॰, सा॰ 30, पृ॰78

'हरि दरिया में मीन मन पीवै पेम अगाध।
महामगन रस में रहै, जन रज्जब सो साध।।'—र॰ बा॰, 59/6
'अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं, मोक्ष आदि सब छाडी आस।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास।।
जाकौं अनुभव होइ सु जाणैं, पायौ परमानन्द निवास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास।।'

—सुं॰ ग्रं॰, भाग 1, सुख समाधि 4/2, 24

'सुन्दर सांई हक्क है, जहां तहां भरपूर।
एक उसी के नूर सौं, दीसैं सारे नूर।।'

—सुं॰ ग्रं॰, भाग 1, अजब ष्याल 25/8

'हिन्दू की हदि छाडि कै, तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हियां एकै राम अलाह।।'

—सुं॰ ग्रं॰, भाग 1, सहजानन्द 27/6

'सब के हू मन भावन सरस बसंत।
करत सदा कौतूहल कामिनि कंत।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सेज वर कामिनि लागलि पाइ।
पिय करि अंगहि परसत गइलि बिलाइ॥
रस महिया रस होइहि नीरहि नीर।
आतम मिलि परमातम षीरहि षीर॥'
—सुं० ग्रं०, भाग 1, पूरबी भाषा० 38/12, 17-18

'एक सत्य परब्रह्म एक तें गनती गनिये।
दश दश आगे एक एक सौ ताईं भनिये॥
एकहि को बिस्तार एक कौ अंत न आवै।
आदि एक ही होइ अन्त एकहि ठहरावै॥'
—सुं० ग्रं०, भाग 2, ज्ञान विचार, छन्द 9

सन्त-काव्य में प्रतिपादित काम-पक्ष का विरोध देखकर ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि सन्त कवि जन-जीवन की चेतना को लोक-मार्ग से अलग कर बन-मार्ग की ओर अग्रसरित कर रहे थे अथवा करना चाहते थे। यदि ऐसा होता तो वे, जीवन में मूल्यवादी सिद्धान्तों को लेकर सत्य पक्ष पर अडिग रहने की बात न कहते। अहं जनित सीमित स्वार्थों को परम सत्य में समर्पित करने एवं साधु-जीवन की पक्षधरता करने वाले इन सन्त-रचनाकारों ने पतिव्रता [=सती] और शूरवीर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इससे उनका जीवन और जगत के प्रति दृष्टिकोण ही उजागर होता है। वास्तव में 'सत्संग' [=सत्य-विवेक-विचार] को आचरण और अध्यात्म-चिन्तन की धुरी मानने वाली सन्त-वाणी, समता भाव से जीवन में सबकी हित-कामना करते हुए, निश्चय [=संकल्प] को निरन्तर पुष्ट करती रही है। प्राय: सभी सन्त-रचनाकारों ने साधु-जीवन जीने वालों को लोक-धर्म का आदर्श माना है। सन्तों के आदर्श ये प्राणधारी साधु, समाज-जीवन में सत्संग के माध्यम से अपनी चेतना का विस्तार करते रहे हैं। इनका आचरण [=यथार्थ व्यवहार-विचार] ही तो उनकी परख बनकर समाज के सामने आता रहा है। इनका आदर्श [=कथनी] जीवन के बीचोबीच ही परखा जाता रहा है। देखिए—

'साधू प्रतषि देव हैं, नहिं पाथर सूं काम।'—क० ग्रं०, 23/5
'साधु परखिये रहिन में।'—सं० बा० संग्र० 1, पलटू०, पृ० 218

'है जग माहिं बड़ौ सतसंगा' के प्रतिपादक सन्त सुन्दरदास ने 'साधु' के अन्तरंग और व्यवहार को लेकर ही 'साधु कौ अंग' के अन्तर्गत सवैया और साखी छन्दों की रचना की है। यहाँ एक सवैया द्रष्टव्य है—

'प्रीति प्रचंड लगै परब्रह्महि और सबै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध हृदै मति होइ सु निर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जी कौ॥
गोष्टि रु ज्ञान अनंत चलै तहं सुन्दर जैसे प्रवाह नदी कौ।
ताहि तें जानि करै निस वासर साधु कौ संग सदा अति नीकौ॥'
—सवैया०, साधु० 20/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह बात भी समझ लेना आवश्यक है कि साधु का प्रेम 'विरही' का प्रेम नहीं है, जो नायिका के मिलते ही संयोग-सुख में अपना लक्ष्य पालेता है। अपितु, शूरवीर का प्रेम है, जो व्यापक समता-भाव के कारण, प्राण तत्त्व की संवेदना में करुणाभाव से निरन्तर [जीवन-पर्यन्त] द्रवित बना रहता है। विषम से विषम परिस्थिति में भी सन्त-सिपाही अपने धीरज को नहीं छोड़ता। ऐसे शूरवीर साधु पुरुष, प्रेम की कसौटी पर अपना 'निजी' सर्वस्व स्वाहा करने के बाद ही 'धीर' कहलाता है—'कर्षति भूरि विषया न च लोभ भारौ, लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः।' सन्तों ने ऐसे ही धीर पुरुष को साधु अथवा 'मरजीवा' कहा है। ऐसे शूरवीर में अहंकार लेशमात्र भी नहीं रहता, पर वह दीन-हीन नहीं होता। वह तो प्रत्येक क्षण और प्रत्येक दिशा में युद्ध-निरत रहता है।[1] सुन्दरदास ने 'सूरातन कौ अंग' के अन्तर्गत 19 सवैया और 25 साखियों की

1. 'सांईं सौं सांचा भया जूझै सदा हजूर।'—क० ग्रं० [पा०], 12/8
'भगति दुहेली राम की नहिं कायर का कांम।
सीस उतारै हाथ सौं सो लेसी हरि नांम॥
भगति दुहेली रांम की जस खांडे की धार।
जो डोलै सो कटि पड़ै निहचल उतरै पार॥'
—क० ग्रं० [पा०], 14/18-19
'सूरा जूझै गिरद सौं इक दिसि सूर न होइ।'
'कबीर मरि मैदांन में करि इंद्रिय सौं जूझ।'
'कांम क्रोध सौं जूझनां चौड़ै मांड़ा खेत।'
—क० ग्रं० [पा०], 14/9, 6, 11
'जीवन थैं मरिबो भलौ जौं मरि जानैं कोइ।'
'खरी कसौटी रांम की खोटा टिकै न कोइ।
रांम कसौटी सो टिकै जो जीवन मृतक होइ।'—क० ग्रं, 41/8,9
'आपा मेट्या हरि मिलै हरि मेट्या सब जाइ।'—वही, 41/10
'सांचे सूरे हैं मरदाने जूझार।'=सं०बा०संग्र० 1, गरीब०, पृ० 203
'सूरा एह न आखियन जो लड़नि दलां में जाय।
सूरे कोई नानका जो मंनणु हुकम रजाय॥'—नानक,
'सबहि कटक सूरा नहीं कटक मांहि कोइ सूर।
दरिया पड़े पतंग ज्यौं जब बाजै रन तूर॥'
—दरिया साहब [मार०],
'सोई जन सूर जो खेत में माड़ि रहै
भक्ति मैदान में रहै ठाढ़ा।'—चरनदास,
'बावन बाहिर बुझना जुझना आठूं याम।
मतवाले का मामला नहीं कायर का काम॥'
—गुज० सं० हि० वा०, ब्रह्मानंद, पृ० 281

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना की है। सुन्दरदास की दृष्टि में साधु और शूरवीर, देह की आसक्ति से ऊपर उठ कर 'शीश' रहित होकर युद्ध-निरत वने रहते हैं। देखिए—

'सुन्दर कहत कोऊ देह कौ ममत्व नांहि
सूरमा कै देखियत सीस बिन धर है।'
'ऐसौ कोऊ सुभट जगत मैं न देषियत
जाकै आगै कालहू सौ कंपि कै परान्यौ है।
सुन्दर कहत ताकी शोभा तिहूं लोक मांहिं
साधु सौ न सूरबीर कोऊ हम जान्यौं है॥'
'सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूरवीर
ताकि ताकि सबहि पिशुन दल मार्यौ है।'
—सवैया०, 19/4, 9, 10

'सुन्दर तन मन आपनौ आवै प्रभु कै काम।
रण मैं तैं भागै नहीं करै न लौंन हराम॥'
'सूरबीर धीरज धरै भागि जाइ भक भूरि।'
—सु० ग्रं०, भाग 1, सूरातन०, 18/10, 12

प्रेम-साधना के सन्दर्भ में सन्तों की **'विरह-चेतना'** का विवेचन आवश्यक है। वास्तव में इस विरह अथवा करुणा-भावना ने या फिर दुःख-दर्द की संवेदना ने ही सन्तों को व्यापक जीवन जीने की प्रेरणा दी है। इसीलिए **'विरह'** को प्रेम की 'जागृति-अवस्था' और विरहानुभूति को 'हरि-कृपा का परिणाम' कहा गया है। कबीर ने तो विरह-रहित हृदय को 'मसान' [=श्मशान] तक कह दिया है। सन्तों द्वारा अभिव्यक्त विरह-दशा में बेचैन करने वाली दर्द-पीड़ा का जो 'अनुभौ' है, वही उनकी निरन्तर प्रेरणा बनता रहा है। सन्त-वाणी का यही अनुभव[-अभिव्यक्ति]सर्वाधिक मार्मिक काव्य होने की सम्भावनाओं से युक्त है।[1] वाणी में निहित इस [दुःख-दर्द-] पीड़ा को समझे बिना सन्त-वाणी

---

1. 'दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय।
यह बिरहा मेरे साध कौं, सोता लिया जगाय॥'
—सं० बा० संग्र० 1, पृ० 128

'बिरहा बिरहा मति कहौ, बिरहा है सुलतान।
जिहिं घट विरह न संचरै, सो घट सदा मसान॥'
'कै बिरहिन कौं मीच दै, कै आपा दिखलाइ।'
—क० ग्रं० [पा०], 2/16, 40

'विरह जगावै दरद कौं दरद जगावै जीव।'
—दादू० बा०, भा०1, 3/125

'राम बिरहिनी हो गया बिरहिनि ह्वै गई राम।
दादू बिरहा बापुरा ऐसा करि गया काम॥'
—दादू० बा०, भा० 1, 3/148

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समीक्षा सम्भव नहीं है। इस विरह का अनुभव और प्रभाव दोनों ही, लोकानुभूत सामान्य विरह-भाव से कुछ विशिष्ट होने के कारण 'अद्भुत' कहे गए हैं।[1]

[क्रमशः] 'नर नारी सब नाज बिरहा बारू भारकी।
रज्जब अज्जब साज कांचे पाके परसते ॥'
—र० बा०, बिरह० 10/35
'बिरही प्राण चकोर है बिरह अगिन अंगार।
रज्जब जारै और को उनके प्राण अधार ॥'
'रज्जब बातहुं के बिरह कदे न सीझै काम।'
—र० बा०, बिरह० 10/46, 63
'बिरही दाझी देहड़ी गया समुंदर तीर।
कहै प्रीतम सागर जला ऐसा बिरह सरीर ॥'
—गुज० सं० हि० दा०, पृ० 206

1. 'बिरहिणि बिरहा बीच में कियो सो अपना घर।
चौदह तबक की साहिबी सो वारों तेरे बिरह पर ॥'
—वही, प्राणनाथ, प० 117
'पानी में प्रवेस किये, भहर भहर बरै अंग।
तुरसी पावक परस तैं उपजै गंग तरंग ॥'
—नि० सम्प्रा० तुरसी०, पृ० 39
'बिरहनि को भावैं नहीं भव सागर के भोग।'
—हरि० वा० [उत्तरा०], पृ० 207
'रज्जब कहिये कौन सौं इस बिरहे की बात।
मानहु रावन की चिता अह निस नहीं बुझात ॥'
'दोसत नहीं दरद समि जो दिल अन्दर होय।'
—र० बा०, 10/6, 36
'मो बिरहिन की बात हेली बिरहनि हो सोई जानि है।'
—सं० बा० संग्र० 2, चरनदास, पृ० 128
'दुख के भीतर मुक्ति है सुख में नरक निदान।'
—वही, भा० 1, पलटू०, पृ० 220
'सुखिया सब संसार है खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै ॥'—क० ग्रं०, 3/45
'सब जगि सूता नींद भरि संत न आवै नींद।'—वही, 46/4
'दादू घायल दरदबंद जागै अरु रोवै।'
—दादू० बा०, भा० 1, 3/80
'जेहि लागी सो जागिहै बेध्या करै पुकार।
दादू पिंजर पीड़ है सालै बारम्बार ॥' —दादू० ग्रं०, 3/114

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नारद भक्ति सूत्र' में 'परम विरहासक्ति रूप' प्रेम को श्रेष्ठ माना है। सुन्दर-वाणी में, वेदान्त प्रतिपादित चेतना की संपुष्टि के साथ, विरहानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। ऐसी अभिव्यक्ति उनकी पद-रचना में सर्वाधिक देखने को मिलती है। सवैया-ग्रन्थ के 'बिरहनि उराहने कौ अंग' एवं साखी-रचनाओं में 'देहात्म बिछोह कौ अंग' तथा 'बिरह कौ अंग' में ऐसे प्रसंग सम्यक् रूप से देखे जा सकते हैं। उलाहने के माध्यम से वहाँ जिस स्वर की व्यंजना कराई गई है, वह लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही पक्षों के प्रति दायित्वशील है। देखिए—

'सुन्दर बिरहनी कै सोच सबी बार बार
हम कौं बिसारि अब कौन के कहाये हैं॥'
'सुन्दर कहत जाके पीर सो करै पुकार
जाकै दुख दूरि गयौ ताकै भई वोत है॥'
'ऐसी तौ कठोरता सुनी न देषी जगत मैं
सुन्दर कहत काहू वज्र ही के गढे हैं॥'
—सवैया०, बिरहनि०, 17/1, 3, 4,

सुन्दर बिरहनि अति दुखी पीव मिलन की चाह।
निस दिन बैठी अनमनी नैननि नीर प्रबाह॥2॥
सुन्दर नख शिख परजरै छिन छिन दाझै देह।
बिरह अग्नि तब ही बुझै जब बरषै पिय मेह॥7॥
सुन्दर बिरहनि कै निकट आई बिरहनि कोइ।
दुखिया ही दुखिया मिली दहुंवनि दीनौ रोइ॥11॥
बिरहा बिरहनि सौं कहत सुन्दर अति अरि भाव।
जब लग तोहि न पिय मिलै तब लग घालौं घाव॥14॥
जोबन मेरा जात है ज्यौं अंजुरी कौ नीर।
सुन्दर बिरहनि बापुरी क्यौं करि बन्धै धीर॥42॥
अब तुम प्रगटहु रामजी हृदै हमारै आइ।
सुन्दर सुख सन्तोष ह्वै आनंद अंग न माइ॥52॥'
—सुं० ग्रं०, भाग 1, साखी०, बिरह०,

'माई हो हरि दरसन की आस।
कब देषौं मेरा प्रान सनेही नैंन मरत दोऊ प्यास॥'
'बिरहिन है तुम दरस पियासी। क्यौं न मिलौ मेरे पिय अविनासी।'
'मेरौ पिय परदेस लुभानौं री।
जानत हौं अजहूं नहिं आये काहूसौं उरझानौं री॥'—सुं०ग्रं०, पदा०,

अत: कह सकते हैं कि सुन्दर-वाणी में अभिव्यक्त विरह-भाव, शृंगारादि रस-प्रसंगों में वर्णित विरह-भाव नहीं है, जो मात्र आलम्बन की स्थिति में ही उद्‌बुद्ध रह पाता है। यह विरह-भाव तो सन्तों की समतानुभूति का परिणाम है, जो ज्ञान-विरह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण चेतना में निरन्तर बना रहता है। सन्त-काव्य की विरह-चेतना का अनुभव सह-अनुभूति वाले सहृदय ही कर सकते हैं, इन्द्रिय-लोलुपता की मानसिकता वाले नहीं। सन्तों की मान्यता है कि प्रेम-साधना वाले विरही को सांसारिक भोग-संभोग तो दग्ध करते हैं, जबकि अध्यात्म विरह-ऊष्मा शीतलता प्रदान करती है। इसीलिए सन्त-वाणी के विरह-सुख का रसास्वादन, रूपान्तरित इन्द्रिय-चेतना में ही सम्भव है। ऐसी शोधित चेतना में ही 'राम रस' के आनन्द की अनुभूति हो सकती है। यह 'राम रस' समता-प्रकृति का आनन्द है, जिसका न तो कोई पर्याय है और न कोई विलोम[1]। विकार के विलास में ऐसे आनन्द का अनुभव सम्भव नहीं होता। इस आनन्द भाव या रस का यदि कोई 'स्थायी भाव' हो सकता है तो वह आत्म-साक्षात्कार की दशा ही है और 'आश्रय' [साधक-] सन्तों की साधु-वृत्ति अथवा उनका विश्रान्त चित्त और चेतना का 'अनुभाव' होगा—कथनी-करनी और रहनी में समता भाव की अभिव्यक्ति और 'उद्दीपन' संसार की विषम अथवा विसंगत परिस्थिति।

यहाँ प्रश्न उठता है कि सन्तों द्वारा प्रतिपादित 'आनन्द भाव' शान्त अथवा भक्ति-रस की सीमा में क्यों नहीं समाहित हो पाता? वास्तव में शान्त रस, 'निर्वेद' भाव का परिणाम माना गया है। यह 'निर्वेद' भाव जीवन की जन्म-मरण मूलक नश्वरता, पाप-पुण्य से प्रेरित भय एवं काम-क्रोधादि से उपरति तथा मोक्ष प्रतिपादक शास्त्रों के विमर्शन से उत्पन्न होने के कारण, प्रकृत भाव नहीं कहा जा सकता। इसलिए शान्तरस को ऋणात्मक वृत्ति से जन्मा हुआ रस कह सकते हैं। अतः यह रस समताभाव का पोषक न होकर निवृत्ति प्रधानता का समर्थक है। इसमें जीवन-कर्म प्रायः उपेक्षित रह जाते हैं। वैसे भी, जीवन में एकान्त निवृत्ति का हो पाना सम्भव नहीं है। वास्तव में राग-द्वेष के संस्कार जीवन में सर्वथा निर्मूल नहीं हो पाते। जबकि, वृत्ति रूपान्तरण के द्वारा सन्त-वाणी की मूल चेतना समता भाव का अनुभव करने की प्रेरणा देती-रहती है। यही कारण है कि सन्तों ने कहीं गृह-त्याग को मान्यता नहीं दी। अपितु, वे हंस-भाव अथवा जल में कमल की स्थिति से गृह और बन के बीच की मानसिकता को संरक्षित करते हैं। सुन्दरदास ने 'गृह वैराग्य बोध' ग्रन्थ के अन्तर्गत, गृहस्थ और विरक्त के संवाद के माध्यम से, सन्तों की उसी 'मध्यम भाव' प्रधान समता-चेतना को पुरस्सर किया है, जो एक-दूसरे के अवलम्ब की आवश्यकता पर ज़ोर देती है। देखिए—

'विरक्त धर्म रहै जु गृही तें, गृहि कौं विरक्त तारै जू।
ज्यौं बन करै सिंघ की रक्षा, सिंघ सु बनहिं उबारै जू॥'

वैसे, आचार्यों [=आचार्य धनंजय, 11वीं शती] ने 'भक्ति' को प्रायः 'भाव' मात्र माना है। किन्तु, भक्ति के आचार्य रूप गोस्वामी [15-16वीं शती] ने अपने **'भक्ति रसामृत सिन्धु'** और **'उज्ज्वल नीलमणि'** नामक रस-शास्त्रीय ग्रन्थों में भक्ति-

---

1. 'ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि॥'—क० ग्रं०, 5/48
'सीतलता जब जांणिये, समिता रहै समाइ।'—क० ग्रं०, 39/2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस का विस्तार से प्रतिपादन करते हुए इसे स्वतन्त्र रस घोषित किया है। पर, सन्त-काव्य के रचनाकारों ने, रस-शास्त्र द्वारा प्रतिपादित भक्ति-रस की सीमा को स्वीकार नहीं किया है। क्योंकि, भक्ति-रस में जिन श्रीकृष्ण या राम को आलम्बन तथा कीर्तन आदि को अनुभाव रूप में माना गया है, उन्हें सन्तों ने काल के बन्धनों में बँधे हुए विशिष्ट मनुष्य की संज्ञा दी है और कीर्तन आदि को सामान्य क्रिया-कलाप के अन्तर्गत ही माना है।[1] वैसे भी सन्त-काव्य का रचनाकार अपने साक्षात्कार अथवा हृदय-विस्तार की दशा में, जिस तन्मयता, एकरसता अथवा जागृति का अनुभव करता है, वह रस-दशा की साधारणीकृत अवस्था नहीं है। अपितु, शमित राग की समता प्रधान रूपान्तरित चेतना है।[2] ऐसी अवस्था में अनुभूति सघनता के साथ-साथ लोकमंगल या लोक-संग्रह की सहज प्रवृत्ति देखी जा सकती है। सन्तों की 'लोक मंगल' प्रधान भावना किसी 'सगुणवाद का विस्तार' नहीं है। अपितु, सम्पूर्ण 'सगुणवाद' ही, लोकमंगल पर आधारित निर्गुणवाद का, रूपात्मक या कलात्मक पक्ष है। निर्गुण-चेतना की अनुभूति, जिस उन्मनि दशा में हमें पहुँचाती है, उसमें तृष्णाक्षय, वासना रूपान्तरण, चित्त उपशमता, तत्त्वज्ञान जन्य सम्यक् बोध से प्रेरित होकर चित्त-चेतना का विस्तार होना अवश्यम्भावी है। ऐसी बोध-दशा में काम-क्रोधादि का वैयक्तिक दंश तिरोहित हो जाता है। निर्वैरता की उस भाव-भूमि में सहज-समता-भाव का अनुभव होना स्वाभाविक है। सुन्दर-वाणी में श्रीकृष्ण गोपी-लीला को काम-वासना उद्बुद्ध करने-कराने का माध्यम माना है—

'सुनि सुनि लीला कृष्ण की हो दून्यौ उपज्यौ काम।
बूडे काली धार मैं हो कतहूं नहिं विश्राम।।
पंडित पैंडौ मारियौ हो कहि कहि ग्रन्थ पुरान।
सूतौ सर्प जगाइयौ हो फिरि फिरि लागौ षान।।
पहलैं आगि बरै हुती हो पूला नाष्यौ आइ।
रोगी कौं रोगी मिलै तौ ब्याधि कहां तैं जाइ।।'

—सुं ग्रं०, भाग 2, पद 180

जबकि, ज्ञानोदय काल में चेतना जिसप्रकार प्रकाशित होती है, उसमें घर-बन के बीच किसी प्रकार की द्विविधा न रहकर, समता भाव ही व्याप्त रहता है—

---

1. 'करता दीसै कीरतन, ऊंचा करि करि तूंड।
जांणै बूझै कुछ नहीं, यौं ही आंधा रूंड।।'—क० ग्रं०, 18/5
'कीरतन्यां काचै मते, जपै न केवल रांम।
जहां तहां नाचत फिरै, माया मिलै न रांम।।'
—हरि० वा०, पृ० 371

2. 'सोवण का सुख और है, जागण का सुष और।
जब जाग्या तब एक रस, तहां साधां की ठौर।।'—हरि०वा०, पृ० 38

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुन्दर ज्ञान प्रकास तें धोषौ रहे न कोइ।
भावै घर मांहें रहौ भावै बन मैं होइ॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 1, साखी०, ज्ञानी० 30/44

सगुणवादी 'त्रिदेव'-भक्ति के प्रति सन्त-रचनाकारों की वैसी निष्ठा नहीं है, जैसी कि सगुणवादी रचनाकारों की रही है। इसीलिए सुन्दरदास ने त्रिगुण प्रतिनिधि 'त्रिदेव' को त्याग कर 'एक निरंजन' निष्ठा में अपनी आस्था व्यक्त की है। देखिए—

'ब्रह्म कुलाल रचै बहु भाजन, कर्मनि कैं बसि मोहि न भावै।
विष्णु हु संकट आइ सहै ग्रभ काहु कौं रक्षक काहु सतावै॥
शंकर भूत पिशाचनि के प्रति पानि कपाल लिये बिललावै।
याहि तैं सुन्दर त्रीगुन त्यागि सु निर्मल एक निरंजन ध्यावै॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 2, सवैया०, निर्गुण० 15/1

अब एक और प्रश्न उठता है कि सन्तों की निर्गुण-चेतना को '**भक्ति**' किस प्रकार कहा जा सकता है? इस प्रश्न-जिज्ञासा के सन्दर्भ में सुन्दरदास की '**निर्गुण भक्ति**' और उसके '**आलम्बन**' पर विचार करना आवश्यक है। सुन्दर-वाणी ही नहीं, समूची सन्त-वाणी का केन्द्रीय भाव '**हरि जस**' [—'कहि सुन्दर हरि जस जीव है, हरि जस बिन मृतकहि तथा'] है। '**हरि जस**' से परिपूर्ण '**हरि रस**' की रचना करने वाले को सुन्दरदास ने उत्तम कवि कहा है—

'उत्तम मध्यम अधम कवि उत्तम हरि रस लीन।
मध्यम बरणत मानुषनि दोषनि अधम अधीन॥'

इस 'हर रस' में प्रतिष्ठित होने केलिए '**सत**' की संगति आवश्यक है। इस 'सत' की भाव-निष्ठा में सभी प्रकार के भेद-भाव तिरोहित हो जाते हैं।[1] कर्णधार की तरह यह 'सत' भाव ही सभी का सन्तरण करता है। उस भाव-चेतना में पहुँचकर वह जिस '**अभय पद**' या राम-भाव का अनुभव करता है, वही सन्तों के व्यापक जीवन का काम्य बना रहा है। 'मनुष्य जीवन' की वाहिका रूप यह निर्गुण-भक्ति-नौका देखिए—

'सो अनयास तिरै भवसागर जो सत संगति मैं चलि आवै।
ज्यौं कणिहार न भेद करै कछु आइ चढ़ै तिहिं नाव चढ़ावै॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हू शूद्र मलेछ चण्डालहि पार लंघावै।
सुन्दर बार कछू नहिं लागत या नर देह अभै पद पावै॥'

—सुं ग्रं०, भाग 2, सवैया०, साधु० 20/8

---

1. जब थैं आतम तत बिचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थैं कांम क्रोध गहि डारा।'

—क० ग्रं०, पद 186

'परिचै राम रमै जे कोई। या रस परसे दुबिधि न होई।

—सं० बा० संग्र० 2, रैदास, पृ 35

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी समता-चेतना की प्रधानता में प्राण तत्त्व की एकरूपता के साथ ही ब्रह्मा से कीट-पर्यन्त सभी देहधारियों को समदृष्टि से देखने की प्रवृत्ति प्रमुख हो जाती है। यहाँ ऐसी चेतना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'देह वोर देषिये तौ देह पंच भूतनि की
ब्रह्मा अरु कीट लग देह ई प्रधान है।
प्रान वोर देषिये तौ प्रान सब ही कौ एक
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ ब्यापत समांन है।।'
—सुं० ग्रं०, भाग 2, सवैया०, विचार० 26/28

सन्तों द्वारा प्रतिपादित 'भक्ति', उपासना-भाव के पर्याय के रूप में, अधिक सार्थक लगती है। वैसे तो साकार इष्ट के नामों तक का प्रयोग, निराकर ब्रह्म के आलंकारिक पर्याय के रूप में होता ही रहा है। वास्तव में जितने भी शरीर-अशरीर धारी अथवा स्थूल-सूक्ष्म रूप हैं, वे सब एक नित्य सत्ता की सापेक्षता में क्षर अथवा अनित्य माने गए हैं। उदाहरण केलिए प्रकृति-माया अर्थात् दृश्य[-अनुभूत] जगत्, परम तत्त्व (-परम सत्ता, परम मूल्य) की तुलना में, क्षय शील माना गया हैं। अतः वह सभी कुछ जो परिवर्तनशील प्रकृति को धारण करता है, सन्तों की दृष्टि में आराध्य या उपासनीय नहीं हो सकता। भक्ति-सिद्धान्त में ध्येय-ध्याता, ज्ञेय-ज्ञाता अथवा भक्त-भगवान् आदि के रूप में द्वैत की आवश्यकता बनी रहती है। किन्तु, निराकार-निर्गुण-उपासना में अन्तरात्मा का ध्यान ही अपेक्षित एवं करणीय माना गया है। वैसे तो योग-साधना में भी साधनाभ्यास और ध्यान-साधना को महत्त्व दिया गया है। ध्यान-चिन्तन के इस विश्वास में भी गुरु-मुख वृत्ति, उन्मनी दशा, सुरति-साधना, शून्य-समाधि आदि योग-उपासना की अनेक साधना-रूढ़ियाँ मानी गई हैं। पर, वैराग्य-अभ्यास की प्रधानता वाला यह मार्ग निश्चय ही कठिन है। इसीलिए इसकी विचार-भूमिका को 'अलौनी शिला' कहा जाता है। किन्तु, आनन्द रस या ब्रह्मानन्द की भूमिका में पहुँचते ही, उस शिला का अलौनापन 'सलौना' बन जाता है। यदि रूपक में कहें तो कह सकते हैं कि इस सलौनेपन की अनुभूति प्राप्त करने केलिए, अपने हाथों अपना शीश [= अहंकार] काट कर स्वेच्छा [—प्रीति] से चरणों में चढ़ाना पड़ता है। साथ ही अनुभव में आए निरन्तर [रमता-] राम के आलम्बन का आश्रय भी लेना पड़ता है। असीम हरि-सागर में डुबकी लगाए बिना ऐसा अनुभव सम्भव नहीं है।[1] इस पथ पर चलने के अभ्यास के प्रति लगन, इश्क तल्लीनता, मस्ती, प्रेम-भक्ति और विचार-विवेक की परम आवश्यकता बनी

1. 'सहजै सहजै सब गए सुत बित कांमणि कांम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या दासि कबीरा राम।।'—क० ग्रं०, 21/3
'हरि सागर जिन बीसरै छीलर देखि अनंत।'—क० ग्रं०, 2/30
'दादू निरन्तर पिउ पाइआ तीन लोक भरपूरि।'
—सं० बा०, संग्र० 1, पृ० 92

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है। ऐसा करते हुए त्याग, वैराग्य, समता-भावना और सत-सत्ता का अनुभव करते रहना स्वयं में एक 'सुरति' [-तपस्या वृत्ति] है। ऐसी अव्यभिचारी भावना को धारण किए रहना ही अद्वितीय ब्रह्मपोसना अथवा निराकार-भक्ति है। चित्त की चंचल वृत्ति के अनुशासन केलिए, ज्ञान-मार्ग में भी भक्ति का आश्रय अपेक्षिति बताया गया है। किन्तु, इस ज्ञान-मार्गी-भक्ति में 'नवधाभक्ति' प्रक्रिया समाहित नहीं हो पाती। यद्यपि, सुन्दरदास ने भक्ति-प्रतिपादन के अन्तर्गत, भक्ति-भावना को भी इन्हीं में समाहित किया है। देखिए—

'ये चार्‍यौं अंग भक्ति के नौधा इनहीं मांहि।
सुन्दर घट महिं कीजिये बाहरि कीजै नांहि॥'

—सर्वांग योग प्रदीपिका, 2/51

'घट महिं कीजिये' से तात्पर्य उनका मानसी-पूजा [=उपासना] से है, जो अन्तःकरण चेतना की निरन्तर सहचरी बनी रहती है। सुन्दर-वाणी में ऐसी ही निराकार-भक्ति के अनेकानेक कथन अथवा तन्मयावस्था की अनेक स्थितियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। देखिए—

'देषहु एक है गोबिंद।
द्वैत भावहि दूरि करिये होइ तब आनन्द॥
× × ×
हरि जगत मैं जगत् हरि मैं कहत हैं यौं वेद।
नाम सुन्दर धर्‍यौ जब ही भयौ तब ही भेद॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 2, पदा०, केदारो 2

'लौंन पुत्तरी थाघै दरिया। जात जात ता भीतरि गरिया।'

—वही, पदा०, भैरूं 6,

[क्रमशः] 'सिर सौंपै सोई पिवै नहीं तो पिया न जाइ।'—क० ग्रं०, 6/3
'सीस उतारै हाथ सौं सो लेसी हरि नाम।'

—क० ग्रं०, [पा०], 13/18

'राम रस पाइया रे ताथैं बिसरि गये रस और।'—क० ग्रं०, पद 75
'आपा मेट्यां हरि मिलै हरि मेट्यां सब जाइ।'—क० ग्रं०, 41/10
'राम रसायण अजब है पीवे सु रसिया होय।'—हरि०वा०, पृ० 39
'रमता राम परम सुख सागर गुणां रहित निरगुण निज देव।
आनंद रूप अषिल अविनासी निहचल साध करै नित सेव॥'

—हरि० वा०, पृ० 147

'रमता राम सकल घट माहीं। ऊंच नीच अंतर कछु नाहीं।'

—हरि० वा० [उत्तरा०], सेवादास, पृ० 119

'रमता राम परख ले प्यारा सम घट समता दौरी।
आतम राम को मर्म न जान्यौ मन को मान बध्यौ री॥'

—गु० सं० हि० वा०, भोजा, पृ० 105

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पद एवं साखी' शब्दों के माध्यम से भी सुन्दरदास ने अपने उसी मन्तव्य को अभिव्यक्त किया है—

'पद मैं निरगुण पद पहिचांना ।
पद कौ अर्थ विचारै कोई, पावै पद निर्बाना ॥'
'अब हम जान्यौ सब मैं साषी ।
साषि पुरातन सुनी आगिली, देह भिन्न करि नांषी ॥'

—वही, पदा०, देवगंधार 3, 4

'पद' में निहित उस 'गोविन्द' का स्वरूप अति सुन्दर, अद्भुत और आनन्द मय है। देखिए—

'मेरौ मन लागौ माई री, परम पुरुष गोविन्द ।
चितवत नैंननि मोहत सैंननि बोलत बैंननि मन्द ॥
अद्भुत रूप अरूप सकल अंग दुःख हरन सुख कन्द ।
सुन्दर प्रभु अति सुन्दर सोभित निरषत नित आनन्द ॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 2, पदा०, टोडी 8

उक्त सन्दर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि ज्ञान-मार्गी भक्त, 'मुक्ति' का पिछलग्गू बनकर नहीं रहता। एक इच्छा विशेष या 'कामना' होने के कारण सन्तों ने 'मुक्ति' की भी उपेक्षा की है।[1] आनन्द रस के समक्ष उन्होंने 'मुक्ति' को धोखे की निशानी बताया है। ज्ञान-मार्ग में 'मुक्ति' कोई उपादान तत्त्व या लक्ष्य नहीं है। निज स्वरूप को पहचानना ही तत्त्व है। सुन्दरदास का कहना है कि ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ मुक्ति निवास करती हो। यह मुक्ति भी एक भ्रम [-धोखा] जनित मान्यता का ही परिणाम है। सन्तों ने, जीवन जीते हुए आत्म-चेतना वाली दृष्टि को ही मुक्ति-चेतना माना है। इस मुक्ति-भाव को जीने केलिए शास्त्र या पोथी के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए तो अनुभव-प्रमाण ही प्रमाण है। देखिए—

'मुक्ति तौ धोषै की नीसानी ।
सो कतहूं नहिं ठौर ठिकाना जहां मुक्ति ठहरानी ॥टेक॥
को कहै मुक्ति रहै पृथवी पर ढूंढै तौ कहुं नांही।
को कहै मुक्ति ब्योम के ऊपर को पाताल के मांहीं ॥
× × ×
जीवत कष्ट करैं बहुतेरे मुये मुक्ति कहैं जाई।
धोषै ही धोषै सब भूले आगै ऊवाबाई ॥
नित स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौं का त्यौं ही रहिये ।
सुन्दर कछू ग्रहै नहिं त्यागै, वहै मुक्ति पद कहिये ॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 2, पदा०, आसावरी 9,

1. 'मुक्ति रहै द्वारै खड़ी लट से झाड़ू देइ ।
बार बार बिनती करै पलटूदास न लेइ ॥'—सं० बा०संग्र० 2, पृ० 237

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अहंकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आंनी ।
जीवन मुक्त जांनि सोइ सुन्दर और बात की बात बषांनी ।।'
—वही, पदा०, कानडौ 5

'पंडित सो जु पढै यह पोथी ।
जा मैं ब्रह्म बिचार निरंतर और बात जानौ सब थोथी ।।
पढत पढत केते दिन बीते बिद्या पढी जहां लग जो थी ।
दोष बुद्धि जौ मिटी न कबहूं यातैं और अबिद्या को थी ।।'
—सुं० ग्रं०, भाग 2, पदा०, कानडौ 8

'मुक्ति' का अस्तित्व तो तब होता, जब 'माया' का अस्तित्व होता । चेतना में एक तत्त्व [ब्रह्म-सत्ता अथवा प्राण तत्त्व] ही आदि-मध्य और अन्त में व्याप्त है। इस अनुभव को प्राप्त करने से पहले भ्रान्ति-निवारण आवश्यक है। अन्यथा, वाचक-ज्ञानी सत्य [-ब्रह्म] की अनुभूति के बिना ही, उसको जानने की बात कहकर, लोक-धर्म से लोगों को विरत करते हुए समाज में पाखण्ड फैलाते रहते हैं । इस सम्बन्ध में सुन्दरदास का यह कथन द्रष्टव्य है—

'आदि हुतौ सोइ अंत रहै पुनि मध्य कहा कछु और कहावै ।
कारण कारय नाम धरे जुग कारय कारण मांहि समावै ।।'
'जो कहै जीव भयौ जगदीस तैं, तौ रवि मांहि कहां कौ अंधारौ ।।'
—सुं० ग्रं०, भाग 2, सवैया०, अद्वैत० 32/22, 34/11

'कहत है ऐसैं मैं तौ एक ब्रह्म जानत हौं
ताहि तें छोडि कै शुभ कर्मनि कौं रह्यौ है।
ब्रह्म की न प्रापति पुनि कर्म सब छूट गये
दहुंन तें भ्रष्ट होइ अध बिच बह्यौ है ।।'
—वही, सवैया०, विपरीत० 13/4

उक्त 'आत्म-दृष्टि' को, जीवन-व्यवहार में सर्वत्र और सर्वोपरि प्रतिष्ठित करने के कारण, समूची सन्त-वाणी के समान सुन्दर-वाणी भी, भेष-आडम्बर अथवा दिखावे का तिरस्कार अथवा विरोध करती रही है। मूल वस्तु की पहचान के प्रति समर्पित सुन्दरदास, पन्थानुगतिक को यही सलाह देते हैं कि 'आत्म-दृष्टि' पर विचार करो । यह आत्म-दृष्टि ही उनकी विश्व-दृष्टि है। वे सांख्य के 'सत्कार्यवाद' के पक्षधर हैं, जिसमें 'कारण' का सत्य ही कार्य में निहित रहता है—

'यौं आतमा विश्व है सोई ।'
'यौं आतमा विश्व नहिं दोई ।'
—सुं ग्रं०, भाग 1, सर्वां० यो० प्र०, छन्द 18, 21

'कारण आतम आहि अखंडा । कारय भयौ सकल ब्रह्मंडा ।'
—वही, छन्द 13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी साधु-मानसिकता में पाखण्ड का तिरस्कार स्वतः हो जाता है। देखिए—

'अवधू भेष देषि जिनि भूलैं।
जब लग आतम दृष्टि न आई, तब लग मिटै न सूलै॥
× × ×
तहबन्ध बांधि कुतक्का लीना, दम दम करै दिवाना।
महमद की करनी नहिं जानै, क्यौं पावै रहिमाना॥
× × ×
दरसन लियौ भली तुम कीनी, क्रोध्र करौ जिनि कोई।
सुन्दरदास कहै अभिअन्तरि, बस्तु बिचारौ सोई॥'

—सुं ग्रं०, भाग 2, पदा०, रामगरि 1

यही नहीं, सभी पन्थ-सम्प्रदायों का आदर करते हुए भी सुन्दर अपने हृदय में गुरु-दर्शन के प्रति निष्ठा रखते थे। साथ ही परम्परित सन्त-विचारधारा का सम्मान भी करते थे। देखिए—

'कोउक गोरष कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कबीर कोउ राषत नादू॥
कोउ कहै हरदास हमारै जु यौं करि ठानत बाद बिबादू।
और तो सन्त सबै सिर ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 2, सवैया०, गुरुदेव 1/5

सन्त-वाणी में 'गुरु' एक तत्त्व, एक मूल्य बन कर प्रतिष्ठित हुआ है। यह मूल्य विचार-अनुभव के धरातल पर, लोकाचरण में नैतिकता एवं आध्यात्मिक अनुभव का उत्कर्ष एवं रूढ़ि-भ्रान्ति-निवारण में दिशा-निर्देशक तत्त्व-बोध बनकर आया है। इसलिए सुन्दर-वाणी में गुरु के प्रति अगाध निष्ठा देखी जा सकती है। उनकी दृष्टि में गुरु के बिना ज्ञान, अँधेरे में रखे हुए दर्पण के समान है, जिसमें निज स्वरूप नहीं दिखाई देता [='गुरु बिन ज्ञान अंधेरे में आरसी']। उनकी मान्यता है कि सभी विचारक सन्त, मार्ग-दर्शक के रूप में गुरु तत्त्व पर विश्वास करते रहे हैं। सुन्दरदास ने तो गुरु-कृपा से ही स्वयं का '**सुन्दर**' होना माना है—

'बुद्धिमंत सब संत कहैं गुरु सोई रे।'

—वही, भाग 1, ज्ञान समुद्र, 1/16

गुरुदेव बिना नहिं मारग सूझय।'—वही, भाग 1, ज्ञान०, 1/10

'सुन्दर सद्गुरु हैं सही, सुन्दर सिक्षा दीन्ह।
सुन्दर वचन सुनाइ कैं, सुन्दर सुन्दर कीन्ह॥'

—वही, साषी० 1/102

सुन्दर कृत अनेक रचनाओं का प्रतिपाद्य अथवा केन्द्रीय-भाव 'गुरु' है। अथवा गुरु के द्वारा सम्पादित कार्यों [-कृपाओं] का लेखा-जोखा है। उदाहरण केलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सवैया ग्रन्थ' में 'गुरुदेव कौ अंग' के अन्तर्गत 27 सवैया छन्द तथा 'साखी ग्रन्थ' में 102 साखियों की रचना 'गुरु' को केन्द्र में रखकर की गई है। यही नहीं, गुरु प्रार्थना अष्टक, सद्गुरु महिमा नीसांनी, गुरुदया षटपदी, भ्रम विध्वंस अष्टक, गुरु कृपा अष्टक, गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक, गुरु महिमास्तोत्राष्टक आदि रचनाएँ गुरु-बोध प्रतिष्ठापक रचनाएँ हैं। पद-रचना में भी सुन्दरदास ने गुरु-कार्य की महत्ता को बड़ी उमंग से गाया है। सूफियों की तरह सुन्दर भी गुरु [-पीर, उस्ताद]-ध्यान में लीन [=ग़र्क] होकर ब्रह्मलीन [=फ़ना फिल्लाहे] होने की बात कहते हैं। वे कबीर की तरह परम गुरु और परमेश्वर को एक ही मानते हैं। देखिए—

'परमेश्वर अरु परम गुरु, दोऊ एक समान।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान।।
परमेश्वर में गुरु बसै, परमेश्वर गुरु मांहि।
सुन्दर दोऊ परस्पर, भिन्न भाव सो नाहिं।।'

श्रोता-पाठक को गुरु-ज्ञान से जो अनुभव [-अनुभौ] प्राप्त होता है, वही सन्त-काव्य-धारा जनित अवलम्ब या पाथेय है। यह अनुभव [=स्वयं संवेद्य ज्ञान] पोथी जनित भेद-दृष्टि को तिरोहित करके समता-भाव की प्रतिष्ठा करता है। यह गुरु-मन्त्र ही सहृदय को लोकमंगल-कर्म के प्रति निरन्तर प्रेरित करता-रहता है। इस सम्बन्ध में सुन्दर का यह पद उल्लेखनीय है—

'ज्ञान जहां तहां द्वंद्व न कोई।
बाद बिबाद नहीं काहू सौं, गरक ज्ञान में ज्ञानी सोई।।
भेदाभेद दृष्टि नहिं जाकै, हर्ष शोक उपजै नहिं दोई।
समताभाव भयौ उर अन्तर, सार लियौ सब ग्रंथ बिलोई।।
स्वर्ग नरक संशय कछु नांही, मन की सकल बासना धोई।
वाही कैं तुम अनुभव जानौं, सुन्दर उहै ब्रह्ममय होई।।'

—पदा०, कानडौ 7

गुरु-भाव के अनुभव-प्रसाद में ही दादूदयाल समूची वसुधा की मंगल-कामना करते हुए कहते हैं—

'वसुधा सब फूलै फलै पिरथी अनंत अपार।
गगन गरजि जल थल भरै दादू जै जै कार।।'

—दादू० ग्रं०, 3/168

उक्त अनुभव-दशा में तन्मयता का होना आवश्यंभावी है। सन्त-वाणी में निहित 'अनुभौ' [=भाव-बोध] दुर्बल मानसिकता का परिणाम नहीं हो सकता। अपितु, यह अनुभव सिंह-शावक की तरह उत्साही, वीर्यवान् एवं परिवेश के प्रति सावधान रखने वाला है। ऐसे 'अनुभव' के आचरण में आते ही, सामाजिक की चेतना से 'भय' तिरोहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है। इसके बिना कोई 'अनुभव ज्ञानी' भी नहीं हो सकता।[1] इसीलिए सन्त-वाणी की तरह सुन्दरदास भी हिन्दू-तुरुक के अतिवादी विचार को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि इस अतिवादिता के कारण ही उन्होंने दोनों पक्षों को छोड़ कर, अपना विवेक-मार्ग अपनाया है। देखिए—

'चिन्ह बिना सब कोई आये। इहां भये दोइ पन्थ चलाये।
हिन्दू तुरक उठ्यौ यह भर्मा। हम दोउ का छाड्या धर्मा।।'

सुं० ग्रं०, भाग 1, सहजानन्द 2,

'दोनों का धर्म छोड़ कर मनुष्य जीवन के '**धर्म**' को सर्वोपरि मानना और जीवन की अवधि को ज्ञान-विचार जन्य सुकर्म से पूरित करना ही सुन्दरदास जी का लक्षित लक्ष्य रहा है।[2]

---

1. जांन भगत का नित मरन अनजाने का राज।
सर अपसर समझै नहीं पेट भरन सौं काज।

—क० ग्रं०, 29/7

'आत्म अनुभव बिना अखा नहीं ठरन की जाग।
सड़सी ज्यूं लुहार की क्षण पाणी क्षण आग।।'
'अनभै शब्द सिंह का बच्चा अखा खिलौना नांहि।'

—गु० सं० हि० वा०, पृ० 95, 96

'अनभै पद ताकूँ कहिए ज्यां भै व्यापै नांहि।
भै व्यापै सो भांड है विचार अनुभव मांहि।।'

—वही, वस्तो०, पृ० 364

'बिगसि बिगसि दरसन करै पुलकि पुलकि रस पान।
मगन गलित माता रहै अरस परस मिलि प्रान।।'

—दादू० बा०, भा० 1, परचा 4/149

2. 'नर औतार जात है हरि विणि सूनी सेझ न कोई।'

—हरि० वा०, पृ० 46

'लोक लाज पष भेष तहां मिलि जनम न हारौ।'—वही, पृ० 202
'अपणो हीरा जनम न हारि।'—वही, पृ० 260
'यो नर नायक औतार फेरि नहिं पावसी।'

—हरि० वा० [उत्तरा०], सेवा० पृ० 128

'आतम बार बार नहीं पायवो मनुष जनम अवतार।'

—वही [उत्तरा०], आत्मा०, पृ० 193

'सुन्दर मनुषा देह की, महिमा कहिये काहि।
जाकौं बंछै देवता, तू क्यों खोवै ताहि।।
सुन्दर यों ही देखतें, औसर बीत्यौ जाइ।
अंजुरि माहें नीर ज्यौं, किती बार ठहराइ।।'

—सं० बा० सं०, भाग 1, पृ० 110

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव-बोध के धरातल पर लोकाचरण अथवा लोक-शील केलिए सन्त-वाणी शताब्दियों से दिशा-निर्देश करती रही है। सच तो यह कि भौतिक आवश्यकताओं की भी सन्तों ने कहीं उपेक्षा नहीं की। उदाहरण केलिए अन्न का महत्त्व या भूख के प्रश्न को ही लें, तो कह सकते हैं कि सन्तों ने अन्न की महत्ता को सर्वोपरि माना है। सुन्दरदास ने अन्न को [-भूख को] कितना महत्त्व दिया है, इसका अनुमान एक पद से ही लगाया जा सकता है—

'सब कै आहिं अन्न में प्रांन।
बात बनाइ कहौ कोउ केती नाचि कूदि कै तूटत तांन॥
पंडित गुनी सूर कवि दाता जो कोउ और कहावत जांन।
जठरा अग्नि प्रगट होइ जबहीं तब हीं बिसर जाइ सब ज्ञांन॥
आसन मारि रहे बन मांहीं तेऊ उठत होत मध्यांन।
सुन्दर ऐसी क्षुधा पापिनी रहै नहीं काहू कौ मांन॥'

—पदा०, बिलावल 8

कल्पना से अधिक वे यथार्थ को महत्त्व देते हैं। ज्ञानी की स्थिति बताते हुए वे कहते हैं—

'पंषी की पर टूट कैं भूमि पर्यौ जिहिं ठौर।
सुन्दर उडिबे तें रह्यौ मिटी सकल ही दौर॥'

—सुं० ग्रं०, भाग 1, साखी०, ज्ञानी० 30/46

यहाँ यह बताना भी सच है कि सन्तों को लोकाचार, रूढ़िवादिता अथवा लीक पर चलना पसन्द नहीं था। रूढ़िवादी पन्थ पर न चलना ही उनकी 'उलटी चाल' मान ली गई है। जबकि, वे परब्रह्म रूप सत्य [-सत्ता] के सीधे मार्ग पर चलने केलिए सदैव तत्पर दिखाई देते हैं। देखिए—

'सन्त चलें दिस ब्रह्म की तजि जग व्यवहारा।
सीधे मारग चालतैं निंदै संसारा॥
एक भरोसे राम कै कछु शंक न आंनैं।
जन सुन्दर सांचै मतै जग की नहिं मांनैं॥'
'सतगुरु शब्दहुं जे चले तेई जन छूटे।
जग मरजादा मैं रहे ते महुकम लूटे॥
बाबा अरु दादा चले ते मारग षोटा।
सो व्यापार न कीजिये जिहिं आवै टोटा॥
पन्थ पुरातम कहत हैं सब चलता आया।
सुन्दर सो उलटा चलै जिन सतगुरु पाया॥'

—पदा०, रामगरी 2, 3

मनुष्य-जीवन व्यर्थ न चला जाए, इसलिए मनुष्यों को निरन्तर चेतावनी देते रहना सन्तों ने अपना लोक-दायित्व माना है, जिसे उन्होंने मन-वाणी और कर्म से निभाया भी है। सुन्दरदास कहते हैं कि इस जीवन में चैतन्य होना ही परम धर्म है। जो दूसरों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रान्ति में डालता है, भ्रमित करता है, उसकी बुद्धि पर तरस आता है। निम्न पंक्तियों में ऐसी ही ध्वनि सुनी जा सकती है—

'चेति सकै सो चेतहु भाई। जिनि डहकावो राम दुहाई।
सुन्दरदास कहै जु पुकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥'
—सुं॰ ग्रं॰, भाग 1, तर्क चितावनी, छन्द 56

ज्ञान-चेतना-मार्ग का पथिक, लोकाचरण में जिस समरसता एवं एकात्म सत्ता का अनुभव करता है, उस विचार-अनुभव में सारे वर्ग-वर्ण-भेद तिरोहित हो जाते हैं। देखिए—

'दीपग जोयौ बिप्रघर पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौ तत्काल॥
अंत्यज के जल कुम्भ मैं ब्राह्मण कलस मंझार।
सुन्दर सूर प्रकासिया दुहुंवनि मैं इक सार॥
अंत्यज ब्राह्मन आदि दै किंवा रंककि भूप।
सुन्दर दर्पन हाथ लै सो देषै निज रूप॥'
—वही, भाग 1, साखी॰, ज्ञानी॰ 30/54-56

सुन्दर-वाणी का बहिरंग पक्ष

काव्य के अन्तरंग पक्ष को सामर्थ्य के साथ अभिव्यक्त करने केलिए उसके बहिरंग का समर्थ और मार्मिक होना अति आवश्यक है। भाव विचारादि रचना के अन्तरंग तत्त्वों को संवहन करने केलिए व्यवहृत काव्यरूप, काव्य-भाषा छन्द, अलंकारादि ही बहिरंग तत्त्व होते हैं। सुन्दर-ग्रन्थावली में संकलित सभी ग्रन्थ-रचनाओं के प्रवेशार्थ-चूर्णिकादि में, उनमें व्यवहृत छन्दादि की सम्यक् सूचना दी गई है। साथ ही काव्य-अंश विशेष में जो अलंकार-योजना हुई है, उसका भी उल्लेख यथास्थान किया गया है। यहाँ सुन्दर-वाणी के विशिष्ट काव्यरूप **'उलटवाँसी'** या **'विपर्यय'** एवं वाणी-वाहिका भाषा का विवेचन आवश्यक है।

उलटवाँसी पद-रचना [-शैली] : 'सुन्दर सो उलटा चलै, जिन सतगुरु पाया' कहने वाले सुन्दरदास ने अपनी 'उलटी चाल' के पुष्ट विचार को, अपने उलटवाँसी पदों में सम्यक् रूप से वाणी-बद्ध किया है। इस विवेचन के अन्तर्गत 'उलटी बात' कहे जाने वाले विरोधाभास मूलक उन पदों [-सवैया, साखी, पूरबी भाषा बरवै आदि] की समीक्षा अपेक्षित है, जिनका कलेवर [-सांकेतिक एवं पारिभाषिक] प्रतीकों पर आधारित है और जिनकी योजना [-संयोजना] सुन्दरदास ने सोद्देश्य की है। यह तो सर्वविदित है कि सुन्दरदास सन्त-कवि-परम्परा में सर्वाधिक शिक्षित सन्त-रचनाकार हैं और जिन्होंने लगभग बीस वर्ष तक काशी में रहकर, संस्कृत साहित्य, व्याकरण, दर्शन आदि का सम्यक् अध्ययन और सत्संग जनित मनन किया था। ऐसे सक्षम वाणी-रचनाकार सुन्दरदास उलटवाँसी पद-रचना के भी सफल प्रयोक्ता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके समस्त उलटवाँसी पद 'विपर्ज्जय' अथवा 'विपर्यय कौ अंग' के अन्तर्गत संकलित हैं। इनमें लगभग 50 साखियाँ और 30 सवैया छन्द उलटवाँसी पद-रचना की कसौटी पर खरे उतरते हैं। इनके अतिरिक्त 'पूर्वी भाषा बरवै' में बरवै छन्द एवं पदों में अनेक स्थलों पर सांकेतिक भाषा-प्रयोग भी है, जो उलटवाँसी मूलक कथनों की पुष्टि करते हैं। जहाँ तक सुन्दरदास के पिंगल-ज्ञान अथवा भाषा-प्रयोग-क्षमता का प्रश्न है, ये पद आपके प्रयोग-कौशल को भलीप्रकार उजागर करने में समर्थ हैं।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से आप के उलटवाँसी पद साधक या विचारक की मानसिक दशा अथवा ज्ञान-विरह के अनुभवों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। सन्त-साहित्य-परम्परा में आपके उलटवाँसी-पद अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। तुलना की दृष्टि से जब हम कबीर की उलटवाँसियों एवं सुन्दरदास के उलटवाँसी-पदों का मिलान करते हैं, तो दोनों में स्पष्ट अन्तर देखने को मिलता है। कबीर जैसे भाव-प्रधान रूपकवन्धों का सुन्दर-वाणी में प्राय: अभाव है। प्रतीक-चयन और प्रयोग की दृष्टि से देखें तो सुन्दरदास के विपर्यय पद समूची-वाणी-परम्परा में सर्वाधिक समृद्ध सिद्ध होंगे। आपके उलटवाँसी-पदों का प्रतीक-चयन-क्षेत्र जीवन-व्यवहार की व्यापक पीठिका से जुड़ा हुआ है। एक अन्तर और भी है, जो पाण्डित्य के कारण इनके उलटवाँसी पदों में देखने को मिलता है। वह यह है कि कबीर की तरह सुन्दर अर्थ-उद्घाटन केलिए, पंडित-ग्याता, ग्यानी, अवधू, पाँडे आदि के रूप में, प्रतिपक्ष की कल्पना नहीं करते। हाँ, श्रोता-पाठक को वे अर्थ समझने केलिए सजग अवश्य करते हैं। सुन्दरदास ने अपने पदों में संवाद-शैली को नहीं अपनाया। इसीलिए सुन्दरदास के उलटवाँसी-पदों में चुनौती का स्वर प्राय: नहीं है। अपने नाम की छाप वाली सन्त-बानी की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार आपके सवैया छन्दों और प्राय: सभी साखियों में भी, अन्तिम पंक्ति में प्रयोक्ता का नाम मिलता है। कुल मिलाकर सुन्दरदास ने, परम्परा प्राप्त उलटवाँसी शैली को, अपनी प्रतिभा और कुशलता के बल पर एक सुदृढ़ आधार और अभिव्यंजना-कौशल प्रदान किया है।

'उलटवाँसी' शब्द के पर्याय के रूप में सुन्दरदास ने 'उलटी बात', 'उलटी गंग', 'उलटी रीति', 'उलटा ख्याल' जैसे 'उलट' विशेषण वाले समानार्थी शब्दों का प्रयोग किया है। लेकिन, ऐसी पद-रचना को समझने केलिए वे सर्वत्र 'सुजान' अथवा अनुभवी होने के साथ-साथ 'समझ' होने की अपेक्षा भी करते रहे हैं। प्रमाण रूप में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'सुन्दर कहत बिचारि करि उलटी बात सुनाइ।'
'सुन्दर सब उलटी कही समुझै संत सुजान।'
नकटा लेत सुगन्ध कौं यह तौ उलटी रीति।'
'भान मांहि ससि मिलि गयौ सुन्दर उलटौ ज्ञान।'
'कलियुग मैं सतजुग कियौ सुन्दर उलटी गंग।'
'सुन्दर उलटी बात यह अपने नैनहिं दीठ।'—साखी०, अंग 20,
'जाकौं अनुभव होइ सु जानै सुन्दर ऐसा उलटा ख्याल।'

—सवैया०, अंग 22,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक, ज्ञान-विरह की अवस्था में, उलटवाँसी शैली का अवलम्ब तब लेता है, जब उसकी अनुभूति तीव्रतम [-सघन] एवं अनिर्वचनीय दशा का अनुभव करने लगती है। चेतना की उस सूक्ष्मता अथवा विचित्र मानसिकता को यथावत् प्रस्तुत करने के लिए [साधक-] सन्त-रचनाकारों ने कथन का सांकेतिक एवं वक्रमार्ग का अनुसरण किया है। कोई भी अनुभव क्यों न हो, वाणी में यथावत् आबद्ध नहीं हो पाता। फिर, ज्ञान-प्रसाद से प्राप्त साधनानुभव, परम तत्त्वमय होने के कारण और भी सूक्ष्म माना गया है। नेत्र उसे दृष्टि में साकार नहीं कर पाते और वाणी सहज ही उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाती। विचार-ध्यान में विशुद्ध चित्त से ही उस सूक्ष्म मानसिकता का साक्षात्कार किया जा सकता हैं। इस विवशता को मुण्डकोपनिषद् के ऋषि ने इसप्रकार अभिव्यक्त कियाहै—

'न चक्षुषा गृह्यते नाऽपि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्वः ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥'

—मुण्ड०, 3/1/8

हाँ, साधक की इस सूक्ष्म-विचार दशा में उठने वाले संशयों को, समर्थ गुरु अपने 'मौन व्याख्यान' [-'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्न संशयाः'—शंकराचार्य, -दक्षिणामूर्ति स्तोत्र,] द्वारा या तो उच्छेद करता है अथवा उचित दिशा-निर्देश कर देता है। वैसे, उस साक्षात्कार की अनुभूति को 'वाणी' [=वैखरी] अपने सीमित साधनों से बाँध पाने में लाचार-सी दिखाई देती है। ऐसी विवशता में साधक कवि उस भावावेश को अथवा उस जागतिक परिस्थिति को विरोधाभासमयी प्रतीक-संकेतों के माध्यम से, अभिव्यक्त करता है। व्यंग्य-विरोध-प्रतीक प्रधान शैली वाली इस रचना की धार बड़ी तीक्ष्ण होती है। श्रोता-पाठक पर उसका प्रभाव अमोघ रूप में पड़ता है। कबीर के व्यंग्य-विरोध की मार को सहपाने में प्रतिपक्ष सदा निरीह-निरुपाय-सा दिखाई पड़ता रहा है। विचार-साधक प्रायः साधनाभ्यास काल में और उसके पश्चात् भी, **'ज्ञान-विरह'**[1] की जिस अवस्था में रहता है, उस दशा में उसे सम्पूर्ण दृश्य जगत् विपरीत या विसंगत कर्म में लिप्त दिखाई देता है। तब उसे वह सारा व्यापार, जिसको लोक-दृष्टि **'उलटा'** समझती है, सीधा, सहज या संगत लगता है अर्थात् उसे लोक-रूढ़ि के अधीन होने वाले सारे कार्य विसंगत होते जान-पड़ते हैं। उस अनुभूति की अभिव्यक्ति में विरोधाश्रित प्रतीक-योजना के कारण अटपटापन अथवा सांकेतिक गूढ़ार्थता का आजाना स्वाभाविक है। ऐसी मानसिकता वाली वाणी उलटी-सी जान पड़ती है। किन्तु, उसके मन्तव्य को समझ लेने पर, उसके उलटेपन का परिहार सहज ही हो जाता है। अर्थात् अभिधा में वह

1. 'ज्ञान-विरह में ज्ञानी को संसार के कार्य विपरीत जान पड़ते हैं। यथार्थ में अपने समीपस्थ वातावरण की प्रतिकूलता में आत्मा की आकुलता की अवस्था ही विरह है। प्रेम-विरह में संसार के व्यापार व सुख उसे जलाते हैं। ज्ञान-विरह में ज्ञानी को मायालिप्त संसार में व्यापार उलटे ढंग से होते दीखते हैं।'

—नि० सम्प्र०, तुरसी०, भूमिका, भागीरथ मिश्र, पृ० 39

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्ति **'उलटी'** लगती है ।[1] किन्तु, प्रतीक का अर्थ-उजागर होते ही वह वाणी एक विशेष प्रकार की मानसिक तृप्ति का अनुभव कराती है । इस दृष्टि से सुन्दरदास के उलटवाँसी पद-प्रयोगों में प्रयुक्त प्रतीकों की सांकेतिकता उनकी मौलिक उद्भावना का परिचय देती है। ऐसे परिचय केलिए प्रस्तुत ग्रन्थावली के सवैया० [-अंग 22] और साखी० [-अंग 20] भागों का प्रवेशार्थ एवं व्याख्या-अंश द्रष्टव्य हैं ।

भाषा-सामर्थ्य : लगभग 20 वर्षों तक काशी में रहकर सुन्दरदास ने संस्कृत-भाषा-साहित्य, व्याकरण, दर्शन, भाषा के रीति-ग्रन्थों एवं लोक-व्यवहार का अध्ययन-मनन किया था । अतः उनकी समूची रचना में भाषा के रीति-ग्रन्थ एवं लोक-व्यवहार के अध्ययन-मनन का प्रभाव स्वयं परिलक्षित है। भाषा का परिष्कृत रूप उनकी सभी रचनाओं में देखने को मिलता है । यही कारण है कि सुन्दरदास की भाषा का, नामदेव, कबीर, नानक, दादू, रज्जब, मीरांबाई आदि की भाषा से, भिन्न होना स्वाभाविक है । वैसे भी, वे जिसप्रकार बाल-ब्रह्मचारी एवं बाल-योगी रहे हैं, वैसे ही बाल-कवि होने के भी प्रमाण मिलते हैं । जीवन की इतनी लम्बी कालावधि में सतत अध्ययन और निरन्तर लेखन से भाषा में परिपक्वता एवं छन्द-रचना में सिद्धहस्तता का होना स्वाभाविक है। पिंगलशास्त्र पर खरे उतरने वाले उनके सवैया-कवित्तादि छन्दों के प्रयोग में भाषा के टकसाली रूप और अलंकरण को देखकर यह कहना सही है कि उनकी भाषा संस्कृत-परिनिष्ठित एवं साहित्यिक ब्रजभाषा है । उन्होंने 'जाति जिती सब छंदनि की' कहकर प्रायः सभी छन्दों का अपने 'ज्ञान समुद्र' में होने का उल्लेख किया है । किन्तु, जिस भाषा-शब्द-समूह से उन्होंने अपने भाषा-छन्दों को सँभारा है, उसमें अर्थ-तत्त्व रूप 'मुक्ताफल' होने की संभावना पर भी निरन्तर ज़ोर दिया है । साथ ही, उससे अर्थ तत्त्व रूप मुक्ताफल को पाने केलिए पाठक को उस वाणी-सागर में अवगाहन की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया है । देखिए—

> 'जाति जिती सब छंदनि की बहु सीप भई इहिं सागर मांहीं ।
> है तिन मैं मुक्ताफल अर्थ लहैं उनकौं हित सौं अवगाहीं ।।'
>
> —सुं०ग्रं०, ज्ञान समुद्र, 1/7

सुन्दरदास द्वारा प्रयुक्त भाषा पर कोई निर्णय देने से पहले उसके स्रोतों, उनके परिवेश, उनके स्वभाव एवं जीवन-सम्पर्क पर भी विचार कर लेना आवश्यक है । आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले के राजस्थानी बोली-भाषा के समाज में सुन्दर का बचपन बीता था । पुनः युवावस्था में, काशी जैसे संस्कृत और संस्कृति प्रधान बड़े नगर में उनकी काव्य-चेतना और विचारों को परिपक्वता मिली । वहाँ वे अनेक संस्कृत विद्वानों-महात्माओं के सम्पर्क में आए होंगे और अनेकों से सत्संग भी किया होगा । अनेक संस्कृत

---

1. 'उलटवास संतन ने भाखी । जाकी समझ सूर कोइ राखी ।
सुलटी कौं उलटी करि बूझा । उलटी सुलटी समझ न सूझा ।।'
—घट रामायण, भा० 2, पृ० 117

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[-काव्य-दर्शन]-ग्रन्थों का पारायण किया होगा, जिसके आलोक में उनकी प्रतिभा को निरन्तर 'धार' मिलती रही होगी। अतः भाषा का जो स्वरूप उनकी वाणी में देखने को मिलता है, वह सहज स्वाभाविक है। जो रचनाकार छन्द-भंग तक की तनिक अवहेलना सहन नहीं कर सकता और निरन्तर जागरूकता से अन्त्यानुप्रास की रक्षा करता है, उसकी रचना में भाषा-प्रयोग और उसका विचार-पक्ष निश्चित ही सुविचारित होगा। तभी तो उन्होंने 'नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीकौ लग्गै' जैसा निर्णायक विचार दिया है। उनकी दृष्टि में वाणी-उच्चारण और प्रयोग में 'वचन-तोल' का महत्त्व अति आवश्यक रहा है। वाणी-प्रयोग सम्बन्धी उनके ऐसे विचार **'वचन विवेक कौ अंग'** में बड़े व्यवस्थित ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं। कुछ कथनों के माध्यम से सुन्दर कृत भाषा-प्रयोग सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझा जा सकता है। देखिए—

'चतुर प्रवीन आगैं मूरख उचार करै
सूरज के आगै जैसें जैंगणा दिखाइये।1।'
'सुन्दर कहत बांणी त्रिविधि जगत मांहिं
जानैं कोऊ चतुर प्रबीन जाकै जैसी है।2।'
'बोलिये तौ तब जब बोलिवे की सुधि होइ
न तौ मुख मौंन करि चुप होइ रहिये।
तुक भंग छन्द भंग अरथ मिलै न कछु
सुन्दर कहत ऐसी बानी नहिं कहिये।।4।।'
'सुन्दर समुझि कैं बचन कौं उचार करि
नांहीं तर चुप ह्वै पकरि बैठि मौंन कौं।6।'
'सब ही कौं लागै दुःख कोऊ नहिं पावै सुख
बोलि कैं वृथा ही तातें छाती नहिं छोलिये।7।'
'वचन तौ उहै जामैं पाइये बिवेक हैं।8।'
'बचन में बचन बिवेक करि लीजिये।9।''
'बचन तैं बंध होइ बचन तैं मोष जू।11।'
'बचन तैं उरझि रु सुरझै वचन हीं तैं
वचन तैं भांति भांति संकट सहतु है।
वचन तैं जीव भयौ बचन तैं ब्रह्म होइ
सुन्दर बचन भेद बेद यौं कहतु है।।14।।'

रचनाकार की चेतना में यदि लोक-मंगलमयी भावना विद्यमान है, तो उसकी विचाराभिव्यक्ति में भी वह मुखर होती है। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि सुन्दरदास अपनी सात्विक भावना को मंगलमयी बनाकर ही अभिव्यक्त करना चाहते थे। ऐसा करते हुए उन्हें कोई विशेष श्रम नहीं करना पड़ा। जीवन भर अपने परिवेश-संस्कारों से उन्होंने जो पाया, अध्ययन-मनन से अर्जित किया, देशाटन से संचित किया, वही उनकी वाणी [-अभिव्यक्ति] में सहज ही साकार हुआ है। उनकी मनीषा में इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समृद्ध भाषा-कोश था कि सृजन के समय शब्द स्वयं उपस्थित होकर सुनियोजित होते जाते होंगे, ऐसा जान पड़ता है। यही कारण है कि अपने भाषाधिकार एवं शब्द-भण्डार के बल पर ही उन्होंने पहले से चली आ रही भाषा-प्रयोग की क्षेत्रीयता अथवा सीमाओं को तोड़ा है। जायसी केलिए जो अवधी, सूर केलिए जो ब्रजभाषा, नानक केलिए जो पंजाबी, कबीर केलिए जो 'पूरबी' [-बनारसी] बोली की सीमा बनाकर प्रस्तुत की जाती रही है, उसे सुन्दरदास ने तोड़ा है। कारण स्पष्ट है कि उन्होंने श्रवण-पारायण की सामर्थ्य से भाषा-छन्द-प्रयोग के सभी पक्षों को सँभारा हैं। निम्नलिखित कथन के द्वारा उनके भाषिक मन्तव्य की व्यंजना समझी जा सकती है—

'केचित् कहैं संस्कृत बानी। कठिन श्लोक सुनावहिं जांनी।
केचित् तर्कत शास्तर पाठी। कौशल विद्या पकरत काठी।
केचित् वाद बिबिध मत जानैं। पढ़ि व्याकरण चातुरौ ठानैं।
केचित् कविता कबित सुनावैं। कुंडलियां अरु अरिल बनावैं।
केचित् छंद सवैया जोरैं। जहां तहां के अक्षर चोरैं।
केचित् बीणा बेणु बदीता। ताल मृदंग सहित संगीता।
केचित् नट की कला दिखावैं। हस्त बिनोद मधुर रस गावैं।'
—वही, भाग 1, सर्वांग योग०, उप० 1/25-28

स्पष्ट है कि सुन्दरदास ने अपने भाव-विचार की अभिव्यक्ति केलिए जिस 'ब्रज-भाषा' को प्रमुख माध्यम बनाया है, वह सामान्य व्यवहार की 'साधु[-सादु]भाषा' ही है, जिसकी बनावट और बुनावट भाषा-छन्द की परिधि में ही है। कबीर—दादू—रज्जब आदि सन्त-रचनाकारों के द्वारा प्रयुक्त शब्द-भण्डार भी इसी लोक-भाषा की परिधि में आता है।

सुन्दर-रचनाओं की भाषा : ब्रजभाषा : अपनी साहित्यिक गरिमा के कारण '**ब्रज बोली**', जो मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, भरतपुर, कांकरौली आदि क्षेत्रों में बोली जाती रही होगी, ब्रजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। वैसे तो यह बुन्देली, राजस्थानी, कन्नौजी और खड़ीबोली के प्रभाव के साथ ग्वालियर, गुड़गाँव, जयपुर, इटावा, मैनपुरी, एटा, बरेली, बदायूँ, नैनीताल, पीलीभीत, बुलन्दशहर-खुर्जा आदि क्षेत्रों में भी सम्यक् रूप से व्यवहृत होती रही है। अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति एवं बोलने वालों की प्रभाव-क्षमता के बल पर ही यह बोली, हिन्दी-क्षेत्र की साहित्यिक भाषा के रूप में शताब्दियों तक प्रतिष्ठित रही है। यह प्रतिष्ठा ब्रजभाषा को अपनी विशिष्ट क्षमताओं के कारण ही मिली है।

भाषिक क्षमताओं की दृष्टि से जब हम सुन्दरदास द्वारा प्रयुक्त सुसंस्कृत ब्रज-भाषा की परख करते हैं तो पाते हैं कि यह भाषा शताब्दियों से प्रयोग में आने के कारण ही इतनी परिमार्जित '**काव्यभाषा**' का स्वरूप धारण कर सकी है। ब्रजभाषा की अभि-व्यक्ति-सामर्थ्य के सम्बन्ध में पं० मुंशीराम शर्मा का यह कथन उल्लेखनीय है—'वैष्णव धर्म की संदेशवाहिनी बनकर ब्रजभाषा एक ओर तो बंग, गुजरात एवं महाराष्ट्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समादृत हुई और दूसरी ओर अपनी कोमलता के कारण यह अवध, बिहार, पंजाब तथा दक्षिणापथ के कवियों का कंठहार बनी। इस देश में लगभग चार सौ वर्षों तक इस ने कवियों की जिह्वा पर शासन किया है। इसमें पद्य तथा गद्य दोनों ही प्रभूत मात्रा में लिखे गए हैं।'

—सूर सौरभ, पृ० 175

इधर, रोहल-वानी से प्रमणित है कि यह ब्रजभाषा पश्चिम में करांची के उत्तरी भू-भाग में भी काव्य-भाषा पद पर आसीन थी।

सुन्दर प्रयुक्त ब्रजभाषा में कोमल कान्त पदावली के साथ-साथ सानुप्रासिकता, प्रवाहमयता, चित्रोयपता एवं सहज-स्वाभाविकता आदि गुण विद्यमान हैं। तत्सम शब्दावली के प्रयोग के कारण सुन्दरदास की 'ब्रजभाषा' उत्तरापथ की ही नहीं समस्त देश की '**साधु भाषा**' बनते में सक्षम रही है। शब्द-प्रयोग को देखते हुए लगता हैं कि सुन्दर सोच-सोचकर शब्द-चयन नहीं करते थे। अपितु, छन्द-प्रवाह में ही वे शब्द स्वयंमेव आते-रहे होंगे। सुन्दर-वाणी का विपुल शब्द-भण्डार उनकी शब्द-सामर्थ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। साथ ही शब्द-शक्ति, खासतौर से लक्षणा-व्यंजना की सामर्थ्य, सुन्दरदास के प्रयोग-कौशल को उजागर करती है। शब्दों की लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग एवं मुहावरे-लोकोक्तियों के संगुम्फन के कारण सुन्दरदास की भाषा आज भी सजीव बनी हुई है।

अतः कह सकते हैं कि सुन्दर-वाणी में कष्ट-कल्पना, शब्दों की तोड़-मरोड़, शब्दाडम्बर बहुत कम है। उनका भाषा-पाण्डित्य, लोक-व्यवहार की शब्दावली एवं स्थानीय भाषा-बोली के शब्दों के प्रयोग के कारण, बहुत अधिक सहज और ग्राह्य बना रहा है। कारण स्पष्ट है कि उनकी भाषा के नियामक तत्त्वों पर उनके देशाटन एवं सत्संग-गोष्ठियों का विशेष प्रभाव रहा है। देशाटन के समय उनका सम्पर्क निश्चित ही मुसलमान नवाबों, उनके नुमायन्दों पीर-फकीर-औलियों आदि से भी हुआ होगा। फलतः उनकी भाषा में फारसी-अरबी-उर्दू की शब्दावली का निःसंकोच ग्रहण सहज स्वाभाविक है। काशी में रहकर 'पूरबी' भाषा पर अधिकार, राजस्थान में गुजराती समाज से निकट का सम्पर्क तथा पंजाब प्रदेश के लोक-मानस के बीच भ्रमण-सत्संग के परिणाम स्वरूप ही पूरबी, गुजराती, पंजाबी, सिन्धी आदि भाषाओं की शब्दावली, वाक्य-विन्यास और क्रियाओं को सुन्दरदास के भाषा-प्रेम ने सहज ही अपना लिया है। सुन्दरदास का जन्म राजस्थान के 'ढूँढाहड़ी' बोली-क्षेत्र में और जीवन-विकास शेखावटी क्षेत्र की बोली में हुआ था। अतः राजस्थानी का सहज-ग्रहण बाल-संस्कारों का परिणाम है। वे काशी के साथ ही, प्रयाग, आगरा, देहली, लाहौर आदि क्षेत्रों में घूमते रहे हैं। इन क्षेत्रों की व्यवहार-भाषा खड़ीबोली मानी जाती है। काव्य-भाषा के रूप में तत्कालीन युग-समाज, '**ब्रजभाषा**' को ही साहित्यिक भाषा मानता था। अतः भाषा-काव्यों के प्रति अतिरिक्त लगाव रखने वाले सन्त-कवि सुन्दरदास का, अपनी रुचि के कारण, जन-बोली के रूप में स्वीकृत 'ब्रजभाषा' पर अधिकार होना आश्चर्य की बात नहीं।

सन्तों द्वारा जन-भाषा को रुचिपूर्वक अपनाने के प्रमुख कारण, उनके समाज की पृष्ठभूमि में निहित थे। समूचे मध्यकाल और मध्यकाल से पूर्व भी, ब्राह्मणवाद और संस्कृत भाषा के वर्चस्व के कारण, बहुत बड़े भारतीय समाज की जन-चेतना की उपेक्षा हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सन्त-काव्य के समूचे सृजन-काल में, विशेषत: कबीर-कार्यकाल के आसपास भारतीय समाज कर्मकाण्ड और धार्मिक रूढ़ियों की जकड़बन्दी में फँसा हुआ था। भाषा-कवियों ने उस बहुजन समाज के द्वन्द्व और उसकी घुटन को समझा। फलत: सह-अनुभूति से प्रेरित होकर उन्होंने आन्तरिक-बाह्य संघर्ष को 'भाषा' में अभिव्यक्ति दी है। ऐसी अभिव्यक्ति इससे पहले के संस्कृत-काव्यों में देखने को नहीं मिलती। इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि सन्तों का, विशेषत: सुन्दरदास रचित 'भाषा-काव्यों' का स्वरूप व्यापक जन-चेतना का ही परिणाम है। अत: जन-चेतना को सक्षमता से अभिव्यक्त करने वाले ऐसे काव्यों की भाषा को **'पंचमेल खिचड़ी', 'सधुक्कड़ी' या 'बनारसी बोली'** आदि कहकर उपेक्षा करना अथवा हीन-भाव से देखना, भाषा-काव्यों की सामर्थ्य के निष्कर्षों की अवहेलना करना है। वास्तव में जो भाषा की शक्ति है, उसी को उसकी कमज़ोरी बताना कहाँ तक उचित है? सन्तों का आदर्श-लोक चाहे कितना ही ऊँचा या व्यापक क्यों न रहा हो, उनकी सृजन-शक्ति की चेतना सदैव **'धरती'** से जुड़ी रही है। इसीलिए वे इसकी हरियाली अथवा खुशहाली की निरन्तर कामना, जिस वाणी में करते रहे हैं[1], वह 'देश-भाषा' [-देस भाखा, देसिल बयना] ही है। उनकी यह अनुभव-वाणी 'सुरसरि' ही नहीं, 'हिमगिर' और 'मेघों' की भाँति लोकमंगल की वर्षा करती रही है[2]। इसीलिए सन्तों की जन-भाषा, अपनी आन्तरिक ऊर्जा के बल पर शताब्दियों तक देश-भाषा एवं राष्ट्रभाषा का दायित्व सँभालती रही है। संस्कृत के माध्यम से यह दायित्व-निर्वाह सम्भव न था, सन्तों ने इस बात को देखा और अनुभव किया है। इसीलिए समूचे जन-मानस को ध्यान में रखकर उन्होंने यह कार्य जन-वाणी के माध्यम से सम्पन्न किया है।[3] क्योंकि, यही भाषा

---

1. 'आज्ञा अपरंपार की बसि अम्बर भरतार।
हरे पटम्बर पहिरि करि धरती करै सिंगार॥'
—दादू० बा०, भा० 1, 3/157

2. 'पानी सी बानी बही गुरु छाप दिखाई।'
—क० शब्दा०, भाग० 2, पृ० 14

'बहुविधि वाणी बहुविधि जानी बहुविधि वाणी फूटै।'
—गु० सं० हि० बा०, कल्याण०, पृ० 100

'अनुभव जल बड़ी बूंदन बरसत अनुभव जल बड़ी बूंदन।
ज्ञान घटा चहुं दिसि चढ़ि आई पूरि रह्यौ सब चित घन॥'
'बरषत अनुभव उमग्यौ सावन।
जल थल होय रह्यौ सब दरिया लागे खेत सोहावन॥'
—वही, अनुभवानन्द, पद 7, 8

3. 'संस्किरत है कूप जल भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है सत मत गहिर गंभीर॥'
—सं० बा० संग्र० 1, कबीर, पृ० 63

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरे जन-समाज से संवाद करने में समर्थ थी । सन्त-रचनाकार तो अपने 'सगुण' समाज और स्वानुभूत 'निर्गुण' विचार के बीच इस 'बानी' को समर्थ 'दलाल' के रूप में मानते रहे हैं । सबकी समझ में न आने वाली कोई अन्य बिचौलिया भाषा उनकी माध्यम भाषा नहीं बन सकती थी । इस भाषा-भेद[-मर्म]की बात को, संस्कृत-भाषा के पण्डित होकर भी, सुन्दरदास ने भली प्रकार समझ लिया था । वे समझते थे कि 'कथन' तो माध्यम है, 'कथ्य' ही महत्त्वपूर्ण होता है । इसीलिए ऐसी भाषा का चुनाव, जो मामूली आदमी को भी काव्य-रस का अधिकारी बना सके, उन्हें हित कर लगा । फलतः उन्होंने मामूली आदमी के, मामूली अनुभवों को, उन्हीं की भाषा और उन्हीं के 'मुहावरे' में अपना कर, अपने कृतित्व के वैशिष्ट्य से अभिव्यक्त किया है ।

सुन्दरदास का विश्वास है कि—'मारग आये दश दिशा, पहुँचे एकहिं गांउं' [-सुं०ग्रं०, सर्वांग० 1/6] । उनका यह विश्वास भाषा-प्रयोग पर भी चरितार्थ होता है । जैसाकि ऊपर कहा गया है कवि सुन्दर ने अपनी रचना-धर्मिता में अनेक-भाषा-शैलियों को अपनाया है । उन्होंने अपने परिवेश के सभी स्रोतों से शब्द-भण्डार का संचय किया है । इस सम्बन्ध में, मध्यकाल में प्रचलित '**षट्भाषा**' सिद्धान्त का उल्लेख करना यहाँ अपेक्षित जान पड़ता है । दिल्ली के कवि चन्दवरदायी ने '**षट्भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया**' कहकर इस सिद्धान्त की ओर संकेत दिया था । उधर, शेख कुतवन का कहना है—'**खटभख अइही ऐहो मद्ध । पंडित बिन बूझत होइ सिद्ध ।**'[-सूफी काव्य संग्रह, पृ० 97], तो सन्त कवि रज्जब के सम्बन्ध में उन्हीं के सहयोगी सन्त खेमदास ने कहा है—'**षट भाषा स्वर सप्त ले, पिंड ब्रह्मंड ब्यौरे किए**'[—र०बा०, सवैया 8, पृ० 451] । इधर, आचार्य भिखारीदास कृत '**काव्य निर्णय**'[—रचनाकाल सन् 1846]में इस '**षटभाषा**' सिद्धान्त की पूरी व्याख्या, एक दोहे में देखी जा सकती है—

[क्रमशः]

'सह संस्कृत साईं बिमुख है भाषा भगवंत भाइ ।' —वही, 146/19

'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच ।'

—सं० बा० संग्र०, तुलसीदास, पृ० 75

'वेद सु बाणी कूप जल दुख सुं परापति होइ ।
पद साखी सरवर सलिल सुखि पीवै सब कोइ ॥'

—र० बा०, बाणी०, 146/10

'बिना हिसाबें बोलियां मिने सकल जहान ।
सबको सुगम जानि के कहूंगी हिन्दुस्तान ॥
बड़ी भाषा एही भली सो सब में जाहेर ।
करके पाक सबन को अंतर मांहें बाहेर ॥'

—तारतम० कुलजम०, सनंध 1/15-16

1. 'सरगुण निरगुण ठौर की बाणी बीच दलाल ।'

—र० बा०, 146/20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यमन भाखानि।
सहज पारसीहू मिलै षटविधि कहत बखानि ॥'

यह 'षट भाषा' कोई मिश्रित या खिचड़ी-भाषा नहीं है। अपितु, मध्यकाल में व्यवहृत होने वाली काव्य-भाषा केलिए प्रयुक्त एक नाम विशेष है, जिसका उल्लेख साहित्य-इतिहास में होता रहा है। यहाँ छः भाषाओं का अर्थ केवल छः भाषाएँ न होकर, भाषाओं का संवेत रूप है। इसीलिए तो भिखारीदास ने तुलसी और गंग को ऐसी काव्य-भाषा के प्रयोक्ता के रूप में सुकवि कहा है—

'तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार ॥'

विचार की उक्त पृष्ठभूमि में जब हम सुन्दरदास की भाषा-शैली को देखते हैं, तो हमें षट-भाषा सिद्धान्त का प्रयोग धर्मी पक्ष स्पष्ट दिखाई देता है। सुन्दरदास कृत अनेकानेक रचनाओं के, विविध स्रोतों से प्राप्त शब्दावली प्रधान विशिष्ट भाषा-शैलियों के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। इन उदाहरणों से उनकी भाषा-प्रयोग सम्बन्धी अवधारणा को समझने में सहायता मिलेगी। देखिए—

पंजाबी :

'वहु दिल दा मालिक दिल दी जाणैं दिल मौं बैठा देषै।
हुंण तिसनौं कोई क्यौं करि पावै जिस दै रूप न रेषै ॥'
—पंजाबी भाषा अष्टक, चौपइया 1

'आव असाडे यार तूं चिरकि कूं लाया।
हाल तुसा मालूम है तनु जौबन आया ॥'
—पदा०, पंजाबी०, बिलावल, पद 5

'हिक्क लाहोर दा नीर भी उत्तम हिक्क लाहोर दा बाग सिराहे।
हिक्क लाहोर दा चीर भी उत्तम हिक्क लाहोर दा मेवा सिराहे ॥
—देशाटन के सवैये, छं० 4

उर्दू-फारसी-अरबी :

'औवलि कदम उस्ताद के मैं गहे दोऊ दस्त।
उनि मिहर मुझ पर करी ऐसी ह्वै गया मैं मस्त ॥
जब सषुन करि मुझ कौं कह्या तू बन्दिगी करि षूब।
इस राह सीधा जाइगा तब मिलैगा महबूब ॥'
—पीर मुरीद अष्टक, चामर 1

'सजदा सिरजनहार कौं मुरसिद कौं ताजीम।
सुन्दर तालिब करत है बन्दौं कौं तसलीम ॥
सुन्दर इस औजूद मौं अजब चीज है वाद।
तब पावै इस भेद कौं षूब मिलै उस्ताद ॥'
—अजब ष्याल अष्टक, दोहा 1-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महबूब सलौंने मैं तुझ काज दिवाना।
आसिक कौं दीदार दै मेरा देषि दरद सुबिहाना ॥'

—पदा०, काफी, पद 12

पूरबी भाषा :

'अंब डार पर बैसल कोकिल कीर।
मधुर मधुर धुनि बोलइ सुख कर सीर ॥10॥
झूलत बैसि हिंडोरनि पिय कर संग।
उत्तम चीर बिराजल भूषन अंग ॥13॥' —बरवै०,
'हरि भजि बौरी हरि भजु त्यजु नैहर कर मोहु।
पिव लिनहार पठाइहि इक दिन होइहि बिछोहु ॥'

—पदा०, राग गौडी, पद 4

ब्रजभाषा एवं क्षेत्र के प्रति लगाव :

'प्रीति की रीति नहीं कछु राषत जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत लाज न कांनि लग्यौ सब षारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहुं जाम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह 'गोकुल गांव कौ पैंडौ ही न्यारौ ॥'

—सवैया०, प्रेमपरा ज्ञान० 31/1

'मेरौ पिय परदेस लुभानौ री।
जानत हौं अजहूं नहिं आये काहू सौं उरझानौ री॥'

—पदा०, सारंग, पद 1

बोलचाल की भाषा :

'बैठत रामहि ऊठत रामहि बोलत रामहि राम रह्यौ है।
जीमत रामहि पीवत रामहि धीमत रामहि राम गह्यौ है ॥'

—सवैया०, भक्ति ज्ञान० 21/1

'नर राम भजन करि लीजिये।
साध संगति मिलि हरि गुन गइये, प्रेम मगन रस पीजिये ॥'

—पदा०, कल्याण, पद 2

'रांधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करै सब भच्छन।'

—देशाटन के सवैये, सवैया 2,

गुजराती भाषा :

'भाई रे आपणपौ जू ज्यौं। सांभलि नैं जिमना तिम हूं ज्यौं ॥'

—पदा०, गुजराती०, बिहागड़ौ, पद 7

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'किम छै किम छै काम निह्काम छै।
जिमनौ तिम छै ठाम नौं ठाम छै ।।'

—पदा०, गुजराती०, भैरूं पद 5

'भाजै कांई रे भिडि भारथ साम्हौं सूरा सत जिणि हारै।'

—पदा०, गुजराती०, सोरठ, पद 2

संस्कृत :

'अखण्डं चिदानन्द देवाधि देवं । फणिन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादि सेवं ।
मुनीन्द्रा कवीन्द्रादि चन्द्रादि मित्रं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ।।'

—ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, भुजंगप्रयात 1

'अहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेति निश्चयम् ।
ज्ञाता ज्ञेयं भवेदकं द्विधा भाव विवर्जितम् ।।'

—संस्कृत श्लोकाः, अनुष्टप 3

विविध भाषा शैलियों के परम्परित एवं नए-नए छन्दों के उक्त उदाहरणों से सुन्दरदास ने यह सिद्ध कर दिया है कि तत्कालीन देश, सर्व धर्म-समभाव के विचार को ही अपनाने केलिए प्रयत्नशील नहीं था, अपितु सर्व भाषा-समन्वय एवं सम-विचार को व्यवहार में अपनाते हुए रचना के धरातल पर आगामी शताब्दियों केलिए पथ प्रशस्त कर रहा था । इसलिए शायद सुन्दरदास ने एक ओर तो लोक प्रचलित शब्दावली विशेषत: ब्रज क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा को अपनाकर, उसे साहित्यिक कसौटी पर परखते हुए, अर्थ-गौरव प्रदान किया है । दूसरी ओरअपने अध्ययन-अनुभव निष्कर्षों को उन्होंने सहज स्वाभाविक सम्प्रेषण विधि में पिरोकर, शताब्दियों के संचित विचार-ज्ञान-विवेक को बहुजन तक पहुँचाया है । अत: सुशिक्षित एवं भाषा पण्डित होने के कारण उनकी वाणी में विन्यस्त शब्दावली का परिष्कृत एवं तत्सम प्रधान होना सहज स्वाभाविक है । किन्तु, यह परिष्कृत तत्सम शब्दावली सुन्दर-वाणी में कहीं दुरूह नहीं जान पड़ती । यहाँ तक कि संस्कृत, पंजाबी, गुजराती एवं राजस्थानी के स्थानीय शब्द-प्रयोग भी भावाभिव्यक्ति और अर्थ-सम्प्रेषण में अवरोधक बनकर नहीं आए हैं । अपितु, क्षेत्रीय संस्कार को बनाए रख कर भी यह वैविध्य, प्रचलन की जीवन्तता की दृष्टि से, सहज ग्राह्य लगता है । जिस स्थिति-परिस्थिति का वे चित्रण करना चाहते थे, उसको उनका शब्द-संयोजन बड़ी विनम्रता से सँजोकर सहज ही उपस्थित कर देने में समर्थ रहा है । उदाहरण केलिए युद्ध का मैदान लीजिए, जहाँ अस्त्र-शस्त्रों की टकराहट-झंकार, हाथी-घोड़ों की चिंघाड़-हिंकार, शूरवीरों के चेहरों की उमंग एवं कायरों की भगोड़ी बेचैनी का चित्रण प्रधान होता था । ऐसी ध्वन्यात्मक-शब्दावली का प्रयोग करने वालों में सुन्दरदास अन्यतम कहे जा सकते हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तड़फडै सूर नीसान घाई पडै कोट की वोट सब छोडि चालै।
स्यांग कै काम कौं लोट अरु पोट ह्वै निकसि मैदान मैं चोट घालै ।।
जहां कडकडै बीर गजराज हय हडहडै धडहडै धरनि ब्रह्मंड गाजै।
झलहलै सार हथियार अति षडहडै देषिता दूरि भकभूरि भाजै ।।'

—पदा०, राग सिंधूडो, पद 4

भाषा में फारसी-अरबी-उर्दू-रेखता, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, पूर्वी, संस्कृत, प्राकृत-आभ्रंश की तत्सम अथवा अर्द्ध तत्सम शब्दावली और कहीं-कहीं अवधी-भोजपुरी शब्दों के विनियोजित रहते हुए भी, सुन्दरदास की काव्य-भाषा का ढाँचा साहित्यिक ब्रजभाषा का ही रहा है। कहीं-कहीं उसमें खड़ीबोली मिश्रित आम-फहम की भाषा होने का भी आभास होता है। एक और उदाहरण देखिए—

'जिनि तुझै षाक सौं अजब पैदा किया तूं उसै क्यौं फरामोस होता।
दाससुन्दर कहै सरम तब ही रहै 'हक्क तूं हक्क तूं बोलि तोता ।।'

—सवैया०, उपदेश० 2/2

पंडित कवि सन्त सुन्दरदास की काव्य-भाषा का यदि प्राण तत्त्व खोजा जाए अथवा उसकी प्रभविष्णुता का आधार खोजा जाए तो उसमें प्रयुक्त लोक भाषा-तत्त्वों का होना ही प्रमुख कारण बताया जाएगा। सुन्दर-वाणी [-भाषा] की प्राण-शक्ति, उसमें प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, किंवदन्तियाँ, ज़बर-मसलें, लोक-व्यवहार में प्रचलित उक्तियाँ और उनकी वाक्य-रचना में ही निहित है। ये भाषिक विशेषताएँ ही रचनाकार को भाषा-कवियों में अद्वितीय स्थान दिलाती हैं। दृष्टान्तों सहित मुहावरे एवं लोकोक्तियों के ऐसे प्रयोग, जैसे और जितने सटीक सुन्दर-वाणी में मिलते हैं, वैसे हिन्दी-काव्यधारा में अन्यत्र मिलना प्रायः दुर्लभ हैं।

वास्तव में मुहावरे लोकोक्तियों से भाषा की ग्राहिका-शक्ति तो बढ़ती ही है, अर्थ-व्यंजना भी बढ़ती है। ये लोकोक्तियाँ-सूक्तियाँ भाषा की सूत्र-शैली का सम्यक् सम्पादन करती-रहती हैं। लोक में प्रचलित ये सूक्तियाँ लोकाचरण के विधि-निषेधों को लोक-जिह्वा पर अंकित बनाए रखती हैं। कुछ लोकोक्तियाँ तो भाषा-अलंकरण बनकर शताब्दियों तक जीवन-व्यवहार का अंग बन-जाने की सामर्थ्य जुटा लेती है। इनमें लोक-रुचि के अनुरूप भाव-विचार की कसावट, नीति एवं प्रयोजनीयता भी संवाहित बनी रहती है। भाषा-सौन्दर्य की ऐसी उदाहरण बनने वाली उक्तियाँ, सुन्दरदास ने अपने शास्त्र और लोकानुभव से अथवा जनजीवन की बाह्याभ्यान्तर वृत्ति को निरन्तर देखते-परखते रहने से अर्जित की हैं। नमूने के तौर पर यहाँ एक छन्द दिया जा रहा है, जिसको पढ़कर पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि कितने मुहावरों-लोकोक्तियों का प्रयोग एक साथ, एक छन्द में, प्रयोग कर पाने की क्षमता थी सुन्दरदास में। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बाल मांहि तेल नहिं निकसत काहू विधि
पाथर न भींजै बहु बरसत घन है।
पानी के मथे तें कहुं घीव नहिं पाइयत
कूकस कै कूटे नहिं निकसत कन है॥
शून्य कूं मूठौ भरे तें हाथ न परत कछु
ऊसर के बांहें कहा उपजत अन है।
उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि
सुन्दर असाध्य रोग भयौ जाकै तन है॥'

—सवैया०, उपदेश० 2/8

मुहावरात्म भाषा-प्रयोग ही नहीं शब्दों में व्यंजना भरने में भी सुन्दरदास अपना शानी नहीं रखते। ऐसा उनकी अन्वीक्षण शक्ति एवं लोकानुभव के कारण ही हुआ है। 'भाँड का दौना' तथा 'सूते की भैंसि पँडाइ जनैगी', 'सूरज आगैं जैंसैं जेंगणा दिखाइये', 'जितनी सौर पाँव तितने पसारिए', 'कूकर की पूंछ सूधी होत नहीं तबहूँ', 'घोरे गए पै बगैं न गई जू' जैसे प्रयोग पूरे परिवेश-सन्दर्भ को तो उजागर करते ही हैं, व्यक्ति की मानसिकता को भी सम्यक् रूप से अभिव्यंजित करते हैं। अज्ञान अथवा मानसिक दारिद्रय को अभिव्यंजित कराने केलिए ये दो पंक्तियाँ कितनी सार्थक जान पड़ती है—

'सुन्दर घर ताजी बंधे तुरकिन की घुरसाल।
ताके आगैं आइ के टटुवा फेरै बाल॥'

—साखी०, बचन० 17/17

समाहार करते हुए कहा जा सकता है कि संस्कृत-दर्शन-ज्ञान परम्परा में जो बहुमूल्य आध्यात्मिक पदार्थ-चिन्तन था और जिस पर संस्कृत भाषा प्रवीण लोग ही अपना एकमात्र सुलभ अधिकार समझते थे, उस तत्त्व चिन्तन को, भाषा-वाणी में और अधिक सुलभ करते हुए सुन्दरदास ने सर्व साधारण केलिए सहज ग्राह्य बना दिया है। भाषा में ब्रह्म-विद्या जैसे गहन विषय को सहज और सुगम बना देना, सुन्दरदास जैसे भाषा-मर्मज्ञों का ही वाणी-कौशल कहा जा सकता है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि जो तथ्य-कथ्य, तत्त्व ज्ञान एवं साहित्य-सन्दर्भ, संस्कृत-भाषा परिधान में लिपटा होने के कारण, केवल संस्कृतज्ञों केलिए सुलभ था, उसको सुन्दरदास ने जन-सामान्य केलिए रुचिर और सहज बना दिया है। इस सम्बन्ध में उनकी विनम्रता के साथ अपनी कृतज्ञता 'पण्डित-जन' के समक्ष अभिव्यक्त करते हुए यहाँ वाणी को विराम देता हूँ—

'न्यूनाधिक्य विलोक्य पण्डित जनो दोषं च दूरी कुरु।
मे चापल्य सुबालबुद्धि कथितं जानाति नारायणः॥'

रमेशचन्द्र मिश्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ सुन्दर ग्रन्थावली ॥

भाग : एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ १ ॥ अथ ज्ञान समुद्र ग्रन्थ ॥

प्रवेशार्थ : 'सुन्दर ग्रन्थावली' में प्रथम रचना 'ज्ञान-समुद्र' है। प्रथम उल्लास के छठे और सातवें छन्द में रचनाकार ने इस ग्रन्थ के मर्म को समझने-समझाने केलिए समुद्र का रूपक बाँधा है, जिससे ग्रन्थ के उठाव, व्याप्ति और गहनता का अनुमान लगाया जा सकता है। उक्त सोरठा छन्द में ज्ञान-समुद्र की विशेषता वताते हुए कहा है कि सागर का जल खारा होता है। परन्तु इस ज्ञान-समुद्र द्वारा प्रतिपाद्य भाव-जल मधुर है, जिसमें अध्यात्म के मूल्यवान् तत्त्व [-पदार्थ अथवा पद+अर्थ] विद्यमान हैं। सागर की सांगरूपकता को आधार बनाते हुए सातवें इन्दव छन्द में कहा है कि इसमें प्रयुक्त बहुविधि छन्द-विधान, सागर में निहित बहुविधि शुक्ति [=सीप]-शोभा की भाँति हैं। 'जाति जिती सब छंदनि की' कहने का तात्पर्य यावन्मात्र छन्दों के प्रयोग से न होकर प्रमुख या प्रशस्त छन्दों के प्रयोग से है। क्योंकि इस पूरे ग्रन्थ में 34 प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है। यह छन्द वैविध्य पाठक-रुचि वैभिन्न्य को भी बाँधे रखता है। ग्रन्थ में कुल छन्द हैं—दोहा-76, सोरठा-15, चौपई-34, इन्दव-7, सवैया-7, चौपइया-18, छप्पय-20, त्रोटक-4, मनहर-7, रोडा-1, पवंगम-3, नन्दा-1, अर्ध-भुजंगी-8, पद्धरी-27, बोधक-1, गीतक-10, कुण्डलिया-8, मालती-4, चम्पक-15, गीता छन्द-9, मोतीदाम-8, लीला-1, हंसाल-3, डुमिला-2, कुण्डली-1, रासा-1, नराय-3, रंगिक्का-1, विज्जुमाला-2, चन्दाणां-1, हरसंषाणां-1, चर्पट-13, पायक्का-1, त्रिभंगी-1। [कुल 314 छन्द]। 'सागर' रूप इस ज्ञान-समुद्र में 'अर्थ' [-मन्तव्य] सीपियों में निहित मोतियों की तरह मूल्यवान् और शोभा विधायक है। किन्तु, मोती रूप अर्थ हर किसी को सहज रूप में उपलब्ध नहीं होता। अपितु, जो उसमें अवगाहन [-गहरी पैठ] करता है, वही उसे पा सकता है। इस पा सकने केलिए साधक-पाठक को 'मरजीवा' [=गोताखोर] वृत्ति से ज्ञान-समुद्र में पैठना अपेक्षित बताया है। ['जीवत' से यहाँ तात्पर्य बहिर्मुखी-अभिमानी वृत्ति बनाए रखने वाले से है।] 'जो अनेक विधि घमण्ड में डूबे हुए हैं, वे इस ज्ञान-सागर के बोध-जल में अवगाहन नहीं कर पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म विद्या प्रधान गुरु-शिष्य संवाद रूप इस 'ज्ञान-समुद्र' को छन्दबद्ध रूप में साधना-साहित्य का 'भाषा-संहिता-ग्रन्थ' कहा जा सकता है, जिसमें सांख्य, योग और भक्ति को, वेदान्त-चेतना में समाहित करके प्रस्तुत किया गया है। इसकी भाव-चेतना शृंगार-वीर रसादि के स्थान पर शम प्रधान शान्त भाव की अन्तश्चेतना से ओतप्रोत है। भाषा टकसाली ब्रजभाषा है। सम्पूर्ण ज्ञान-समुद्र का भाव-जल पाँच 'उल्लासों' [=लहरों-हिलोरों-तरंगों-अध्यायों] में व्यवस्थित है। विषय के प्रति रुचि रखने वाले पाठक इस ग्रन्थ को पढ़ते हुए सरलता, सहजता के साथ ही, भावोज्ज्वलता का ओज एवं रचना-विधान का लालित्य भी अनुभव करेंगे, ऐसा रचनाकार का विश्वास है।

।। प्रथम उल्लास ।।

'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ के अन्तर्गत इस प्रथम उल्लास में, सम्वाद शैली के माध्यम से गुरु के लक्षण, शिष्य की पात्रता-योग्यता और गुरु-ज्ञान ग्रहण की क्षमता, साधनात्मक जीवन में उत्थित शंका-आशंकाओं के निवारण की विधि, गुरु द्वारा जिज्ञासु शिष्य की मानसिकता को विचार [ज्ञान]-भूमिका में प्रतिष्ठित करने -कराने की साधना एवं निहित विधि को प्रस्तुत किया गया है। भाषा-प्रयोग और छन्द कौशल-दोनों ही सन्त कवि सुन्दर की प्रतिभा एवं सिद्धहस्तता प्रमाणित करते हैं।

छप्पय : प्रथम वन्दि परब्रह्म परम आनन्द स्वरूपं।
दुतिय बन्दि गुरुदेव दियौ जिह ज्ञान अनूपं ।।
त्रितिय बन्दि सब संत जोरि कर तिनके आगय।
मन वच काय प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय ।।
इहिं भांति मंगलाचरण करि, सुन्दर ग्रन्थ बखानिये।
तहँ विघ्न न कोऊ उप्पजय, यह निश्चय कर मानिये ।।1।।

चूर्णिका [छन्द-संख्या क्रम] : **1. मंगलाचरण** : ग्रन्थकर्ता का ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति केलिए, नमस्कारात्मक 'मंगलाचरण' है। इसमें इष्ट- परमात्मा-सद्गुरु-सन्तजनों की वन्दना रहती है। मंगल-कामना केलिए छन्द में 'प्रथम' शब्द का प्रयोग अभिप्रायमूलक। 'प्रथम' नगण [।।।] है, जो शुभ है। नगण का देवता 'नाग' है, जो पिंगलशास्त्र का आचार्य माना गया है। इसका फल 'सुख' माना गया है। **'छप्पय'** संयुक्त छन्द है, जो रोला और उल्लाला के योग से बनता है। रोला में 24 मात्राएँ [11+13 की यति से] और उल्लाला में 28 मात्राएँ [15+13 की यति से] होती हैं। पूरे छन्द में 118 अक्षर होते हैं। इसलिए यह छप्पय के 71 भेदों में से एक 'पयोधर' नामक भेद है। दुतिय=द्वितीय [स्थान पर]। मन वच काय=मन-वाणी और कर्म से। भ्रम=भ्रान्ति, प्रतिभास। उप्पजय [अप०]=उपजै, उत्पन्न होता है। आगय-भागय=आगे-भागे [ब्रज०] आगे अर्थात् समक्ष और भागे अर्थात् भागता है, दूर होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण :

दोहा : ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु पुनि प्रणम्य सब संत।
करत मंगलाचार इम नाशत विघ्न अनंत ।।2।।
उहै ब्रह्म गुरु संत उह वस्तु विराजत येक।
वचन विलास विभाग त्रय वन्दन भाव विवेक ।।3।।

अथ ग्रन्थ वर्णन इच्छा :

दोहा : वरन्यौ चाहत ग्रन्थ कौं कहा बुद्धि मम क्षुद्र।
अति अगाध मुनि कहत हैं सुन्दर ज्ञान समुद्र ।।4।।

---

2. प्रणम्य=प्रणाम करके। इम=इमि, इसप्रकार। विघ्न=दोष, बाधाएँ। प्रतिकूलता-परिहार केलिए ग्रन्थकर्त्ता, ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति केलिए मंगलाचरण करता है। 'मंगलाचरण' की प्रस्तुति कवि-परम्परा-सिद्ध बनी रही है।

3. उहै=वह ही, वही। उह=वह। वस्तु=तत्त्व, इष्ट, एकात्म भाव, ब्रह्म। वचन विलास=कथन भंगिमा, कहने-समझाने केलिए। विवेकभाव=विवेक भावना से। **टिप्पणी**—तीसरे छन्द के सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट करना समीचीन है कि सुन्दरदास निर्गुण सन्त कवि होने एवं दादू-सम्प्रदाय के अद्वैत ब्रह्म 'इष्ट' के प्रतिपादक होने के कारण एक ही तत्त्व [—ब्रह्म] को प्रणाम करते हैं। यद्यपि 'प्रणम्य' [दूसरा छन्द] शब्द का तीन बार प्रयोग द्वैत भाव को सूचित करता है। परन्तु, वे स्वयं इस शंका का निराकरण करते हुए कहते हैं कि विवेक [अद्वैत]-भाव से देखने पर ब्रह्म, गुरु और सन्त एक ही वस्तु, तत्त्व या सत्ता रूप हैं। इनका 'भाग त्रय' रूप वचन-विलास मात्र है। श्रीमद्‌भगवत गीता [-7/18] में 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' तथा 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुदेव महेश्वरः' 'के अनुसार नाम-रूप का बाह्य भेद होते हुए भी सब एक ब्रह्म रूप हैं। अतः एक ब्रह्म [-सत्-सत्ता] को ही प्रणाम है। चेतन और जड़ का पार्थक्य विवेक-भाव से ही सम्भव है। व्यावहारिक सत्ता में 'नमस्कार' के तीन रूप होते हुए भी, विवेक द्वारा ऐक्य सम्भव है। कबीर ने कहा है—

'गुर-गोबिंद तौ एक है, दूधा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार।।'

—क० ग्रं०, 1/26

4. बुद्धि मम क्षुद्र=मेरी बुद्धि सीमित है। रचनाकार का लघुता बोध कवि परम्परा में प्रसिद्ध है। सुन्दरदास ने अन्यत्र भी कहा है—

'तेरी गति तूं ही पै जानैं। मेरी मति कैसैं जु प्रवानैं।
कीरी पर्वत कहा उचावै। उदधि थाह कैसैं करि आवै।।'

—सर्वांग प्रदी०, 2/50

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपई : ज्ञान समुद्र ग्रन्थ अब भाषौं। बहुत भांति मन महिं अभिलाषौं।
यथा सक्ति हौं बरनि सुनाऊँ। जौ सद्गुरु पहिं आज्ञा पाऊँ ॥5॥

अथ ग्रन्थ वर्णन :

सोरठा : है यह अति गम्भीर, उठति लहर अनन्द की।
मिष्ट सु याकौ नीर, सकल पदारथ मध्य हैं ॥6॥

कवि कालिदास ने भी 'रघुवंश' महाकाव्य के द्वितीय श्लोक में लिखा है—

'क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्प विषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥'

अर्थात् कहाँ सूर्य से उत्पन्न कुल [-रघुवंश] और कहाँ सीमित विषयों को ग्रहण करने वाली मेरी बुद्धि ? मैं मोह वश इस छोटी-सी पनसुहिया डोंगी [-बुद्धि] द्वारा असीम दुस्तर सागर [-सूर्यवंशी वृत्तान्त] को तैरने का साहस कर रहा हूँ।

इसी सन्दर्भ में 'कम्ब रामायण' [-तमिल] के रचनाकार कम्ब का कथन है कि 'क्षीरसागर को एक छोटी बिल्ली पी जाना चाहती है। सुन्दरदास का आशय भी लगभग वैसा ही है, जिसमें वे अल्पबुद्धि का अनुभव करते हुए भी बृहत्कार्य का साहस करने की उक्ति प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि 'ज्ञान' ब्रह्म की तरह ही अगाध और असीम है। समुद्र के रूपक से उसका अनुमान सम्भव है। ज्ञान और फिर 'ब्रह्म ज्ञान' अपनी चिन्तन-सीमा में अपरिमित विषयों को समेट लेता है। इस ज्ञान-समुद्र को मुनिजन [-मनीषी] गहन मानते हैं। अर्थात् चिन्तन-परम्परा में अगाध माना गया है। अगाध=गहन, गहरा, असीम, विशाल ज्ञान रूप समुद्र। 'ज्ञान' ब्रह्म का नाम भी है।

5. भाषौं=कहता हूँ, कहूँगा। 'बहुत भांति' 'भाषौं' क्रिया का विशेषण भी हो सकता है। अर्थात् 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ को, ज्ञान के नाना विषयों [-प्रकरणों] में अभिव्यक्त करता हूँ [-करूँगा]। अभिलाषौं=उत्कट अभिलाषा, प्रबल इच्छा करता हूँ [-कर रहा हूँ] अर्थात् उक्त विशाल समुद्र के वर्णन की प्रबल इच्छा है। सद्गुरु—आज्ञा पाऊँ=कृपा करके गुरु ग्रन्थ-रचना की आज्ञा दें, तभी यह दुस्तर कार्य सम्भव हो सकेगा। 'सद्गुरु' शब्द के माध्यम से आस्तिक्यभाव [सद्गुरु-सन्तजन-परमात्मा] की अभिव्यक्ति तो है ही, पूरी गुरु-शास्त्र परम्परा के प्रति श्रद्धा भाव भी व्यंजित है। यथासक्ति = यथाशक्ति। यहाँ यह संकेत भी मिलता है कि काशी में रहकर कथावाचक पण्डितों से ज्ञान-समुद्र रचने की प्रेरणा तथा अन्यत्र से भी जो शास्त्र-शिक्षा सुन्दरदास जी ने प्राप्त की, उसे यथासम्भव भाषाबद्ध करने की अभिलाषा उनके मन में रही है।

6. **सोरठा :** यह छन्द दोहे का उलटा होता है। इसके प्रथम और तृतीय चरण में 11-11 और द्वितीय व चतुर्थ चरण में 13-13 मात्राएँ। अन्त में तुकान्तता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दव : जाति जिती सब छंदन की वहु सीप भई इहिं सागर माहीं ।
है तिन मैं मुक्ताफल अर्थ लहैं उनकौं हितसौं अवगाहीं ॥
सुन्दर पैठि सकै नहिं जीवत दै डुबकी मरिजीवहि जाहीं ।
जे नर जान कहावत हैं अति गर्व भरे तिनकी गमि नाहीं ॥7॥

गम्भीर = गहरा, अगाध [समुद्र और ज्ञान दोनों का ही लक्षण] । लहरि = तरंग, हिलोर [सागर में जल और ज्ञान में आनन्द की] । मिष्ट = मीठा, मधुर [ज्ञान-सागर की विशेषता, क्योंकि ज्ञान-भाव का आस्वाद अमृत तुल्य मीठा, जबकि समुद्र का जल खारा] । सकल पदारथ = सम्पूर्ण मूल्यवान् पदार्थ । (ज्ञान-समुद्र की विशिष्टता, क्योंकि सागर-मन्थन से 14 रत्न ही प्राप्त हुए थे, जबकि ज्ञान-समुद्र में अनन्त रत्न [-मूल्यवान् विचार] होते हैं । सकल पद + अर्थ से ज्ञान-क्षेत्र के कला, दर्शन-शास्त्र के अंग-प्रत्यंग रूप पद अथवा पाद [-विभूति, खण्ड या विभाग] तथा प्रस्थान त्रयी की व्याख्याएँ रूप 'अर्थ' । मध्य = भीतर, अन्तर्मुखता में ।

7. **इन्दव** : यह 'सवैया' का एक भेद है, जो 'विकृति' [23 अक्षर]-जाति का है, जिसमें सात भगण [ऽ।।] और अन्त में दो गुरु [ऽऽ] होते हैं । इन्दव का ही अन्य नाम मत्तगयन्द सवैया है । सब छन्दनि की जाति = सब छन्दोंकी जाति अथवा प्रकार । यहाँ 'सब' विशेषण का मन्तव्य 'बहुत' से है । अथवा ग्रन्थ [-ग्रन्थावली] में प्रयुक्त सभी छन्दों से है । मुक्ताफल = मोती, मोक्ष रूप फल [श्लेष] । लहैं = प्राप्त करते हैं । अवगाहीं = अवगाहन करते हैं, (ज्ञान-सागर में-) पैठते या अन्तःप्रवेश करते हैं [श्लेष] । जीवत = जीते हुए, इन्द्रियों के बाह्य प्रसार की प्रबलता में । डुबकी = अन्तःप्रवेश, गहराई में जाना । मरिजीवहि = मरि + जीवहि अर्थात् मर कर जो जीता है । सन्त-वाणी का यह पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है— साधना-मार्ग में जीते जी 'आपा' [= अहंकार] का विलय करने वाला । जिसप्रकार 'मरजीवा' [= गोताखोर] संयम-अभ्यास से जल की गहराई में प्रवेश करके, वहाँ से बहुमूल्य पदार्थ उपलब्ध कर लेता है, वैसे ही इन्द्रिय संयमी साधक, अपने अन्तः प्रवेश अर्थात् चिन्तन-मनन के द्वारा जीवन-ज्ञान-सागर की गहराई में से बहुमूल्य मुक्ताफल प्राप्त करने में सफल होता है । 'मरजीवा' पर प्रायः सभी सन्त-रचनाकारों ने 'साखी' रची हैं । कुछ उदाहरण—

'खरी कसौटी राम की खोटा टिकै न कोइ ।'
राम कसौटी सो टिकै जो जीवत मृतक होइ ॥
—क० ग्रं०, 41/9

'मरजीवा मन मारि महोदधि पैठि रे ।'
—गरीब० बा०, पृ० 118

'मरजीवे की मित्रई मोती आवै हाथ ।'
'मरजीवा ह्वै माँहि मिलि जन रज्जब बिन काय ।'
—रज्जब बा०, 3/54,120

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ यज्ञास लक्षण :

सवैया : जे गुरु भक्त विरक्त जगत सौं है जिनकै संतन कौ भाव।
वै जिज्ञास उदास रहत हैं गनत न कोऊ रंक न राव।।
बाद बिबाद करत नहिं कबहूँ बस्तु जानिबे कौ अति चाव।
सुन्दर जिनकी मति है ऐसी ते पैठहिंगे या दरियाव ।।8।।

छप्पय : सुत कलत्र निज देह आपु कौं बन्धन जांनत।
छूटौं कौंन उपाय इहै उर अन्तर आंनत।।
जन्म मरन की शंक रहै निश दिन मन मांहीं।
चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जांहीं।।
इहिं भांति रहै सोचत सदा, संतनि कौं पूछत फिरै।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं, जौ मेरौ कारय करै ।।9।।

ज्ञान कहावत=जो अपने को ज्ञानी कहते हैं, वे अहंकारविमूढ़ होने के कारण अज्ञानी हैं। ऐसे अविद्याग्रस्तों के सम्बन्ध में कठोपनिषद् का कथन है—

'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्त मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।

—1/2/5

गर्व भरे=अहंकार से भरे हुए, मोहान्धकारविमूढ़। गमि=गति, पहुँच। **टिप्पणी :** छन्द 6-7 में ग्रन्थ शीर्षक ज्ञान-समुद्र पर रूपक बाँधा गया है। यहाँ उपमेय का उपमान से उत्कर्ष दिखाने के कारण व्यतिरेक अलंकार है और समुद्र के अंग-प्रत्यंगों को उपमान बनाने में सांगरूपक भी है। यहाँ ज्ञान-समुद्र उपमेय का जल-समुद्र उपमान में अभेद आरोप है। व्यतिरेकीकरण के कारण 'सावयव-अधिक-अभेद रूपक' भी है।

8. विरक्त=अनासक्त। जिज्ञास=जिज्ञासु, तत्त्व चिन्तन के प्रति अभिलाषा करने वाले। **टिप्पणी** : यहाँ 'जिज्ञास' शब्द 'जिज्ञासु' का ही ब्रजभाषा रूप है। पुरानी पुस्तकों में 'यज्ञास' प्रयोग भी मिलता है। सुन्दरदास जी ने दोनों रूप दिए हैं। उदास=उदासीन। गनत=गिनते हैं। रंक न राव=राजा-रंक का भेद नहीं गिनते अर्थात् मानते। बाद बिबाद=वाद-विवाद, व्यर्थ का तर्क-वितर्क। वस्तु=पदार्थ, मूल अर्थ, तत्त्व। चाव=अभिलाषा, उत्कण्ठा। मति=बुद्धि। पैठहिंगे=प्रवेश करेंगे, अन्तःप्रवेश पाएँगे। या=इस [-ज्ञान रूप समुद्र में]। दरियाव [फा०] < दर्या=दरिया, समुद्र, सिन्धु, सागर।

9. सुत-कलत्र=स्त्री-पुत्र। छूटौं=मुक्ति प्राप्त कर सकूँ। उपाय=साधन, रास्ता, मार्ग। उर अन्तर=हृदय के भीतर। शंक=शंका, जन्म-भय। चतुराशी=चौरासी अर्थात् चौरासी लाख योनि-जन्म, जन्म-मरण का चक्र। दुःख=कष्ट, ताप। संतनि=सन्तों, विवेकी पुरुषों, मनीषी-तत्त्वदर्शियों। कारय=कार्य, हित-सिद्धि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ गुरुदेव की दुल्लभता :

चौपइया : गुरुदेव बिना नहिं मारग सूझय, गुरु बिन भक्ति न जांनै ।
गुरुदेव बिना नहिं संशय भागय, गुरु बिन लहै न ज्ञांनै ।।
गुरुदेब बिना नहिं कारय होई, लोक बेद यौं गावै ।
गुरुदेव बिना नहिं सदगति होई, गुरु गोबिन्द बतावै ।।10।।

त्रोटक : गुरुदेव बिना नहिं भाग्य जगै । गुरुदेब बिना नहिं प्रीति लगै ।
गुरुदेव बिना नहिं शुद्ध हृदं । गुरुदेव बिना नहिं मोक्ष पदं ।।11।।

मनहर : गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा कौं ग्रहै,
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये ।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीत हू अधिक बाढ़ै,
गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये ।।
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानै,
गुरु के प्रसाद शून्य मैं समाधि लाइये ।
सुन्दर कहत गुरुदेव जौ कृपाल हौंहि,
तिनके प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाइये ।।12।।

---

10. दुल्लभता [अप०] <दुर्लभता [सं०] =कठिनाई से प्राप्त होने वाला । मारग = मार्ग, साधन, उपाय । लहै =प्राप्त करता है । ज्ञांनै =ज्ञान को, ज्ञान के तत्त्व को, मूल रहस्य को । कारय=कार्य । लोक बेद=लोक मार्ग और वेद मार्ग, लोक और वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त-मार्ग । **टिप्पणी :** लोक-वेद का उल्लेख करने वाली कबीर की साखी—

पीछैं लागा जाइथा लोक बेद के साथि ।
आगैं थैं सतगुर मिल्या दीपक दीया हाथि ।।
—क० ग्रं० 1/11

सदगति =सुगति, कल्याणमूलक गति, सुमार्ग । गुरु गोबिन्द =गुरु रूप गोविन्द, गुरु से गोविन्द तक, गुरु रूप मूल्य से गोविन्द रूप मूल्य तक । **टिप्पणी :** गुरु-गोविन्द सम्बन्धी कबीर की प्रसिद्ध साखी—

'गुरु गोबिन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दिए बताय ।।'

11. **त्रोटक :** छन्द विशेष । जिस छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण [।।S] के क्रम से 12 वर्ण हों, उसे तोटक या त्रोटक छन्द कहते हैं । इसका एक नाम 'अर्द्धसवैया' भी है । भाग्य जगै=भाग्य जाग्रत होता है, भाग्योदय, विवेक-ज्ञान में रुचि । प्रीति लगै =प्रेम भाव का लगना । हृदं = हृदय । 'पदं' की तुकान्तता केलिए 'हृदं' रूप ।

12. **मनहर :** जिस छन्द के प्रत्येक चरण में 31 वर्ण हों और 16-15 पर यति हो एवं चरणान्त में गुरु हो, वहाँ 'मनहर' छन्द होता है । इसके अन्य नाम कवित्त और घनाक्षरी भी हैं । जैन कवि बनारसीदास [सुन्दरदास के समकालीन] ने अपने 'समय सार' नाटक में 'मनहर' छन्द को 'इकतीसा' सवैया कहा है । इस सम्बन्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : गुरु के सरनै आइहै, तब ही उपजै ज्ञान ।
तिमिर कहौ कैसें रहै, प्रगट होइ जब भान ।।13।।

अथ गुरु लक्षन :

रोडा : चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतलहि सुहृद्दय ।
क्रोध रहित सब साध, साधु पद नाहिं न निर्द्दय ।।
अहंकार नहिं लेश महान् सबनि सुख दिज्जय ।
शिष्य परष्य विचारि जगत महिं सो गुरु किज्जय ।।14।।

छप्पय : सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय ।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ बिराजय ।।
सुख निधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै ।
सारासार बिबेक सकल मिथ्या भ्रम भानै ।।
पुनि भिद्यन्ते हृदि ग्रन्थि कौं छिद्यन्ते सब संशयं ।
कहि सुन्दर सो सद्‌गुरु सही चिदानंदघनचिन्मयं ।।15।।

'सवैया' [=सुन्दर विलास] ग्रन्थ के प्रारम्भ का अंश द्रष्टव्य । प्रसाद=प्रसन्नता से, अनुकूलता से । ग्रहै=प्राप्त करती है । भव दुःख=भव ताप, त्रय ताप, दैहिक-दैविक-भौतिक कष्ट । बाढ़ै=बढ़ती है । युगति=युक्ति, विधि, क्रिया-मार्ग । शून्य=निर्विकल्प समाधि, योग में ध्यान के पश्चात् की तन्मय दशा । तत्त्व ज्ञान =ज्ञान का तत्त्व, ज्ञान का प्राप्तव्य, शुद्ध ब्रह्म की आनुभूतिक दशा ।

13. उपजै=उत्पन्न होता है, उदय होता है । सरनै=शरणागति में । तिमिर= अन्धकार, अज्ञानान्धकार । भान=भानु, सूर्य । सद्‌गुरु रूप सूर्य के रहते हुए अज्ञान रूप अन्धकार कैसे रह सकता है ।

14. रोडा=रोला छन्द । लयलीन=तल्लीन । सुहृदय <सुहृद्दय [पाठा०]=सुन्दर हृदय । साध=साधन, विधि, क्रिया । साधु पद=साधुजन की पदवी । निर्द्दय =निर्दय, दया रहित । लेश=किंचिन्मात्र । सबनि सुख=सबको सुख, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना । दिज्जय=दीजिए । परष्य <परख्य=परख कर । गुरु किज्जय=गुरु धारण कीजिए, गुरु बनाइए, गुरु रूप में धारण कीजिए । छन्द की प्रत्येक पंक्ति में, चरणान्त के अक्षर द्वित्व के होने में अपभ्रंश भाषा या पुरानी हिन्दी का प्रभाव लक्षित है ।

15. प्रसन्न सुभाव=प्रसन्न स्वभाव, प्रसन्न भाव, प्रसन्न मुख-मुद्रा । राजय= शोभायमान । तृप्त ज्ञान विज्ञान=ज्ञान-विज्ञान विषयों में तृप्ति का भाव । कूटस्थ=अटल, स्थितप्रज्ञ । पूरी पंक्ति गीता के 'ज्ञानविज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः' [—6/8] कथन का भाषानुवाद । निधान=भण्डार, राशि-राशि । सारासार विवेक=सार-असार का विवेक-ज्ञान । भानै=भंजित करता है, नष्ट करता है । भिद्यन्ते=भेदता है । हृदि ग्रन्थि=हृदय ग्रन्थि को । छिद्यन्ते=काट देता है, विदीर्ण कर डालता है । चिन्मयं=चैतन्यमय, स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मलीन स्थिति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवंगम : शब्द ब्रह्म परब्रह्म भली विधि जांनई।
पञ्च तत्व गुन तीन मृषा करि मांनई ॥
बुद्धिमन्त सब सन्त कहैं गुरु सोइ रे।
और ठौर शिष जाइ भ्रमै जिन कोइ रे ॥16॥

नन्दा : ब्राह्मी भूत अवस्था जा महिं होइ।
सुन्दर सोई सद्गुरु जानै कोइ ॥17॥

सोरठा : अैसे गुरु पहिं आइ, प्रश्न करै कर जोरि कैं।
शिष्य मुक्ति ह्वै जाइ, संशय कोऊ नां रहै ॥18॥

अथ गुरु की प्राप्ति :

चौपई : षोजत षोजत सद्गुरु पाया। भूरि भाग्य जाग्यौ शिष आया।
देषत दृष्टि भयौ आनन्दा। यह तौ कृपा करी गोबिन्दा ॥19॥

यह पंक्ति भी मुण्डकोपनिषद् [-2/8] के इस श्लोक का अनुवाद जैसी ही है—

'भिद्यन्ते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे॥'

अर्थात् उस परावर [=कारण कार्य रूप] ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर जीव की हृदय-ग्रन्थि छिन्न हो जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और इस [जीव] के कर्म क्षीण हो जाते हैं।

16. **पवंगम** : पन्द्रह वर्णों का एक छन्द। इसी को अरिल या अरिल्ल भी कहा गया है। शब्द ब्रह्म = शब्द रूप ब्रह्म। व्याकरणशास्त्र के अनुसार शब्द ब्रह्म है। 'वेद' को भी 'शब्द ब्रह्म' के रूप में जाना जाता है। इसी सन्दर्भ में गीता का यह साक्ष्य है—'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।' [-6/44] अर्थात् योग का जिज्ञासु तक सकाम वैदिक कर्म करने वाले की स्थिति को पार कर जाता है। पञ्चतत्व = पाँच तत्त्व—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर। तीन गुन = तीन गुण—सत्व, रज, तम। मृषा = झूठ, असत्य। सोइ = वही।

17. **नन्दा** : बरवै छन्द का एक अन्य नाम, जिसकी प्रत्येक पंक्ति में 12-7 की यति पर 19 मात्राएँ होती हैं। सुन्दरदास ने बरवै और नन्दा अलग-अलग नाम दिए हैं। 'नन्दा' नाम एकमात्र यहीं दिया गया है। ब्राह्मीभूत अवस्था : 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्य की 'सिद्धि' प्राप्त किए हुए की दशा।

18. अैसे = ऐसे। पुरानी देवनागरी में 'ऐ' प्रायः इसीप्रकार लिखा मिलता है। कर जोरि = हाथ जोड़कर, विनीत जिज्ञासु भाव से। मुक्ति = मोक्ष-दशा, मोक्ष का अनुभव।

19. **चौपई** = चौपाई। यह सममात्रिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। षोजत षोतज सद्गुरु पाया = खोजते-खोजते ही अर्थात् निरन्तर शोध से ही सद्गुरु [तत्त्व] का अन्वेषण होता [-हो पाता] है। महामति प्राणनाथ ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : गुरु को दरसन देषते, शिष पायौ सन्तोष।
कारय मेरौ अब भयौ, मन मंहि मान्यौ मोष ॥20॥

अथ शिष्य की प्रार्थना :

सोरठा : सीस नाइ कर जोरि, शिष्य सु प्रार्थना करी।
हे प्रभु लीजय छोरि, अभय दान गुरु दिज्जिये ॥21॥

प्रार्थनाष्टक :

अर्द्ध भुजंगी : अहो देव स्वांमी, अहं अज्ञ कामी।
कृपा मोहि कीजै, अभै दांन दीजै ॥1॥
बड़े भाग्य मेरे, लहे अंध्रि तेरे।
तुम्हैं देखि जीजै, अभै दांन दीजै ॥2॥
प्रभू हौं अनाथा, गहौ मोर हाथा।
दया क्यौं न कीजै, अभै दांन दीजै ॥3॥
दुखी दीन प्राणी, कहौ ब्रह्म बांणी।
हृदौ प्रेम भीजै, अभै दांन दीजै ॥4॥
यती जैंन देखे, सबै भेष पेषे।
तुम्हैं चित्त धीजै, अभै दांन दीजै ॥5॥
फिर्यौ देश देशा, किये दूरि केशा।
नहीं यौं पतीजै, अभै दांन दीजै ॥6॥
गयौ आयु सारौ, भयौ सोच भारौ।
वृथा देह छीजै, अभै दांन दीजै ॥7॥
करौ मौज ऐसी, रहै बुद्धि वैसी।
सुधा नित्य पीजै, अभै दांन दीजै ॥8॥29॥

इसप्रकार कहा है—
'खोजत-खोजत सद्गुरु पाइइ, सद्गुरु संग करतार।'-किरंतन 37/1
भूरि भाग्य = बड़ा सौभाग्य। जाग्यौ = जागृत हुआ, उदय हुआ। आया = [खड़ी-बोली क्रिया रूप] गुरु की शरण में आया अथवा आता है। गोबिन्दा = गोविन्द अर्थात् परमात्मा ने।

20. दरसन देषते = दर्शन करते हुए। यहाँ 'देषते' प्रयोग असाधु है। कारय = कार्य। मोष = मोक्ष।

21. सीस नाइ = शीश झुका कर, विनत भाव से। प्रार्थना = विनती, [छन्द की दृष्टि से इसका उच्चारण 'प्रारथना' होगा]। लीजय = लीजिए। छोरि = छुड़ा लीजिए, बन्धन-मुक्त कराइए। दिज्जिये = दिजीए [अपभ्रंश के द्वित्व का प्रभाव]।

29. प्रार्थनाष्टक = प्रार्थना, विनती के आठ छन्द। **अर्द्धभुजंगी** : एक वर्णिक छन्द, जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण [।ऽऽ] होते हैं। इसे 'अर्द्धभुजंगी' इसलिए कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ गुरु की प्रसन्नता :

सोरठा : मुदित भये गुरुदेव, देषि दीनता शिष्य की।
सर्व बताऊँ भेव, जोई जो तूं पूछिहै ।।30।।

अथ शिष्य का प्रश्न :

पद्धरी : करि जोरि उभय शिष करि प्रणाम।
तव प्रश्न करी मन धरि विराम।।
हौं कौंन, कौंन यह जगत-आहि।
पुनि जन्म मरण प्रभु कहहु काहि ।।31।।

जाता है, क्योंकि इसमें चार चरणों के स्थान पर दो चरण ही रहते हैं। चार चरणों वाले छन्द को 'भुजंगप्रयात' कहा जाता है। यहाँ 22वें क्रम से 29वें क्रम तक 8 अर्द्धभुजंगी छन्द हैं। अज्ञ = अज्ञानी, नासमझ। अभैदान दीजै = भव-दुःखों [= क्लेशों] से निर्भय करने का दान दीजिए। यहाँ 'दांन' में अकारण अनुनासिकता है। अतः '**दांन**' वर्तनी दी गई है। अहं [सं०] = मैं। अंघ्रि = चरण। [यह शब्द संस्कृत-हिन्दी में चरण केलिए प्रयुक्त नहीं मिलता। 'अंघ्र' का अर्थ 'निम्न' अवश्य मिलता है।] जीजै = जीवित हूँ, जीऊँगा। हौं = मैं। गहौ मोर हाथा [मुहा०] = हाथ पकड़ो, सहारा दो। ब्रह्म बांणी = ब्रह्म विषयक वचन, 'ब्रह्म विद्या' का उपदेश। यती-जैंन = यति-साधना में विश्वास करने वाले जैन मतावलम्बी। सबै भेष पेषे = और भी अनेक साधना मार्गों—मतों को देखा-परखा है। धीजै = विश्वास करता है।

किये दूरि केशा = केशादि कटवा कर भी देखे अथवा कटवा दिए। नहीं पतीजै = विश्वास नहीं हुआ। आयु गयौ = आयु बीत गई। यहाँ 'आयु' शब्द का पुंलिग प्रयोग है। [यह संकेत भी मिलता है कि 'ज्ञान-समुद्र' की रचना के समय सुन्दरदास बालक या युवक नहीं थे। अपितु, वे उस समय 57 वर्ष के थे।] छीजै = क्षीण हो रही है। मौज [अ०] = लहर, तरंग, मन की उमंग, कृपा, मेहर [फा०]। **तुलना** : 'सवैया' ग्रन्थ के अंग 1/1 में भी इसीप्रकार 'मौज' शब्द का प्रयोग है—

'मौज करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ कह्यौ हरि नेरौ।'

वैसी = उस प्रकार की, जिससे अथवा जिसमें ब्रह्म निष्ठा बनी रहे। सुधा = अमृत, ज्ञानामृत। नित्य सुधा पीजै = गुरु से ब्रह्म विद्या रूप सुधा नित्य प्राप्त हो। अथवा मोक्षमय अमृत रूप अनुभव निरन्तर प्राप्त होता रहे।

30. मुदित = प्रसन्न। दीनता = विनम्रता-युक्त जिज्ञासा। भेव = भेद, रहस्य, ज्ञान का मर्म।

31. पद्धरी : पद्धरी छन्द विशेष। इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं और आठ-आठ पर यति होती है। अन्त में एक जगण [।ऽ।] होता है। कर जोरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुरुवाच (उत्तर) :

बोधक : है चिदानन्द घन ब्रह्म तूं सोई।
देह संयोग जीवत्व भ्रम होई।।
जगत हू सकल यह अनछतौ जानौ।
जनम अरु मरण सब स्वप्न करि मानौ ।।32।।

शिष्य उवाच :

गीतक : जौ चिदानंद स्वरूप स्वांमी ताहि भ्रम कहि क्यौं भयौ।
तिहिं देह के संयोग ह्वै जीवत्व मानिर क्यौं लयौ।।
यह अनछतौ संसार कैसें जो प्रतक्ष्य प्रमांनियें।
पुनि जन्म मरण प्रवाह कब कौ स्वप्न करि क्यौं जांनियें ।।33।।

उभय – दोनों हाथ जोड़कर, विनम्र जिज्ञासु की मुद्रा में। तव = आप से। प्रश्न करी = प्रश्न करता हूँ। बिराम = धीरज, विश्राम भाव से अर्थात् बिना किसी उत्तेजना के, सहज भाव से। **टिप्पणी :** यहाँ 'प्रश्न' को स्त्रीलिंग मान कर 'करी' क्रिया का प्रयोग है। आदि [-मूल] पुस्तक में 'शिष्य का प्रश्न' के स्थान पर 'शिष्य की प्रश्न' लिखा है। हौं कौंन = मैं कौन हूँ ? दर्शनशास्त्र में यह मूल प्रश्न है, जिससे साधक की जिज्ञासा प्रारम्भ होती है। जगत आहि = यह संसार कौन [क्या] है ? काहि = किसको, किसके लिए है ?

32. **बोधक :** ग्रन्थ में यह एकमात्र छन्द विशेष है। बोधक छन्द के प्रत्येक चरण में 10+9 की यति से 19 मात्राएँ होती हैं और अन्त में दो गुरु [ऽऽ] रहते हैं। है चिदानन्द घन = चित् + आनन्द घन अर्थात् चैतन्य-ज्ञान स्वरूप आनन्दमय ब्रह्म, वेदान्त प्रतिपादित सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म। ब्रह्म तूं = तू वह ब्रह्म है। 'हौं कौन' का उत्तर 'तत्त्वमसि' महावाक्य के आधार पर 'तू वह' है। देह संयोग जीवत्व = शरीर के संयोग से, देह को आधार बनाने के कारण, वही आनन्दघन ब्रह्म-आत्मन् 'जीवात्मा' अर्थात् ब्रह्म-जीव के अभेदत्व रूप में प्रतिपादित होता है। 'जीव' रूप भेदत्व की प्रतीति 'भ्रम' के कारण है। अर्थात् देह के अध्यास से जीवत्व भेद की प्रतीति होती है। अनछतौ = अन + छतौ अर्थात् है, पर नहीं है। जो दीखने मात्र से तो 'है', पर मिथ्या होने के कारण वास्तव में 'नहीं' है। जन्म-मरण की स्थिति उसीप्रकार है जैसे स्वप्न में पदार्थों की प्रतीति तो होती है, पर जागने पर वे नहीं रहते। इसीप्रकार ब्रह्म-आत्म-साक्षात्कार होने पर जन्म-मरण का संसार नहीं रहता।

33. **गीतक :** छन्द विशेष। इसे 'गीतिका' छन्द भी कहते हैं। इसमें स ज ज भ र स और ल ग [।।ऽ, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽ।।, ऽ।ऽ, ।।ऽ + ।ऽ] के योग से 20 वर्ण होते हैं।
टिप्पणी : इस छन्द में शिष्य का प्रखर जिज्ञासु रूप मुखर है। ऐसा लगता है कि वेदान्त अथवा ब्रह्म विद्या के पूर्वपक्ष अथवा प्रतिपक्ष की शंकाएँ या आक्षेप, शिष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुरुवाच :

दोहा : भ्रम ही कौं भ्रम ऊपज्यौ, चिदानंद रस येक।
मृगजल प्रत्यक्ष देषिये, तैसैं जगत बिबेक ॥34॥

चौपई : निद्रा माँहि सूतौ है जौलौं। जन्म-मरण को अन्त न तौलौं।
जागि परे तें स्वप्न समाना। तब मिटि जाइ सकल अज्ञाना ॥35॥

शिष्य उवाच :

सोरठा : स्वामिन् यह सन्देह, जागै सोवै कौंन सौ।
ये तो जड़ मन देह, भ्रम कौं भ्रम कैसैं भयौ ॥36॥

श्री गुरुरुवाच :

कुण्डलिया : शिष्य कहां लौं पूछिहैं, मैं तौ उत्तर दीन।
तब लग चित्त न आइहै जब लग हृदय मलीन॥
जब लग हृदय मलीन यथारथ कैसैं जांनैं।
भ्रमैं त्रिगुन मय बुद्धि आपु नांहि न पहिचानैं॥
कहिबौ सुनिबौ करौ ज्ञान उपजै न जहां लौं।
मैं तौ उत्तर दियौ शिष्य पूछिहै कहां लौं ॥37॥

॥ इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानेसमुद्रे गुरु शिष्य लक्षण निरूपण नाम प्रथमोल्लासः ॥1॥

की जिज्ञासा के रूप में, रचनाकार ने प्रस्तुत करके समाधान दिया है। उदाहरण के लिए जो चिदानन्द स्वरूप चैतन्य है, उसे क्यों भ्रम हुआ? जो प्रत्यक्ष संसार है उसे **'अनछतौ'** कैसे माना जाए? जन्म-मरण प्रवाह को 'स्वप्न' मात्र कैसे माना जाए? आदि-आदि। मानिर=मानकर। प्रत्यक्ष=समक्ष। प्रमांनिये=प्रमाणित करें। प्रबाह=प्रवाह, जन्म-मरण की निरन्तरता।

34. ऊपज्यौ=उत्पन्न हुआ। मृगजल=मृगमरीचिका, मृगतृष्णा, मिथ्याभास। बिबेक=विवेक दशा में, ज्ञानावस्था में।

35. सूतौ=सोया है, अज्ञान-मोह में पड़ा है। जौलौं=जब तक। तौलौं=तब तक। जागि परे तें=जागृत होने पर, ज्ञान दशा में। सकल=सभी।

36 सन्देह=शंका, जिज्ञासा। सौ=सा, वह। भ्रम कौं भ्रम कैसें भयौ=शरीर और मन जब जड़ हैं तो फिर भ्रम किसको होता है? [इस छन्द की प्रश्न-जिज्ञासा आज के नवयुवक के तर्क जैसी प्रखर लगती है।]

37. **कुण्डलिया :** छन्द विशेष। छः चरणों का संयुक्त छन्द है। इसके प्रथम दो चरण दोहे के तथा अन्तिम चार रोला छन्द के होते हैं। प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। दोहे का प्रथम शब्द और रोला का अन्तिम शब्द तथा दोहे का चौथा चरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ द्वितीय उल्लास ।।

प्रवेशार्थ : इस उल्लास में नवधा भक्ति और पराभक्ति का विवेचन शिष्य-गुरु-संवाद के रूप में है। इसमें भक्ति के भेद-प्रभेद तथा अनेकानेक भक्ति-ग्रन्थों का सार प्रस्तुत किया है । भाषा-काव्यों में, भक्ति को इस विधि से प्रस्तुत करना और भक्ति-शास्त्र के रूप में विवेचित करने में रचनाकार का विषय-पारंगत होना प्रमाणित है । यहाँ पराभक्ति निरूपण उल्लेखनीय है। यह 'भक्ति' का रीति-ग्रन्थ कहा जा सकता है। यह उल्लास सुन्दरदास जी के भक्ति विषयक अगाध पाण्डित्य की झलक प्रस्तुत करता है।

शिष्य उवाच :

दोहा : स्वामी हृदय मलीन मम, शुद्धि कवन विधि होइ ।
सोई कहौ उपाइ अब, संशय रहै न कोइ ।।1।।

श्री गुरुरुवाच :

चौपई : सुनहिं शिष्य ये तीनि उपाई । भक्ति योग हठ योग कराई ।।
पुनि सांख्य सुयोग हि मन लावै । तब तूं शुद्ध स्वरूप हि पावै ।।2।।

तथा रोला का प्रथम चरण प्रायः एक ही होता है । कहाँ लौं=कहाँ तक । **टिप्पणी :** उक्त सम्बन्ध में प्रश्न का उत्तर 'वदतोव्याघात' अथवा 'अनावस्था' [Fallecy of Infinite Regress]-दोष के रूप माना जाएगा । इसीलिए अन्य उत्तर न देकर चित्त-शुद्धि की बात कही गई है। जब लग-तब लग=जब तक-तब तक [सापेक्ष प्रयोग]। यथारथ=यथार्थ, वास्तव । भ्रमैं=भ्रमित बनी रहती है। आपु=स्वयं को, आत्मन् को । कहिबौ सुनिबौ करौ=कहते-सुनते रहो। ज्ञान उपजै न जहाँ लौं=जब तक ज्ञान उदय नहीं होता। निर्मल चित्त नहीं होता तब तक विवेक नहीं आता, अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती। बुद्धि त्रिगुनमय=त्रिगुणजनित दोषों से बुद्धि मलिन बनी रहती है। अतः ऐसे बुद्धि- भ्रम अथवा मलिनता में तत्त्व-ज्ञान का उदय सम्भव नहीं है।

द्वितीय उल्लास—चूर्णिका : 1. स्वामी=गुरुदेव । मलीन=कल्मष-युक्त, कषाय वाला । शुद्धि=पवित्रता, निर्मलता । कवन विधि=किस प्रकार । सोई=वही ।
2. तीनि उपाई=तीन उपाय । **टिप्पणी** : अन्तःकरण-शुद्धि या हृदय-शुद्धि केलिए सुन्दरदास जी ने जो यहाँ भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग रूप तीन उपाय बताए हैं, वे वेदान्त प्रतिपादित उपाय नहीं हैं। साथ ही, इनके पीछे 'योग' शब्द को जोड़ने से गीता का प्रभाव भी लक्षित है । यद्यपि गीता में 'हठयोग' की प्रकरणबद्ध विधि नहीं है। दादू-साधना-मार्ग में **ब्रह्मज्ञान** भक्तिमय होकर अभिव्यक्त हुआ है । यही सुन्दरदास जी को भी साध्य लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य उवाच :

पद्धड़ी : अब भक्ति कहौ गुरु कै प्रकार, हठयोग अंग पाऊँ बिचार ॥
पुनि सांख्य सुयोग बताव नाथ, भवसागर बूड़त गहहु हाथ ॥3॥

श्री गुरुरुवाच :

सवइया : प्रथमहिं नवधा भक्ति कहत हौं नव प्रकार हैं ताके भेद ।
दशमी प्रेम लक्षणा कहिये सो पावै जो ह्वै निर्बेद ॥
परा भक्ति है ताके आगै सेवक सेव्य न होइ बिछेद ।
उत्तम मध्य कनिष्ट तीन बिधि सुंदर इनि तें मिटहैं षेद ॥44॥

---

3. **पद्धड़ी** : देखिए प्रथम उल्लास का 31वाँ छन्द 'पद्धरी'। भव सागर=संसार रूप सागर । गहहु=गहो, पकड़ो, अवलम्ब दो ।

4. नवधा भक्ति : नौ प्रकार की भक्ति । **टिप्पणी** : श्रीमद्भागवत् में भक्ति[-विष्णु] के नौ प्रकार बताए गए हैं--

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥'—7/5/23

वेदों में नवधा भक्ति जैसा उल्लेख [-ऋग्वेद 1/154/1,4, 1/155/44, 1/156/2] मिलता है। बृहदारण्यक में श्रवण, मनन, निदिध्यास और साक्षात्कार का उल्लेख है। लगता है कि उक्त आत्मा सम्बन्धी चार प्रकार की प्रतिपत्तियों को श्रीमद्भागवत् में नौ प्रकार से विस्तृत कर दिया गया है। गीता में नवधा भक्ति का उल्लेख [-9/14,34, 4/24,34, 13/25, 11/39-41, 18/73, 3/30] है। नवधा भक्ति प्रतिपादन में सुन्दरदास का विचारस्रोत गीता के अतिरिक्त नारद भक्ति सूत्र, शाण्डिल्य सूत्र, भक्ति तरंगिणी आदि ग्रन्थ रहे होंगे। निर्वेद=वैराग्य, अनासक्ति । पराभक्ति=परम भक्ति, भक्ति की पराकाष्ठा । दशमी प्रेम-लक्षणा भक्ति से आगे की भक्ति, इसमें सेव्य-सेवक भाव की एकात्मता प्रतिपादित रहती है । इसको इसप्रकार वचनबद्ध किया है—'मिलि परमातम सौं आतमा पराभक्ति सुन्दर कहै।' बिछेद=विच्छेद, विभाग । कनिष्ट=निम्न, अधम, नीचे की, छोटी । **टिप्पणी** : मूल [क] प्रति में 'कनिष्टा' पाठ है । पर छन्द की दृष्टि से तब एक मात्रा बढ़ती है । अतः पुरोहित जी ने 'कनिष्ट' पाठ को ही साधु बताया है । षेद=दु:ख, क्लेश ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यउवाच :

छप्पय : नवधा भक्ति वषांनि कहौ गुरु भिन्न भिन्न करि ।
प्रेम लक्षणा कौन सुनावहु सीस हाथ धरि ।।
परा भक्ति कौ भेव कहौ प्रभु कौंन प्रकारा ।
को उत्तम को मध्य कवन कनिष्ट निर्द्धारा ।।
यह दयासिंधु मोसौं कहहु तुम समान नहिं कोइ है ।
जब कृपा कटाक्षहि देषि हौं तब मम कारय होइ है ।।5।।

श्री गुरुरुवाच :

चौपई : सुनि शिष नवधा भक्ति बिधांनं । श्रवण कीर्त्तन समरण जांनं ।
पादसेवनं अर्चन वंदन । दास भाव सख्यत्व समर्प्पन ।।6।।

सोरठा : इनि नव अंगनि जांनि, सहित अनुक्रम कीजिये ।
सब ही कौं सुख दानि, भक्ति कनिष्ठा यह कही ।।7।।

शिष्य उवाच :

मालती : श्रवण प्रभु कौंन सो कहिये । कीरतन कौंन बिधि लहिये ।
जु सुमरन कौंन कहि दीजै । चरन सेवा सु क्यौं कीजै ।।8।।

---

5. वषांनि कहौ=विभागशः स्पष्ट करके कहो, वर्णन करो । प्रेम लक्षणा=गहरे प्रेम वाली । **टिप्पणी :** यह प्रेम या राग की अतिशयता वाली भक्ति है । भागवत् सम्प्रदाय में प्रेम-लक्षणा भक्ति का विशेष महत्त्व है । गोपी-प्रेम इसके लिए उदाहरणीय है । [दे०-श्रीमद्भागवत् 10/32/22, 10/44/45, 10/47/58, 10/46/4-6] । पुष्टि मार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति में जाति, वर्ण और देश आदि का भेद-भाव नहीं बताया गया। इस मार्ग पर चलने वाले को भगवान अनुग्रह मात्र से प्रपंच मुक्त कर देते हैं। [दे०-ब्रह्म सूत्र 3/3/29 का अणुभाष्य]। निर्द्धारा=निर्धारित करते हो । कृपा कटाक्षहि=कृपा कोर, कृपादृष्टि । **टिप्पणी :** 'कनिष्ट' शब्द का उच्चारण, छन्द की दृष्टि से 'कनिष्ट' ही होगा, क्योंकि रोला छन्द के नियमानुसार अन्तिम चरण में मात्राओं का रचना-क्रम 3+2, 4+4 अथवा 3+2, 3+3+2 के रूप में होना चाहिए ।
6. नवधा भक्ति के नौ अंग हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण[=सुमिरन], पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास भाव, सख्य भाव और समर्पण ।
7. अनुक्रम=क्रमशः, उत्तरोत्तर क्रम से । दानि=देने वाली । भक्ति कनिष्ठा=सब को सुख देने की भावना वाली यह भक्ति का लघु रूप है ।
8. **मालती :** छन्द विशेष । यह वर्णिक छन्दों में समवृत्त का एक भेद है । भानुदत्त [-छन्द प्रकाश]के अनुसार इसमें नगण[111], 2 जगण [ISI, ISI] और अन्त में रगण[SIS]योग से 12 वर्ण बताए हैं । प्रस्तुत छन्द में किञ्चित् वर्णदोष है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्चना कौंन बिधि होई। वंदना कहौ गुरु सोई ।।
दास्य सख्यत्व पहिचानौ। निवेदन आतमा जानौ ।।9।।
सोरठा : येक येक कौ भेव, मोहिं अनुक्रम सौं कहौ ।।
तुम कृपाल गुरुदेव, पूछत विलग न मांनिये ।।10।।

श्री गुरुरवाच : अथ श्रवण :

चंपक : शिष तोहि कहौं श्रुति बांनी। सब संतनि साषि बषांनी ।।
द्वै रूप ब्रह्म के जानै। निर्गुन अरु सगुन पिछानै ।।11।।
निर्गुन निज रूप नियारा। पुनि सगुन संत अवतारा।
निर्गुण की भक्ति सु मन सौं। संतन की मन अरु तन सौं ।।2।।
ऐकाग्रहि चित्त जु राषै। हरि गुन सुनि सुनि रस चाषै ।।
पुनि सुनै संत के बैंना। यह श्रवण भक्ति मन चैंना ।।13।।

अथ कीर्तन :

हरिं गुन रसना मुख गावै । अतिसै करि प्रेम बढ़ावै ।
यह भक्ति कीरतन कहिये । पुनि गुरु प्रसाद तें लहिये ।।14।।

---

9. आतमा = आत्मन् । मूल [क] प्रति में 'आत्मा' पाठ ही है। परन्तु छन्द की दृष्टि से 'आतमा' ऐसा पढ़ना अपेक्षित बताया गया है, जिससे मात्रा की हानि न हो सके।
10. भेव = भेद, रहस्य, मर्म । विलग = न्यारापन, बुरा ।
11. **चंपक :** छन्द विशेष, जिसके प्रत्येक चरण में 14 मात्राएँ होती हैं। श्रुतिवानी = वेद वाणी, वेद अर्थात् शास्त्र सम्मत कथन । साषि = साक्षीभूत । बषांनी = कही । ब्रह्म के द्वै रूप = निर्गुण-सगुण रूप ब्रह्म ।
12. नियारा = अनोखा, अद्भुत, वर्णनातीत । सगुन = सगुण भक्ति, सन्तों द्वारा प्रतिपादित अवतार रूप में। निर्गुण-भक्ति = मानस भक्ति जो निराकार रूप में, निराकार मन द्वारा होती है। सगुण-भक्ति = मन और तन दोनों से की जाने वाली भक्ति ।
13. ऐकाग्रहिं = एकाग्र । रस चाषै = आस्वाद ले । बैंना = वचन, वाणी । श्रवण-भक्ति = चित्त को एकाग्र करके हरि के गुण गान में लयलीन होकर आनन्द लेते हुए, शास्त्र-स्वाध्याय और सन्त-वाणी सुनते-कहते [-पढ़ते] हुए, जो भगवत्-भक्ति में अनुराग उत्पन्न होता है, वह मन को तृप्त करने वाली श्रवण-भक्ति है।
14. रसना = जिह्वा, जीभ । अतिसै = अतिशय, अत्यन्त । कीर्तन भक्ति = अनुराग, प्रेम-भाव विभोर होकर हरि गुण-गान कीर्तन-भक्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ स्मरण :

अब समरन दोइ प्रकारा। इक रसना नाम उचारा।
इक हृदय नाम ठहरावै। यह समरन भक्ति कहावै ॥15॥

अथ पादसेवन :

नित चरन कमल महिं लोटै। मनसा करि पाव पलोटै ॥
यह भक्ति चरन की सेवा। संमुझावत है गुरुदेवा ॥16॥

अथ अर्चना :

चामर : अब अरचना कौ भेद सुनि शिष देउँ तोहि बताइ।
आरोपिकैं तहं भाव अपनौं सेइये मन लाइ ॥
रचि भाव कौ मंदिर अनूपम अकल मूरति मांहिं।
पुनि भाव सिंघासन विराजै भाव बिनु कछु नांहिं ॥ 17॥
निज भाव की तहां करै पूजा बैठि सनमुख दास।
निज भाव की सब सौंज आनै नित्य स्वांमी पास ॥
पुनि भाव ही कौ कलश भरि धरि, भाव नीर न्हवाइ।
करि भाव ही के बसन बहु बिधि, अंग अंग बनाइ ॥18॥

---

15. समरन=सुमिरण, स्मरण। उचारा=उच्चारण। स्मरण भक्ति=हरि का गुण-गान अथवा प्रभाव का बोध 'सुमिरन-भक्ति' के अन्तर्गत बताया गया है। प्रभु का नामोच्चार एवं हृदयंगम रूप में मानस-स्मरण ये दो प्रकार हैं।

16. चरन कमल=कमल रूप चरण, पवित्र सुखद चरण। पलोटै=दबावै, सहलावे। पाद सेवन : यह भक्ति, सेव्य के चरणों में पूज्य भावना रखकर की जाती है। प्रभु रामचन्द्र के प्रति हनुमान की भक्ति का एक रूप पाद-सेवन भी बताया गया है।

17. **चामर :** छन्द विशेष। वास्तव में यह सममात्रिक 'गीता' छन्द है जो 'गीतिका' मात्रिक का ही एक प्रकार है। अन्तर इतना ही है कि 'गीतिका' में चरणान्त में ल-ग [।ऽ] होता है। पर 'गीता' में ग-ल [ऽ।] होता है। 14-12 मात्राओं की यति से इसके प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती हैं। भानुदत्त [-छन्द-प्रभाकर] तथा भिखारीदास [-छन्दार्णव] के अनुसार दोनों छन्दों में यह अत्यन्त गौण अन्तर है। भूषण ने 'गीता' नाम से 'हरिगीतिका' [26 मात्राएँ] का प्रयोग [शिवराज भूषण, छ० 16] किया है।

अरचना=अर्चना, अर्चन, पूजन। आरोपिकैं=आरोपित करके। सेइये मन लाइ=मन लगाकर सेवा कीजिए। रचि=रचना करके, कल्पना करके। अकल=कला रहित, निर्गुण-निराकार। मूरति=मूर्ति।

18. सौंज=सामग्री, साधन-विधान। न्हवाइ=स्नान कराए। बसन=वस्त्र। अंग-अंग बनाइ=अंग-प्रत्यंग को सुशोभित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तहं भाव चंदन भाव केशरि भाव करि घसि लेहु।
पुनि भाव ही करि चरचि स्वांमी तिलक मस्तक देहु॥
लै भाव ही के पुष्प उत्तम गुहै माल अनूप।
पहिराइ प्रभु कौं निरषि नख शिष भाव षेवै धूप॥19॥
तहं भाव ही लै धरै भोजन भाव लावै भोग।
पुनि भाव ही करिकैं समर्प्पै सकल प्रभु कैं योग॥
तहं भाव ही कौ जोइ दीपक भाव घृत करि सींचि।
तहं भाव ही की करै थाली धरै ताके बीचि॥20॥
तहं भाव ही की घंट झालरि संष ताल मृदंग।
तहं भाव ही कै शब्द नाना रहै अतिसै रंग॥
यह भाव ही की आरती करि करै बहुत प्रनाम।
तब स्तुती बहु विधि उच्चरै धुनि सहित लै लै नाम॥21॥

अथ स्तुति :

मोतीदांम :

अहौ हरि देव, न जांनत सेव। अहौ हरि राइ, परौं तव पाइ।
सुनौ यह गाथ, गहौ मम हाथ। अनाथ अनाथ अनाथ अनाथ॥1॥
अहौ प्रभु नित्य, अहो प्रभु सत्य। अहो अविनाश, अहो अविगत्य।
अहौ प्रभु भिन्न, द्रसै जु प्रकृत्य। निहत्य निहत्य निहत्य निहत्य॥2॥

---

19. केशरि=केसर। चरचि=चर्चन, लेप। गुहै=गूँथै। अनूप=अनुपम। षेवै=अर्पित करे।

20. लावै=लगाए। समर्प्पै=सर्मपित करे। योग=निमित्त, लिए। जोइ=जलाए, प्रज्वलित करे।

21. घंट-झालरि=घण्टा-झालरि की ध्वनि। संष=शंख। ताल-मृदंग=वाद्य यंत्र। रंग रहै=भाव तरंग में रहे, अलग रागों में गाए गए भजनों की प्रेम-भावना में विभोर रहे। प्रनाम=प्रणाम। स्तुती=स्तुति।

टिप्पणी : चामर छन्द [17-21 तक] में मानसी पूजा-विधान बताया है। निराकार-निर्गुण उपासकों के अनुसार स्थूल मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। 'भाव' के माध्यम से बाह्य स्थूलता को चिन्तन-सूक्ष्मता प्रदान की गई है।

29. **मोतीदांम** : छन्द विशेष। इसे 'मुक्तहरा' भी कहते हैं। इसका संस्कृत नाम 'मौक्तिकदाम' है। यह चार जगण [।ऽ।] के योग से 12 वर्णों का छन्द है। दोनों चरणों को मिलाकर 24 अक्षर। 'ज्ञान समुद्र' ग्रन्थ में कुल 8 'मोतीदाम' छन्द प्रयुक्त हुए मिलते हैं। स्तुति=विनती, प्रार्थना। दे० 1-7 [-29]। अहौ=हो [सम्बोधन के रूप में]। पाइ=पैर, चरण। गाथ=गाथा, जिज्ञासु की आर्त्तवाणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहौ प्रभु पांवन नाम तुम्हार। भजैं तिनकै सब जांहिं बिकार।
करी तुम सन्तनि की जु सहाइ। अहो हरि हो हरि हो हरि राइ ।।3।।
अहौ प्रभु हौ सब जांन सयान। दियौ तुम गर्भ थकैं पय पांन।
सुतौ अब क्यौं न करौ प्रतिपाल। अहो हरि हो हरि हो हरिलाल ।।4।।
भजैं प्रभु ब्रह्म पुरिंद्र महेस। भजैं सनकादिक नारद सेस।
भजैं पुनि और अनेकहि साध। अगाध अगाध अगाध अगाध ।।5।।
अहौ सुखधाम कहैं मुनि नाम। अहौ सुख दैंन कहैं मुनि बैंन।
अहौ सुखरूप कहैं मुनि भूप। अरूप अरूप अरूप अरूप ।।6।।
अहौ जगदादि अहौ जगदंत। अहौ जग मध्य कहैं सब सन्त।
अहौ जग जीव अहौ जगतंत। अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त ।।7।।
अहौ प्रभु बोलि सकै कहि कौंन। रहे सिध साधक हूं मुख मौंन।
गिरा मन बुद्धि न होइ विचार। अपार अपार अपार अपार ।।29।।

दोहा : बहुत प्रशंसा करि कहै, हौं प्रभु अति अज्ञान ।।
पूजा विधि जानत नहीं, सरनि राषि भगवान ।।30।।

अथ बन्दन :

लीला : बन्दन दोइ प्रकार कहौं शिष संभलियं।
दंड समान करै तन सौं तन दंड दियं ।।
त्यौं मन सौं तन मध्य प्रभूकर पाइ परै।
या विधि दोइ प्रकार सु बन्दन भक्ति करै ।।31।।

नित्य=निरन्तर। सत्य=सत्ता भाव, अस्ति, स्थिति वाले। अविनाश=अविनाशी। अविगत्य=अविगत, अविगति, जिसकी गति या स्थिति न जानी जा सके। भिन्न=पृथक्, न्यारा। द्रसै=दृष्टिगत होता है। प्रकृत्य=प्रकृति, माया। निहत्य=द्वैत भाव के रहते हुए मृतक होकर। द्वैतभाव आत्मभाव का घातक होता है। यह आत्महनन की स्थिति ही निहत्य है। पावन=पवित्र। विकार=दोष, कल्मष। राइ=स्वामी। जांन सयान=सर्वज्ञ-सावधान-जागृत। गर्भ थकैं=गर्भ में आए हुए अथवा गर्भ से आए हुए विवश-थकित प्राणी को। पयपांन=दुग्ध पान। सुतौ=ऐसे हो तुम, फिर। प्रतिपाल=पालन-पोषण-रक्षण। पुरिंद्र=इन्द्र। लगता है लेख दोष से, 'सुरिंद्र' का 'पुरिंद्र' हो गया है। महेस=महादेव। सेस=शेष नाग। अगाध=गहन, अगम्य। मुनिभूप=मुनिराज, मुनीश्वर। अरूप=निराकार। जगदंत=जगत् के अन्त। जग जीव=जगत के प्राणी। जगतंत=जगत्के तत्त्व। गिरा मन बुद्धि=मन वाणी और बुद्धि से। न होइ विचार=विचार [-तर्क] में बाँध पाना सम्भव नहीं है।

30. अज्ञान=अज्ञानी, अल्पज्ञ।

31. बन्दन=वन्दना। लीला : छन्द विशेष। 'ज्ञान समुद्र' में प्रयुक्त यह एक मात्र छन्द है। यह पद्धरि [पद्धरी-पद्धड़ी] के लिए देखिए प्रथम उल्लास का 31वाँ छन्द]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ दास्यत्व :

हंसाल :

नित्य भय सौं रहै हस्त जोरें कहै, कहा प्रभु मोहि आज्ञा सु होई।
पलक पतिव्रता पति वचन खंडै नहीं, भक्ति दास्यत्व शिष जांनि सोई ॥32॥

अथ संख्यत्व :

डुमिला : सुनि शिष्य सषापन तोहि कहौं हरि आतम कै नित संग रहै।
पलु छाडत नहिं समीप सदा जितहीं जितकौं यह जीव वहै ॥
अब तूं फिरिकै हरिसौं हित राषहि होइ सखा दृढ़ भाव गहै।
इम सुन्दर मित्र न मित्र तजै यह भक्ति सखापन वेद कहै ॥33॥

का ही एक रूप है। यह [बिना लघु-गुरु विचार के] 16 मात्राओं का छन्द है और जिसमें 8-8 पर यति रहती है। पद्धरि में जहाँ अन्त में जगण [।ऽ।] रहता है, वहीं इसमें लघु-गुरु [।ऽ] रहता है। इसके दो चरणों से **'लीलावती'** [32 मात्राएँ] छन्द बनता है [दे०-प्राकृत पैंगुलम, 1/177]। 'लीला' नाम के दो अन्य छन्द [12 तथा 24 मात्राओं के] भिखारीदास [-'छन्दार्णव'] एवं भानुदत्त [-'छन्द प्रभाकर'] ने माने हैं। बन्दन दोइ प्रकार=शारीरिक एवं मानसिक वन्दना के रूप में दो भेद। तन से दण्डाकार साष्टांग प्रणाम और मन से प्रभु-ध्यान के रूप में। पाइ परै=चरणारविन्द में पड़ जाए। संभलियं=संभाल कर, भली प्रकार से। दंड दियं=दण्डाकार होकर। प्रभूकर=प्रभु के।

32. दास्यत्व=दास्यभाव की भक्ति, सेवक-सेव्य भाव की भक्ति। **हंसाल :** छन्द विशेष। इसे 'हंसालि' भी कहा जाता है। इसमें 37 मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक यगण [।ऽऽ] की योजना रहती है। खंडै नहीं=खण्डित नहीं करती।

33. सख्यत्व=सखा भाव [-की भक्ति]। **डुमिला** : सवैया छन्द का भेद विशेष। 8 सगण [।।ऽ] के योग से 24 वर्णों का छन्द। सखापन=सख्यभाव। जितहीं=जिधर भी। जीव वहै=जीव-जीवात्मा [-प्राणी] जाता है। वेद कहै=वेद अर्थात् शास्त्र कथन। [दे०-मुण्डकोपनिषद्, 3/1]। मूल पाठ 'क' प्रति में 'शषापन' पाठ है, जो प्रतिलिपिकार का दोष लगता है। अतः 'सखापन' पाठ रखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ आत्मनिवेदना :

कुण्डली : प्रथम समर्पन मन करै, दुतिय समर्पन देह ।
तृतिय समर्पन धन करै, चतुः समर्पन गेह ।।
गेह दारा धनं । दास दासी जनं ।
बाज हाथी गनं । सर्व दै यौं भनं ।।
और जे मे मनं । है प्रभू ते तनं ।
शिष्य बांनी सुनं । आतमा अर्पनं ।।34।।

दोहा : नवधा भक्ति सु यह कही, भिन्न भिन्न समुझाइ ।
याकौ नाम कनिष्ट है, शिष्य सुनहिं चित लाइ ।।35।।

।।इति नवधा भक्ति।।

शिष्य उवाच :

रासा : हे प्रभु मोहि कही तुम नौ विधि भक्ति सह ।
फेरि कह्यौ समुझाइ सुजानि कनिष्ट यह ।।
मध्यहु भक्ति सुनाइ कृपा करि कौंन अब ।
जानत हो गुरुदेव जु औसर होइ कब ।।36।।

---

34. **कुण्डली :** एक छन्द विशेष । इसकी प्रथम दो पंक्तियाँ 'दोहा' की हैं, शेष चार 'विमोहा' छन्द की । दोहे में जब चार पंक्तियाँ 'रोला' छन्द की जुड़ती हैं, तब कुण्डलिया छन्द होता है । विमोहा में दो रगण [ऽ।ऽ] होते हैं । यह कुण्डलिया छन्द से अक्षरों-मात्राओं में लघु होने के कारण 'कुण्डली' है । सुन्दरदास जी ने विमोहा को **'चन्दाना'** भी कहा है । वह भी कुण्डलिया का ही प्रकार है । समर्पन= समर्पण । देह=शरीर । गेह=घर, परिवार । दारा=स्त्री । बाज=बाजिन, अश्व, घोड़ा । भनं=कहता है । सुनं=सुनो । अर्पनं=अर्पण ।

35. नवधा भक्ति=भक्ति के नौ प्रकार । कनिष्ट नाम=अपने स्वभाव और गहराई में लघु भक्ति । निर्गुण-भक्ति साधना में नवधा भक्ति का स्थान अत्यन्त प्रारम्भिक है । हाँ, साधना-मार्ग में निष्ठापूर्वक अग्रसर कराने के कारण इसका महत्त्व निर्विवाद स्वीकार किया गया है ।

36. **रासा :** छन्द विशेष । 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ में प्रयुक्त यह एक मात्र छन्द है । इसके प्रत्येक चरण में 31 मात्राएँ होती हैं और चरण के प्रारम्भ में गुरु [ऽ] एवं चरणान्त में लघु [।] का विधान रहता है । औसर=अवसर, समय की अनुकूलता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुरुवाच :

सोरठा : शिष्य सुनाऊँ तोहि, प्रेमलक्षणा भक्ति कौं।
सावधान अब होइ, जो तेरैं सिर भाग्य है।।37।।

इंदव : प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित नैकु रही न शरीर संभारा।।
स्वास उस्वास उठैं सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौंन करै नवधा विधि छाकि पर्‌यौ रस पी मतवारा।।38।।

नराय : न लाज कांनि लोक की न बेद कौ कह्यौ करै।
न शंक भूत प्रेत की न देव यक्ष तैं डरै।।
सुनैं न कांन और की दृशै न और अक्षणा।
कहै न मुक्ख और बात भक्ति प्रेमलक्षणा।।39।।

---

37. **प्रेमलक्षणा भक्ति :** इस भक्ति में प्रेम अथवा राग की प्रधानता रहती है। कृष्ण भक्त कवियों की पुष्टिमार्गीय भक्ति इसी श्रेणी में आती है। भागवत् सम्प्रदाय में इस प्रेमलक्षणा भक्ति का विशेष महत्त्व प्रतिपादित हुआ है। गोपी-प्रेम इस भक्ति का आदर्श प्रेम-माना गया है। 'नारद भक्ति सूत्र' में 'यथा व्रज गोपिकानाम्' रूप में इसका उल्लेख है। निर्गुण-भक्ति मार्ग में 'प्रेमलक्षणा भक्ति' कनिष्टा नवधा भक्ति से आगे, और सन्त प्रतिपादित पराभक्ति से पीछे मानी गई है। सिर भाग्य=भाग्यशाली।

38. प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं=परमात्म भाव के प्रति प्रेमोदय हुआ है। घरबारा=घर-द्वार अर्थात् परिवार-कुटुम्ब की आसक्ति। उन्मत्त=उन्मादित भाव से, मस्त-मौज भाव में। संभारा=सम्हाल, फिक्र, चिन्ता। स्वास उस्वास=श्वास-प्रश्वास। रोम उठैं=रोमांचित होता है। दृग नीर=प्रेमाश्रु, प्रेम के आँसू। कौंन करै नवधा विधि=प्रेम की इस उत्कृष्ट भाव भूमि में 'नवधा भक्ति' कौन करे। अर्थात् प्रेम-भावना की उमंग-उद्वेलन में नवधा भक्ति फीकी लगती है। रस पी=रस पीकर, प्रेम-भाव का आस्वाद लेने के बाद। मतवारा=प्रेम-मस्त, प्रेम-पथ का पथिक, मौजी।

39. **नराय :** नराच-नाराचा नामक छन्द विशेष। यह 'पंचचामर' या 'नागराज' भी है। जगण, रगण, जगण, रगण, जगण, ग [।ऽ।, ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ] के संयोग से 16 वर्ण का छन्द। इसमें एक अल्प परिवर्तन है। नाराच छन्द में 2 नगण [।।।] और 4 रगण [ऽ।ऽ] के योग से 18 अक्षर होते हैं। प्रस्तुत छन्द 16 अक्षरों का नराय या नराच छन्द है, जिसका वर्ण-अक्षर क्रम 'चामर' जैसा ही है। 'पंचचामर' और 'चामर' में अन्तर यह है कि 'चामर' में आदि गुरु रगण [ऽ।ऽ] होता है, और 15 वर्ण होते हैं, जबकि 'नराय' या 'पंचचामर' में आदि लघु जगण [।ऽ।] और 16 वर्ण होते हैं। लाज=लज्जा, शील। कांनि=मर्यादा, सीमा। बेद=शास्त्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगिक्का : निश दिन हरि सौं चित्तासक्ती सदा ठग्यौ सौ रहिये।
कोउ न जानि सकै यह भक्ती प्रेम लक्षणा कहिए ।।40।।

विज्जुमाला : प्रेमाधीना छाक्या डोलै। क्यौं का क्यौं ही बांनी बोलै।
जैसे गोपी भूली देहा। ताकौं चाहै जासौं नेहा ।।41।।

छप्पय : कब हूं कै हँसि उठय नृत्य करि रोवन लागय।
कब हूं गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय ।।
कब हूं हृदय उमंगि बहुत उच्चय स्वर गावै।
कब हूं कै मुख मौंनि मग्न ऐसैं रहि जावै ।।
तौ चित्त वृत्य हरि सौं लगी सावधान कैसैं रहै।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है शिष्य सुनहिं सदगुरु कहै ।।42।।

शास्त्रानुशासन। शंक=शंका, भय। डरै=भयभीत होता है। कांन न सुनै=किसी की नहीं सुनता, अपने महाराग की तन्मयता में किसी की लोक-मर्यादा वाली सलाह को ध्यान नहीं देता। दृशै=देखता है। अक्षणा=आँखों से। मुक्ख=मुख से, वाणी से।

40. **रंगिक्का :** छन्द विशेष। यह 16-12 मात्राओं की यति से 28 मात्रा का विषम छन्द है। 'सार', 'ललित' और नरेन्द्र' आदि इसके अन्य नाम भी हैं। 'प्राकृत पैंगुलम' [-2/94] में उल्लिखित 'सरस्वती' छन्द से यह भिन्न है। चित्तासक्ती=चित्त की आसक्ति, चित्त का केन्द्रीकरण, उन्मुखीकरण। सदा=सदैव। मूल [क] प्रति में 'सदा' के स्थान पर 'सक्ति' [-आसक्ति] है। उससे भी अर्थ-निर्वाह होता है। ठग्यौ सौ=विमुग्ध-सा।

41. **विज्जुमाला :** विद्युन्माला नामक समवर्णिक छन्द विशेष। 'ज्ञान-समुद्र' में इस छन्द का उपयोग दो बार हुआ है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो मगण [SSS] एवं दो गुरु [SS] क्रम से 8 वर्ण होते हैं। यह पाँच गुरुओं का छन्द है। प्रेमाधीना=प्रेम के वशीभूत। छाक्या=प्रेम खुमारि में निमग्न। जैसे गोपी भूली देहा=जैसे प्रेम भाव की उन्मत्तता में गोपियाँ अपने शरीर की सुध-बुध भूल गई थीं।

42. **छप्पय :** छः चरणों या पंक्तियों वाला छन्द। इसकी प्रथम चार रोला [11-13 की यति से 24 मात्राएँ] की तथा अन्तिम दो उल्लाला [15-13 की यति से 28 मात्राएँ] की पंक्तियाँ। नृत्य करि=प्रेमोन्माद में नाच उठता है। गदगद कंठ=भावरुद्ध अथवा प्रेम-विभोर कण्ठ। उच्चय=ऊँचे। मौनि मग्न=मौन दशा में आनन्द-विभोर। चित्तवृत्य=चित्तवृत्ति, ध्यान, धुन। सावधान=उद्बोध की अवस्था। प्रस्तुत छप्पय में प्रेमलक्षणा भक्ति में तल्लीन साधक की दशा को 'अनुभावों' द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनहर :

नीर बिनु मीन क्षीर बिनु शिशु जैसें,
पीर जाकै औषध बिनु कैसें रह्यौ जात है।
चातक ज्यौं स्वांति बूँद चंद कौं चकोर जैसें,
चंदन की चाह करि सर्प अकुलात है।
निर्धन ज्यौं धन चाहै कामिनी कौं कन्त चाहै,
अैसी जाकै चाह ताकौं कछु न सुहात है।
प्रेम कौ प्रभाव अैसौ प्रेम तहां नेम कैसौ,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है ॥43॥

चौपइया : यह प्रेम भक्ति जाकैं घट होई, ताहि कछू न सुहावै।
पुनि भूष तृषा नहिं लागै वाकौं, निश दिन नींद न आवै ॥
मुख ऊपर पीरी स्वासा सीरी, नैनहुँ नीझर लायौ।
ये प्रगट चिन्ह दीसत हैं ताके, प्रेम न दुरै दुरायौ ॥44॥

दोहा : प्रेम भक्ति यह मैं कही, जानैं बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घटि अैसी होइ ॥45॥

---

43. **मनहर** : छन्द विशेष [दे०-प्रथम उल्लास के 12वें छन्द चूर्णिका की टिप्पणी]। नीर=जल। मीन=मछली। क्षीर=पय, दुग्ध। पीर जाकै=जिसके पीड़ा—दर्द रूप रोग। चातक=पपीहा, प्रेम की एकनिष्ठा को प्रतीकित करने वाला प्रेम-कवियों का प्रिय पक्षी। स्वांति बूंद=स्वाति नक्षत्र में मेघ से अवतरित बूंद, स्वांति बिन्दु। चकोर='कवि समय' में प्रसिद्ध, चन्द्रमा के प्रति प्रेम-निष्ठा को दर्षाने वाला, एक पक्षीय-एकनिष्ठ प्रेम का प्रतीक पक्षी विशेष। अकुलात=व्याकुल, बेचैन। कन्त=स्वामी, प्रिय, प्रेमी। चाह=कामना, प्रेम-लगन। **'प्रेम तहां नेम कैसौ'** [लोको०]=प्रेम का कोई नियम नहीं। प्रेम भाव को नियमों में बाँधना सम्भव नहीं।

44. **चौपइया** : छन्द विशेष। 19-11 की यति से 30 मात्राओं वाला छन्द। घट=हृदय में। ताहि=उसको। सुहावै न=अच्छा नहीं लगता, रुचिकर नहीं लगता। भूष तृषा=भूख-प्यास। पीरी=पीली, पीलापन, रक्त की कमी का प्रभाव। स्वासा सीरी=श्वासों में ठण्डापन अर्थात् उष्णता का अभाव। नैन नीझर लायौ=नेत्रों से आँसू की झड़ी लगती है। प्रगट चिन्ह=प्रकट चिह्न, प्रत्यक्ष लक्षण। प्रेम न दुरै दुरायौ=प्रेम छिपाए नहीं छिपता। रहीम के इस दोहे से तुलना कीजिए—

'खैर खून खाँसी खुशी, बैर प्रीत मधु पान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥'

45. बिरला कोइ=कोई-कोई ही [दुर्लभता के कारण]। कलुषता=कलुष, पाप, दोष, संकीर्णता आदि। प्रेम के प्रभाव से हृदय निर्मल हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य उवाच :

चौपई : स्वामी प्रेम भक्ति यह गाई। सो तौ तुम मध्यस्थ सुनाई।
उत्तम भक्ति परा प्रभु कैसी। करहु अनुग्रह कहिये तैसी ।।46।।

श्री गुरुरुवाच :

दोहा : शिष तेरे श्रद्धा बढ़ी, सुनिबे की अति प्यास।
परा भक्ति तोसौं कहौं, जातें होइ प्रकास ।।47।।

गीतक : विक्षेप कबहुँ न होइ हरि सौं निकटवर्ती नित्य हीं।
तहां सदा सनमुख रहै आगै हाथ जौड़ै भ्रित्य हीं।।
पलु येक कबहुं न होइ अन्तर टगटगी लागी रहै।
यह परा भक्ति प्रकाश परिचय शिष्य सुनि सदगुरु कहै ।।48।।

इंदव : सेवक सेव्य मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं।
ज्यौं जल बीच धर्यौ जल पिण्ड सु पिंड रु नीर जुदे कछु नांहीं।।
ज्यौं दृग मैं पुतरी दृग येक नहीं कछु भिन्नसु भिन्न दिषांहीं।
सुन्दर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमातम मांहीं ।।49।।

---

46. गाई=कही। मध्यस्थ=प्रेम-लक्षणा भक्ति को 'मध्यमा' बताया है। यह **'नवधा'** से आगे और **'परा'** से पीछे है। उत्तम=सर्वश्रेष्ठ। परा=उत्कृष्ट, परम, परमात्मा सम्बन्धी। अनुग्रह=कृपा, अनुकम्पा।

47. सुनिबे की प्यास=श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा, प्रबल जिज्ञासा। प्रकास=प्रकाश, ज्ञानालोक।

48. **गीतक** : छन्द विशेष [दे०-प्र० उ० का 33वाँ छन्द]। बिक्षेप=विक्षेप, न्यारापन, भिन्नत्व, विकलता, बेचैनी। सनमुख=सन्मुख, प्रत्यक्ष, समक्ष। भ्रित्य=भृत्य, सेवक, दास। पलु=क्षण। टगटगी=टकटकी, निर्निमेष रूप में देखना। प्रकाश परिचय=पराभक्ति के प्रकाश की जानकारी, पराभक्ति का लक्षण।

49. सेवक-सेव्य=ध्याता-ध्यातव्य, भक्त-भगवान्, साधक-साध्य की तादात्म्य भाव दशा। रस पीवत=आनन्द भाव में निमग्न, ब्रह्मानन्द में लीन। जल पिण्ड=जल [-वीर्य] से उत्पन्न शरीर अथवा जल में रूपायित फेन-बुदबुदा-लहर-हिलोरादि की तरह शरीराभास, जो जल का ही रूपान्तरित रूप है। अत: भिन्नत्व का आभास मात्र। दृग पुतरी=नेत्राकार में पुतली आधार-आधेय भाव से प्रयोजनीय। सेवक-सेव्य भाव की यह 'पराभक्ति' भी अंशांशि अथवा आधार-आधेय भाव से प्रयोजनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप्पय : श्रवन बिना धुनि सुनय नैन बिन रूप निहारय।
रसन बिना उच्चरय प्रशंसा बहु विस्तारय।।
नृत्य चरन बिनु करय हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग बहुत आनन्द बढ़ावै।।
बिन सीस नवै तहँ सेब्य कौ सेवक भाव लियें रहै।
मिलि परमातम सौं आतमा पराभक्ति सुन्दर कहै।।50।।

चंदाणा [**सृग्विणी**] :

सेव्य कौ जाइ कै दास ऐसें मिलै। येक सौ कोइ पै येक ह्वै ना मिलै।
आपनौं भाव दासत्व छाड़ै नहीं। सा पराभक्ति है भाग्य पावै कहीं।।51।।

हरसंषाणा : मिलै येक संगा। नहीं भिन्न अंगा।
करै यौं विलासा। धरै भाव दासा।। 52।।

---

50. श्रवन बिना धुनि सुनय=कान के बिना ध्वनि सुनता है। ऐसे कथन में इन्द्रिय 'करण' की मूल शक्ति व्यंजित रहती है, जिसमें इन्द्रिय के बिना ही कर्म का सम्पादन प्रतिपादित होता है। 'लिंग शरीर' के अनुभव में 'स्थूल शरीर' की अपेक्षा नहीं रहती। ध्वनि के क्षेत्र में 'अनहद नाद' का सुनना वैसी ही दशा है। इसीप्रकार 'नैन बिन रूप निहारना', 'जिह्वा बिन वाणी उच्चारण', 'पग बिन नृत्य', 'कर बिन ताली बजाना', 'अंग के बिना भी संग [-सहवास] का अनुभव', 'बिना शीश के नमन' आदि सूक्ष्म या मानसी भाव-धारणाएँ हैं, जो पराभक्ति के अन्तर्गत आती हैं। आत्म-परमात्म तदाकारिता ही 'पराभक्ति' का लक्ष्य है।

51. **चंदाणा :** चन्दाणा-चन्द्रायण नामक छन्द विशेष। इसका नाम 'स्रग्विणी' भी है, जो 'चन्द्रायण' [21 मात्रा] तथा तोटक [-त्रोटक] : चार सगण [।।ऽ] से भिन्न है। चन्दाणा के प्रत्येक चरण में चार रगण [ऽ।ऽ] के योग से 12 वर्ण होते हैं। एक ह्वै न मिलै=पराभक्ति के अनुयायी साधक को परमात्मा के सायुज्य भाव का अनुभव बने रहने पर भी, आराध्य [-सेव्य] के परम भाव का अनुभव, एकानुभव होते हुए भी, एक नहीं होने देता। यहाँ ज्ञान की चरम स्थिति की व्यंजना है। क्योंकि, आराधक एक शरीरधारी भी है, जो दासत्व भाव से अनुप्राणित है। भाग्य पावै=भाग्य से प्राप्त कर पाता है।

52. **हरसंषाणा :** छन्द विशेष। इसके अन्य नाम 'अर्द्धभुजंगी' तथा 'सोमराजी' भी हैं। इसकी संरचना में मात्र 2 यगण [।ऽऽ] रहते हैं। अतः 6 वर्णों के छन्द को 'हरसंषाणा' कहा गया है। भिन्न अंगा=भिन्न अंग वाला, भिन्नत्व वाला। विलासा=भाव विलास, भावों में रमना। दासा भाव=दास्य भाव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपई : ज्यौं मृगतृष्णां धूप मंझारी । येकमेक अरु दीसत न्यारी ।
त्यौं ही स्वामी सेवक येका । सुख बिलसैं यह भिन्न बिबेका ।।53।।

त्रोटक : हरि मै हरिदास बिलास करै । हरि सौं कबहू न बिछोह परै ।
हरि अक्षय त्यौं हरिदास सदा । रस पीवन कौं यह भाव जुदा ।।54।।

मनहर :

तेजोमय स्वामी तहँ सेवक हू तेजोमय,
तेजोमय चरन कौ तेज सिर नांवई।
तेजोमय सब अंग तेजोयम मुखारबिंद,
तेजोमय नैंननि निरषि तेज भावई ।।
तेजोमय ब्रह्म की प्रशंसा करै तेज मुख,
तेज ही की रसना गुनानुबाद गावई।
तेजोमय सुन्दर हू भाव पुनि तेजोमय,
तेजोमय भक्ति कौं तेजोमय पावई ।।55।।

दोहा : त्रिविधि भक्ति लक्षण कहे, उत्तम मध्य कनिष्ठ ।
सुनहि शिष्य सिद्धांत यह, उत्तम भक्ति गरिष्ठ ।।56।।

इति श्री सुन्दरदासेन विरच्चिते ज्ञानसमुद्रे उत्तमा-मध्यमा-कनिष्ठा भक्तियोग सिद्धान्त निरूपण नाम द्वितीयोल्लासः ।।2।।

---

53. मृग तृष्णां=मृग जल, मरुभूमि में जल का आभास । मंझारी=मध्य । येकमेक=एक ही । दीसत न्यारी=भिन्न दिखाई देता है । येका=एक । बिबेका=विवेक दशा में ।

54. **त्रोटक** : छन्द विशेष । इस छन्द की संरचना चार सगण [।SS] के योग से 12 वर्णों के एक चरण के रूप में होती है । हरिदास=परमात्मा का भक्त । बिलास करै=भावन करता है । बिछोह=विच्छेद, भिन्नत्व । अक्षय=नित्य, अच्युत, अविनाशी । सदा=निरंतर । रस पीवन कौं भाव जुदा=रसास्वादन-भावन भर केलिए भिन्नत्व का भाव है ।

55. तेजोमय=तेजस्विता से परिपूर्ण । नांवई=धारण करता है । मुखारबिंद=अरविन्द [-कमल] रूप मुख । निरषि=देखकर । गुनानुबाद=गुणानुवाद, गुण-गान । पावई=प्राप्त करता है ।

56. त्रिविधि भक्ति=तीन प्रकार की भक्ति-कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम । लक्षण=स्वरूप-सिद्धान्त । उत्तम भक्ति गरिष्ठ=उत्तम भक्ति गुरुतम है । अतिशय गुरु होने के कारण ही यह 'गरिष्ठ' बताई गई है । 'नवधा भक्ति' को 'कनिष्ठ' या 'लघु' की तुलना में इसे 'गुरु' कहा गया है । 'प्रेम लक्षणाभक्ति' को 'मध्यम' या 'गरीयान' वताया है तथा 'पराभक्ति' को 'गरिष्ठ' या 'गुरुतम' रूप में प्रतिपादित किया है । यही निर्गुण मार्गी सन्त-साधना के अनुरूप है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अथ तृतीयोल्लास ।।

प्रवेशार्थ : तृतीय उल्लास में अष्टांग योग और उसकी संक्षिप्त विधि अर्थात् संक्षेप में सिद्धान्त प्रतिपादन हुआ है। 'हठयोग' सम्बन्धी प्रतिपाद्य में हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, गोरक्षा सिद्धान्त संग्रह आदि योग विषयक शास्त्र ग्रन्थों के साथ ही, रचनाकार का स्वानुभव भी सम्पादित हुआ है। इसमें राजयोग की विशेषताएँ सरल भाषा में प्रस्तुत कर पाना सुन्दरदास जी की मेधा का ही कार्य है। अपने स्वानुभव के बिना यहाँ निर्विकल्प समाधिगत आनन्दभाव और ब्रह्मानन्द दशा का वर्णन सम्भव नहीं था। इस उल्लास के मर्म को समझने केलिए अन्य लघु ग्रन्थ 'सर्वांग योग प्रदीपिका' भी पठनीय है।

शिष्य उवाच :

चौपाई : हे प्रभु नवधा कही कनिष्टा। प्रेमलक्षणा मध्य सपष्टा।।
परा भक्ति उत्तमा बषांनी। ये तीनौं मैं नीकैं जानी ।।1।।
अब प्रभु योग सिद्धान्त सुनावहु। ताके अंग मोहि समझावहु।।
तुम सर्वज्ञ जगत गुरु स्वांमी। कहहु कृपा करि अंतर्यामी ।।2।।

श्री गुरुरुवाच :

दोहा : तैं शिष पूछ्यौ चाहि करि, योग सिद्धांत प्रसंग।
तोहि सुनाऊँ हेत सौं, अष्ट योग के अंग ।।3।।

चूर्णिका : 1. नवधा=नवधा भक्ति। मध्य=मध्यम। सपष्ठा=स्पष्ट। 'कनिष्टा' प्रयोग के अन्त्यानुप्रास की तुलना में 'सपष्टा' साधु प्रयोग न नहीं है। नीकै= भलीप्रकार।

2. योग सिद्धान्त=योग के यम-नियमादि सिद्धान्त और उनका प्रतिपाद्य। अंग= भेदोपभेद। अंतर्यामी=हृदय की जानने वाले।

3. चाहि करि=रुचिपूर्वक, जिज्ञासापूर्वक। प्रसंग=सन्दर्भ। हेत=स्नेह पूर्वक। अष्ट योग के अंग=योग के अष्टांग। **टिप्पणी :** 'हठ योग प्रदीपिका' ['हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते'] एवं 'गोरक्ष पद्धति' ['योगांगानि वदंति षट्'] में योग के छः अंग ही प्रतिपादित हैं। 'हठयोग प्रदीपिका' के उपदेश 1 के प्रारंभिक ढाई श्लोक, जिनमें यम-नियमों का उल्लेख है, उन्हें प्रक्षिप्त माना गया है। सुन्दरदास जी ने यद्यपि इस उल्लास के ही छन्द 8 में यम-नियमादि को 'हठयोग प्रदीपिका' में प्रतिपादित बताया है। पर लगता है कि परम्परा में 'अष्टांग योग' प्रसिद्ध रहा है, इसलिए भी आपने 'हठयोग' में आठ अंग बताए हैं। वैसे भी 'पातंजल योग सूत्र' के साधन पाद के सूत्र 29 में यम-नियम सहित योग के अष्टांग उल्लिखित हैं। देखिए--

'यमनियमासन प्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिन के अन्तर्भूत हैं, मुद्राबन्ध समस्त।
नाड़ी चक्र प्रभाव सब, आबहि तेरें हस्त ।।4।।

छप्पय : प्रथम अङ्ग यम कहौं दूसरौ नियम बताऊँ।
त्रितिय सु आसन भेद सुतौ सब तोहि सुनाऊँ ।।
चतुर्थ प्राणायाम पंचमं प्रत्याहारं।
षष्ट सु सुनि धारणा ध्यान सप्तम विस्तारं ।।
पुनि अष्टम अङ्ग समाधि है भिन्न भिन्न समुझाइ हौं।
अब सावधान ह्वै शिष्य सुनि ते सब तोहि बताइ हौं ।।5।।

दोहा : दश प्रकार के यम कहौं, दश प्रकार के नेम।
उभय अङ्ग पहिलैं सधहिं, तब पीछे ह्वै क्षेम ।।6।।
प्रथम नींव दृढ़ कीजिये, तब ऊपरि बिस्तार।
महलाइत जुडिगै नहीं, त्यौं यम नियम विचार ।।7।।

---

4. अन्तर्भूत=अन्तर्गत, निहित । मुद्राबन्ध=मुद्रा और बन्ध। नाड़ी=चक्र शरीरान्तर्गत नाड़ियाँ और चक्र। आवहि तेरें हस्त=तेरें हाथ में आ जाएगा, हस्तगत होगा अर्थात् हस्तामलकवत् इन योग-विषयों पर अधिकार हो सकेगा।

5. अष्ट अंग=योग के ये अष्ट अंग क्रमशः इसप्रकार हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ते सब तोहि बताइहौं=वे सभी तुझे बताऊँगा। किन्तु यहाँ 'आसन' के सभी भेद न बताकर सुन्दरदास जी ने केवल दो ही भेद बताए हैं। यहाँ **'सब'** विशेषण का अभिप्राय संख्या मात्र से है।

6. **टिप्पणी** : योग ही नहीं किसी भी साधना-मार्ग पर अग्रसर होने केलिए यम-नियमों का परिपालन आवश्यक है। इसीलिए रचनाकार ने, 'हठयोग प्रदीपिका' में न होते हुए भी साधारण मनुष्य या साधक जन के हित केलिए इनका भी विवेचन किया है। ये आधारभूत योगांग, योग और भोग के क्षेत्रों को निर्धारित करते हैं। यम-नियम योग-साधना की नींव ही हैं। इनके बिना योग-सिद्धि अथवा साधना-मार्ग का प्रासाद ढह सकता है। उभय=दोनों। सधहिं=साधे जाएँ। पीछे=परिणाम स्वरूप। क्षेम=कुशल, कल्याण।

7. नींव=आधार। महलाइत=भवन-महल [-साधना-सिद्धि का], रचना, निर्माण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ यमा :

छप्पय : प्रथम अहिंसा सत्य हि जानि स्तेय सु त्यागै ।
ब्रह्मचर्य दृढ ग्रहै क्षमा धृति सौं अनुरागै ।।
दया बडौ गुन होइ आर्ज्जव हृदय सु आनै ।
मिताहार पुनि करै शौच नीकी बिधि जानै ।।
ये दश प्रकार के यम कहे हठ प्रदीपिका ग्रन्थ महिं ।
सो पहिलै ही इनकौं ग्रहै चलत योग के पन्थ महिं ।।8।।

अहिंसा को लक्षण :

दोहा : मन करि दोष न कीजिये, बचन न लावै कर्म ।
घात न करिये देह सौं, इहै अहिंसा धर्म ।।9।।

सत्य को लक्षण :

सोरठा : सत्य सु दोइ प्रकार, येक सत्य जो बोलिये ।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ।।10।।

---

8. **टिप्पणी :** दस यम और दस नियम 'हठयोग प्रदीपिका' [-प्रक्षिप्त श्लोक] में इस प्रकार दिये हुए हैं—

'अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य क्षमा धृतिः ।
दयार्ज्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ।।1।।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम् ।
सिद्धान्त वाक्य श्रवणं ह्रीमती च तपोहुतम् ।।2।।
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्र विशारदैः ।।'

उल्लेखनीय बात यह है कि 'हठयोग प्रदीपिका' में यम-नियम के लक्षण नहीं दिए गए । लगता है कि सुन्दरदास ने स्वाध्याय एवं तत्सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों— पातंजल योग सूत्र[-साधन पाद 2/सू० 29-44 तक], याज्ञवल्क्य स्मृति[-3/313-14 तक], मनुस्मृति [-2/77), अत्रि स्मृति [-सू० 49] आदि से लेकर उन्हें स्व मेधा-सूत्र में पिरोकर यहाँ प्रस्तुत किया है ।

9. दोष=हानि-घात की भावना । घात=हिंसा, बध, अनायास झपट पड़ना । अहिंसा धर्म=अहिंसा-भाव-वृत्ति बोध । 'अहिंसा' की परिभाषा को, संस्कृत भाषा की सूत्रात्मकता और सूक्ष्मता के अनुरूप ही, हिन्दी-भाषा के लाघव में, बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया गया है । इसीप्रकार अन्य यम-प्रकारों को भी भाषा में सूत्रबद्ध किया गया है ।

10. कथन में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का स्पष्ट भाव-रूपान्तरण है । 'सत्य' के दो प्रकार— एक वाचिक [वाणी-] सत्य और दूसरा ब्रह्म-सत्तात्मक सत्य । यहाँ विलक्षण यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तेय को लक्षण :

चौपई : सुनिये शिष्य अवहि अस्तेयं। चौरी द्वै प्रकार की हेयं।
तनु की चौरी सबहि बषांनैं। मन की चौरी मन ही जांनैं ।।11।।

ब्रह्मचर्य को लक्षण :

पर्वंगम : ब्रह्मचर्य इहिं भांति भली बिधि पालिये।
काम सु अष्ट प्रकार सही करि टालिये।।
बांधि काछ दृढ़ वीर जती नहिं होइरे।
और बात अब नांहिं जितेन्द्रिय कोइरे ।।12।।

अष्ट प्रकार के मैथुन को लक्षण :

दोहा : नारी समरन श्रवन पुनि दृष्टि भाषिणं होइ।
गुह्य वारता हास्य रति, बहुरि स्पर्शय कोइ ।।13।।

कि कवि ने 'सत्य' में 'ब्रह्म' की भी गणना की है। जबकि ब्रह्म में सत्य समाहित रहता है। 'ब्रह्म सत्य' के समक्ष, सापेक्षरूप में जगत् मिथ्या है। **टिप्पणी :** मिथ्यात्व' का अर्थ 'असत्' नहीं है। मिथ्यात्व को सत्, असत्, उभय एवं नोभय इन चार कोटियों से परे की स्थिति माना गया है ['चतुष्कोटि विनिर्मुक्तं मिथ्यात्वम्']। मिथ्या और असत्य भिन्न-भिन्न हैं। जगत् प्रतीति के कारण ही मिथ्या है, किन्तु असत् नहीं। यदि जगत् की प्रतीति भी न होती, तो यह असत् होता। जैसे आकाश पुष्प। प्रतीत होता है, इसलिए असत् नहीं। किन्तु, स्थिर नहीं रहता, इसलिए अबाधित सत् नहीं है। उभय या नोभय भी यह नहीं हो सकता। इसलिए यह मिथ्या है। मिथ्या के ज्ञान से सत् का ज्ञान होता है।

11. अस्तेयं=स्तेन [-चोरी] का विलोम चोरी न करना, अचौर्य। मन की चोरी= कपट, छल-छिद्र, दम्भ-मिथ्या भावपूर्वक मन-वाणी का व्यवहार। तनु की चौरी= कर्म-व्यवहार की चोरी।

12. पालिये=पालन कीजिए। काम=वासना, मैथुन। टालिये=निवारण कीजिए। काछ=कोपीन, लंगोट। जती=यती, संयमी। जितेन्द्रिय=इन्द्रिय जयी, इन्द्रिय संयमी।

13. अष्ट मैथुन=आठ प्रकार के मैथुन गिनाए हैं—कामिनी स्त्री का स्मरण, उसकी वार्ता-श्रवण, दर्शन, उससे वार्तालाप, गुह्य-गुप्त वार्ता, उसके साथ हँसना [-मजाक करना], रति [-आसक्ति] प्रसंग, तत्पुनः उसका स्पर्श। 'दक्ष स्मृति' [अध्या० 7/31-32] में ये 'अष्ट मैथुन' गिनाए गए हैं। देखिए—

'श्रवणं स्मरणं चैव दर्शनं भाषणं तथा।
गुह्य वार्ता च हास्य च स्पर्शनं चाष्ट मैथुनम् ।।'

ब्रह्मचर्य पालन केलिए ये आठ मैथुन वर्जित बताए हैं। इसके लिए अन्य प्रकार के उपाय [-इन्द्री छेदन, लोहे-पीतल की कोपीन धारण करना, नपुंसकत्व की औषधि आदि] गर्हित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : शिष्य सुनिहिं यह भेद, मैथुन अष्ट प्रकार तजि।
कहैं मुनीश्वर बेद, ब्रह्मचर्य तब जांनिये ॥14॥

क्षमा को लक्षण :

मालती : क्षमा अब सुनहिं शिष मो सौं, सहनता कहौं सब तोसौं।
दुष्ट दुख देहिं जो भारी, दुसह मुख वचन पुनि गारी ॥15॥
कदे नहिं क्षोभ कौं पावै, उदधि महिं अग्नि बुझि जावै।
बहुरि तन त्रास दे कोऊ, क्षमा करि सहै पुनि सोऊ ॥16॥

धृति को लक्षण :

इंदव : धीरज धारि रहै अभिअन्तर जो दुख देहहि आइ परै जू।
बैठत ऊठत बौलत चालत धीरज सौं धरि पाव धरै जू॥
जागत सोवत जीमत पीवत धीरज ही धरि योग करै जू।
देव दयन्तहिं भूतहि प्रेतहि कालहु सौं कबहूँ न डरै जू ॥17॥

दया को लक्षण :

त्रोटक : सब जीवनि के हित की जु कहै। मन बाचक काय दयालु रहै।
सुख दायक हू सम भाव लियें। शिष जानि दया निरबैर हियें ॥18॥

---

14. कहैं मुनीश्वर बेद=लोक परम्परा और शास्त्र परम्परा द्वारा प्रतिपादित विचार।

15-16. **मालती :** छन्द विशेष। इसके प्रत्येक चरण में 14 मात्राएँ होती हैं। इसका अन्य नाम 'सखी' भी है जो विजात भेद का होता है। (दे—०छन्द प्रभाकर)। सहनता=सहनशीलता, सहिष्णुता। दुसह=असह्य, दुःसह। गारी=अपमानजनक कटु शब्द। कदे=कभी। क्षोभ=क्रोध, मानसिक क्लेश, पीड़ा। उदधि महिं अग्नि बुझि जावै=जिसप्रकार सागर की जल-अगाधता में आग बुझ जाती है, वैसे ही साधक की उदारता, सदाशयता अथवा सहनशीलता के दायरे में पहुँचकर दुष्ट के कठोर शब्द भी ठण्डे पड़ जाते हैं। त्रास=भय, दुःख।

17. धीरज=धैर्य। अभिअन्तर=अन्तःकरण में। देहहि=शरीर को। जीमत पीवत=खाते-पीते हुए भी। योग=साधना, संयम। देव=देवता। दयन्त=दैत्य। धृति धारण करना संयमी और वीर पुरुष का गुण है। इसीलिए धीरवान् पुरुष को काल से भी न डरने की बात कही गई है। 'धृति' का लक्षण बताते हुए गीता में कहा है—

'धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रिय क्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥'—18/33

18. जीवनि=प्राणधारी, जीव। दयालु=दया भावना से ओतप्रोत। इस छन्द से स्पष्ट है कि 'दया' का मूल हृदय में होता है। मन से ही दया-भावना वाणी और कर्म में विकास-प्रकाश पाती है। हियें=हृदय की निर्वैरता ही दया का लक्षण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ज्जव को लक्षण :

चौपइया : यह कोमल हृदय रहै निश बासर बोलै कोमल बांनी ।
पुनि कोमल दृष्टि निहारै सबकौं कोमलता सुख दांनी ।।
ज्यौं कोमल भूमि करै नीकी बिधि बीज वृद्धि ह्वै आवै ।
त्यौं इहै आर्ज्जव लक्षण सुनि शिष योग सिद्धि कौं पावै ।।19।।

मिताहार को लक्षण :

पद्धड़ी : जो सात्विक अन्नसु करै भक्ष । अति मधुर सचिक्कण निरषि अक्ष ।
तजि भाग चतुर्थय ग्रहै सार । सुनि शिष्य कह्यौ यह मिताहार ।।20।।

शौच को लक्षण :

चर्पट : बाह्याभ्यंतर मज्जन करिये । मृत्तिका जल करि वपु मल हरिये ।।
रागादिक त्यागें हृदि शुद्धं । शौच उभय विधि जानि प्रबुद्धं ।।21।।

दोहा : दश प्रकार ये यम कहे, प्रथम योग कौ अंग ।
दश प्रकार अब नियम सुनि, भिन्नहि भिन्न प्रसंग ।।22।।

---

19. आर्ज्जव=आर्जव, ऋजुता, सरलता, सीधापन, कुटिलता का अभाव । निश बासर=निशि-वासर, रात-दिन, लगातार । बीज वृद्धि ह्वै आवै=अंकुर रूप में बीज-वृद्धि होती है । आर्जवत्व का गीता में भी समर्थन है—

 'अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
 आचार्योपासनं शौचं, स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।'—13/7

 और भी देखिए—गीता 16/1, 17/14, 18/42

20. मिताहार=शुद्ध-हल्का, उत्तम और अल्प भोजन । मिताहार एवं ऋतुचर्या के सम्बन्ध में 'घेरण्ड संहिता' [-5/8-31] में उल्लेख है । गीता में सात्त्विक आहार [-17/8] तथा युक्ताहार [-6/17] पर विशेष बल दिया गया है ।
21. बाह्याभ्यंतर=बाहर-भीतर । मज्जन=शुद्धि । वपु=शरीर । हृदि=हृदय । शौच=पवित्रता । प्रबुद्ध=बुद्धिमान । **चर्पट** : छन्द विशेष । (दे०—तृ० उ० का 61वाँ छन्द) ।
22. प्रथम योग कौ अंग='यम' योग अथवा अष्टांग योग का प्रथम अंग है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ नियम :

छप्पय : तप संतोष हि ग्रहै बुद्धि आस्त्यक्य सु आनय।
दांन संमुझि करि देइ मानसी पूजा ठानय॥
बचन सिद्धान्त सु सुनय लाज मति दृढ करि राषय।
जाप करय मुख मौंन तहां लग बचन न भाषय॥
पुनि होम करै इंहि बिधि तहां जैसी बिधि सद्गुरु कहै।
ये दश प्रकार के नियम हैं भाग्य बिना कैसें लहै॥23॥

तप को लक्षण :

पायक्का : शब्द स्पर्शं रूपं त्यजणं। त्यौं रस गंधं नांही भजणं।
इन्द्रिय स्वादं अैसैं हरणं। सो तप जानहुं नित्यं मरणं॥24॥

सन्तोष को लक्षण :

हंसाल : देह कौ प्रारबध [आइ आपै रहै, कल्पना छाड़ि निश्चिन्त होई।
पुनि यथा लाभ कौं बेद मुनि कहत हैं, परम संतोष शिव जांनि सोई
॥25॥

आस्त्यक्य को लक्षण :

सवइया : शास्त्र वेद पुरान कहत हैं शब्द ब्रह्म कौं निश्चय धारि।
पुनि गुरु सन्त सुनावत सोई बार बार शिष ताहि बिचारि॥
होइ कि नहीं शोच मति आंनहिं अप्रतीति हृदये तें टारि।
करि बिस्वास प्रतीति आंनि उर यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि
॥26॥

---

23. दश नियम = तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, पूजा, श्रवण, लज्जा, मति, जप और यज्ञ। 'हठयोग प्रदीपिका' में ये दश नियम उल्लिखित हैं—

'तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धांत वाक्य श्रवणं ह्री मती च तपोहुतम्॥'

ग्रहै = ग्रहण करै। आस्त्यक्य = आस्तिकता, आस्तिक्य भाव। मति = बुद्धि। होम = यज्ञ।

24. **पायक्का** : छन्द विशेष। त्यजणं = त्यागना। हरणं = दूर करे। नित्यं मरणं = नित्य 'आपा' को मारना।

25. **हंसाल** : छन्द विशेष। [दे०—द्वि० उल्लास, छन्द 32]। प्रारबध = प्रारब्ध, संचित, पूर्वकृत कर्म, भाग्य। यथा लाभ = जैसा भी लाभ। बेद मुनि = वेद-शास्त्र और मुनि परम्परा, वेद एवं लोक परम्पराएँ।

26. ताहि = उसको। होइ कि नहीं = होगा कि नहीं। शोच = चिन्ता। अप्रतीति = अविश्वास, संशय। टारि = दूर कर। आस्तिक्य बुद्धि = आस्तिक भावना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दांन को लक्षण :

कुण्डलिया : दांन कहत हैं उभय विधि सुनि शिष करहिं प्रवेश ।
येक दांन कर दीजिये येक दांन उपदेश ।।
येक दांन उपदेश सु तौ परमारथ होई ।
दूसर जल अरु अन्न बसन करि पोषै कोई ।।
पात्र कुपात्र विशेष भली भू निपजय धांनं ।
सुन्दर देषि बिचारि उभय बिधि कहिये दांनं ।।27।।

पूजा को लक्षण :

त्रिभंगी : तौ स्वांमी संगा देव अभंगा निर्मल अंगा सेवै जू ।
करि भाव अनूपं पाती पुष्पं गन्धं धूपं षेवै जू ।।
नहिं कोई आशा काटै पाशा इहिं बिधि दासा निःकामं ।
शिष अैसें जांनय निश्चय आनय पूजा ठानय दिन जामं ।।28।।

---

27. कर दीजिये=हाथ से देने वाला दान । उपदेश=ज्ञान-दान, ज्ञानोपदेश । **टिप्पणी :** हाथ से दिया हुआ अन्नादि दान, शरीर का पोषक होता है और उपदेश रूप में ज्ञान-दान आत्मा की पुष्टि करता है। परमारथ=परमार्थ, कल्याण । बसन= वस्त्र । पोषै=पोषण करता है । भली भू निपजय धांनं=जैसी भूमि होगी, वैसा ही बीज अंकुरित होगा । इस उदाहरण से पात्र की योग्यता अथवा योग्य पात्र को दान देने का मन्तव्य व्यंजित हो रहा है । देषि बिचारि=देखकर और विचार कर; वाह्य दान देखकर और आन्तरिक दान विचार कर ।

28. **त्रिभंगी :** छन्द विशेष । जिस छन्द के प्रत्येक चरण में 10, 8, 8, 6 और अन्त में गुरु के योग से 32 मात्राएँ हों, उसे त्रिभंगी छन्द कहते हैं। 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ में एकमात्र यही त्रिभंगी छन्द प्रयुक्त हुआ है । देव अभंगा=अखण्डित देव, पूर्ण ब्रह्म, परमात्मा । सेवै जू=सेवा निरत हो । 'जू' [जी] यहाँ सम्मान भाव का सूचक है । अनूपं=अनुपम । गन्धं धूपं=गन्ध-धूपादि । आशा=आसक्ति, कामना । पाशा=पाश, बन्धन । निःकामं=निष्काम भाव वाला । पूजा ठानय=पूजा भाव में निरत । दिन जामं=दिवस-याम, दिन-रात । **टिप्पणी :** इस छन्द में निराकार उपासना भाव-विधि को लक्षणबद्ध करने का प्रयत्न है। निराकार उपासना में, साकार सामग्री को प्रतीक रूप में ग्रहण करना मन को केन्द्रित करने केलिए विहित बताया है । यहाँ सगुणता भावात्मक सूक्ष्मता वाली है । अनेक स्थलों पर निराकार की साकार पूजा का विधान भी मिलता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त श्रवण को लक्षण :

कुण्डलिया : बांनी बहुत प्रकार है ताकौ नांहिं न अन्त ।
जोई अपने कांम की सोई सुनिय सिद्धन्त ।।
सोई सुनिय सिद्धन्त सन्त सब भाषत वोई ।
चित्त आंनिकै ठौर सुनिय नित प्रति जे कोई ।।
यथा हंस पय पिवै रहै ज्यौं कौ त्यौं पांनी ।
अैसैं लेहु विचारि शिष्य बहु विधि है बांनी ।।29।।

ह्री को लक्षण :

चामर : लज्जा करै गुरु संतजन की तौ सरै सब काज ।
तन मन डुलावै नाहिं अपनौ करै लोकहु लाज ।।
लज्जा करै कुल कुटंब की लच्छण लगावै नाहिं ।
इहिं लाज तें सब काज होई लाज गहि मन माहिं ।।30।।

---

29. बांनी=वाणी, गुरु का अनुभव ज्ञान, शास्त्र वचन । इसमें उपदेशक एवं श्रोता दोनों का बहुश्रुत होना व्यंजित है । यहाँ 'हंस' की नीर-क्षीर विवेक वृत्ति को प्रधानता दी है । क्योंकि, वाणी तो असीम और अनन्त है । उसमें से अपने उपयोग की सार वाणी को ग्रहण करना होता है । सिद्धन्त=सिद्धान्त, निर्णायक वाणी-विचार । वोई=वही । ठौर आंनिकै=स्थित करके । नित प्रति=नित्य प्रति, निरन्तर । पय पिवै=पय पान करता है, (नीर में से) क्षीर ग्रहण करता है । **टिप्पणी :** हंस का 'नीर-क्षीर विवेक' काव्यरूढ़ि है । वास्तविकता यह है कि कमल नाल के टूटने पर, उसके अन्दर से निकलने वाले **'पय'** [पानी-जल] दूध को, हंस की झिल्लीदार चोंच, सरोवर के जल से अलग करके, ग्रहण कर लेती है । यहाँ जल में मिले दूध से अभिप्राय नहीं है । जिज्ञासु केलिए बहुविधि वाणी से सारतत्व को, हंस-वृत्ति से अपनाने की प्रेरणा है ।

30. ह्री=लज्जा, शील । लज्जा करै=शील-संकोच का अनुभव करे, गुरु-मर्यादा में रहे । सरै सब काज=सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो । डुलावै=अस्थिर करे, संशय दशा में पड़े । लोकहु लाज=लोक-लाज का ध्यान रखे । कुल=वंश-मर्यादा । कुटंब=परिवार, वंश-रीति । लच्छण लगावै नाहिं=लच्छण <लक्षण (-दोष) न लगने दे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मति को लक्षण :

सवइया : नाना सुख संसार जनित जे तिनहिं देखि लोलप नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ ।।
पूजा मान बडाई आदर निंदा करै आइ कैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी सुन्दर दृढ़ मति कहिये सोइ ।।31।।

जाप को लक्षण :

पवंगम : जाप नित्य व्रत धारि करै मुख मौन सौं।
येक दोइ घटिका जु ग्रहै मन पौंन सौं ।।
ज्यौं अधिक्य कछु होइ बडौ अति भाग है।
शिष्य तोहि कहि दीन्ह भलौ यह माग है ।।32।।

होम को लक्षण :

चामर : अब होम उभय प्रकार सुनि शिष कहौं तोहि बषांनि।
इक अग्नि महिं साकल्लि होमै सो प्रवृत्ती जांनि ।।
जो निवृत्ती यज्ञास होई ताहि और न धोम।
सो ज्ञान अग्नि प्रजालि नीकैं करै इंद्रिय होम ।।33।।

---

31. मति=बुद्धि, विवेकशील बुद्धि। नाना सुख=अनेक प्रकार के लौकिक सुख। लोलप नहिं होइ=लोलुप वृत्ति वाला न बने, लालायित न हो, आसक्ति या सकामता से प्रेरित न हो। स्वर्गादिक की=स्वर्गादि सुखों की कल्पित कामना। इहामुत्र [सं०]=इह—इस लोक में, अमुत्र—परलोक में। अर्थात् उभय लोक-सम्बन्धों में निश्चल-निर्मल बुद्धि की प्रेरणा प्राप्त करें। गीता का प्रमाण [-2/53-68] है कि—

'श्रुति विप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।'—2/53

आदर-निंदा=यश अपयश। या प्रकार मति=इस प्रकार की बुद्धि।

32. जाप=जप, प्रभु-स्मरण। धारि=धारण करके। घटिका=घड़ी, क्षण भर। पौंन सौं=पवन से, प्राणायाम से। अति भाग=अतिशय भाग्य। माग=मार्ग, साधना-पथ।

33. होम=हवन, यज्ञ। हवन दो प्रकार के बताए गए हैं, 1. साकल्य या सामग्री यज्ञ, 2. ज्ञान यज्ञ। 'ज्ञान यज्ञ' का प्रतिपादन 'वेदत्रयी' एवं 'बृहत् त्रयी' का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। गीता में ज्ञान यज्ञ का उल्लेख है—

'ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणं तमाहुः पंण्डितं बुधाः।'—4/19
'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।'—4/37

साकल्लि=साकल्य, सामग्री। प्रवृत्ती सो=वह प्रवृत्तिमूलक [यज्ञ-] है। निवृत्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : दश प्रकार कै यम कहे, दश प्रकार ये नेम ।
योग ग्रन्थ मांहें लिषे, मैं समुझाये तेम ।।34।।

सोरठा : शिष्य सुनाये तोहि, उभय अङ्ग ये योग के ।
सावधान अति होइ, अबहिं षडंग बषांनि हौं ।।35।।

चौपई : प्रथम कहौं शिष आसन भेदा । जातें रोग मिटहिं बहु षेदा ।
ऋषि मुनि योगी ब्रह्माराधे । तिन सब पहली आसन साधे ।।36।।

त्रोटक : शिव जानत है सब योग कला । नित संग शिवा पुनि है अचला ।
दृढ़ आसन तें नहिं बिंद षिसै । दृग देखत दम्पति लोक हँसै ।।37।।

कुण्डलिया : चतुराशी लष जीव की जाति कहतु है वेद ।
तितने ही आसन सबै जांनत है शिव भेद ।।
जांनत है शिव भेद और जानय नहिं कोई ।
आपु दया तिन करी सुगम करि दीन्हे सोई ।
लक्ष लक्ष महिं एक एक काढे दुख नाशी ।
सुलभ सबनि कौं किये प्रगट आसन चतुराशी ।।38।।

यज्ञास=निवृत्ति मूलक यज्ञ । और न धोम=और प्रकार के यज्ञ करने की अपेक्षा-आवश्यकता नहीं । ज्ञान अग्नि=ज्ञानाग्नि, विचाराग्नि । प्रजालि नीकें=भली प्रकार प्रज्वलित करके । इन्द्रिय होम=इन्द्रिय यज्ञ अर्थात् ज्ञानाग्नि में इन्द्रियों के बाह्य प्रसरण को दग्ध करके आत्मनिष्ठ करना ।

34. तेम [गुज०]=वे, वही, वे सब ।

35. उभय अङ्ग योग के=योग प्रतिपादित ये यम-नियम रूप दो अंग, दो विभाग [-अनुभाग] । षडंग=षट् अंग, योग के अन्य छः विभाग ।

36. आसन भेदा=आसन के भेदोपभेद । षेदा=खेद, क्लेश । आराधे=साधा है, आराधन किया है । तिन सब पहली आसन साधे=जिन-जिन ऋषि-मुनि-योगी आदि ने ब्रह्माराधन [-ब्रह्म योग] किया है, उन्होंने प्रथमतः आसन-सिद्धि की है ।

37. योग कला=योग विधान । शिवा=पार्वती । अचला=अचल, स्थिर, दृढ़ निश्चयी । नहिं बिंद षिसै=वीर्य पतित-स्खलित नहीं होता । दम्पति=पति-पत्नी । **टिप्पणी** : इस छन्द में 'लोक हँसै' की व्यंजना यह है कि पत्नी को साथ रखकर महादेव ने तो योग-सिद्धि करके वीर्य स्खलित नहीं होने दिया । परन्तु ब्रह्मचारी सुन्दरदास कहते हैं कि लोक में कोई योगी ऐसा न करे । अन्यथा लोक हँसाई होगी ।

38. चतुराशी आसन=चौरासी आसन । हठयोग में चौरासी आसनों का विधान है । वैसे तो जितनी योनियाँ [-चौरासी लाख] हैं, उतने ही आसन सम्भव हैं । उन सबका भेद और मर्म महायोगी शिव ही जानते हैं; ऐसा योगशास्त्र का प्रतिपादन है । परन्तु, प्रस्तुत ग्रन्थ में सुन्दरदास जी ने, विस्तार भय के कारण, केवल सिद्धासन और पद्मासन का ही उल्लेख किया है और उन्हीं को सारभूत आसन बताया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : चतुराशी आसननि में, सारभूत द्वै जांनि ।
सिद्धासन पद्मासनहिं, नीकैं कहौं बषांनि ।।39।।

अथ सिद्धासन :

मनहर : येडी बाम पाँव की लगावै सींवनि कै बीचि,
वाही जोनि ठौर ताहि नीकैं करि जांनिये ।
तैसैं ही युगति करि बिधि सौं भलैं प्रकार,
मेढ़ू हू कै ऊपर दक्षन पाँव आंनिये ।।
सरल शरीर दृढ़ इन्द्रिय संयम्य करि,
अचल ऊरध दृश्य भ्रू के मध्य ठांनिये ।
मोक्ष के कपाट कौं उघारत अवश्यमेव,
सुन्दर कहत सिद्ध आसन बषांनिये ।।40।।

---

40. **सिद्धासन** : 'हठयोग प्रदीपिका' [-1/34-43] में 'नासनं सिद्ध सदृशं' अर्थात् सिद्धासन के समान दूसरा आसन नहीं है । इसकी विधि बताते हुए कहा गया है—

योनिस्थानकमंघ्रि मूल घटितं कृत्वा दृढं विन्यसे—
न्मेन्ढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् ।।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरंतरं ।
ह्येतन्मोक्ष कपाट भेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ।।—1/35

अर्थात् गुदा और लिंग इन्द्रिय का 'कय' भाग जो योगिस्थान है, उससे वाम चरण के मूल [-एडी] को मिलाकर और दक्षिण अर्थात् दूसरे पैर को लिंगेन्द्रिय के ऊपर दृढ़ करके रखे और चिबुक या ठोडी को वक्ष के समीप भाग में स्थिर करके जमाए [यह अन्तर 4 अंगुल के करीब होना चाहिए] । इस आसन के सिद्धि-काल में, इन्द्रियों को संयमित करने वाला स्थाणुवत् [-निश्चल] योगी, अपनी अचल दृष्टि से भ्रकुटी के मध्य भाग को देखता रहे । यह सिद्धासन मोक्ष-कपाट का भेदन करने वाला है । इस परिभाषा के अनुरूप ही प्रस्तुत मनहर छन्द में सुन्दरदास ने सिद्धासन को साधने की विधि बताई है । बाम=वाम, बाईं । सींवनि=गुदा और लिंगेन्द्रिय के बीच का स्थान । जोनि=योनि । युगति=युक्ति । मेढ़ू=लिंग से किंचित् ऊपर का स्थान मेढ़ू । दक्षन=दक्षिण, दायाँ । ऊरध=ऊर्ध्व । अवश्यमेव=अवश्य ही । बषांनिये=कहा जाता है । भ्रू के मध्य=भौंहों के बीच । भ्रू मध्य दृष्टि जमाने से त्राटक मुद्रा सिद्ध होती है । गीता में कहा है कि जो 'भ्रू मध्य' प्राणों को स्थापित करता है, वह दिव्य-पुरुष को प्राप्त कर लेता है—

'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्,
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।'—8/10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पद्मासन :

छप्पय : दक्षिण उरु उप्परय प्रथम बांमहिं पग आनय।
वांमहि उरु उप्परय तबहिं दक्षिण पग ठानय॥
दोऊ कर पुनि फेरि पृष्टि पीछै करि आवय।
दृढ़ कै ग्रहै अंगुष्ठ चिबुक बक्षस्थल लावय॥
इहिं भांति दृष्टि उन्मेष करि अग्र नासिका राषिये।
सब व्याधि हरण योगीन की पद्मासन यह भाषिये॥41॥

पद्धड़ी :

शिष और जु आसन हरहिं रोग। परि इनि दुइ आसन सधय योग।
तातें तूँ ये अब उभय साधि। जब लग पहुँचै निर्भय समाधि॥42॥

---

41. **पद्मासन** : व्याधि विनाशक 'पद्मासन' का कथन हठ प्रदीपिका में इसप्रकार है—

'वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्॥
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्—
एतद्व्याधि विनाशकारियमिनां पद्मासनं प्रोच्यते॥'—1/44

अर्थात् वाम-दक्षिण जंघाओं के ऊपर दक्षिण-वाम चरणों को स्थापित करके पृष्ठ भाग विधि से दोनों हाथों के द्वारा चरणों के अँगूठों को ग्रहण करके वक्ष के समीप चार अंगुल के अन्तर से ठोडी [-हनु] को रखकर अपनी नासिका के अग्र भाग को देखता रहे। यही, योगियों की सम्पूर्ण व्याधियों का विनाशक पद्मासन है। इस श्लोक से सुन्दरदास के द्वारा वर्णित पद्मासन वर्णन में बहुत समानता है। उरु = जाँघ। आनय = लाए। उप्परय = ऊपर। चिबुक = ठोडी, हनु। दृष्टि उन्मेश = ऊपर दृष्टि।

42. हरहिं रोग = रोग-व्याधियों को हर लेते हैं। बीमारी दूर होती है। निर्भय समाधि = अटल-भय रहितता की समाधि। उभय = दोनों-सिद्धासन और पद्मासन। ह० प्र० में यद्यपि सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन को अच्छा बताकर सिद्धासन को सर्वश्रेष्ठ बताया है। 'गोरक्ष पद्धति' में सिद्धासन और कमलासन [पद्मासन] को उत्तम ठहराया है। सुन्दरदास जी ने भी इन दो आसनों को ही श्रेष्ठ बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ प्राणायाम :

बिज्जुमाला : आगै कीजै प्राणायामं। नाडी चक्रं पावै ठामं।
पूरै राखै रेचै कोई। ह्वै निःपापं योगी सोई ॥43॥

दोहा : नाडी कही अनेक विधि, हैं दश मुख्य विचार।
इडा पिंगला सुषुमना, सब मंहि ये त्रय सार ॥44॥

छप्पय : बांम इडा स्वर जांनि चन्द्र पुनि कहियत वाकौं।
दक्षिण स्वर पिंगला सूरमय जानहुं ताकौं॥
मध्य सुषुम्ना बहै ताहि जानत नहिं कोई।
है यह अग्नि स्वरूप काज याही तें होई॥
जब इडा पिंगला गति थकै प्राणायाम प्रभाव तें।
तब चलै सुषुमना उलटि कैं सुख उपजै घर आव तें ॥45॥

---

43. **प्राणायाम :** ह० प्र० [-2/1-16] में प्राणायाम विषयक प्रयोजन, मल-शुद्धि कर्त्ता के रूप में काल और विधि, प्रकार, प्राणायाम विधि-अभ्यास आदि साधना और प्राणायाम का फल वर्णित है। वहाँ सूर्य नाड़ी और चन्द्र नाड़ी से किए जाने वाले प्राणायाम का कथन है—

'प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः।
विधिवत्स्तंभकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥'—2/8

अर्थात् 'सूर्य नाड़ी पिंगला से प्राण का आकर्षण करके धीरे-धीरे उदर को [प्राण वायु से] पूर्ण करे। फिर विधिपूर्वक कुम्भक धारण करके, प्राण वायु को रोक कर, [धीरे-धीरे-] चन्द्र नाड़ी इड़ा से रेचन करे अर्थात् प्राण वायु को छोड़े। युक्तियुक्त प्राणायाम करने से सर्व रोगों का क्षय होता है—'प्राणायामादि युक्तेन सर्व रोग क्षयो भवेत्।'—2/16

बिज्जुमाला : विद्युन्माला नामक छन्द विशेष। इस छन्द की रचना 'मो मो गो गो विद्युन्माला' नियम से होती है। अर्थात् जिसमें दो मगण [SSS, SSS] और दो गुरु [SS] क्रम में वर्ण होते हैं। आगे=फिर, उसके बाद, आसन करने के बाद। पूरै राखै रेचै=पूरक करे, कुम्भक करे और फिर रेचक करे। अर्थात् प्राण वायु को हृदय [-फेफड़ों] में भरे, रोके फिर निकाले। इस भरने, रोकने और निकालने के नियम को 1+4+2 के अंक गणित नियम से क्रमशः सम्पन्न करे। यह प्राणायाम का सर्व साधारण नियम है।

44. इड़ा=बाईं ओर की नासिका नली, चन्द्र नाड़ी। पिंगला=दाहिनी ओर की नासिका नली, सूर्य नाड़ी। सुषुम्ना=मध्य की सुषुम्ना नाड़ी। त्रय सार=दश नाड़ियों में तीन—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ही सारभूत हैं। अनेक नाडी=शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों की संकल्पना है—'द्वासप्ततति सहस्राणि नाड़ी द्वाराणि पंजरे' [—ह०प्र०, 4/18]। उनमें दश नाड़ियाँ प्रधान हैं [-गो०प०, 1/25-31]।

45. सूरमय=सूर्य नाड़ी पिंगला। अग्नि स्वरूप। पिंगला नाड़ी अग्नि स्वरूप मानी गई है। उलटि कैं चलै=अन्तर्मुखी गति से प्रवाहित होती है। सुख=परमानन्द। घर आव तें=घर आने जैसा सुख, ठिगाना, साधना स्थिति, स्थिति प्रज्ञता की सुखद दशा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : दश प्रकार कौ पवन है, भाषौं तिन के नाम ।
कहें बिना नहिं जांनिये, कौंन ठौर विश्राम ।।46।।

चौपई : प्राणापांन समानहिं जानै । व्यानोदान पंच मन मानै ।
नागहु कूर्म कृकल सु कहिये । देवदत्त सु धनंजय लहिये ।।47।।

कुण्डलिया : प्राण हृदय महिं बसत है, गुद मण्डले अपांन ।
नाभि समानहिं जांनिये, कंठहिं बसै उदांन ।।
कंठहि बसै उदांन व्यान व्यापक घट सारै ।
नाग करय उद्गार कूर्म सो पलक उघारै ।।
कृकल सु उपजै क्षुधा देवदत्तहि जृम्भाणं ।
मुयें धनंजय रहै पंच पूरब सो प्राणं ।।48।।

दोहा : चक्र अनुक्रम कहत हौं, सुन शिष तिनकै नाम ।
पीछै तोहि सुनाइ हौं, विधि सौं प्राणायाम ।।49।।

---

46. विश्राम=स्थान, स्थिति, विराम दशा । ठौर=स्थान ।

47. पवन=प्राणवायु । दश पवन=प्राणवायु स्थान भेद से दस प्रकार की बताई गई हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय । देखिए—

'प्राणापानः समानश्चोदान व्यानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।।'
—गो० प० 1/33

48. दस प्राणवायुओं के शरीर में स्थान—हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान, सम्पूर्ण शरीर [-घट] में व्यान, उद्गार कराने वाली नाग, पलक झपकने-झपकाने वाली कूर्म, भूख लगाने वाली कृकल, जँभाई दिलाने वाली देवदत्त तथा मरणोपरान्त रहने वाली धनंजय नामक पवन हैं । उद्गार=डकार । पलक उघारै=पलक [-पक्ष्म] उन्मेष कराने वाली । क्षुधा=भूख । जृम्भाणं=जमुहाई, प्रस्फुटन अथवा फैलाव । [दे०-गो० प० 1/34-40] ।

49. चक्र अनुक्रम=षट् चक्रों का क्रम [दे०-गो० प० 1/13-24] । सुन्दरदास ने षट् चक्रों का वर्णन गो०प०, योग चिन्तामणि एवं ह०प्र० आदि योग विषयक ग्रन्थों को आधार बनाकर किया है । प्राणायाम—पीछे तोहि सुनाइहौं=यहाँ षट् चक्र कहकर, प्राणायाम-विधि बताने का तात्पर्य यह है कि सब चक्रों आदि का विस्तार से वर्णन करने में कहीं ग्रन्थ विस्तार न हो जाए, इसीलिए 'सुन्दर ग्रन्थावली' में सोलह अधार, दो लक्ष्य, एवं पांच आकाशों का वर्णन और उनकी सूक्ष्मता सीखने वालों केलिए अनावश्यक समझकर, नहीं बताया गया । और यही क्रम-प्रक्रिया गो० प० एवं ह० प्र० में भी अपनाई गई है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चक्र अनुक्रम :

पद्धड़ी :

शिष प्रथम चक्र आधार जानि। तहाँ अक्षर चारि चतुर्द्दलांनि।
पुनि व स ष श वरण बिचारि लेहु। है सब शरीर आधार येहु ॥1॥50॥
पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र। तहँ षट्दल षट् अक्षर अबक्र।
गनि ब भ म य र ल ये वरण मध्य। सो ब्रह्मचक्र कहिये प्रसिद्ध ॥2॥॥51॥
मणिपूर चक्र दश दल प्रभाव। पुनि अक्षर दश तेऊ सुनाव।
तहँ ड ढ ण त थ द ध न प फ प्रमान। इन वर्ण सहित त्रितिये बषान ॥3॥52॥
अनुहात चक्र है हृदय माहिं। दल अक्षर द्वादश अधिक नाहिं।
क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ समेत। शिष चक्र चतुर्थय समुझि हेत ॥4॥53॥
सुनि पंचम चक्र बिशुद्ध आहि। दल अक्षर षोडस लगे ताहि ॥5॥
तहँ आदि अकार अः कार अन्त। शुभ षोडष स्वर ताके गनंत ॥॥54॥
अब आज्ञाचक्र सु भ्रुव मंझार। लषि द्वै दल द्वै अक्षर बिचार।
तहँ हं क्षं वर्ण सु अति अनूप। यह षष्ठ सु चक्र कह्यौ स्वरूप ॥6॥55॥
जब इनि षटचक्रहिं भेदि जाइ। तव उहै सुषमना सुख समाइ।
ताही तें प्राणायाम सार। सुनि शिष्य कहौं ताकौ बिचार ॥56॥

अथ प्राणायाम क्रिया :

दोहा : इडा नाडि पूरक करै, कुंभक राखै मांहिं।
रेचक करिये पिंगला, सब पातक कटि जांहिं ॥57॥

50-56. षट् चक्र क्रमशः इसप्रकार हैं—1. प्रथम आधार—[मूलाधार] चक्र : यह चक्र चार दल और चार [व स ष श] वर्ण वाला माना गया है। 2. द्वितीय स्वाधिष्ठान चक्र : यह षट् अक्षरों से युक्त दल वाला है। इन दलों के अक्षर हैं—ब भ म य र ल। इसका अन्य नाम 'ब्रह्मचक्र' भी है। 3. तृतीय मणिपूर चक्र : यह दस अक्षरों [ड ढ ण त थ द ध न प फ] से युक्त विशेष चक्र है। 4. चतुर्थ अनहद—[अनाहद] चक्र : यह चक्र हृदय में स्थित माना गया है। इसमें बारह अक्षर [क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ] युक्त 12 पंखुड़ी मानी गई हैं। 5. पंचम विशुद्ध चक्र : यह सोलह अक्षर [अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः] युक्त सोलह दल माने गए हैं। षष्ट आज्ञाचक्र: यह भ्रूमध्य दो अक्षर [हं क्षं] [दे०-गो० प०, 1/13-24] युक्त दो पंखुड़ियों वाला है। अबक्र=अवक्र, सीधा, ऋजु। वरण=वर्ण, अक्षर। तेऊ=वे भी। अनुहात=अनाहत, अनहद। भ्रुव=भ्रू, भौंह। लषि=देखकर। भेदि जाइ=भेदन कर ले। उहै=वही।

57. इडा नाडि=इडा नामक चन्द्र नाड़ी। पूरक करै=वाम नाड़ी से बाएँ नासिका रन्ध्र से पूरक प्राणायाम करे। कुंभक=भीतर [सुषुम्ना स्थान पर] श्वास को रोके रखना। रेचक करिये पिंगला=दाहिने नासिका रन्ध्र [-नथुना] अर्थात् पिंगला नामक सूर्य नाड़ी से श्वास को धीरे-धीरे निकाले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : बीज मन्त्र संयुक्त, षोडश पूरक पूरिये।
चवसठि कुंभक उक्त, द्वात्रिंशति करि रेचना ।।58।।

चौपई : बहुरि विपर्यय अैसैं धारै । पूरि पिंगला इडा निकारै ।
कुंभक राषि प्राण कौं जीतै । चतुर्बार अभ्यास व्यतीतैं ।।59।।

[चामर]गीता : यह ऋषिनि उक्त सुनाइयौ इहिं भांति प्राणायाम ।
सदगुरु कृपातें पाइये मन होइ अति बिश्रांम ।।
अब मतमतांतर कहत हौं सुनि शिष्य अन्य प्रभाव ।
गोरक्ष उक्त बषांनि हौं तिहिं सुनत उपजय चाव ।।60।।

अथ गोरक्ष उक्त :

चर्पट : सोहं सोहं सोहं हंसो । सोहं सोहं सोहं अंसो ।
स्वासो स्वासं सोहं जापं । सोहं सोहं आपै आपं ।।61।।

---

58. बीज मन्त्र=ओंकार, ऊँकार। षोडस पूरक पूरिये=1-4-2 के अंकगणित क्रम से बढ़ाते हुए, श्वास-मात्रा का नियमन करता रहे और यह वृद्धि 16 बार ओंकार जपने तक पूरक, 64 बार ओंकार जपने तक कुम्भक और 32 बार ओंकार जपने तक रेचक करने के रूप में बढ़ाने का विधान है। रेचना=रेचक, श्वास का बहिर्गमन ।

59. विपर्यय=विपरीत क्रम से, उलटे क्रम से ।

60. उक्त=उक्ति, कथन, विवेचन । मत मतांतर=विभिन्न मतों में । चाव=रुचि ।

61. गोरक्ष उक्त=गोरखनाथ के मतानुसार [-गो०प०, शतक 1/42-46] गोरख ने 'हंस' मन्त्र को 'अजपा गायत्री' मन्त्र बताया है, जिसे जीव अपनी श्वास-प्रश्वास के द्वारा निरन्तर जपता रहता है । देखिए—

'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।
हंस हंसेत्युमुंमत्रं जीवो जपति सर्वदा ।।
\+ \+ \+
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष दायिनी ।'

सोहं—हंसो=योग में 'हंस' [-सोऽहं[मन्त्र 'अजपा' गायत्री मन्त्र है, जो प्राणधारी द्वारा श्वास-प्रश्वास की [हंस-] ध्वनि के आधार पर संकल्पित है । आपं=स्वयं । **चर्पट** : छन्द विशेष । 'ज्ञान समुद्र' में 13 चर्पट छन्दों का प्रयोग है । आचार्य शंकर ने अपनी रचना 'चर्पट मंजारिका' स्तोत्र में इसी छन्द का प्रयोग किया है । इसीलिए इस छन्द का नाम 'चर्पट' पड़ा है । वास्तव में यह 'रूप चौपाई' या 'पादाकुलक' छन्द है, जिसमें 16 मात्राएँ और अन्त गुरु रहता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादश मात्रा पूरक करणं । द्वादश मात्रा कुंभक धरणं ।
द्वादश मात्रा रेचक जाणं । पूरबवत् सु विपर्यय ठाणं ।।62।।
अधमे द्वादश मात्रा उक्तं । मध्यम मात्रा द्विगुणा युक्तं ।
उत्तम मात्रा त्रिगुणा कहिये । प्राणायाम सु निर्णय लहिये ।।63।।

सोरठा : कुम्भक अष्ट सु विद्धि, मुद्रा दशहि प्रकार की ।
बंध तीन तिनि मद्धि, उत्तम साधन योग के ।।64।।

अथ कुंभक नाम :

छप्पय : सूरय भेदन प्रथम द्वितीय उज्जाई कहिये ।
शीतकार पुनि त्रितिय शीतली चतुरथ ग्रहिये ।।
पंचम है भस्त्रिका भ्रामरी षष्ट सु जांनहुँ ।
मूरछना सप्तमं अष्टमं केवल मांनहुँ ।।
ये कुम्भक अष्ट प्रकार के होइ पवन इम रोधनं ।
तब मुद्राबंध लगाइ यहिं प्रथम करै घट शोधनं ।।65।।

62-63. प्रस्तुत विवेचन—गो॰ प॰ [-2/5] का पद्यानुवाद है । देखिए—

'प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता ।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ।।'

अर्थात् पूरक में 12, कूम्भक में 16, रेचक में 10 श्वास-मात्रा वाला प्राणायाम कनिष्ट, दुगनी 24-32-20 श्वास-मात्रा वाला मध्यम तथा तिगुनी श्वास-मात्रा 36-48-30 वाला प्राणायाम उत्तम बताया गया है ।

64. कुम्भक अष्ट : आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम के भेद—

सूर्य भेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छाप्लाविनीत्यष्ट कुंभकाः ।।'—ह॰ प्र॰, 2/44

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं प्लाविनी । वहीं आगे [-2/35-78] कुम्भक के अन्य भेदोपभेद भी बताए गए हैं । इन्हीं भेदों का उल्लेख 65वें छन्द में है । वहाँ अष्टम 'प्लावनी' को 'केवल' बताया है ।

65. रोधन=रोध, अवरोध, आयाम । घट शोधन=घट की शोध । मुद्रा बंध=मूल-बन्ध, महाबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डीयान बन्धादि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ नाद वर्णनं :

दोहा : जबहिं अष्ट कुम्भक सधहिं, बाजै अनहद नाद।
दश प्रकार की धुनि सुनहिं, छूटहि सकल विषाद ।।66।।

छप्पय : प्रथम भ्रमर गुंजार शंष धुनि दुतिय कहिज्जै।
त्रितिये बजहिं मृदंग चतुर्थे ताल सुनिज्जै ।।
पंचम घंटा नाद षष्ट वीणा धुनि होई।
सप्तम बज्जहिं भेरि अष्टमं द्वन्द्वभि दोई ।।
अब नवमैं गर्ज्ज समुद्र की दशम मेघ घोषहि गुनै।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौं दश प्रकार योगी सुनै ।।67।।

---

66. अष्ट कुम्भक साधहिं=अष्ट कुम्भक प्राणायाम साध लेने के पश्चात्। अनहद नाद=बिना टंकार के झंकार का शब्द। साधना में बिना कारण के ही, साधना-काल में साधक को शब्द-ध्वनि सुनाई देती है। इस सम्वन्ध में हठयोग प्रदीपिका का प्रमाण है—

'अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते।
ध्वनेरंतर्गत ज्ञेयं ज्ञेयस्यांतर्गतं मनः ।।
मनस्तत्र लयं यातितद्विष्णोः परमं पदम्।'—4/100

विषाद=क्लेश, खेद।

67. दस प्रकार के अनहद नाद और उनकी ध्वनियाँ : अनहद नादजन्य दस प्रकार की ध्वनियाँ, हठयोग में परमानन्द प्रदायिका बताई गई हैं। देखिए—

'आदौ जलधिजीमूत भेरी झर्झर संभवाः।
मध्ये मर्दल शंखोत्था घंटाकाहलजास्तथाः ।।
अंतेतु किंकिणी वंश वीणा भ्रमर निःस्वनाः
इति नाना विधा नादाः श्रूयन्ते देह मध्यगाः ।।'
—ह० प्र०, 4/85-86

'नाद' को मानसिक लय का कारण बताया गया है। सुन्दरदास जी ने नादों का विपरीत क्रम प्रस्तुत किया है, जिसमें वे भ्रमर ध्वनि को प्रथम एवं मेघ गर्जन को अन्तिम रूप में बताते हैं। 'त्रिपुरसार समुच्चय' में भी भ्रमर, वंशी, घंटा, समुद्र और मेघ गर्जन क्रम को ही अपनाया गया है। साथ ही 'नाद' की चार अवस्थाएँ भी बताई गई हैं। ये हैं=आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ मुद्रानाम :

गीतक : सुनि महामुद्रा महाबंधः महाबेध च खेचरी ।
उड्यान बंध सु मूलबंधहि बन्ध जालंधर करी ।।
बिपरीत करणी पुनि बज्रौली शक्ति चालन कीजिये ।
इम होइ योगी अमर काया शशिकला नित पीजिये ।।68।।

अथ प्रत्याहार :

कुण्डलिया : श्रवन शब्द कौं ग्रहत हैं नयन ग्रहत हैं रूप ।
गंध ग्रहत है नासिका रसना रस की चूप ।।
रसना रस की चूप तुचा सुस्पर्श हि चाहै ।
इनि पंचनि कौं फेरि आतमा नित्याराहै ।।
कूर्म अंगहि ग्रहै प्रभा रवि कर्षय द्रवणं ।
इम करि प्रत्याहार विषय शब्दादिक श्रवणं ।।69।।

---

68. दस मुद्रा भेद=महामुद्रा, महाबन्ध, महाबेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीतकरणी, वज्रौली और शक्ति-चालन यही क्रम-संख्या हठयोग प्रदीपिका में वर्णित है—'इदं हि मुद्रादशकं जरामरण नाशनम् ।'—3/6-7 । भेदोपभेद सहित इनका लक्षण एवं फलोपलब्धि का विस्तार सहित विवेचन ह० प्र० [-3/10-120] में मिलता है । शशिकला=चन्द्र सार, अमृत ।

69. **प्रत्याहार** : प्राणायाम के अभ्यास से मन को निरोधपूर्वक विषयों से विरक्त करना ही प्रत्याहार है । अर्थात् इन्द्रियों को अन्मर्मुख करके अन्तरात्मा में लय करना अथवा स्थित करने का अभ्यास ही प्रत्याहार है । सुन्दर ग्रन्थावली का यह विवेचन गो० प० [-2/22-60] के विवेचन का ही संक्षिप्त रूप है । रसना=जिह्वा । चूप=चोप, रुचि, लालसा । तुचा=त्वचा । पंचनि=पंचेन्द्रियाँ । नित्याराहै= नित्य आराधन करे । कूर्म अंगनि ग्रहै=जैसे कछुआ अंगों को अन्तर्मुख करता है । गीता में भी कहा है—'यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः ।'[-2/58] । कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है । योग सूत्र [-2/54] में स्व विषय के साथ संयुक्त होने पर इन्द्रियों का स्वरूपाकार ही 'प्रत्याहार' बताया है । प्रभा रवि कर्षय द्रवणं=सूर्य की किरणें जैसे जलादि से रस-द्रव्यों को खींचती हैं, वैसे ही इन्द्रियों का निग्रह अपेक्षित है । इम=इसप्रकार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पंचतत्त्व की धारणा : [उनमें प्रथम] **पृथ्वीतत्त्व की धारणा :**

चौपइया :

यह चारों कोण लकारहि युक्तं जांनहुँ पृथ्वी रूपं ।
पुनि पीत वर्ण हृदि मंडल कहिये बिधि अङ्कित सु अनूपं ।।
तहँ घटिका पंच प्रांण करि लीनं चित्त स्थम्भ न होई ।
सुनि शिष्य अवनि जय करै नित्य ही भूमि धारणा सोई ।।70।।

जल तत्त्व की धारणा :

अक्षर वकार संयुक्त जानि जल चन्द्र खण्ड निर्द्धारं ।
पुनि ऋषीकेश अङ्कित अति शोभित कंठ पारदाकारं ।।
तहँ घटिका पंच प्राणं करि लीनं चित्त धारिकैं रहिये ।
विष कालकूट ब्यापै नहिं कबहू वारि धारणा कहिये ।।71।।

तेज तत्त्व की धारणा :

यह अग्नि त्रिकोण रेफ संयुक्तं पद्मराग आभासं ।
पुनि इन्द्र गोपु दुति मध्य तालुका कहिये रुद्र निवासं ।।
तहँ घटिका पंच प्राण करि लीनं ग्रन्थहिं उक्त बषानं ।
सुनि शिष्य अग्नि भयहन्ता कहिये तेज धारणा जांनं ।।72।।

---

70. धारणा-वृत्ति को बीज-मन्त्र से ध्यानस्थ करते हुए, तत्त्व या तत्त्वों पर जपाधिकार करना ही 'धारणा' है। योग-सूत्रों में 'धारणासु च योग्यता मनसः' [-2/53] अर्थात् सब धारणाओं में मन की योग्यता होती है तथा 'देश बन्धश्चित्तस्य धारणा' [-यो० सू० 3/1] अर्थात् [एक-] 'देश' में 'बन्ध' होना ही चित्त की धारणा है। अवनि जय=पृथ्वी तत्त्व [की] पर जय। भूमि धारणा=पृथ्वीतत्त्व पर चित्त केन्द्रीकरण ही 'भूमि धारणा' है। गो० प० [-2/54-60] को आधार बनाकर ही सुन्दरदास ने छन्द 70-75 तक 'तत्त्व धारणा और उन पर जय' का विवेचन प्रस्तुत किया है।

71. चन्द्र खण्ड=अर्द्ध चन्द्र, चन्द्रार्द्ध। ऋषीकेश=विष्णु। पारदाकारं=पारे के समान उज्ज्वल और चमकदार। वारि=जल। कालकूट=तीव्रतम प्रभावकारी विष। सागर-मन्थन के पश्चात् महादेव शिव ने 'कालकूट' विष का ही पान किया था।

72. पद्मराग आभासं=रक्तवर्ण मणि के समतुल्य कान्ति वाली। इन्द्र गोप=वीर बहूटी, राम की गुडिया। वह लाल रंग का कीट विशेष जो वर्षाकाल में भूमि पर रेंगता दिखाई देता है। तेज धारणा=तेज [प्रकाश-] तत्त्व पर धारणा करने का प्रभाव। अग्नि भयहन्ता=अग्नि का भय समाप्त कराने वाला। यह वर्णन गो० प० [-2/56] के अनुसार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु तत्त्व की धारणा :

भ्रुव मध्य यकार सहित षटकोणं अैसी लक्ष विचारं।
पुनि मेघ वर्ण ईश्वर करि अङ्कित बारम्बार निहारं ।।
तहँ घटिका पंच प्राण करि लीनं खेचर सिद्धिहि पावै।
सुनि शिष्य धारणा वायु तत्त्व की जो नींकैं करि आवै ।।73।।

आकाश तत्त्व की धारणा :

अब ब्रह्मरंध्र आकाश तत्त्व है सुभ्र बर्त्तुलाकारं।
जहँ निश्चय जांनि सदाशिव तिष्टति अक्षर सहित हकारं ।।
तहँ घटिका पंच प्राण करि लीनं परम मुक्ति की दाता।
सुनि शिष्य धारणा व्योम तत्व की योग ग्रन्थ विख्याता ।।74।।

यह येक थंभिनी एक द्राविणी एक सु दहनी कहिये।
पुनि येक भ्रामिणी येक शोषणी सद्गुरु बिना न लहिये ।।
ये पंच तत्त्व की पंच धारणा तिन के भेद सुनाये।
अब आगै ध्यान कहौं बहु बिधि करि जो ग्रन्थनि माँहि गाये ।।75।।

---

73. लक्ष=लक्ष्य। ईश्वर=महादेव शिव। निहारं=देखना। यह वर्णन गो० प० [-2/57] के अनुसार है।

74. ब्रह्म रंध्र=कपाल छिद्र, आज्ञाचक्र से ऊपर एक सूक्ष्मतम छिद्र विशेष। सुभ्र=शुभ्र, उज्ज्वल। बर्तुल=गोल, अण्डाकार, गोलाकार, पिण्डाकार। व्योम=आकाश। यह विवेचन गो० प० [-2/58] के अनुसार है। तिष्टति=तिष्ठति, विराजमान हैं। व्योमतत्व=आकाश तत्त्व।

75. पंचधारणा : गो० प० [-2/59] में पंच धारणाएँ इसप्रकार बताई हैं—

'स्तम्भिनी द्राविणी चैव दहनी भ्रामिणी तथा।
शोषिनी भवत्येषा भूतानां पंच धारणा: ।।'

सुन्दरदास द्वारा वर्णित पंच धारणाओं में गोरक्ष पद्धति का पूरा प्रभाव है। थंभिनी=स्तम्भिनी। सद्गुरु बिना न लहिये=धारणादि की योग-क्रिया गुरु निर्देश पर निर्भर है। पुस्तक-ज्ञान से योग-स्थिति सम्भव नहीं है। गुरु निर्देश में योगाभ्यास करने से धारणा-योग प्राप्त होता है। ग्रन्थनि मँहि गाये=जो शास्त्र-ग्रन्थ, गुरु-परम्परा में वर्णित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ ध्यान वर्णनं :

दोहा : प्रथमहिं ध्यान पदस्थ है, दुतिये पिण्ड अधीत ।
त्रितिय ध्यान रूपस्थ पुनि, चतुर्थ रूपातीत ।।76।।

पदस्थ ध्यान वर्णनं :

इंदव : जे पद चित्र विचित्र रचे अति गूढ़ महा परमारथ जामैं ।
ते अवलोकि विचार करै पुनि चित्त धरै निहचै करि तामैं ।।
कै करि कुम्भक मंत्र जपै उर अक्षर ते पुनि जांनि अनामै ।
सुन्दर ध्यान पदस्थ इहै मन निश्चल होइ लहै जु विरामै ।।77।।

पिंडस्थ ध्यान वर्णनं :

चौपई : सुनि शिष्य कहौं ध्यान पिंडस्थं । पिंड शोधनं करिये स्वस्थं ।।
षट्चक्रनि कौ धरिये ध्यानं । पुनि सदगुरु कौ ध्यान प्रमानं ।।78।।

रूपस्थ ध्यानवर्णनं :

नराय : निहारि कैं त्रिकूट मांहिं बिस्फुल्लिग देषि है ।
पुनः प्रकाश दीप ज्योति दीप माल पेषि है ।।
नक्षत्र माल विज्जुली प्रभा प्रत्यक्ष होइ है ।
अनन्त कोटि सूर चन्द्र ध्यान मध्य जोइ है ।।79।।
मरीचिका समान शुभ्र और लक्ष जांनिये ।
झलामलं समस्त विश्व तेजमैं बषांनिये ।।
समुद्र मध्य डूबि कैं उघारि नैन दीजिये ।
दशौं दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान कीजिये ।।80।।

---

76. चतुर्ध्यान भेद : 'गोरक्ष पद्धति' में ध्यान के सगुण-निर्गुण भेद करते हुए, याज्ञवल्क्य-स्मृति के अनुसार ध्यान के 9 अन्य भेदोपभेद किए हैं । देखिए—

'गुहंभेदं च नाभिश्च हृत्पद्म च तदूर्ध्वतः ।
घण्टिका लम्बिका स्थानं भ्रू मध्ये च नभोविलम् ।।'

परन्तु सुन्दरदास जी ने सबको समाहित करते हुए—पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान के ये चार भेद किए हैं ।

77. पदस्थ ध्यान : नाना चित्रों में रचित-खचित, बीज मंत्रों में निहित तथा महा-वाक्यों—महामन्त्रों में प्रतिपादित जप सहित ध्यान 'पदस्थ ध्यान' कहलाता है । अनामै =नाम रहित अथवा अनामय—निर्मल । विरामै लहै=विश्राम-स्थिति को प्राप्त कर लेता है, शान्ति में लय हो जाता है ।

78. पिण्डस्थ ध्यान : पिण्ड [-शरीर] शोध [-शुद्धि] करके षट्चक्रों में ध्यान करते हुए सद्गुरु [-तत्त्व] का ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान है ।

79-80. रूपस्थ ध्यान : इस ध्यान के वर्णन में साधक सुन्दरदास जी का अपना ध्यानानुभव भी मुखर हुआ है । इसलिए इसकी भाव-ऊर्जा को वे दो छन्दों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपातीत ध्यान वर्णनं :

पद्धड़ी : यह रूपातीत जु शून्य ध्यांन । कछु रूप न रेष न है निदांन ॥
तहाँ अष्ट प्रहर लौं चित्त लीन । पुनि सावधान ह्वै अति प्रवीन ॥81॥
जिम पक्षी की गति गगन मांहिं । कहुँ जात जात दिठि परय नांहिं ॥
पुनि आइ दिखाई देत सोइ । वा योगी की गति इहै होइ ॥82॥
इहिं शून्य ध्यान सम और नांहिं । उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यान मांहिं ॥
है शून्याकार जु ब्रह्म आपु । दशहू दिशि पूरण अति अमापु ॥83॥
यों करय ध्यान सायोज्य होइ । तब लगै समाधि अखंड सोइ ॥
पुनि उहै योग निद्रा कहाइ । सुनि शिष्य देउँ तोकौं बताइ ॥84॥

अथ समाधि वर्णनं :

गीतक : सुनि शिष्य अबहिं समाधि लक्षण मुक्त योगी वर्त्तते ।
तहँ साध्य साधक एक होई क्रिया कर्म निवर्त्तते ॥
निरुपाधि नित्य उपाधि रहितं इहै निश्चय आंनिये ।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बषांनिये ॥85॥

समाहित कर पाए हैं । रूपस्थ ध्यान विलक्षण ज्योति स्वरूप ध्यान है । इसमें अन्तस्थ स्फुलिंग निहारते हुए क्रमशः प्रकाश दीप, ज्योति दीप, दीप माला देखते हुए, नक्षत्र पंक्ति देखे जाने की कल्पना है । विद्युत् प्रभा का प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए कोटिशः सूर्य-चन्द्र का दर्शन रूपस्थ ध्यान में होता है । यही नहीं, सम्पूर्ण विश्व मरीचिका समान शुभ्र, झलमलाता हुआ तेजोमय लगता है । रूपस्थ ध्यान में, समुद्र में डुबकी के बाद आँख खोलकर देखने के समान, दशों दिशाएँ जलमई दिखाई देती हैं ।

81-84. रूपातीत ध्यान : इसका अन्य नाम 'शून्य ध्यान' बताया है, जिसमें लक्ष्य-रूप की कोई रूप-रेखा नहीं होती । वहाँ आठो याम चित्त लयलीन रहता है । रूपातीत ध्यान वाले साधक की चित्त-दशा गगनगामी उस पक्षी की तरह होती है, जो गतिमान तो है, पर दृष्टि-रूप से ओझल रहता है । यह शून्य ध्यान अन्य सभी ध्यानों में श्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि यह साध्य 'शून्याकार' ब्रह्म स्वरूप ही है । इस प्रकार ध्यान की दशा ही समाधि अथवा 'योग-निद्रा' है । दिठि=दृष्टि । अमापु= असीम । सायोज्य=समीपता का अनुभव, सायुज्य भाव ।

85-89. **गीतक** : छन्द विशेष [दे०—प्र० उ० के 33वें छन्द की चूर्णिका] । परन्तु प्रस्तुत छन्द 'गीतक', गीतिका न होकर 'हरिगीतिका' नामक मात्रिक छन्द है, जिसमें 16-12 की यति से, प्रत्येक पंक्ति में 28 मात्राएँ होती है और अन्त में लघु-गुरु [ıS] रहता है । यह रगणान्त [SıS] भी होता है । समाधि=समाधि दशा । इसमें साधक, क्रिया-कर्म से निवृत्त होकर साध्य में एकाकारिता का अनुभव करता है । यह समाधि दशा उपाधि रहित बताई गई है । यह समाधि दशा शीतोष्णता, भूख-प्यास, मूर्च्छा, आलस्य, जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति भाव-दशाओं से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृषा नहिं मूरछा आलस रहै।
नहिं जागरं नहिं सुप्न सुषुपति तत्पदं योगी लहै।।
इम नीर महिं गरि जाइ लवनं एकमेकहि जांनिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बषांनिये ।।86।।
नहिं हर्ष शोक न सुखं दुःखं नहीं मान अमानयो ।।
पुनि मनौं इन्द्रिय वृत्य नष्टं गतं ज्ञान अज्ञानयो ।।
नहिं जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम जीव ब्रह्म न जांनिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बषांनिये ।।87।।
नहिं शब्द सपरश रूप रस नहिं गंध जानय रंचहूँ।
नहिं काल कर्म स्वभाव है नहिं उदय अस्त प्रपंच हूँ ।।
इम क्षीर क्षीरे आज्य आज्ये जले जलहिं मिलानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बषांनिये ।।88।।
नहिं देव दैत्य पिशाच राक्षस भूत प्रेत न संचरै।
नहिं पवन पानी अग्नि भय पुनि सर्प सिंहहिं ना डरै ।।
नहिं यंत्र मंत्र न शस्त्र लागहिं यह अवस्था गानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बषांनिये ।।89।।

रहित होकर 'तत्पदी' हो जाती है। अर्थात् साधक की चेतना तत्पद में विश्राम करने के कारण किसीप्रकार से भिन्न भाव वाली नहीं रहती। इस दशा का साधक हर्ष-शोक, सुख-दुःख, मान-अपमान भावानुभव से रहित हो जाता है। समाधि दशा तक पहुँचते-पहुँचते इन्द्रिय वृत्तियाँ विलय हो जाने के कारण ज्ञान-अज्ञान से भी रहित हो जाती हैं। तब जाति-कुल-वर्णाश्रम सीमाएँ तो समाप्त हो ही जाती हैं, जीव-ब्रह्म का पृथकत्व भाव भी नहीं रहता। निवर्त्तते=निवृत्त, समाप्त। निरुपाधि=उपाधि [-भेद] रहित। समाधि=जिसमें कोई भिन्न भाव न रहे, वही समाधि। जागरं=जागृत दशा। तत्पदं=त्वंपद से भिन्न तत्पद दशा, एकत्वानुभव अर्थात् परमपद अवस्था विशेष। वृत्य=वृत्ति। गतं=समाप्त, तिरोभाव। ज्ञान-अज्ञानयो=ज्ञान-अज्ञान [द्विवचनार्थ]। सपरश=स्पर्श। रंचहूँ=किञ्चित भी। प्रपंचहूँ=प्रपंच [बहु-वचनान्त], माया-विषय। क्षीर क्षीरे आज्य आज्ये=दूध में, दूध, घी में घी मिलने के बाद की दशा। इस कथन की पुष्टि गो० प० [-2/97]के इस कथन से होती है—'दुग्धे क्षीरं घृते सर्पिः।' सुन्दरदास जी का यह सम्पूर्ण 'समाधि वर्णन' गोरक्ष संहिता, हठयोग प्रदीपिका और पातंजल योग-सूत्रों के आधार पर प्रमाणित है। 'योग सूत्र' [-3/46] में जहाँ यह कथन है—'रूप लावण्य बल वज्र संहननत्वानि काय सम्पत्' अर्थात् रूप, लावण्य, बल तथा वज्र-सहनत्व ये काय सम्पत् हैं। तात्पर्य यह है कि 'काय सम्पत्' के—दर्शनीयता, कान्तियुक्तता, बल युक्तता तथा वज्र के समान सम्पूर्ण शरीर की अभेद्यता ही लाभ हैं। 'गोरक्ष संहिता' में भी प्रमाणित है कि 'सिद्ध दशा' में योगी के शरीर पर शस्त्रादि का आघात तथा मन्त्रादि का प्रभाव नहीं होता। देखिए—

'अभेद्यः सर्वशास्त्राणामवध्यः सर्व देहिनाम्।
अग्राह्यो मन्त्र यन्त्राणां योगी मुक्तः समाधिना।'—2/85

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : योग सिद्धांत सुनाइयौ, अष्ट अंग संयुक्त ।
या साधन ब्रह्महि मिलै, तेऊ कहिये मुक्त ।।90।।

।। इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानसमुद्रे अष्टांगयोग सिद्धान्त निरूपणं नाम तृतियोल्लासः ।।3।।

।। अथ चतुर्थोल्लास ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत उल्लास में सांख्य मत के अनुसार मोक्ष-विधि का विवेचन है । प्रकृत-पुरुष भेद, सृष्टि क्रम और उसके मूल में चेतन पुरुष का योग बताया गया है । यह भी वर्णन है कि जड़ प्रकृति से चेतन पुरुष किस प्रकार भिन्न है ? इस भिन्नत्व बोध से कैवल्य प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है ? इसीलिए यह विवेचन सूक्ष्म और गम्भीर लगता हैं। इसी उल्लास में मुमुक्षु की चार अवस्थाएँ और कोषों का भेद भी दर्शाया गया है । शुद्ध ज्ञान स्वरूप से निज की प्राप्ति बताने में वेदान्त ज्ञान का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भाषा संस्कृत-निष्ठ और शास्त्रीय शब्दावली प्रधान है। छन्द-विधान में रचनाकार की परिपक्वता स्वयं द्रष्टव्य है ।

शिष्य उवाच :

चौपई : हे प्रभु बहुत कृपा तुम कीन्हीं । ऐसी बुद्धि दया करि दीन्हीं ।।
मोकौं योग सिद्धान्त सुनायौ । जो पूछ्यौ सो उत्तर पायौ ।।1।।
अब प्रभु सांख्य सु मोहि सुनावहु । मेरे सब संदेह मिटावहु ।।
यह गुरुदेव कृपा करि कहिये । तुम बिन अवर कहौ कत लहिये ।2।।

श्री गुरुरुवाच :

सोरठा : शिष्य कहौं समुझाइ, जो तें पूछ्यौ प्रीति सौं ।
सांख्य सु दैंउ बताइ, तू सुनिबे कौं योग्य है ।।3।।

---

90. योग सिद्धांत=अष्टांगों वाला योग सिद्धान्त। साधन=साधना मार्ग। या= इस । तेऊ कहिये मुक्त=वे भी मुक्त कहलाते हैं ।
1. **चूर्णिका** : ऐसी बुद्धि=इसप्रकार की साधनानुकूल बुद्धि ।
2. सांख्य=सांख्य दर्शन का सिद्धान्त । संदेह=द्विविधा, शंका, मतिभ्रम, भ्रान्ति, अवर=दूसरा, अन्य । कत=कहाँ, किधर ।
3. प्रीति सौं=प्रीति-श्रद्धायुक्त जिज्ञासापूर्वक। सुनिबे कौं योग्य=सुनने की क्षमता वाला, ज्ञान-उपदेश का पात्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सांख्ययोग वर्णन :

डुमिला : सुनि शिष्य यहै मत सांख्यहि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै ।
अनआतम है जड़ रूप लिये नित आतम चेतन भाव धरै ।।
अनआतम सूक्षम थूल सदा पुनि आतम सूक्षम थूल परै ।
तिनकौ निरनै अब तोहि कहौं जिनि जानत संशय शोक हरै ।।4।।

कुण्डलिया : पुरुष प्रकृतिमय जगत है ब्रह्मा कीट पर्यंत ।
चतुर षांनि लौं सृष्टि सब शिव शक्ति वर्तंत ।।
शिव शक्ति वर्तंत अंत दुहुंवनि कौ नांहीं ।
एक आहि चिद्रूप एक जड दीसत छांहीं ।।
चेतनि सदा अलिप्त रहै जड सौं नित कुरुषं ।
शिष्य संमुझि यह भेद भिन्न करि जांनहुं पुरुषं ।।5।।

---

4. सांख्य मत=सांख्य सिद्धान्त, जो आत्म और अनात्म विषयों को भिन्न-भिन्न करके देखता है । इसीलिए सांख्य शास्त्र द्वैतमत का प्रतिपादक कहा गया है । यह द्वैत है—पुरुष [-आत्मन्] और प्रकृति [-प्रधान] । सांख्य में इन दो को ही जगत् के कारण रूप में अनादि सिद्ध विचार माना गया है। प्रकृति [सूक्ष्म और स्थूल दोनों] के स्वरूप से ही प्रथमतः सूक्ष्म [महतत्त्व—अहंकार, बुद्धि, मन, तन्मात्रा, क्रियादि] और फिर स्थूल [पंचभूत, कर्मेन्द्रियादि प्रत्यक्ष-] जगत् । यह 'प्रकृति' अनादि और सृष्टि का उपादान कारण है। इन दोनों [सूक्ष्म-स्थूल-]से भिन्न है। आत्मन् अथवा पुरुष अनादि और निमित्त कारण है एवं कूटस्थ तथा अकर्ता है । यही सांख्य का मूल है । अनातम=अनात्म अर्थात् जड़ । आतम=आत्म रूप अर्थात् चैतन्य, जो सूक्ष्म और स्थूल से परे है । निरनै=निर्णय, सिद्धान्त । जानत=जान लेने पर। संशय-शोक हरै=त्रिविधि ताप जन्य संशय और क्लेश दुःख अर्थात् मनस्ताप का निवारण होता है ।

5. जगत : ब्रह्मा से कीट पर्यन्त यह संसार, प्रकृति-पुरुषमय ही है। चतुर षांनि=अण्डज, स्वेदज, उद्भिज एवं पिण्डज ये योनि गत चार खानि वर्णित हैं। शिव-शक्ती वर्तंत=अन्त रहित शिव-शक्ति की विद्यमानता। दुहुंवनि=दोनों का। आहि=है । चिद्रूप=चैतन्य रूप । दीसत छांहीं=छाया रूप दिखाई देती है। चेतनि=चैतन्य । अलिप्त=असंग, अनासक्त । 'सांख्य सूत्र' [-6/50[में 'जड-प्यावृत्तो जड प्रकाशयति चिद्रूपः' तथा 'औदासीन्यं चेति'[-1/163] कहा गया है, जिससे पुरुष की प्रकृति से उदासीनता एवं सम्बन्ध रहितता सिद्ध होती है। कुरु : षंयह शब्द 'पुरुषं' की सानुप्रासिकता में रचनाकार-निर्मिति है। किन्तु, संस्कृत भाषा की गहनता में शब्द-अक्षरों की अर्थवत्ता से 'कुरुषं' का अनुकूल अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—कु=पृथ्वी [-स्थूल जगत्], रु=शब्द, षं[-खं]=आकाश [-सूक्ष्म जगत्] अर्थात् सृष्टि, स्थूल में सूक्ष्म जनित शब्दादि के सम्बन्ध को बताती है। किन्तु 'पुरुष' चैतन्य अलिप्त रहकर सब पदार्थों में वर्ततता है । 'कुरुषं' का एक अर्थ उदासीन 'कुकरव' अर्थात् पुरुष प्रकृति से उदासीन, नाराज अथवा सम्बन्ध रहित है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य उवाच :

हंसाल : हे प्रभु कह्यौ तुम पुरुष चेतन्यमय बहुरि ऐसैं कह्यौ भिन्न जानौं।
समुझि कै प्रकृति जड रूप कर कैं कही जगत कैसैं भयो सो बषांनौं ।।6।।

श्री गुरुरुवाच :

छप्पय : पुरुष प्रकृति संयोग जगत उपजत है ऐसैं।
रवि दर्प्पण दृष्टांत अग्नि उपजत है तैसैं ।।
सुई होंहि चैतन्य यथा चम्बक कै संगा।
यथा पवन संयोग उदधि महिं उठहिं तरंगा ।।
अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु रूप कौं ग्रहत हैं।
यौं जड चेतन संयोग ते सृष्टि उपजती कहत हैं ।।7।।

---

6. जगत कैसे भयौ सो बषांनौं = जगत् की स्थिति-सृष्टि कैसे हुई, बताइए।
7. पुरुष प्रकृति संयोग जगत = पुरुष-प्रकृति का संयोग [-भास] ही जगत् है। जगत् उत्पन्न होने को एक दृष्टान्त से इसप्रकार समझाया जा सकता है—जैसे सूर्यकान्त मणि अथवा दर्पण में रवि किरणों से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसीप्रकार पुरुषाभा अर्थात् प्रकृति संयोग से जगत् [-सृष्टि] बनता है। दूसरा उदाहरण—जैसे जड़ सुई, चुम्बक के संयोग से चैतन्य युक्त अर्थात् गतिशील हो उठती है। तीसरा उदाहरण—जैसे पवन के संयोग से सागर में तरंगें उठती हैं। चौथा उदाहरण—जैसे सूर्य-प्रकाश में, चक्षु 'रूप' को ग्रहण कर लेते हैं। इसीप्रकार चेतन के संयोग से जड़ सृष्टि उत्पन्न हो उठती है, ऐसा कहा गया है। **टिप्पणी :** सांख्य सिद्धान्त में **'सांख्य सूत्र'** और 'सांख्य कारिका' ये दो ग्रन्थ शास्त्र-प्रमाण हैं। इनमें भी गुणों [-सत-रज-तम] से सृष्टि-प्रक्रिया को स्पष्ट करके व्याख्यायित नहीं किया गया। बाद के 'सांख्यतत्व कौमुदी' एवं **'पंचीकरण'** ग्रन्थों में इनकी व्याख्या हुई है। सुन्दरदास जी के द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया प्रस्तुत करने में वेदान्त का स्पष्ट प्रभाव है। सब के संवेत प्रभाव को यहाँ सृष्टि-क्रम रूप में बताया है—मूल प्रकृति [-प्रधान] की जब मूलावस्था रहती है, तब उसमें तीनों गुण [-सत-रज-तम] साम्यावस्था में विद्यमान रहते हैं। सृष्टि का प्रारम्भ किसी न किसी असाम्य के कारण होता है और जब प्रारम्भ होता है तो **'प्रकृति'** से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्राएँ [-शब्द स्पर्शादि के तत्त्व] मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और फिर पाँच कर्मेन्द्रियाँ होते हैं। पंच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत [-पृथ्वी-जल-वायु-अग्नि और आकाश] उत्पन्न होते हैं। इस प्रक्रिया में 'प्रकृति' को अनादि और सृष्टि का उपादान कारण तथा 'पुरुष' को अनादि और निमित्त कारण एवं अकर्त्ता माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य उवाच :

सवइसा : हे प्रभु, पुरुष प्रकृति तें प्रथमहिं कौन तत्व उपज्यौ समुझाइ।
विधि करि तत्व अनुक्रम सौं सब ज्यौं उपजै त्यौं देहु बताइ॥
सूक्षम थूल भये कैसें करि कारण कारय मोहि सुनाइ।
तुम गुरुदेव सकल बिधि जानत अन आतम आतमा दिखाइ॥8॥

श्री गुरुरुवाच :

दोहा : पुरुष प्रकृति संयोग तें, प्रथम भयौ महतत्व।
अहंकार तातें प्रगट, त्रिबिधि सु तम रज सत्व॥9॥

गीता [चामर] : तिहिं तामसाहंकार तें दश तत्व उपजे आइ।
ते पंच विषय रु पंच भूतनि कहौं शिष्य सुनाइ॥
ये शब्द सपरश रूप रस अरु गंध विषय सु जांनि।
पुनि व्यौम मारुत तेज जल क्षिति महाभूत बषांनि॥10॥

चौपई : ये दश तम गुण तें तुम जांनहुँ। द्रव्य शक्ति याकौं पहिचानहुँ।
अब इनके लक्षण समुझाऊँ। भिन्न भिन्न करि तोहि सुनाऊँ॥11॥

छप्पय : शब्द गुणो आकाश एक गुण कहियत जामहिं।
शब्द स्पर्शजु वायु उभय गुण लहियहि तामहिं॥
शब्द स्पर्शजु रूप तींन गुण पावक मांहीं।
शब्द स्पर्शजु रूप रसं जल चहुँ गुण आंहीं॥
पुनि शब्द स्पर्शजु रूप रस गन्ध पंचगुण अवनि है।
शिष्य इहै अनुक्रम जानि तूं सांख्य सुमत ऐसें कहै॥12॥

---

8. अनुक्रम=क्रम से। कारण-कारय मोहि सुनाइ=कारण-कार्य शृंखला को मुझे समझाइए। अन आतम-आतमा दिखाइ=अनात्म-आत्म तत्त्व भेद को दिखलाइए।
9. छन्द 7 की टिप्पणी देखिए।
10. तामसाहंकार तें दश तत्त्व : सृष्टिक्रम में तामस अहंकारजन्य दस तत्त्व वर्णित हैं। वे हैं—पंच विषय [-इन्द्रिय विषय] और पंचभूत [-पृथ्वी-जलादि]।
11. तम गुण=तमोगुण। लक्षण=पहचान, अभिज्ञान। द्रव्य-शक्ति=पदार्थ और उनकी शक्ति।
12. शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये पंच विषय क्रमशः आकाश में एक, वायु में दो, अग्नि में तीन, जल में चार तथा पृथ्वी में पाँचों तत्त्वों के रूप में समाहित रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पंच स्वभाव :

चौपइया : यहु कठिन स्वभाव अवनि को कहिये द्रावक उदकहि जानहुं।
पुनि उष्ण सुभाव अग्नि महिं बर्तय चलन पवन पहिचानहुं ।।
आकाश सुभाव सुथिर कहियत है पुनि अवकाश लषावै ।
ये पञ्च तत्व के पञ्च सुभावहि सद्‌गरु बिना न पावै ।।13।।

अथ राजसाहंकार सर्ग :

चौपइया : अथ राजसाहंकार तें उपजी दश इन्द्रिय सु बताऊँ।
पुनि पञ्च वायु तिनकैं समीप ही यह व्यौरौ समझाऊँ ।।
अरु भिन्न भिन्न है क्रिया सु तिन की भिन्न भिन्न है नामं।
सुनि शिष्य कहौं नीकै करि तोसौं ज्यौं पावै विश्रामं ।।14।।

छप्पय : श्रवण तुचा दृग घ्रांण रसन पुनि तिनि कैं संगा।
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच भई अप अपने रंगा ।।
वाक्य पानि अरु पाद उपस्थ गुदाहू कहिये।
कर्म सु इन्द्रिय पंच भली बिधि जाने रहिये ।।
सुनि प्रानापांन समानहू ब्यानोदांन सु वायु हैं ।
दश पंच रजोगुण तें भये क्रिया शक्ति कौं पायु हैं ।।15।।

अथ सात्विकाहंकार सर्ग :

गीतक : अथ सात्विकाहंकार तें मन बुद्धि चित्त अहं भये।
पुनि इन्द्रियन के अधिष्ठाता देवता बहु बिधि ठये ।।
दिग्पाल मारुत अर्क अश्विनि वरुणं ज्ञान सु इंद्रियं।
पुनि अग्नि इंद्र उपेन्द्र मित्रजु प्रजापति कर्मेन्द्रियं ।।16।।

---

13. पंच स्वभाव=पंच महाभूतों का स्वभाव—पृथ्वी का कठिन, जल का द्रवणशील, अग्नि का उष्ण, पवन का प्रवहमान, आकाश का स्थिर एवं रिक्त स्वभाव बताया है।

14. राजसाहंकार=राजस अहंकार । राजस अहंकार से दश इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई बताई हैं। उन इन्द्रियों के निकट ही पंच वायुओं का निवास है ।

15. पंच ज्ञानेन्द्रियाँ=कान, त्वचा, नेत्र, नासिका, रसना ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के **'करण'** [-माध्यम, औजार] हैं। ये पाँचों आंतरिक इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं। इन सब के भिन्न-भिन्न कर्म हैं। तुचा=त्वचा, खाल। घ्राण=नासिका, नाक। रसन=रसना, जिह्वा। पानि=पाणि, दोनों हाथ। पाद=दोनों पैर। उपस्थ=मूत्रेन्द्रिय, योनि। गुदा=मल विसर्जन इन्द्रिय। ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये पाँचों भी मन-बुद्धि के अधीन हैं।

16. सात्विकाहंकार=सात्विक अहंकार। सात्विक अहंकार से मन, बुद्धि [-चित्त] और अहंकार उत्पन्न बताए गए हैं। अधिष्ठाता देवता=इन्द्रियों के अधिष्ठाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : शशि बिधि अरु क्षेत्रज्ञ पुनि, रुद्र सहित पहिचांनि।
भये चतुर्दश देवता, ज्ञान शक्ति यह जांनि ॥17॥

दोहा : त्रिविध शक्ति है त्रिगुण मय, तम रज सत्व सु येह।
इनि करि पिण्ड स्थूल है, इनि करि सूक्षम देह ॥18॥
कारण देह सु तीसरौ, सब कौ कारण मूल।
ताहि तें दोऊ भये, सूक्षम देह स्थूल ॥19॥

अथ स्थूल देह वर्णन :

चौपई : व्योम वायु पावक जल धरणी। थूल देह इनही की बरणी।
एक तत्व महिं पंच बताऊँ। पंच पंच पच्चीस सुनाऊँ ॥20॥
अस्थि अवनि त्वक् उदक हि जानहुं। मांस अग्नि नीकैं पहिचानहुं।
नाडी वायु रोम आकाशं। पंच अंश पृथ्वी जु प्रकाशं ॥21॥

देवता इन्द्रिय मूल में विराजमान रहते हैं। ठये=स्थित। सांख्य मत में मन, बुद्धि और अहंकार ये 'अन्तःकरण त्रय' कहलाते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ वहाँ वाह्य कारण कही गई हैं। जबकि, वेदान्त के 'अन्तःकरण चतुष्टय' में 'चित्त' की गिनती भी होती है। 'सांख्यकारिका' का 24वाँ सूत्र है—'अभिमानोऽहङ्कारःतस्मात् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।' 'सांख्य तत्त्व कौमुदी' [-2/17] में त्रिगुणों के विपर्यस्त होने में 'पुरुष' प्रवृत्ति बताई है—

'संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादि विपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृ भावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥'

17. क्षेत्रज्ञ=क्षेत्र को जानने वाले। गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विभाग इसप्रकार किया गया है—

'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥'—13/1-2

अर्थात् हे कौन्तेय! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और इसे जो जानता है उसे तत्त्वज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं। और हे भारत! समस्त क्षेत्रों [-शरीरों] में स्थित मुझ को क्षेत्रज्ञ जान। मेरा मत है कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ भेद का ज्ञान ही ज्ञान है।

18-19. त्रिगुणमय=तीन गुणों से युक्त। पिण्ड स्थूल=पंचभौतिक शरीर। सूक्षम देह=सूक्ष्म शरीर। कारण देह=लिंग शरीर, जो सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही शरीरों का मूल कारण होता है।

20-25. स्थूल देह=पंचभौतिक शरीर, जिसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व समाहित होते हैं। एक-एक तत्त्व में पाँच-पाँच होने से ये पच्चीस बनते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेद सु अवनि मूत्र जल कहिये। रक्त अग्नि यह जांने रहिये।
शुक्र सु वायु श्लेषम व्योमं। पंच अंश ये उदक समोमं ॥22॥
क्षुत्पृथ्वी तृट् जल कौ अंशा। आलस अग्नि न आनहुं संशा।
संगम वायु नींद नभ जानं। पञ्च अंश ये अग्नि प्रमानं ॥23॥
रोध अवनि भ्रमणं जल मांहीं। ऊर्द्ध गमन अग्नी मंहि आंहीं।
अति निर्गमन वायु पहिचानहुं। उच्च स्थिति आकाशहि जानहुं ॥24॥
भय पृथ्वी मोहादिक नीरं। क्रोध अग्नि पुनि कांम समीरं।
लोमाकाशं कहि समुझाये। पञ्च अंश ये नभ के पाये ॥25॥

अथ अन्य भेद :

दोहा : गुदा कर्म इंद्रियनि महिं, नाशा इंद्रिय ज्ञान।
ये दोऊ भू तें प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान ॥26॥

हैं। शरीर के उपादान कारणों की निर्मिति इसप्रकार बताई गई है—पृथ्वी तत्त्व से अस्थि, जल तत्त्व से त्वचा, अग्नि तत्त्व से मांस, वायु तत्त्व से नाड़ी और आकाश तत्त्व से रोम निर्मित होते हैं। ये पाँचों अंग पृथ्वी तत्त्व से प्रकाशित होते हैं। इसीप्रकार पृथ्वी तत्त्व से मेद, जल तत्त्व से मूत्र, अग्नि तत्त्व से रक्त, वायु तत्त्व से शुक्र और आकाश तत्त्व से कफ निर्मित होता है। इन पाँचों अंशों [-अंगों] में उदक तत्त्व की प्रधानता है। पृथ्वी तत्त्व से भूख, जल तत्त्व से प्यास, अग्नि तत्त्व से आलस्य, वायु तत्त्व से संगम-समागम और आकाश तत्त्व से नींद की प्रधानता होती है। इन पाँचों में अग्नि तत्त्व प्रधान रहता है। पृथ्वी तत्त्व से अवरोध, जल तत्त्व से भ्रमण, अग्नि तत्त्व से ऊर्ध्वगमन, वायु तत्त्व से निर्गमन और ऊर्ध्व स्थिति, आकाश तत्त्व के कारण होती है। इसीप्रकार पृथ्वी तत्त्व के करण भय, जल तत्त्व के कारण मोहादि, अग्नि तत्त्व के कारण क्रोध, वायु तत्त्व के कारण काम और आकाश तत्त्व के कारण लोम की प्रधानता होती है। इन पाँचों में आकाश तत्त्व की प्रधानता रहती है। नीकै=भलीप्रकार। शुक्र=वीर्य। श्लेषम=कफ। समोयं=समाए हुए। क्षुत्=क्षुधा, भूख। तृट्=तृषा, प्यास। आलस=आलस्य। संशा=संशय, सन्देह। प्रमानं=प्रमाण। रोध=अवरोध, रुकावट। ऊर्द्ध गमन=ऊर्ध्व गति। निर्गमन=चाल, बाह्य गति। कांम=काम-वासना। समीरं=पवन।

26-30. कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय उत्पत्ति वर्णन : गुदा कर्मेन्द्रिय और नासिका ज्ञानेन्द्रिय पृथ्वी तत्त्व से, उपस्थ [-जननेन्द्रिय] कर्मेन्द्रिय और रसना ज्ञानेन्द्रिय जल तत्त्व से, चरण कर्मेन्द्रिय और नेत्र ज्ञानेन्द्रिय तेज तत्त्व से, हाथ कर्मेन्द्रिय और त्वचा [-स्पर्श] ज्ञानेन्द्रिय वायु तत्त्व से, वाणी कर्मेन्द्रिय और श्रवण ज्ञानेन्द्रिय आकाश तत्त्व से उत्पन्न बताए गए हैं। लोचन=नेत्र। चरन=चरण, पग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थ कर्मेन्द्रियनि मंहिं, रसना इन्द्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ जल तें प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान ।।27।।
चरन कर्म इन्द्रियनि मंहिं, लोचन इन्द्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ बसु तें प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान ।।28।।
पानि कर्म इंद्रयनि मंहिं, त्वक् इंद्रिय पुनि ज्ञान ।
ये दोऊ पवनहि प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान ।।29।।
वचनं कर्मेन्द्रियनि मंहिं, श्रोत्र सु इंद्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ नभ तें प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान ।।30।।

अथ त्रिपुटी भेद :

दोहा : श्रोत्र सु अध्यातम प्रगट, श्रोतव्यं अधिभूत ।
दिशा तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।31।।
त्वक् अध्यातम जानियहु, सपरश है अधिभूत ।
वायु तत्र पुनि देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।32।।
चक्षु अध्यातम जानियहु, दृष्टव्यं अधिभूत ।
सूर तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।33।।
रसना अध्यातम प्रगट, रस ग्रहणं अधिभूत ।
वरुण तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।34।।
घ्राण सु अध्यातम प्रगट, घ्रातव्यं अधिभूत ।
अश्विनौ है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।35।।

अथ कर्मेन्द्रिय त्रिपुटी :

दोहा : वचन सु अध्यातम प्रगट, वक्तव्यं अधिभूत ।
अग्नि तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।36।।

बसु=वसु, तेज । पानि=पाणि, हाथ । वचनं=वचन । छन्द की दृष्टि से 'वचनं' ही पढ़ना उचित है ।

31-35. पंच ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटी वर्णित है । यह 'त्रिपुटी' आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भावों से जुड़ी है । तीन अवस्था-समुच्चय के कारण ही इसको 'त्रिपुटी' नाम दिया गया है । सूत=सूत्र, सिद्धान्त, नियम । सूर=सूर्य । श्रोतव्य= सुना जाने योग्य । सपरश=स्पर्श । दृष्टव्य=देखने योग्य । घ्राण=नासिका । घ्रातव्य=सूँघने योग्य । अश्विनौ=अश्विनी कुमार देवता ।

36-40. वक्तव्यं=बोला जाने वाला, कथ्य । आदानं=ग्रहण । गंतव्यं=गति लक्ष्य । उपस्थ=लिंग, जननेन्द्रिय । **टिप्पणी :** दोहा संख्या 31-40 तक दशों इन्द्रियों के लक्षण, व्यापार एवं शक्तियाँ बताई गई हैं । ये सांख्य कारिका[—28-29 तक] के विवेचन से प्रेरित हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्त सु अध्यातम प्रगट, आदानं अधिभूत।
इन्द्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।37।।
चरण सु अध्यातम प्रगट, गंतव्यं अधिभूत।
विष्णु तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।38।।
उपस्थ अध्यातम प्रगट, आनंदं अधिभूत।
प्रजापतिहि तहं देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।39।।
गुदा सु अध्यातम प्रगट, मलत्यागं अधिभूत।
मित्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।40।।

अथ अन्तःकरण त्रिपुटी :

दोहा : मन अध्यातम जानियहु, संकल्पं अधिभूत।
चन्द्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।41।।
बुद्धि सु अध्यातम प्रगट, बोधंव्यं अधिभूत।
ब्रह्मा तत्र सु देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।42।।
चित्त सु अध्यातम प्रगट, चितवन है अधिभूत।
वासुदेव तहं देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।43।।
अहंकार अध्यातमं, अहंकृत्य अधिभूत।
रुद्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहिं सूत ।।44।।

अथ लिंग शरीर कथ्यते :

चौपई : नव तत्वनि कौ लिंग प्रबंधा। शब्द स्पर्श रूप रस गंधा।
मन अरु बुद्धि चित्त अहंकारा। ये नव तत्व किये निर्द्धारा ।।45।।
दोहा : पन्द्रह तत्व स्थूल वपु, नव तत्वनि कौ लिंग।
इन चौबीस हु तत्व को, बहु बिधि कह्यौ प्रसंग ।।46।।

41-44. अन्तःकरण त्रिपुटी = मन, बुद्धि, अहंकार। किन्तु, यहाँ सुन्दरदास ने वेदान्त के प्रभाव से अन्तःकरण चतुष्टय का 'चित्त' अंग भी गिनाया है। अहंकृत्य = अहंकार करने की वृत्ति। रुद्र = शिव देवता।

45. लिंग शरीर = यहाँ नौ तत्त्वों [-पंच ज्ञानेन्द्रियां एवं अतःकरण चतुष्टय के समवाय को लिंग शरीर बताया है। किन्तु, सांख्य मत में 'सप्त दशैकं लिंगम्' कहा है, जिसका अर्थ है कि लिंग शरीर सत्रह तत्त्वों [अहंकार, बुद्धि, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ] का है।

46. स्थूल शरीर = पन्द्रह तत्त्वों [-पंच महाभूत, पंच-पंच ज्ञान-कर्मेन्द्रियाँ] का। लिंग शरीर नौ तत्त्वों का। अतः कुल 24 तत्त्व गिनाए गए हैं। 'सांख्य मत' से यह तत्त्व-संख्या कुछ मेल नहीं खाती। क्योंकि, सांख्य में तो 25 तत्त्व [-पंच महाभूत, पंच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, महत्तत्त्व, अहंकार, प्रकृति और पुरुष] हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपइया : शिष्य ये चौबीस तत्त्व जड़ जांनहुं तिनकौ क्षेत्र सु कहिये ।
पुनि चेतन एक और पच्चीसहिं सांख्यहि मत सौं लहिये ।।
सो है क्षेत्रज्ञ सर्ब कौ प्रेरक पुनि साक्षी बहु जानहुं ।
यह प्रकृति पुरुष कौ कीयौ निर्णय सद्गुरु कहै सु मांनहुं ।।47।।

अथ जाग्रदवस्था कथ्यते :

चंपक : यह देह स्थूल विराटा । है पंच तत्व कौ ठाटा ।
नभ वायु तेज जल धरणी । पीछे बहु बिधि करि वरणी ।।48।।
जे शब्द स्पर्शहि रूपा । रस गंध मिले तिनि जूपा ।
इनि तन्मात्रिका सहेता । ये पंच विषय कौ हेता ।।49।।
पुनि पंचेन्द्रिये ज्ञाना । श्रवणादि मिली बिधि नाना ।
अरु कर्म सु इंद्रिये पंचा । वचनादि मिलीं जु प्रपंचा ।।50।।
मन बुद्धि चित्त अहंकारा । यह अंतहकरण विचारा ।
पुनि देव चतुर्दश जानहुं । दश वायु मिली यह मानहुं ।।51।।
है सत रज तम गुण मांहीं । ये भिन्न भिन्न बर्त्तांहीं ।
तहं कालहु कर्म स्वभावा । पुनि जीव स्वरूप दिषावा ।।52।।
अरु काल उपाइ षपावै । यह कर्म सु आंन मिलावै ।
पुनि सूत्र सु सुख दुख मानै । सो पाप पुन्य कौ ठांनै ।।53।।
है जीव सु चेतन कर्त्ता । जड सर्व पदारथ धर्त्ता ।
मिलि सबहिनि कौ संघाता । यह जाग्रदवस्था ताता ।।54।।

---

47. चौबीस तत्त्व : ये जड़ तत्त्व हैं । इसीलिए इन्हें क्षेत्र, कहा गया है । [दे०—गीता 13/1-2] । पच्चीसवाँ तत्त्व पुरुष है । वही क्षेत्रज्ञ है । यह पच्चीसवाँ तत्त्व ही सबका प्रेरक और साक्षी है ।

48. जाग्रदावस्था=जागृत अवस्था । विराटा=विराट्, महान् । ठाटा=ठाट, बनावट चौखटा, ठाहर ।

49. शब्द-स्पर्श-रूप-रस गन्ध ये पंच तन्मात्राएँ हैं । जूपा=यूप-संयुक्त, जुते हुए । ये तन्मात्राएँ अव्यक्त [-सूक्ष्म] हैं और पंच महाभूतों के 'कारण' हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ चक्षु-श्रोत्रादि 'अहंकार' से ही उत्पन्न हैं ।

50-51. अंतहकरण=मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूप अन्तःकरण चतुष्टय । देव चतुर्दश=चौदह देवता । ये हैं—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, प्रजापति, मित्र, चन्द्र, ब्रह्मा, वासुदेव और रुद्र ।

52-56. उपाइ षपावै=उत्पन्न और विनाश अर्थात् सृष्टि और लय करता है । धर्त्ता=धारण करने वाला, धारक । संघाता=संहारक । पसारा=प्रसार । बाणी बैखर्या=बैखरी वाणी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा आहि विश्व अभिमानी । तहँ ब्रह्मादेव प्रमानी ।
है राजस गुण अधिकारा । पुनि भोग स्थूल पसारा ।।55।।
सा कहिये नयन स्थानं । वाणी बैखर्या जानं ।
यह जाग्रदवस्था निर्णय । सुनि शिष्य सुप्न अब वर्णय ।।56।।

अथ स्वप्नावस्था कथ्यते :

चौपइया : दश वायु प्राण नागादिक कहियहिं पंचसु इंद्रिय ज्ञानं ।
पुनि पंच कर्म इंद्रिय जे आंहीं तिनिकी वृत्य वषांनं ।।
अरु पंच विषय शब्दादिक जानहुं अंतहकरण चतुष्टय ।
पुनि देव चतुर्दश हैं तिन मांहीं सब इंद्रिय संतुष्टय ।।57।।
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि लिंग शरीर कहावै ।
शिष्य नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताकौ तेजोमय तनु पावै ।।
अब स्वप्नावस्था याकौं कहिये सा तेजस अभिमांनी ।
तहँ सतगुण बिष्णु देवता जांनहुं भोग बासना ठानी ।।58।।
पुनि कण्ठ स्थान मध्यमा वाचा जीवातमा समेतं ।
शिष सुप्नावस्था कीयौ निर्णय संमुझि देषि यह हेतं ।।59।।

अथ सुषुप्त्यवस्था कथ्यते :

छप्पय : सुषुपति कारण देह तत्व सबहि तहँ लीनं ।
लिंग शरीर न रहै घोर निद्रा बशि कीनं ।।
प्राज्ञा अभिमानी जु ब्याकृत तम गुण रूपा ।
ईश्वर तहँ देवता भोग आनन्द स्वरूपा ।।
पुनि पश्यंती बाणी गुपत-स्थानक जांनिये ।
यह कहत जु सुषुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मांनिये ।।60।।

57-58. वृत्य = वृत्ति । लिंग शरीर = काल-कर्म और स्वभाव का संवेत रूप लिंग शरीर है । हिरण्यगर्भ = तेजोमय शरीर ।

59-60. मध्यमा वाचा = मध्यमा वाणी । सुषुपति = सुषुप्ति अवस्था । पश्यंती बाणी गुपत = गुप्त रूप पश्यन्ती वाणी । हृदय स्थानक = हृदय में स्थान वाली । **टिप्पणी :** छन्द संख्या 49-65 तक जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरिया इन चार अवस्थाओं का वर्णन है । ये छन्द प्रायः वेदान्त प्रतिपादक माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार रचे गए हैं । छन्द संख्या 59 में केवल दो ही पंक्तियाँ हैं । पर पूर्ण छन्द की संख्या दी गई है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तुर्य्यावस्था कथ्यते :

चर्पट : तुर्यावस्था चेतन तत्वं । स्व स्वरूप अभिमानीयत्वं।
परमानन्दं भोगं कहियं। सोहं देव सदा तहं लहियं ॥61॥
सर्बोपाधि बिवर्जित मुक्तं। त्रिगुणातीतं साक्षी उक्तं।
मूर्द्ध नि स्थिति परा पुनि वांणीं। तुर्यावस्था निश्चय जांणीं ॥62॥

इन्दव : जाग्रत रूप लिये सब तत्वनि इंद्रिय द्वार करै व्यवहारौ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ मानत है सुख-दुःख अपारौ॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कुछ घोर अंधारौ।
तीन कौं साक्षि रहे तुरियातत सुन्दर सोइ स्वरूप हमारौ ॥63॥

सोरठा : शिष तूं ऐसै जांनि, हौं असङ्ग साक्षी सदा।
आपुहि चेतन मांनि, अवर पदारथ जड सर्बे ॥64॥

दोहा : यह शिष मैं तोसौं कह्यौ, सांख्य हु कौ सिद्धान्त।
जो तेरे शंका रही, सो अब पूछि बृतान्त ॥65॥

॥इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानसमुद्रे सांख्य सिद्धान्त निरूपणं नाम चतुर्थोल्लासः ॥4॥

61-62. **चर्पट** : दे०-तृ० उ० का 61वाँ छन्द। तुर्यावस्था=आत्म स्वरूपा समाधि-दशा। लहियं=प्राप्त होता है। सर्बोपाधि बिर्बाजत=सर्वोपाधि विर्वाजत, सब उपाधियों से रहित। त्रिगुणातीतं=तीन गुणों से परे। मूर्द्धनि स्थिति=मूर्धा में निवास करने वाली दशा। परा=वाणी का चतुर्थ रूप।

63. जाग्रत रूप=जागृत अवस्था। इस अवस्था में सब तत्त्व विद्यमान रहते हैं और तब इन्द्रिय द्वार अपने-अपने व्यवहार में निरत रहते हैं। स्वप्न शरीर=स्वप्न दशा। इस अवस्था में शरीर नव तत्त्वों में भ्रमण करता है और अपार सुख-दुःख का अनुभव करता है। सुषोपित=सुषुप्ति अवस्था। यह लय दशा है, जहाँ सघन अन्धकार ही अन्धकार होता है। तुरियातत=तुरीयातीत दशा। यह चौथी दशा है। यही आत्मस्वरूपा है।

64. असङ्ग=संग—आसक्ति रहित। अवर=अन्य, दूसरे। पदारथ=पदार्थ।

65. शिष=शिष्य, जिज्ञासु साधक। बृतान्त=वृत्त, प्रसंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ अथ पंचमोल्लास ॥

प्रवेशार्थ : 'ज्ञान समुद्र' के इस अन्तिम उल्लास में अद्वैत तत्त्व-प्रतिपादन की प्रमुखता है। चारों अवस्थाओं से परे जो तुरीयातीत दशा का संकेत 'सांख्य के अंग' में दिया गया था, उसी को आगे बढ़ाते हुए, वेदान्त मत से समर्थित करते हुए, प्रागभावादि चार अभावों का विवेचन करते हुए 'अत्यन्ताभाव' द्वारा निर्गुण-निराकार शुद्ध चेतन का स्वरूप लक्षण-बद्ध करने का प्रयत्न है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्य की यथार्थता बताते हुए वैदिक 'नेति-नेति' विधि से निरुपाधि शुद्ध चेतन को समझाया गया है। यद्यपि उसके अनुभव में विलक्षणता है। अन्त में मोक्ष-स्वरूप को भी बताया है। प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप ही छन्द का प्रयोग है। भाषा-प्रयोग में रचनाकार का संस्कृत पाण्डित्य उभर कर हिलोरें लेता हुआ प्रतीत होता है।

शिष्य उवाच :

चौपई : हे स्वामिन तुम ब्रह्म अनूपं। मैं करि जांनै देह स्वरूपं।
यह मोतें जु भयौ अपराधा। क्षमा करहु मम मेटहु बाधा ॥1॥
हौं तो भयौ कृतारथ तब ही। तुम से सद्गुरु भेटे जब ही।
बचन सुनाइ कपाट उघारे। मेरे संशय सकल निवारे ॥2॥
किंचित् मात्र रही आशंका। वह अब तुम तें जैहैं बंका।
जे तुम तीन सिद्धांत बषांने। ते प्रभु मैं नीकैं करि जांने ॥3॥
अब तुम तुरियातीत बतावहु। ता पीछै अद्वैत सुनावहु।
तुम बिन अवर कहै नहिं कोई। तुम ही तें तुम ही सा होई ॥4॥

श्री गुरुवाच :

दोहा : साधु साधु शिष धन्य तूं, भलो प्रश्न तैं कीन।
या कौ उत्तर अब कहौं, द्वैत मिटै भ्रम लीन ॥5॥

चूर्णिका : 1. स्वामिन=स्वामी। मोतें=मुझसे। बाधा=रुकावट, अवरोध।
2. कृतारथ=कृतार्थ, कृतकृत्य। भेटे=मिले, प्राप्त हुए। कपाट उघारे=आवरण हटाए, पट अनावृत किए, ज्ञान-चक्षु उद्घाटित किए। निवारे=निवारण किए।
3. किंचित् मात्र=थोड़ी-सी। बंका=वक्र, बाँकी।
4. तुरियातीत=तुरीय अवस्था से परे। तुम ही तें तुम ही सा होई=तुम से ही, तुम्हारी ही कृपा से, तुम जैसा अर्थात् आत्मस्वरूप होना सम्भव है।
5. साधु-साधु=अच्छा! अच्छा! प्रशंसा और प्रसन्नता सूचक शब्द। कीन=किया, पूछा। द्वैत=द्वित्व, द्विविधा। लीन=लय, निवृत्त हो जाए, मिट जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपई : श्रवन मनन कीयौ तें नीकें। निदध्यास पुनि जान्यौं टीकें।
अब साक्षात्कार तूं होई। तब संदेह रहै नहिं कोई ॥6॥

दोहा : तुरिया साधन ब्रह्म कौ, अहं ब्रह्म यौं होइ।
तुरियातीत हि अनभवै, हूं तूं रहै न कोइ ॥7॥

इंदव : जाग्रत तौ नहिं मेरे विषै कछु स्वप्न सु तौ नहिं मेरे विषै है ॥
नाहिं सुखोपति मेरे विषै पुनि विश्वहु तैजस प्राज्ञ पषै है ॥
मेरे विषै तुरिया नहिं दीसत याहि तें मेरो स्वरूप अषै है ॥
दूर तें दूर परैं तें परैं अति सुन्दर कोउ न मोहि लषै है ॥8॥

शिष्य उवाच :

दोहा : हे प्रभु दूर परै कह्यौ, उरै कहा अब और।
यह तौ भ्रम भारी भयौ, गुरु सु बतावहु ठौर ॥9॥

श्री गुरुरुवाच :

दोहा : उरै परै कछुवै नहीं, वस्तु रही भरपूर।
चतुरभाव तोसौं कहौं, तब भ्रम ह्वै हैं दूर ॥10॥

शिष्य उवाच :

चौपई : हे प्रभु चतुरभाव समुझावहु। भिन्न भिन्न करि अर्थ बतावहु ॥
द्वैत मिटै सब ही भ्रम छीजै। निःसन्देह मोहि अब कीजै ॥11॥

---

6. टीकें=टीका पूर्वक, भली प्रकार से। निदिध्यास : श्रवण और मनन के पश्चात्, ज्ञान परिपक्वता केलिए निदिध्यास (-पुनः-पुनः चिन्तन) आवश्यक है।
7. तुरिया अवस्था : तुरिया दशा में जब साधना चलती है तो वह अद्वैत अनुभव की अपरोक्षानुभूति होती है। तब 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्य की सिद्धि हो जाती है। तुरियातीत=तुरीय से परे की दशा। तुरीय अवस्था साधना की चतुर्थ दशा है। इसके निवृत्त होने पर 'स्वातमाराम' परम पद की प्राप्ति हो जाती है। यही मोक्ष पद है। इस निर्विकल्प समाधि में ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय अथवा ध्याता-ध्यान और ध्येय एकमेक होकर 'हूं तूं रहै न कोइ' की दशा हो जाती है। यही अद्वैत ज्ञान की सिद्धि है।
8. पष=पक्ष में। अषै स्वरूप=अक्षय स्वरूप। लषै=देखता है।
9. उरै=निकट, समीप। ठौर=स्थान, स्थिति।
10. उरै परै=निकट-दूर, इधर-उधर। वस्तु=तत्त्व।
11. प्रभु=स्वामी, गुरु। द्वैत=द्वितीय भाव, द्वैत सिद्धान्त। छीजै=क्षय हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुरुवाच :

चौपइया : शिष्य प्रागभाव सो प्रथमहिं कहिये, नीकी विधि समुझाऊँ।
पुनि अन्यौअन्याभाव दूसरौ सोऊ तोहि सुनाऊँ ॥
अरु सुनि प्रध्वंसाभाव तीसरौ ताकौ कहौं विचारा।
जब चतुरभाव अत्यंतहि जांनहि तब छूटै भ्रम सारा ॥12॥

---

12. नीकी बिधि = भली प्रकार से। चतुरभाव = चार प्रकार के अभाव—1. प्रागभाव, 2. अन्योन्याभाव, 3. प्रध्वंसाभाव, 4. अत्यन्ताभाव। **टिप्पणी** : सुन्दरदासजी ने इस पंचम उल्लास के छन्द 9—45 तक 'अभावों' का वर्णन किया है। यह 'अभाव' वर्णन सांख्य सिद्धान्त के अनुसार नहीं लगता। अपितु, न्याय और वेदान्त मत के अनुरूप लगता है। क्योंकि, सांख्य मत द्वैतवादी है और **'सत्कार्यवाद'** का प्रतिपादन करने वाला है [दे०—सांख्य सूत्र, सांख्य तत्त्व कौमुदी, कारिका 9, —श्रीमद्० गीता, 2/16]। वहाँ कारण और कार्य दोनों को सत् कहा गया है, जबकि वेदान्त 'प्रकृति' को मिथ्या और असत् मानता है। इसीलिए वहाँ 'अभावों' द्वारा कारण-कार्य की सिद्धि का क्रम वर्णित है। यह अभाव-प्रतिपादन 'वैशेषिक दर्शन के अनुसार लगता है। क्योंकि वहाँ भी प्रधानतः चार अभाव माने गए हैं। [दे०, महर्षि कणाद कृत—वैशेषिक सूत्र, अ० 9/आह्निक 1/सूत्र 1-15]। वैशेषिक सूत्रों में सत्-असत् के विवेचन के साथ ही साथ अभावों का वर्णन [-वैशेषिक सूत्र अ० 1/आह्निक 1/सू० 4] चतुर्थ सूत्र के भाष्य में किया गया है। किन्तु यहाँ सुन्दरदासजी की मनीषा ने वेदान्त प्रतिपादित अभाव बताते हुए न्याय-वैशेषिक में उल्लिखत चार अभावों की सम्यक् समीक्षा की है। वेदान्त का पाँचवाँ अभाव 'अनुपलब्धि' एक प्रमाण है। इसीलिए उसे 'अभाव' की संज्ञा दी गई है [दे०, सन्त निश्चलदास कृत 'वृत्ति प्रभाकर', प्रकाश 6]। न्याय वैशेषिक में 'अभाव' ज्ञान इन्द्रियजन्य एवं प्रत्यक्ष माना गया है। जबकि वेदान्त में यह इन्द्रियजन्य ज्ञान नहीं माना गया। 'वृत्ति प्रभाकर' के अनुसार वेदान्त प्रतिपादित पाँच अभाव इसप्रकार हैं : प्रथम दो प्रकार—1. अन्योऽन्याभाव 2. संसर्गाभाव। फिर संसर्गाभाव के चार प्रकार—1. प्रागभाव, 2. प्रध्वंसाभाव, 3. सामयिकाभाव, 4. अत्यन्ताभाव। सुन्दरदास ने सामयिकाभाव नहीं बताया। उन्होंने शेष चारों अभावों के उदाहरण देकर सम्यक रूप से उन्हें समझाया है। वेदान्त में ये अभाव विनाशी अथवा सान्त सिद्ध होते हैं। अर्थात् कोई अभाव नित्य नहीं है। क्योंकि ये अभाव माया के 'कार्य' हैं। वहाँ 'माया' अनात्म और मिथ्या मानी गई है। वहाँ सम्पूर्ण प्रपंचों का त्रैकालिक अभाव है। वेदान्त में तो आत्मन् ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही नित्य है। परमार्थ दृष्टि से प्रपंच वहाँ नहीं रह सकता। यही प्रपंच का अत्यन्ताभाव 'अनुपब्धि' नामक अभाव कहलाता है। अभावों के क्रमशः उदाहरण मूल पाठ के साथ-साथ दिए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुरभाव की सूचनिका :

सवइया : मृतिका महिं अभाव घटनि कौ प्रागभाव यह जानि रहाय ।
ता मृतिका के भाजन बहु विधि अन्योअन्याभाव गहाय ।।
मृतिका मध्य लीनता सब की यह प्रध्वंसाभाव लहाय ।
न कछु भयौ न अब नहिं ह्वै है यह अत्यंताभाव कहाय ।।13।।

अथ प्रागभाव :

मनहर : पहिलैं जब कछुव न होतौ प्रपंच यह,
एक ही अखंड ब्रह्म विश्व कौ अभाव है ।
जैसैं काठ पांहन सुलप अति देषियत,
तिन मैं तौ नहीं कछु पूतरी बनाव है ।।
जैसैं कंचन की राशि, कंचन विशेषियत,
ताहू मध्य नहीं कछु भूषन प्रभाव है ।
जैसैं नभ मांहि पुनि बादर न जानियत,
सुन्दर कहत शिष इहै प्रागभाव है ।।41।।

अन्योन्याभाव :

सवइया : एक भूमि में भाजन बहु बिधि कूण्डा करवा हण्डिया माट ।
चपनी ढकन सराव गगरिया कलश कहाली नाना घाट ।।
नाम रूप गुन जूवा जूवा पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट ।
सुन्दर कहत शिष्य सुनि ऐसैं अन्योन्याभाव विराट ।।15।।

---

13. मृतिका = मिट्टी, मृत्तिका । घटनि = घट [बहु व०] । भाजन = पात्र । गहाय = ग्रहण कीजिए, स्वीकार कीजिए । लीनता = लय । न कछु भयौ न अब नहिं ह्वै है = न कुछ हुआ, न अब है, न आगे होगा । इस छन्द में चतुर अभाव का उल्लेख [-सूचना] भर है । चारों अभाव आगे क्रमशः वर्णित हैं ।

14. **प्रागभाव** : मिट्टी में घट-पात्र नहीं दिखाई देते, यह 'प्रागभाव' है । तात्पर्य यह है कि मिट्टी से घट उत्पन्न तो होता है, पर उत्पत्ति से पूर्व उसका अभाव दिखाई देता है । उत्पत्ति होने पर वह अभाव लीन हो जाता है । इस क्रम में यह अनादि व्यवस्था वाला होने के कारण इसे 'अनादि सांतो यो भावः स प्रागभावः' कहा है । सृष्टि के प्रारम्भ में एक अखण्ड ब्रह्म था और सृष्टि का कोई प्रपंच नहीं था । इस कथन की पुष्टि में काष्ठ, पाषाण, कंचन, आकाश, मृत्तिकादि के रहते हुए भी पुतली, मूर्ति, आभूषण, बादल, पात्रादि दिखाई नहीं देते ।

15. **अन्योन्याभाव** : इस अभाव द्वारा यह प्रतिपादित होता है कि एक पदार्थ में दूसरा पदार्थ नहीं रह सकता । एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का अभाव होता है, जैसे घट का पट में अभाव रहता है और पट का अभाव घट में । इसका मूल विवेचन इसप्रकार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनहर : एक भूमि कौ विकार कंचन कहावत है,
ताहू के बिबिध भांति भूषन अनन्त हैं।
मुद्रिका कंकन कंठमाला सीस फूल पुनि,
कुण्डल बलय क्षुद्रघण्टिका गनन्त हैं।।
नाम रूप गुन ब्यवहार सब भिन्न-भिन्न,
अंग-अंग आपुनी ही ठौर लै ठनंत हैं।
ऐसी भांति शिष्य सुनि सुन्दर कहत तोहि,
विदुषहुं अन्योन्याभाव यौं भनन्त हैं।।16।।

चौपइया : शिष्य एक भूमि कौ ताम्र बिकारा ताके पात्र कहावहिं।
पुनि चरवा चरई तष्टी तबला झारी लोटा गावहिं।।
है नाम रूप गुन भिन्न-भिन्न हीं दीसहिं बिबिध प्रकारा।
यह अन्योन्याभाव सु कहिये बहुत भांति बिस्तारा।।17।।

गया है—'घटः पटो न। पटश्च घटो न।' जहाँ अभेद सम्बन्ध की विशिष्टता का अभाव न हो, वहीं 'अन्योऽन्याभाव' होता है—'तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताया भावोऽन्योऽन्याभावः।' सुन्दरदास ने इस अभाव को विस्तार से, अनेक उदाहरणों द्वारा कई छन्दों में समझाया है। भूमि=मिट्टी। भाजन=पात्र कूण्डा, करवा, हँडिया, मटका-मटकी[-गगरिया], चपनी[-उथला कटोरा-कटोरी], ढकना, सराव [-सकोरा], कलश, कहाली [देश०, एक प्रकार का वाद्य] आदि। जूवा जूवा=जुदा-जुदा, अलग-अलग। विराट=व्यापक, बड़ा।

16. भूमि बिकार=भूमि का बाह्य परिवर्तन विकार। कंचन=स्वर्ण। भूषन=भूषण, आभूषण। मुद्रिका=मुँदरी, अँगूठी। कंकन=कंकण। कंठमाला=ग्रीवा-हार या माला। सीसफूल=शीशफूल, आभूषण विशेष। बलय=वलय, बाजूबन्द। क्षुद्र घण्टिका=घुँघरू। गनन्त हैं=गिने जाते हैं। विदुषहुं=विद्वान् मनीषी लोग। भनन्त हैं=कहते हैं।

17. ताम्र=ताँबा। ताम्र पात्र=ताँबे के पात्र—चरवा [-ताम्र कलश], चरई [-ताँबे का बड़ा पात्र, जिसमें पशुओं को पानी पिलाया जाता है या चारा खिलाया जाता है], तबला [अरबी 'तबल', वाद्य विशेष]। तष्टा=तश्त [फा०] बड़ा थाल, तश्तरी। अथवा तष्टा [सं०] > तष्टी [बढ़ई द्वारा]=छील-छाल कर गढ़ा पात्र। झारी [-ताँबे का टोंटीदार पात्र, गंगासागर], लोटा [-ताँबे या अन्य धातु का गोलाकार जलपात्र] आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंडलिया : लोहा प्रगट सु देषिये सोऊ भूमि विकार।
बिबिध भांति ताके भये जगत मांहि हथियार।।
जगत मांहि हथियार गुरज समशेर कटारी।
बरछी उ गदा भालि कतरनी छुरी संवारी।।
नामरूप गुन भिन्न जहां जैसौ तहं सोहा।
अन्योन्याभाव शिष्य सुनि एकहि लोहा।।18।।

छप्पय : भूमि विकार कपास भयौ नाना बिधि दरसै।
षासा मलमल सहन सितारा निपजहिं सरसै।।
सिरी साफ बाफता अधोतर भैरव कहिये।
परकाला अरु गजी गनत कहुं वोर न लहिये।।
सुनि शिष्य कहां लौं वरनियहि अन्त नहीं निश दिन कहै।
इहिं अन्योन्याभाव तें कारण कारय सुधि लहै।।19।।

गीतक : पुनि एक भूमि विकार तरु विस्तार बहु बिधि देखिये।
जर मूल शाखा पत्र पुष्पं फल अनेकनि पेषिये।।
तिहिं नाम रूप रु गुन सु भिन्नहिं बहुत भाँति बषानिये।
सो भाव अन्योअन्य कहिये शिष्य निश्चय मानिये।।20।।

छप्पय : जल विकार अब सुनहु फेन बुद्बुदा तरंगा।
वोला पाला जानि सु तौ जल ही कौ अंगा।।
अग्नि विकार मशाल चिराकहु दीपक जोये।
वायु विकारहि जानि वघूरा आँधी होये।।
आकाश बिकार सु अभ्र हैं अभ्र हैं ते नाना बिधि देषयहिं।
यह अन्योन्याभाव शिष पंच तत्वमय पेषयहिं।।21।।

---

18. बिबिध भाँति=अनेक प्रकार के। लोह हथियार=लोहे के हथियार। गुरज=[फा० गुर्ज] गदा, सोटा। समशेर=तलवार। कटारी=कट्टार, दुधारी। बरछी=भाले का लघु रूप। भालि=भाला। कतरनी=कैंची, कतुआ, कर्तनी, कर्त्री। छुरी=छुरिका।

19. कपास=रुई। कपास-नाना बिधि दरसै=कपास के ही अनेक रूप विकार हैं—षासा [-खासा, झीना श्वेत कपड़ा], मलमल, सहन [रेशमी कपड़ा], सितारा [चमकदार तारों से बुना वस्त्र], सिरी [-चूनरी], साफ [-साफा], वाफता [फा० बाफना, बूटीदार रेशमी कपड़ा], अधोतर [-अधोवस्त्र], भैरव [वस्त्र विशेष], परकाला [-चौकोर बिछावन], गजी [-मोटा देसी कपड़ा, गाढ़ा] आदि।

20. तरु=वृक्ष। जर=जड़। मूल=जड़। शाखा=शाखाएँ टहनी। पत्र=पत्ते। पेषिये=देखिए।

21. जल विकार=जल के नाना रूप—फेन [-झाग], बुदबुदा [-बुलबुला], तरंग [-लहर], वोला [-ओला], पाला [-तुषार]। अग्नि विकार=अग्नि के अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : एक ब्रह्म कारण जगत, कारय है बहु भांति।
चारि षांनि विस्तार यह, चौराशी लष जाति ।।22।।

अथ प्रध्वंसाभाव :

चौपइया : यह भूमि विकार भूमि महिं लीनं जल विकार जल मांहीं।
पुनि तेज विकार तेज महिं मिलि है वायु वायु मिलि जांहीं ।।
आकाश विकार मिलै आकाशहिं कारण रहै निदानं।
शिष यह प्रध्वंसाभाव सु कहिये जो है सो ठहरानं ।।23।।

दोहा : जो जातें कारय भयौ सो ताही मैं छीन।
ऐसैं ही यह जगत सब होइ ब्रह्म महिं लीन ।।24।।

रूप—मशाल, चिराक [-चिमनी], दीपक [-दिया]। वायु विकार=वायु के नाना रूप—बधूरा [-बवण्डर], आँधी। आकाश विकार=आकाश में अनेक रूप—अभ्र [-बादल] के अनेक रूप। पंच तत्वमय पेषयहिं=अन्योन्याभाव के उक्त सारे उदाहरण पंच तत्त्वमय ही हैं।

22. एक ब्रह्म कारण=जगत् का मूल 'कारण' ब्रह्म ही है, पर 'कार्य' रूप में यह जगत् अनेक रूपों में दिखाई देता है। चौराशी लष जाति=चौरासी लाख योनियों में जन्मे प्राणी।

23. **प्रध्वंसाभाव**=ध्वंस या प्रध्वंस के रूप में अभाव। 'घटो ध्वस्तः', 'घट का नाश हो गया।' अर्थात् मिट्टी से निर्मित हुआ 'घड़ा' जब पटकने या पत्थर-दण्डे से तोड़ा जाए, तो घड़े के टूटे हुए टुकड़ों को देखकर कहा जाएगा कि घट टूट गया, घड़े का नाश हो गया। घड़े का यह नाश या अभाव ही 'प्रध्वंसाभाव' कहलाता है। किसी 'कार्य' के नाश होने पर ही प्रध्वंसाभाव होता है। इसीलिए यह अभाव 'आदि युक्त' और अनन्त है। कारण रहे निदानं=प्रध्वंसाभाव में, कार्य के विनाश होने पर भी, कारण सदा विद्यमान रहता है। जो है सो ठहरानं=जो है वही ठहरता है।

24. कारय=कार्य, 'कारण' का परिणाम। छीन=क्षीण, क्षय। लीन=लय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ अत्यन्ताभाव :

मनहर : इच्छा हीन प्रकृति न महतत्व अहंकार,
त्रिगुन न शव्दादिं व्योम आदि कोइ है।
श्रवणादि बचनादि देवता न मन आदि,
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ है॥
स्वेदज न अण्डज जरायुज न उदभिज,
पशु ही न पक्षी हीं पुरुष ही न जोइ है।
सुन्दर कहत ब्रह्म ज्यौं को त्यौं ही देषियत,
न तौ कछु भयौ अब है न कछु होइ है॥25॥

छप्पय : कहत शशा के शृङ्ग आँषि किन हूं नहिं देषै।
बहुरि कुसुम आकाश सु तौ काहू नहिं पेषै॥
त्यौं ही बंध्या पुत्र पिंघूरै झूलत कहिए।
मगजल मांहीं नीर कहूं, ढूंढत नहिं लहिये॥
रजु मांहि सर्प नहिं काल त्रय, शुक्ति रजत सी लगत है।
शिष यह अत्यन्ताभाव सुनि, ऐसें ही सब जगत है॥26॥

---

25. अत्यन्ताभाव : जो अभाव आत्यन्तिक रूप में विद्यमान रहता है। अर्थात् सदा बना रहने वाला अभाव अत्यन्ताभाव है। तीनों कालों में जिसकी न उत्पत्ति होती है और न नाश। जो त्रैकालिक, नित्य एवं एक रस हो, वह अत्यन्ताभाव। उदाहरण केलिए 'वायु' में 'रूप' का, आकाश में आकार का अभाव अत्यन्ताभाव के उदाहरण हैं। इसीलिए यह अभाव अनादि और अनन्त है। **'नित्य संसर्गाभावत्वमत्यन्ताभावत्वं'** अर्थात् तीनों कालों में होते रहने वाले वस्तु के अभाव के कारण यह 'अत्यन्ताभाव' कहलाता है। ब्योम=व्योम, आकाश। सूक्षम=सूक्ष्म। एक ही न दोइ है=न एक है न दो। ये तो विशेषण उपाधियाँ हैं। स्वेदज= स्वेद-प्रस्वेद से उत्पन्न प्राणी। चार खानों में से 'स्वेदज' खानि एक है। अण्डज= अण्डे से उत्पन्न प्राणी। चार खानों में से प्राणि-योनियों की दूसरी खानि [-जाति]। अण्डज जरायुज='जरा' [-जरायु-गर्भ] से उत्पन्न प्राणी, पिण्डज, चार खानि के जीवों में से तीसरे प्रकार के। उद्भिज=उद्भिज्ज [सं०], भूमि फोड़कर निकलने वाली वनस्पति-वृक्ष-लता, गुल्मादि जाति के उद्भिद प्राणी। जोइ=स्त्री।

26. शशा के शृङ्ग=खरगोश के सींग। आँख से किसी ने खरगोश के सींग नहीं देखे। अतः अत्यन्ताभाव का उदाहरण। असम्भव प्रमाण। इसीप्रकार अन्य उदाहरण भी हैं। आकाश कुसुम=गगन पुष्प, आसमान का फूल, असम्भव प्रमाण। बंध्या पुत्र=वन्ध्या स्त्री के पुत्र, असम्भव प्रमाण। मृगजल=रेत [-रेगिस्तान] में जल, मृगतृष्णा, असम्भव सिद्धि। पिंघूरै=हिंडोला। रजु=रस्सी। शुक्ति=सीप। रजत=चाँदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्धड़ी :

शिष यह अत्यन्ताभाव होइ। नहिं उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कोइ।
नहिं आदि न अंत न मध्य भाव। नहिं सृष्टा सृष्टि न को उपाव ।।27।।
नहिं कारण कारय द्वै उपाधि। नहिं ईश्वर जीव परै समाधि।
नहिं तत्व अतत्व विभाग भिन्न। नहिं जोति अजोति कछू न चिन्ह ।।28।।
नहिं काल न कर्म सुभाव आहि। नहिं विद्याविद्या लगइ काहि।
नहिं राग बिराग न बंध मुक्त। नहिं रूप अरूप अयुक्त युक्त ।।29।।
नहिं आहि प्रमाता कौ प्रमाण। नहिं है प्रमेय नहिं प्रमा जाण।
नहिं लय बिक्षेप न निकट दूर। नहिं दिवश न रजनी चन्द सूर ।।30।।
नहिं शुक्ल न कृष्ण न रक्त पीत। नहिं ह्रस्व न दीरघ घांम सीत।
नहिं अर्थ न धर्म न काम मोक्ष। नहिं पाप न पुन्य अप्रोक्ष प्रोक्ष ।।31।।
नहिं स्वर्गादिक नहिं नरक बास। नहिं त्रासक कोउ न होइ त्रास।
नहिं वेद न शास्त्र न शब्दजाल। नहिं वर्णाश्रम नहिं स्मृत्ति चाल ।।32।।
नहिं संध्या सूत्र न करन्न्यास। नहिं होम न यज्ञ न ब्रत उपास।
नहिं इष्ट उपासनहार कोइ। नहिं निर्गुण सगुण न भेद होइ ।।33।।

27-30. शिष=शिष्य। प्रलय=लय, नाश, तिरोभाव। सृष्टा=रचनाकार। सृष्टि=संसार। उपाव=उत्पत्ति। कारण कारय=कार्य-कारण शृंखला। जोति=ज्योति, प्रकाश। अजोति=ज्योति रहितता अर्थात् अन्धकार। सुभाव आहि=स्वभाव है। विद्याविद्या=विद्या और अविद्या, ज्ञान-अज्ञान। अयुक्त=विच्छिन्न। लय-विक्षेप=प्रलय-साम्य और सृष्टि-विक्षेप। दिवश=दिवस, दिन। सूर=सूर्य।

31-38. रक्त पीत=लाल-पीला। घांम-सीत=धूप और शीत। अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष=पुरुषार्थ चतुष्टय। पाप-पुन्य=पाप-पुण्य। अप्रोक्ष-प्रोक्ष=प्रत्यक्ष और परोक्ष। त्रासक=त्रास देने वाला। त्रास=भय। शब्द जाल=शब्द [-वाणी] विस्तार, शब्द-संसार। वर्णाश्रम=चतुर्वर्ण व्यवस्था। स्मृति चाल=वेद-स्मृति का विधान। संध्या=सन्ध्या विधि। सूत्र=यज्ञोपवीत अथवा सिद्धान्त। होम=यज्ञ। ब्रत उपास=व्रतोपासना। उपासनहार=उपासक। इष्ट=उपास्य। सेव्य-सेवक=स्वामी और सेवक। सेव=सेवा। नवधा=नवधा भक्ति। दशधा=दस प्रकार की भक्ति। पराभक्ति=निर्गुण उपासना। सालोकादि=सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य ये चार प्रकार की मुक्ति। निर्विकार=अनासक्त। कर्त्ता-कर्म-क्रिया=कर्म-त्रिपुटी जो एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। रक्त=आसक्त। विरक्त=अनासक्त। अबुद्ध बुद्ध=ज्ञान रहित-बोध युक्त। अथीर थीर=स्थिर-अस्थिर। अडोल-डोल=स्थिर और चलायमान। माप अमाप=परिमाण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहिं सेव्य न सेवक सेव कीन। नविं हेत न प्रीति न प्रेम लीन।
नहिं नवधा दशधा पराभक्ति। नहिं सालोकादिक चारि मुक्ति ।।34।।
नहिं साधक साधन साध्य सार। नहिं सिद्धि न सिद्ध न निर्विकार।
नहिं कर्त्ता कर्म क्रिया न कोइ। नहिं द्रष्टा दर्शन दृश्य होइ ।।35।।
नहिं व्यक्त अव्यक्त अशुद्ध शुद्ध। नहिं रक्त विरक्त अबुद्ध बुद्ध।
नहिं तर्क वितर्क अधीर धीर। नहिं शून्य अशून्य अथीर थीर ।।36।।
नहिं चिन्त अचिन्त अडोल डोल। नहिं माप अमाप अतोल तोल।
नहिं कृश स्थूल नहिं युवा बाल। नहिं जरा मृत्यु न अकाल काल ।।37।।
नहिं जाग्रत स्वप्न न सुषुपतिश्च। नहिं तुरिया त्रय साक्षी मतिश्च।
नहिं ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञानगम्य। नहिं ध्ये ध्याता नहिं ध्यानरम्य ।।38।।

दोहा : जो कछु सुनिये देषिये, बुद्धि बिचारै जाहिं।
सो सब बाग बिलास है, भ्रम करि जांनहुं ताहि ।।39।।
यह अत्यन्ताभाव है, यह ई तुरियातीत।
यह अनुभव साक्षात है, यह निश्चय अद्वीत ।।40।।
नाहीं नाहीं करि कह्यौ, है है कह्यौ वषांनि।
नाहीं है के मध्य है, सो अनुभव करि जांनि ।।41।।
यह ई है पर यह नहीं, नाहीं है है नांहि।
यह ई यह ई जांनि तू, यह अनुभव या मांहि ।।42।।
अब कुछ कहिबे को नहीं, कहैं कहाँ लौं बैंन।
अनुभव ही करि जांनिये, यह गूँगे की सैंन ।।43।।
जो तेरैं संदेह कछु, रह्यौ रंच हू होइ।
तौ शिष अज हूं प्रश्न करि, फिर समुझाऊँ तोहि ।।44।।

परिमाण हीनता। कृश स्थूल=पतला-मोटा। जरा मृत्यु=बुढ़ापा और मृत्यु। सुषुपतिश्च=सुषुप्ति। मतिश्च=मति-बुद्धि। ज्ञे ज्ञाता और ज्ञान=ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान। ध्ये=ध्येय, ध्यातव्य।

39-44. बुद्धि बिचारै=बुद्धि विचार करती है। बाग बिलास=वाणी विलास, वाणी का उपक्रम। यह ई=यही। अद्वीत=अद्वैत। नाहीं है के मध्य=विशेषण-उपाधि रहितता के कारण ब्रह्म को **'नाहीं है'** के बीच बताया जाता है। उसे **'यह ई है पर यह नहीं, नाहीं है है नांहि।'** कहा गया है। कहैं कहाँ लौं बैंन=वाणी कहाँ तक कहे अथवा कह सकती है। गूंगे की सैंन=मूक व्यक्ति का संकेत। अर्थात् उस सत्ता के विषय में पूर्णतः स्पष्ट और शब्दों में कह पाना सम्भव नहीं। रंच=थोड़ा भी, किंचित मात्र भी। अज=अबहूं भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य उवाच :

चौपई : हे स्वामिन् शंसय अब भाग्यौ। वचन तुम्हारे सोवत जाग्यौ।
अब तौ सर्व स्वप्न करि जान्यौ। निश्चय मम संदेह बिलान्यौ ॥45॥

चर्पट :

क्वाहं क्वत्वं क्व च संसार:। क्व च परमारथ क्व च व्यवहार: ॥
क्व च मे जन्मं क्व च मे मरणं। क्व च मे देह: क्व च मे करणं ॥46॥
क्व च मे अद्वय क्व च मे द्वैतं। क्व च मे निर्भय क्व च मे भीतं॥
क्व च माया क्व च ब्रह्म विचार:। क्व च मे प्रवृत्तिहि निबृत्ति विकार: ॥47॥
क्व च मे ज्ञानं क्व विज्ञानं। क्व च मे मन निर्विष विष जानं॥
क्व च मे तृष्णा क्व वितृष्णत्वं। क्व च मे तत्वं क्व च हि अतत्वं ॥48॥
क्व च मे शास्त्रं क्व च मे दक्ष:। क्व च मे अस्ति हि नास्तिहि पक्ष: ॥
क्व च मे काल: क्व च मे देश:। क्व च गुरु शिष्य: क्व च उपदेश: ॥49॥
क्व च मे ग्रहणं क्व च मे त्याग:। क्व च मे विरति: क्व च मे राग: ॥
क्व च मे चपलं क्व च निस्पंदं। क्व च मे द्वन्द्वं क्व च निर्द्वंद्वं ॥50॥
क्व च मे बाह्याभ्यंतर भासं। क्व च अध ऊर्द्ध तिर्य प्रकाशं॥
क्व च मे नाड़ी साधन योगं। क्व च मे लक्ष विलक्ष वियोगं ॥51॥
क्व च नानात्वं क्व च एकत्वं। क्व च मे शून्याशून्य समत्वं॥
यो अवशेषं सो मम रूपं। बहुना किं उक्तं च अनूपं ॥52॥

---

45. शंसय=संशय, सन्देह। भाग्यौ=दूर हुआ। सोवत जाग्यौ=नींद [-मोह-अज्ञान] से जागे हुए [-बोधमय] के समान। सर्व स्वप्न=सब कुछ स्वप्न है, 'सत्य नहीं' यह जान लिया है। मम=मेरा। बिलान्यौ=समाप्त हुआ, तिरोहित हुआ।

46-52. क्वाहं=मैं कौन हूँ? क्वत्वं=तुम कौन हो? च=और। परमारथ=परमार्थ, परम लक्ष्य। मे=मेरा। जन्मं=जन्म। मरणं=मृत्यु। देह:=शरीर। करणं=इन्द्रियादि माध्यम। अद्वय=एक। द्वैतं=द्वैत भाव। भीतं=भय। ब्रह्म-विचार:=ब्रह्म सम्बन्धी विचार। विकार:=विकृति। तृष्णा=आसक्ति। वितृष्णत्वं=वितृष्णा, उदासीनता। दक्ष:=चातुर्य, सावधान। अस्ति=है, आस्तिकता। नास्ति=नास्तिकता। काल:=समय [-बोध]। देश:=स्थान [-बोध]। ग्रहणं=ग्रहण, प्राप्ति। विरति:=वैराग्य, विरक्ति। राग:=आसक्ति। चपलं=चंचलता। निस्पंदं=नीरवता। द्वन्द्व=संघर्ष। निर्द्वंद्वं=विश्राम दशा। वाह्याभ्यंतर भासं=अन्दर-बाह्य प्रतीति। तिर्य=तिर्यक, तिरछा। अध ऊर्द्ध=नीचे-ऊपर। नाड़ी साधन=योग प्रतिपादित नाड़ी शोध। विलक्ष=लक्ष्य रहितता। नानात्वं=नानारूपता। एकत्वं=एकत्व, एकरूपता। शून्याशून्य=शून्य और अशून्य। समत्वं=समता। यो=जो। अवशेष=शेष है, बच रहा है। मम रूपं=वही मेरा रूप है। बहुना किं=और अधिक क्या कहा जाए। उक्तं=उक्ति। अनूपं=अनुपम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : यह मैं श्री गुरुदेव कौ, अनुभव कह्यौ सुनाइ।
जो प्रभु कौं परिश्रम कियौ सो फल प्रगट्यौ आइ ॥53॥

श्रीगुरुरुवाच :

चौपई : हे शिष जो इच्छा करि सोई। तोहि न कतहूं बाधा होई।
तूं निर्धूम भयौ निर्दोषा। तैं अब पायौ जीवन मोषा ॥54॥
जौ मैं कह्यौ सु हृदये आन्यौ। ताही क्रम तें ब्रह्म हि जान्यौ।
आपु ब्रह्म जग भेद मिटायौ। ज्यौं है त्यौंहीं निश्चय आयौ ॥55॥
देषै सुनै स्पर्शय बोलै। सूँघय क्रिया करै कहुं डोलै।
षांन पांन बस्त्रादिक जोई। यह प्रारब्ध देह कौ होई ॥56॥

दोहा : निरालम्ब निर्वासना, इच्छाचारी येह।
संस्कार पवनहिं फिरै, शुष्क पर्ण ज्यौं देह ॥57॥

---

53. परिश्रम=श्रम, कष्ट, तकलीफ। फल प्रगट्यौ=फल प्राप्त हुआ, ब्रह्म ज्ञान का अनुभव हुआ।

54-56. बाधा=रुकावट, अवरोध। निर्धूम=धूम-धुआँ रहित, संशय रहित। निर्दोषा=निर्दोष, दोष-क्लेश रहित। जीवन मोषा=जीवन मोक्ष, जीवन्मुक्ति। आन्यौ=धारण किया। ताही क्रम तें=उसी क्रम से। भेद=अन्तर। निश्चय आयौ=विश्वास हुआ। स्पर्शय=स्पर्श करता है। सूंघय=सूंघता है। डोलै= भ्रमण करता है। षांन पांन=खाना-पीना। जोई=जो भी। प्रारब्ध=पूर्व संचित कर्म [-फल]।

57. निरालम्ब=निराधार, अवलम्ब रहित, निराकार। निर्वासना=वासना-आसक्ति रहितता। इच्छाचारी=स्वतन्त्र, इच्छानुसार आचरण करने वाला। संस्कार= संस्कारवश, प्रारब्ध कर्म के फलस्वरूप। संस्कार-पवनहि फिरै=संस्कार रूपी पवन के प्रवाह से फिरता है। शुष्क पर्ण=सूखा पत्ता। शुष्क पर्ण ज्यौं देहं=सूखे पत्ते के समान यह शरीर संस्कार रूप पवन के प्रवाह में फिरता रहता है अर्थात् जीवन की क्रिया करता दिखाई देता है।

टिप्पणी : कहते हैं कि यह दोहा सुन्दरदास के अन्त समय की साखी है। इसमें प्रतिपादित 'जीवन्मुक्ति' 'सांख्य' प्रतिपादित नहीं है। यह वेदान्त का ही पक्ष है। इसमें जीवन में ही मुक्ति की संकल्पना है। ज्ञान-समुद्र में उल्लिखित **'सांख्य मत'** पर वेदान्त की स्पष्ट छाप है। 'सांख्य' में प्रायः 'ब्रह्म' शब्द का प्रयाग बहुत कम किया गया रहता है। जबकि, वेदान्त पक्ष-प्रतिपादन में सांख्य के प्रधान, सत्कार्यवाद, प्रकृति और कार्य रूप जगत् की सत्ययता, जो सांख्य सिद्धान्त के पक्ष में है, उनकी उपेक्षा हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : जीवन मुक्त सदेह तूं, लिप्त न कबहूं होइ।
तोकौं सोई जानि हैं, तव समान जे होइ ॥58॥
जो या ज्ञान समुद्र महिं, डुबकी मारै आइ।
सोई मुक्ताफल लहै, दुख दरिद्र सब जाइ ॥59॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र की, महिमा कहिये कौंन।
अमृत रस सौं है भर्‌यौ, तुम जिनि जांनहु लौंन ॥60॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र महिं, बहुते रत्न अमोल।
मृतक होइ सो पैठि है, पैठि न सकई लोल ॥61॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र कौ, वारापार न अन्त।
बिषई भागै झझकि कैं, पैठै कोई सन्त ॥62॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र की, जो चलि आवै तीर।
देषत ही सुख ऊपजै, निर्मल जल गंभीर ॥63॥
यह ई ज्ञान समुद्र है, यह गुरु शिष संवाद।
सुन्दर याहि कहै सुनै, ताकैं मिटहिं विषाद ॥64॥

---

58. सदेह=देह सहित, देह धारण किए हुए ही। लिप्त=आसक्त। तव=तुम्हारे।
टिप्पणी : 59-66 तक के सभी दोहों में **'ज्ञान-समुद्र'** ग्रन्थ की फलश्रुति अर्थात् विशेषता, महिमा प्रतिपादित है। साथ ही इस ग्रन्थ का रचनाकाल [भाद्र पद, सुदि एकादशी सं० 1710 वि० को समाप्ति] दिया है।
59. डुबकी मारै=गोता लगाए, तल्लीनता से जो इसकी गहराई [-विचार चिन्तन] में प्रवेश करता है। मुक्ता फल=मोती, मुक्ति [-मोक्ष], बहुमूल्य तत्त्व।
60. अमृत रस सौं है भर्‌यौ=इस ज्ञान-समुद्र की अतिशय विशिष्टता है कि भौतिक समुद्र तो खारे जल का होता है, पर यह ज्ञान-समुद्र **'अमृत रस'** से परिपूर्ण है। लौन=नमक, खारा।
61. रत्न अमोल=अमूल्य रत्न। मृतक होइ सो=जो मरजीवा [जीवन्मृतक] है वही। पैठि=प्रवेश। लोल=चंचल, अनिश्चय वाला।
62. वारापार=वारपार, सीमा रहित स्थिति। बिषई=विषयी, विषय लोलुप, चंचल इन्द्रियों वाला। झझकि कैं=संकुचित होकर, डर कर। पैठै=प्रवेश करता है।
63. तीर=तट पर, शरण में। देषत ही=साक्षात्कार करते ही। ऊपजै=उत्पन्न होता है। गंभीर=गहरा।
64. यह ई=यही। याहि=इसको। विषाद=खेद, क्लान्ति, क्लेश, ग्लानि। गुरु शिष संवाद=गुरु-शिष्य के संवाद रूप में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबत सत्रह सै गये, वर्ष दशोतर और।
भाद्रव सुदि एकादशी, गुरुवासर सिरमौर ।।65।।
ता दिन संपूरण भयौ, ज्ञान समुद्र सु ग्रन्थ।
सुन्दर औगाहन करै, लहै मुक्ति कौ पन्थ ।।66।।

।।इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञान समुद्रे अद्वैत सिद्धांत निरूपणं नामः पंचमोल्लासः ।।5।।

।।समाप्तोऽयं ज्ञानसमुद्रो ग्रन्थः ।। सर्व छन्द संख्या 314।।

65-66. वर्ष दशोतर और=दस वर्ष और ऊपर। संवत् सत्रह सौ से दस वर्ष ऊपर अर्थात् सं० 1710 वि०। गुरुवासर=गुरुवार। सिरमौर=श्रेष्ठ, उत्तम। सुदि =शुक्ल पक्ष। ता दिन=उस दिन। संपूरण=पूर्ण, परिसमाप्ति। औगाहन= अवगाहन। लहै=प्राप्त करेगा। मुक्ति कौ पन्थ=मुक्ति का मार्ग।

टिप्पणी : दोहा 65-66 में ग्रन्थकार ने 'ज्ञान-समुद्र' शीर्षक ग्रन्थ की समाप्ति तिथि और सम्वत् का निर्देश किया है कि इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० 1710 में भाद्रपद के शुक्ल पक्ष एकादशी दिन गुरुवार को सम्पन्न हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।।2।। सर्वांगयोग प्रदीपिका ।।

प्रवेशार्थ : चार उपदेशों [-अध्यायों] और 203 बिभिन्न छन्दों में परिसमाप्त यह योग विषयक लघु ग्रन्थ है। योग सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाली यह महत्त्वपूर्ण रचना है। 'पंच प्रहार', 'भक्तियोग', 'हठयोग', 'सांख्ययोग' इन चार उपदेशों में उन-उन योग मतों के मूल सिद्धांत, लक्षण आदि उदाहरण देते हुए समझाए गए हैं।

'सर्वांगयोग' ग्रन्थ में शास्त्रसम्मत मुक्ति के साधनों को, अनेक उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। योग के ये अंग शास्त्र सम्मत हैं। देखिए—

"मंत्रयोगो हठश्चैव राजयोगो लयस्तथा।
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्व दर्शिभिः।।"— याज्ञवल्क्य

भाषा में दर्शन को, दार्शनिक चिन्तन-सूक्ष्मता को जिस मार्मिकता एवं प्रभाव-पूर्णता से अभिव्यक्त किया है, उससे रचनाकार की विषय पारंगतता, प्रतिपादन क्षमता, अभिव्यक्ति कौशल एवं छन्द-विधान सिद्धहस्तता का आभास सहज ही हो उठता है।

।। पंचप्रहार नाम प्रथमोपदेशः ।।

ग्रन्थकारों ने मतमतान्तरों को मिथ्या-पाखण्ड बताते हुए निरस्त किया है। लगता है कि लोक में होने वाले ये सभी पाखण्डी आचरण, सुन्दरदास ने स्वयं देखे होंगे। इस प्रथम उपदेश में रचनाकार ने मिथ्या-आचरण को बड़ी हेय दृष्टि से देखा है। मूल रचना इसप्रकार है—

दोहा : बन्दन हौं गुरुदेव के, नित चरणांबुज दोइ।
आतम ज्ञान प्रगट भयौ, संशय रह्यौ न कोइ।।1।।

चूर्णिका : 1. बन्दत=वन्दन, वन्दना करता हूँ। चरणांबुज=चरण कमल। आतम ज्ञान प्रगट भयौ=आत्मज्ञान उदित हुआ। इस कथन में यह स्पष्ट संकेत है कि 'सर्वांगयोग प्रदीपिका' की रचना 'ज्ञान समुद्र' के बाद हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तियोग हठयोग पुनि, सांख्य सु योग विचार।
भिन्न भिन्न करि कहत हौं, तीनहुं कौ विस्तार ।।2।।
सनकादिक नारद मुनी, शुक अरु ध्रुव प्रह्लाद।
भक्ति योग सो इन कियौ, सद्गुरु कें जु प्रसाद ।।3।।
आदिनाथ मत्सेंद्र अरु, गोरष चर्पट मीन।
काणेरी चौरंग पुनि, हठ सु योग इनि कीन ।।4।।
ऋषभदेव अरु कपिल मुनि, दत्तात्रेय वशिष्ठ।
अष्टावक्र रु जड़भरत, इन कै सांख्य सुदृष्ट ।।5।।

2. भिन्न-भिन्न करि कहत हौं = पृथक्-पृथक् करके, स्पष्ट अन्तर के साथ कहता हूँ।

3. भक्ति योग सो इन कियौ = [उक्त] भक्ताचार्यों ने भक्तियोग की चर्या की है। इन्होंने स्वयं भक्ति योग चर्या के साथ-साथ भक्ति-शास्त्र की रचना भी की है। उदाहरण केलिए सनकादिक ने 'सनत्कुमार संहिता', नारद ने 'नारद पाञ्चरात्र' और 'नारद भक्ति सूत्र'। इसी प्रकार शुकदेव मुनि 'भागवत' में तथा ध्रुव-प्रह्लाद आदि पुराणों में भक्ति-योग के सम्पादक रहे हैं। प्रसाद = प्रसन्नता या अनुकूलता से।

4. **आदिनाथ** = आदि शिव, सदाशिव। इन्हें हठयोग का मूलाचार्य या परम गुरु माना जाता है। मत्स्येन्द्र = गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ। गोरष = गोरखनाथ। चर्पट = चर्पटीनाथ। मीन = मीननाथ। काणेरी = काणेरीनाथ। चौरंग = चौरंगीनाथ। यहाँ योग के पुरस्कर्ता नव नाथों में से सात नाथों [-योगीश्वरों] के नाम गिनाए हैं।

5. **ऋषभदेव** : आदिमुनि। जैन मत में प्रथम तीर्थंकर एवं वैदिक परम्परा में आठवें मान्य अवतार विशेष, शिव का पर्यायवाची नाम। शिव को 'ऋषभ ध्वज' भी कहा जाता है; क्योंकि उनकी ध्वजा [-पताका] में ऋषभ [-बैल] का चिह्न अंकित माना गया है। **कपिल मुनि** : सांख्य मत के प्रवर्तक महामुनि। छः अध्यायों में व्यवस्थित 524 सूत्रों वाला इनका 'सांख्य सूत्र' उपलब्ध होता है। पुराणों में 'कपिल' का नाम आता है, जो 24 अवतारों में से एक हैं। भागवत् पुराण में इन्हें विष्णु का पंचम अवतार माना गया है। योग परम्परा में ये सिद्ध पुरुष के रूप में उल्लिखित हैं। गीता में श्रीकृष्ण सिद्ध पुरुषों में स्वयं को कपिल मुनि बतलाते हैं—

'गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।'—10/26

इनका जन्मक्षेत्र गुजरात का 'सिद्धपुर' बताया जाता है और तपोभूमि 'गंगासागर संगम' मानी जाती है। **दत्तात्रेय** : ये 'महानुभाव' या 'मानभाउ' सम्प्रदाय के आदि आचार्य माने गए हैं। इनका उल्लेख 'दत्तात्रेय संहिता' में मिलता है। 'नारद पुराण' के सन्दर्भ से इनका जन्म-क्षेत्र महाराष्ट्र और यात्रा-क्षेत्र मैसूर का यादव-गिरि [-मेल कोट] रहा है। ये योगी संन्यासी थे। इन्हें अवतार मान कर इनके अनुयायी तीन मस्तक वाली संन्यासी मूर्ति रखते हैं, जिसके साथ चार कुत्ते और एक गाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुष जे इन मतै, तिनकी मैं बलि जाउं।
मारग आये दश दिशा, पहुंचे एकहिं गांउं ।।6।।
भक्ति योग है चारि बिधि, चहुँ बिधि हठ हू जांनि।
चतुर्भांति आचारयनि, सांख्य सु कह्यौ बषांनि ।।7।।

रहती हैं, जो चार वेद एवं एक पृथ्वी की प्रतीक है। महानुभाव सम्प्रदाय के लोग इन्हें कृष्ण का अवतार मानते हैं। इनके नाम से एक सम्प्रदाय 'दत्तात्रेय सम्प्रदाय' एवं एक परवर्ती उपनिषद् 'दत्तात्रेय उपनिषद्' मिलता है। दत्तात्रेय सम्प्रदाय के ही नाम हैं—'मान भाउ', 'महानुभाव पन्थ', 'मुनि मार्ग'। मूर्तिपूजा का विरोध महाराष्ट्र से ही हुआ है। सन्त कवि एकनाथ और गिरधर ने इस पन्थ की रचनाओं की निन्दा की है। यहाँ तक कि सं० 1839 वि० में माधवराव पेशवा ने इस पन्थ को 'निन्दित' ठहराया है। वास्तव में यह सुधारक पन्थ था, जिसमें 'वर्णाश्रम' धर्म की उपेक्षा हुई और भगवत भजन एवं उपासना का लक्ष्य रहा था। इसीलिए ये **'गृहस्थ'** एवं **'संन्यास'** दो ही आश्रम मानते हैं। 'गीता' इनका मुख्य ग्रन्थ है। विक्रम की 14वीं शती में सन्त चक्रधर ने इस सम्प्रदाय का उद्धार किया था। **वशिष्ट**=वसिष्ठ। वैदिक परम्परा के ऋषि। पुरोहितों में आपका उल्लेख ऋग्वेद काल से ही होता रहा है। ऋग्वेद का सातवाँ मण्डल तो उन्हीं के द्वारा संकलित माना जाता है, जिसमें उनके वंशजों का विशेष उल्लेख है [दे०—7/18/7]। रामायण-महाभारत में भी अनेक सूत्र मिलते हैं, जिनमें वसिष्ठ के वर्चस्व के प्रमाण मिलते हैं। इनके अतिरिक्त 'वसिष्ठ धर्म सूत्र', 'वसिष्ठ संहिता' आदि में भी वसिष्ठ के साधक, तपस्वी और वर्चस्वी जीवन होने का आधार मिलता है। सन्तों ने वसिष्ठ को ज्ञानी और साधक-तपस्वी जीवन केलिए स्मरणीय बताया है। **अष्टावक्र** : शरीर आठ जगह से वक्र [-टेढ़ा] होने के कारण इनका नाम अष्टावक्र पड़ा। ये ज्ञानी ऋषि माने गए हैं। ये विदेह ज्ञानी राजा जनक के उपदेशक रूप में प्रसिद्ध हैं। **जड़भरत** : विदेह दशा के ज्ञानी भरत, जो मात्र मृग शावक की आसक्ति के कारण कैवल्य प्राप्ति न कर सके थे और पुनर्जन्म में आए। किन्तु उनकी दशा जीवन पर्यन्त लयलीन समाधिस्थ जैसी ही रही थी। उक्त ऋषि-मुनियों का उल्लेख सुन्दरदास ने सांख्य परम्परा के अग्रसर महापुरुष एवं मनीषियों के रूप में किया है।

6. इन मतै=इन मतों के। बलि जाउं=बलिहारी जाता हूँ। मारग आये दश दशा, पहुंचे एकहिं गांउं=दसों मार्गों से आने पर भी गाँव एक ही पहुँचना होता है, गन्तव्य एक ही है। नाना पन्थों, अनकानेक साधनाओं को करते हुए भी 'गांउं' [-लक्ष्य]-प्राप्तव्य एक ही होता है। अनकानेक विचारधाराओं के रहते हुए भी जिज्ञासु [-मुमुक्षु] पथिक का गन्तव्य एक ही होता है।
7. हठ=हठयोग। आचारयनि=आचार्यों ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम भक्ति अरु मंत्र लय, चर्चा सहित सुनाइ।
भिन्नै भिन्न प्रकार करि, आगै कहिहौं जाइ ।।8।।
दुतिय हठहि अरु राज पुनि, लक्ष सहित अष्टङ्ग।
आगै कहिहौं बहुत बिधि, चारिहु के जु प्रसङ्ग ।।9।।
त्रितिये सांख्य सु ज्ञान सुनि, ब्रह्म योग अद्वीत।
ये चार्‌यौं जौ जानियहि, मिटै सकल भयभीत ।।10।।
इन बिन और उपाय हैं, सो अब मिथ्या जांनि।
छह दरशन अरु छ्यानवै, पाषंड कहूं वषांनि ।।11।।

चौपई :

तौ केचित् करहिं यज्ञ बिधि वेदा। बाजपेय गो अरु बहु भेदा।।
केचित् तीरथ तीरथ धावैं। दहिनावर्त्त पहुमि दै आवैं ।।12।।
केचित् शौच अचार हि धर्मा। संध्या तर्पण अरु षटकर्मा।।
केचित् वर्ण आश्रमाधारी। ब्रह्मचर्य पालहिं ब्रह्मचारी ।।13।।

8-11. चर्चा सहित सुनाइ = उदाहरण देते हुए, व्याख्यान करते हुए, उदाहरण सहित सुनाइए। राज = राजयोग। लक्ष = उद्देश्य। अष्टाङ्ग = अष्टाङ्ग योग। प्रसंग = सन्दर्भ, निहित कथा प्रसंगादि। अद्वीत = अद्वैत। भयभीत = भव-भय का प्रसंग। उपाय = साधन, मार्ग। छह दरसन = षट् दर्शन-सांख्य, योग-पूर्व मीमांसा [-जैमिनी दर्शन], उत्तर मीमांसा [-वेदान्त], न्याय, वैशेषिक। छ्यानवै पाषंड = छियानवे प्रकार के पाखण्ड-मिथ्यार। 'छ्यानवै' यह संख्या—गणना किसी प्रमाण के आधार पर नहीं दी गई। अपितु बहुत प्रकार के, संख्याधिक्य गणना की मुहावरात्मक अभिव्यक्ति है। यहाँ छन्द 12-49 तक जिन पाखण्डों अथवा मिथ्याचारों का उल्लेख है, वह रचनाकार के जीवन के लोक-दर्शन जन्य अनुभव का ही परिणाम है।

12. केचित् = कोई अथवा कोई-कोई। बाजपेय = **वाजपेय** : यह एक प्रकार का यज्ञ विशेष है। यह यज्ञ, 'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार, ब्राह्मण और क्षत्रियों केलिए ही विहित था। यह राजसूय यज्ञ से श्रेष्ठ माना गया है। इसका आवश्यक अंग रथों की दौड़ है। यह यज्ञ पुरोहित पद प्राप्त करने अथवा क्षत्रिय केलिए, राज्याभिषेक से पूर्व, करणीय माना गया है। बाद में केवल परम्परा पीटने केलिए यह करणीय रह गया। इसलिए यह पाखण्ड बताया गया है। गो = गोमेध यज्ञ। बहुभेदा = अन्य नरमेध, अश्वमेध आदि यज्ञों के बहुत से भेद। धावैं = घूमते-फिरते हैं। दहिनावर्त्त = परिक्रमा। पहुमि = पुहुमि, पृथ्वी।

13. शौच अचार = शुद्धि प्रतिपादक आचार-कर्म। तर्पण = श्राद्ध। षटकर्मा = नित्य छः कार्यों का विधान। ये हैं—संध्या, जप, तर्पण, होम, बलि वैश्वदेव और स्नान। अथवा पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना। बर्ण आश्रमाधारी = वर्णाश्रमपालक। यह शास्त्र सम्मत होने पर पाखण्ड नहीं, दम्भ और कपटपूर्वक करने एवं ऊँच-नीच का भेद फैलाने के कारण पाखण्ड है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् गारहस्थ बहु भांती। पुत्र कलत्र बंधे दिन राती॥
केचित् वानप्रस्थ मत लीनां। कामिनि सहित गवन बन कीनां॥14॥
केचित् परमहंस संन्यासी। साषा सूत्र तजी बहु पासी॥
केचित् नित्य जु करहिं सनाना। सायंकाल प्रात मध्याना॥15॥
केचित् नियम ब्रतहि बहु धारैं। चंद्रायन उपवास विचारैं॥
केचित् करैं देव की पूजा। पाती पुष्प तोरि ह्वै दूजा॥16॥
केचित् माला तिलक बनावैं। विष्णु उपासी भक्त कहावैं॥
केचित् शिव शिव जपहिं अपारा। गरै लिंग अरु लावहिं छारा॥17॥
केचित् कर्म सु थापहिं जैंना। केश लुंचाइ करहिं अति फैंना॥
केचित् मुद्रा पहिरैं कानं। कापालिका भ्रष्ट मत जानं॥18॥
केचित् नास्तिकवाद प्रचंडा। ते तौ करहिं बहुत पाषंडा॥
केचित् देवी शक्ति मनावैं। जीव हतन करि ताहि चढ़ावैं॥19॥

---

14. गारहस्थ=गृहस्थाश्रम का परिपालन। पुत्र-कलत्र=स्त्री-पुत्र, प्रबलासक्ति की व्यंजना। वानप्रस्थ मत=अरण्यवास का जीवन व्यतीत कराने वाला सिद्धान्त।

15. साषा सूत्र=शिखा [-चोटी] और यज्ञोपवीत। बहुपासी=बहुत प्रकार के बन्धन। सनाना=स्नान-मज्जन। मध्याना=दोपहर को।

16. चंद्रायन उपवास=**चान्द्रायण व्रत** : इस व्रत का विधान पौष मास की शुक्ल चतुर्दशी को बताया गया है। दूसरे प्रकार का 'चान्द्रायण' पूर्णिमा से चन्द्र कला के ह्रास के साथ-साथ आहार ग्रासों को कम करते जाना और वृद्धि के साथ [-एक महीने तक] बढ़ाते जाने में इस व्रत की पूर्ति मानी जाती है। घोर अपराधों के प्रायश्चित्त रूप में इस व्रत का विधान बताया गया है। पाती-पुष्प=पत्र-पुष्प। ह्वै दूजा=द्वैत भाव से।

17. उपासी=उपासक। गरै लिंग=गले में शिव लिंग। छारा लावहिं=भस्म-विभूति लगाते हैं।

18. थापहिं=स्थापित करते हैं। जैंना=जैन मत के अनुयायी। **केश लुंचाइ** : जैन साधु, अपने आप ही सिर के बाल [-केश] खींच-खींच कर या नोच-नोच कर उखाड़ फेंकते हैं। कभी-कभी चिमटी से भी उखाड़ते हैं, कैंची-उस्तरे का प्रयोग नहीं करते। फैंना=फन, मिथ्याचार, पाखण्ड। मुद्रा पहिरैं=कुछ योगी साधक [-कनफटा योगी] कान में बड़ा छिद्र करके गोल मुद्रा [-छल्ला] पहनते हैं। कापालिक=शैव-शाक्त मत के अनुयायी, वाम मार्गी, जो प्राय: मृतक की खोपड़ी का पात्र धारण करते हैं और श्मशान वास करते हैं। इस मत के अनुयायियों को सुन्दरदास ने भ्रष्ट कहा है।

19. नास्तिकवाद=नास्तिकता में विश्वास, ईश्वर को न मानने वाले लोगों का मत। ते तौ=वे तो। देवी शक्ति=आराध्या देवी-शक्ति। जीव हनन करि=जीव-हत्या करके। चढ़ावैं=चढ़ाते या भेंट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् बहु बिधि होम कराहीं। तिल जव घृतहि अग्नि मुख मांहीं ॥
केचित् यजन करहिं खलु देवा। धूप दीप करि ताकी सेवा ॥20॥
केचित् मलिन मंत्र आराधैं। बशीकरण उच्चाटन साधैं ॥
केचित् मुये मसान जगावैं। थंभन मोहन अधिक चलावैं ॥21॥
केचित् बनिता कर्षण करहीं। भूपति मोहि धूर्त्त धन हरहीं ॥
केचित् करहिं कलंक पसारा। धात रसाइन मारहिं पारा ॥22॥
केचित् गुटिका सिद्ध कमावैं। बनस्पती के पात चरावैं ॥
केचित् खड्ग अग्नि जल बांधैं। शिला उठाइ धरहिं पुनि कांधैं ॥23॥
केचित् करहिं विदिधि बैदंगा। बूंटी जरी टटोरहिं अंगा ॥
केचित् ज्योतिष गण तिथि वारा। घरी महूर्त्त ग्रह व्यौहारा ॥24॥

---

20. यजन=यज्ञ-अनुष्ठान। जव=जौ। खलु देवा=उग्र देवता। ताकी=उसकी।

21. मलिन मंत्र=अघोरी मंत्र, शाप सिद्ध करने-कराने वाला मन्त्र। वशीकरण=मंत्र आदि के अनुष्ठान से किसी को वश में करने का विधान। उच्चाटन=किसी के चित्त को एक स्थिति से हटा कर, विरक्ति या उदासीनता की भावना पैदा करना। तंत्र के छः अभिचारों [-प्रयोगों] में से एक। ये षट् प्रयोग हैं—मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन, उच्चाटन और शान्ति। मुये=शव [के साथ]। मसान जगावैं [मुहा०]=श्मशान में साधना करते हैं। थंभन=स्तम्भन। मोहन=आकर्षण।

22. बनिता कर्षण=स्त्री का आकर्षण। भूपति मोहि=राजा को मोहित [-वशीभूत] करके। धूर्त्त=प्रपंची, पाखण्डी। धन हरहीं=धन-दौलत ठगते रहते हैं। कलंक पसारा=कलंक [-पाप दोष वाले] कपट-कार्यों का प्रसार। घात=विश्वासघात, बध। रसाइन मारहिं पारा=रसाइन क्रिया से **'पारा'** मारते हैं। वैद्यक की एक विधि के अनुसार राँगा-ताँबा-चाँदी आदि की रसाइन में **'पारा मारने'** से स्वर्ण बनाने का विधान बताया गया है।

23. गुटिका सिद्धि कमाना=जादू-टोने की दुनिया में पारद [-पारा] की गुटिका सिद्ध करके, मुख के अन्दर रखने से खेचर होने की, आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त होती है। बनस्पती के पात चरावैं=घास-पात खाकर रहते हैं। केचित् खड्ग अग्नि जल बांधैं=कुछ लोग मन्त्र शक्ति से, तलवार की धार से जलधार को बाँधने और अग्नि को शीतल करने की बात कहते हैं। शिला उठाइ=मन्त्र शक्ति से, आवेश में भारी शिला को उठाते हैं।

24. बैदंगा=वैदगीरी, वैद्यक। बूंटी जरी=जड़ी बूटी। टटोरहिं अंगा=नाड़ी देखकर और शरीर को टटोल कर रोग के लक्षण बताते हैं। गण=ज्योतिष के अनुसार राशियाँ और उसके गण मिलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् तुला रत्न भू दाना । अन्न बसन पुस्तक विधि नाना ॥
केचित् कहैं संसकृत बांनी । कठिन श्लोक सुनावहिं जांनी ॥25॥
केचित् तर्कत शास्तर पाठी । कौशल विद्या पकरहिं काठी ॥
केचित् वाद बिबिधि मत जानैं । पढ़ि व्याकरण चातुरी ठानैं ॥26॥
केचित् कविता कवित सुनावैं । कुंडलिया अरु अरिल बनावैं ॥
केचित् छंद सवैया जोरैं । जहां तहां के अक्षर चोरैं ॥27॥
केचित् बीणा बेणु बदीता । ताल मृदंग सहित संगीता ॥
केचित् नट की कला दिषावैं । हस्त विनोद मधुर सुर गावैं ॥28॥
केचित् करहिं कष्ट तन भारी । भोजन पंच ग्रास आहारी ॥
केचित् अन्न गऊ मुख षांहीं । घुटरिनि परहिं अकल कछु नांहीं ॥29॥
केचित् कर धरि भिक्षा पावैं । हाथ पूंछि जंगल कौं धावैं ॥
केचित् घर-घर मांगहिं टूका । वासी कूसी रूषा सूका ॥30॥

---

25. तुला रत्न भू दाना = तुलादान, रत्नदान, भू-दान कराते हैं। बसन = वस्त्र। संसकृत बांनी = संस्कृत भाषा बोलकर, श्लोकादि सुनाकर। जांनी = जान-बूझकर अथवा विधि-विधान जानकर।

26. तर्कत = तर्क करते हैं। शास्तर पाठी = शास्त्र पाठ करने वाले। कौशल विद्या = कुशलता [-चालाकी] की विद्या। वाद = वाद-विवाद। मत जानैं = सिद्धान्त जानते हैं। चातुरी ठानैं = चतुराई दिखाते हैं।

27. कविता = कवि। कवित सुनावैं = कवित्त या कविताई सुनाते हैं। कुंडलिया-अरिल = छन्द विशेष। जोरैं = जोड़ते हैं, रचना-विधान करते हैं। अक्षर चोरैं = साहित्यिक चोरी करते हैं।

28. बेणु = वंशी। बदीता = वादक, बजाने वाले। संगीता = संगीत कला। हस्त विनोद = हाथ की सफाई, हस्त कौशल।

29. कष्ट तन भारी = शरीर को कष्ट देते हैं। पंच ग्रास आहारी = कुल गिनती के पाँच कौर खाने वाले, अल्प भोजी। अथवा काग, श्वान, गौ, अभ्यागत और कीट-पतंग केलिए प्रथम पंच ग्रास निकालने के बाद खाना खानेवाले। गऊ मुख षांही = गऊ को खिलाकर खाते हैं अथवा गऊ को अन्न-खिला देने पर गोबर में जो अन्न कण निकलते हैं, उन्हीं को धो-पोंछकर खाते हैं। घुटरिनि परहिं = घुटनों के बल बैठकर विनत होते हैं, दण्डवत् करते हैं।

30. कर धरि भिक्षा पावैं = हाथ में धर कर भिक्षान्न को खाते हैं। मांगहिं टूका = टुकड़ा माँगते फिरते हैं। बासी कूसी = पिछले दिन का खाद्य पदार्थ। रूषा सूका = रूखा-सूखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् अपरस पाक बनावैं। मुख मूंदहिं हुन्नर दिषरावैं ॥
केचित् जीमत कूटहिं थारी। करि करि ग्रास देइ कर नारी ॥31॥
केचित् धोवन धावन पीवैं । रहैं मलीन कहौ क्यौं जीवैं ॥
केचित् मता अघोरी लीया। अंगीकृत दोउ का किया ॥32॥
केचित् अभष भषत न सकांहीं। मदिरापान मांस पुनि षांहीं ॥
केचित् बपुरे दूधाधारी। षांड षोपरा दाष छुहारी ॥33॥
केचित् कंद मूल षनि षांहीं। एकाएक रहैं बन मांहीं ॥
केचित् काषायादिक पहिरैं। जपहिं जाप पैठहिं जल गहरैं ॥34॥
केचित् रक्त पीत पट कीने। पुनि बस्तर वोढहिं अति झीने ॥
केचित् दीसै रंगा चंगा। पाट पटम्बर वोढहिं अंगा ॥35॥

---

31. अपरस=अस्पृश्य बने रह कर अथवा रस-स्वाद रहित। पाक बनावैं=पाक-शास्त्र अर्थात् भोजन बनाते हैं। हुन्नर दिषरावैं=आचार-व्यवहार हुनर या कुशलता दिखलाते हैं। जीमत=जीमते-भोजन करते हुए। कूटहि थारी=दाक्षिणात्यों के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध रहा है कि वे खाते समय थाली बजाकर शब्द करते हैं, जिससे चाण्डालों का शब्द उनके कानों में न आवे। अन्यथा वे उसका शब्द सुनते ही खाने से उठ जाते हैं। करि करि ग्रास देइ कर नारी=कुछ लोग अपने हाथ से खाना न खाकर, स्त्रियों-भक्तों के हाथ से ग्रास बनवा-बनवाकर खाते हैं।
32. धोवन-धावन पीवैं=श्वेताम्बरी [-ढूँढिया] जैन मतावलम्बी आटे का धोवन पीकर अपना जीवन चलाते थे। रहैं मलीन=कुछ लोग इसलिए मलिन रहते हैं कि वस्त्र धोने से हिंसा होने का भय रहता है। मता अघोरी=अघोरी मत। अंगीकृत=स्वीकार। दोऊ=वाम [-अघोरी] मत के द्वारा हिंसा और ढूंढिया [-जैन] मत द्वारा अहिंसा और मलिनता का विचार करने वाले।
33. अभष भषत=अभक्ष्य [-श्वान, सर्प, मृतक शरीरादि का भोजन तथा पंच मकार—मूत्र, मैथुन, मांस, मदिरा और मुद्रा] अथवा अभोज्य का सेवन करते हैं। बपुरे=विचारे। दूधाधारी=दूध के आधार पर जीने वाले। षांड खोपरा=गोला गिरी और शक्कर। दाख छुहारा=अंगूर-छुहारे का सेवन।
34. षनि पांहीं=खोद कर खाते हैं। काषायादिक=गेरुआ-भगवा रंग के साधु-फकीरों के वस्त्र। पैठहि जल=जल में प्रवेश करके बैठते हैं।
35. रक्त पीत पट=लाल-पीले कपड़े। बस्तर=वस्त्र। वोढहिं=ओढ़ते हैं। झीने=पारदर्शी। रंगा चंगा=रंग-बिरंगा, मस्तमौला। पाट पटम्बर=रेशमी वस्त्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् रंगहिं काथ महिं कपरा । करि प्रपंच बैठहिं अति लपरा ।।
केचित् टाट पहरि दिषरावैं । बहुत भांति करि लोक रिझावैं ।।36।।
केचित् चिरकट बीनहिं पंथा । निर्गुन रूप दिखावैं कंथा ।।
केचित् मृगछाला बाघम्बर । करते फिरहिं बहुत आडम्बर ।।37।।
केचित् वोढहिं बल्कल चीरा । शीत घांम कछु बचै न नीरा ।।
केचित् नग्न उघारी देहा । होंहिं दिगम्बर लावहिं षेहा ।।38।।
केचित् जटाजूट नष कीन्हे । नाना रूप जाइ नहिं चीन्हें ।।
केचित् करहिं अज्ञान कसौटी । पंच अग्नि बारहिं मति छोटी ।।39।।
केचित् मेघाडम्बर बैठें । शीत काल जलसाई पैठें ।।
केचित् धूम्रपान करि भूलें । औंधे होइ बृच्छ सौं झूलें ।।40।।
केचित् मरहिं षडग की धारा । नृपति हौंन के काज गंवारा ।।
केचित् मगर-भोज तन करहीं । झंपापात देह परहरहीं ।।41।।

---

36. काथ=कत्था, खैर की लकड़ियों को उबाल कर निकाला गया गाढ़ा रंग । कपरा=कपड़े, वस्त्र । प्रपंच=कपट । लपरा=प्रपंची, लफ्फाज, वाचाल । टाट पहरि=टाट [-सन से बुना हुआ मोटा बोरा]-वस्त्र पहनकर अर्थात् टाटाम्बरी । लोक रिझावैं=लोक को आर्कषित करते हैं, लोगों को ठगते हैं ।
37. चिरकट=चीर कट, चिथड़ा । बीनहिं पंथा=मार्ग में बीनते-फिरते हैं । कंथा=गुदड़ी, साधुओं का ढीला वस्त्र, चोगा । बाघम्बर=बाघ [-शेर] की खाल । आडम्बर=पाखण्ड ।
38. बल्कल चीरा=गेरुआ वस्त्र । शीत घांम=सर्दी-गर्मी । नग्न देहा=नंगे शरीर । दिगम्बर=दिशाएँ ही हैं अम्बर [-वस्त्र] जिनके लिए अर्थात् नग्न शरीर । षेहा लावहिं=राख [-भस्मी] लगाते हैं ।
39. जटाजूट=लम्बे केश [-जटाएँ] हैं । नष=नख, नाखून । चीन्हे जाइ नहिं=पहचाना नहीं जाता । पंच अग्नि=पंचाग्नि, अपने चारों ओर अग्नि । बारहिं=जलाते हैं ।
40. मेघाडम्बर=बादल या वर्षा । जलसाई=जल में । धूम्र पान करि=धूम्रपान, धुएँ को पीकर-घोंटकर साधना करने का दम्भ भरते हैं । औंधे होइ बृच्छ सौं झूलें=वृक्ष पर उलटे लटकते हुए-झूलते हुए साधना-उपक्रम करते हैं ।
41. षडग की धारा=तलवार की धार पर । नृपति हौंन के काज=राजा बनने की कामना से । मगर-भोज=स्वेच्छा से जल में कूद कर मगरमच्छ का भोजन [-बनने वाले] । झंपापात=उछाल या फलांग के साथ पहाड़ी से कूदना । परहरहीं=त्यागते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् जाइ हिंवारै सीझैं। मन की मूठ तहां अति रीझैं ॥
केचित् गरा सारि तन त्यागैं। यातें कछू पाइ हैं आगैं ॥42॥
केचित् करि पर्वतहिं निवासा। पुनि सो करहिं गुफा मैं वासा ॥
केचित् एक ठौर न रहांहीं। आजु सु इहाँ काल्हि उहां जांहीं ॥43॥
केचित् तृण की सेज बनावैं। केचित् लै कंकरा बिछावैं ॥
केचित् ब्रतहिं गहैं अति गाढे। द्वादश वर्ष रहैं पग ठाढे ॥44॥
केचित् रहैं जाइ समसाना। हम अबधूत करहिं अभिमाना ॥
केचित् रूंष बृच्छ तर बासा। हम काहू की करहिं न आसा ॥45॥
केचित् मौंन गहैं नहिं बोलैं। सैंनहिं सैं अन्तर्गति षोलैं ॥
केचित् चन्दन षौरि बनावैं। पग पावरी नैंन मटकावैं ॥46॥
केचित् मेलहिं मूंड ठगौरी। सब लै जांहिं देषते त्यौरी ॥
केचित् सिहर लगावहिं अंगा। बालक चलै लागि करि संगा ॥47॥

---

42. हिंवारै सीझैं=हिम में गल कर शरीर त्यागते हैं। मन की मूठि=मन की मौज। गरा=गला कर। सारि=काट कर। पाइ हैं आगैं=यह विचार करके कि आगे, अगले जन्म में, इन क्रियाओं के फलस्वरूप, कुछ अलौकिक वस्तु-वरदान प्राप्त कर सकेंगे।

43. पर्वतहिं निवासा=पर्वत पर निवास, अरण्यवास, एकान्त सेवन। गुफा वासा=गुफा में रहकर चर्या करते हैं। आजु सु···उहां जांहीं=आज यहाँ तो कल वहाँ, इस वृत्ति के कारण एक स्थान पर टिककर नहीं रहते कि कहीं आसक्ति न हो जाए।

44. तृण सेज=घास-फूंस का बिछावन। कंकरा बिछावैं=कंकर-पत्थर की शैया बनाते हैं। अति गाढे=अत्यन्त कठोर। पग ठाढे=एक पैर पर खड़े रहकर।

45. समसाना रहैं=श्मशान वास करते हैं। हम अवधूत='हम अवधूत साधक हैं' ऐसा दम्भ किए रहते हैं। रूंष बृच्छ तर बासा=रुक्ष वृक्ष के नीचे वास करते हैं। आसा=आशा, कामना, आसक्ति।

46. मौंन गहैं=मौन धारण कर लेते हैं। सैंनहिं सैं=संकेत या इशारे-इशारे से ही। अन्तर्गति षोलैं=दिल की बात कहते हैं अथवा-हृदय ग्रन्थि खोलते हैं। चन्दन षौरि=चन्दन का विशेष प्रकार का टीका। पग पावरी=पैरों में खड़ाऊँ। नैंन मटकावैं=नेत्र मटकाते हैं।

47. मेलहिं मूंड ठगौरी=सिर पर मोहिनी डालते हुए मन्त्र पढ़ते हैं और लोगों से धन ठगते जाते हैं। त्यौरी देषते=देखते-देखते ही अथवा देखने वाला त्यौरी चढ़ाकर [-आँखें फाड़े हुए] अवाक् देखता रह जाता है। सिहर लगावहिं अंगा=कुछ लोग भीगे [-शीतल] कपड़े, शीतकाल में भी, पहन कर माँगने जाते हैं। अथवा सिहर लगावहिं=जादू-टोना करते हैं अथवा 'सिहर' [अ०] सिन्दूर लगाते हैं। बालक··· संगा=भिखारी का बिम्ब, बालक को साथ में लगाकर भीख माँगने जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचित् मूठि चलावैं काहू । नारिसिंह भैरव तुम जाहू ।।
केचित् आक धतूरा षांहीं । पुनि अँगार मेलहिं मुख मांहीं ।।48।।
केचित् आफू पोसत भंगी । निपट मूढ़ मति आहि तरंगी ।।
ऐसैं भ्रम सु कहां लग कहिये । सँमुझि सँमुझि गुरु के पग ग्रहिये ।।49।।

दोहा : बहुत भांति मत देषिकैं, सुन्दर किया बिचार ।
सद्गुरु के जु प्रसाद तें, भ्रमें नहीं सु लगार ।।50।।

इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां पंच
प्रहारनामः प्रथमोपदेशः ।।

।।अथ भक्तियोग नाम द्वितीयोपदेशः।।

प्रवेशार्थ : 'भक्तियोग' में भक्ति, मन्त्र, लय और चर्या सम्बन्धी योग-पृष्ठभूमि को सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित किया गया है । निर्गुण **भक्ति-योग** में मानसिक पूजा का विधान है, जो निरंजन देव के प्रति समर्पित रहती है । मानसिक चर्या में बाह्य विधान की आन्तरिक सूक्ष्म चर्या का रूपकत्व प्रस्तुत हुआ है । तब साधक केलिए संयम-स्नान, चित्त-चन्दन, ध्यान-धूप, भाव-भोजन, ज्ञान-दीपक, अनहदनाद घण्टा, ध्वनि बन जाते हैं और ऐसे ही अपने प्रिय-इष्ट का अनन्यता से ध्यान किया जाता है । उसी प्रकार जैसे कि एक पतिव्रता स्त्री अपने पति को मानती है । **'मन्त्र योग'** में मन्त्र का श्रवण-मनन हृदय में धारण करते हुए और मौन रुप में निरन्तर जाप-अभ्यास करते हुए—'रोम-रोम राम धुनि होई' की स्थिति वर्णित हुई है। उसके वाद **'लय योग'** में मन का इष्ट में लय अथवा ध्यान उसी प्रकार होता है जैसे पपीहा का मेघों में, कुरल या कुंज पक्षी का अपने अण्डों में, कलाकार नटिनी का बाँस और बँधी डोरी में, पनिहारी का घट में रहता है ।

---

48. मूठि चलावैं=भुरकी देते हैं, जादू-टोना करते हैं । नारिसिंह भैरव=नरसिंह—नाहर सिंह अथवा 'नृसिंह देव मन्त्र' पढ़ते हुए भैरव [-क्रूर देवता] को भगाते हैं, अथवा उन देवों को सिद्ध करके अपना लौकिक कार्य करवाते हुए चमत्कार दिखाते हैं । आक धतूरा षांहीं=तुच्छ मादक पदार्थों का सेवन करते हैं । अँगार मेलहिं मुख मांहीं=अंगारे को मुख में धरने का चमत्कार दिखाते हैं ।

49. आफू=अफीम । पोसत=पोस्त, मादक पदार्थ । निपट=पूरी तरह से । मूढ़=मूर्ख, जड़ । आहि तरंगी=तरंगायित मस्त मौला बनते हैं । ऐसैं भ्रम=ऊपर कहे गए आडम्बर-पाखण्ड युक्त, कौतुक भरे, चमत्कारी कार्य, जो उनकी भ्रान्ति अथवा अज्ञान के ही सूचक हैं ।

50. मत=मतमतान्तर । भ्रमें नहीं=भ्रम में पड़कर इधर-उधर नहीं घूमता-भटकता । सु लगार=साधक, जिज्ञासु, गहरी लगन वाला मुमुक्षु, विश्वासी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चर्या योग' में परमात्मा की महिमा का निरन्तर गुणगान प्रतिपादित है। भक्ति के उक्त चारों अंगों में ही रचनाकार ने **'नवधा भक्ति'** को समेट लिया है—

'ये चार् यौ अंग भक्ति के नवधा इनहीं मांहि।
सुन्दर घट महिं कीजिये बाहिर कीजै नांहि।।'

मूल पाठ इसप्रकार है :

चौपई : भक्तियोग अब सुनहु सयाना। बुद्धि प्रवांन जु करौं वषांना।
भक्ति करन का यहु आरंभा। महल उठै जौ चिर ह्वै थंभा।।1।।
प्रथमहिं पकरै दृढ़ वैरागा। गहि विश्वास करै सब त्यागा।
जितेन्द्रिय अरु रहै उदासी। अथवा गृह अथवा बन वासी।।2।।
माया मोह करै नहिं काहू। रहै सबनि सौं बेपरवाहू।
कनक कामिनी छाड़ै संगा। आशा तृष्णा करै न अंगा।।3।।
शील सन्तोष क्षमा उर धारै। धीरज सहित दया प्रतिपारै।
दीन गरीबी राषै पासा। देषै निर्पष भया तमासा।।4।।
मान महातम कछू न चाहै। एकै दशा सदा निर्बाहै।
राव रंक की शंक न आनैं। कीरी कुंजर सम करि जानैं।।5।।

चूर्णिका : 1-2. बुद्धि प्रवांन=स्व मति के अनुसार, अपनी बुद्धि के प्रमाण से। महल उठै जौ थिर ह्वै थंभा=भवन तभी मजबूती से ऊपर खड़ा हो सकता है, जब नींव मजबूत हो। थंभा=स्तम्भ, आधार, नींव। वैरागा=वैराग्य भाव। जितेन्द्रिय=इन्द्रियों पर जय पा लेने वाला। उदासी=उदासीन, त्यागी। गृह बनवासी=गृहस्थ हो अथवा संन्यासी। द्वितीय छन्द की मूल प्रेरणा 'मन को वशीभूत' कराने वाले गीता के इस श्लोक से मेल खाती है—

'असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।'—6/35

3-8. बेपरवाहू=बेपरवाह, अनासक्त भाव वाला मस्त। संगा=संग, आसक्ति। उरधारै=हृदय में धारण करे। प्रतिपारै=प्रतिपालन करे। दीन गरीबी=गरीबी का धर्म अथवा धन रहित मानसिकता में होने वाली विनम्रता की भावना। निर्पष देषै=निष्पक्ष दृष्टि से देखे। माहातम=महात्म्य, बड़प्पन की भावना। निर्वाहै= निर्वाहित करता है, धारण किए रहता है। राव-रंक=गरीब-अमीर के भेद [को नहीं मानता]। कीरी कुंजर समकरि जानैं=चींटी से हाथी तक में समान भाव अथवा समता भाव रखता है। आतम दृष्टि=आत्म दृष्टि अर्थात् सभी प्राणियों में आत्म-तत्त्व विद्यमान है, यह विश्वास। अधिकारा=अधिक, बढ़ाकर। सार ग्रहै=सार-तत्त्व को ग्रहण करता है। कूकष नाषै=भुस-छिलका अथवा कूड़ा-करकट अर्थात् सारहीन वस्तु छोड़ देता है। सिर राषै=सर्वोपरि धारण किए रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतम दृष्टि सकल संसारा । संतनि कौ राषै अधिकारा ।
वैर भाव काहू नहिं करई । सतगुरु शब्द हृदै मैं धरई ।।6।।
सार ग्रहै कूकस सब नाषै । रमिता राम इष्ट सिर राषै ।
आंन देव की करै न सेवा । पूजै एक निरंजन देवा ।।7।।
मन माहैं सब सौंज सु थापै । बाहर के बंधन सब कापै ।
शून्य सु मंदिर अधिक अनूपा । ता महिं मूरति जोति स्वरूपा ।।8।।
सहज सुखासन बैठै स्वामी । आगै सेवक करै गुलामी ।
संजम उदक सनान करावै । प्रेम प्रीति के पुष्प चढ़ावै ।।9।।
चित चन्दन लै चरचै अंगा । ध्यान धूप षेवै ता संगा ।
भोजन भाव धरै लै आगै । मनसा वाचा कछू न मांगै ।।10।।
ज्ञान दीप आरती उतारै । घण्टा अनहद शब्द विचारै ।
तन मन सकल समर्पन करई । दीन होइ पुनि पायनि परई ।।11।।
मग्न होइ नांचै अरु गावै । गदगद रोमांचित हो आवै ।
सेवक भाव कदै नहिं चौरै । दिन दिन प्रीति अधिक ही जोरै ।।12।।
ज्यौं पतिव्रता रहै पति पासा । ऐसैं स्वामी की ढिग दासा ।
काहू दिशा भूलि जौ जाई । तौ पतिव्रत जु रहै नहिं भाई ।।13।।
नैंकु न पाव आन दिश धारै । जो पति कहै सु आज्ञा पारै ।
सदा अषण्डित सेवा लावै । सोई भक्ति अनन्य कहावै ।।14।।

आंन देव=अन्य देव । सौंज=रुचि, चाह । थापै=धारण करता है । बंधन=अवरोध । कापै=काट देता है, विच्छेद कर देता है । शून्य सु मंदिर=शून्य भाव ही मन्दिर है जिसका । मूरति=मूर्ति, विग्रह । जोति स्वरूपा : निराकार साधना में साधक हृदय, मन्दिर में मूर्ति-विग्रह रूप में, ज्योति स्वरूप को ही धारण किए रहता है ।

9-13. सुखासन=आसन विशेष, सहज आसन । गुलामी करै=सेवा-चर्या में निरत रहता है । संजम उदक सनान=संयम रूप जल में स्नान । प्रेम प्रीति के पुष्प=प्रीति भाव रूप पुष्प । चित-चन्दन=चित्त रूप चन्दन । ध्यान धूप=ध्यान रूप धूप, सुगन्धित धूम । भोजन भाव=भाव रूप भोजन । कछू न मांगै=कोई कामना न करै । ज्ञान दीप=ज्ञान रूप दीपक । घण्टा अनहद=अनहदनाद रूप घण्टा ध्वनि । दीन होइ=विनम्र भाव वाला होकर । नाचै अरु गावै=प्रेम में गद्गद रहकर नाचता और गाता रहता है । कदै नहिं चोरै=कभी न चुराए, न छिपाए । जोरै=जोड़ता जाए । पतिव्रता पतिपासा=पतिव्रता भाव से सेवक-स्वामी भाव में लीन रहता है । दिशा भूलि जौ जाई=दिशा [-लक्ष्य, एक निष्ठता] भूल जाने पर पतिव्रत भाव नहीं रहता ।

14. नैंकु न=थोड़ा भी । पाव=पैर, कदम, अन्य दिशा में गति । आज्ञा पारै=आज्ञा शिरोधार्य करता है । अषण्डित सेवा=अखण्डित अर्थात् निरन्तर भाव की सेवा-भक्ति, अनन्य भाव की भक्ति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : यह सो भक्ति अलिंगनी, बिरला जानै भेव ।
भाग्य होइ तौ पाइये, समझावै गुरुदेव ।।15।।

अथ मंत्रयोग :

चौपई : मन्त्रयोग अब सुनियहु भाई । सतगुरु बिना न जान्यौं जाई ।
जाकै कछू रूप नहिं रेषा । कौन प्रकार जाइ सो देषा ।।16।।
सब संतनि मिलि कियौ बिचारा । नाम बिना नहिं लगै पियारा ।
कहूं न दीसै ठौर न ठाऊं । ताकौ धरहिं कवन बिधि नाऊं ।।17।।
अपनैं सुख के कारन दासा । काढ्यौ सोधि सु परम प्रकाशा ।
ताकौ नाम राम तब राष्यौ । पाछै बिबिध भांति बहु भाष्यौ ।।18।।
सहस्र नाम की कौंन चलावै । नाम अनन्त पार को पावै ।
राम मन्त्र सबकै सिरमौरा । ताहि न कोई पूजत औरा ।।19।।
राम मन्त्र सबमंहि तत सारा । और आहि जग के ब्यौहारा ।
राम मन्त्र तें शिला तिरानी । पाथर कहा तिरै कहुं पांनी ।।20।।
राम मन्त्र के ऐसै कामा । पत्र न उठ्यौ लिष्यौ जब नामा ।
राम मन्त्र शिव गौरि सुनायौ । सोई नारद ध्रुवहिं पढ़ायौ ।।21।।

---

15. अलिगनी भक्ति='अलिग' अर्थात् कारण रहित दशा वाली भक्ति, सूक्ष्म-ब्रह्म सम्बन्धी भक्ति । बिरला=कोई-कोई । भेव=रहस्य, भेद, मर्म । भाग्य होइ तौ= भाग्यशाली हो तो, भाग्यशाली होने पर ।

16. मन्त्रयोग=मन्त्र जप अथवा मन्त्र सिद्धि के द्वारा लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का विधान । लेकिन, यह मन्त्रयोग सद्गुरु की कृपा-सहयोग से ही सम्भव है ।

17. नाम=नामी अर्थात् परमात्मा का नाम, जिसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं, जिसकी कोई रूपरेखा नहीं, उसका नाम किस प्रकार रखा जाए, यह जिज्ञासा ।

18. काढ्यौ सोधि=शोध कर, अन्वेषण करके निकाला । नाम राम=शोध करके खोजे गए, निकाले गए अथवा अनुभव में आए प्रकाश का नाम **'राम'** रखा गया है । बाद में वही अनेक नामों वाला हुआ ।

19. सहस्र नाम=विष्णु के सहस्र [-हजार] नाम । कौन चलावै=कौन गिनती करे । राम मन्त्र=**'राम'** नाम रूप में मनीषियों द्वारा शोधा गया मन्त्र, सभी मन्त्रों में शिरोमणि है, सर्वोत्तम है । न पूजत और=अन्य कोई मन्त्र समता नहीं कर पाता ।

20. तत सारा=तत्त्व सार, सारभूत । और आहिं=और [-अन्य] हैं । शिला तिरानी= शिला [-पाषाण] सन्तरित हुईं । **अन्तःप्रसंग** : लंका अभियान में श्री रामचन्द्र के सहयोगी नल-नील आदि ने [शिल्प-कुशलता के द्वारा-] सेतु-बाँधने में जल पर पत्थर तैरा दिए थे । अर्थात् इसप्रकार का शिल्प-विधान हुआ कि वे 'सेतु-बन्ध' हो गए, पानी में डूबे नहीं, ऐसा जन-विश्वास है ।

21. पत्र न उठ्यौ=नाम लिख देने पर पत्ता भी भारी [-महत्त्वपूर्ण] हो जाता है । गौरि=पार्वती । ध्रुवहिं पढ़ायो=ध्रुव को शिक्षा [-उपदेश] दी थी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनि प्रहलाद गह्यौ सो मंत्रा। सही कसौटी काढे जंत्रा।
जरे न मरे षड्ग की धारा। राम मन्त्र के ये उपकारा ॥22॥
सुगम उपाइ और सदरोजी। राम मन्त्र कौं जौ ले षोजी।
प्रथम श्रवन सुनि गुरु कै पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा ॥23॥
ता पीछै हिरदै मैं धारै। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारै।
निश दिन मन तासौं रह लागौ। कबहूं नैंक न टूटै धागौ ॥24॥
पुनि तहां प्रगट होइ रंकारा। आपुहि आपु अखण्डित धारा।
तन मन बिसरि जाइ तहां सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई ॥25॥
जैसैं पांनी लौंन मिलावै। ऐसैं ध्वनि महिं सुरति समावै।
राम मन्त्र का इहै प्रकारा। करै आपु से लगै न बारा ॥26॥
दोहा : मन्त्र योग इहिं बिधि करहु जे कोइ चाहै राम।
सतगुरु के जु प्रसाद तें मन पावै विश्राम ॥27॥

अथ लययोग :

चौपई : अथ लययोग कहूं बहु भांती। लय बिन भय व्यापै दिन राती।
लय बिनु जन्म मरन नहिं छूटै। लय बिनु काल आइ कैं कूटै ॥28॥

---

22. गह्यौ=धारण किया। सही कसौटी=कसौटी पर खरे ठहरने केलिए, पिता हिरण्याक्ष द्वारा दिए गए सारे कष्ट-वेदनाएँ सहीं। काढे जंत्रा=प्रहलाद का कष्ट सहन ऐसा था मानो यन्त्र से होकर कोई निकला हो। जरे न मरे=बाल बाँका भी नहीं हुआ।
23. सदरोजी=सद्य रोजी, प्रतिदिन की कमाई। षोजी=खोज करे। रसना=जिह्वा से। अभ्यासा=अभ्यास, निरन्तर करते रहने का क्रम।
24. ता पीछै=उसके पश्चात्। जिह्वा रहित=बिना जीभ के, मौन रूप में। मंत्र उच्चारै=मन्त्र जाप करता रहे। नैंक=थोड़ा भी। धागौ=एकसूत्रता, ध्यान।
25. रंकारा='ररंकार' की ध्वनि, 'राम-राम' शब्द ध्वनि। **टिप्पणी :** 'राम' शब्द की अखण्डित-निरन्तर ध्वनि 'रां रां रां' होते हुए 'रं रं रं' जैसी रह जाती है। यही 'ररंकार' है। आपुहि आपु=अपने आप, सहज ही, स्वतः। अखण्डित धारा=सहज मन्त्र-जप का निरन्तर प्रवाह। बिसरि जाइ=भूल जाता है, बेसुध हो जाता है, तल्लीन होने के कारण। रोमहि रोम=रोम-रोम में, रोम-रोम से।
26. पांनी लौंन=नमक पानी में मिलने के समान लयलीनता। सुरति=सु+रति अथवा श्रुति, चेतना, चित्त वृत्ति। लगै न बारा=देर नहीं लगती।
27. इहिं बिधि=इस [उक्त-] प्रकार से। विश्राम=शान्ति स्थिति, स्थितिप्रज्ञता।
28. **लययोग** : चित्तवृत्ति का लयलीन या तल्लीन बना रहना ही लययोग है। बिना लय-योग के, चेतना को, प्राणधारी को भय व्याप्त बना रहता है। जन्म-मरन=जन्म-मरण, पुनर्जन्म का चक्र। काल=मृत्यु। कूटै=ताड़ना देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय समान नहिं और उपाई। जो जन रहै राम लय लाई।
निशि वासर ऐसैं लै लागै। आवागमन सकल भ्रम भागै ।।29।।
जैसैं चातक करैं पुकारा। पीव पीव करि बारंबारा।
ऐसी विधि लय लावै कोई। परम स्थान समावै सोई ।।30।।
जैसैं कुञ्जी अंड संभारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहिं टारै।
जो कोऊ लै लावै ऐसी। ताकौं जरा मृत्यु कहु कैसी ।।31।।
जैसैं बालक सर्प कुरंगा। थकित सु होइ नाद कै संगा।
ऐसी लय जो कोई लावै। जोनी संकट बहुरि न आवै ।।32।।
जैसैं बरत बांस चढ़ि नटनी। बारंबार करै तहां अटनी।
इत उत कहूं नैंक नहिं हेरै। ऐसी लय जन हरि तन फेरै ।।33।।
जैसैं कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन संझा ।।34।।
जैसैं गाइ जंगल कौं धावै। पानी पिवै घास चरि आवै।
चित्त रहै बछरा कै पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा ।।35।।

---

29. उपाई = उपाय, साधन। भ्रम = भ्रान्ति, सन्देह।

30. लावै = लगावै, लगता है। परम स्थान = परम गति, लक्ष्य। समावै = लीन हो जाता है।

31. कुञ्जी = कुंज नामक मादापक्षी, क्रौंची। यह पक्षी अपने 'ध्यान' से अण्डे को सेती है। कूर्म दृष्टि = कछुए की दृष्टि। **टिप्पणी :** लययोग का उदाहरण देने केलिए कुंज और कछुए का उल्लेख सन्त-वाणी में प्रायः मिलता है। ये दोनों कहीं भी आकाश में अथवा जल में रहें, ध्यान अण्डों पर ही रहता है। लै लावै ऐसी = इसप्रकार की लय लगाए रखता है।

32. बालक सर्प कुरंगा = बालक-शिशु, सर्प और हिरण। नाद = शब्द, वेणु या बाँसुरी का शब्द सुनकर। जोनी-संकट = योनि के संकट से अर्थात् आवागमन [-पुनर्जन्म] के चक्र रूप कष्ट से।

33. बरत = मोटी रस्सी, डोरी। नटनी = कलाबाज स्त्री। अटनी = अटन, चाल, रस्सी पर चलने की क्रिया। इत उत = इधर-उधर। हरि तन फेरै = हरि प्रभु की ओर फेर देती है, मोड़ देती है।

34. कुम्भ = घट, घड़ा, कलश। देइ कर तारी = हाथ से ताली बजाते हुए। सुरति = चित्तवृत्ति। गागरि = घट। मंझा = में। जन = साधक, भक्त। दिन-संझा = दिन-रात, हर समय।

35. बछरा = वत्स, बछड़ा। गाइ = गऊ। हरिदासा = हरि भक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यौं जननी गृह काज कराई। पुत्र पिंघूरै पौढत भाई।
उर अपनै तैं छिन न बिसारै। ऐसी लय जन कौं निस्तारै ॥36॥
जैसैं कीट भृङ्ग की त्रासा। पलटि जाइ यहु बड़ा तमासा।
ऐसी बिधि लय लागै जाकी। बारबार बलिहारी ताकी ॥37॥
सब प्रकार हरि सौं लै लावै। होइ विदेह परम पद पावै।
छिन छिन सदा करै रस पाना। लय ते होइ ब्रह्म समाना ॥38॥
दोहा : यह लय योग अनूप है करै ब्रह्म सामान।
भाग्य बिना नहिं पाइये सतगुरु कहै सुजांन ॥39॥

अथ चर्चायोग :

चौपई : अब यह चर्चायोग बषानौं। मति अनुमान कछू जो जानौं।
निराकार है नित्य स्वरूपं। अचल अभेद्य छांह नहिं धूपं ॥40॥
अव्यक्त पुरुष अगम अपारा। कैसैं कै करिये निर्द्धारा।
आदि अन्त कछु जाइ न जांनी। मध्य चरित्र सु अकथ कहांनी ॥41॥

---

36. जननी=माँ। गृह काज=घर का काम-काज। पिंघूरै=पालने में। पौढत=झूलता है। छिन न बिसारै=क्षण भर को भी विस्मृत नहीं करती। निस्तारै=उद्धार करती है, पार उतारती है।

37. कीट=कीड़ा-मकोड़ा। भृङ्ग=भृङ्गी कीड़ा। **टिप्पणी :** भृङ्गी, जो बूँ-बूँ करते हुए अन्य कीड़े को भी भृङ्गी बना देता है। भृङ्गी कीट एक विशेष प्रकार का कीड़ा है, जिसे 'कुम्हारी मक्खी' भी कहते हैं। यह गीली मिट्टी से अपने गुँजाते-[घरघुली] बनाती है। उसी में यह 'लट' नामक विशेष कीट को ले जाकर रखती है और और मुख बन्द करके उसके चारों ओर गुँजारती है। ऐसी मान्यता है कि वह लट नामक कीट गुँजारने वाली कुम्हारी मक्खी बन जाती है। इसीप्रकार राम नाम की गुँजार से मनुष्य में समत्व आ जाता है। बलिहारी=न्यौछावर।

38. लै लावै=लय लगाता है। होइ विदेह=विदेह होकर, अनासक्त-निष्काम होकर। परम पद=परम गति, मोक्ष। ब्रह्म समाना=ब्रह्मवत् हो जाता है।

39. लय योग अनूप=यह लय-योग अनुपम है, अद्भुत है।

40. चर्चायोग=प्रभु गुण गान की साधना। बषानौं=कहता हूँ। निराकार=निर्गुण-निराकार परमात्मा। अचल=अटल सत्ता वाला। अभेद्य=अखण्ड, अछेद्य। छांह नहिं धूपं=वह [-परमात्मा] न छाया है और न धूप। वह कार्य-कारण शृंखला में नहीं आता। वह न बिम्ब है न प्रतिबिम्ब।

41. अव्यक्त=जो व्यक्त न हो, गुप्त, अप्रकट। अगम=अगम्य, अगोचर। निर्द्धारा=निर्धारण। मध्य चरित्र=बीच का हवाला, उसके आदि एवं अन्त के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता और यह मध्य की [-इस दुनिया की, लौकिक-] कहानी अद्भुत होने के कारण अकथ्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमहिं कीनौं (है) ओंकारा। तातैं भयौ सकल बिस्तारा।
जावत यह दीसै ब्रह्मण्डा। सातौं सागर अरु नव खण्डा ।।42।।
चंद सूर तारा दिन राती। तीनहुं लोक सृजे बहु भांती।
चारि षांनि करि सृष्टि उपाई। चौराशी लष जाति बनाई ।।43।।
ब्रह्मा विष्णु सु सृजे महेशा। गण गंधर्व असुर सुर सेसा।
भूत पिशाच मनुष्य अपारा। पशु पक्षी जल थल संसारा ।।44।।
षान पान नाना बिधि बानी। भिन्न सुभाव किये कछु जानी।
हलन चलन सब दिया चलाई। सहजैं सब कछु होता जाई ।।45।।
आप निरंजन परम प्रकाशा। देषै न्यारा भया तमाशा।
तांहीं कछु लीपै नहिं छीपै। घट घट मांहिं आपुही दीपै ।।46।।
चर्चा करौं कहां लग स्वामी। तुम सब ही के अंतरजामी।
सृष्टि कहत कछु अन्त न आवै। तेरा पार कौंन धौं पावै ।।47।।

---

42. प्रथमहिं ओंकारा=सृष्टि के आदि में ओंकार रूप सृष्टि हुई। विस्तारा=उस ओंकार सृष्टि से ही यह सम्पूर्ण सृष्टि-विस्तार हुआ है। जावत=यावत्, जितना भी। दीसै ब्रह्मण्डा=यह ब्रह्माण्ड दिखाई देता है। सातौं सागर=सप्त सागर। नवखण्डा=पृथ्वी के नौ खण्ड।

43. सृजे=निर्मित किए। तीनहुं लोक=पाताल, पृथ्वी और आकाश [-स्वर्ग] लोक अथवा 'भूः भुवः स्वः' अथवा 'सत रज तम' की त्रिलोकी सृष्टि। चार षांनि= स्वेदज, अण्डज, जरायुज और उद्भिज ये चार खानि के जीव। उपाई=उत्पन्न की। जाति योनियाँ। चौराशी लष=चौरासी लाख।

44. सृजे=निर्मित किए। गण=देव वर्ग के प्राणी। सेसा=शेषनाग। भूत-पिशाच =भूत और पिशाच योनियों के प्राणी [मनुष्य आकार में]।

45. षान-पान=खाना-पीना। नाना बिधि बानी=विभिन्न देश-मनुष्य-जाति वर्गों के आधार पर अनेक प्रकार की बोलियाँ। सुभाव=स्वभाव। सहजैं सब=सहज ही सब कुछ चला दिया।

46. आप=स्वयं। निरंजन परम प्रकाशा=वह निरंजन तो परम प्रकाश है। देषै तमाशा=तमाशा-दृश्य देखता रहता है। न्यारा भया=सबसे अलग रहकर, अलिप्त बना रहकर। लीपै नहिं छीपै=न लिप्त होता है न छिपता है। घट घट मांहि=प्रत्येक हृदय में। आपुही दीपै=वह स्वयं ही दीपित-प्रकाशित है।

47. चर्चा करौं कहां लग=कहाँ तक चर्चा करूँ, कितना ही वर्णन करूँ, कितना ही गुणगान करूँ, [कि तुम अपार हो]। सृष्टि=प्रभु-रचना [का वर्णन असीम है]। तेरा=प्रभु का। पार कौंन धौं पावै=पार कौन पा सकता है अर्थात् उसके सृष्टि-विस्तार का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तूं जु अगाध अपार सु देवा । निगम नेति जानैं नहिं भेवा ।
तेरा को करि सकै वषाना । थकित भये सब संत सुजाना ।।48।।
तेरी गति तूं ही पै जानैं । मेरी मति कैसैं जु प्रवानैं ।
कीरी पर्वत कहा उचावै । उदधि थाह कैसैं करि आवै ।।49।।
भक्ति मंत्र लय कीनी चरचा । समझै सन्त करै जो परचा ।
एक किये तिहुं बड़ाई । चार्यौं की कछु कही न जाई ।।50।।

दोहा : ये चार्यौं अंग भक्ति के नौधा इनहीं मांहिं ।
सुन्दर घट महिं कीजिये बाहरि कीजै नांहिं ।।51।।

।।इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां भक्तियोग नाम द्वितीयोपदेशः ।।2।।

।।अथ हठयोग नाम तृतीयोपदेश।।

प्रवेशार्थ : इस उपदेश में रचनाकार ने **'हठयोग'** का अर्थ, विधि और साधन बताते हुए हठयोग की क्रियाओं के माध्यम से 'नख से शिखा' तक शरीर को निर्मल बनाने की बात कही है । फिर **'राजयोग'** को 'जाकौं सब बैठे हीसूझै' के रूप में श्रेष्ठ बताया है । तीसरे क्रम में **'लक्षयोग'** और उसके तीन प्रकार [-ऊर्ध्व, मध्य और बाह्य] बताए हैं ।'ऊर्ध्व लक्ष' योग में आकाश-दृष्टि रखनेका विधान है।'मध्य लक्ष' में ब्रह्म नाड़ी का अध्ययन और उस पर केंद्रीकरण रहता है और 'बाह्य लक्ष' में 'पंचतत्त्व' की धारणा, नासिका कोर पर दृष्टि जमाकर की जाती है । यही क्रम **'त्राटक'** विधि में है, जहाँ त्रिकुटी स्थान पर रक्त

---

48. अगाध=असीम, अपार, गहन । निगम नेति=वेद उसके विषय में 'नेति नेति' कहते हैं । अर्थात् वेद भी परमात्मा के रहस्य को नहीं जानते । भेवा=भेद, रहस्य । वषाना=वखान, वर्णन । थकित भये=कह कर थक गए, विवशता का अनुभव करते हैं ।
49. गति=दशा, व्यवस्था, स्थिति । मति=बुद्धि । प्रवानें=प्रमाणित कर सकती है । कीरी पर्वत कहा उचावै=चींटी पर्वत को क्या उठा पाएगी ? अर्थात् प्रभु की व्याप्ति का गुणगान कर पाना कठिन है । उदधि=सागर ।
50. कीनी=की । करै जो परचा=जो परिचय कर लेता है, वही । एक किये तिहुं लोक बड़ाई=इन चार योगों में से एक ही का अनुसरण संसार में सम्यक् [इतना] गौरव दिला सकता है ।
51. नौधा इनहीं मांहिं=नवधा भक्ति, भक्ति के उक्त नौ प्रकार इन्हीं चार अंगों में निहित हैं । घट महिं कीजिये=हृदय में मानसी सूक्ष्म-भक्ति करिए, बाहरी दिखावटी भक्ति नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण के भ्रमर का लक्ष-साधन किया जाता है। बाह्य लक्ष्ययोग के अनन्तर 'अष्टांग योग' का प्रतिपादन है। साथ ही मुद्रा बन्ध और षट्चक्र-भेदन का वर्णन है। इन सब का विवेचन करते हुए, सिद्धान्त निरूपण में परिभाषात्मक कथनों को देखकर लगता है कि सन्त कवि सुन्दरदास आचार्यत्व के भी अधिकारी हैं। इस उपदेश में साधना केलिए अनुकूल वातावरण अर्थात् देश काल की आवश्यकता पर भी बल दिया है। वे उसी राज्य-शासन को श्रेष्ठ बताते हैं जो लोगों के धार्मिक क्रिया-विधानों में दखल न देता हो। देखिए—

'प्रथम सुधर्म देश कहुं ताकै। भलौ राज्य कछु दषल न जाकै॥'

मूल पाठ देखिए :

चौपई : अबहि कहूं हठयोग सुनाई। आदिनाथ के बन्दौं पाई।
रवि शशि दोऊ एक मिलावै। याही तें हठयोग कहावै ॥1॥
प्रथम सु धर्म देश कहुं ताकै। भलौ राज्य कछु दषल न जाकै।
तहां जाइ कै मठिका करई। अल्प द्वार अरु छिद्र सु भरई ॥2॥
लिप्त करै चहूं ओर सुगंधा। कूप सहित मठ इहिं बिधि बंधा।
तामहिं पैठि करै अभ्यासा। गुरु गमि हठ करि जीतै स्वासा ॥3॥
श्रम न करै बकवाद न मांड़ै। होई असंग चेष्टा छांड़ै।
अति उछाह मन मांहैं करई। निश्चय नाषि धीर्य पुनि धरई ॥4॥

चूर्णिका : 1. आदिनाथ=सदाशिव, महादेव, योग सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक। हठयोग=सूर्य-चन्द्र, इडा-पिंगला अथवा गंगा-यमुना को साधना द्वारा एक करना ही ह+ठ रूप में 'हठ' योग है। याही तें=इसी से।

2. धर्म देश कहुं ताकै=धर्म-भावना, न्याय भावना अर्थात् धार्मिक भावना जहाँ प्रधान हो, उस क्षेत्र-देश को 'धर्म देश' कहा जाता है। साधना केलिए उसी क्षेत्र को देखे-चुने। भलौ राज्य=ऐसा राज्य[-क्षेत्र] साधक केलिए अनुकूल पड़ता है, जहाँ राज्य की ओर से कुछ भी हस्तक्षेप अथवा दखलंदाज़ी न हो। मठिका करई=मठ बनाए, साधना-स्थल तैयार करे। वह मठ या मठिया छोटे द्वार वाला एवं भरे हुए छिद्रों वाला अर्थात् छिद्र रहित हो।

3. लिप्त करै-सुगंधा=लीप कर वातावरण को [स्वच्छ-]सुगन्धित बनाए। गुरु गमि हठ करि=गुरु के निर्देश में रहकर हठयोग सम्पन्न करे। क्योंकि, योग-क्रिया तो गुरु गम्य ही है, बिना गुरु के योग दुस्साध्य है। जीतै श्वासा=श्वास-प्रश्वास अर्थात् प्राणों पर संयमन करे।

4. श्रम न करै=योगी को [शारीरिक-] परिश्रम करना निषिद्ध है।

टिप्पणी : परिश्रम न करने को सिद्धान्त रूप में ग्रहण करना योग-पक्ष की दुर्बलता भी कहा जा सकता है। इस निर्देश के पीछे लक्ष्य यही है कि परिश्रम से शारीरिक थकावट और मानसिक शिथिलता आ जाती है, जिसके फलस्वरूप चित्तवृत्ति को एकाग्र करने में आलस्यादि के कारण, कठिनाई पड़ती है। योग-साधना में परिश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हठि करि आसन साधैं भाई। हठ करि निद्रा तजतौ जाई।
हठ ही करि आहार घटावै। षाटौ षारौ कछू न षावै ॥5॥
हठ करि तीक्षण कटुक सु त्यागै। सरसों तिल मद मांस न मांगै।
हरित शाक कबहू नहिं षाई। हिंगु ल्हसनु सब देइ बहाई ॥6॥
देह कष्ट पुनि करै न सोई। प्रात सनान उपासन कोई।
गोहूं शालि सु करै अहारा। साठी चांवर अधिक पियारा ॥7॥
षीर षांड घृत मधु पुनि सांनी। सूंठि पटोल निर्मल अति पांनी।
यहु भोजन सु करै हठ योगी। दिन दिन काया होइ निरोगी ॥8॥
षट कर्मनि करि देह प्रछालै। नाडी शुद्ध होंहि मल टालै।
बिधि करि करैं क्रिया हैं जेती। धौती बस्ती अरु पुनि नेती ॥9॥

तो होता है, पर मानसिक अधिक। बकवाद न मांड़ै=व्यर्थ की बातें न करे। अल्प भाषी बने रहने से सार्थक बात ही निकलती है और सार की बात कहने से विवाद सम्भव नहीं होता। असंग=अनासक्त।

5. हठ करि आसन साधै=हठयोग विद्या के निर्देश के अनुसार आसन-साधना करे। निद्रा तजतौ जाई=नींद पर संयमन करता जाए, अल्पशायी होता जाए। आहार घटावै=भोजन की मात्रा कम करता जाए, अल्पाहारी हो, जिससे शरीर में फुर्ती, लाघव और तेजस्विता आती है। ऐसा करना हठयोगी साधक केलिए बहुत अनुकूल होता है। षाटौ षारौ=खट्टा और चरपरा [-नमकीन या कड़वा]।

6. तीक्षण कटुक=तीक्ष्ण, चरपरा और कड़वा। हरित शाक=हरा साग। मद मांस=मदिरा और मांस। हिंगु=हींग। ल्हसनु=लशुन [सं०]लहसुन। **टिप्पणी :** छन्द 6-12 तक योगी के आहार-विहार का वर्णन है। यह वर्णन हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष पद्धति, योग चिन्तामणि आदि योग निरूपक हठयोगी शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार ही है।

7. देह कष्ट=शरीर कष्ट। प्रात सनान=प्रातः स्नान। गोहूं=गोधूम, गेहूँ। शालि=चावल। साठी चांवर=साठी के चावल।

8. षीर षांड घृत मधु पुनि सांनी=दूध-शक्कर-घी-शहद को मिलाकर-सानकर, उसमें सौंठ और निर्मल जल मिलाकर भोजन के रूप में सेवन करने से हठयोगी की काया दिन-प्रति-दिन निर्मल होती जाती है।

9-12. षट कर्मनि=षट्कर्म। **टिप्पणी :** धौती, वस्ति, नेति, त्राटक, कपाल-भाती, नौली ये क्रियाएँ ही योग में षट्कर्म कहलाती हैं। देखिए—

'धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥'—ह० प्र०, 2/22

उक्त षट्कर्मों से नाड़ी-शुद्धि एवं शरीर-मल प्रक्षालन का विधान बताया गया है। इन षट्कर्मों से शरीर सूक्ष्मता को प्राप्त होता है। इन यौगिक क्रियाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्राटक निरखै नौली फेरै । कपाल भाथी नीकै हेरै ।
ये षट कर्म सिद्धि के दाता । इन तैं सूक्षम होइ सु गाता ।।10।।
आउं पित्त कफ रहै न कोई । नष सिष लौं वपु निर्मल होई ।
सदाभ्यास तें होइ सु छंदा । दिन दिन प्रगटै अति आनंदा ।।11।।

दोहा : या हठ योग प्रभाव तें, प्रगट होइ आनन्द ।
बिचरै तीनहुं लोक मैं, जब लग सूरय चन्द ।।12।।

के करने से आँव, पित्त और कफ की बीमारी नहीं रहती और शरीर निर्मल होकर 'सिद्धि' प्राप्ति केलिए अनुकूल बनता है । षट्कर्म में गिनी जाने वाली क्रियाएँ संक्षेप में इसप्रकार हैं—

1. **धौति** : चार अंगुल चौड़े, पन्द्रह हाथ लम्बे वस्त्र को गुनगुने जल में सींचकर, गुरु-निर्देश के अनुसार, धीरे-धीरे ग्रसता जाए, निगलता रहे । यह क्रम एक दिन में एक हाथ की वृद्धि से निरन्तर बढ़ता जाना चाहिए । ग्रहण किया जाने वाला वस्त्र सूक्ष्म-झीना और कोमल होना चाहिए । वस्त्र का अन्तिम छोर डाढ़ों में दबाकर नौली कर्म से उदर में भलीप्रकार घुमाया जाना चाहिए और फिर धीरे-धीरे कपड़े को बाहर निकालना चाहिए । इस धौति-कर्म से अनेक कफ-प्रधान रोगों की निवृत्ति होती है ।
2. **वस्ति** : बाँस के नाल को, जिसका छिद्र कनिष्ठा अँगुलि के प्रवेश योग्य हो और छः अंगुल लम्बा हो, लगभग चार अँगुल तक गुदा में प्रवेश करै और बाँस का दो अँगुल भाग बाहर रहने दें । उस दशा में ही **'उत्कट'** आसन पर बैठें । पंजों और हाथ की अँगुलियों के आधार पर बैठने को 'उत्कट आसन' कहते हैं । इस आसन पर बैठकर 'आधार कुँचन' करे । अर्थात् जैसे एक बाँस में से दूसरे बाँस में, खींचकर जल प्रविष्ट कराया जाता है, वैसे ही गुदा के द्वारा अन्दर जल खींचें और नौलि कर्म से अन्दर तक ले जाकर त्याग दे । ये [-धौति-वस्ति] योग क्रियाएँ भोजन से पूर्व करना तथा इनके करने के बाद तत्काल भोजन करना अपेक्षित है । कुछ लोग मूलाधार से प्राण वायु को खींचकर जल-प्रवाह में **'वस्ति'** करते हैं । परन्तु, उसमें जल अन्दर रह जाता है, जो ठीक नहीं है । वस्ति-कर्म से जलोदरादि विकार दूर होते हैं ।
3. **नेति** : एक बालिस्त लम्बे, भलीप्रकार चिकनी सूत्र-नली (-डोरी) को नासिका छिद्र में प्रविष्ट कराके, मुख में नासिका के छिद्र के दूसरे छोर पर आए उस सूत्र को निकालने की क्रिया **'नेति'** कहलाती है । यह बँटी हुई सूत्र-नली नौ-दस या पन्द्रह तार की होती है । 'नेति' करते समय पूरक प्राणायाम और मुख से वायु का रेचन करते हुए, बार-बार करने से, सूत्र का सिरा मुख के नासिका छिद्र में जाने पर, पकड़ कर धीरे-धीरे चलाते रहने से नेति-कर्म पूरा होता है । इसी क्रम से दूसरे नासिका छिद्र में यह क्रिया होती है । नेति-क्रिया कपाल भाग को शुद्ध करती है और इससे दृष्टि निर्मल होती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजयोग लक्षण :

चौपई : राजयोग का कठिन बिचारा। सँमुझैं बिना न लागै प्यारा।
राजयोग सब ऊपर छाजै। जो साधै सो अधिक बिराजै ।।13।।
राजयोग कीना शिव राई। गौरा संग अनंग न जाई।
घृत नहिं ढरै अग्नि के पासा। राजयोग का बड़ा तमासा ।।14।।
नाड़ीचक्र भेद जौ पावै। तौ चढि बिंद अपूठौ आवै।
करनी कठिन आहि अति भारी। बशबर्त्तिनी होइ जौ नारी ।।15।।

---

4. **त्राटक** : समाहित अर्थात् एकाग्रचित्त होकर साधक जब इकटक दृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् लघु पदार्थ को तबतक देखता रहे, जबतक कि अश्रुपात न होने लगे। इस क्रिया को 'त्राटक योग' कहते हैं। यह योग-कर्म नेत्र रोगों को दूर करता है। आलस्य देने वाले तन्द्रादि रोग त्राटक क्रिया से दूर रहते हैं और साधक की योग-साधना में प्रवृत्ति बढ़ती है।

5. **नौलि** : कन्धे झुकाकर, खड़े रह कर हाथों से घुटनों का सहारा लेते हुए, जल के भँवर [-आवर्त्त] की तरह, तीव्र वेग से, अपने पेट, [उदर-नलों] को दाएँ से बाएँ और बायें से दक्षिण की ओर घुमाना ही नौलि से कर्म है। इस नौलि योग-क्रिया से मन्दाग्नि का शमन होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अन्न-पाचन सर्वदा ठीक प्रकार से होने के कारण आनन्द का अनुभव होता है।

6. **कपाल भाति** : लोहकारी भस्त्रा [-धौंकनी] के समान शीघ्रता से पूरक-रेचक प्राणायाम को करना 'कपाल भाति' नामक योग-क्रिया कहलाती है। यह योग-कर्म कफ-दोषों का नाशक एवं श्वास-प्रश्वास को संयमित करने में उपयोगी है। [**'षट्-कर्म'** केलिए देखिए दे०—ह० प्र० 2/22-36]

13. राजयोग=योग का एक प्रकार। यह अन्य योग-प्रकारों से सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इसका विचार-चिन्तन बुद्धि-योग के अनुकूल है। जो साधै सो अधिक विराजै= जो इसे साधता है, वह अधिक देर तक [-लम्बे जीवन तक] शोभायमान बना रहता है। छाजै=शोभायमान।

14. शिव राई=महादेव। गौरा=पार्वती। अनंग=कामदेव। घृत नहिं ढरै=घी नहीं ढुलकता [-पड़ता], वीर्यपात नहीं होता। अग्नि के पासा=यद्यपि [स्त्री-योनि-] अग्नि [रूप गौरा-पार्वती] पास ही विराजमान है। तमासा=कौतुक, अद्‌भुत दशा।

15. नाड़ी चक्र भेद=शरीर की नाड़ियाँ और षट् चक्रों का भेदन। बिंद=विन्दु, वीर्य। अपूठौ आवै=उलटा या अन्तर्मुखी होता है, कपाल मुद्रा-साधना से [रेतस-] वीर्य ऊर्ध्वमुखी होता है। करनी कठिन आहि=क्रिया बहुत कठिन है। बशबर्त्तिनी= वशीभूत, अनुकूल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीसै संग रहै पुनि मुक्ता । अष्ट प्रकार भोग कौ भुक्ता ।
पाप पुन्य कछु परसै नांहीं । जैसें कमल रहै जल मांहीं ।।16।।
सदा प्रसन्न परम आनन्दा । दिन दिन कला बधै ज्यौं चंदा ।
ऐसी भांति रहै पुनि न्यारा । राजयोग का इहै बिचारा ।।17।।
राजयोगि के लक्षण ऐसै । महापुरुष बौलै हैं तैसे ।
जाकौं दुख अरु सुख नहिं होई । हर्ष शोक व्यापै नहिं कोई ।।18।।
जाकौं क्षुधा तुषा न सतावै । निद्रा आलस कबहु न आवै ।
शीत उष्ण जाकौं नहिं भाई । जरा न व्यापै काल न षाई ।।19।।
अग्नि न जरै न बूडै पांनी । रजायोग की यह गति जांनी ।
अजर अमर अति बज्र शरीरा । षड्ग धार कछु भिदै न तीरा ।।20।।
जाकौं सब बैठे ही सूझै । अस सर्बहिंन की भाषा बूझै ।
सकल सिद्धि आज्ञा महिं जाकै । नवनिधि सदा रहैं ढिंग ताकै ।।21।।
इच्छा परै तहां सो जाई । तीनि लोक महिं अटक न काई ।
स्वर्ग जाइ देवनि महिं बैठै । नागलोक पाताल सु पैठै ।।22।।

---

16. दीसै संग=साथ [-आसक्ति युक्त] दिखाई देता है । मुक्ता=मुक्त, जीवन मुक्त । अष्ट प्रकार भोग भुक्ता=आठ प्रकार के भोगों को भोगने वाला, अष्ट मैथुन भोग । परसै नाहीं=स्पर्श नहीं करता, जैसे कमल जल में । गीता का साक्ष्य है—'लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।'—5/10

17. कला बधै=चन्द्र कला जैसे बढ़ती हो । न्यारा=अलग, अनासक्त ।

18. दुख अरु सुख नहिं होई=दु:ख-सुख का प्रभाव नहीं पड़ता । व्यापै=व्याप्त होता है, अनुभव में आता है । महापुरुष बोलै हैं=शिव, सनकादि, याज्ञवल्क्य, दत्तात्रेय, पतंजलि, गोरखनाथ आदि महापुरुषों के समान वचन बोलता है ।

19. क्षुधा तृषा न सतावै=भूख-प्यास रूप दु:ख का अनुभव नहीं होता । अर्थात् भूख-प्यास की स्थिति में जो विचलित या व्याकुल नहीं होता । आलस=आलस्य, तन्द्रा । जरा=वृद्धावस्था, वार्धक्य । काल न षाई=मृत्यु राजयोगी को नहीं खा सकती । योगी अमरत्व को पा लेता है । इसीलिए वह मृत्युजयी होता है, ऐसा माना गया है । तात्पर्य है कि 'काल' की अवधारणाओं से प्रतिबन्धित न होने के कारण 'योगी' कालजयी माना जाता है। उसकी चेतना 'अकाल' एवं 'असीम' में प्रतिष्ठित रहती है ।

20. बज्र शरीरा=शरीर वज्रवत् शक्तिशाली हो जाता है । भिदै न=बेधित नहीं होता । तीरा=तीर, बाण ।

21. सूझै=दिखाई देता है । सबहिंन की भाषा बूझै=सब की भाषा [-मन्तव्य] को समझ लेता है । सिद्धि=सिद्धियाँ । नव निधि=नौ निधियाँ ।

22. इच्छा परै=इच्छा पड़ने [-होने] पर, कामना करते ही । अटकन=रुकावट, अवरोध । काई=कोई । पैठै=प्रवेश पाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु लोक महिं आपु छिपावै । कबहुक प्रगट सु होइ दिषावै ।
हृदै प्रकाश रहै दिन राती । देषै ज्योति तेल बिन बाती ।।23।।

दोहा : राजयोग चिन्ह ये जानैं बिरला कोइ ।
त्रिया संग मति कीजियहु जो ऐसा नहिं होइ ।।24।।

अथ लक्षयोग :

चौपई : लक्षयोग है सुगम उपाई । सतगुरु बिना न जान्यौं जाई ।
रोग न होइ आयु बहु बाधै । लक्षयोग जो कोई साधै ।।25।।
प्रथमहिं अधो लक्ष कौं जानैं । नाशा अग्र दृष्टि थिर आनैं ।
यातें मन पवना थिर होई । अधो लक्ष जो साधै कोई ।।26।।
ऊर्द्ध लक्ष करै इहिं भांती । दृष्ट्याकाश रहै दिन राती ।
बिबिध प्रकार होइ उजियारा । गोपि पदारथ दीसहिं सारा ।।27 ।।
मध्य लक्ष मन मध्य बिचारै । वपु प्रमान कोइ रूप निहारै ।
याते सात्विक उपजै आई । मध्य लक्ष जो साधै भाई ।।28।।
बाह्य लक्ष और पुनि जांनहुं । पंच तत्व की लक्ष सु ठानहुं ।
अग्र नासिका अंगुल चारी । नील वर्ण नभ देषि बिचारी ।।29।।

---

23. आपु छिपावै = अपने को गुप्त रखता है । कबहुक = कभी-कभी । हृदै प्रकाश = हृदय-मन्दिर में प्रकाश-ज्ञान । ज्योति = 'सोऽहमस्मि' की ज्योति ।
टिप्पणी : छन्द 18-23 तक राजयोगी के लक्षण बताए गए हैं, जो 'पातंजलि योग सूत्र के अनुरूप हैं । [दे०—यो० सू०, विभूति०, सूत्र 36-50 तक]

24. चिन्ह = चिह्न, लक्षण । बिरला = कोई-कोई । त्रिया संग मति = कामिनी में आसक्ति की बुद्धि, वासनामय कामना ।

25. **लक्षयोग :** लक्ष्य निर्धारित करके चित्त को लगाने की क्रिया 'लक्षयोग' है । लक्षयोग आन्तर, मध्य और बाह्य रूप में त्रय स्थानिक बताया गया है । इसके फल भी भिन्न-भिन्न बताए गए हैं । सुगम उपाई = सुगम साधन । साधै = साधता है ।

26. अधो लक्ष = लक्ष्य का निचला स्तर । नाशा अग्र = नासिका के अगले सिरे पर । मन पवना = मन और प्राण ।

27. ऊर्द्ध लक्ष = ऊर्ध्व लक्ष्य । इसमें दृष्टि को आकाश में केन्द्रित किए रखना पड़ता है । गोपि पदारथ = गुप्त पदार्थ, छिपे रहस्य-मर्म ।

28. मध्य लक्ष्य = मध्यम लक्ष्य मन के मध्य में ध्यातव्य रहता है । वपु प्रमान = शरीर प्रमाण से । सात्विक उपजै = सात्विक भाव उत्पन्न होता है ।

29-31. बाह्य लक्ष = बाहरी लक्ष्य । **टिप्पणी :** बाह्य लक्ष्य-सिद्धि में पंच तत्त्वात्मक शरीर को, अपना इष्ट-लक्ष्य साधना पड़ता है । इससे पंच भौतिक तत्त्व सिद्ध होते हैं । इसकी साधना में नासाग्र के आगे चार अंगुल तक नील वर्णी आकाश देखा जाता है । छः अंगुल तक धूम्रवर्णी वायु तत्त्व निहारा जाता है, आठ अंगुल तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नासा अग्र अंगुल छह देषैं। धूम्रहि वर्ण वायु तत पेषै।
अंगुल अष्ट नासिका आगै। रक्त वर्ण सु वह्नि तत जागै ।।30।।
नासा अग्र अंगुल दश तांईं। श्वेत वर्ण जल देषि तहांईं।
नासा अग्र सु अंगुल बारा। पीत वर्ण भू देषि अपारा ।।31।।
वाह्य लक्ष और बहुतेरी। सो जानैं जो पावै सेरी।
सतगुरु कृपा करै जौ कबही। देइ बताइ छिनक मैं सबही ।।32।।
अंतर् लक्ष जु सुनहुं प्रकाशा। ब्रह्म नाडिका करहु अभ्यासा।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि जहांलौं। टरहिं न कबहूं जिवै जहां लौं ।।33।।
बहुरि लक्ष करि मध्य लिलारा। जैसा एक बड़ा होइ तारा।
याके कियें बहुत गुन होई। घटि महिं रोग रहै नहिं कोई ।।34।।
रक्त वर्ण भ्रमरा उनमाना। लक्ष करै त्रिकुटी जु सथाना।
यातें सब कौं लगै पियारा। वा तन देषहिं बारम्बारा ।।35।।

दोहा : लक्ष योग जो साधई बैठत ऊठत कोइ।
सतगुरु के जु प्रसाद तें अति सुख पावै सोइ ।।36।।

अथ अष्टांगयोग :

चौपई : अब यहु कहूं योग अष्टंगा। भिन्न भिन्न बहु भांति प्रसंगा।
प्रथमहिं यम अरु नियम बिचारै। पकरि टेक दश दशहिं प्रकारै ।।37।।
बहुर्यौ करै सु आसन सबही। नर्म शरीर होइ पुनि तबही।
तामहिं सारभूत द्वै साधै। सिद्धासन पद्मासन बांधै ।।38।।

रक्तवर्णी अग्नि का स्वरूप देखा जाता है, दस अंगुल तक श्वेतवर्णी जल तत्त्व देखा जाता है और बारह अंगुल तक पीतवर्णी पृथ्वी तत्त्व देखा जाता है।

32. पावै सेरी = रास्ता, मार्ग प्राप्त कर लेता है। छिनक मैं = क्षण भर में।

33. अंतर् लक्ष = आन्तरिक लक्ष्ययोग। यहाँ साधना में दर्शित 'प्रकाश' में **'ब्रह्म नाड़ी'** [-ब्रह्म स्वरूपा सुषुम्ना नाड़ी] पर अभ्यास करने का अनुदेश है। 'ब्रह्म नाड़ी'-सुषुम्ना के सहारे कुण्डलिनी **'ब्रह्म रंध्र'** तक आरोहण करती है।

34. लिलारा = मस्तक में। उक्त योग की विधि त्राटक-क्रिया से मेल खाती है। याके कियें बहुत गुन = इसके करने से बहुत गुण प्राप्त होते हैं।

35. रक्त वर्ण भ्रमरा = लाल रंग के भ्रमर के आकार का कीट।

36. साधई = साधन करता है। अति सुख = परम सुख, आनन्द-चैतन्य।

37. **अष्टांग योग :** छन्द 37-51 तक अष्टांग योग का सार वर्णित है। 'ज्ञान समुद्र' में 'अष्टांग योग' का विस्तार से वर्णन है। टेक = नियम, सिद्धान्त।

38. नर्म शरीर = आसन करने से शरीर सुकोमल होता है। सारभूत = सार रूप में, मूल रूप में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणायाम करै बिधि ऐसी । सतगुरु संधि बतावै जैसी ।
इडा नाडि करि पूरै बाई । रेचक करै पिंगला जाई ।।39।।
पूरि पिंगला इडा निकारै । द्वादश वार मन्त्र बिधि धारै ।
द्विगुण त्रिगुण करि प्राणायामं । उत्तम मध्यम कनिष्ट नामं ।।40।।
कुंभक अष्ट भांति के जानैं । मुद्रा पंच प्रकार सु ठानैं ।
बंध तीनि नीकी विधि लावै । और भेद सदगुरु तैं पावै ।।41।।
प्रत्याहार पकरि मन राषै । बिषै स्वाद कबहूं नहिं चाषै ।
जैसें कूरम सकुचै अंगा । ऐसें इन्द्री राषै संगा ।।42।।
पंच धारणा तत्व प्रकाशा । पृथि अप तेज वायु आकाशा ।
अक्षर सहित देवतनि ध्यावै । पंच पंच घटिका लय लावै ।।43।।
ध्यान सु आहि उभै जु प्रकारा । एक सगुण इक निर्गुन सारा ।
सगुन सु कहिये चक्र स्थानं । निर्गुण रूप आतमा ध्यानं ।।44।।
प्रथम चक्र आधार कहावै । कञ्चन वर्ण चतुर दल ध्यावै ।
दुतिय चक्र है स्वाधिष्ठानं । माणिक्याकृति ध्याय सुजानं ।।45।।
नाभिस्थान चक्र मणिपूरा । तरुण अर्क निभ ध्यावहु सूरा ।
हृदय स्थान चक्र अनुहातू । बिज्जुल प्रभा ध्याय संगातू ।।46।।

---

39. संधि बतावै = 'योग' का विधान बताते हैं। पूरै बाई = वायु आपूरित करता है ।

40. कनिष्ट = छोटा, लघु ।

41. कुंभक अष्ट भांति = आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम । भेद = रहस्य ।

42. प्रत्याहार = पीछे खींचना, इन्द्रिय दमन या अनुशासन । योग-अंगों में से एक । बिषै स्वाद = विषय-भोगों का स्वाद । कूरम = कूर्म, कछुआ ।

43. पृथि = पृथ्वी । देवतनि ध्यावै = इन्द्रिय-द्वारों पर अथवा चक्रों की कमल पंखुड़ियों पर विराजमान अक्षर-देवताओं का ध्यान करना चाहिए। पंच धारणा = 'ज्ञान समुद्र' ग्रन्थ में पाँच तत्त्वों की 'धारणा' विस्तार से बताई गई है । यहाँ संक्षेप में है ।

44. आहि = है । ध्यान दो प्रकार का—1. सगुण, 2. निर्गुण । इन दोनों रूपों में ध्यान का विधान है । सगुन = सगुण रूप में । चक्र स्थानं = चक्रों के स्थान पर । उभै-प्रकारा = उभय विधि, दो प्रकार का । निर्गुण रूप आतमा ध्यानं = निर्गुण रूप का ध्यान आत्म-ध्यान है ।

45-48. चक्रों का परिचय संक्षेप में इसप्रकार है—

प्रथम चक्र : मूलाधार, यह स्वर्ण वर्ण एवं चार पंखुड़ियों वाला चक्र बताया गया है ।
द्वितीय चक्र : स्वाधिष्ठान, यह माणिक्य रत्न की आकृति एवं रंग का है ।
तृतीय चक्र : मणिपूर, यह नाभि स्थान में है । इसका वर्ण-स्वरूप मध्याह्न सूर्य की प्रभा के समान है ।
चतुर्थ चक्र : अनाहद् चक्र, यह हृदय स्थान में है । इस चक्र की शोभा विद्युत प्रभा के समान बताई गई है ।

पंचम चक्र: विशुद्ध चक्र, यह कण्ठ स्थान में है । इसकी छटा दीपक-ज्योति के समान है ।
षष्ट चक्र : आज्ञा चक्र, इसकी छवि नील रत्न के समान है और यह भ्रकुटियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंठ स्थान सु चक्र विशुद्धा। दीपक प्रभा जु ध्याय प्रबुद्धा।
आज्ञा चक्र नील निभ ध्यावै। भ्रू मध्ये परमेश्वर पावै ।।47।।
इति षट चक्र ध्यान जौ जानै। तबहिं जाइ निर्गुन पहचानै।
गगनाकार ध्याय सब ठौरा। प्रभा मरीची जल नहिं औरा ।।48।।
अब समाधि ऐसी विधि करई। जैसें लौंन नीर महिं गरई।
मन इन्द्री की वृत्य समावै। ताकौ नाम समाधि कहावै ।।49।।
जीवात्म परमात्म दोई। सम रस करि जब एकै होई।
बिसरै आप कछू नहिं जानै। ताकौ नाम समधि वषानै ।।50।।
काल न षाइ शस्त्र नहिं लागै। यंत्र मंत्र ता देषत भागै।
शीत उष्ण कबहूं नहिं होई। परम समाधि कहावै सोई ।।51।।

दोहा : यह हठयोग सु चारि विधि, नींकै कह्यौ सुनाइ।
साधनहारे पुरुष की, सुन्दर बलि बलि जाइ ।।52।।

।। इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां
हठयोग नाम तृतीयोपदेशः ।।3।।

के मध्य में स्थित माना गया है।
सुजानं=योग्य साधक। तरुण अर्क=युवक सूर्य अर्थात् मध्याह्न का सूर्य। अनुहातू=अनाहद्-अनहद् चक्र। बिज्जुल प्रभा=विद्युत छटा। संगातू=साथ-साथ। विशुद्धा=विशुद्ध चक्र। प्रभा=शोभा। प्रबुद्धा=प्रबुद्ध साधक। नील निभ=नील रत्न के समान शोभा वाला। परमेश्वर पावै=परम ईश्वर का अनुभव-साक्षात्कार कर सकता है। निर्गुन पहिचानै=निर्गुण परमात्मा से परिचय प्राप्त करता है। अर्थात् ब्रह्म परिचय तभी हो सकता है, जब षट्-चक्रों के ध्यान को जान लेता है। गगनाकार=आकाश स्वरूप में। ठौरा=स्थान। प्रभा मरीची जल=सूर्य किरणों से रूपायित-प्रतिभासित मृगजल अथवा मृगतृष्णा के समान शोभा या चमक। नहिं औरा=और कुछ नहीं।

49. बिधि=प्रकार से। जैसें लौन नीर महि गरई=जिसप्रकार नमक जल में विलय हो जाता है। वैसे ही जब साधक की चित्त-वृत्ति अपने इष्ट में लीन होती है, तब वह 'समाधि' कहलाती है। वृत्य समावै=समाधि दिशा में मन-इन्द्रियों की वृत्तियाँ समाहित [-चित्त] हो जाती हैं।

50. जीवात्म परमात्म=जीवात्मा और परमात्मा यह द्वैत है। समाधि=दशा विशेष, जब द्वैत समाप्त हो जाता है। जब 'समरसता' की दशा प्राप्त होती है, तब ही 'समाधि' दशा समझनी चाहिए। बिसरै आप=समाधि दशा में 'आप' [-अहं-आपा-अहंकारादि] विसर जाता है। तब तो एकमात्र समरसता विद्यमान रहती है।

51. काल न षाइ शस्त्र नहिं लागै परम समाधि में, समाधिस्थ साधक को मृत्यु नहीं निगल पाती, शस्त्रादि नहीं काट सकते। यंत्र-मंत्र अर्थात् जादू-टोना तो उसे देखते ही भागते हैं। समाधि दशा में शीत-उष्ण का अनुभव नहीं होता। यही 'परम समाधि' है।

52. हठयोग चारि बिधि=चार प्रकार का हठयोग। साधनहारे=साधने वाले, साधक। बलि बलि जाइ=बलिहारी जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।।अथ सांख्ययोग नाम चतुर्थोपदेश:।।

प्रवेशार्थ : इस उल्लास में 'ज्ञान-समुद्र' में वर्णित आत्म-अनात्म के भेद को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। उसी को यहाँ 'ज्ञान योग' कहा गया है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म का कार्य रूप है। उस ब्रह्म की ही इसमें सत्ता है। अत: 'यों आतमा विश्व नहिं न्यारा' का विचार-सिद्धान्त प्रतिपादित होता है। यही 'ज्ञान योग' का विचार-तत्त्व है। वैसे 'ब्रह्म योग' साधन को कठिन बताया गया है। क्योंकि इस योग-साधना में—'अहं ब्रह्माऽस्मि' की साधना प्रतिपादित है। अन्त में 'अद्वैतयोग' का वर्णन है। यही असंप्रज्ञात समाधि या अपरोक्ष ज्ञान है। यहाँ ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान एकाकार हो जाते हैं। मूल पाठ इसप्रकार है :

चौपई : अब सांख्य सु योग हि सुनि लेहू। पीछै हमको दोष न देहू।
आतम अनआतमा बिचारा। याही तें सांख्य सु निर्द्धारा ।।1।।
आतम शुद्ध सु नित्य प्रकाशा। अनआतमा देह का नाशा।
आतम सूक्षम ब्यापक मूला। अन आतमा सो पंच सथूला ।।2।।
पृथि अपु तेज वायु अरु गगना। ये पंचौं आतम संलग्ना।
पंचनि मैं मिलि और बिकारा। तिनि यह किया प्रपंच पसारा ।।3।।
शब्द सपर्श रूप रस गंधा। तन्मातृका पंच तन बंधा।
श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राणं। ज्ञान सु इन्द्रिय कियौ बषाणं ।।4।।

चूर्णिका : छन्द 1-11 तक सांख्य शास्त्र के सिद्धान्तों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इसके विस्तृत वर्णन केलिए देखिए—'ज्ञान समुद्र' चतुर्थ उल्लास। सांख्य वर्णन में सन्त सुन्दरदास का योगदान यह है कि वे सांख्य को सर्वत्र वेदान्त से सटाकर प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि दोनों शास्त्रों के मूल सिद्धान्त पृथक्-पृथक् हैं। वेदान्त का आत्म-अनात्म विषयक भेद [-विवेक] सांख्य में वैसा नहीं है। सांख्य के प्रकृति-विकृति विचार को वेदान्त निरस्त करता है। इसीप्रकार सांख्य और योग के मत में भी भेद हैं।

1. आतम अनआतमा बिचारा=आत्म-अनात्म का विचार। निर्द्धारा=निर्धारित किया है।
2. आतम=आत्म तत्त्व नित्य, शुद्ध और प्रकाशमान है। वह सूक्ष्म, व्यापक और मूल है। अनआतमा अनात्म, जड़। सथूला=स्थूल, पंच भूतात्मक।
3. पंचौं आतम संलग्ना=ये पाँच—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्व जब आत्म से संयुक्त होते हैं, तब शरीर बनता है। इन पाँचों में जब कुछ और विकार [-विकृति] होता है, तभी प्रपंचात्मक जगत् की सृष्टि होती है।
4. पंच तन्मातृका = शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ—कर्ण, त्वचा, चक्षु, नासिका और जिह्वा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्य हि पाणि पाद अरु पायुः। उपस्थ सहित पंच समझायुः।
कर्म सु इन्द्रिय इन कौ नामा। तत्पर अपनै अपनै कामा॥5॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहंकारा। चतुष्ट अन्तहकरण विचारा।
तिन कै लक्षण भिन्नै भिन्ना। महापुरुष समुझाये चिन्हा॥6॥
संकल्पै अरु बिकलप करै। मन सो लक्षण ऐसौ धरै।
बुद्धि सु लक्षण बोधहिं जांनी। नीकौ बुरौ लेइ पहिचानी॥7॥
चैतन लक्षण चित्त अनूपा। अहंकार अभिमान स्वरूपा।
नौ तत्वनि कौ लिंग शरीरा। पंद्रह तत्व स्थूल गंभीरा॥8॥
ये चौबीस तत्व वंधानं। भिन्न-भिन्न करि कियौ वषानं।
सब कौ प्रेरक कहिये जीवा। सो क्षेत्रज्ञ निरन्तर शीवा॥9॥
सकल वियापक अरु सर्वंगा। दीसै संगी आहि असंगा।
साक्षी रूप सबनि तें न्यारा। ताहि कछू नहिं लिपै बिकारा॥10॥
यह आतम अन आतम निरना। समझै ताकौं जरा न मरना।
सांख्य सु मत याही सौं कहिये। सतगुरु बिना कहौ क्यौं लहिये॥11॥

---

5 पंच कर्मेन्द्रियाँ=वाक् [-जिह्वा], हाथ, पैर, जननेन्द्रिय और उपस्थ। तत्पर= लगे हुए, संलग्न।

6. अन्तहकरण चतुष्ट=मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार ये वेदान्त के अनुरूप अन्तःकरण चतुष्टय के अंग हैं। सांख्य में तीन अंग माने जाने के कारण 'त्रिपुटी' कहा जाता है [दे०—ज्ञान-समुद्र]। चिन्हा = चिह्न, लक्षण।

7. संकल्पै अरु बिकलप करै=संकल्प और विकल्प करता है, यह मन का लक्षण है। बुद्धि-लक्षण : बोध को धारण करना, अच्छे-बुरे का विश्लेषण करना आदि बुद्धि का लक्षण है।

8-9. चित्त-लक्षण : चैतन्य का अनुभव करना। अहंकार-लक्षण : 'अहं' का होना। लिंग शरीर=पंचभूत और अन्तःकरण चतुष्टय मिलकर नौ तत्त्वों का लिंग शरीर माना गया है। 15 तत्त्वों से मिलकर स्थूल सृष्टि। इसप्रकार ये 9+15=24 तत्त्व सांख्य योग में वर्णित हैं। जीवा=जीव, जीवात्मा। क्षेत्रज्ञ=क्षेत्र का अधिकारी, शिव तत्त्व, आतम तत्त्व।

10. सकल वियापक=सर्वत्र व्याप्त। सर्वंगा=सर्वंगी, सभी अंगों में निहित। दीसै संगी=लिप्त-आसक्त दिखाई देता है। आहि असंगा=है वास्तव में अनासक्त, अलिप्त। साक्षी रूप = स्वयं साक्षी, द्रष्टा। न्यारा=अलौकिक, अद्भुत। नहिं लिपै विकारा=विकार या विकृति से वह लिप्त नहीं होता।

11. निरना=निर्णय। समझै=समझे हुए को, ज्ञानी को। जरा न मरना=बुढ़ापा और मृत्यु नहीं। यही सांख्य मत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सांख्य योग सो यह कह्यौ, भिन्न हि भिन्न प्रकार।
आतम नित्य स्वरूप है, देह अनित्य विचार ॥12॥

अथ ज्ञानयोग :

चौपई : ज्ञान योग अब ऐसैं जानैं। कारण अरु कारय पहिचानैं।
कारण आतम आहि अखंडा। कारय भयौ सकल ब्रह्मण्डा ॥13॥
ज्यौं अंकुरु तें तरु विस्तारा। बहुत भांति करि निकसी डारा।
शाषा पत्र और फरफूला। यौं आतमा विश्व कौ मूला ॥14॥
जैसें नभ महिं बादर होई। ता महिं लीन भये पुनि सोई।
ऐसें आतम बिश्व बिचारा। महापुरुष कीनौ निरधारा ॥15॥
जैसें उपजै वायु बघूरा। देषत के दीसहिं पुनि भूरा।
आँटी छूटै पवन समाही। आतम विश्व भिन्न यौं नाहीं ॥16॥
ज्यौं पावक तैं दीसत न्यारा। दीप मसाल जु बिबिध प्रकारा।
ताही मांझ होइ सो लीनां। यौं आतमा बिश्व लै चीन्हां ॥17॥

---

12. **सांख्ययोग :** सांख्य सिद्धान्त में आतमन् नित्य एवं देह संघात अनित्य माना गया है।

13. **ज्ञानयोग :** छन्द 13-23 तक ज्ञानयोग का संक्षेप में वर्णन है। इसे विस्तृत रूप में 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ में देखा जा सकता है। रचनाकार ने ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, और अद्वैतयोग ये तीन प्रकरण [-उपदेश] सांख्य मतानुसार प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि, 'ज्ञानयोग' में न्याय-दर्शन एवं औपनिषदिक वेदान्त का प्रभाव लक्षित है। [दे०—'यौं आतमा विश्व है सोई'—छन्द-18, 'यौं आतमा विश्व नहिं दोइ।'—छन्द21] कारण अरु कारय=कारण और कार्य। ब्रह्मण्डा=ब्रह्माण्ड।

14. अंकुरु=अंकुर। निकसी=निकलती है, निकली है। डारा=शाखाएँ। शाषा=शाखाएँ। पत्र=पत्ते। फरफूला=फल-फूल। विश्व कौ मूला=विश्व-सृष्टि का मूलाधार।

15. नभ महि बादर=आकाश में बादल। लीन=लय। कीनौ निरधारा=निर्धारित किया है।

16. उपजै=उत्पन्न होता है। वायु बघूरा=वायु का बवण्डर, चक्रवात। भूरा=भूरे रंग का। आँटी छूटै=ग्रन्थि अथवा चक्र छूटने पर। आतम विश्व भिन्न यौं नाहीं=इसप्रकार आतमन् और विश्व, उक्त उदाहरणों के सिद्ध होने पर, दो भिन्न सत्ताएँ नहीं रह जातीं। अपितु वे एक ही सत्ता के रूपान्तरण हैं।

17. न्यारा=अलग। दीप मसाल=दीपक और मशाल। मांझ=मध्य में। चीन्हां=पहिचाना, समझा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसें उपजै जल कै संगा। फेन बुदबुदा और तरंगा।
ताही मांझ लीन सो होई। यौं आतमा विश्व है सोई ।।18।।
ज्यौं पृथ्वी तें भाजन भाई। बिनसि गये ता मांझ बिलाई।
यौं आतम तें विश्व प्रकाशै। कहन सुनन कौं दूजा भासै ।।19।।
ज्यौं कञ्चन के भूषन नाना। भिन्न भिन्न करि नांव बषाना।
गारे सर्ब एक ही हूवा। यौं आतमा बिश्व नहिं जूवा ।।20।।
जैसें तंतुहि पट लै बाना। वोत प्रोत सो तंतु समाना।
भेद भाव कछु भिन्न न होइ। यौं आतमा बिश्व नहिं दोइ ।।21।।
जैसें करी सूत की माला। मनिका सूत न होइ निराला।
यौं आतमा बिश्व नहिं भेदा। कहत पुकारें प्रगट जु वेदा ।।22।।
ज्यौं प्रतिमा पाहन मैं दीसै। दूजी बस्तु न बिश्वाबीसै।
यौं आतमा बिश्व नहिं न्यारा। ज्ञानयोग का इहै बिचारा ।।23।।

दोहा : ज्ञानयोग सो जानि है, जाकौं अनुभव होइ।
कहैं सुनैं कहा होत है, जब लग भासत दोइ ।।24।।

---

18. फेन बुदबुदा और तरंगा = झाग-बुलबुले और लहरें जल के रूपान्तरण हैं। इसी प्रकार आत्मा और विश्व की स्थिति है।

19. भाजन पात्र, मिट्टी के बर्तन। विनसि गये = बिनष्ट हो जाने पर। ता मांझ = उसी के मध्य। बिलाई = विलय हो जाते हैं।

20. भूषन = आभूषण। गारे = गलाने पर, पिघलाने पर। एक ही हूवा = एक हो जाते हैं। जूवा = जुदा, पृथक्।

21. तंतुहि = तन्तु, सूत। पट = वस्त्र, कपड़ा। वोत प्रोत = ओत-प्रोत, व्याप्त। भेद भाव = अन्तर।

22. करी = बनाई। सूत की माला = सूत निर्मित माला। मनिका = गुरिया। निराला = पृथक्। भेदा = भेद, अन्तर। वेदा = वेद-शास्त्र।

23. प्रतिमा = मूर्ति। पाहन = पाषाण, शिला। बिश्वाबीसै = बीसो-बीस अर्थात् पूरी तरह से। आत्मा और विश्व पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं, यही 'ज्ञानयोग' द्वारा प्रतिपादित विचार है।

24. अनुभव होइ = अनुभव होने पर ही 'ज्ञानयोग' होता है। अनुभव में जब तक 'दो' [-द्वैत] रहता है, तब तक कहने-सुनने से कोई लाभ नहीं। इसकेलिए उपनिषद् मन्त्र 'सर्वं खल्विमिदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किञ्चन' का अनुभव करके ही 'परम सत्य' तक पहुँचा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ ब्रह्मयोग :

चौपई : ब्रह्मयोग अब कहिये ऐसा । उपजै संशय रहै न कैसा ।
ब्रह्मयोग का कठिन बिचारा । अनुभव बिना न पावै पारा ।।25।।
ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिये । परचा होइ तबहिं तौ लहिये ।
ब्रह्मयोग पावै निःकामी । भ्रमत सु फिरै इन्द्रियारामी ।।26।।
ब्रह्मयोग सोई भल पावै । पहिले सकल साधि करि आवै ।
ब्रह्मयोग सब ऊपर सोई । ब्रह्मयोग बिन मुक्ति न होई ।।27।।
ब्रह्मयोग जौ उपजै आई । तौ दूजा भ्रम जाइ बिलाई ।
होइ अव्यापक कछू न व्यापै । ब्रह्मयोग सब उपजै आपै ।।28।।
सब संसार आप मैं देषै । पूरण आपु जगत महिं पेषै ।
आपुहि करता आपुहि हरता । आपुहि दाता आपुहि भरता ।।29।।

---

25. **ब्रह्मयोग :** साधना की चर्या-भावना में ब्रह्म योगी स्वयं में सम्पूर्ण संसार को प्रति-बिम्बित देखता है और 'अहम् ब्रह्माऽस्मि' के चिन्तन में अपने 'स्व' एवं ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं मानता । वह अनुभव करता है कि—

'अहं परात्पर अहं अखण्डा । व्यापक अहं सकल ब्रह्मण्डा ।'
'अहं परम आनन्दमय अहं ज्योति निज सोइ ।'

बिना 'अनुभव' के ब्रह्मयोग सम्भव नहीं है। यहाँ ज्ञानयोग और अद्वैतयोग के बीच में 'ब्रह्मयोग' का प्रतिपादन सकारण है। उपजै = उत्पन्न होने पर, उदय होने पर। संशय रहै न कैसा = किसी प्रकार का भी संशय नहीं रहता । न पावै पारा = पार [-अधिगति] नहीं प्राप्त कर सकता ।

26. दुर्लभ = कठिन, दुस्साध्य । परचा = परिचय, अनुभव-साक्षात्कार । निःकामी = निष्कामी, अनासक्त, फल की कामना न करने वाला । इन्द्रियारामी = इन्द्रियों में रमण करने वाला, विषयी ।

27. भल = भलीप्रकार से । साधि करि आवै = साधन चतुष्टय को साधकर अर्थात् अभ्यास करके आने वाला ही । सब ऊपर = सर्वोत्तम, श्रेष्ठ ।

28. दूजा भ्रम = द्वैत का, अन्य प्रकार का भ्रम । बिलाई = विलय हो जाता है, समाप्त हो जाता है। अव्यापक होइ = अनासक्त होने के कारण प्रभाव या दबाव रहित हो जाता है। आपै = अपने आप, सहज ही ।

29. देषै = दिखाई देता है। पूरण आपु = स्वयं में पूर्णत्व भाव का अनुभव करता है। करता = कर्त्ता । हरता = हरण करने वाला । भरता = भरण-पोषण करने वाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपु ब्रह्म कछु भेद न आनैं। अहं ब्रह्म ऐसैं करि जानैं।
अहं परात्पर अहं अखण्डा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मण्डा ।।30।।
अहं निरञ्जन अहं अपारा। अहं निरामय अरु निरकारा।
अहं निलेप अहं निज रूपं। निर्गुण अहं अहं सु अनूपं ।।31।।
अहं सुख रूप अहं सुख राशी। अहं सु अजर अमर अविनाशी।
अहं अनन्त अहं अद्वीता। अहं सु अज अव्ययं अभीता ।।32।।
अहं अभेद्य अछेद्य अलेषा। अहं अगाध सु अकल अदेषा।
अहं सदोदित सदा प्रकाशा। साक्षी अहं सर्व महिं बासा ।।33।।
अहं शुद्ध साक्षात सु न्यारा। कर्ता अहं अहं सकल संसारा।
अहं सीव सूक्षम सब सृष्टा। अहं सर्वज्ञ अहं सब दृष्टा ।।34।।
अहं जगनाथ अहं जगदीशा। अहं जगपति अहं जगईशा।
अहं गोविंद अहं गोपालं। अहं ज्ञानघन अहं निरालं ।।35।।

दोहा : अहं परम आनन्दमय अहं ज्योति निज सोइ।
ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया दुबिध्या रही न कोइ ।।36।।

---

30. भेद न आनैं = अन्तर नहीं करता। अहं ब्रह्म = 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्य के ज्ञान को अनुभव में उतार लेता है। परात्पर = 'परात् श्रेष्ठादपि परः' श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, परमात्मा, परब्रह्म। सकल = सम्पूर्ण।

31. निरञ्जन = निष्कलंक अर्थात् माया रहित ब्रह्म। अपारा = अपार, असीम। निरामय = दोष मुक्त, पूर्ण ब्रह्म का विशेषण। निरकारा = निराकार ब्रह्म। निलेप = निर्लेप, अनासक्त। निर्गुण = त्रय गुण रहित, ब्रह्म का विशेषण। अनूपं = अनुपम, अद्वितीय।

32. सुख राशी = सुख का भण्डार। अजर = वृद्धावस्था रहित, ब्रह्म का विशेषण। अविनाशी = जिसका कभी विनाश न हो, परब्रह्म। अद्वीता = अद्वैत। अज = अजन्मा। अव्ययं = अव्यय, अपरिवर्तनशील, अक्षय, नित्य, ब्रह्म का विशेषण। अभीता = भय रहित।

33. अभेद्य = अछेद्य, अखण्ड। अलेषा = रूप-रेखा रहित। अगाध = गहन। अकल = कला रहित, परिवर्तन रहित। अदेषा = अदृश्य। सदोदित = नित्य प्रकाशमान, सर्वदा उदित। साक्षी = साक्षात् देखने वाला, परमेश्वर। बासा = निवास।

34. साक्षात = प्रत्यक्ष। न्यारा = अद्वितीय, अलौकिक, अलग। सीव = शिव, कल्याण रूप, आदि चैतन्य। सूक्षम = सूक्ष्म, कारण रूप। सृष्टा = नियामक, विधाता, विधायक। सर्वज्ञ = सबकुछ जानने वाला। दृष्टा = साक्षी।

35. जगनाथ = जगन्नाथ, जगत् का स्वामी, जगदीश। जगपति = जगत् पति, जगत् का स्वामी। ज्ञानघन = ज्ञान स्वरूप। निरालं = न्यारा, निराला, अद्भुत।

36. परम आनन्दमय = परमानन्द स्वरूप। ज्योति निज = स्वयं ज्योति। ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया = ब्रह्मयोग-साधना से ब्रह्म ही हो जाता है। दुबिध्या = द्विविधा, शंका, संशय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ अद्वैतयोग :

चौपई : अब अद्वैत सुनहुं जु प्रकासा। नाहं ना त्वं नां यहु भासा।
नहि प्रपंच तहां नहीं पसारा। न तहां सृष्टि न सिरजनहारा ॥37॥
न तहां प्रकृति पुरुष नहि इच्छा। न तहां काल कर्म नहि बंछा।
न तहां शून्य अशून्य न मूला। न तहां सूक्षम नहीं सथूला ॥38॥
न तहां तत्व अतत्व विभेदा। न तहां बस्तु बिबस्तु न वेदा।
न तहां वर्ण विवर्ण बिनाना। न तहां रूप अरूप सथाना ॥39॥
न तहां व्यापक व्याप्य विशेषा। न तहां रूप नहीं तहां रेषा।
न तहां जोति अजोति न कोई। न तहां एक नहीं तहां दोई ॥40॥
न तहां आदि न मध्य न अंता। नहि प्रतिपाल नहीं तहां हंता।
न तहां शक्ति नहीं तहां शीवा। न तहां जन्म नहीं तहां जीवा ॥41॥
न तहां लेष न लेषनहारा। न तहां कर्म नहीं करतारा।
न तहां स्वर्ग न नरक निवासा। न तहां त्रासक न तहां त्रासा ॥42॥
न तहां धर्म अधर्म न करता। न तहां पाप न पुण्य न धरता।
न तहां पंडित मूरष कौंना। न तहां वाद विवाद न मौंना ॥43॥

---

37. **अद्वैतयोग :** 'ज्ञानयोग' और 'ब्रह्मयोग के पश्चात् 'अद्वैतयोग' का क्रम आध्यात्मिक चिन्तन-उत्कर्ष के अनुरूप प्रस्तुत है। 'अद्वैत' में द्वैत की सम्भावना समाप्त हो जाती है। नाहं ना त्वं=न तो मैं हूँ न तुम हो। एक तत्त्व की अनुभव-व्याप्ति में 'मैं-तुम' विलय हो जाते हैं। भासा=भास, प्रतीति। पसारा=प्रसार, सृष्टि। सिरजनहारा =सृजन करने वाला।
38. न तहां प्रकृति पुरुष=अद्वैत दशा में सांख्य प्रतिपादित पुरुष-प्रकृति का द्वैत नहीं रहता। इच्छा=कामना। बंछा=वाञ्छा, प्राप्ति-इच्छा। मूला=मूल प्रकृति, आद्या शक्ति। सथूला=स्थूल, पंच भौतिक शरीर या जगत्।
39. विभेदा=भेद, अन्तर। वस्तु बिबस्तु=वस्तु-विवस्तु अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल। वेदा=वेद-ज्ञान। बिनाना=विज्ञान, विशेष ज्ञान। सथाना=स्थान।
40. व्याप्य=व्याप्त होने योग्य। रेषा=रेखा, आकृति। जोति=ज्योति, प्रकाश-बिम्ब। दोई=दो।
41. प्रतिपाल=रक्षक, पालक। हंता=संघारक, विनाशक। शक्ति-शीवा=शक्ति और शिव, योग एवं शाक्त मतों का लक्षित या प्रतिपाद्य। जीवा=जीव, प्राणी।
42. लेषनहारा=लिखने वाला, रचने या आकृति बनाने वाला। निवासा=निवास, वास। त्रासक=त्रास देने वाला। त्रासा=भय, आतंक।
43. धर्म अधर्म=धर्म-अधर्म अर्थात् धार्मिक और अधार्मिक भावना-विचार। फरता= धारण करने वाला। पंडित मूरष=विद्वान् और मूर्ख। वाद विवाद=तर्क-वितर्क, उत्तर-प्रत्युत्तर। मौंना=मौन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न तहां शास्तर वेद पुराना। न तहां होम न यज्ञ विधाना।
न तहां संध्या सूत्र न शाषा। न तहां देव मनुष्य न भाषा ॥44॥
न तहां इष्ट उपासनहारा। न तहां सगुण न निर्गुण सारा।
न तहां सेवक सेव्य न सेवा। न तहां प्रेम न प्रीति न लेवा ॥45॥
न तहां भाव नहीं तहां भक्ती। न तहां मोक्ष नहीं तहां मुक्ती।
न तहां जाप्य नहीं तहां जापी। न तहां मन्त्र नहीं लय थापी ॥46॥
न तहां साधक सिद्ध समाधी। न तहां योग न युक्त्याराधी।
न तहां मुद्रा बंधन लागै। न तहां कुण्डलिनी नहीं जागै ॥47॥
न तहां चक्र न नाडि प्रचारा। न तहां वेध न बेधनहारा।
न तहां लिंग अलिंग न नाशा। न तहां मन बुधि चित्त प्रकाशा ॥48॥
न तहां सत-रज-तम गुन तीना। न तहां इन्द्रिय द्वार न कीना।
न तहां जाग्रत स्वप्न न धरिया। न तहां सुषुप्ति न तहां तुरिया॥49॥

दोहा : ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहं ध्ये ध्याता नहिं ध्यान।
कहनहार सुन्दर नहीं यह अद्वैत बषान ॥50॥

॥ इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां सांख्ययोग नाम चतुर्थोपदेशः ॥4॥

॥ समाप्तोऽयं सर्वांगयोग प्रदीपिका ग्रन्थः ॥ ॥ सर्व छन्द संख्या 203 ॥

---

44. शास्तर=शास्त्र। मत=सिद्धान्त। होम=हवन, यज्ञ। यज्ञ=याग, मख। 'होम' और 'यज्ञ' में किञ्चित् आकार-प्रकार का ही अन्तर है। सूत्र न शाषा=शिखा-सूत्र। भाषा=भाषा, वाणी।

45. इष्ट=लक्ष्य, प्राप्तव्य, गन्तव्य, उपासतव्य, ध्यातव्य। उपासनहारा=उपासक, आराधक। सेवक-सेव्य-सेवा=सेवा-त्रिपुटी। लेवा=ग्रहण करने वाला।

46. भक्ती=भक्ति, इष्ट के प्रति अर्पित प्रेम। मुक्ती=मुक्ति, मोक्ष। जाप्य=जपने योग्य। जापी=जापक, जपने वाला। लय थापी=लय की स्थिति।

47. समाधी=समाधि, चित्त वृत्ति की लयलीनता। युक्त्याराधी=युक्ति पूर्वक आराधना करने वाला। मुद्रा=योगमुद्रा। बंधन=बन्ध, हठयोग प्रतिपादित जालन्धर-मूलबन्धादि। जागै=जागृत होती है।

48. चक्र=षट् चक्र। नाडि प्रचारा=नाड़ी शोधन और उसका प्रचार। लिंग-अलिंग=कारण और कारण हीनता। मन बुधि चित्त=मन-बुद्धि और चित्त की त्रिपुटी।

49. गुन तीना=तीनों गुण। इन्द्रिय द्वार=इन्द्रियों के नव-दश अथवा द्वादश द्वार। धरिया=धारण करने वाला। तुरिया=तुरीय अवस्था।

50. ज्ञे-ज्ञाता-ज्ञान एवं ध्ये-ध्याता-ध्यान=ज्ञान और ध्यान त्रिक् अथवा त्रिपुटी। कहनहार=कहने वाला, कह सकने वाला। उस दशा की अनिर्वचनीयता के कारण उस अनुभव को शब्दों में बाँध पाना सम्भव नहीं माना गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥3॥ अथ पंचेन्द्रिय चरित्र ॥

प्रवेशार्थ : 'पंचेन्द्रिय चरित्र' ग्रन्थ की समाप्ति श्रावण कृष्णा दशमी शुक्रवार, सं० 1691 वि० को हुई थी। यह ग्रन्थ 'सर्वांगयोग प्रदीपिका' की भाँति ही लघु है। इसमें विभिन्न प्रकार के कुल 221 छन्द हैं, जो उपदेशों [-अध्यायों] में व्यवस्थित हैं। प्रथम पाँच उपदेशों में विषय-लोलुप इन्द्रियों को, पाँच पशु-जीवों के रूप में प्रतीकित करके प्रस्तुत किया गया है। इन चरित्रों में और छठे उपदेश में, समाहार करते हुए, निर्गुण-विचार सार प्रस्तुत किया गया है। यह सार इसप्रकार है—

'गज अलि मीन पतंग मग, इक इक दोष विनाश।
जाके तन पंचौं वसै, ताकी कैसी आश॥'

जो इन पाँचों बहिर्गमित इन्द्रियों को संयमित करते हुए वशीभूत कर लेते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं। इन इन्द्रियों को 'कछु और न आनें चीतैं' के रूप में जीत लेने के अनेक उपाय बताए हैं। जैसे—स्पर्शेन्द्रिय [-त्वचा] से भगवान् अथवा सन्त के चरण स्पर्श करना, घ्राणेन्द्रिय से भगवत् चरणों को अर्पित पुष्प अथवा तुलसी की गन्ध ग्रहण करना, रसना से हरि गुण गान, श्रवणों से हरि-कथा, श्रवण और नेत्रों से हरि-दर्शन की लालसा की अतिशय रुचि धारण करना आदि। कुल मिलाकर यह ग्रन्थ योग-साधना-मार्ग की ओर प्रवृत्त होने वाले जिज्ञासु साधकों की चित्त वृत्ति को अनुशासित करने में सहयोगी हो सकता है। मूल पाठ :

दोहा : नमस्कार गुरुदेव कौं, कीयौ बुद्धि प्रकास।
इन्द्रिय पंच चरित्र कौं, बरनत सुन्दरदास ॥1॥

चूर्णिका : 1. बुद्धि प्रकास=बुद्धि प्रकाश, बुद्धि आलोक, अभिव्यक्ति की क्षमता रूप प्रकाश। इन्द्रिय पंच चरित्र=पंचेन्द्रियों के चरित्र। बरनत=वर्णन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। प्रथमोपदेशः ।।

अथ गज चरित्र :

निर्भय बन मैं फिरत गज, मदन मत्त अति अंग।
शंक न आनैं और की, क्रीडत अपने रंग ।।2।।

चौपई [-सखी] :

गज क्रीडत अपनै रंगा। बन मैं मद मत्त अनंगा।
वलवन्त महा अधिकारी। गहि तरवर लेइ उपारी ।।3।।
जब दंत भूमि धरि चंपै। तब भार अठारह कंपै।
जहां मन मानै तहां धावै। फल भक्ष करै जो भावै ।।4।।
पुनि पीवै निर्मल नीरा। पैठै जल गहर गंभीरा।
जित ही तित सूंड पसारै। गज नाना भांति पुकारै ।।5।।
वैठै जब ही मन मानै। सोवै तब भै नहिं आनै।
पुनि जागै अपनी इच्छा। उठि चलै जहां कौं बंछा ।।6।।
ऐसी बिधि बन में डोलै। कोइ अपनै बलु नहिं तोलै।
कछु मन में धरै न शंका। हम तें कोऊ और न बंका ।।7।।

---

2. **गज चरित्र** : स्पर्शेन्द्रिय केलिए रूढ़ गज [-हाथी] प्रतीक के माध्यम से, त्वचा-सुख की अतिशयता को संयमित करने की व्यंजना कराई गई है। जिसप्रकार हाथी, मिथ्या हथिनी के स्पर्श-मोह में फँसकर स्वयं बन्धनग्रस्त होता है, ऐसे ही गज रूप मन मोहासक्ति में फँसकर बन्धनग्रस्त होता है। 'गज चरित्र' के माध्यम से सुन्दरदास ने कामेन्द्रिय प्रसंग को साधना-विचार-प्रसंग में विवेचित किया है। मदन मत्त = काम-भावना में मदमस्त। शंक = शंका, डर, फिक्र। क्रीड़त = क्रीड़ा निरत हैं।

3. महा अधिकारी = महान् सामर्थ्य वाला। गहि = पकड़कर। उपारी = उखाड़ डालता है।

4. चंपै दबाता है, टकराता है। भार अठारह = पूरा बन-प्रदेश, वनस्पति समूह। कंपै = काँप उठता है, थर्राता है। धावै = दौड़ता है, बेरोक टोक जाता है।

5. पैठै = प्रवेश करता है। जल गहर गंभीरा = गम्भरी [-गहरे] जल में। जित ही तित = जिधर चाहे उधर।

6. भै = भय। अपनी इच्छा = स्वेच्छा से। जहां कौं बंछा = जिधर भी वाञ्छा या इच्छा करता है।

7. अपनै बलु नहिं तोलै = अपनी ताक़त के समक्ष किसी को नहीं गिनता। धरै न शंका = शंका नहीं करता, भय नहीं मानता। बंका = बाँका, पराक्रमी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति गर्व करै अभिमानी। बूझै नहिं अकथ कहानी।
घट मैं अज्ञान अंधेरी। नहिं जानत अपनौ बैरी ।।8।।
इक मनुष तहां को आवा। तिहिं कुञ्जर देषन पावा।
उन ऐसी बुद्धि बिचारी। फिरि आवा नग्र मझारी ।।9।।
तब कहा नृपति सौं जाई। इक गज बन मांझ रहाई।
हम पकरि इहां लै आवैं। तब कहा बधाई पावैं ।।10।।
राजा कहि करौं निहाला। तब लोक कुटँब प्रतिपाला।
जौ लै आवै गज भाई। देहौं तब बहुत बधाई ।।11।।

दोहा : बहुत बधाई दैंउ तुहि, लै आवै गजराज।
जो तूं मेरे काम कौ, करौं सबनि सिरताज ।।12।।

चौपई [-सखी :]

तब कीयौ दूत सलांमू। हम करहिं नृपति कौ कांमू।
कोउ देहु हमारौ संगा। दश बीस जने बल अंगा ।।13।।
नृप तब ही बेगि बुलाये। तिनि आवत सीस नवाये।
नृप कही सबनि सौं गाथा। तुम जाहु इनौं कै साथा ।।14।।

---

8. अति गर्व करै=अतिशय घमण्ड करता है। अज्ञान अंधेरी=अज्ञान का अन्धकार, नासमझी। अपनौ बैरी=अपना शत्रु।
9. मनुष तहां को आवा=कोई मनुष्य वहाँ आया। नग्र मझारी=नगर [-शहर] के मध्य।
10. बन मांझ रहाई=बन के बीच में रहता है। बधाई पावैं=पुरस्कार-इनाम प्राप्त कर सकेंगे।
11. करौं निहाला=निहाल कर दूंगा, धन-दौलत से भरपूर कर दूंगा। तव लोक कुटंब प्रतिपाला=तुम्हारे परिवार जनों का प्रतिपालन [-पालन-पोषण] करूँगा। देहौं बहुत बधाई=बड़ा पुरस्कार देकर बधाई दूंगा।
12. बधाई=पुरस्कार-प्रशंसा। दैंउ तुहि=तुझे दूंगा। करौं सबनि सिरताज=सबके ऊपर प्रतिष्ठित कर दूंगा, पदोन्नति कर दूंगा। जो तूं मेरे काम कौ=यदि तू मेरे काम का निकला तो। अर्थात् मेरे बहुत काम का है।
13. दूत=अनुचर। सलांमू=सलाम, जुहार, अभिवादन। नृपति कौ कांमू=राजा का काम। दश बीस जने=दस-बीस लोग। बल अंगा=शक्तिशाली, ताक़तवर।
14. तिनि=उन लोगों ने। सीस नवाये=शीश झुकाकर जुहार किया। गाथा=कहानी, प्रसंग। इनौ के=इनके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृप दूतहि बीरा दीनौ। उनि सिर चढाइ करि लीनौ।
तब विदा होइ घर आवा। कछु मन मैं फिकरि उपावा ॥15॥
पुनि सुमिरे सिरजनहारा। तुम देउ बुद्धि करतारा।
तब बुद्धि विधाता दीनी। कागद की हथिनी कीनी ॥16॥
बिचि कालबूत भरि लीया। कछु अधिक तमाशा कीया।
अति चित्र विचित्र संवारी। सब कीये चिन्ह बिचारी ॥17॥
मनु अबही उठि कैं भागै। मुख बोलत बार न लागै।
उन हुन्नर ऐसा कीनां। इक जीव मांहिं नहिं दीनां ॥18॥
तब दूत वहां लै जाहीं। गज रहत जहां बन मांही।
उनि एक सरोवर पेषा। गज आवत जातें देषा ॥19॥
तहां षंधक कीना जाई। पतरे तृण लीन छवाई।
तृण ऊपरि मृतिका नाषी। ता ऊपर हथिनी राषी ॥20॥
वै दूत रहे छिप भाई। चुपचाप असारति लाई।
कोउ समय तहां गज आवा। जलपान करै नहिं पावा ॥21॥
त्रिय देषत अति बेहाला। भयौ कामअंध ततकाला।
हथिनी कौ देषि स्वरूपा। शठ जाइ पर्‌यौ अंधकूपा ॥22॥

---

15. बीरा दीनौ [मुहा०]=पान [-ताम्बूल] का जोड़ा दिया, चुनौती स्वीकार करने-कराने का प्रतीक। सिर चढाइ [मुहा०]=शीश झुकाकर, सहर्ष। विदा होइ=विदा होकर। फिकरि उपावा=फिक्र [-चिन्ता] उत्पन्न हुई।

16. सुमिरे=स्मरण किए, कार्य सिद्धि केलिए प्रार्थना की। करतारा=करतार, कर्त्ता, विधाता, परमात्मा। बुद्धि दीनी=ऐसी बुद्धि आई या हुई। कागद की हथिनी कीनी=हाथी पकड़ने केलिए उसने कागज की हथिनी बनाई।

17. बिचि=भीतर, अन्दर। कालबूत=उस कागज की हथिनी के भीतर कतरन-खेरीज [-घास-फूस-चिथड़े आदि] की भरती भरके, ऊपर कागज से हथिनी की आकृति बनाई। चित्र विचित्र=रंग-बिरंगी सजाकर। सब कीये चिन्ह=हथिनी के सारे चिह्न-लक्षण बनाए।

18. मनु=मानों, जैसे [-उत्प्रेक्षा अलंकार]। हुन्नर=हुनर, कला, कौशल। जीव मांहिं नहिं=उस हथिनी में अन्दर प्राण-संचार ही नहीं था, शेष सब कुछ था।

19. बन मांहीं=बन [-जंगल] के मध्य। उनि=उन्होंने। पेषा=देखा।

20. षंधक=खन्दक, खाई, गड्ढा। कीना=खोदा-बनाया। पतरे तृण लीन छवाई=तृण पत्तों से ढक दिया, छा दिया। मृतिका नाषी=मिट्टी डाल दी। ता ऊपर=उसके ऊपर।

21-22. वै दूत=राजा के वे अनुचर-परिचर। असारति=इशारत, इशारे, संकेत, नयन-सैन आदि। जलपान करै नहिं पावा=पानी नहीं पी पाया। त्रिय=गज त्रिया, हथिनी। बेहाला=बेचैन, कामातुर। कामअंध=कामान्ध, वासना में अन्धा। ततकाला=तत्काल, तत्क्षण। स्वरूपा=आकार-स्वरूप। शठ=दुष्ट, मूर्ख। अंधकूपा=अन्धे कुएँ में, खन्दक में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : धाइ पर्‌यौ गज कूप मैं, देष्या नहीं बिचारि।
काम अन्ध जानै नहीं, कालबूत की नारि ॥23॥

चौपई [-सखी] :

गज कालबूत नहिं जांनां। सुधि बीसरि गई निदानां।
गज कूदि कूदि सिर मारै। भूमी धरि सूंड पछारै ॥24॥
बल बहुतहि करै गंवारा। निकसन का कतहुं न द्वारा।
तव आये दूत नजीका। देष्या हस्थी अति नीका ॥25॥
उन संकल तुरत मंगाई। कल ही कल पग पहराई।
दिन दश नहिं दियौ अहारा। बल छीन भया तिहिं बारा ॥26॥
जब उतरि गई सब रीसा। तब चढ़े महावत सीसा।
उनि अंकुश कर गहि लीना। कुंजर कै मस्तक दीना ॥27॥

---

23. धाइ पर्‌यौ=दौड़कर पड़ गया, गिर गया, फँस गया। देष्या नहीं बिचार=विचार करके नहीं देखा, विवेक से नहीं सोचा। काम अन्ध—की नारि [कहा०]=वासना में अन्धा प्राणी कालबूत की अर्थात् असली और नकली को नहीं पहचान पाता। कालबूत की नारि=धोखे की कामिनी-स्त्री [-हथिनी]।

24. कालबूत [फा०] <कलबुद=वह कच्चा भराव, जिस पर महराव छाई जाती है। सुधि बीसरि गई=विवेकशून्य होने के कारण विस्मृति हो गई। निदानां=निदान, पूर्ण रूप से। सिर मारै [मुहा०]=सिर पीटता है, सिर टकरा-टकरा कर पछताता है। भूमी धरि सूंड पछारै=भूमि पर सूँड़० <[सं० शुण्डी] रख-रख कर पछाड़ें खाता है। तुलना कीजिए—

'कालबुत की हस्तनी कुंजर कान्ति हरन्त।
कहि जगजीवन रामी, मार झरन्त मरन्त ॥'

—जगजीवन० बा०, माया०, साखी 203

25. गंवारा=मूर्ख। द्वारा=द्वार, निकास। नजीका=नजदीक, निकट। हस्ती नीका=सुन्दर हाथी।

26. संकल=साँकल, अर्गला। कल ही कल पग पहराई=चतुराई से साँकल पैरों में पहना दी, बन्धन में डाल दिया। अहारा=भोजन, खाना। बल छीन भया=शक्ति से क्षीण हो गया। तिहिं बारा=उस समय।

27. रीसा=क्रोध, गुस्सा। सीसा=शीश पर। अंकुश कर गहि लीना=महावत ने हाथ में गजवाग अर्थात् अंकुश लिया। कुंजर=हाथी। दीना=दे मारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गज तबहिं कछू दुष पावा। अंकुश कै ओर नवावा।
तब षंधक महिं तें काढे। उनि बाहरि कीये ठाढे ॥28॥
पठये राजा पहं साथी। लै आये घर कौ हाथी।
उनि किया नजरि सौं मेला। पुनि भये परस्पर भेला ॥29॥
गज सबहिन सौं पतियाना। बसि भये तबहिं उन जाना।
लै चले नृपति के पासा। पूजी दूतनि की आसा ॥30॥
जब निकट नगर कै आये। तब सब ही देषन धाये।
गज लिये गये दरबारा। नृप आगै कीन जुहारा ॥31॥
नृप देषि षुसी भयौ भारी। दीयौ सिरपाव उतारी।
पुनि द्रव्य दिया ततकाला। नृप कीये दूत षुसाला ॥32॥
गज भया काम बसि अंधा। गहि राजदुवारे बंधा।
गज काम अंध नहिं जाना। मानुष कै हाथ बिकाना ॥33॥
गज बैसाये तें बैसैं। ज्यौं कहै महावत तैसैं।
अति भूष प्यास दुख देषै। पिछला सुख कतहु न पेषै ॥34॥
पुनि सीस धुनै पछितावै। परबसि कछु होइ न पावै।
गज काम अंध गहि कीना। इहिं काम बहुत दुख दीना ॥35॥

28-29. दुष पावा=कष्ट-पीड़ा का अनुभव किया। नवावा=झुका, झुकाया। काढे=निकाला। पहं=पर, के निकट। घर को हाथी=घर का पालतू हाथी। उनि किया नजरि सौं मेला=राजा ने अथवा राजा के हाथी ने दूर से ही, पकड़े गए हाथी को देखा। भेला=मेल, सम्बन्ध हुआ।

30-31. पतियाना=विश्वास किया, सब से पहचान की। पूजी दूतनि की आसा=उन अनुचरों की मनोकामना पूर्ण की। अर्थात् उन्हें खुल कर इनाम दिया। दरबारा=राजद्वार पर। जुहारा=अभिवादन, नमन।

32. षुसी भयौ=प्रसन्न हुआ। सिरपाव दियौ=शीश का आभूषण अथवा सिरोपाव-सिरोपा भेंट किया, सम्मान दिया। द्रव्य=धन। षुसाला=खुशहाल, सन्तुष्ट।

33. भया=हुआ। गहि=पकड़ा गया। राजदुवारे बंधा=राजद्वार पर बाँध दिया गया। मानुष कै हाथ बिकाना=प्रकृति [-बन] का मुक्त प्राणी हाथी, काम-वासना में अन्धा होने के कारण, गुलाम होकर मनुष्य के हाथ बिक गया, परतन्त्र हो गया।

34. बैसाये तें बैसें=बैठाए जाने पर, बैठने की आज्ञा होने पर बैठता है। अर्थात् वह परवश होकर विवश हो गया। पिछला सुष=पिछली [-विगत] आजादी का सुख।

35. सीस धुनै पछितावै [मुहा०]=शीश धुनता और पछताता है, मन में बिसूरता है। परबसि=दूसरे के वशीभूत होकर, परतन्त्र होकर, गुलामी की हालत में। इहिं काम बहुत दुख दीना=यह काम-वासना [प्राणियों को-] बहुत दुःख देती है। कछु होइ न पावै=कुछ बन नहीं पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बंध्या ग्राम ।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम ।।36।।

चौपई [-सखी] :

यह काम बली हम जाना । ब्रह्मा पुनि काम भुलाना ।
इहिं काम रुद्र भरमाया । भिलनी कै पीछे धाया ।।37।।
इहिं काम पुरन्द्र निपाता । भग सहस किये तिहिं गाता ।
इहिं काम चन्द्रमा बाहे । गुरु गृहनी देषि उमाहे ।।38।।
इहिं काम पराशर अन्धा । उन धाइ गही मछगन्धा ।
इहिं काम श्रृंगी ऋषि ताये । तिनि नीकी भांति नचाये ।।39।।

---

36. बन तजि बंध्या ग्राम=बन [-जंगल] का स्वतन्त्र जीवन समाप्त करके, ग्राम-नगर का बन्धनवाला जीवन प्राप्त हुआ । गज बपुरे की=विचारे हाथी की । विश्व नचाया काम [मुहा०]=संसार को—संसार के लोगों को, काम-वासना ने बहुत ही नाच नचाया है, परेशान किया है ।

37. काम बली=शक्तिशाल-महाप्रबल कामेच्छा, वासना-शक्ति । काम भुलाना [मुहा०] =काम के वशीभूत हुआ । रुद्र भरमाया=इस काम-वासना ने महादेव तक को विभ्रमित किया था । **टिप्पणी :** पुराण-कथा प्रसंग है कि महादेव उस समय काम-विभ्रमित हुए थे, जब पार्वती ने भीलिनी [-निषाद वंशीय स्त्री] का वेश धारण किया था । शिव उसके पीछे-पीछे दौड़े थे । पार्वती ने शिव की जितेन्द्रियता की परीक्षा ली थी । उस परीक्षा में महादेव असफल हुए थे ।

38. पुरन्द्र=पुरेन्द्र, इन्द्र । निपाता=पतित किया । **टिप्पणी :** इस सम्बन्ध में [-महाभारत, पद्मपुराण] में अहल्या-इन्द्र-कथा प्रसिद्ध है । इन्द्र ने गौतम ऋषि की भार्या अहल्या के साथ जार-कर्म किया था । इस पर महर्षि गौतम की ओर से इन्द्र को सहस्र भग होने तथा चन्द्रमा को कलंकी होने का अभिशाप मिला था और अहल्या 'पाषाणी' बनी थी । बाहे=वहन किया अर्थात वह पतित [-कलंकी] हुआ । गुरु गृहनी=गुरु गौतम की गृहिणी । उमाहे=उमंगित हुए थे ।

39. **पराशर**=पाराशर ऋषि । धाइ गही मछगन्धा=काम विवश हो दौड़कर मछोदरी को पकड़ लिया था । श्रृंगी ऋषि ताये=काम ने श्रृंगी ऋषि को खूब तपाया, परेशान किया था । **टिप्पणी :** पुराण-कथा है कि पाराशर ऋषि धीवर-कन्या योजनगंधा अथवा मत्स्यगन्धा पर आसक्त हुए थे । इसीप्रकार विभाण्डक मुनि के पुत्र श्रृंगी ऋषि मोहिनी अप्सरा के प्रति कामासक्त हुए थे । कहते हैं कि एक बार अकाल पड़ने की हालत में, वर्षा-यज्ञ करने केलिए, राजा रोमपाद को समाधिस्थ श्रृंगी ऋषि की आवश्यकता पड़ी थी । तब अप्सरा का मोहन-संसर्ग कराके राजा ने इन्हें समाधि से उठाया था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहिं काम वालि संघारा। रघुनाथ बांन भरि मारा।
इहिं काम लंकपति षोये। दश सीस पकरि कै रोये ॥40॥
इहिं काम विश्वामित्र डूलै। तेऊ देषि उर्वशी भूलै।
इहिं काम कीचक संतापै। गहि भीम षंभ तरि चापै ॥41॥
इहिं काम अनेक बिगोये। जो अंध निशा मैं सोये।
देवासुर मानुष जेते। गण गंध्रव मारे केते ॥42॥
पुनि जीव लक्ष चौराशी। डारी सबहिन कौं पाशी।
इहिं काम लोक त्रय लूटै। कोई शरण राम के छूटै ॥43॥
बिनु परसत यह दुख होई। परसत कैसी गति लोई।
कह सुन्दरदास बिचारा। देषहु गज के व्यवहारा ॥44॥

दोहा : गज व्यवहारहिं देषि करि बेगहि तजिये काम।
सुन्दर निश दिन सुमरिये अलष निरंजन राम ॥45॥

॥ इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे गज चरित्रः काम इन्द्रिय प्रसङ्ग प्रथमोपदेशः ॥1॥

---

40. वालि संघारा=सुग्रीव के भाई बालि का बध इस काम-वासना की प्रबलता के कारण हुआ था। रघुनाथ=श्री रामचन्द्र। लंकपति षोये=लंका का राजा रावण, कामवश होकर मरा।
41. **विश्वामित्र :** काम के वशीभूत होकर ही विश्वामित्र जैसे ऋषि, मेनका अप्सरा पर मोहित हुए थे, जिससे शकुन्तला का जन्म हुआ था। **कीचक :** महाभारत का एक पात्र विशेष। यह राजा विराट का साला था, जो कीचक नाम से प्रसिद्ध है। यह द्रौपदी से बलात्कार करने के अभियोग के कारण ही भीम द्वारा मारा गया था। चापै=पीड़ित किया गया।
42. अनेक बिगोये=अनेकों को नष्ट किया है। अंध निशा=अज्ञानमयी मोह निशा। देवासुर मानुष जेते=जितने भी देव-असुर-मनुष्य हुए, वे सब मोहान्ध होकर ही नष्ट हुए हैं। केते=कितने ही।
43. लक्ष चौराशी=चौरासी लाख। पाशी=पाश, बन्धन। लोक त्रय=तीनों लोकों को। शरण राम के छूटै=जो राम-परमात्मा की शरणागत होता है, वही [छूटता-] मुक्त रहता है।
44. बिनु परसत दुख - काम तो बिना स्पर्श किए [-छुए] ही दुःख [-ताप] देता है। परसत कैसी गति=छूने पर पर कैसी गति होगी, यह अनुमान लगाया जा सकता है। लोई=लोगों की। गज व्यवहारा=गज का चरित्र देखो।
45. बेगहि तजिये काम=शीघ्र ही काम-वासना से मुक्ति पाइए, यह उपदेश-सन्देश है। सुमरिये=स्मरण कीजिए। अलष निरंजन राम=अगोचर शुद्ध राम को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयोपदेशः ।।

अथ भ्रमर चरित्र :

भ्रमर चरित्र में घ्राणेन्द्रिय की अतिशयता अथवा असंयत वृत्ति के घातक प्रभाव को, 'भ्रमर' प्रतीक के द्वारा दर्शाया गया है। सुगन्धि आकर्षण में फँसकर जिसप्रकार भ्रमर कमल-संपुट में बँध जाता है और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो बैठता है। उसी-प्रकार सुगन्धि के लोभ-मोह में खिचकर मनुष्य अपनी चित्तवृत्ति पर संयम खोकर, अतिशय आसक्ति के कारण, अपने स्वतन्त्र जीवन के स्वत्व को गँवाकर, इन्द्रियों [या इन्द्रिय-] का गुलाम हो जाता है। प्रतीक शैली में रचित यह भ्रमर चरित्र-चित्रण, अपने मन्तव्य को, सामान्य पाठक-श्रोता तक सहज संप्रेषित करने में समर्थ है। मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : बैठत भ्रमर कली कली, चंचल चपल सुभाव।
तृप्ति न होइ सुगन्ध तैं, फिरत सु अपने चाव ।।1।।

चौपई [-सषी] :

अलि फिरत सु अपनै चाऊ। अति चञ्चल चपल सुभाऊ।
पियरे मुख श्याम शरीरा। कहुं रहत नहीं पल थीरा ।।2।।
अलि बहुत पहुप कौ संगी। नहिं ऐसौ कोई रंगी।
अलि बास लेइ उड़ि जाई। कहुं एक ठौर न रहाई ।।3।।
अलि करत फिरै गुञ्जारा। जाकैं मकरन्द अहारा।
कबहूं कै दैव संजोगा। अलि गयौ कंवल कै भोगा ।।4।।

चूर्णिका : 1. '**भ्रमर चरित्र** में 'भ्रमर' घ्राणेन्द्रिय का प्रतीक-चरित्र है। भ्रमर की वृत्ति [-कार्य-स्वभाव] के एक पक्ष के माध्यम से, मनुष्य की गन्ध [-वासना] जनित दुर्बलता की व्यंजना कराई है। कली कली=कलिका-कलिका अर्थात् पुष्प-पुष्प पर। चंचल चपल सुभाव=भौंरे का स्वभाव चंचलता-चपलता वाला है, जो उसकी गन्ध-वासना का ही परिणाम है। चाव=स्वभाव, रुचि।

2. अलि=भ्रमर। चाऊ=चाव, रुचि। पियरे मुख=पीलु मुख वाला। श्याम शरीरा=काले शरीर का। थीरा=थिर, स्थिर।

3. पहुप=पुष्प। संगी=साथी। रंगी=रंगीला, रसिक वृत्ति का।
टिप्पणी : यहाँ प्रयुक्त 'संगी' और 'रंगी' पाठ केलिए [क] प्रति में 'बसिया' और 'रसिया' पाठ मिलते हैं। प्रस्तुत पाठ, संशोधन का परिणाम है। बास=सुवास, सुगन्धि। एक ठौर=एक स्थान पर।

4. गुञ्जारा=गुंजार, गुँजन। मकरन्द=पराग, पराग कण। दैव संजोगा=देवयोग से, दैवात्। कंवल कै भोगा=कमल[-पराग-गन्ध] का भोग करने केलिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कंवल प्रफुल्लित जोया। मन का धोषा सब षोया।
बैठा अंबुज कै मांहीं। शठ काल सु जानै नांहीं ॥5॥
तिहिं कंवल प्रेम रवि केरा। रवि अस्त भयौ तिहिं बेरा।
तब अंबुज संपुट लावा। अलि मांहि रहे सुख पावा ॥6॥
मन मैं यौं करत विचारा। सब रति पिऊं रस सारा।
उड़ि जाऊं होइ जब भोरा। रजनी आऊं इहिं ठौरा ॥7॥
यहु उत्तम ठौर सुवासा। इहं करि हौं सदा बिलासा।
हम बैठै पुष्प अनेका। कोउ कंवल समान न एका ॥8॥
यौं करतैं रैनि बिहांनी। बूझी नहिं अकथ कहानी।
इक गज आयौ बड़ प्राता। कछु कीया षेल बिधाता ॥9॥
रवि उदै भया सो नांहीं। जातैं संपुट षुलि जांहीं।
संपुट सो रहिगा लागा। अलि भीतरि रह्या अभागा ॥10॥

दोहा : भीतरि रहिगा कंवल कै, अलि सुगन्ध लपटाइ।
मूरष मर्म न जानिया, काल पहूंच्या आइ ॥11॥

---

5. कंवल प्रफुल्लित जोया=खिला हुआ कँवल देखा। धोषा=आसक्ति जनित धोखे में पड़कर, भ्रान्ति से। अंबुज=कमल। शठ=मूर्ख, विवेकहीन। काल जानै नांहीं=अपनी मृत्यु [-विनाश] को नहीं जानता।
6. कंवल प्रेम रवि केरा=कमल का प्रेम सूर्य से है। बेरा=वेला, समय। संपुट लावा=पँखुडियाँ सिकुड़ गईं, सूर्य के अस्त होने पर कमल पँखुड़ियाँ [-सम्पुट] बन्द हो गईं। मांहि रहे=भीतर रहकर।
7. सब राति=रात्रि भर रहकर। पिऊं रस सारा=सारा रसपान कर लूं। अपनी इन्द्रिय को तृप्त करता रहूँ। भोरा=भोर, प्रभात, सूर्य-उदय होने पर। रजनी=रात्रि में।
8. सुबासा=आकर्षक वास अथवा सुगन्धि वाला। करि हौं बिलासा=विलास [-इन्द्रियभोग] करता रहूँगा। कंवल समान न=कमल के समान और कोई पुष्प नहीं, जो रात्रि भर भ्रमर को सुख देता रहे अथवा दे सके।
9. रैनि बिहानी=रात्रि व्यतीत हो गई। बूझी नहि=समझी नहीं। गज=हाथी। बड़ प्राता=बड़े प्रातः, प्रभात में बहुत जल्दी ही। कीया षेल बिधाता=परमात्मा ने तमाशा [-विचित्र संयोग] किया।
10. रवि उदै भया नांहीं=सूर्य उदित नहीं हुआ। संपुट लागा रहिगा=संपुट लगा रह गया। अलि अभागा=भाग्यहीन भ्रमर।
11. अलि सुगन्ध लपटाइ=भ्रमर सुगन्धि में लिपटा रहा। मर्म=रहस्य, भेद। काल पहूंच्या आइ=मृत्यु निकट आ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपई [-सषी] :

जल मैं पैठा गज धाई। जल पीया बहुत अघाई।
उनमत्त करै गज क्रीड़ा। नहिं जानत पर की पीड़ा ॥12॥
धरि ऐसैं सूंडि चलाई। कछु नैंकु दया नहिं आई।
गहि अंबुज लियौ उपारी। गज पीठ सु अपनी झारी ॥13॥
पुनि पकरि पांव तरि दीना। अलि मुये मांहि मतिहीना।
जौ बीधे जाइ सुबासा। तौ भया भ्रमर का नाशा ॥14॥
इहिं गंध बिषै रुचि जाकी। पुनि होइ इहै गति ताकी।
नासा इंद्रिय कै घाले। अलि प्रांण त्यागि कैं चाले ॥15॥
जिनि गंध बिषै मनु दीना। ते भये भ्रमर ज्यौं छीना।
जिन के नासा बसि नाहीं। ते अलि ज्यौं देषि बिलाहीं ॥16॥
ऐसी रुचि कबहुं न करिये। अलि देषि देषि अति डरिये।
यह रुचि हरि नाम भुलावै। यह रुचि सौं काम जगावै ॥17॥

---

12. धाई=दौड़कर, उमंगपूर्वक। जल पीया अघाई=अघाकर, तृप्तिपूर्वक जल पिया। उनमत्त=उन्मादित होकर। गज क्रीड़ा=हाथी का जल-विहार। पर की पीड़ा=दूसरे का दर्द।

13. सूंडि चलाई=सूंड को इधर-उधर घुमाया। नैंकु=थोड़ी भी, किंचित् मात्र भी। गहि=पकड़ कर। अंबुज लियौ उपारी=कमल को उखाड़ लिया। पीठ अपनी झारी=[उस कमल से हाथी ने] अपनी पीठ को झाड़ा।

14. पांव तरि दीना=फिर पाँव के नीचे दबा दिया। अलि मुये=भ्रमर मर गया। बीधे=जो बिंधता [-फँसता] है, आसक्त होता है। भ्रमर का नाशा=[इस प्रकार-] भ्रमर का विनाश।

15. गंध बिषै=नासिका का विषय गन्ध, गंध की प्रबल आसक्ति। इहै गति होइ=इसीप्रकार की, भ्रमर जैसी दशा [-परिणाम] होती है। नासा इंद्रिय=नासिका इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय। घाले=[पाला पड़ने. वशीभूत होने पर-]नाश करता है, मार डालता है। चाले=चल दिया।

16. गंध बिषै=सुगन्ध के विषय [-आसक्ति] में। मनु दीना=मन लगाया। ते भये =वे होते हैं। छीना=क्षीण, क्षय, विनष्ट। नासा बसि नाहीं=नासिका [-घ्राण इन्द्रिय] वशीभूत नहीं है। देषि बिलाहीं=देखते-देखते ही विलय [-विनष्ट] हो जाते हैं।

17. रुचि=लालसा, आसक्ति। हरि नाम भुलावै=[यह लालसा-] हरि-स्मरण को विस्मृत करती-कराती है। काम जगावै=काम-वासना को, भोग-वृत्ति को जागृत करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब काम तैं उपजै क्रोधा। पुनि लोभ मोह् बड़ जोधा।
सब ही गुन उपजै आई। जौ रंचक गंध सुहाई ।।18।।
चौवा चन्दन कर्पूरा। कस्तूरी अग्र हजूरा।
सिर लाये तेल फुलेला। तब कहा राम सौं मेला ।।19।।
पुनि और अनेक सुगन्धा। ये सकल जीव कौ फंधा।
जन सुन्दर कहि समुझावा। यह भ्रमर चरित्र सुनावा ।।20।।

दोहा : भ्रमर चरित्र सुनाइया नासा इन्द्रिय जांनि।
सुन्दर यह रुचि त्यागि कैं [हरि] चरन कंवल रुचि आंनि ।।21।।

।। इति श्री सुन्दरदास विरचिते भ्रमर चरित्रे नासा
इन्द्रिय प्रसङ्गे द्वितीयोपदेशः ।।2।।

---

18. काम तैं उपजै क्रोधा=काम-वासना से [वासना के अपूर्ण या खण्डित होने पर-] क्रोध उत्पन्न होता है। पुनि लोभ-मोह बड़ जोधा=पुनः लोभ-मोह नामक [इन्द्रियासक्ति रूप]बड़े विकट योद्धा हैं। रंचक=थोड़ी भी। गंध=सुगन्ध-वासना।

टिप्पणी : काम से क्रोध की उत्पत्ति एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। गीता में इन्द्रिय असंयम के क्रम को इसप्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धि नाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।'-2/62-63

19. चौवा=चोवा, एक सुगन्धित द्रव्य, जो 'अगर' [-अग्र] नामक पौधे से चुवा कर निकलता है। कर्पूरा=कपूर, जो सुगन्धित द्रव्य 'कपूर' के पौधे से निकलता है। कस्तूरी=मृग-नाभि से प्राप्त होने वाला सुगन्धित पदार्थ। हजूरा=हाजिर, प्रस्तुत। सिर लाये=सिर[-केश]पर लगाया जाने वाला। तेल फुलेला=फूलों की सुवास से सुगन्धित किया गया तैल। तब कहा राम सौं मेला=[सुगन्धित द्रव्यों में अतिशय आसक्ति बनी रहने पर-] 'राम' [परम सत्य]से मेल कैसे हो सकता है? अर्थात् लक्ष्य भेद के कारण राम-साक्षात्कार सम्भव नहीं।

20. अनेक सुगन्धा=और भी अनेक सुगन्धित पदार्थ। जीव कौ फंधा=जीव-पाश हैं अर्थात् आसक्ति अतिशयता के कारण ये मनुष्य के बन्धन रूप माने गए हैं। जन=भक्त। कहि समुझावा=कहकर समझाया है।

21. सुनाइया=सुनाया है। भ्रमर—नासा इन्द्रिय जांनि=भ्रमर को प्रतीक रूप में, नासिका इन्द्रिय अथवा गन्ध-वासना का प्रतीक समझना चाहिए। यह रुचि त्यागि कै=अतिशय गन्ध-वासना की रुचि-लोलुपता को त्याग कर। चरन कंवल=[पूज्य-] चरण-कमलों में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयोपदेशः ।।

अथ मीन चरित्र :

'मीन चरित्र' में स्वाद लोलुपता प्रधान रसनेन्द्रिय की प्रतीक 'मछली' के माध्यम से स्वाद-वृत्ति की अतिशयता के विरुद्ध उपदेश दिया गया है। मछली स्वाद के लालच में, अपने जबड़े को, मछुआरे की वंशी के काँटे में फँसा लेती है, जिससे उसकी जीवन-हानि होती है। उपदेश प्रधानता होते हुए भी इसमें रचनाकार ने अपने कौशल से, प्रतीक में व्यंजना भरी है। उल्लिखित जीवों की क्रियाओं में यहाँ जो सजीव विम्ब उभरते हैं, वे पाठक-श्रोता को प्रभावित करते रहे हैं। मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : मीन मग्न जल मैं रहै, जल जीवन जल गेह।
जल बिछुरत प्रांणहि तजै, जल सौं अधिक सनेह ।।1।।

चौपई [-सषी] :

वा जल सौं अधिक सनेहा। जल बिनु दुष पावत देहा।
जल ही मैं विचरत भाई। जल ही मैं केलि कराई ।।2।।
कवहूं जल ऊपरि षेलैं। कबहूं गहिरैं तन मेलैं।
छिन मैं जोजन फिरि आवै। ताकी गति कोउ न पावै ।।3।।
कछु शंक नहीं मन मांहीं। अपनौं रिपु जानत नांहीं।
नृप साहि चढ़हिं जौ साथा। तउ मीन न आवै हाथा ।।4।।
इक धीवर बुद्धि उपाई। बनसी की साज बनाई।
लोहे का कंटक कीना। तिहिं ऊपरि आमिष दीना ।।5।।

चूर्णिका : 1. 'मीन चरित्र' में रसनेन्द्रिय की प्रतीक मछली के माध्यम से, स्वाद लोलुपता के परिणाम को, कथात्मक रूपक के रूप में अभिव्यंजित किया गया है। मग्न जल मैं रहै=जल की गहराई में प्रसन्न बनी रहती है। मछली केलिए जल ही जीवन और जल ही घर है। प्रांणहि तजै=जल के [-से] बिछुड़ने पर प्राण-त्याग कर देती है।

2. वा जल=उस जल में अर्थात् जल में। दुष पावत देहा=शरीर दुःख पाता है। केलि कराई=क्रीड़ा करती है।

3. तन मेलै=शरीर को डाल देती है। छिन में=थोड़ी-सी देर में। जोजन फिरि आवै=योजनों अर्थात् बहुत दूर तक, विचरण कर आती है। ताकी गति=उसकी दशा को।

4. अपनौं रिपु=अपना शत्रु। नृप साहि चढ़हिं जौ साथा=राजा-बादशाह सेना लेकर आक्रमण करें, तो भी मछली हाथ नहीं आती।

5. धीवर=कहार, मछली पकड़ने वाला। बुद्धि उपाई=बुद्धि उत्पन्न की, विचार किया, मछली पकड़ने की योजना बनाई। बनसी की साज=डोरे और काँटे सहित मछली पकड़ने के बाँस को तैयार किया। लोहे का कंटक='बंसी' में लोहे का काँटा लगाया। आमिष दीना=मांस लगाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीया लंबा इक डोरा। कंटक वंध्या तिहिं छोरा।
लै आयौ जल के पासा। सब देषहिं लोक तमासा ॥6॥
जल भीतरि बनसी डारी। तहां आयौ मीन निहारी।
शठ जिह्वा स्वाद भुलाना। उनि कंटक काल न जाना ॥7॥
गहि मांस लिया मुख माहीं। शठ कंटक देष्या नाहीं।
मुख महिं तैं भीतरि लीला। तब डोरा कर मैं हीला ॥8॥
उन धींवर बेगि संभारा। जल महिं तैं बाहरि डारा।
अति छटपटाइ बहुतेरा। कहा होइ काल जब घेरा ॥9॥
वरि कैऊ धरि धरि पटका। कछु प्राण चले कछु अटका।
तब धींवर घर लै आवा। उनि गली गली दिषलावा ॥10॥
शठ स्वाद मांहिं मन दीना। जिह्वा घर घर का कीना।
जिस गहिरै ठौर ठिकाना। सो रसना स्वाद बिकाना ॥11॥
तब गाहक लै गयौ मोली। कछु दिया गांठि तैं षोली।
उनि खण्ड खण्ड गहि कीना। इहिं स्वाद बहुत दुख दीना ॥12॥

---

6. छोरा=किनारे पर। लोक तमासा=लोक दृश्य, तमाशा।

7. बनसी डारी=आमिष लगे काँटे वाले डोरे को पानी में डाला। तहां आयौ मीन निहारी=वहाँ मछली नजर में आई। **टिप्पणी :** यहाँ 'मछली' का पुल्लिग प्रयोग है। हिन्दी में ऐसे प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं। जिह्वा स्वाद=जीभ का स्वाद, स्वाद की अतिशयता अथवा स्वाद लोलुप वृत्ति की व्यंजना। कंटक काल न जाना= काँटे के रूप में अपनी मृत्यु को नहीं पहचाना।

8. गहि मांस लिया=मांस को पकड़ लिया, [मुख में-] भीतरि लील लिया, भीतर निगला। तब डोरा कर में हीला=उसी समय मछली पकड़ने वाले के हाथ में थमा हुआ डोरा हिला।

9-10. बेगि=तत्काल। छटपटाइ=[मछली बाहर आकर] छटपटाने लगी। काल-घेरा=काल ने घेर लिया। कैऊ धरि धरि पटका=कइओं ने उसे धर-धर पटका अर्थात् कुछ मछुआरे पकड़ी हुई मछली को पटक-पटक कर मारते हैं। कछु प्राण··· अटका=तब उसकी कुछ-कुछ श्वास चल रही थी। अर्थात् मरने से पहले मछली की श्वास अटक कर चलती है। उनि गली गली दिषलावा=मछली बेचने वाले ने उसे गली-गली दिखलाया। अर्थात् मछली पकड़ने वाले गली-गली में सबको दिखाते हुए मछली को बेचते फिरते हैं।

11-12. मन दीना=मन लगाया। जिह्वा···कीना=जीभ के स्वाद ने उसे दर-दर का बना दिया। रसना स्वाद बिकाना=वह मछली, रसना-स्वाद की असंयम वृत्ति के कारण घर-घर बिकी। मोली=मोल-खरीद कर। खण्ड खण्ड कीना=खरीद-दार ने उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : स्वाद दिया दुख बहुत ही, मीन गये तजि प्रान ।
आगै और कथा सुनहुं, बनचर स्वाद भुलान ।।13।।

सषी : बनचर होता वन मांहीं । नाना बिधि केलि कराहीं ।
कबहूं द्रम द्रम परि डोलै । कबहूं मुख टह टह बौलै ।।14।।
कोउ बाजीगर तहां आवा । मरकट कहुं फंधा लावा ।
इक गागरि भुइ मैं गाडी । तिहि मांहि मिठाई छाडी ।।15।।
पुनि छिद्र कियौ इक आना । मर्कट कै हाथ समाना ।
कर पैसे गागरि मांहीं । मूठी तैं निकसै नांहीं ।।16।।
ऐसी बिधि फंद पसारा । कछु बाहरि चर्वन डारा ।
पुनि आप छिप्या कहुं जाई । मर्कट आवा तहां धाई ।।17।।
कपि चर्वन मुख मैं नावा । अति स्वाद लगा सब पावा ।
पुनि गागरि मैं कर मेला । कछु भया दई का षेला ।।18।।
कपि भीतरि बांधी मूठी । निकसै नहिं बहुरि अपूठी ।
कपि गागरि दंतनि खंडै । शठ भीतरि मूठि न छंडै ।।19।।

---

13. मीन गये तजि प्रान=मछली, स्वाद-वृत्ति के कारण, अपने प्राण गँवा बैठी। बनचर=जंगली जीव अर्थात् बन्दर। और कथा=बनचर की एक अन्य कथा सुनाते हैं। यह दृष्टान्त भी जिह्वा-स्वाद के असंयमन को दर्शाने वाला है।

14. द्रम द्रम परि=द्रुम द्रुम पर, शाखा-शाखा पर। टह टह बोलै=बन्दर की बोली केलिए ध्वन्यात्मक शब्द।

15. मरकट=मर्कट, बन्दर। फंधा लावा=पाश-जाल बिछाया। गागरि=गगरी, घट। भुइ मैं गाडी=भूमि में गाड़ दी, दबा दी। तिहि मांहि=उसके अन्दर। मिठाई छाडी=गुड़ के डेले या लड्डू आदि उसके अन्दर रख दिए।

16. छिद्र कियौ=छेद किया। इक आना=एक अन्य। हाथ समाना=केवल हाथ प्रवेश पा सके, समा सके इतना चौड़ा। कर पैसे=हाथ प्रवेश पा सके। मूठी तैं निकसै नांहीं=किन्तु मुट्ठी बाँध कर उसका हाथ न निकल सके।

17. फंद पसारा=फन्दा-जाल फैलाया। बाहरि चर्वन डारा=बाहर [-भी] चबेना फैला दिया। छिप्या=छिप गया। आवा धाई=दौड़ कर आया।

18. कपि=बन्दर ने। मुख मैं नावा=मुख में डाला। स्वाद लगा=स्वाद मुख को लग गया। कर मेला=हाथ डाला। भया=हुआ। दई का षेला=विधाता का खेल।

19. भीतरि=घड़े के अन्दर। मूठी=मुट्ठी। अपूठी=उलटी [घड़े की मिठाई हाथ में भरकर]। दंतनि खंडै=दाँतों से तोड़ना चाहता है। मूठि न छंडै=[किन्तु भीतर-] मुट्ठी नहीं छोड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति किचकिचाइ भो सोरा। बाजीगर आवा दौरा।
उनि रसरी गर महिं नाई। तब गागरि फोरि अडाई ॥20॥
बाजीगर घर लै आवा। कर लकुटी लेइ डरावा।
नीकै करि दीनी त्रासा। बाजीगर कीन तमासा ॥21॥
जैसें कह तैसें नाचै। मानै लकुटी की आंचै।
सब काहू करै सलांमू। कपि ऐसा किया गुलांमू ॥22॥
जौ जिह्वा नहीं संभारा। तौ नाचै घर घर बारा।
यह स्वाद कठिन अति भाई। यह स्वाद सबनि कौं षाई ॥23॥
दोहा : स्वाद सबनि कौं बसि किया, कहत सयाने दास।
कपि की कहा चलाइये, सुनहुं और उल्लास ॥24॥

---

20. किचकिचाइ=किचकिचाहट [बन्दर की चीख]-शब्द करता है। भो सोरा=शोर हुआ। आवा दौरा=दौड़ता हुआ शीघ्रता में आया। रसरी=रज्जु, रस्सी। गर महिं नाई=गले में डाल दी। गागरि फोरि अडाई=अड़ाकर गागर फोड़ डाली।

21. कर लकुटी लेइ=हाथ में लकड़ी [-सोटी] लेकर। डरावा=त्रास देकर अनुशासित करने लगा। नीकै करि=भलीप्रकार से। कीन तमासा=तमाशा दिखाने लगा।

22. जैसें कह तैसें नाचै [मुहा०]=[बाजीगर-] जैसे कहता है, [बन्दर-] वैसे ही नाचता है। मानै लकुटी की आंचै=लकुटी की आँच-ताप [-दहशत या अनुशासन] को मानता है। करै सलांमू=सलाम करता है।

23. जौ जिह्वा नहीं संभारा=जिसने जिह्वा [स्वाद-अतिशयता की वृत्ति] पर संयम नहीं किया। तौ नाचै घर घर बारा [मुहा०]=तो घर-घर, द्वार-द्वार [-बन्दर की तरह] नाचना पड़ेगा, गुलामी करनी पड़ेगी। स्वाद कठिन=स्वाद-वृत्ति बड़ी कठिन, दुर्दमनीय होती है।

24. बसि किया=वशीभूत किया है। और उल्लास=और प्रसंग। कहत सयाने दास=भले भक्त अथवा प्रभु के कुशल अनुभवी सेवक कहते हैं। **टिप्पणी** : पुरोहित जी का मत है कि 'सयाना' शब्द सुन्दरदास जी ने अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है। लगता है कि इसके प्रयोग में उन्हें मधुरता का अनुभव होता होगा। इसलिए ऐसा कहने की उन्हें 'टेव-सी' पड़ गई होगी। ऐसा भी सम्भव है कि कवि ने इसे 'अपर नाम' [-तखल्लुस] के रूप में प्रयुक्त किया हो। लगता है तब तक 'सयाना' का अर्थ 'चालाक' नहीं हुआ होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपई [-सषी] :

इक सुनहु और उल्लासा। जो कीया स्वाद तमासा।
श्रृङ्गी ऋषि बन मैं रहई। जिह्वा इन्द्री दृढ गहई ।।25।।

---

25. कीया स्वाद तमासा=स्वाद की प्रवृत्ति ने [पुराणेतिहास में—] जो तमाशा किया, उसे सुनो। जिह्वा इन्द्री=रसना, जीभ। दृढ गहई=दृढ़ता से संयमित करता था। **श्रृंगी ऋषि** : इन्हें ऋष्यश्रृङ्ग भी कहा गया है। शीश पर श्रृङ्ग अर्थात् 'श्रृङ्ग' प्रतीक होने के कारण इन्हें श्रृङ्गी कहा गया है। श्रृङ्गी ऋषि का आख्यान भागवत् और पद्म पुराण में है। वाल्मीकि रामायण [-बाल० 1/सर्ग 9-11] में यह आख्यान विशेष रूप से वर्णित है। वहाँ सारथी सुमन्त राजा दशरथ को यह चरित्र सुनाता है। आख्यान का सार इस प्रकार है : पुराकाल में ऋषियों ने राजा दशरथ को पुत्र-प्राप्ति के विषय में उपाय सुझाया था कि कश्यप ऋषि के पुत्र विभाण्डक के यहाँ ऋष्यश्रृङ्ग नामक पुत्र होगा, जिसका पालन-पोषण बन में ही होगा। वह अपने पिता के साथ अरण्य-जीवन में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता रहेगा। वह अग्नि और अपने पिता की सेवा में निरत रहने के कारण सांसारिक व्यवहार का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाएगा। संयोग से तब अंग देश में, राजा रोमपाद के अत्याचारों के फलस्वरूप भयंकर अकाल पड़ा। जब ब्राह्मणों से अकाल-निवारण का उपाय पूछा गया, तो उन्होंने विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग का उल्लेख किया और उन महातपस्वी, वेदज्ञ ऋष्यश्रृङ्ग को आदरपूर्वक अपनी कन्या शान्ता के अर्पित करने का सुझाव दिया। राजा को चिन्ता हुई कि ऋष्यश्रृङ्ग नगर में कैसे लाए जाएँ। पुरोहित और मन्त्री, विभाण्डक के भय से, उन्हें लाने में अपनी असमर्थता प्रकट करने लगे। तब उपाय सोचा गया कि रूपवती वारांगनाएँ, चतुराई से, ऋषि को नगर में लाएँ। क्योंकि, वेदाध्ययन और तपस्या के अतिरिक्त ऋष्यश्रृङ्ग कुछ नहीं जानते थे। तब सुन्दरी नगर-वधुओं ने बन में जाकर देखा कि ऋष्यश्रृङ्ग सदा अपने पिता के साथ रहते हुए आश्रम में ही सन्तुष्ट थे। उन्होंने युवावस्था तक न तो कोई स्त्री देखी थी और न नगर का ही दर्शन किया था।

एक दिन की बात है कि वे खेल-खेल में ही बाहर वेश्याओं के आवास तक आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने मधुर गीत गाने वाली उन सुन्दरियों को देखा। उन स्त्रियों ने, मधुर भाव से ऋषिपुत्र का परिचय पूछा। तब ऋष्यश्रृङ्ग ने उनको सम्यक् उत्तर दिया। उन स्त्रियों की मधुर वाणी को सुनकर ऋषिकुमार उन्हें आश्रम में लिवा ले गया और वहाँ फल-फूलों से उनका भलीप्रकार सत्कार किया। किया। बदले में उन स्त्रियों ने उसे उत्तम सुभोज्य पदार्थ दिए और ऋषिपुत्र का सम्यक् आलिगन किया। स्त्रियों द्वारा विभाण्डक के भय से आश्रम के बाहर चले आने पर, ऋषिपुत्र ने प्रदत्त स्वादिष्ट पदार्थों को खाया और उन सुन्दरियों को याद करने लगा। विचलित चित्त-वृत्ति वाला ऋषिकुमार अगले दिन बेचैन होकर उन सुन्दरियों के पास पहुँचा। वहाँ उन नगरवधुओं ने ... और अधिक सुस्वादु पदार्थ खाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वा इन्द्री नहिं डोलै। पुनि मुख सौं कबहुं न बोलै।
वह सूके पत्र चबाई। फल गिरे परे सो षाई ।।26।।
ऋषि देह नग्न अति छीना। तृण ऊपरि आसन कीना।
ऐसी विधि तप करि धीरा। बैठे सरिता के तीरा ।।27।।
कहुं मेघ न बरिषै भाई। तब राजहि कथा सुनाई।
जौ शृङ्गी ऋषि इहां आवै। तौ मेघ इन्द्र वर्षावै ।।28।।
तब बौलै नृपति उदासा। शृङ्गी ऋषि वन महिं वासा।
क्यौं आवै नगर मझारी। वह उग्र तपस्या धारी ।।29।।
गनिका इक नृप पहिं आई। उन बात इहै समुझाई।
शृङ्गी ऋषि कौं लैं आवैं। तब कौंन मौज हम पावैं।।30।।
पुनि नृपति कहै इहि बेरा। हौं दैऊं धन बहुतेरा।
गनिका जुहार तब कीनौ। नृप बीरा ताकौं दीनौ ।।31।।
गनिका अपने घर आई। उनि और सषी समुझाई।
तुम चलहु हमारे संगा। हम जाइ करहिं तप भंगा ।।32।।
दोहा : भंग करहिं तप जाइ कैं, जो नृप करहिं सनेहु।
अब सषि बिलम न कीजिये, सामग्री सब लेहु ।।33।।
सषी : तब सामग्री सब लीनी। जो नाना बिधि उनि कीनी।
चौवा चन्दन कर्पूरा। कस्तूरी केसरि चूरा ।।34।।

केलिए देने का वचन दिया और अपने साथ अपने आश्रम में चलने केलिए कहा। स्वादु-तृप्ति की लालसा में ऋष्यशृङ्ग उनके साथ चल दिया और अंग-देश में आ गया। उसके वहाँ पहुँचते ही, विघ्न टल जाने के कारण इन्द्र ने प्रसन्न होकर खूब वर्षा की। फलतः राजा रोमपाद ने ऋष्यशृङ्ग का बहुत सत्कार किया और शास्त्रानुकूल अपनी कन्या शान्ता से उसका विवाह सम्पन्न कर दिया। तब शृङ्गी ऋषि अपनी पत्नी सहित अंग-देश में रहने लगे। इसप्रकार स्वादाकर्षण ने उन्हें सांसारिक बन्धनों में डाल दिया।

26. सूके पत्र चबाई=सूखे पत्ते खाकर क्षुधा तृप्त करते थे।

27-30. तृण ऊपरि आसन=तृणासन। धीरा=धीरज पूर्वक अथवा धैर्यशाली। इन्द्र=वर्षा का देवता। मझारी=मध्य। उग्र तपस्याधारी=प्रचण्ड तपस्वी। गनिका=वेश्या। मौज=खुशी, पुरस्कार। हम=हम से।

31. इहिं बेरा=इस बार। जुहार=सलाम, अभिवादन। बीरा दीनौ=चुनौती स्वीकृति केलिए ताम्बूल-बीड़ा प्रदान किया।

32. उनि=उसने। करहिं तप भंगा=[हम जाकर-] तप खण्डित करेंगी।

33. बिलम न कीजिये=विलम्ब न करो। सामग्री सब लेहु=आवश्यक, उपयोगी वस्तुएँ एवं खाद्य पदार्थ साथ में ले चलो।

34. कर्पूरा=कपूर। केसरि चूरा=केसर का चूर्ण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना बिधि और सुबासा। लै चली शृङ्गी ऋषि पासा।
पुनि लिये बहुत पकवाना। लडुवा लपसी रस पाना ॥35॥
गनिका बन महिं तब आई। इक नीकी ठौर बनाई।
तुम बैठहु इहां सहेली। हौं जैहौं उहां अकेली ॥36॥
देषौं ऋषि की गति जाई। कहि हौं तुम सौं तब आई।
गनिका गई ऋषि कैं भेषा। ऋषि बोलत हुइ उन देषा ॥37॥
जब भई क्षुधा की बेरा। ऋषि चहूं दिशा तब हेरा।
पुनि उठे तबहिं ततकाला। जल में मुख हाथ प्रछाला ॥38॥
ऋषि केउक तरवर देषे। फल पत्र सबनि के पेषे।
तब सूके पात चवाये। फल गिरे परे सो षाये ॥39॥
ऐसी बिधि कीन अहारा। जलपान किया तिहिं वारा।
ऋषि आसन बैठे आई। गनिका ऋषि की गति पाई ॥40॥
फिरि आई अपने डेरा। सषियन कौं दीन निवेरा।
वा सबै मरम हम जाना। अब लै जैहौं पकवाना ॥41॥
तव सामग्री सब लीनी। सषियन कौं शिक्षा दीनी।
सब लै आई उंहि ठौरा। ऋषि मरम न जानत औरा ॥42॥

35-36. सुबासा = सुगन्धित पदार्थ-द्रव्य। पकवाना = स्वादिष्ट पकवान, जैसे—लड्डू, लपसी, रसपान केलिए स्वादिष्ट पेय द्रव्य। नीकी ठौर = सुन्दर स्थान। सहेली = सखि। उहां = शृङ्गी ऋषि के पिता विभाण्डक के आश्रम में।

37. देषौं···गति जाई = ऋषि की दशा देखूंगी। ऋषि कैं भेषा = ऋषि का वेश बना कर।

38. क्षुधा की वेरा = भूख का समय। हेरा = देखा। ततकाला = तत्काल, तत्क्षण। मुख हाथ प्रछाला = हाथ-मुख प्रक्षालित किए [-धोए]।

39. केउक = कोई। पेखे = देखे। फल गिरे परे = परिपक्व हुए, स्वतः टपक कर गिरे हुए फल।

40. कीन अहारा = भोजन किया। गनिका ऋषि की गति पाई = उस वेश्या ने शृङ्गी ऋषि का खान-पान और आचरण देखा-समझा।

41. डेरा = निवास। दीन निवेरा = निवेदन किया, कहा, बताया। वा सबै मरम हम जाना = हम ने उस [शृङ्गी-] का सारा रहस्य जान लिया है। लै जैहौं = ले जाऊँगी।

42. सामग्री = प्रसादन और भोज्य सामग्री। शिक्षा दीनी = भलीप्रकार समझा दिया। उंहि ठौरा = उस स्थान पर। औरा = और, दूसरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लडवा द्रुम द्रुम तर डारे। मैदा के पत्र संवारे।
लपसी पत्रनि पर लाई। गनिका सब युक्ति बनाई ॥43॥

दोहा : युक्ति बनाई जांनि सब, जगै मदन की ताप।
गनिका पाशी रोपि कैं, लागि रही कहुं आप ॥44॥

सषी : पुनि आप रही कहुं लागी। ऋषि कैं जु क्षुधा तव जागी।
ऋषि चहूं दिशा पुनि जोया। तब उठे हाथ मुंह धोया ॥45॥
ऋषि केउक तरवर ताके। कछु बहुत गिरे फल पाके।
ऋषि लै मुख मैं छिटकावा। कछु औरै स्वाद जनावा ॥46॥
ऋषि कियौ बहुत अहारा। अति स्वाद लगा तिहिं वारा।
पुनि पियौ ऊपरि पांनी। ऋषि की सुधि सबै हिरानी ॥47॥
ऋषि आये अपनी ठौरा। मन भयौ और कौ औरा।
अब आसन लगै न भाई। ऋषि रहे छोडि छिटकाई ॥48॥
गनिका तब लाइ सुबासा। फल लै आई ऋषि पासा।
ऋषि कौं पूछी कुशलाता। ऋषि कही परसपर बाता ॥49॥
शृङ्गी ऋषि पूछै हरऊ। तुम किंहि बन मैं तप करऊ।
गनिका कहि फल जहं ऐसे। हम तिंहि बन मैं तप वैसे ॥50॥
ऋषि पूछन लागै अंगा। यहु मृतिका कैसे रङ्गा।
गनिका कहि हम जिंहि ठाऊं। तहँ मृतिका इहै बिछाऊं ॥51॥

---

43. लडवा द्रुम द्रुम तर डारे = लड्डुओं को वृक्ष की शाखाओं के नीचे डाल दिया। मैदा के पत्र संवारे = मैदा के पत्ते बनाकर पत्तों पर लपसी लपेट दी। युक्ति बनाई = तरकीब लगाकर तरीका निकाला।

44. जगै मदन की ताप = काम-वासना की ऊष्मा जाग्रत हो। पाशी रोपि कैं = जाल बिछा कर। लागि रही = छिपकर बैठ गई।

45-48. चहूं दिशा = चारों ओर। जोया = देखा। हाथ-मुंह धोया = हाथ-मुँह धोकर भोजन की तैयारी की। पाके = पके हुए, परिपक्व। मुख मैं छिटकावा = मुख में डाला। औरै स्वाद जनावा = [रोज से भिन्न-] कुछ और ही स्वाद आया। कीयौ बहुत अहारा = बहुत खाया। तिहिं बारा = उस बार। पीयौ पानी = [स्वादिष्ट भोजन के बाद-] पानी पिया। सुधि सबै हिरानी = सारी स्मृति, विस्मृति बन गई, चेतना विमुग्ध हो गई। मन भयौ—औरा = मन कुछ-का-कुछ हो गया। आसन लगै न = चित्त वृत्ति चंचल होने के कारण आसन-ध्यान में, मन नहीं लगा। छिटकाई = छिटक कर अलग हो गए।

49. सुबासा = सुगन्धित पदार्थ-द्रव्य। कुशलाता = कुशल समाचार। परसपर बाता = परस्पर बातचीत, आपस में बातचीत।

50-52. पूछै = पूछने लगा। किंहि बन मैं = किस बन में। तिंहि बन मैं = उस बन में [तप में बैठते हैं]। अंगा = अंग-प्रत्यंग। मृतिका कैसे रङ्गा = [शरीरांग रूप-] यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिराज हु भाव हमारा । फल करिये अङ्गीकारा ।
ऋषि बहुरि कछू फल षाया । गनिका सौं नेह बढाया ॥52॥
गनिका तब लागी सेवा । बहु भांति षवावै मेवा ।
पुनि जल शीतल अचुवावै । ता मांहि सुगन्ध मिलावै ॥53॥
ऋषि अति ही भये प्रसन्ना । तुम निकट रहौ निश दिन्ना ।
गनिका नजीक हुइ सूती । घर घालै बहुत निपूती ॥54॥
जब लगौ अंग सौं अंगा । ऋषि कीयौ तासौं संगा ।
गनिका कीयौ तप छीना । ऋषि भये बहुत आधीना ॥55॥

दोहा : बहुत भये आधीन ऋषि, सुधि सब गई हिराइ ।
मृतक हि फेरि जिवाइया, गनिका बड़ी बलाइ ॥56॥

सषी : गनिका कहि सुनि ऋषि प्यारे । अब आसन चलहु हमारे ।
ऋषि चले बिलम्ब न लाई । गनिका अपनै लै आई ॥57॥
उठि और सषी पग लागी । हम धन्य आज बड़ भागी ।
ऋषि आसन दै बैठाये । नाना पकवान षवाये ॥58॥
ऋषि देषि सबनि कौ भाऊ । अति रोम रोम सुख पाऊ ।
ऋषि कहै इनौं के गाता । ए कौन बृच्छ के पाता ॥59॥

रंगी हुई मिट्टी कैसी अथवा कहाँ की है ? बिछाऊं=बिछाती हूँ । अंगीकारा=स्वीकार कीजिए । बहुरि=फिर । नेह बढाया=प्रेम बढ़ाया ।

53-55. लागी सेवा=सेवा में लग गई । षवावै मेवा=मेवा खिलाने लगी । प्रसन्ना=प्रसन्न, हर्षपूर्ण । निश दिन्ना=रात-दिन । नजीक=निकट । सूती=शयन करने लगी । घर घालै बहुत निपूती [मुहा०]=पुत्र [-सन्तान] रहित स्त्री-वेश्या घर बरबाद कर देती है । जब लगौ अंग सौं अंगा=जब [स्त्री-]अंग [पुरुष-] अंगों से आलिंगित हुए । संगा=समागम । तप छीना=तप क्षीण किया । आधीना=पराधीन, गुलाम, परवश ।

56. सुधि हिराइ गई=स्मृति लुप्त हो गई, चेतना विमुग्ध बेसुध हुई । मृतकहि=मृतक को, मृतकवत् को । जिवाइया=प्राणवान् [-जीवन्त] कर दिया । गनिका बड़ी बलाइ=वेश्या बड़ी दुर्धर्ष [-आकर्षक] शक्ति होती है ।

57. ऋषि प्यारे=प्रिय ऋषि । आसन=बैठक, आश्रम । बिलम्ब न लाई=देर नहीं लगाई । लै आई=बुला लाई ।

58. उठि और सषी पग लागी=उठकर और सखियों ने पैर छुए । बड़भागी=भाग्य-शाली । आसन दै=प्रतिष्ठा देकर । षवाये=खिलाए ।

59. भाऊ=भाव । सुख पाऊ=सुख प्राप्त किया । इनौं के गाता=इनके शरीर । बृच्छ के पाता=वृक्ष-पत्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गनिका कहि सुनि ऋषि लेहू । हैं अतिथि हमारे येहू ।
इन कै आश्रम द्रुम आंहीं । फल पत्र वड़े वड़े तांहीं ॥60॥
अव हम तुम मिल तहां जइये । इन कौं सुख दै तव अइये ।
ऋषि चले बिलंब न कीनौं । गनिका तब कर गहि लीनौं ॥61॥
लै आई नगर मझारी । ऋषि देषा दृष्टि पसारी ।
ऋषि शोर सुनौ जव कानां । मन मैं उपज्यौ तव ज्ञाना ॥62॥
हौं इहां कहां तैं आवा । यह स्वाद धका मोहि लावा ।
ऋषि सोवत सें तब जागे । कर झटकि अपूठे भागे ॥63॥
पुनि आये ऋषि बन मांही । मन मैं बहुतैं पछितांही ।
जौ रसना स्वाद हि लागी । तौ पीछै इन्द्री जागी ॥64॥
जौ रसना स्वाद न होई । तौ इन्द्री जगै न कोई ।
कहै सुन्दरदास सयानां । यह मीन चरित्र बषानां ॥65॥

दोहा : मीन चरित्र बिचरि कैं, स्वाद सबैं तजि जीव ।
सुन्दर रसना राति दिन, राम नाम रस पीव ॥66॥

॥इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे मीन चरित्रे जिह्वा इन्द्रिय प्रसङ्गस्तृतीयोपदेशः ॥3॥

60-61. अतिथि=मेहमान । ये हू=ये भी । आंहीं=हैं। तब अइये=तब आएँगे। कर गहि लीनौं=हाथ पकड़ लिया ।

62. नगर मझारी=नगर के मध्य में। दृष्टि पसारी=दृष्टि फैला कर । शोर सुनौ जब कानां=कानों से जब शोर-कोलाहल सुना। उपज्यौ तब ज्ञाना=तब वोध जाग्रत हुआ, ज्ञानोदय हुआ ।

63. हौं=मैं । इहां कहां तैं आवा=यहाँ कहाँ से [कैसे-] आ गया ? धका मोहि लावा=स्वाद धक्का देकर मुझे यहाँ ले आया है । सोवत सें तब जागे=सोता हुआ अचानक जग जाए, इसप्रकार ऋषि को अचानक बोध हुआ और अपनी करनी पर पछतावा हुआ । कर झटकि=[वेश्या का-] हाथ झटक कर । अपूठे भागे= उलटे [पैर-] भागे ।

64. बन मांही=बन के मध्य । पछितांही=पश्चाताप करने लगे । रसना स्वादहि लागी=जीभ स्वाद में [प्रथमतः] आसक्त हुई। इन्द्री जागी=[पुनः] इन्द्रिय [-भोग-वासना] जाग्रत हुई ।

65. स्वाद न होई=स्वाद की अतिशयता न हो, रसना संयम में हो तो। सुन्दरदास सयानां=कुशल [सज्ञान > स्याना] सुन्दरदास, चतुर-बुद्धिमान सुन्दरदास। **टिप्पणी :** सुन्दरदास ने अपने लिए बहुत जगह **'सयाना'** शब्द प्रयोग किया है।

66. स्वाद सबैं तजि=सभी प्रकार के आस्वादों की अतिशयता [-प्रबलता] को छोड़ दे। रसना=जिह्वा । रस पीव=आनन्द का रसपान करे, यही निष्कर्ष है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थोपदेश ।।

अथ पतंग चरित्र :

पतंग दृष्टान्त के माध्यम से रचनाकार ने नेत्रों की रूप-लिप्सा और उसके घातक प्रभाव को प्रतीक शैली में व्यंजित किया है। जिसप्रकार पतंगा दीपक की लौ के आकर्षण में खिचकर अपनी जान गँवा देता है, उसीप्रकार रूप के लोभी नेत्र, रूप के प्रति आकृष्ट होकर, रूप-लिप्सा में आवद्ध होकर अपने को गुलाम-पराधीन बना कर स्वयं ही अपने 'स्व' को नष्ट कर लेते हैं। प्रस्तुत चरित्र-कथन में प्रतीक-विम्ब व्यंजक होने के कारण प्रभावी बन पड़े हैं।

दोहा : देह दीप छवि तेल त्रिय, बाती बचन बनाइ।
बदन ज्योति दृग देखि कैं, परत पतंगा आइ ।।1।।

सषी : तहं परत पतंगा आई। वह जोति देषि जर जाई।
कछु षान पान नहिं होई। जरि भस्म भये शठ सोई ।।2।।
उनि अन्ध अग्नि नहिं जानी। दग देषत बुद्धि नसानी।
उनि देषि जोति उजियारा। शठ तन मन अपना जारा ।।3।।
यह दृष्टि प्रबल अति भारी। नहिं रोकी जाइ हत्यारी।
यह दृष्टि करै हाला। यह दृष्टि बेहि चलै कुचाला ।।4।।

चूर्णिका : 1. देह दीप छवि=शरीर-सौन्दर्य रूप दीपक। तेल त्रिय=[उसमें-] नारी-कामिनी तैल के समान है अर्थात् सुन्दरी तैल रूप है। बाती बचन=बातचीत रूप बत्ती अर्थात् प्रिय सम्वाद रूप वर्तिका। बदन-ज्योति=मुख-छवि दीपक की लौ है। अर्थात् मुख-छवि रूप दीप-शिखा। दृग देषि कैं=नेत्रों से [प्रत्यक्ष-] देखकर। परत-पतंगा=[मन-] पतंग [उस-] नारी-छवि-दीपक पर [-में] पड़ता रहता है। अर्थात् अपने को स्वाहा करता रहता है। **टिप्पणी :** दोहे में सांगरूपकता के द्वारा मार्मिक व्यंजना कराई गई है।

2. जोति=ज्योति, दीप शिखा। जर जाई=जल जाता है, जलता रहता है। षान पान नहिं होई=[वहाँ उसको-] खाने-पीने केलिए कुछ नहीं मिलता। जरि भस्म भये=वह स्वयं ही जल कर भस्म [पूरी तरह विनष्ट-] हो जाता है।

3. उनि अन्ध=उस अन्धे-अज्ञानी-मूर्ख ने। अग्नि नहिं जानी=रूप-आग की विनाशकारी दाहकता को नहीं समझा। दृग देषत=आँख से रूप देखते ही। बुद्धि नसानी=बुद्धि- विवेक नष्ट हो जाता है। जोति उजियारा=ज्योति प्रकाश, छवि, रूपाकर्षण। शठ=मूर्ख, गँवार ने। जारा=जला डाला।

4. अति भारी=अति भयंकर। हत्यारी=विनाशिका। यहाँ दृष्टि को मानवीकृत किया गया है। करैं बेहाला=वेहाल-बेचैन-व्याकुल करती है। चलै कुचाला=[यह दृष्टि ही-] कुचाल चलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दृष्टि चहूँ दिशि धावै। यह दृष्टि हि षता षवावै।
यह दृष्टि जहां जहां अटकै। मन जाइ तहां तहां भटकै ॥5॥
यह दृष्टि निहारै बामा। यह दृष्टि जगावै कामा।
जब देषै दृष्टि स्वरूपा। तब जाइ परै अन्ध कूपा ॥6॥
पहिले मन दृष्टि पठावै। तब सकल संदेसा पावै।
जब दृष्टि हि दृष्टि मिलानी। तब अन्तर की मन जानी ॥7॥
इहिं दृष्टि मरम जब पावा। तब पीछै तें मन धावा।
मन के पीछै तन जाई। तब सब हीं धर्म नसाई ॥8॥
को योगि जती संन्यासी। बैरागी और उदासी।
जौ देह जतन करि राषै। तौ दृष्टि जाइ फल चाषै ॥9॥
अति करहिं बिप्र आचारा। दे चौका लीक निनारा।
जो सूद्र त्रिया तहां दरसै। तौ दृष्टि जाइ तन परसै ॥10॥

---

5. चहूँ दिशि धावै=चारों ओर घूमती रहकर चंचल बनी रहती है। षता षवावैं [अ०]=[कसूर-]अपराध कराती है। अटकै=अटकती है, बिंधती है। मन-भटकै=मन भटकता है, चंचल बना रहता है।

6. निहारै बामा=वामा-कामिनी स्त्री को निहारती है, नारी अंगांगों को घूरती है। जगावै कामा=काम-वासना को उद्दीप्त करती है, जगाती है। स्वरूपा=रूप को। परै अन्ध कूपा=तब अन्ध कूप में, विवेकहीनता की स्थिति में, पड़ जाती है।

7. मन दृष्टि पठावै=पहले मन दृष्टि को भेजता है अर्थात् मन की अनुकूलता ही दृष्टि को प्रेरित करती है। संदेशा=सूचना, हालचाल। अन्तर की मन जानी=[जब दृष्टि, दृष्टि से मिलती है तब-]मन हृदय की बात [अनुकूलता-प्रतिकूलता] जान लेता है।

8. मरम पावा=रहस्य जाना। पीछै तें=पश्चातवर्ती होकर। धावा=दौड़ा, पीछे-पीछे लगा। मन के पीछे तन=शरीर मन का ही अनुगमन करता है। धर्म नसाई=धर्म-सिद्धान्त नष्ट हो जाते हैं, सिद्धान्तों का अनुशासन [-सीमा-मर्यादा-नियम] समाप्त हो जाता है।

9. जोगि जती=योगी-यति। बैरागी=वैराग्य भावक। उदासी=उदासीन, उदासी मत का। देह जतन करि राषै=यत्नपूर्वक शरीर की रक्षा करे। फल चाषै=परिणाम में सुखद आस्वाद प्राप्त करता है।

10. बिप्र=विप्र, ब्राह्मण। आचारा=चर्या, क्रिया-कर्म। चौका लीक-निनारा=लकीर खींचकर चौके की पवित्रता को रेखांकित करते हैं। सूद्र त्रिया=शूद्र की स्त्री, निम्न जाति की सुन्दरी स्त्री। दरसै=दिखाई दे या दिखाई दे जाय तो। दृष्टि जाइ तन परसै=तो [असंयम के कारण, उस ब्राह्मण की-] दृष्टि उस स्त्री के शरीर का स्पर्श करती है, आलिंगन करती है अर्थात् पहले मन से ही वह उससे जाकर लिपट जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजीगर पुतरि नचावै। सब हाव भाव दिखलावै।
कपि झूठ साच करि जाना। शठ देषत दृष्टि भुलाना ॥11॥

दोहा : सबै भुलाने दृष्टि मैं, बुद्धि गई तब नासि।
आगैं अबहिं सुनौ भिया, और दृष्टि की पासि ॥12॥

सषी : इक और दृष्टि की पासी। कछु कहतैं आवत हाँसी।
कोइ डायनि दृष्टि चलावै। तब बालक अति दुख पावै ॥13॥
जब डायनि की सुधि चीन्ही। तब पकरि फजीहति कीन्ही।
पहिलैं गहि मूंड मुंडावा। पीछै मुख कालिक लावा ॥14॥
पुनि पकरि नाक धरि काटी। उनि रक्त जीभ सौं चाटी।
तब लै करि गदह चढाई। पुनि गली बजार फिराई ॥15॥
लरिका सब पीटहिं तारी। उन पत्थर ढीमनि मारी।
सब ऐसैं लोक सुनावैं। जो करै सु तैसा पावैं ॥16॥

---

11. पुतरि नचावै=पुतली [-कठपुतली अथवा बाँदरी की पुतली सामने-] नचाता है। हाव भाव=अंग-भंगिमाएँ। कपि झूठ साच करि जाना=बन्दर दृष्टि-दोष के कारण झूठ को सच मान लेता है। अर्थात् बाँदरी समझ कर उससे प्रेम दर्शाता है। देषत दृष्टि भुलाना=दृष्टि से देखते ही विभ्रमित बना रहता है।
12. सबै भुलाने दृष्टि मैं=दृष्टि के प्रभाव में सभी विभ्रमित-विमोहित बने रहते हैं। नासि=नष्ट। भिया=भाई। और दृष्टि की पासि=दृष्टि-दोष के अन्य फन्दे [कुचक्र-] सुनो। **टिप्पणी** : अगले चार छन्दों [13-16] में दृष्टि-दोष के पूर्व-प्रसंगानुसार उदाहरण नहीं हैं। अपितु, दुष्ट-दृष्टि को रेखांकित भर किया है।
13. पासी=पाश, बन्धन-प्रभाव। आवत हाँसी=हँसी आती है। डायनि दृष्टि चलावै=कोई दुष्ट स्त्री कुदृष्टि डालती है। **टिप्पणी** : दुष्ट स्त्री की दृष्टि के प्रभाव से शिशु को कष्ट पहुँचता है। शिशु-जीवन के वर्णन में 'बुरी नजर लगने' के साहित्य में अनेक उदाहरण मिलते हैं।
14. सुधि चीन्ही=खबर मिली। पकरि फजीहति कीन्ही=पकड़ कर अपमानित किया। मूंड मुंडावा=सिर मुँडा दिया। मुख कालिक लावा=मुख पर कालिमा पोत दी।
15. नाक धरि काटी=अपमानित करने केलिए नाक काट दी गई। रक्त जीभ सौं चाटी=गिरे हुए खून को जीभ से चटवाया गया। गदह चढाई=गधे पर चढ़ाकर। फिराई=घुमाया।
16. लरिका सब पीटहिं तारी=उस दृश्य को देखकर बालक तालियाँ बजाते हुए मजाक में हो-हल्ला करते हैं। पत्थर ढीमनि मारी=पत्थर-ढेलों से मारते हैं। लोक सुनावैं=लोग सुनाते हैं। जो करै सु तैसा पावैं=जो जैसा करता है, वैसा भरता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दृष्टि तना फल देषा । उनि दृष्टि सु अपनी पेषा ।
यह दृष्टि हि षेल षिलावै । यह दृष्टि हि बहुत भ्रमावै ।।17।।
यह दृष्टि ही माया ताकै । यह दृष्टि न कबहूं थाकै ।
यह दृष्टि जाइ घर फोरै । यह दृष्टि हि गांठी छोरै ।।18।।
यह दृष्टि हि महल उठावै । यह दृष्टि हि ठौर बनावै ।
यह दृष्टि हि बस्त्र सु पेषै । यह दृष्टि आरसी देषै ।।19।।
यह सकल दृष्टि की बाजी । सब भूले पंडित काजी ।
यह दृष्टि कठिन हम जाना । देवासुर दृष्टि भुलाना ।।20।।
को सन्त दृष्टि यह आनैं । सब ठौर ब्रह्म पहिचानैं ।
कह सुन्दरदास प्रसंगा । यह देषि चरित्र पतंगा ।।21।।

दोहा : देषि चरित्र पतंग का, दृष्टि न भूलहु कोइ ।
सुन्दर रमिता राम कौं, निशि दिन नेनहुं जोइ ।।22।।

।।इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे पतंग चरित्रे चक्षु इन्द्रियप्रसङ्गः चतुर्थोपदेशः ।।4।।

---

17. दृष्टि तना=दृष्टि का। फल देषा=परिणाम देखा है। पेषा=देखा। षेल षिलावै=खेल खिलाती है। भ्रमावै=भ्रमित करती-रहती है।
18. माया ताकै=माया को देखती है। थाकै=थकती है। घर फोरै=घर फोड़ती है अर्थात् घर में लड़ाई-झगड़े कराती है। गांठी छोरै=ग्रन्थि खोलती है।
19. महल उठावै=भवन-निर्माण कराती है। ठौर बनावै=स्थान-स्थिति बनाती है। बस्त्रसु पेषै=कपड़े देखती है। आरसी देषै=दर्पण देखती है।
20. दृष्टि की बाजी=यह सम्पूर्ण सृष्टि-जीवन दृष्टि की ही कला [-खेल] है। भूले पंडित काजी=पंडित-काजी रूप धर्म-पुरोहित इस दृष्टि के कारण ही भूले-भटके बने रहते हैं। दृष्टि कठिन जाना=दृष्टि बड़ी कठोर है, यह समझ लिया है। देवासुर दृष्टि भुलाना=देवता और राक्षस सभी दृष्टि-भेद के कारण ही विमोहित बने रहते हैं।
21. सन्त-दृष्टि यह आनैं=सन्तों की यह दृष्टि प्राप्त करे। सब ठौर ब्रह्म पहिचानैं= सर्वत्र ब्रह्म विद्यमान है, यह अनुभव-परिचय प्राप्त कर ले, समझ ले और समझकर व्यवहार में उतार ले।
22. देषि चरित्र पतंग का=पतंगे का चरित्र देख-समझ कर। दृष्टि न भूलहु कोइ= दृष्टि के आकर्षण-प्रभाव में कोई विमोहित न हो। रमिता राम=सर्वत्र विद्यमान अथवा रमा हुआ राम। नेनहुं जोइ=अन्तः दृष्टि से देखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पंचमोपदेशः ।।

अथ मृग चरित्र :

प्रस्तुत कथा-दृष्टान्त में रचनाकार ने, श्रवणेन्द्रिय की अतिशयता अथवा असंयम को **मृग** [-प्रतीक] -माध्यम से अथवा मन-मृग के रूपक के द्वारा उसकी नासमझी को व्यंजित कराया है। नादाकर्षण के कारण जिसप्रकार हरिण बधिक के जाल में फँस कर जान गँवा देता है, वैसे ही नाद के प्रति अतिशय आसक्ति के कारण मन रूप मृग भी अथवा श्रवणासक्ति पर संयम न करने वाला मनुष्य, आसक्ति जाल में फँस जाता है। पंचेन्द्रियों के मृगादि ये प्रतीक भारतीय दर्शन-चिन्तन में, उदाहरण बहुल होने के कारण रूढ़-से हो गए हैं। मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : मृग बन बन बिचरत फिरै, चहुं दिशि केलि करन्त।
षेत बिराना षाइ कैं, होइ रह्या मैमन्त ।।1।।

सषी : मग होइ रह्या मैमन्ता। चहुं ओर फिरै बिचरन्ता।
मृग हाथ बीस दश डाकै। तृण हालि उठै तब ताकै ।।2।।
कोउ पत्र पवन तैं बाजै। मृग चौंकि फरक हो भाजै।
नहिं काहू का पतियारा। मृग निश दिन रहै हुस्यारा ।।3।।
इक बधिक तहां को आवा। उनि नीकैं नाद बजावा।
मृग नाद सुन्यौ जब काना। सुधि बिसरि गई सब आना ।।4।।

चूर्णिका : 1. मृग चरित्र=मृग का दृष्टान्त। विचरत फिरै=[स्वतन्त्र जीवन में-] घूमता-फिरता था। चहुं दिशि=चारों दिशाओं में अर्थात् सर्वत्र। केलि करन्त=सुखपूर्वक क्रीड़ा करता हुआ। षेत बिराना षाइकैं=पराई खेती [-उपज] खाकर। होइ रह्या मैमन्ता=स्वच्छन्द [-मदमस्त-] स्वेच्छाचारी हो रहा था।

2. चहुं वोर=चारों ओर। बिचरन्ता=विचरण करता हुआ। हाथ बीस दश डाकै=दस-बीस हाथ [-दूरी] की छलांगें [-कुलाँचें] मारता फिरता था। तृण हालि उठै तब ताकै=तृण [बड़ी-बड़ी घास]-बनस्पति जब हिलती थी, तब स्तब्ध खड़े होकर देखता था।

3. कोउ पत्र पवन तें बाजै=जब कोई पत्ता वायु-वेग से बज उठता था। चौंकि=चौंक कर, सावधान होकर। फरक=फड़क कर। भाजै=दौड़ पड़ता था। काहू का=किसी का। पतियारा=विश्वास करने वाला। हुस्यारा=होशियार, सावधान। इन छन्दों में मृग की प्रकृति, प्रवृत्ति और शंकित मानसिकता शब्द-बिम्ब के रूप में उभरी है।

4. बधिक=बहेलिया, आखेटक। को=कोई। नीकैं नाद बजावा=कर्ण सुखद संगीत बजाया। नाद=संगीत शब्द, संगीत ध्वनि। सुधि बिसरि गई=सुधि-बुधि भूल गया, संगीत ध्वनि में विमोहित हो गया। आना=अन्य, अन्य स्मृति, सावधान रहने की बुद्धि। श्रवण-दोष के कारण विमुग्ध हो गया। **टिप्पणी :** यहाँ संगीत-शब्द के अमोघ प्रभाव की व्यंजना कराई गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृग ध्यान धर्या मन लाई। कछु और नहीं सुधि पाई।
मृग थकित भया तिहिं बारा। नहिं तन की कछु संभारा ॥5॥
तहां अनेक पत्र तृण हालै। मृग अब न ठौर तैं चालै।
मृग ऐसै रहिगा सीधा। मनु होइ पंक मैं बीधा ॥6॥
मृग भया नाद बसि सोई। मनु लिष्या चित्र मैं होई।
मृग भया अचेत गंवारा। तब वधिक बान भरि मारा ॥7॥
मृग नाद बिषै मन दीना। इहिं नाद प्राण हति लीना।
मृग पहिलै नहीं संभाला। यह नाद भयौ फिरि काला ॥8॥
यह नाद बिषै मन लावै। सो मृग ज्यौं नर पछितावै।
इहिं नाद बिषै जो भीना। सो होइ दिनै दिन छीना ॥9॥
दोहा : छीजि गया मृग नाद रस, भई जीव की घात।
एक कहत हौं और अब, सुनहु सर्प की बात ॥10॥

---

5. ध्यान धर्या = ध्यान लगाया। सुधि = स्मृति। थकित भया = विमोहित हुआ। तिहिं बारा = उस समय। संभारा = सुधि, सावधानी।
6. पत्र तृण हालै = पत्ते, घास-फूंस-वनस्पति हिलती-डुलती दिखाई देती है, फिर भी। ठौर तैं चालै = [किन्तु वह-] अपने स्थान से विचलित नहीं होता। ऐसै रहिगा = ऐसे रह गया। पंक मैं बीधा = कीचड़ [-दलदल] में फँस गया हो।
7. भया नाद बसि = संगीत के वशीभूत हो गया। मनु लिष्या चित्र मैं होई = उसकी उस विमोहित दशा को देखकर ऐसा लगता था मानो किसी चित्र में [हरिण का-] चित्र अंकित हो। अचेत भया = बेसुध हो गया। बान भरि मारा = तब बहेलिए ने बाण-सन्धान से उसे आहत कर दिया।
8. नाद विषै = नाद-संगीत सम्बन्ध में। मन दीना = मन लगाया। नाद प्राण हति लीना = संगीत-ध्वनि की मोहकता ने [उसके-] प्राण हरण कर लिए। पहिलै = पूर्व में ही। संभाला = सावधानी की। भयौ काला = काल [-मृत्यु] का कारण बन गया।
9. मन लावै = मन लगाता है। मृग ज्यौं नर पछितावै = हिरण की तरह से, श्रवणेन्द्रिय के असंयमन के कारण, मनुष्य भी पछताता है। भीना = मुग्ध। दिनै दिन छीना = दिनो-दिन क्षीण होता जाता है।
10. छीजि गया = नष्ट हो गया। नाद रस = नाद के आस्वाद में। जीव-घात = जीव-बध, प्राणों की हानि। सुनहु सर्प की बात = एक अन्य उदाहरण [-दृष्टान्त] सुनो, जिसमें नाद-लोभी सर्प का प्रसंग वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सषी : इक सर्प रहै बिल मांही। तिंहि कोई जानत नांही।
तहां बाजीगर इक आवा। मधुरै सुर नाद बजावा ॥11॥

जब सर्प सुन्यौ बहु नादा। कछु श्रवनहु पायौ स्वादा।
नहिं निकसत लाई बारा। उनि आवत ही फुफकारा ॥12॥

फन करि कैं ध्यान लगावा। बाजीगर तबहिं षिलावा।
पढि धूरि सीस पर नाई। पुनि पूंछ हाथ मैं आई ॥13॥

जब बहुत बार लग षेला। तब पकरि पिटारै मेला।
बाजीगर लेइ सिधारा। नीकैं करि दांत उपारा ॥14॥

इहिं नादहि परबसि कीना। इहिं नाद बहुत दुख दीना।
को नाद न रीझहु भाई। यह नाद बड़ा दुखदाई ॥15॥

यह नाद सुनै सुख बासी। घर तजि के होइ उदासी।
वह जाइ कहूं परदेसा। पुनि करि योगी कौ भेसा ॥16॥

कहुं शीत घाम तन छीजैं। कहुं पांनी बरसत भीजै।
पुनि कहुं जागै कहुं सोवै। घर यदि करै तब रोवै ॥17॥

11-14. बिल=वामी। मधुरै सुर नाद=मधुर सुर वाला वेणु [-बीन] बजाया। श्रवनहु पायौ स्वादा=कानों ने संगीत का आस्वाद लिया। बारा=समय, विलम्ब। फुफकारा=फूत्कार किया। फन करि कैं=फण फैलाकर, सन्नद्ध होकर। षिलावा=संगीत-लहरियों में खिलाया। पढि धूरि=धूल को मन्त्रों से पढ़कर, शक्तिशाली करके। सीस पर नाई=सर्प के शीश पर डाल दी। पूंछ हाथ में आई=पूँछ हाथ से पकड़ ली। बहुत बार लग=बहुत देर तक। पिटारै मेला=पिटारी [-टोकरी] में रख लिया। लेइ सिधारा=लेकर चलता बना। दांत उपारा=दाँत तोड़ [-उखाड़] दिए।

15. परबसि कीना=विवश [-परतन्त्र] कर दिया। को=कोई। न रीझहु=आकर्षित [-आसक्त-लोलुप] न होओ।

16. सुख बासी=सुख से घर में रहने वाला। घर तजि के=गृह-त्याग करके। होइ उदासी = उदासीन हो जाता है। परदेसा=परदेश में। योगी कौ भेसा=योगी की वेश-भूषा।

17. तन छीजै=शरीर क्षीण होता है। पानी बरसत भीजै=बरसते पानी में भीगता है। घर यादि करै तब रोवै=घर की जब याद आती है, तब रोता है। यह वर्णन गुरु के उपदेश से विरक्त हुए मनुष्य का नहीं लगता। अपितु, क्षणावेश में गृह-त्याग करने वाले भेषधारी का लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहुं भूष प्यास अति मरई। ऐसी बिधि निश दिन भरई।
विन ज्ञान बहुत दुख पावै। वह संमझि संमझि पछितावै ।।18।।
जौ नाद विषै मन लाया। तौ नाद तना फल पाया।
यह नाद जीव कौं पासी। यह नाद लोह की गांसी ।।19।।
जब मुनिजन लावहिं ताली। कबहूं नहिं देह संभाली।
यह नाद श्रवन ह्वै धावै। तब जाइ समाधि जगावं ।।20।।
यह नाद करै मन भंगा। यह नाद करै बहु रंगा।
यहि नाद मांहि इक ज्ञानं। तिहिं समझै सन्त सुजानं ।।21।।
जब नाद सुनावै कोई। तब ब्रह्म बिचारै सोई।
कहै सुन्दरदास सन्देशा। यह मृग चरित्र उपदेशा ।।22।।
दोहा : मग चरित्र उपदेश यहु, नाद न रीझहु जांन।
सुन्दर यह रस त्यागि कै, हरि जस सुनिये कांन ।।23।।

।।इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे मृग चरित्रे श्रवण-इन्द्रिय प्रसङ्गः पंचमोपदेशः ।।5।।

---

18. मरई=मरता है। निशदिन भरई=रात-दिन [-जीवन] बिताता है। संमझि-संमझि पछतावै=समझ-समझ कर, ज्ञान-चिन्तन के फलस्वरूप, पश्चाताप करता है।

19. मन लाया=मन लगाया। नाद तना=नाद [आस्वाद-] का। फल पाया= परिणाम भुगतना पड़ा। पासी=पाश, बन्धन। लोहे की गांसी=लोहे की नोंक, लोह-काँटे की नोंक।

20. लावहिं ताली…संभाली=ताली [-ध्यान]-समाधि लगाते हैं, तब उनको देह की परवाह नहीं रहती। श्रवन ह्वै धावै - कान के रास्ते से प्रवेश करता है। समाधि जगावै=समाधि खण्डित करके जगा देता है।

21. मन भंगा=मन को विचलित करता है। रंगा=रंग-खेल, दिखावा, दृश्य। ज्ञानं= बोध, विचार। सन्त सुजानं=ज्ञानी-विचारक सन्त।

22. नाद सुनावै कोई=कोई नाद सुनाता है तो। अर्थात् नाद [-संगीत] श्रवण में। ब्रह्म बिचारै सोई=उस नाद-संगीत को, उसकी सामर्थ्य को ब्रह्म-चिन्तन के रूप में ग्रहण करे, अनुभव करे। क्योंकि, ओंकार ध्वनि समूचे आकाश में व्याप्त रहती है। आकाश, 'शब्द' का आधार है। अत: यावन्मात्र 'शब्द' [ब्रह्म-] शून्याकाश जनित है। अर्थात् शब्द उसी का गुण है। इसप्रकार चिन्तन करने से, सन्त-चेतना के अनुसार, स्थूल शब्द से सूक्ष्म नाद में गति होती है। सन्देशा=यही सन्देश [-मन्तव्य अथवा कथ्य] है।

23. नाद न रीझहु जांन=जानकार [-ज्ञानी-विचारक] होकर, नाद की आसक्ति में लिप्त न होओ। हरि जस सुनिये=भगवान के गुणों को सुनना ही समीचीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठोपदेशः ।।

अथ पंचेन्द्रिय निर्णयं :

पंचेन्द्रिय चरित्र के प्रस्तुत छठे उपदेश में उक्त पाँचों ['गज अलि मीन पतंग मृग'] चरित्रों के सम्बन्ध में निष्कर्ष है। इन पाँचों प्रतीकों में वर्णित स्वर, नासिका, रसना, नेत्र, श्रवण इन पंचेन्द्रियों के विषय एवं कार्य-व्यापारों को सार रूप में बताया गया है। प्रस्तुत उपदेश में इन सभी की आसक्ति [-असंयमन-] अतिशयता का वर्जन व्यंजित है। उक्त पाँचों की प्रबल आसक्तियाँ एक-एक करके घातक प्रभाव डालती हैं। 'जाके तन पाँचों बसें, ताकी कैसी आश।' अर्थात् जब पाँचों के आसक्ति-विषय प्रबलता से असंयमित हों तो उसका क्या हाल होगा। जो इन पाँचों को वश में रखता है, वही संयमी है, वही सच्चा साधु है। वाणी का मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष विनाश।
जाकै तन पंचौं बसैं, ताकी कैसी आश ।।1।।

सषी : अब ताकी कैसी आसा। जाकै तन पंच निवासा।
पंचौं नर कै घट माहैं। अपना अपना रस चाहैं ।।2।।
ये श्रवन नाद के लोभी। बहु सुनैं त्रिपति नहिं तौ भी।
ये नैंन रूप कौं धावैं। कबहू सन्तोष न आवैं ।।3।।
इहिं नासा गन्ध सुहाई। सो कबहू नहीं अघाई।
यह रसना स्वाद भुलानीं। इनि कबहू त्रिपति न मानीं ।।4।।
अध इन्द्रिय भोगहिं राती। नहिं तृप्त होइ मदमांती।
ये पंचौं पंच अहारा। अपना अपना रस न्यारा ।।5।।

चूर्णिका : *1.* इक-इक दोष विनाश=एक-एक 'विषय' के प्रति असंयत-दोष होने पर पंचेन्द्रियाँ विनाशकारी हो जाती हैं। पंचौं बसैं=पाँचों आसक्तियाँ संवेत रूप में जब एक साथ निवास करती हों तो।

2. ताकी=उसकी। नर कै घट=मनुष्य के हृदय में। अपना-अपना रस=अपना-अपना आस्वाद, अपने-अपने विषय का अधिकार।

3. लोभी=लोलुप, आसक्त, विषयी। त्रिपति=तृप्ति, सन्तुष्टि। रूप कौं धावैं=रूप की ओर आकर्षित होते हैं। यहाँ रूपासक्ति की प्रबलता व्यंजित। सन्तोष=तृप्ति।

4. नासा=नासिका, घ्राणेन्द्रिय। अघाई=तृप्त हुई। रसना=जिह्वा, जीभ। इनि=इसने। कबहू=कभी भी।

5. अध इन्द्रिय=अधः इन्द्रिय, लिंग-उपस्थत। भोगहिं राती=भोग-विलास में अनुरक्त बनी रहती है। मदमांती=मतवाली, उन्मत्त। इन पंचौं पंच अहारा=इन पाँचौं के पाँच आहार [-विषय] हैं। न्यारा=अलग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पंचौं जगत नचावा। इन पंच सबनि कौं षावा।
ये पंच प्रबल अति भारी। कोउ सकै न पंच प्रहारी ॥6॥
ये पंचौं षोवें लाजा। ये पंचौं करहिं अकाजा।
ये पंच पंच दिश दौरैं। ये पंच नरक मैं बोरैं ॥7॥
ये पंच करैं मति हीना। ये पंच करैं आधीना।
ये पंच लगावें आशा। ये पंच करैं घट नाशा ॥8॥
ये पंच विकर्म करावैं। ये पंचौं मान घटावैं।
ये पंचौं चाहैं गलुका। ये पंच करैं पुनि हलुका ॥9॥
ये पंच कठिन अति भाई। ये पंचौं देंहि गिराई।
ये पंचौं किनहि न फेरा। नर करहिं उपाइ घनेरा ॥10॥

दोहा : पञ्चौं किनहु न फेरिया, बहुते करहिं उपाइ।
सर्प सिंह गज बसि करैं, इन्द्रिय गही न जाइ ॥11॥

सषी : ये इन्द्रिय गही न जांहीं। नर सूर बीर बहु आंहीं।
कोउ बाघ पकरि लै आवै। इन्द्रिन का मरम न पावैं ॥12॥

---

6. पंचौं जगत नचावा [मुहा०] = इन पंचों [-पाँचों इन्द्रियों ने] जगत् [-जगत के निवासियों-] को खूब नचाया है, परेशान किया है। सबिन कौं षावा = सब को खाया है, स्वाद सभी को वशीभूत किए रहते हैं। प्रबल = वरिवण्ड, बरियान, शक्तिशाली। कोउ न पंच प्रहारी = इन पाँचों को मारने-मार सकने में कोई भी सक्षम नहीं हुआ।

7. लाजा = लज्जा, संकोच, मर्यादा। अकाजा = अकार्य, हानि। दौरैं = दौड़ती हैं, अपने-अपने विषयों की ओर आर्कषित होती हैं। नरक मैं बोरैं = नर्क में डुबोती हैं, संकीर्णता में बाँधे रखती हैं।

8. मति = बुद्धि। आधीना = अधीन, परतन्त्र, गुलाम। घट नाशा = मन [-मति] को विचलित कर, सन्तुलन खोकर ये पाँचों हृदय का नाश करती हैं। अर्थात चेतना नष्ट होती है। 'पञ्च' वर्तनी भी मिलती है।

9. विकर्म = कुकर्म, विशेष कर्म। मान घटावैं = सम्मान को गिराती हैं। गलुका = गुलगुला भोजन-लड्डू [-मलाई आदि]। करैं हलुका = हलका करती हैं, इज्जत गिराती हैं।

10. कठिन = कठोर, दुर्गम, दुस्तर। किनहि = किसी ने भी। फेरा = उलटा, परावर्ती किया, अन्तर्मुखी किया। उपाइ घनेरा = घने [-बहुत अधिक] उपाय।

11. फेरिया = परावर्तित किया। सर्पसिंह गज बसि करैं = लोग अपने कौशल [-पराक्रम] से सर्प, सिंह और हाथी तक को वशवर्ती बना लेते हैं। पर, इन्द्रियों को वशवर्ती नहीं कर पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

12. नर सूरबीर आंहीं = मनुष्य शूरवीर होते हैं। बाघ = शेर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोउ सर्प गहैं पुनि धाई। इन्द्रिन की गति नहि पाई।
कोउ गज उनमत्त हि फेरैं। चलती इन्द्री नहि घेरैं ॥13॥
कोउ रन मैं सनमुख झूझैं। इन्द्रिनि की गति नहीं बूझैं।
कोउ पैठहिं दरिया मांहीं। इन्द्रिय बसि करी न जांहीं ॥14॥
कोउ यन्त्र मन्त्र आराधैं। ये इन्द्रिय कबहु न साधैं।
कोउ मुये मसान जगावैं। जागत इन्द्री न सुलावैं ॥15॥
कोउ भूत प्रेत बसि कीना। परि इन्द्रिन कै आधीना।
कोउ आगम निगम बषानैं। इन्द्रिन की सुधि नहि जानैं ॥16॥
कोउ कष्ट करैं अति भारी। ये इन्द्रिय जाहिं न मारी।
कोउ पंच अग्नि पुनि तापैं। इन्द्रिनि के आगै कांपैं ॥17॥
कोउ मेघाडंबर भीजैं। इन्द्रिन के घाले छीजैं।
कोउ शीत काल जल पैसैं। इन्द्रिनि के लालच ऐसैं ॥18॥

---

13. इंद्रिन की गति=इन्द्रियों का रहस्य। गज उनमत्त = मदमस्त हाथी को भी। चलती इन्द्री=चंचल इन्द्रियाँ।

14. झूझैं=जूझते हैं। पैठहिं दरिया माहीं=सागर की तह में बैठने जैसा कठिन कार्य तक कर सकते हैं।

15. यन्त्र मन्त्र आराधैं=तन्त्र-मन्त्र की आराधना करते हैं। न साधैं=साध नहीं पाते, संयमित नहीं कर पाते। मुये मसान जगावैं=तन्त्र शास्त्र के अनुसार श्मशान में बैठकर किसी शव के मुख में आहुति देते हुए, निर्भयतापूर्वक शव-साधना करते हैं। जागत इन्द्री=विषयों में प्रवृत्त होने वाली इन्द्रिय-वृत्ति।

16. भूत प्रेत बसि कीना=भूत-प्रेत तक को वश में कर लेते हैं। परि इन्द्रिन कै आधीना=पर इन्द्रियों के गुलाम बने रहते हैं। आगम निगम बषानैं=वेद-तन्त्रादि शास्त्रों का व्याख्यान करते हैं। सुधि=स्मृति, ज्ञान।

17. कष्ट करैं=[साधना में-] कष्ट सहन करते हैं। मारी जाहिं न=ये मारी नहीं जातीं, वशीभूत नहीं हो पातीं। पंच अग्नि तापैं=चारों ओर चार अग्नि प्रज्वलित करते हुए, पाँचवीं सूर्य-ताप की अग्नि के रूप में 'पंचाग्नि'-तप करते है। कांपैं= काँपते हैं, भयभीत [-विवश] बने रहते हैं।

18. मेघाडंबर भीजैं=घने मेघों की वर्षा में भीगते हैं। छीजैं=छीजते हैं, क्षीण होते हैं। घाले=धक्के से, घात से, मार से। पैसैं=प्रवेश करते हैं। लालच=लोभ में। ये पंचाग्नि तपादि किसी-न-किसी कामना विशेष से सम्पन्न किए जाते हैं। फल की कामना से किए गए तप या व्रतादि हेय माने गए हैं। इसप्रकार के शरीर कष्ट देने वाले तप को गीता के मत में भी हेय बताया गया है—

'अशास्त्र विहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्तः काम राग बलान्विताः॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध यवासुरनिश्चयान्॥'—17/5-6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कोउ धूमपान अति करहीं। इन्द्रिनि के स्वारथ मरहीं।
कौ कन्द मूल षंनि षावैं। पर इन्द्रिय हाथ न आवैं॥19॥
कोउ रहैं राति दिन ठाढे। इन्द्रिनि के लीये गाढे।
कौ पकरि रहैं मुख मौंना। इन्द्रिय बसि होंहि न कौंना॥20॥
कौ पहुमी भ्रमि कैं आवैं। इन्द्रिनि के प्रेरे धावैं।
कौ सीझैं जाइ हिंवालैं। इन्द्रिय अपनी नहि गालैं॥21॥
कौ बूडैं झंपा पाती। इन्द्रिय बसि करी न जाती।
कौ मगर भोज तन कीन्हां। इंद्रिय अपनी नहिं चीन्हां॥22॥
कौ करवत धारहिं सीसा। बसि होंहिं न पंच पचीसा।
कौ गरा काटि तन त्यागैं। इन्द्रिय सौं आगैं आगैं॥23॥
पुनि और उपाइ अनेका। ये इन्द्रिय किनहुं न छेका।
ये इन्द्रिय अति बलवन्ता। को राषै बिरले सन्ता॥24॥

दोहा : सन्त सयाने राषि हैं, इन्द्रिय अपनी मारि।
देह दृष्टि सब दूरि करि, पूरन ब्रह्म बिचारि॥25॥

---

19. धूमपान=धूम्रपान, शरीर-कष्ट देते हुए धुएँ को पीना। षंनि षावैं=खोद कर खाते हैं। हाथ न आवैं [मुहा०]=अनुशासित नहीं कर पाते।

20. रहैं ठाढे=ठढ़ेश्वरी तप, खड़े रहकर तप करते हैं। गाढे=कठिन। मौंना=मौन। कौंना=कोई नहीं।

21. पहुमी=पृथ्वी। भ्रमि कैं आवैं=घूमकर, भ्रमण करके आते हैं। प्रेरे धावैं=प्रेरित होकर दौड़ते-भागते रहते हैं। सीझैं=सीझते हैं, गलते हैं। हिंवालैं=हिमालय में, हिम में। गालैं=गलाते हैं, संयमित करते हैं।

22. झंपा पाती बूडैं=झंझावात में, भँवरदार गहरे जल में डूबते हैं। अथवा पहाड़ी से गहरे जल में कूदकर डूबते हैं। मगर भोज तन कीन्हां=स्वेच्छा से अपने शरीर को मगरमच्छ का आहार बनाते हैं। नहि चीन्हां=नहीं पहचाना।

23. करवत धारहिं सीसा=आरे से शरीर को [चीरना-] चिरवाना। 'काशी करवत लेना' कहलाता है। मोक्ष-कामना से कुछ लोग काशी में 'करवत' लेते थे। पंच पचीसा=पाँच इन्द्रियाँ और उनकी पच्चीस प्रकृतियाँ। गरा काटि=गला काट कर।

24. छेका=छाँटा, निवारण किया। बलवन्ता=बलवान्। को राषै=कौन इन [इन्द्रियों-] का संयमन करे।

25. सन्त सयाने=कुशल-सक्षम सन्त। यहाँ 'सयाने' प्रयोग में स्वयं सुन्दरदास की व्यंजना है। देह दृष्टि=चर्म दृष्टि, भोगवादी दृष्टि। पूरन ब्रह्म बिचारि=पूर्ण ब्रह्म का विचार कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सषी : ये इन्द्रिय कोई मारै । सो पूरन ब्रह्म बिचारै ।
ये इंद्रिय जिनि बसि कीन्हां । तिनि आतम रामहि चीन्हां ॥26॥
ये इन्द्रिय जिनि गहि फेरा । तिहिं राम कहत है मेरा ।
ये इन्द्रिय जिनि गहि राषी । ताकी सब बोलहिं साषी ॥27॥
ये इन्द्रिय जाके हाथा । तिहिं सब जन नावै माथा ।
ये इन्द्रिय दवैं सु सूरा । ये इन्द्रिय दवैं सु पूरा ॥28॥
ये इन्द्रिय दवैं सु योगी । ये इन्द्रिय दवैं सु भोगी ।
ये इन्द्रिय दवैं सु ज्ञानी । ये इन्द्रिय दबैं सु ध्यानी ॥29॥
ये इन्द्रिय दवैं सु जपिया । ये इन्द्रिय दवैं सु तपिया ।
ये इन्द्रिय दवैं सु यत्ती । ये इन्द्रिय दवैं सु सत्ती ॥30॥
ये इन्द्रिय दवैं सु जैनां । ये इन्द्रिय दवैं सु ऐंना ।
ये इन्द्रिय दवैं सु शैवा । ये इन्द्रिय दवैं सु दैवा ॥31॥
ये इन्द्रिय दवैं सु ओधू । ये इन्द्रिय दवैं सु बोधू ।
ये इन्द्रिय दवैं सु भक्ता । ये इन्द्रिय दवैं सु मुक्ता ॥32॥
ये इन्द्रिय दवैं सु पंडित । ये इन्द्रिय दवैं सु मुंडित ।
ये इन्द्रिय दवैं सु शेषा । ये इन्द्रिय दवैं अलेषा ॥33॥
ये इन्द्रिय दवैं सु जिंदा । ये इन्द्रिय दवैं सु बंदा ।
ये इन्द्रिय दवैं सु पीरा । ये इन्द्रिय दवैं सु मीरा ॥34॥

---

26. बसि कीन्हा=वशीभूत किया । आतम रामहि चीन्हां=आत्म राम को पहचाना, स्वात्म राम से परिचय प्राप्त किया ।
27. गहि फेरा=पकड़कर [-अनुशासित कर] उलटा किया अर्थात् अन्तर्मुखी किया । सब बोलहिं साषी=सब उसकी साक्षी बोलते होते हैं, अर्थात् लोक उसको प्रामाणिक स्वीकृति देता है ।
28. नावै माथा=मस्तक झुकाते हैं । दवैं=दमित करते हैं । सु सूरा=वे शूरवीर हैं । सु पूरा=वही पूर्ण हैं ।
29-30. सु योगी=वही सच्चा योगी है । जपिया=जापक, नाम जप वाला साधक । तपिया=तपस्वी । यत्ती=यति, तपस्वी । सत्ती=सती, सत्व प्रधान व्यक्ति ।
31. जैनां=जैन मत के अनुयायी । ऐंना=ऐन, खास, विशेष । शैवा=शैव मत के अनुयायी । दैवा=दैवीय [-दिव्य] पुरुष, अवतारी ।
32. ओधू=औधू, अवधूत । बोधू=बुद्ध-मत का, बौद्ध । मुक्ता=मुक्त, मोक्ष प्राप्त ।
33. पंडित=ज्ञानी । मुण्डित=मूंड मुँडाए हुए संन्यासी । शेषा=शेख, इस्लाम मत के पुरोहित । अलेखा=अलख जगाने वाले, कनफटा योगी ।
34. जिंद=अवेस्ता को मानने वाले ज़ेन अथवा जीवित [-जीवन्त] । बंदा=बन्दगी करने वाले, भगवान् के भक्त । पीर=मुर्शद, गुरु-फकीर । मीर=अफसर, उच्च, अव्वल, प्रथम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये इन्द्रिय दवैं सु न्यारा। ये इन्द्रिय दवैं सु प्यारा।
ये इन्द्रिय दवैं सु राता। ये इन्द्रिय दवैं सु मांता ॥35॥

दोहा : इन्द्रिय दवैं सु अगम अति, इन्द्रिय दवैं अगाध।
इन्द्रिय दवैं सु जगत गुरु, इन्द्रिय दवैं सु साध ॥36॥

सषी : कौउ साधू यह गति जानैं। इन्द्रिय उलटी सब आनैं।
इनि श्रवन सुनैं हरि गाथा। तब श्रवना होहिं सनाथा ॥37॥
हरि दरशन कौं दृग जोवैं। ये नैंन सफल तब हौवैं।
हरि चरण कंवल रुचि घ्राणं। यह नासा सफल वषाणं ॥38॥
इहिं जिह्वा हरि गुन गावैं। तब रसना सफल कहावैं।
इहिं अङ्ग संत कौं भेटैं। तब देह सफल दुष मेटैं ॥39॥
कछु और न जानैं चीतैं। ऐसी विधि इन्द्रिय जीतैं।
यह इन्द्रिय कौ उपदेशा। कोउ संमुझै साधु संदेशा ॥40॥
यह पंच इंद्रिनि कौ ज्ञाना। कौ संमुझै संत सुजाना।
जो सीषै सुनै रु गावै। सो राम भक्ति फल पावै ॥41॥
यह संबत सोलहसै का। नवका परि करिये एका।
सावन वदि दशमी भाई। कविवार कह्या समुझाई ॥42॥

---

35. न्यारा=विशेष, अनोखा। प्यारा=प्रिय। राता=अनुरक्त, प्रेमी। मांता=मदमस्त, प्रेम भाव में मस्त।

36. अगम अति=अगम्य, पहुँच से बाहर। अगाध=गहरे, गम्भीर, गहन। जगत गुरु=जगत् के स्वामी, दिशा निर्देशक। साध=साधु, सज्जन, सत्व पुरुष।

37. गति जानैं=दशा [-अवस्था] को पहचानता है। इन्द्रिय उलटी=अन्तमुखी इन्द्रियों से, आन्तरिक इन्द्रिय-वृत्ति से। गाथा=गान-कथा, चर्चा। सनाथा=सौभाग्यशाली।

38. दरशन कौं=दर्शन केलिए, साक्षात्कार के निमित्त। दृग जोवैं=नेत्र देखें। नैंन सफल=नेत्रों के होने की सफलता। रुचि घ्राणं=नाक की अभिरुचि। नासा=नासिका। सफल=सार्थक, अर्थवान्, होने की सार्थकता।

39. जिह्वा=जीभ। रसना=जीभ। अङ्ग=शरीरांग। संत को भेटैं=सन्त के दर्शन करते हैं अथवा भेंट करते, मिलते हैं। दुष मेटैं=दुख मिटाते हैं।

40. चीतैं=चित्त में। इन्द्रिय जीतैं=इन्द्रियों को संयमित करें। संदेशा=सन्देश।

41. ज्ञाना=ज्ञान। जो सीषै सुनै रु गावै=जी सीख [-उपदेश] प्राप्त कर, [उपदेश-] सुनकर गाता है वह। फल पावै=फल प्राप्त करता है, सफल होता है।

42. संवत सोलहसै का--नवका परि करिये एका=[इस ग्रन्थ की रचना-]सं० 1691 में हुई। सावन बदि दशमी=श्रावण कृष्ण पक्ष की दशमी। कविवार=कवि शुक्राचार्य का दिन अर्थात् शुक्रवार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम बुद्धि प्रमान बषाना। को दोष न देहु सयाना।
कहै सुन्दरदास पवित्रा। अति नीकैं पंच चरित्रा ॥43॥

दोहा : पंच चरित्र बषानिया, निर्मल ज्ञान प्रकास।
जो ये पंचौं बसि करै, सो प्रभु सुन्दरदास ॥44॥

॥इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे पंचेन्द्रिय निर्णयो नाम
भिन्न-भिन्न प्रसङ्गः षष्टोपदेशः ॥6॥
समाप्तोऽयं पंचेन्द्रिय चरित्र-ग्रन्थः ॥ छन्द संख्या 221 ॥

---

43. बुद्धि प्रमान=बुद्धि प्रमाण से। सयाना=[श्लिष्ट पद] बुद्धिमान, विद्वान्। पवित्रा=पवित्र। पंच चरित्रा=पंचेन्द्रियों का चरित्राख्यान।

44. बषानिया=वर्णन किया। निर्मल ज्ञान प्रकास=शुद्ध ज्ञान-प्रकाश से। प्रभु=स्वामी, मालिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥4॥ अथ सुख समाधि ॥

प्रवेशार्थ : ब्रह्मानन्द-सुख को प्रतिपाद्य बनाने वाले प्रस्तुत लघु ग्रन्थ में समाधि-सुख अर्थात् 'ब्रह्मानन्द' अनुभव को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है। वैसे तो ब्रह्मानन्दानुभूति इतनी सूक्ष्म और अनिर्वचनीय होती है कि उसे 'गूँगे के गुड़' के समान वचनातीत मानते हुए अलौकिक आनन्द कहा गया है। ब्रह्मानुभूति के अनुभव की तुलना सुन्दरदास ने शुद्ध ताजे घी के आस्वाद से करके, कुछ-कुछ वैसा ही अनुभव-आभास कराया है। यह तुलना मुमुक्षुओं-जिज्ञासुओं को समझाने भर केलिए है। इसलिए प्रत्येक अर्द्ध सवैया छन्द की अन्तिम पंक्ति 'घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुन्दरदास।' के रूप में दी है। भक्ति सहित ज्ञानानुभूति का यह उल्लास, गुरु-परम्परा से प्राप्त होने वाले अनुभव के रूप में यहाँ वर्णित है। एक अन्य उल्लेखनीय बात यह भी है कि 'पंचेन्द्रिय' ग्रन्थ के बाद, इन्द्रिय निरोध के फलस्वरूप वृत्तियों के अन्तर्मुखी होने से जो ज्ञान-प्रकाश होता है, उसी समाधि-दशा के रूप में वर्णन है। उस समाधि-दशा में ही परब्रह्म के अपरोक्ष ज्ञान से ब्रह्मानन्द-सुख अनुभव में आता है। उसी ब्रह्मानन्द को, सन्त रचनाकारों ने, अनेक उदाहरणों द्वारा वाणी-बद्ध करने की चेष्टा की है। ब्रह्मानन्द की सूक्ष्म प्रकृति के कारण ही उसकी अनिर्वचनीयता है। इसलिए कहा जाता है कि 'जिन जाना तिन न बखाना।' वास्तव में जो 'लय' हो जाता है, जो नमक की डली के समान सागर में विलय हो जाता है, फिर वह उस अनुभव को कैसे व्यक्त कर सकता है ? फिर भी, जिज्ञासा सन्तुष्टि केलिए, अनेक प्रतीक-संकेतों, रूपकों-उदाहरण-दृष्टान्तों द्वारा उस सूक्ष्मानुभव को व्यक्त किया जाता रहा है। इसी उद्देश्य से रचित 'अर्ध सइया' 'सुख समाधि' का मूल पाठ द्रष्टव्य है :

चूर्णिका : अर्ध सवइया : अर्द्ध सवैया, सवैया छन्द का ही एक भेद है। यह सवैया छन्द चार (सगण (।।ऽ)) वाले 'तोटक' या 'त्रोटक' छन्द का ही दूसरा नाम-रूप है। पर, यहाँ यह 12 वर्ण वाला त्रोटक या तोटक न होकर, 16-16 मात्राओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्ध सवइया :

नमस्कार गुरुदेव हि मेरौ, जिनि यह कीयौ ज्ञान प्रकास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥1॥
गई गोपि ह्वै भक्ति आगिली, काढं प्रगट पुरातम षास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥2॥
तक्र त्यागि तत लियौ काढि कैं, भोजन उहै अमृत कौ ग्रास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥3॥
कण हरि नाम सार संग्रह करि, और क्रिया कौ काटै घास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥4॥
आतम तत्व विचार निरन्तर, कीयौ सकल कर्म कौ नास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥5॥

यति पर रचित 32 वर्ण वाला 'रूपधनाक्षरी' दंडक' या 'कवित्त' है। इसके अन्त में गुरु-लघु का विधान रहता है। यहाँ मात्रा-वर्ण-विधान कहीं-कहीं शिथिल भी दिखाई देता है। इस ग्रन्थ में 32 अर्द्ध सवैया छन्द हैं।

1. जिनि यह कीयौ ज्ञान प्रकास=जिन्होंने यह ज्ञान-प्रकाश किया है, उन गुरुदेव को मेरा नमन। इस 'नमस्कार' के माध्यम से ग्रन्थ-प्रारम्भ के 'मंगलाचरण' का विधान भी पूर्ण हुआ है। 'घी सौ घौंटि रह्यौ' : ताजा, शुद्ध रवेदार घी अमृत के समान सुस्वाद होता है। उसके खाने का आस्वाद, अनुभव का विषय है, वाणी का नहीं। घृत स्वाद का आह्लादकत्व अच्छे घृत का स्वाद लेने वाला ही जान सकता है। 'सुख सौं सोवै' के समान ही आचार्य शंकर ने 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका' रचना में 'शतै सुखं कस्तु समाधिनिष्ठः' कहकर समाधिनिष्ठ की सुखानुभूति की गहनता [-अगाधता बताई है। इसीलिए यह सुख 'गूँगे के गुड़' के समान अनिर्वचनीय बताया गया है।
2. गई गोपि ह्वै=लुप्त हो गई। भक्ति आगिली=पिछली भक्ति भावना। काढ़े प्रगट पुरातम पास=आतम में निहित ज्ञान के पूर्व [आदि-] संस्कारों का उदय होने पर, आदि खास बन्धन निकल गए। तभी से परम सुख का अनुभव होने लगा।
3. तक्र=मट्ठा, छाछ। तत लियौ काढि कैं=[ज्ञान रूप तत्त्व-] मथकर, तत्त्व चिन्तन रूप नवनीत निकाला है। भोजन उहै=वही भोजन अमृत कौर की तरह सुखकर है।
4. कण हरि नाम=अन्न कण रूप सार्थक हरि-नाम। सार संग्रह=सारतत्त्व का संग्रह-ग्रहण। और क्रिया कौ काटै घास=अन्य षट् कर्म साधना-क्रियाओं को, घास के समान तुच्छ समझते हुए काटकर फेंक देता है।
5. आत्म तत्व विचार=आत्म तत्त्व का चिन्तन। निरन्तर=लगातार। सकल कर्म कौ नास=अन्य सभी करणीय लौकिक कर्मों की बाध्यता समाप्त हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कछु उर मैं नहिं आवै, बातैं कोऊ कहौ पचास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।6।।
कौंण करै जप तप तीरथ ब्रत, कौंण करै यम नेम उपास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।7।।
इडा पिंगला सुषुमन नारी, को अब करै योग अभ्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।8।।
कोउक दिन लौं आसन साधे, कोउक दिन लौं पैंचे श्वास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।9।।
कोउक दिन लौं रजनी जागे, कोउक दिन लौं फिरै उदास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।10।।
देखे नाना मते ऋषिनि के, देखे बर्णाश्रम संन्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।11।।
अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं, मोक्ष आदि सब छाड़ी आस।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।12।।
को बकवाद करै काहू सौं, मिथ्या जान्यौं बचन विलास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।13।।
कोऊ निंदा करै बहुत बिधि, कोऊ करै प्रसंसा हास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।14।।

6-7. उर मैं नहिं आवै = हृदय में नहीं समाता। बातैं कोऊ कहौ पचास [मुहा०] = कोई चाहे पचास बातें बनाता रहे। कांण करै = कौन साधै। नेम उपास = उपासना के नियम अर्थात् व्रतोपासना।

8. सुषुमन नारी = सुषुम्ना नाड़ी। को अब करै योग अभ्यास = अनुभव की इस चरम अवस्था में पहुँचने पर योग साधनाभ्यास अब कौन करे। अर्थात् प्राप्तव्य ब्रह्मानन्द का अनुभव होने पर, साधना-योग की [अपेक्षा-] सार्थकता नहीं रहती।

9. कोउक = कोई अथवा कोई-कोई। दिन लौं = दिन तक, सारे दिन। पैंचे श्वास = श्वास खींचता है, प्राणायाम करता है।

10. दिन लौं रजनी जागै = दिन-रात जाग्रत रहता है। फिरै उदास = उदासीन [अनासक्त-]भाव में तल्लीन हुआ घूमता है।

11. ऋषिनि के नाना मते = ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिपादित अनेकानेक मत-सिद्धान्त। वर्णाश्रम = चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

12. अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष = पुरुषार्थ चतुष्टय। छाडी आस = सम्पूर्ण आशा-कामना छोड़ दी है।

13-15. बकवाद = बकवास, व्यर्थ-निरर्थक वाद-विवाद, तर्क-वितर्क। बचन विलास = वाणी विलास, वाक् चातुर्य। निंदा करै = निन्दा करता है, बुराई की वृत्ति रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ परी संशै नहिं कोऊ, सम करि जाने गृह बनवास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।15।।
काहू संग मोह नहिं ममता, देषहि निर्पष भये तमास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।16।।
कौन करै या तन की चिंता, जो प्रारब्ध सु आवै पास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।17।।
स्वर्ग नरक संशै नहिं कोऊ, आवागमन न जम की त्रास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।18।।
कीयौ श्रवन मनन पुनि कीयौ, ता पीछे कीयौ निदिध्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।19।।
बार बार अब कासौं कहिये, हूवौ हिरदय कवल बिगास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।20।।
अंधकार मिटि गयौ सहज ही, बाहरि भीतरि भयौ उजास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।21।।

प्रशंसा हास=प्रशंसा और हँसी-ठट्टा। समझ परी=समझ अर्थात् बोध-विवेक होने पर। संशै नहिं=संशय नहीं रहता। सम करि जानै=समानता भाव से जानता है, अनुभव करता है। गृह बनवास=घर और अरण्यजीवन, गृहस्थ और बनवासी-संन्यासी जीवन को एक समान करके समझता है, एक ही रूप में अनुभव करता है।

16. संग=साथ, आसक्ति। ममता=ममत्व। निर्पष भये=निष्पक्ष होकर, किसी पक्ष विशेष में आसक्ति न रख कर। तमास देषहि=तमाशा देखता है, सांसारिक घटना दृश्यों को अनासक्त भाव से देखता है, साक्षी बना रहता है।

17. तन की चिंता=शरीर की परवाह। प्रारब्ध=पूर्वकृत[-संचित]कर्मों के फलस्वरूप प्राप्तव्य। आवै पास=पास आ जाएगा, प्राप्त होगा।

18. स्वर्ग नरक संशै नहिं=स्वर्ग-नर्क के होने की द्विविधा नहीं रहती। आवागमन=पुनर्जन्म चक्र। जम की त्रास=कालदूत यम का भय।

19. श्रवन मनन कीयौ=गुरु मुख से सुना और चिन्तन-मनन किया। कीयौ निदिध्यास=पुन: पुन: स्मरण, बारम्बार ध्यान करना।

20. अब कासौं कहिये=अब किससे कहें, अनुभव की सूक्ष्मता को संवाहित कैसे और क्यों करें। हूवौ=हुआ है, हो गया है। हिरदय कवल बिगास=हृदय कमल विकसित हो गया है, चित्त अपनी पूर्णता में प्रफुल्लित है।

21-23. अंधकार=अँधेरा, अज्ञान, मोहान्धकार। सहज ही=ज्ञान प्रकाश से, बिना किसी शारीरिक कष्ट के सहज रूप में। बाहरि भीतरि भयौ उजास=बाहर-लोक में, भीतर हृदय-लोक में, अन्दर-बाहर ज्ञानालोक छिटक गया है। देह भिन्न आतमा भिन्न=देहात्म के भिन्नत्व का अनुभव, जड़-चेतन के पार्थक्य का ज्ञान होना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह भिन्न आतमा भिन्न है, लिपै न कबहूं ज्यौं आकाश ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥22॥
देह अनित्य उपजि करि बिनसै, आतम नित्य अजर अविनाश ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥23॥
जाकौं अनुभव होइ सु जाणैं, पायौ परमानन्द निवास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥24॥
कस्तूरी कर्पूर छिपावै, कैसै छानी रहै सुवास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥25॥
जल तें पाला पाला ते जल, आतम परमातम इकलास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥26॥
जैसें नदी समुद्र समावै, द्वैत भाव तजि ह्वै जलरास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥27॥
रजु मैं सर्प सीप मैं रूपो, मृगतष्णा जल ज्यौं आभास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥28॥

लिपै न कबहूं=कभी लिप्त[-आसक्त]नहीं होता । देह अनित्य=जन्म से रूपायित होने वाला शरीर अनित्य-नाशवान् अथवा भंगुर है। बिनसै=विनष्ट होती है। आतम नित्य=अजर [-अमर]-आत्मा नित्य अविनाशी है ।

24. जाकौं अनुभवन होइ सुन जाणैं [कहा०]=जिसको अनुभव होता है, वही जानता है । परमानन्द निवास=परमानन्द अनुभव में स्थिति ।

25. कस्तूरी कर्पूर छिपावै [मुहा०]=व्यर्थ [नादानी-]के प्रयत्न करना । कस्तूरी और कर्पूर को कहीं छिपाया जा सकता है अर्थात नहीं । क्योंकि उनकी प्रबल सुगन्धि ही स्थिति को बता देती है। कैसे छानी रहै सुबास=सुगन्धि कैसे छिपाई जा सकती है ?

26. जलतें पाला=जल के जमने से हिम बनता है । जल और हिम एक दूसरे के समवर्ती अर्थात् मैत्री सम्बन्ध में हैं । आतम परमातम इकलास=आत्मा-परमात्मा इखलास [अ०] अर्थात् मैत्री सम्बन्ध में हैं ।

27. नदी समुद्र समावै=नदी समुद्र में समा जाती है, वैसे ही आत्मन् परमात्मन् में समा जाता है । द्वैत-भाव तजि=मैं नदी हूँ [-आत्मा हूँ] वह समुद्र है [-परमात्मा है] इस द्वैत भेद को त्यागकर जल राशि रूप [अहं ब्रह्मास्मि] हो जाता है ।

28. रजु मैं सर्प, सीप मैं रूपो=रस्सी में सर्प और सीप में चाँदी के उदाहरण आत्म-अनात्म के भेद को सिद्ध करने केलिए दृष्टान्त मात्र हैं। मृगतृष्णा जल=सूर्य की किरणों से बालुका कणों में जलाभास 'मृग-मरीचिका' कहलाता है, जो भ्रान्ति-जनित है । आभास=प्रतीति, मिथ्या ज्ञान ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरण ब्रह्म अखंड अनावृत, यह निश्चय याही बिसवास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।29।।
देषै सुनै सपर्शय बोलै, सूंघै अनाशक्ति अनयास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।30।।
जगत क्रिया देषै ऊपर की, आशय पाइ सकै नहिं तास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।31।।
सद्गुरु बहुत भांति समझायौ, भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ।।32।।

।। समाप्तोऽयं सुखसमाधि ग्रन्थः ।।4।।

---

29. पूरण ब्रह्म = पूर्ण ब्रह्म अखण्ड और प्रत्यक्ष है । अनावृत = प्रत्यक्ष, आवरण से रहित, उद्घाटित । बिसवास = विश्वास, निश्चय ।

30. देषै सुनै सपर्शय बोलै सूंघै = पंचेन्द्रियों की पंच क्रियाएँ—देखना, सुनना, स्पर्शन, वाणी एवं सूंघना । अनाशक्ति = अनासक्ति, आसक्ति के बिना । अनयास = अनायास, सहज ही ।

31. जगत = संसार, संसार के लोग । क्रिया देषै ऊपर की = संसार के लोगों को, बाह्य-चर्म दृष्टि के कारण ऊपरी [-बाहरी] क्रिया ही दिखाई देती है । आशय = मर्म, रहस्य । तास = उस सुख-समाधि में स्थित रहने वाले का, अन्तर्मुखी समता ज्ञानी का ।

32. सद्गुरु बहुत भांति समझायौ = सद्गुरु ने भलीप्रकार से समझाया है, सद्गुरु रूप श्रुति ज्ञान की पूर्व परम्परा से भलीप्रकार ग्रहण किया है । ज्ञान उल्हास = भक्ति सहित ज्ञान का यह उल्लास [-प्रफुल्लता] । यहाँ भक्ति का सहकार ज्ञान केलिए आवश्यक बताया गया है। इसे ज्ञान-भक्ति के समन्वय की अवधारणा मानना चाहिए ।

टिप्पणी : 'सुख समाधि' के अर्धसवइया छन्द 6 लेकर 31 तक जो प्रतिपाद्य है, वही सुन्दरदास का वेदान्त प्रतिपादित अपना निष्कर्ष भी है । इस सन्दर्भ की अन्य रचनाओं में भी ज्ञानानुभव को इसी रूप में प्रतिपादित किया गया है । उदाहरण केलिए **'सवैया' ग्रन्थ के 'आत्मानुभव'** अंग में वे कहते हैं—'क्या कहिये कहते न बनै कछु, जो कहिये कहते ही लजइये ।', 'सुन्दर आतम को अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना ।', 'सुन्दर साक्षात्कार अनुभौ प्रकास है ।' 'प्रेम परा **ज्ञानी को अंग**' में 'सुन्दर कोउ न जान सकै यह गोकुल गाँव कौ पैंडो ही न्यारौ ।' तथा **'आश्चर्य को अंग'** में 'सुन्दर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातें ।' **'साखी भाग'** के आत्मानुभव में 'सदा रहै आनंद में सुन्दर ब्रह्म समाइ । गूंगा गुड़ कैसे कहै मन ही मन मुसकाइ ।' इन उदाहरणों में ब्रह्मानुभूति जनित आनन्द अथवा 'सुख समाधि' में वर्णित विशिष्ट सुख के प्रतिपादन में रचनाकार का निजी अनुभव बोल रहा है, यह सहज स्पष्ट है । वास्तव में अनुभव की उस दशा तक पहुँचने पर बाह्य क्रिया-साधनों की अपेक्षा नहीं रहती अर्थात् तब साधन साधनहीन प्रतीत होने लगते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥5॥ अथ स्वप्न प्रबोध ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 26 दोहा-छन्दों में परिसमाप्त **'स्वप्न प्रबोध'** नाम लघु रचना में जीवन की जागतिक स्थिति को एक स्वप्न-रूपक में अथवा स्वप्न-दृष्टान्त रूप में निरूपित किया गया है। जिसप्रकार स्वप्न दशा की स्थितियाँ-दशाएँ [-घटनाएँ-पदार्थ आदि] जाग्रत अवस्था में आते ही मिथ्या-काल्पनिक अथवा असत्य-सी प्रतीत होने लगती हैं उसी प्रकार नाम रूपात्मक इस संसार के पदार्थ, ज्ञान-दशा अथवा तुरीयावस्था में असत्य या मिथ्या लगते हैं। नाना रूपात्मक अथवा प्रपंचात्मक जगत् की स्थिति, जागने अथवा स्वप्न टूटने पर अर्थात् ज्ञान-बोधात्मक दशा में पहुँचने पर कुछ और ही होती है। यहाँ जगत् की अवास्तविकता स्वप्न जैसी बताई गई है। भाषा की मार्मिकता और दोहा छन्द में निहित वैचारिक सामासिकता प्रस्तुत मूल पाठ में द्रष्टव्य है :

दोहा : स्वप्नै मैं मेला भयौ, स्वप्नै मांहिं बिछोह।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं मोह निर्मोह ॥1॥
स्वप्नै मैं संग्रह कियौ, स्वप्नै ही मैं त्याग।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नां कछु राग बिराग ॥2॥

चूर्णिका : 1. स्वप्नै में = स्वप्न दशा में। मेला भयौ = सम्मिलन, संयोजन, संयोग होने पर। बिछोह = विच्छेद, वियोग, अलग होने की अनुभूति। जाग्यौ स्वप्न तें = स्वप्न से जाग्रत होने पर, [ज्ञान-] बोध दशा में। नहीं मोह निर्मोह = मोह और मोहहीनता दोनों ही नहीं रहते।

2. संग्रह कियौ = परिग्रह किया, प्रिय वस्तुओं को एकत्रित किया। त्याग = छोड़ देने या त्यागने की क्रिया भी स्वप्न जैसी ही है। नां कछु राग बिराग = स्वप्न से जगने पर आसक्ति और वैराग्य दोनों ही नहीं रहते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नै मांहिं यती भयौ, स्वप्नै कामी होय।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, कामी यती न कोय ।।3।।
स्वप्नै मैं पंडित भयौ, स्वप्नै मूरष जान।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं ज्ञान अज्ञान ।।4।।
स्वप्नै मैं राजा कहै, स्वप्नै ही मैं रंक।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं सांथरौ प्रयंक ।।5।।
स्वप्नै मैं हत्या लगी, स्वप्नै न्हायौ गंग।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, पाप न पुन्य प्रसंग ।।6।।
स्वप्नै सूरा तन कियौ, स्वप्नै चाल्यौ भागि।
दोऊ मिथ्या ह्वै गये, सुन्दर देष्यौ जागि ।।7।।
स्वप्नै गयौ प्रदेश मैं, स्वप्नै आयौ भौंन।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, आयौ गयौ सु कौंन ।।8।।
स्वप्नै षोई बस्तु कौं, पाई स्वप्नै मांहिं।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, पाई षोई नांहिं ।।9।।
स्वप्नै मैं भूल्यौ फिर्यौ, स्वप्नै पाई बाट।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, औघट रह्यौ न घाट ।।10।।

---

3. यती=तपस्वी, संन्यासी। कामी=विषयी, इन्द्रियासक्ति वाला।

4-5. पंडित भयौ=ज्ञानी हो गया। मूरष जान=मूर्ख-अज्ञानी बन गया। रंक=गरीब, निर्धन। सांथरौ=घास-फूँस या पुआल का बिछौना। प्रयंक<पर्यङ्क [सं०]=पलंग, सुख-सेज।

6. हत्या लगी=हत्या का दोष[-पाप-अपराध] लग गया। न्हायौ गंग=गंगा स्नान किया। पाप न पुन्य प्रसंग=ज्ञानावस्था में पाप-पुण्य का भेद-विचार निरस्त हो जाता है।

7. सूरा तन कियौ=शूरवीर की तरह पराक्रम दिखाया। चाल्यौ भागि=[कायर की तरह-] भाग खड़ा हुआ। देष्यौ जागि=जाग कर, सावधान होकर, प्रबुद्ध होकर देखने पर।

8. प्रदेश में=परदेश में, विदेश में। आयौ भौंन=अपने भवन में, अपने आवास पर। आयौ गयौ सु कौंन=आने-जाने की क्रिया बाह्य[-भौतिक] होने के कारण, चैतन्य अनुभव की व्याप्ति होने पर, प्रबोध काल में जाने-आने की प्रतीति रूप भ्रम भी समाप्त हो जाता है।

9-10. षोई वस्तु=विलुप्त हुई वस्तु। पाई=प्राप्त की, हस्तगत की या मिली। षोई-पाई नांहिं=खोने-प्राप्त होने की व्यावहारिक प्रतीति, प्रबोध-काल में नहीं रहती। भूल्यौ फिर्यौ=भूला-भटका फिरता रहा। पाई बाट=वाट [-मार्ग, रास्ता]-पन्थ प्राप्त कर लिया। औघट-घाट=अरघट[-ऊबड़-खाबड़]मार्ग अर्थात् घाट रहित स्थिति और घाट अर्थात् सुनिश्चित मार्ग की प्रतीति, ये दोनों ही ज्ञान-दशा में **'सत्य'** रूप नहीं रहते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नै चौराशी भ्रम्यौ, स्वप्नै जम की मार।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं डूब्यौ नहिं पार ।।11।।
स्वप्नै मैं मरिबो करै, स्वप्नै जन्मै आइ।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, को आवै को जाइ ।।12।।
स्वप्न मांहि स्वर्गहि गयौ, स्वप्नै नरकहिं दीन।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, धर्म अधर्म न कीन ।।13।।
स्वप्नै मैं दुर्बल भयौ, स्वप्नै मांहि सपुष्ट।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं रूप नहिं कुष्ट ।।14।।
स्वप्नै मैं सुख पाइयौ, स्वप्नै पायौ दुःख।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु दुःख न सुक्ख ।।15।।
स्वप्नै मैं योगी भयौ, स्वप्नै मैं संन्यास।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, ना घर ना बनबास ।।16।।
स्वप्नै मैं लौंका भयौ, स्वप्नै मांहि मथैंन।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु लेंन न देंन ।।17।।
स्वप्नै मैं ब्राह्मण भयौ, स्वप्नै मैं शूद्रत्व।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं तम रज नहिं सत्व ।।18।।

11-12. चौराशी भ्रम्यौ=चौरासी [-84 लाख योनियों में जन्म-मरण] के चक्र में भ्रमता रहा। जम की मार=यमदूतों की यातना। नहीं डूब्यौ नहिं पार=न तो डूबा और न पार हुआ। अर्थात् डूबने और तर जाने की प्रतीति मिथ्या है। मरिबो करै= मरता-रहता है। को आवै को जाइ=न तो कोई जन्म लेता है और न मरता है।

13-14. स्वर्गहिं गयौ=स्वर्ग-गमन हुआ, स्वर्ग की प्राप्ति हुई। नरकहिं दीन=नर्क-वास दिया गया। धर्म अधर्म न कीन=धर्म-अधर्म की अवधारणा लोक-व्यवहार केलिए है। ज्ञान-दशा में धर्म-अधर्म की सीमा-रेखा तिरोहित हो जाती है। दुर्बल भयौ=दुबला [-कमज़ोर] हो गया। सपुष्ट=स्वस्थ, तन्दुरुस्त हुआ। यह प्रतीति भी स्वप्न के समान ही मिथ्या है। नहीं रूप नहिं कुष्ट=कोढ़ रोग अथवा रूपवान, अर्थात् रोगी एवं निरोग होने की प्रतीति मानसिक है।

15. सुख पाइयौ=इन्द्रिय-सुख का अनुभव किया। ना कछु दुःख न सुक्ख=दुख-सुख की प्रतीति शरीर पर्यन्त होने के कारण क्षणिक और सीमित है, सत्य [-शाश्वत्] नहीं।

16. योगी भयौ=योगी होने का अनुभव हुआ। ना घर ना बनवास=ज्ञान दशा में गृह-वास और बनवास के बन्धन नहीं रहते।

17. लौंका भयौ [राज० आंचलिक शब्द]=अध बिलोया [-अधचला] दही। मथैंन= मथानी [-चलावनी] में। लेंन न देंन=लेन-देन का व्यवहार नहीं रहता।

18-19. ब्राह्मण भयौ=उच्च जाति का, ब्राह्मण हो गया। शूद्रत्व=शूद्र भाव को धारण करने की प्रतीति वाला, शूद्र जाति का मान लिया। नहिं तम-रज-सत्व= त्रिगुण व्यापार का प्रभाव नहीं रहता। तीरथ-दान=तीर्थाटन दानादि पुण्य सूचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नै मैं यम नियम व्रत, स्वप्नै तीरथ दान।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, एक सत्य भगवान ।।19।।
स्वप्नै दौड्यौ द्वारिका, स्वप्नै में जगनाथ।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नां को संग न साथ ।।20।।
स्वप्नै मैं मथुरा गयौ, स्वप्नै में हरिद्वार।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं बदरी केदार ।।21।।
स्वप्नै मैं काशी मुवौ, स्वप्नै मगहर मांहिं।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, मुक्ति रासिभौ नांहिं ।।22।।
स्वप्नै दुष्कर तप कियौ, स्वप्नै संजम जाप।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं आसिका न श्राप ।।23।।
स्वप्नै मैं निन्दा भई, स्वप्नै मांहि प्रशंस।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं कृष्ण नहिं कंस ।।24।।

क्रियाएँ। एक सत्य भगवान=सत्य रूप में एक भगवान। **टिप्पणी**: यहाँ विचारक की ज्ञानोदय दशा का प्रतिपादन किया गया है। रचनाकार के समक्ष जैसे-जैसे और जैसी-जैसी घटनाएँ, स्थितियाँ आती गई हैं, उसने अपने मन्तव्य को अभिव्यक्त करने केलिए उन्हें स्वप्न दशा और जाग्रत अवस्था के प्रतीकत्व के ढाँचे में ढाल दिया है। सच तो यह है कि तात्विक अनुभव में जो जगत्, त्रिकाल रूप में मिथ्या [-भ्रम, अवस्तु] है, वही स्वप्न दशा में, सत्य [-यथार्थ वस्तु] प्रतीति के रूप में कैसे ठहर सकता है।

21. मथुरा—हरिद्वार गयौ=मधुपुरी एवं हरिद्वार तीर्थों की यात्रा की। बदरी-केदार=बदरीनाथ [-बद्रीनाथ] और केदारनाथ तीर्थ स्थल।

22. काशी मुवौ=काशी में शरीर-त्याग किया, मोक्ष प्राप्ति का विश्वास लिया। मगहर मांहि=मगध क्षेत्र का वह स्थान जहाँ कबीर ने शरीर-त्याग किया था और जहाँ शरीर-त्याग होने पर गधे की योनि मिलती है, ऐसी रूढ़ धारणा है। मुक्ति रासिभौ नांहि=मुक्ति प्राप्ति और गधे की योनि में जन्म लेना ये दोनों ही ज्ञान-दशा में नहीं ठहरते।

23. दुष्कर तप=कठोर तप, घोर तपस्या। संजम जाप=इन्द्रिय निग्रह रूप संयम और इष्ट नाम-जाप। आसिका=आशि-आशीर्वाद। श्राप=शाप, दुष्परिणामी वचन।

24. प्रशंस=प्रशंसा। नहीं कृष्ण नहिं कंस=सत्य पक्ष और असत्य पक्ष के [प्रति-पादक-] प्रतीक कृष्ण और कंस की अवधारणा, ज्ञान-दशा में विरोध-भाव न रहने के कारण, नहीं ठहर पाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नै मैं भारत भयौ, स्वप्नै यादव नास।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, मिथ्या वचन बिलास ।।25।।
स्वप्न सकल संसार है, स्वप्ना तीनौं लोक।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, तब सब जान्यौ फोक ।।26।।

।। समाप्तोऽयं स्वप्न प्रबोध ग्रन्थः ।।5।।

25. भारत भयौ=महाभारत का युद्ध हुआ, प्रबोध [-ज्ञान]-दशा में इसकी [स्थिति-] प्रतीति शेष नहीं रहती। यादव नास=महाभारत में यादव जाति-समूह का विनाश हुआ। बचन बिलास=वाणी विलास। कवि कृत घटनाएँ [-आख्यायिकाएँ] ज्ञान-दशा होने पर, बुद्धि चातुर्य-युक्त वाणी-विलास जैसी लगती हैं, यथार्थ नहीं।
26. स्वप्न सकल संसार है=सम्पूर्ण जगत् स्वप्न दशा की स्थिति जैसा है। तीनों लोक=त्रिलोक की स्थिति स्वप्नवत। फोक=निस्सार, फोकट, सारहीन, छिलका जैसा, दिखावटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥७॥ अथ वेद विचार ॥

प्रवेशार्थ : 'वेद विचार' शीर्षक इस लघु रचना में वेद [-ज्ञान] सम्बन्धी विचार 21 दोहा छन्दों में विवेचित हैं। इन दोहों में आस्तिक भावना प्रधान वेद-वृक्ष के रूपक को निरूपित किया गया है। इनमें वेद, शिक्षा और उसके मर्म को, सामान्य पाठक केलिए भाषा में इसप्रकार अभिव्यक्त किया है कि जिससे लोगों के जीवन में, उनके चिन्तन-प्रभाव और आचरण में, वेद-विचार की व्यावहारिकता सहज ही मुखर हो उठे। इन छन्दों में शास्त्र का सिद्धान्त पक्ष प्रधान है। वृक्ष के रूपक के द्वारा वेद के त्रिकाण्ड कहने की सार्थकता को, तीन शाखों अर्थात् पत्र-पुष्प-फल तीन रूपों में, कर्म-उपासना और ज्ञान के माध्यम से अध्यात्म के तीन पक्षों को सरल भाषा में अभिव्यक्ति मिली है। यहाँ कर्म को पत्र, भक्ति को पुष्प और ज्ञान को फल रूप में निरूपित करना साभिप्राय-सा लगता है। क्योंकि, पत्र-पुष्प के पश्चात् फल रूप ज्ञान का निरूपण होता है, जो निज-स्वरूप-स्थिति की प्राप्ति में सहायक होता है। यह विचार अपरोक्षानुभूति के द्वारा आनन्दानुभव में प्रतिष्ठित कराने वाला माना गया है। वेद का यही महाफल 'वेद-ज्ञान' है और यही उसका मुख्य प्रयोजन भी है। यही वेदान्त ज्ञान है। रचनाकार ने वेद-शास्त्र को ग्राह्यता को विधि-निषेधमयता अथवा ग्राह्य-त्याज्य स्थिति कहकर, अपना विचार प्रभावी ढंग से निर्देशित किया है। लगता है कि इस रचना का मुख्य प्रयोजन वेदान्त-विचार-ज्ञान की सर्वोपरिता सिद्ध करना है। सुन्दरदास का कहना है कि—'ज्ञान सुफल ऊपर लग्यौ, जाहि कहैं वेदान्त।' मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : परमातमहिं प्रणांम करि, गुरु संतनु सिर नाइ।
'वेद विचार' हिं कहत हौं, सुनहु सकल चित लाइ ॥1॥

चूर्णिका : 1. प्रथम दोहे में **'मंगलाचरण'** की रीति का निर्वाह है। सिर नाइ= सिर झुका कर, प्रणाम करके। चित लाइ= चित लगा कर, तन्मय होकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद प्रगट ईश्वर वचन, ता महिं फेर न सार।
भेद लहै सद्गुरु मिलें, तब कछु करै विचार ॥2॥
वेद बहुत बिस्तार है, नाना बिधि के शब्द।
पढ़तें पार न पाइये, जो बीते बहु अब्द ॥3॥
वेद वृक्ष करि बरनियौ, पत्र पुष्प फल जाहि।
त्रिविधि भांति शोभित सघन, ऐसो तरु यहु आहि ॥4॥
एक वचन है पत्र सम, एक वचन है फूल।
एक वचन है फल समा, समझि देषि मति भूल ॥5॥
कर्म पत्र करि जानिये, मंत्र पुष्प पहिचानि।
अन्त ज्ञान फल रूप है, कांड तीन यौं जानि ॥6॥

2-3. वेद प्रगट ईश्वर वचन=वेद प्रत्यक्ष ही ईश्वर वचन हैं। **टिप्पणी** : वेदों की रचना के सम्बन्ध में भारतीय विश्वास का एक पक्ष यह है कि वेद अपौरुषेय हैं। उनकी रचना मनुष्य ने नहीं की। वेद-विचार, दिव्य वाणी के रूप में अवतरित हुआ है, जिसे ऋषियों ने समाधि-साक्षात्कार के रूप में, चेतना में ग्रहण कर वाणी-बद्ध किया है। यह वेद-विचार लोक-कल्याण केलिए जागतिक सत्य बना है। अर्थात् 'वेद' व्याप्त सत्य का वाणीबद्ध रूप है। ता महिं=उस में। भेद लहै=भेद प्राप्त करता है, रहस्य जान लेता है। वेद बहुत बिस्तार है=वेद-ज्ञान असीम है। पढ़तें पार न पाइये=अधीत करने से उस ज्ञान का पूरी तरह से अवगाहन या आत्मसात् कर पाना सम्भव नहीं है। बहु अब्द=बहुत वर्ष।

4. वेद वृक्ष करि बरनियौ=वृक्ष रूपक से वेद का वर्णन किया गया है, जिसमें पत्र-पुष्प और फल रूप कर्म, भक्ति और ज्ञान लगे हैं। अर्थात् कर्म-उपासना और ज्ञान का त्रिक् वेद-ज्ञान का प्रतिपाद्य है। शोभित सघन=सघन [-गहन] रूप में शोभायमान है। आहि=है।

5-6. समझि देषि मति भूल=वेद-ज्ञान को समझ कर, पहचान कर देख, इस ज्ञान को देखने-समझने में भूल [-मतिभ्रम] न कर। वेद-ज्ञान में—कर्म-पत्र अर्थात् कर्म पत्ते के समान हैं, जो वृक्ष की बाह्य शोभा बनाए रखते हैं। मंत्र पुष्प=मन्त्र [-उपासना] पुष्प की तरह शोभित हैं। जिसप्रकार पुष्प से सुगन्धि विकीर्ण होती है और वृक्ष की शोभा बढ़ती है, वैसे ही वेद-प्रतिपादित मन्त्रों में उपासना का प्रभाव व्यंजित है। ज्ञान फल रूप=वेद-विचार या ज्ञान, 'सुफल' के समान सर्वोपरि है और सर्वोपरि होने के कारण, उपयोगिता की दृष्टि से यह सुफल ही कर्म-फल परिणामी है। कांड तीन यौं जानि=इसप्रकार कर्म-उपासना और ज्ञान रूप ये तीन-तीन काण्ड [-कर्म, उपासना और ज्ञान] ही तीनों के प्रतिपाद्य विषय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिषई देष्यौ जगत सब, करत अनीति अधर्म ।।
इन्द्रिय लंपट लालची, तिनहिं कहे बिधि कर्म ।।7।।
निषिध छुड़ावण कारनै, भय उपजायौ आइ।
मद्य मांस पर त्रिय गवन, इनतें नरकहिं जाइ ।।8।।
जो सत कर्मनि आचरै, तिनकौं भाष्यौ स्वर्ग।
नाना बिधि सुख भोगवै, सो जानैं अपवर्ग ।।9।।
ज्यौं बालक कै रोग ह्वै, औषध कटुक न षात।
मोदक बस्तु दिषाइ कैं, औषध प्यावै मात ।।10।।
यौं सत कर्मनि कौं कहे, निषिध छुडावण काज।
मूरष जाने सत्य करि, सुख स्वर्गापुर राज ।।11।।

---

7. बिषई=विषयी, विषयासक्त, स्वार्थी। अनीति=नीति रहित या विधि हीनता के कार्य। अधर्म=धर्म [-स्वभाव-कर्त्तव्य] हीनता के कार्य। इन्द्रिय लंपट=विषयी, लोलुप। लालची=लोभी। विधि कर्म=वेद विहित कर्म।

8. निषिध=निषिद्ध, वर्जित, हीन, अकरणीय। भय उपजायौ आइ=लोग निषिद्ध कर्म न करें, इसीलिए कुकर्मजनित कष्टप्रद फलों का विधान करके नरक आदि की संकलपना की गई है। वहाँ कुकर्मी-पापी को पाप का फल भोगना पड़ता है। मद्य-मांस पर त्रिय गवन=वैदिक कर्म निष्ठा के अनुसार जीवन यापन करने वाले के लिए मदिरापान, मांस भक्षण, पराई स्त्री के साथ लंपटता से भोगादि निषिद्ध कर्म माने गए हैं। अतः ऐसा आचरण करने वाले की चेतना को अनुशासित करने केलिए अथवा अपने समय के सामन्ती समाज को आगाह करने केलिए नरक-जीवन के कष्ट सहन करने का विधान करना ही वेद-विधि का विधान माना गया है।

9. सत कर्मनि आचरै=सत् कर्मों का आचरण करता है। तिनकौं-स्वर्ग=उनकेलिए स्वर्ग-गमन निरूपित है। यहाँ कर्मानुसार नाना प्रकार के सुख का विधान व्यंजित है। अपवर्ग=मोक्ष।

10. बालक कै रोग ह्वै=जैसे बालक को जब कोई रोग होता है अर्थात् बालक रोगग्रस्त होता है। औषध कटुक=कड़वी औषधि। मोदक बस्तु दिषाइ कैं=लड्डू जैसी मधुर वस्तु दिखा कर। औषध प्यावै मात=माता [कड़वी-] औषधि पिलाती है।

11. सत कर्मनि कौं कहै=सत्कर्मों का विधान है। निषिध छुडावण काज=सत्कर्मों का विधान निषिद्ध-वर्जित कर्मों को छुड़ाने केलिए किया गया है। मूरष जाने सत्य करि=मूर्ख इन्हें सत्य मान लेता है। स्वर्गापुर राज=सुख देने वाले स्वर्ग के राज्य को, स्वर्ग जीवन को [सच मान लेता है]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यौं पशु हरहाई करहिं, षेत बिराने षांहि।
षूंटे बांधे आनि सब, छूटि न कतहू जांहि ॥12॥
वर्णाश्रम बंधेज करि, अपने अपने धर्म।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनि, शूद्र दिढाये कर्म ॥13॥
ब्रह्मचर्य गृहचर्य हू, वानप्रस्थ संन्यास।
अपने अपने धर्म तें, ह्वै स्वर्गापुर बास ॥14॥
जोग यज्ञ जप तप क्रिया, दान पुन्य निहगर्ब।
तीर्थ व्रत अरु त्यागि पुनि, यम नियमादिक सर्ब ॥15॥
जो इन कर्मनि कौं करै, तजै काम आसक्ति।
सकल समर्प्यै ईश्वरहि, तब ही उपजै भक्ति ॥16॥
कर्म पत्र महिं नीकसै, भक्ति जु पुष्प सुबास।
नवधा बिधि निस दिन करै, छांडि कामना आस ॥17॥

---

12. पशु हरहाई करहिं=अधिकार पूर्वक [पराए-] खेत को छुट्टा खाने सम्बन्धी पशुओं की आदत 'हरहाई'। षेत बिराने=पराए खेत। षूंटे बांधे आनि सब=वेद कर्म-विधान में, जिसप्रकार पशुओं का स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र विचरण वर्जित करने केलिए खूँटे से बाँधने का उपाय [-विधान] किया जाता है, वैसे ही वेद-विधि में कर्म गत अनुशासन केलिए विहित विधान है। कतहू=कहीं भी।

13. बर्णाश्रम बंधेज=वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था, मनुष्यों के कर्म को नियमित और संयमित करने केलिए **'बन्धेज'** या नियामक रूप है। दिढाये कर्म=स्व-स्व कर्म में दृढ़ करने केलिए। अर्थात् स्व-स्व धर्म में निरत रखने केलिए वेद-विहित विधि-विधान हैं।

14. गृहचर्य=गृहस्थाश्रम। अपने-अपने धर्म तें=स्व-धर्म में निरत रहने से। 'स्वधर्मे निधनं श्रेय' [-गीता ३/35] में स्वर्ग प्राप्ति का विधान उल्लिखित है।

15. जोग यज्ञ=योग और यज्ञ। दान पुन्य=दान रूप पुण्य। निहगर्ब=अहंकार-अभिमान रहितता की भावना। सर्ब=सर्व। अर्थात् सभी तीर्थ, व्रत, त्याग, यम-नियमादि।

16. कर्मनि=कर्मों को। काम आसक्ति=कामासक्ति, फलेच्छा, सकामता। सकल समर्प्यै ईश्वरहि=सब कुछ ईश्वर को अर्पित कर दे, फल की कामना छोड़ कर निष्काम भाव से कर्म करे। भक्ति उपजै=निष्काम भाव से कर्म करने के फल-स्वरूप ही भक्ति भाव का उदय होता है।

17. कर्म पत्र महिं नीकसै=[भक्ति-] कर्म रूप पत्तों से निकलती है। भक्ति जु पुष्प सुवास=भक्ति रूप पुष्प की सुगन्धि। नवधा बिधि=नवधा भक्ति-विधान। कामना आस=फलेच्छा, सकामता। **टिप्पणी** : सुन्दरदास ने वेद-उपनिषद् प्रति-पादित 'उपासना' काण्ड के स्थान पर भक्ति प्रसंग को, वेद-विचार के अन्तर्गत निरूपित किया है, यह उन का, युगानुरूप विश्वास अथवा तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का परिणाम माना जा सकता है, वेद प्रतिपाद्य नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछै बाधा कछु नहीं, प्रेम मगन जब होइ।
नवधा ऊ तब थकि रहै, सुधि बुधि रहै न कोइ ।।18।।
तब ही प्रगटै ज्ञान फल, समझै अपनौं रूप।
चिदानन्द चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ।।19।।
वेद वृक्ष यौं बरनियौ, याही अर्थ बिचार।
कर्म पत्र ताकैं लगैं, भक्ति पुष्प निरधार ।।20।।
ज्ञान सु फल ऊपर लग्यौ, जाहिं कहैं वेदान्त।
महा वचन निश्चै धरै, सुन्दर तब ह्वै शान्त ।।21।।

।।समाप्तोऽयं वेदविचार ग्रन्थः ।।6।।

18. बाधा=रुकावट, अवरोध। प्रेम मगन=प्रेम विभोर, प्रेम-भाव में लीन। नवधा ऊ तब थकि रहै = प्रेम-लक्षणा भक्ति के आने पर नवधा भक्ति तिरस्कृत [-अप्रमुख] हो जाती है।

19. तब ही प्रगटै ज्ञान फल=प्रेम-लक्षणा भक्ति के उदय के बाद ही ज्ञान रूप सुफल [उपयोगी सार तत्त्व] प्रकट होता है। चिदानन्द चैतन्य घन=चैतन्यानुभव में आनन्द का अनुभव होता है। इस अनुभव का परिणाम ही अनुपम-व्यापक ब्रह्म का अनुभव है।

20. वेद वृक्ष=वेद रूप वृक्ष। याही अर्थ विचार=इसी अर्थ का विचार अपेक्षित है।

21. ज्ञान सुफल ऊपर लग्यौ=ज्ञान रूप सुन्दर-उपयोगी फल इस वेद-वृक्ष के ऊपरी भाग में लगता है। इसी को वेदान्त ज्ञान-फल की संज्ञा दी गई है। महावचन=महा वाक्य। वेदान्त के सत्य ज्ञान प्रतिपादक सिद्धान्त वाक्य हैं—'तत्त्वमसि, अहम् ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि। ये मन्त्र रूप कथन अद्वैत ज्ञान के सूत्र वाक्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥7॥ अथ उक्त अनूप ॥

प्रवेशार्थ : 'उक्त अनूप' [-अनुपम उक्ति] का तात्पर्य गुरूपदेश से है। जो कथन उपयोगी अर्थात् हृदय को शुद्ध करने, विचारों को पवित्र बनाने अथवा चर्या को सात्विक बनाने में सहयोगी हो। कवि का कहना है कि—'शुद्ध हृदय जाकौ भयौ उन्हें कृतारथ जान' शिष्य का समग्र रूपान्तरण, उचित समय पर ज्ञान का चरम और परम देने से ही सम्भव हो सकता है। उक्त प्रकार के अनुपम उपदेश से शिष्य में आत्म-अनात्म की जिज्ञासा उत्पन्न होते ही, श्रवण-मनन-निदिध्यासन के द्वारा क्रमशः दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। अध्यात्म में ऐसा माना गया है कि मुमुक्षु धर्मात्मा के अशुभ कर्म अस्त होते जाते हैं और शुभ कर्म-संघात उदय होता जाता है, जिससे दिव्य गुण उत्पन्न होने लगते हैं। मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : नमस्कार गुरुदेव कौं, बार बार कर जोरि।
सुन्दर जिनि प्रभु शब्द सौं, काटै बंधन कोरि ॥1॥
तिनकी आज्ञा पाइ कै, भाषौं ज्ञान अनूप।
अनसमझैं भव जल बहै, समझैं ह्वै चिद्रूप ॥2॥

चूर्णिका : 1. रचना के प्रारम्भ में '**मंगलाचरण**' की विधि का निर्वाह। शब्द सौं=शब्द से। बंधन कोरि=कोटि [-करोड़ों] बन्धन-पाश।

2. तिनकी=उनकी। भाषौं=कहता हूँ। ज्ञान अनूप=अनुपम ज्ञान। भव जल बहै=भवसागर के जल में बहता रहता है, संसार-प्रवाह में प्रवाहित बना रहता है। समझैं=समझने पर, ज्ञान होने पर। चिद्रूप=चैतन्य रूप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमगुण रजगुण सत्वगुण, तिनकौ रचित शरीर।
नित्य मुक्त यह आतमा, भ्रम तें मानत सीर ॥3॥
तीन गुननि की बृत्ति मंहिं, है थिर चंचल अङ्ग।
ज्यौं प्रतिबिंबहि देषिये, हालत जल के सङ्ग ॥4॥
तीन गुननि की बृत्य जे, तिन मैं तैंसौ होइ।
जड सौं मिलि जडवत भयौ, चेतन सत्ता षोइ ॥5॥
पर धन पर दारा गवन, चोरी हिंसा कृत्य।
निद्रा तन्द्रा आलसं, यह तम गुण की बृत्य ॥6॥
तामस गुण की बृत्ति मैं, होइ तामसी आप।
कष्ट परै जब आइ कैं, मानै दुःख संताप ॥7॥
राजस गुण की वृत्ति ये, कर्म करै बहु भांति।
सुख चाहै अरु उद्यमी, जक न परै दिन राति ॥8॥
राजस गुण की बृत्ति तें, सुख दुख आवहिं दोइ।
ते सब मानैं आपु कौं, क्यौं करि छूटै सोइ ॥9॥
रज सत मिश्रित वृत्ति ये, जप तप तीरथ दान।
योग यज्ञ यम नेम व्रत, बंछै स्वर्ग स्थान ॥10॥

3-4. रचित शरीर=यह देह संघात त्रिगुणमयी है। नित्य मुक्त आतम=आत्मा नित्य मुक्त है। आत्मा कभी बन्धन में नहीं, बन्धन तो अज्ञान के कारण होता है। भ्रम तें मानत सीर=भ्रम-अज्ञान के कारण सम्बन्ध मानता है। बृत्ति=प्रवृत्ति। थिर=स्थिर। हालत=हिलता-डुलता है।

5. तीन गुननि की वृत्य=तीन गुणों की वृत्ति[-प्रभाव]के अनुसार ही। जडवत भयौ=जड़ [-अचेतन] जैसा हो जाता है। चेतन सत्ता षोइ=चैतन्य की स्थिति खोकर अर्थात् भूलकर।

6. तम गुण की बृत्य=तमोगुण की प्रवृत्ति। तमोगुणी प्रवृत्तियों में—पराया धन हथियाना, पराई स्त्री पर अधिकार[-व्यभिचार]चोरी, हिंसा-कर्म, नींद-उनींदापन और आलस्यादि हैं।

7. तामसी आप=तामसी वृत्ति में स्वयं तमोगुण प्रधान हो जाता है। कष्ट परै=कष्ट आने पर।

8. राजस गुण की वृत्ति=रजोगुण की वृत्ति ये हैं—नाना विधि कर्म करना, सुख-लालसा की तीव्रता और उद्यम-प्रयत्न करना आदि। जक न परै=चैन नहीं पड़ता है।

9-10. क्यौं करि छूटै सोइ=रजोगुण के परिणामस्वरूप सुख-दुःख पाने का भ्रान्त निश्चय कैसे छूट सकता है? मिश्रित=मिले हुए। जप तप तीरथ दान=लोक में शुभ कर्म कहे जाने वाले योग-यज्ञ-यम-नियम-जप-तप-तीर्थ-दानादि रजोगुण और सतोगुण की समन्वित प्रवृत्ति के परिणाम हैं। बंछै स्वर्ग स्थान=स्वर्ग की कामना करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत भांति की कामना, इन्द्र लोक की चाहि।
सत्य लोक जो पाइये, तहां बहुत सुख आहि ॥11॥
कोउक सात्विक शुद्ध ह्वै, सब तें भयौ उदास।
दुहूं लोक को त्याग करि, मुक्ति हेत जिज्ञास ॥12॥
उनि सद्गुरु कौं आइ कैं, पूछ्यौ यह सन्देह।
मैं हौं कौंन कृपाल ह्वै, दूर करौ भ्रम येह ॥13॥
सद्गुरु देष्यौ शुद्ध अति, मन वच काय सहेत।
भली भूमि मैं बीजिये, तब वह निपजै षेत ॥14॥
तासौं सद्गुरु यौ कह्यौ, तू है ब्रह्म अखण्ड।
चिदानन्द चैतन्य घन, व्यापक सब ब्रह्मण्ड ॥15॥
उनि वह निश्चय धारि कै, मुक्त भयौ ततकाल।
देष्यौ रजु कौं रजु तहां, दूरि भयौ भ्रम ब्याल ॥16॥
ज्यौं रवि के उद्योत तें, अन्धकार मिटि जाइ।
तैसें ज्ञान प्रकाश तें, भ्रम सब गयौ बिलाइ ॥17॥

---

11. कामना=इच्छा। इन्द्रलोक की चाह=राजसी पदवी की लालसा। बहुत सुख आहि=अतिशय सुख विद्यमान है।

12-13. सात्विक=सतोगुण की प्रधानता वाला। भयौ उदास=सतोगुण वाला सब से उदास होने की भ्रान्ति पाल लेता है। जिज्ञास=जिज्ञासा। सन्देह=शंका, जिज्ञासा। मैं हौं कौंन='मैं कौन हूँ' अध्यात्म-जिज्ञासु का यह मूल प्रश्न है।

14-15. शुद्ध=निर्मल। मन वच काय सहेत=मन-वाणी और कर्म [-काया] सहित। भली भूमि मैं बीजिये=उर्वरा भूमि में बोने पर ही [-बीज उगता है]। निपजै षेत=खेत में अंकुरण होकर फसल तैयार होती है। तू है ब्रह्म अखण्ड=गुरु द्वारा महावाक्य 'तत्त्वमसि' का उपदेश है कि 'तू ही अखण्ड ब्रह्म है'। व्यापक सब ब्रह्मण्ड =सकल ब्रह्माण्ड में [तू] व्यापक है।

16. निश्चय धारि कै=निश्चय धारण करके। ततकाल=तत्काल, तुरन्त। इस सम्बन्ध में गीता [-9/31] का साक्ष्य है कि दुराचारी भी, अनन्य भाव से भावार्पित होने पर तुरन्त धर्मात्मा हो जाता है और उसे शाश्वत [-निरपेक्ष] शान्ति प्राप्त हो जाती है।

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्ति निगच्छति।'

रजु=रस्सी। दूरि भयौ भ्रम ब्याल=[रस्सी में-] सर्प की भ्रान्ति अर्थात् भ्रम का सर्प समाप्त हो जाता है। यहाँ सर्प के दृष्टान्त से भ्रान्ति-निवारण की बात कही है]।

17. उद्योत=प्रकाश, द्युति। अन्धकार=तमिस्रा [-अज्ञान]। बिलाइ=विलीन, समाप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध हृदय सुनि मनन करि, निदिध्यास पुनि होइ ।
याही साधन साधि कैं, भयौ वस्तुमय सोइ ।।18।।
शुद्ध हृदय मैं ठाहरै, यह सद्गुरु कौ ज्ञान।
अजर वस्तु कौं जारि कै, होइ रहै गलतान ।।19।।
कनक पात्र मैं रहत है, ज्यौं सिंहनि कौ दुद्ध ।
ज्ञान तहां हीं ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध ।।20।।
शुद्ध हृदय जाकौ भयौ, उहै कृतारथ जांन।
सोई जीवनमुक्त है, सुन्दर कहत बषांन ।।21।।

।।समाप्तोऽयं उक्त अनूप ग्रन्थः ।।7।।

---

18. निदिध्यास=पुनः-पुनः स्मरण । वस्तुमय=तत्त्वमय ।

19. ठाहरै=ठहरता है, प्रतिष्ठित होता है । होइ रहै गलतान=तल्लीन-निमग्न हो जाता है ।

29. कनक पात्र=स्वर्ण पात्र । सिंहनि को दुद्ध=सिंहनी का दूध। ज्ञान तहांहीं··· शुद्ध=जब हृदय शुद्ध होता है , तभी वहाँ ज्ञान ठहर पाता है। अर्थात् अधिकारी पात्र को ही ज्ञान प्राप्त होता है ।

21. कृतारथ जांन=कृतार्थ-सौभाग्यशाली समझो । जीवनमुक्त=मरजीवा, इसी जीवन में, मरण-मुक्ति के विपरीत, जीवन-मुक्ति की प्राप्ति का अनुभव पा लेना । ज्ञानी का यही लक्ष्य रहता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ४ ।। अथ अद्भुत उपदेश ।।

प्रवेशार्थ : दोहा छन्दों में परिसमाप्त लघु रचना में, सन्त-वाणी के प्रतिपाद्य के अनुरूप, उपदेश शैली का सहारा लेते हुए रचनाकार ने इन्द्रियों को अनुशासित करने का यह अनुपम रूपक बाँधा है। इसमें उदाहरण-दृष्टान्तादि देकर, अपनी बात समझाई है। यहाँ उपदेश वृत्ति में भी कवि-कर्म निहित है। इन दोहों में परमात्मा को पिता और जीवात्मा को पुत्र ['आत्मा वै जायते पुत्रः'] कहा है। पुनः जीवात्मा का पुत्र मन, मन की पाँच सन्तानें पंचेन्द्रियाँ और पंचेन्द्रियों की पाँच-पाँच पुत्रियाँ [-वृत्तियाँ] बताकर एक सहज रूपक द्रष्टव्य है। परिवार के लोग जब अनुभवी पिता के अनुशासन में नहीं रहते तो वे स्वैराचारी होकर कुमार्गगामी हो जाते हैं और अनेकानेक विषयों [-आसक्तियों] के आकर्षण [-फन्दों] में फँसकर उनके गुलाम हो जाते हैं। संयोग से यदि प्रारब्ध कर्म के प्रबल होने पर इस बीच सद्गुरु मिल जाते हैं तो जीवात्मा को बोध देकर झकझोरते हैं और अपने ज्ञान-प्रकाश के अमोघ प्रभाव से उसे सुमार्ग पर चलाने का प्रयत्न करते हैं। तभी जीवात्मा, हरि-स्मरण करते हुए निर्मल चित्त होकर महा भाव-दशा में प्रवेश करती है। इस सम्बन्ध में सुन्दरदास का यह दोहा कबीर-साखी से कितना साम्य रखता है, यह देखिए—

'अपने अपने तात सौं बिछुरत ह्वै गये और।
सद्गुरु आप दया करी, लै पहुँचाये ठौर।।'
'पूत पियारा पिता कौं, गौहनि लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपण गया भुलाइ।।'—क०ग्रं० 3/13

कल्पना कीजिए, किसी हाट-मेले में बालक पिता से बिछुड़ जाए तो बालक के मन और पिता के चित्त की क्या दशा होती है? मूल ग्रन्थ का पाठ आगे द्रष्टव्य है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सद्गुरु पायनि परत हौं, मोहि दिषायौ पन्थ।
तातें सुन्दर कहत है, रुचि करि 'अद्भुत ग्रन्थ' ॥1॥
परमातम सुत आतमा, ताकौ सुत मन धूत।
मन के सुत ये पंच हैं, पंचौं भये कपूत ॥2॥
रवि समान परमातमा, दर्प्पन बुद्धिहिं जांनि।
तामहिं प्रतिबिंबित भयौ, जीवातम पहिचांनि ॥3॥
दर्प्पन कौ आभास ज्यौं, कंस पात्र मैं होइ।
त्यौं आतमा प्रकाश मन, देह मध्य है सोइ ॥4॥
कंस पात्र कौ होइ पुनि, सदन मध्य आभास।
त्यौं मन तें इन्द्रिय सकल, बहु बिधि करहिं प्रकाश ॥5॥

चूर्णिका : 1. 'सद्गुरु पायनि परत हौं' में ग्रन्थारम्भ की 'मंगलाचरण' विधि निर्वाहित है। रुचि करि=रुचिपूर्वक, हृदय उल्लास के साथ।

2. परमातम सुत आतमा=परमात्मा का पुत्र आत्मन्-जीवात्मा। **टिप्पणी** : ब्रह्म के अंश रूप में जीव ['ईश्वर अंश जीव अविनासी']। उस आत्मा का प्रकाश रूप ही मन है। अर्थात् 'मन' चैतन्य का सकाश [-छाया] रूप ही है। मन के प्रभावाभास से ही पाँचों इन्द्रियों की स्थिति है। इन्हें 'कपूत' कहने के रूपक का आशय यह है कि कपूत ही अपने पूर्वज-पितादि के वंश-अनुशासन [-यश] की चिन्ता न करके, अपितु उनको उपेक्षा करके, बहिर्मुखी विषयों में फँस कर अपने रास्ते से भटकता जा है और अपनी हानि कराता रहता है। धूत=धूर्त्त, चंचल स्वभाव वाला। पंच=पंचेन्द्रियाँ। पंचौं भये कपूत = असंयम के कारण पंचेन्द्रियाँ बहिर्मुखी होकर, दुष्ट वृत्तियों में फँसने से '**कपूत**' संज्ञक मानी गई हैं।

3. रवि-परमातमा =परमात्मा सूर्य के समान है। दर्प्पन बुद्धि=बुद्धि दर्पण के समान है। प्रतिबिंबित=बिम्बित, प्रतिरूपित। **टिप्पणी** : इसमें सूर्य और दर्पण के दृष्टान्त द्वारा जीव [-बुद्धि] के चैतन्य को समझाया है। वेदान्त में 'घट-आकाश' के उदाहरण से यही बात समझाई जाती है। यह प्रतिबिम्ब ही जीवात्मा का अस्तित्व है, पहिचान है।

4. आभास=प्रतिभास, प्रतिबिम्ब, प्रतीति। कंस पात्र=कांस्य पात्र में। आतमा प्रकाश मन=दर्पण प्रतिबिम्ब के समान ही, आत्म-प्रकाश के रूप में, मन की स्थिति है। **टिप्पणी** : यहाँ यह बात विचारणीय है कि बिम्ब [Object] की स्थिति प्रतिबिम्ब [Image, Reflection] में कुछ कम [-घट कर] होती है, वही या ज्यों-की-त्यों नहीं रहती। यही स्थिति परात्मा से आत्मा [-जीवात्मा] में और जीवात्मा से मन आदि इन्द्रियों में समझनी चाहिए।

5-7. सदन मध्य आभास=काँसे के पात्र की प्रतिच्छाया, चमक या प्रतिभास जब घर के मध्य पड़ता है, तो वह और क्षीण हो जाता है। यही स्थिति इन्द्रियों में, मन के प्रकाश [-सकाश] से होती है। परमातम साक्षी=परमात्मा तो साक्षी भर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परआतम साक्षी रहै, व्यापक सब घट मांहिं।
सदा अखंडित एक रस, लिपै छिपै कछु नांहिं ॥6॥
ताकौं भूल्यौ आतमा, मन सुत सौं हित दीन।
ताके सुख सुख पावई, ताके दुख दुख कीन ॥7॥
मन हित बंध्यौ पंच सौं, लपटि गयौ तिनि संग।
पिता आपनौं छाडि कै, रच्यौ सुतनि कै रंग ॥8॥
ते सुत मदमांते फिरहिं, गनैं न काहू रंच।
लोक वेद मर्याद तजि, निशि दिन करहिं प्रपंच ॥9॥
पंचौं दौरे पंच दिशि, अपने अपने स्वाद।
नैंनूं राच्यौ रूप सौं, श्रवनूं राच्यौ नाद ॥10॥
नथुवा रच्यौ सुगन्ध सौं, रसनूं रस बस होइ।
चरमूं सपरश मिलि गयौ, सुधि बुधि रही न कोइ ॥11॥

सब घट मांहिं=सब हृदयों में। एक रस=एक जैसा, समरूप में। लिपै छिपै नांहि=वह लिप्त और गुप्त नहीं होता। भूल्यौ आतमा=परमात्मा को आत्मा, भ्रम के कारण, भूल जाता है। हित दीन=हित-चिन्तन के कारण।

8. हित बंध्यौ पंच सौं=मन अपने स्वार्थ केलिए पंचेन्द्रियों से आबद्ध बना रहता है। लपटि गयौ=मन इन्द्रियों के साथ एक रूप होकर लिप्त रहता है। पिता आपनौ …सुतनि के रंग=अपने पिता को त्याग कर जैसे कोई अपनी सन्तानों के रंग में रंग जाए, इसीप्रकार मन अपने पिता आत्मन् को भुलाकर, अपनी सन्तान-इन्द्रियों [-पंचों] के रंग में रंगा रहकर, बाह्य सुख-भोग के कार्य-सम्पादन करता रहता है।

9. सुत मदमांते फिरहिं=वे बेटे [-पंचेन्द्रियाँ] मदहोश होकर, बाहरी विषयों में आसक्त बने रहकर चक्कर लगाते रहते हैं। गनैं न काहू रंच [मुहा०]=किसी को कुछ भी नहीं गिनते, किसी की परवाह नहीं करते। लोक वेद मर्याद=लोक-रीति और वेद-शास्त्र की मर्यादा को। प्रपंच करहिं=छल-कपट करते रहते हैं।

10. पंचौं दौरे पंच दिशि=बहिर्मुखी पंचेन्द्रियों की विसंगति यह है कि वे सहयोग भावना से कार्य-रत नहीं होतीं। अपितु अपने-अपने विषयों के प्रति आकर्षित होने के कारण, पाँच दिशाओं में अपने भोग [-स्वाद] केलिए भागती [-लालायित बनी] रहती हैं। नैंनू राच्यौ रूप सौं=नेत्र रूप के प्रति आकर्षित होते हैं, तो श्रवण [मधुर-] शब्द के प्रति लालायित बने रहते हैं।

11. नथुवा रच्यौ सुगन्ध सौं=नासिका अपने विषय सुगन्धि [-वासना] में अनुरक्त बनी रहती है। रसनूं=रसना, जिह्वा। चरमूं सपरश मिलि गयौ=चर्म [-त्वचा] स्पर्श से मिला रहता है। सुधि बुधि=होश-हवास, बोध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबै ठगनि कै बसि परै, जित षैंचहिं तित जांहिं ।
तिन कै संग लगे फिरहिं, तृप्ति सु मांनै नांहि ।।12।।
श्रवनूं ठगियौ नाद ठगि, राग रंग बहु भांति ।
बाद्य गीत बत चातुरी, सुनै दिबस अरु राति ।।13।।
नैनूं ठग्यौ सु रूप ठगि, श्वेत रक्त अरु श्याम ।
हरित पीत निरषत रहै, निरषत छिन छिन बाम ।।14।।
नथुवा ठग्यौ सुगन्ध ठगि, नाना बिधि के फूल ।
चोबा चन्दन अरगजा, सूंघि सूंघि करि भूल ।।15।।
रसनूं षट रस ठगि ठग्यौ, मिष्ट अम्ल अरु षार ।
तीक्षणी कटुक कषाय पुनि, इनसौं कीयौ प्यार ।।16।।
चर्मूं ठग्यौ स्पर्श ठगि, कोमल अङ्ग सुहाइ ।
कोमल सज्या बस्त्र पुनि, नारी सौं लपटाइ ।।17।।
ये पंचौं इनि ठगि ठगे, भये दुखित अरु दीन ।
पिता सुतनि के सङ्ग ही, सदा रहै आधीन ।।18।।

---

12. ठगनि के बसि परै=सभी इन्द्रियाँ काम-क्रोध-लोभादि के वशीभूत बनी रहती हैं। जित षैंचहिं तित जांहिं=विषम इन्द्रियों को जिधर भी खींचते हैं, उधर ही ये खिची चली जाती हैं। तृप्ति=सन्तुष्टि ।

13. श्रवनूं ठगियौ नाद ठगि=नाद [-मधुर ध्वनि] के द्वारा श्रवण ठगे जाते हैं, लुब्ध बने रहते हैं। राग रंग=अनेक प्रकार के मनोरंजन के साधन। बाद्य गीत=संगीत के माध्यम गीत-वाद्य आदि । बत चातुरी=बतरस, चतुराई वाली लुभावनी बातें।

14. श्वेत रक्त अरु श्याम=श्वेत-श्याम और अरुणिम छवियों से। नैनूं ठग्यौ रूप ठगि=रूप ठग नेत्रों को ठगता या लुब्ध किए रहता है। हरित पीत निरषत= हरी-पीली रंगीन छवियों को देखता है। निरषत बाम=[वामा-]कामिनी स्त्री को निहारता है।

15. नाना—फूल=अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि । चोवा चन्दन अरगजा= सुगन्धित द्रव्य-रस [-पदार्थ] । सूंघि-सूंघि करि भूल=सुगन्धि में आसक्त बना रहकर। विमुग्ध=विभ्रमित बना रहता है ।

16. रसनूं षट रस ठगि ठग्यौ=जिह्वा षट् रस व्यंजन-रसों द्वारा ठगी जाती है। षट रस=ये छः रस हैं—मीठा, खट्टा [-अम्ल] खारा, तीखा, कड़वा, कसैला । प्यार=आसक्ति ।

17. चर्मूं ठग्यौ स्पर्श ठगि=[त्वचा-]चर्म, स्पर्श रूप ठग के द्वारा ठगा जाता है। कोमल अंग=सुकोमल [-स्निग्ध] अंग-प्रत्यंग। कोमल सज्या=गुदगुदी सेज। नारी-लपटाइ=नारी का आलिंगन करता है।

18. इनि ठगि ठगे=इन पंच-विषयी ठगों ने ठगा है। दीन=विवश, निरुपाय। पिता= मन । आधीन=विवश, गुलाम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोउक पूरब पुन्य तें, सद्गुरु प्रगटे आइ।
परबस देषि दया करी, श्रवनूं लियौ बुलाइ ।।19।।
तासौं छानै सैं कही, गुप्त मते की बात।
तुमकौं ठग लीये फिरहिं, काहे की कुशलात ।।20।।
ये ठग तुमकौं मारि हैं, लूटि लेहिं सब माल।
चेति सकहु तौ चेतियौ ठग सु नहीं ये काल ।।21।।
श्रवनूं मानी सत्य करि, गुरु कौं कियौ प्रणाम।
तुम हमरी रक्षा करी, मरि जाते बेकाम ।।22।।
ज्यौं हम छूटहिं ठगनि तैं, सो भाषहु गुरुदेव।
भिन्न भिन्न समझाइ करि, हमहिं बतावहु भेव ।।23।।

---

19. पूरब पुन्य तें=पूर्व कृत पुण्य या सौभाग्य से। प्रगटे=प्रकट हुए अर्थात् संयोग से सामने मिल गए। परबस देषि=विवश [-निरुपाय] देख कर। दया करी=दयालु होने के कारण सद्गुरु ने विवश जीवात्मा के प्रति करुणा दिखाई। श्रवनूं लियौ बुलाइ [मानवी०]=उन पाँचों में से श्रवण को अपने निकट बुलाया। **टिप्पणी :** श्रवण के द्वारा ही उपदेश—शब्द अर्थात् कथन का मर्म हृदय में प्रवेश कर पाता है। श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्रस्तुत आख्यायिका रूप में, बोलचाल की सरल भाषा में होते हुए भी, रचनाकार ने कथन को प्रसाद गुण सम्पन्न बनाया है। यह रचना पढ़ते हुए सहज ही प्रसाद गुणपूर्णता अनुभव होने लगती है। वैसे भी ज्ञान-ग्रहण का प्रारम्भ, जिज्ञासापूर्वक गुरु के निकट जाने पर गुरु-वचनों से [-कानों के द्वारा ही] होता है।

20. छानैं सै कही [गुज०]=छान [-ओट] या संकेत में बताई। गुप्त मते की बात=गुप्त मत अर्थात् गूढ़ [-मर्म] रहस्य। तुम कौं ठग लीये फिरहिं=अरे जीव, तुम्हें पंच विषय रूप ठग, अपने फन्दे में फँसाए हुए, इधर-उधर लालच दिखाते हुए घुमाते फिर रहे हैं। ये तुम्हारी घात कर डालेंगे। काहे की कुशलात=इनके साथ रहने पर तुम्हारी किसी प्रकार भी कुशलता या सुरक्षा नहीं है।

21. मारि हैं=मार डालेंगे। लूटि लेहिं सब माल=तुम्हारा माल [-पूंजी=सुकृत] तुम से लूट लेंगे। चेति सकहु तौ चेतियौ=यदि तुम सावधान हो सको तो हो जाओ, अन्यथा समय हाथ से निकल जाएगा। ठग सु नहीं ये काल=ये मात्र ठग ही नहीं हैं अपितु तुम्हारे काल [-मृत्यु] हैं। ये ठग [-विषय] जीवात्मा के विनाशक हैं।

22. मानी सत्य कर=गुरु के कथनोपदेश को कानों ने सत्य मान कर स्वीकार किया। हमरी रक्षा करी=हे गुरुदेव, आपने हमारी रक्षा की है। बेकाम=व्यर्थ ही अर्थात् बेकार ही [-बिना प्रयोजन के ही] मारे जाते।

23. छूटहिं ठगनि तैं=ठगों से जैसे भी छुटकारा हो। सो भाषहु=वह कहो, वह उपदेश बताओ। भेव बतावहु=बचने का जानने का हमें भेद [-उपाय] बताइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनि श्रवनूं तोसौं कहौं, तू है जान प्रबीन।
वे चारौं समुझैं नहीं, महा मुग्ध मति हीन ।।24।।
अब तूं मेरौ वचन सुनि, तोहि कहौं संदेश।
निकट पिता कै जाइ करि, कहिये हित उपदेश ।।25।।
तब श्रवनूं मन पै गयौ, बात कही समुझाइ।
तोहि नींद क्यौं परत है, चहुं दिशि लागी लाइ ।।26।।
अहो पिता हम सब ठगे, पंच शत्रु हैं लार।
शब्द स्पर्श जु रूप रस, गंध महा बटमार ।।27।।
यह सुनि मन कौं भय भयौ, कहनै लागो वोहि।
तैं इह बात कहां सुनी, श्रवनूं पूछौं तोहि ।।28।।
मोहि एक सद्गुरु मिल्या, तिनि यह भाषी आइ।
तुमहि पंच ठग ठगत हैं, अपने पितहिं सुनाइ ।।29।।
तातें आयौ कहन कौं, तुमहिं सन्देशा तात।
वै ठग हम कौं मारि हैं, बुरी भई यह बात ।।30।।

---

24. जान प्रबीन=श्रवण से कहा कि तू तो समझदार और प्रवीण है, बात को सुनता-समझता है। वे चारौं=वे चार अर्थात् आँख, नाक, जीभ, त्वचा। महामुग्ध मति हीन=वे चारों मोह में पड़े होने के कारण बुद्धिहीन हैं।

25. वचन=उपदेश वाणी, कल्याणकर शब्द। निकट पिता के जाइ करि···उपदेश=तू अपने पिता मन के पास जाकर यह कल्याणकर, मर्म भेदी हित-उपदेश सुना और उसे भलीप्रकार समझा दे।

26. मन पै गयौ=मन के पास गया, मन को उपदेश की बात से अवगत कराया। तोहि नींद क्यौं परत है=अरे पिता मन, तुझे गफलत की नींद क्यों लगी रहती है अर्थात् सावधान क्यों नहीं होता। चहुँ दिशि लागी लाइ=जबकि चारों ओर आग लगी हुई है, विनाश चारों ओर से घेरे हुए है।

27. हम सब ठगे=अरे पिता मन, हम सब ठगे जा चुके हैं। पंच शत्रु हैं लार=काम-क्रोध-लोभ-मोह-मत्सर अथवा पंच विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये पाँच शत्रु हमारे निकट ही हैं। बटमार=लुटेरे, ठग, मार्ग के ठग [-चोर]।

28. भय भयौ=कान की बात सुन कर मन भयभीत हुआ। वोहि=उससे। तैं इह बात=अरे श्रवण, तूने यह रहस्य भरी [गुप्त-] बात कहाँ से सुनी है।

29. सद्गुरु मिल्या=मुझे एक सद्गुरु मिला। भाषी आइ=उसने ही यह मर्मभरी बात [-उपदेश] बताई हैं।

30. तातें आयौ=इसीलिए आया हूँ। तात=हे पिता। वै ठग=वे ठग, ठगने के बाद हमको मार डालेंगे। बुरी बात=यह बुरी खबर या अशुभ बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उठि बिलम न कीजिये, चलि सद्गुरु पैं जांहि।
वाकै शरनै उबरि हैं, नहिं तर उबरैं नाहिं ।।31।।
श्रवनूं मन कौं संग करि, लै आयौ गुरु पास।
करि प्रणाम पाइनि परे, दोऊ षरे उदास ।।32।।
नीचे ह्वै करि गिरि रहे, चरननि सौं लपटाइ।
हम तौ ठग जानै नहीं, तुम प्रभु दिये बताइ ।।33।।
तुम कृपाल गुरुदेव जू, तुम ही हो रिछपाल।
शरनि तुम्हारे उबरि हैं, जो तुम होउ दयाल ।।34।।
हम कौं बेगि छुड़ाइये, हम सु तुम्हारे दास।
बार बार बिनती करहिं, कठिन ठगन की पास ।।35।।
दीन वचन जब ही सुने, सद्गुर भये प्रसन्न।
तुमहिं छुड़ाऊं बेगि दे, भय जिनि आवहु मन्न ।।36।।
श्रवनूं मन जिज्ञास अति, देषे सद्गुरु आप।
लाग्यौ कहन उपाय तब, काटन दुख संताप ।।37।।

---

31. अब उठि=अब उठकर, जाग्रत होओ, सावधान होओ। बिलम न कीजिये=विलम्ब न करो समय नष्ट न करो। बाकै शरनै=उस [-सद्गुरु] की शरणागति में। उबरि हैं=उद्धार होगा, रक्षा होगी। नहिं तर=नहीं तो।

32. श्रवनूं मन कौं संगि करि=कान, मन को साथ लेकर। मन के साथ होने से सुनने-समझने की सामर्थ्य बहुत बढ़ जाती है। गुरु पास=गुरु शरण में। दोऊ षरे उदास=मन की एकाग्रता में कर्ण और मन उदास भाव से, गुरु-शरणागति में जिज्ञासु भाव से [-विनम्र-चिन्तित] खड़े [-उपस्थित] हुए।

33. नीचे ह्वै करि गिरि रहे=विनम्र होकर नीचे पड़े रहे। अर्थात् जानने-समझने की में विनत जिज्ञासा बने रहे। प्रभु दिये बताइ=स्वामी सद्गुरु, आपने ठगों की स्थिति बता दी।

34. जू=जी। रिछपाल=रक्षक, रक्षपाल <रिष्टपाल [सं०]। रिष्ट [सं०]=मंगल-कल्याण, सौभाग्य। शरनि=शरणागति।

35. बेगि छुड़ाइये=मुक्त कराइए, बन्धन मुक्ति का उपदेश दीजिए। दास=अनुगामी, शरण में। कठिन=कठोर, भयंकर, दुष्परिणामी। ठगन की पास=ठगों की फाँसी, फन्दा।

36. दीन वचन=विनम्र प्रार्थना। भये प्रसन्न=प्रसन्न हुए, अनुकूल हुए। भय जिनि आनहु मन्न=अरे मन, तुम भयभीत न होओ।

37. श्रवनूं मन जिज्ञास अति=कान के द्वारा मन में अर्थात् मन के अति जिज्ञासु होने पर। देषे आप=सद्गुरु ने स्वयं ही देखा। काटन दुख संताप=दुःख-त्रास निवारण करने केलिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुवाच :

यह निश्चय करि धारि मन, तोहि कहौं समुझाइ।
वै जे तेरैं चारि सुत, तिनि तूं दियौ बहाइ ॥38॥
श्रवनूं तेरौ सुत भलौ, चार्यौं महा कपूत।
यह तोकौं निस्तारि है, उनतें जाइ अऊत ॥39॥
अब तूं मेरी सीष सुनि, चारौं निकट बुलाइ।
एक मते मैं राषि सब, अपने अङ्ग लगाइ ॥40॥
तब उन कौं सुधि होइ है, मिलि बैठहिं इक ठौर।
या बिधि छूटहिं ठगनि तें, भूलि न भाषै और ॥41॥
श्रवनूं हरि चरचा सुनैं, एक अग्र जब होइ।
तब ही भागै नाद ठग, बंधन रहै न कोइ ॥42॥
नैनूं हरि के दरस कौं, लोचहिं बारम्बार।
तब ही भागै रूप ठग, रहै न एक लगार ॥43॥

---

38. निश्चय करि धारि=निश्चय पूर्वक धारण कर। वै जे तेरैं चारि सुत=वे जो तेरे चार पुत्र—आँख, नाक, त्वचा, जिह्वा हैं। तिनि तूं दियौ बहाइ=उन्होंने तुझे बरबाद कर दिया, डुबो दिया।

39. श्रवनूं—सुत भलौ=तेरा पुत्र श्रवण [-कान] बहुत अच्छा है। चार्यौं महा कपूत=और चारों बड़े कुपुत्र हैं। निस्तारि है=निस्तार-उद्धार करेगा। उनतें जाइ अऊत=उनसे अयुक्त-अनासक्त हो जाए तो।

40. सीष सुनि=शिक्षा [-उपदेश] सुन। निकट बुलाइ=अपने समीप बुला ले। एक मते मैं राषि सब=एक सूत्र में [-एक चित्त वृत्ति के अधीन] सबको बाँध दे [-पिरो दे]। अंग लगाइ=अपने अंग में समा ले, अपने में केन्द्रित कर ले।
टिप्पणी : विषयों से इन्द्रियों को रोक कर, अनुशासित करके एकाग्र मन में निहित करना बड़ी कठिन वृत्ति-साधना है। ऐसी चित्त-वृत्ति-साधना से मन की अपरिमित शक्ति को अन्तर्मुखी कर लिया जाता है। इस साधना [-उपाय] को बड़ी ही सरल भाषा में यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

41. मिलि बैठहिं इक ठौर=एक जगह एकत्र होकर—एक उद्देश्य से मिल कर बैठना [-वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्यों से बड़ा ही उपादेय एवं अपेक्षित मन्तव्य कहा जा सकता है]। या बिधि छूटहिं=इस विधि से छुटकारा [-मुक्ति] मिल सकता है। न भाषै और=और किसी को न बताना, न कहना। कारण यह है कि भेद कहने से संकल्प-वृत्ति की शक्ति क्षीण एवं भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है।

42-44. श्रवनूं हरि चरचा सुनैं=कान हरि-गुणगान सुनें। एक अग्र=एकाग्र। भागै नाद ठग=कर्ण शक्ति के एकाग्र होने पर, 'मधुरी बानी' वाला ठग पलायन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नथवा कौं यह रुचि रहै, हरि चणांबुज बास।
तब ही भागै गन्ध ठग, रहै न याके पास ।।44।।
रसनूं हरि के नाम कौं, रटै अखण्डित जाप।
तब ही भागै स्वाद ठग, कबहु न लागै ताप ।।45।।
चरमूं हरि के मिलन की, रुचि राषै सब जाम।
तब ही भागै स्पर्श ठग, सरहिं सकल विधि काम ।।46।।
या उपाय करि छूटिये, उपजै सुख सन्तोष।
पुत्र पिता मिलि हरि भजहु, पावहु जीवन मोष ।।47।।
तब मन यह उपदेश सुनि, चार्यौं लिये बुलाइ।
नैनूं नथवा रसनुवा, चरमू बैठे आइ ।।48।।
ज्यौं उपाइ सद्गुरु कही, त्यौं ही करने लाग।
पुत्र पिता हर्षत भये, जागे पूरब भाग ।।49।।

जाता है। बंधन रहै न=तब फिर श्रवण का बन्धन समाप्त हो जाता है। नैनूं हरि-दरस=नेत्र हरि रूप के दर्शन [-साक्षात्कार] करें तों रूप ठग उपरमित हो जाता है। लोचहिं=देखें। लगार=लगाव, लोभ, आसक्ति वाला। रुचि=लालच। चरणांबुज बास=प्रभु चरण-कमलों की सुगन्धि [-आकर्षण] में रहे तो गन्ध-ठग पलायन कर जाएगा। याके=इसके।

45. रसनूं हरि-नाम=रसना हरि नाम का उच्चारण करे। अखण्डित जाप=निरन्तर नाम-स्मरण अर्थात् 'अजपाजाप' करे तो स्वाद ठग नहीं ठहर सकता। न लागै ताप=विषय-वासना की आँच नहीं लगेगी।

46. चरमूं हरि-मिलन=त्वचा को हरि-स्पर्श की धुन [-रुचि] लगी रहे तो स्पर्श ठग टिक नहीं सकता। सब जाम=अष्ट याम, आठों प्रहर। सरहिं काम=सारे काम बन जाते हैं।

47. उपाय=साधन। उपजै=उत्पन्न होता है। पुत्र पिता मिलि=पुत्र पंचेन्द्रियों सहित, पिता-मन को साथ लेकर स्मरण करो। पावहु=प्राप्त करो। जीवन मोष=जीवन-मोक्ष, जीन्मुक्ति।

48. चार्यौं=चारों अर्थात् आँख, नाक, त्वक्, जीभ। रसनुवा=रसना, जिह्वा। चरमू बैठे आइ=एक चित्त होकर मन के सन्निकट हुए।

49. ज्यौं-त्यौं=जिसप्रकार से सद्गुरु ने उपदेश दिया, वैसे ही। पुत्र-पिता हर्षत भये=पुत्र [-इन्द्रियाँ] और पिता [-मन], एकाग्र होने के कारण [-एकमत होने के कारण, उद्देश्य के एक सूत्र में बँधने से] प्रसन्न हुए। जागे पूरब भाग [-मुहा०]=पूर्व सुकृत जाग्रत हुए, पुण्योदय हुआ, सौभाग्य का अवसर आया। गुरु एवं ईश्वर के उपदेश और कृपा से ऐसा सौभाग्य मिला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब सद्गुरु इनि सबनि कौं, भाष्यौ निर्मल ज्ञान।
पिता पितामह परपिता, धरिये ताकौ ध्यान ।।50।।

सब मिलि पूछी सद्गुरुहिं, पिता पितामह कौंन।
ताके आगैं परपिता, करहिं कवन बिधि गौंन ।।51।।

तुम पंचनि कौ मन पिता, मन कौ आतम जानि।
आतम पित परमातमा, ताहि लेहु पहिचानि ।।52।।

तब पंचौ मन सौं मिले, मन आतम सौं जाइ।
आतम परमातम मिले, ज्यौं जल जलहि समाइ ।।53।।

अपने अपने तात सौं, बिछुरत ह्वै गये और।
सद्गुरु आप दया करी, ले पहुंचाये ठौर ।।54।।

प्रसरे हू ये शक्ति मय, संकोचे शिव होइ।
सद्गुरु यह उपदेश करि, किये बस्तुमय सोइ ।।55।।

---

50. भाष्यौ=कहा। निर्मल ज्ञान=पवित्र ज्ञान। पिता पितामह परपिता=पिता—मन, पितामह—आत्मन्, परपिता—ईश्वर ताकौ ब्रह्म। धरिये ताकौ ध्यान=उसका ध्यान लगाना चाहिए।

51. ताके आगैं=उसके आगे। कवन बिधि गौंन=किस प्रकार गमन-गति हो।

52. मन पिता=पाँचों इन्द्रियों का नियामक होने के कारण मन पिता है। मन कौ आतम=मन का पिता आत्मन् है। आतम पित परमातमा=आत्मा का पिता परमात्मा है। लेहु पहिचानि=उसे पहिचान लो, उसका परिचय प्राप्त कर लो।

53. तब पंचौ-मिले=तब पंचेन्द्रियाँ मन में केन्द्रित [-समाहित] होकर, मन आत्म में लय होकर और आत्मा परमात्मा में विलय होकर एकाकार हुए। ज्यौं जल जलहि समाइ [उदा०]=जैसे जल जल में विलय हो जाता है।

54. बिछुरत ह्वै गये और=जैसे हाट-मेले में, अपने पिता से बिछुड़कर बालक कुछ का कुछ हो जाता है, वैसे ही अपने-अपने पिता से वियुक्त होकर, भूल कर मन और इन्द्रियाँ भी, संसार में कुछ की कुछ हो जाती हैं। ले पहुंचाये ठौर=स्वभाव से दयालु [-कृपाल] होने के कारण, सद्गुरु अपने प्रयत्न से, सब को मिला कर अर्थात् एकाग्र [-एकनिष्ठ] करके, विशेष स्थिति अर्थात् स्थिति-प्रज्ञता तक पहुँचा देता है।

55. प्रसरे हू=ये इन्द्रिय-समुदाय बहिर्मुखी प्रसार में भी। शक्ति मय=शक्तिशाली, 'शक्ति' अवलम्बी बने रहते हैं। संकोचे=यदि ये संकुचित [-अन्तर्मुखी, अनुशासित] हो जाएँ तो, क्षयशील शक्ति को रोक लें तो 'शिव' हो जाते हैं। **टिप्पणी** : लोक का ही नहीं, योगाध्यात्म का भी यह सिद्धान्त है कि प्रसरण का परिणाम विस्तार और आकुंचन का परिणाम संघनित होना है और संघनित रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जसैं हो उतपति भई, तैसैं ही लयलीन।
सुन्दर जब सद्‌गुरु मिले, जो होते सो कीन ।।56।।
याके सुनते परम सुख, दुख न रहै लवलेश।
सुन्दर कह्यौ बिचारि करि, अद्‌भुत ग्रन्थुपदेश ।।57।।

।। समाप्तोऽयं अद्‌भुत उपदेश ग्रन्थ: ।।8।।

में 'शक्ति' संचित रहती है तथा प्रसरण या विस्तार में क्षय को प्राप्त होती है। शक्ति : यहाँ प्रकृति और विकृति दोनों के संवेत रूप को कहना अपेक्षित है। शिव=निज स्वरूप, परमात्म तत्त्व। वस्तुमय=वस्तु-तत्त्व रूप।

56. जैसे ही उतपति भई=सृष्टि का जैसा-जैसा उत्पत्ति-क्रम है। तैसे ही लयलीन=उसीप्रकार विलय क्रम है। जो होते सो कीन=जो थे, वही निज रूप में प्रतिष्ठित कर दिए गए।

57. याके=इस अद्‌भुत ग्रन्थ-उपदेश के। लवलेश=किञ्चित् मात्र भी। अद्‌भुत ग्रन्थुपदेश=अद्‌भुत ग्रन्थ उपदेश। बिचारि करि=विचार पूर्वक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥१॥ अथ पंच प्रभाव ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत रचना में सुन्दरदास ने रूपक और समास शैली का सहारा लेते हुए तीस दोहों में साधु-जीवन की पाँच दशाओं [-अवस्थाओं] का वर्णन किया है। आख्यान रूप में कथित इस रचना द्वारा **'भक्ति'** को परमात्मा की प्रिय पुत्री बताया है और **'माया'** को उसकी दासी। दासी को साथ लेकर बेटी अपना वर ढूंढ़ने निकलती है। अन्त में कोई वर अपने अनुकूल न मिलने पर, वह एकनिष्ठ सन्त-जन को ही अपना वर चुन लेती है। किन्तु, पिता के घर से आई दासी माया भी उसके साथ-साथ रहने लगती है। जो सन्त, निष्ठा के साथ [युवती-]भक्ति को ही अपनी परम प्रिया माने रहते हैं, वे सर्वोत्तम साधु-जन बताए गए हैं और जो दासी से सम्बन्ध रखने लग जाते हैं, वे कर्म-वृत्ति के अनुसार मध्यम, कनिष्ट और निकृष्ट बताए गए हैं। जो माया-दासी से ही संसर्ग बनाए रखते हैं और प्रिय भक्ति का तिरस्कार करते हैं, वे अधमाधम माने गए हैं। उक्त तीन अवस्थाएँ भक्त या भक्ति की हैं और चौथी लम्पट-प्रपंची संसारी की है। सन्त-मत के अनुरूप एक पाँचवीं अवस्था भी है जो 'ज्ञानी' की होती है। वह अपने चिन्तन से तुरीयावस्था में रहते हुए तुरीयातीत होने का प्रयत्न करता है। इसीलिए सुन्दरदास ने **'ज्ञानी सबको सीस'** कहकर उसे सर्वश्रेष्ठ बताया है। **'पंच प्रभाव'** का उक्त वर्णन एक अलग ही ढंग के रूपक के द्वारा प्रस्तुत हुआ है। यहाँ 'प्रभाव' का तात्पर्य 'अवस्था' विशेष से है। अर्थात् भक्ति और माया का जो अलग-अलग प्रभाव साधु [-सन्त-] जन पर पड़ता है, उससे जो अवस्था [-मानसिकता] बनती है, वही 'प्रभाव' की परिणति है। अतः 'पंच प्रभाव' से तात्पर्य पंच अवस्थाएँ अथवा लोगों के पाँच वर्गों से है। मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : गुरु गोविन्द प्रणाम करि, सन्तनि की बलि जात।
सुन्दर सब कौ कान दे, सुनियहु अद्भुत बात ॥1॥

चूर्णिका : 1. गुरु गोविन्द प्रणाम करि=गोविन्द रूप गुरु अथवा गुरु और गोविन्द [-परमात्मा]को प्रणाम कर के। बलि जात=बलिहारी जाता हूँ। कान दे=कान लगाकर, ध्यान से। अद्भुत बात=विचित्र-विलक्षण कथन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति सुता परब्रह्म की, आई इहिं संसार।
उत्तम वर ढूंढत फिरै, माया दासी लार ॥2॥
देषे जोगी जंगमा, संन्यासी अरु जैंन।
वै तौ मन मानैं नहीं, करते देषैं फैंन ॥3॥
षट दरसन पुनि देषिया, देषे सोफी सेष।
तेऊ मन आये नहीं, देषे सारे भेष ॥4॥
तब सन्तनि कै ढिंग गई, देषे शीतल रूप।
क्षमा दया धृति दीनता, सब गुन अजव अनूप ॥5॥
तिन के लक्षण देषि कैं, भक्ति सु बोली आप।
तुम ते मन राजी भयौ, मो सौं करहु मिलाप ॥6॥
भक्ति बिवाही सन्तजन, माया दासी संग।
जुवती सौं निश दिन रमैं, दासी सौं नहिं रंग ॥7॥
जुवती अति प्यारी लगी, तासौं बांधी प्रीति।
दासी कौं आदर नहीं, यह सन्तनि की रीति ॥8॥

---

2. भक्ति सुता परब्रह्म की=भक्ति परब्रह्म की प्रिय पुत्री है। आई इहिं संसार=इस संसार में उसका आगमन हुआ है। उत्तम वर=श्रेष्ठ दूल्हा, दुर्लभ पति। माया दासी लार=उसके साथ 'माया' नाम्नी दासी भी थी।
3. जोगी जंगमा=योगी और जंगम [-जीवधारी]। जैंन=जैन मत के अनुयायी। करते देषे फैंन=झागवत् अर्थात् मनमानी करते हुए अथवा दिखावटी आचरण करते देखे गए।
4. षट दरसन=षट्दर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा। सोफी-सेष=सूफी और शेख। भेष=साधु वेश।
5. ढिंग गई=समीप जाकर देखा। शीतल रूप=शीतल-शान्त स्वभाव के। धृति=धीरज। दीनता=विनम्रता, दीनभाव। गुन अजब अनूप=सन्तों के सारे गुण [भक्ति प्रिया को-] अद्‌भुत और अनुपम लगे।
6. लक्षण=प्रकृति अथवा स्वभाव। तुम ते मन राजी भयौ=तुमसे [-सन्तों से] मन प्रसन्न [-राजी अनुरक्त] हुआ है। मोसौं करहु मिलाप=मुझ से [मेल-] सम्बन्ध स्थापित करो।
7. भक्ति बिवाही सन्त जन=भक्ति सन्तों की परिणीता हो गई। माया दासी संग=माया नामक दासी भी उसके साथ रहने लगी। जुवती=युवति भक्ति से। रमैं=रमण करते हैं। दासी सौं नहिं रंग=दासी के प्रति किञ्चित् भी [आसक्त-] अनुरक्त नहीं होते।
8. बांधी प्रीति=पूर्ण प्रेम का सम्बन्ध बनाया। दासी कौं आदर नहीं=पत्नी-प्रिया की निष्ठा में दासी-माया को महत्त्व नहीं। सन्तनि की रीति=सन्तों का स्वभाव। अर्थात् एकनिष्ठा अथवा पातिव्रत्य-भावना सन्तों की प्रकृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासी घर कौ काम सब, करती डौलै साथ।
जुवती ऊंचे बंश की, जीमैं ताकै हाथ ।।9।।
दासी आज्ञा मैं रहै, जहं भेजै तहं जाइ।
ताकौ संग करै नहीं, बरतैं सहज सुभाइ ।।10।।
सो वह उत्तम जानिये, जाकै नीति बिचार।
सुन्दर बंदै लोक सब, यह उत्तम ब्यौहार ।।11।।
जो दासी कौं आदरै, जुवती सौं अति नेह।
दोऊ घर मांहीं रहैं, सुनहु बिचार सु येह ।।12।।
दासी कर जीमैं नहीं, बरतें नाना भाइ।
जाति मांहि नहिं काढिये, सब मिलि बैठै आइ ।।13।।
जुवती सौं रस रंग अति, दासी सौं नहिं प्यार।
सुन्दर सो मध्यस्थ है, जाकौ यह व्यवहार ।।14।।

---

9. दासी—सब=घर के अन्य सारे कामों केलिए दासी की स्थिति। करती डोलै= करती-फिरती है। जुवती ऊँचे वश=युवती 'भक्ति' ऊँचे कुल की होने के कारण। जीमैं ताके हाथ= =सन्त उसी के हाथ से भोजन ग्रहण करते हैं। अर्थात् भक्ति-नियम के अनुरूप सन्तों की चर्या चलती है।

10. दासी आज्ञा मैं रहै=वशवर्तिनी होने के कारण दासी 'माया', मालिक: (अ०) 'भक्ति' की आज्ञा में रहती है। संग करै नहीं=वह उसके साथ नहीं रहती। अर्थात् भक्ति, माया को मुँह नहीं लगाती।

11. उत्तम जानिये=उस भक्त-सन्त को सर्वोत्तम मानना चाहिए। जाकै नीति बिचार= जिसके नीति-सिद्धान्त अनुरूप विचार-चर्या हो। बंदै लोक सब=सारा लोक वन्दना करता है। उत्तम ब्यौहार=उत्तम आचरण है।

12. दासी कौं आदरै=अपनी प्रिया भार्या को छोड़कर [परकीया-]दासी को आदर देता है, प्रतिष्ठा देता है। जुवती सौं नेह=युवति भक्ति से भी प्रेम रखता है। दोऊ घर माँहीं रहैं=भार्या भक्ति और दासी माया दोनों ही समानाधिकार से घर में रहती हैं।

13. दासी कर जीमैं नहीं=दासी के हाथ से [-हाथ का] भोजन साधु-जन ग्रहण नहीं करते। अपितु, भक्ति के हाथ का अर्थात् आत्म-तुष्टि केलिए, ज्ञान-वस्तु का भोग करते हैं। 'ज्ञान' आत्मा का भोजन माना गया है। बरतें नाना भाइ=अनेक भावों से प्रेरित होकर आचरण करते हैं। जाति मांहि नहिं काढिये=उसे जाति-मर्यादा की सीमा से बाहर नहीं निकालना चाहिए।

14. रस रंग अति=अत्यधिक रस-रमण। दासी=माया। मध्यस्थ=मध्यम कोटि के सन्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दासी के रंग रच्यौ, मन राषै तिहिं पास।
जुवती सौं हलभल करै, कछु इक राषै आस ॥15॥

दासी कै संग डोलई, मन राष्यौ विलंबाइ।
जुवती सौं कवहुंक मिलै, लष्ट पष्ट करि जाइ ॥16॥

कोउक वासौं मिलि चलै, कोउक राषै शंक।
सुन्दर यह सु कनिष्ट गति, अंक लगाई पंक ॥17॥

जो दासी सौं मिलि गयौ, अंग अंग लपटाइ।
जीमैं लागौ हाथ तिहिं, जुवती निकट न जाइ ॥18॥

सो तौ वृषली पति भयौ, कुलहि लगाई गारि।
जुवती उठि पीहरि गई, वाकौं माथै मारि ॥19॥

जाति मांहि बाहरि कियौ, जब उपजी औलादि।
तासौं कोऊ ना मिलै, जनम गमायौ बादि ॥20॥

---

15. दासी के रंग रच्यौ=दासी माया के साथ रंगरलियाँ करता है और मन भी वहीं आसक्त बनाए रखता है। जुबती सौं हलभल करै=युवति भक्ति से बाहरी सम्बन्ध दिखाता अथवा रखता है। राषै आस=आशा-कामना लगाए रखता है।

16. संग डोलई=साथ-साथ फिरता है। मन राष्यौ बिलंबाइ=मन विलम्बित करके, आसक्त करके रखा है। कवहुंक मिलै=कभी-कभी मिलता है। लष्ट पष्ट करि जाइ=लष्पं पष्टं अर्थात् हलके ढंग से खाना-पूर्ति भर करता है।

17. कोउकराषै शंक=कोई-कोई उससे शंका रखता है। कनिष्ट गति=[निम्न-] अधोगति है। अंक लगाई पंक[मुहा०]=अपनी गोद में ही कीचड़ लगा ली अर्थात् व्यर्थ ही कालिमा [-दोष] पोत ली है।

18. अंग अंग लपटाइ=अंग-अंग लिपटा कर अर्थात् माया में पूरी तरह डूब कर। जीमैं हाथ तिहिं=उसी के हाथ से जीमता है, उसके सहचार से आस्वाद लेता है।

19. वृषली पति भयौ=वह साधु न होकर मायावी धूर्त्त [-लम्पट] पति होकर जीता है। कुलहि-गारि=अपने कुल [-सन्त पंक्ति] को कलंक [-गाली]-कालिमा लगा लेता है। जुवती उठि पीहरि गई=ऐसे सन्त-पति से खिन्न होकर, युवति भक्ति, विरोध स्वरूप में उसे छोड़कर पीहर [-पिता, परमात्मा के पास] चली जाती है। अर्थात् ऐसे विषयी साधु-भक्त के पास भक्ति नहीं ठहरती, वहाँ तो माया [-छल-कपट] का दिखावा भर रह जाता है। माथे मारि=धक्का मारकर, मुँह पर मारकर।

20. जाति बाहरि कियौ=पतित [-पापी] कर्म करने के कारण उसे पंक्ति से बाहर कर दिया जाता है। अर्थात् वह भक्त या सन्त कोटि का नहीं रहता। औलादि=सन्तान। जनम गमायौ बादि=जन्म [-जीवन] व्यर्थ में गँवा देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल मरजादा सब तजी, तजी लोक की लाज।
सुन्दर ता की नीच गति, कीयौ बहुत अकाज ।।21।।
ऐसौ भेद बिचारि करि, भक्ति मांहि मन देउ।
माया सौं मिलि जाहु जिनि, इहै सीष सुनि लेउ ।।22।।
सत्व रजो तम तीनि गुन, तिनि कौ यह व्यौहार।
उत्तम मध्यम अधम अध, कहे सु चारि प्रकार ।।23।।
तीन भक्ति चौथौ जगत, फेर सार कछु नांहि।
तीन भजैं भगवंत कौं, चौथौ भव जल मांहि ।।24।।
ज्ञानी इन चार्यौं परै, ताके चिन्ह न कोइ।
ना सो भक्त न जगत है, बंध मुक्त नहिं सोइ ।।25।।
ना वहु रक्त विरक्त है, ना वहु भीत अभीत।
तुरिया मैं बरतै सदा, निश्चय तुरियातीत ।।26।।

---

21. कुल मरजादा=वंश-मर्यादा, सन्तों की श्रेष्ठ परम्परा। तजी=त्याग दी। लोक की लाज=लोक मर्यादा, लोक लाज। ता की=उसकी नीच गति=उसकी अधोगामी [-निकृष्ट]-गति[-चर्या, दशा] हो जाती है। अकाज=दोष पूर्ण कर्म, हानिकारक कार्य।

22. भक्ति मांहिं मन देउ=भक्ति [-युवति] में मन लगाओ। जिनि=नहीं, मत। इहै सीष=यही शिक्षा है।

23. सत्व रजो तम तीनि गुन=उक्त उत्तम-मध्यम-अधम ये तीन प्रकार की भक्ति तीन गुणों [सत्त्व-रज-तम] की अतिशयता-न्यूनता के आधार पर निर्धारित हैं। चारि प्रकार=सत्त्व-रज-तम के आधार पर तो उत्तम-मध्यम-निम्न [-अधम] ये तीन प्रकार हुए। चौथा प्रकार अधमाधम अर्थात् निकृष्ट कोटि की भक्ति है, जो लम्पट [-धूर्त्त] के द्वारा की जाती है।

24. चौथौ जगत=तीन प्रकार की भक्ति के अतिरिक्त चौथी भक्ति लम्पट संसारी की है। तीन भजें भगवंत कौं=तीन प्रकार की भक्ति का अवलम्ब करने वाले किसी-न-किसी प्रकार से भगवान् के प्रति भावना को अर्पित किए रहते हैं। चौथौ=चौथा प्रकार भवजल [-संसार-सागर] में डुबोने वाला है।

25. ज्ञानी इन चार्यौं परै=ज्ञानी साधक की भक्ति उक्त चारों प्रकार की भक्ति-साधना से ऊपर [-भिन्न प्रकार] की है। चिन्ह=चिह्न, लक्षण। ना सो भक्त न जगत=ज्ञानी की दशा भक्त और संसारी दोनों से ही भिन्न है। बंध मुक्त नहिं=वह बन्धन एवं मोक्ष दोनों से परे रहता है।

26. ना वहु रक्त विरक्त है=वह आसक्त और विरक्त इन दोनों ही विशेषणों की सीमा में नहीं आता। भीत अभीत ना=भयभीत और निर्भय ये दोनों लक्षण उसे नहीं समेट पाते। तुरिया मैं बरतै=तुरिया अवस्था में स्थित रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कोउ पूछै फेरि करि, कैसैं तुरियातीत।
क्षुधा तृषा ब्यापै सदा, लगै घाम अरु शीत ।।27।।
याकौ उत्तर अब कहौं, सुनि लीजै मन लाइ।
शीत उष्ण वाकौं नहीं, ना बहु पिवै न षाइ ।।28।।
देह प्राण कौ धर्म यह, शीत उष्ण क्षुत् प्यास।
ज्ञानी सदा अलिप्त है, ज्यौं अलिप्त आकास ।।29।।
भक्ति भक्त माया जगत, ज्ञानी सब कौ सीस।
पंच प्रभाव वषानिया, सुन्दर दोहा तीस ।।30।।

।। समाप्तोऽयं पंच प्रभावग्रन्थः ।।9।।

---

27. तुरियातीत = तुरीय चतुर्थ अवस्था है। 'तुरियातीत' दशा तुरिया अवस्था से भी परे की अवस्था है। ब्यापै सदा = सदा व्याप्त रहती है। घाम-शीत = गर्मी-सर्दी।
28. याकौ = इसका। मन लाइ = मन लगा कर। ना बहु पिवै न षाइ = न तो वह पीता है और न खाता है।
29. देह प्राण कौ धर्म···प्यास = गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास ये शरीर-प्राण के अनुभव में आने वाले क्रिया-धर्म हैं। ज्ञानी सदा अलिप्त है = ज्ञानी उक्त सुख-दुखात्मक अर्थात् द्वन्द्वात्मक क्रिया-धर्मों से, अनासक्त रहने के कारण, अलिप्त रहता है। गीता में प्रमाण है—'गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते' [-3/28] तथा 'ज्ञानी त्वामैव मे मतम् [-7/18]।
30. भक्ति भक्त = युवति भक्ति तो भक्त-सन्त केलिए है। माया जगत = माया माया-लिप्त संसारी केलिए। ज्ञानी सब कौ सीस = माया विकारों से परे होने के कारण ज्ञानी की दशा सर्वोपरि है। पंच प्रभाव = भक्ति-माया और ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य की जैसी गुण-वृत्ति-दशा होती है वह—उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम कोटि है। किन्तु, ज्ञानी की **'तुरियातीत'** यह पांचवीं दशा है। यही पाँच प्रकार या पंच प्रभाव हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥10॥ अथ गुरु सम्प्रदाय ॥

प्रवेशार्थ : दोहा-चौपाई वाले इस लघु ग्रन्थ में **'दादू सम्प्रदाय'** अथवा **'ब्रह्म सम्प्रदाय'** का भाववादी आख्यान है। इन 53 छन्दों में 'प्रतिलोम' क्रम से, स्वयं को सम्मिलित करते हुए, सुन्दरदास ने दादू जी से 'द्यौसा' स्थान पर शिष्यत्व ग्रहण करने से लेकर आदि स्रोत परब्रह्म तक गुरु-परम्परा के 38 नाम-व्यक्ति गिनाए हैं, जो 'ब्रह्म सम्प्रदाय' के [उद्धारक-] प्रतिपादक स्तम्भ कहे जा सकते हैं। सम्प्रदाय-परम्परा-प्रतिपादन में, सुन्दरदास ने प्रारम्भ के कुछ कल्पित नाम भी दिए हैं। शेष नाम आख्यान-इतिहास के गुरु-पुरुष हैं। हाँ, प्रस्तुत शिष्य-परम्परा की प्रणाली, सुन्दरदास से पूर्व अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती। इसमें उल्लिखित नाम ज्ञान-पोथियों के-से लगते हैं। अतः इनको न तो कल्पित कहा जा सकता है, न मिथ्या और न ही ऐतिहासिक। कारण यह कि दादूजी किसी सम्प्रदाय विशेष के शिष्य नहीं रहे। उन्हें तो स्वयं वृद्धानन्द [ब्रह्म = ईश्वर] ने ज्ञान-प्रदान किया था। अतः ईश्वर ही इस परम्परा का आदि स्रोत है। वह ज्ञान स्वरूप, चिदानन्दमय, चैतन्य घन है। उसके अतिरिक्त, अन्य नाम परमात्मा अथवा उसके ज्ञान के पर्याय कहे जा सकते हैं।

दादू पन्थ केलिए **'ब्रह्म सम्प्रदाय'** यह नाम राघवदास द्वारा अपने 'भक्तमाल' में भी दिया गया है। पर, राघवदास तो सुन्दरदास के पश्चात्वर्ती हैं। अतः बाद के अन्य रचनाकार-समीक्षकों ने जो यह नाम दिया है, वह सुन्दरदास जी द्वारा ही दिया हुआ लगता है। उदाहरण केलिए साधु मंगलराम ने, सुन्दर कृत **'गुरु सम्प्रदाय'** प्रणाली क्रम का ही अनुकरण किया है। परन्तु, उन्होंने दोहा-चौपाई छन्द न अपना कर 'अरिल' छन्द का प्रयोग किया है। दादू सम्बन्धी अन्य लीलाओं में भी 'दादू पन्थ' के अनुयायिओं का उल्लेख मिलता है। जैसे—जनगोपाल कृत **'दादू जन्म लीला परची'**, चतुरदास कृत **'थांभा पद्धति'**, राघवदास कृत **'भक्तमाल'**, हरिदास कृत **'दादूरामोदय'** [-संस्कृत में], तुलसी कृत **'दादू विलास'**, वासुदेव कृत **'दादू चरित चन्द्रिका'** आदि। परन्तु, किसी में भी कुशलानन्द से लेकर पूर्णानन्द तक के 36 नामों का क्रम नहीं है। सुन्दरदास ने अन्यत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुरु कृपा अष्टक' में भी 'परब्रह्म सम्प्रदाय' का उल्लेख किया है। 'दादू सम्प्रदाय' के अनुयायियों की यह प्रणाली संभव है सुन्दरदास ने किसी जिज्ञासु अथवा प्रतिपक्षी को समझाने या बताने केलिए तैयार की हो। वही प्रणाली बाद में सम्प्रदाय परम्परानुयायियों केलिए रूढ़ हो गई है। मूल पाठ इसप्रकार है :

दोहा : प्रथमहिं निज गुरुदेव कौं, बन्दन बारम्बार।
उक्ति युक्ति तब आंनि कै, करिये ग्रन्थ उचार ॥1॥

चौपई : नमस्कार गुरुदेव हि करिये। जिनकी कृपा हुतें भव तरिये।
गुरु बिन मारग कोउ न पावै। गुरु बिन संशय कौंन मिटावै ॥2॥
सम्प्रदाय अब सुनहु हमारी। तुम पूछी हम कहैं विचारी।
सब को गुरु परमातम एका। जिनि यह कीयौ चित्र अनेका ॥3॥
सब कौ ईश सकल कौ स्वामी। घट घट व्यापक अंतरजामी।
सो जब घट मंहि लहरि उठावै। तब गुरुशिष्यहिं आनि मिलावै ॥4॥
कै शिष्यहिं गुरु पैं लै जाई। प्रेरक उहै और नहिं भाई।
अब प्रतिलोमहिं कहौं प्रनाली। जैसी विधि यह पद्धति चाली ॥5॥
प्रथमहिं कहौं आपुनी बाता। मोहि मिलायौ प्रेरि बिधाता।
दादूजी जब द्यौसह आये। बालपनें हम दरसन पाये ॥6॥
तिनि के चरननि नायौ माथा। उनि दीयौ मेरैं सिर हाथा।
स्वामी दादू गुरु है मेरौ। सुन्दरदास शिष्य तिनि केरौ ॥7॥

चूर्णिका : 1. बन्दन=वन्दना-प्रणाम। **'मंगलाचरण'** की परम्परित विधि का निर्वाह। उक्ति युक्ति=युक्तिपूर्वक उक्ति के द्वारा। उचार=उच्चार, उल्लेख।

2. कृपा हुतें=कृपा से। भव तरिये=भव सागर से पार होइए। मारग=पन्थ, रास्ता, उपाय।

3 सम्प्रदाय सुनहु हमारी=हमारे सम्प्रदाय की प्रणाली को सुनो। बिचारी=विचार पूर्वक। सब को गुरु परमातम एका=एक परमात्मा सभी का गुरु है। कीयौ चित्र अनेका=अनेक विधि यह चित्र-विचित्र संसार रचा है।

4-5. ईश=ईश्वर, स्वामी। घट घट व्यापक=घट-घट में व्याप्त है। अंतरजामी=अन्तर्यामी, हृदयों में निवास करने वाला। सो=वह परमात्मा। लहरि उठावै=तरंग उत्पन्न करता है, उमंग पैदा करता है। आनि मिलावै=लाकर [-बुलाकर] मिला देता है। गुरु पैं लै जाई=गुरु के निकट ले जाता है। प्रेरक उहै=वही प्रेरणा देता है। प्रतिलोम प्रनाली=उलटे क्रम की प्रणाली, इधर से उधर जाने का क्रम।

6-7. आपुनी बाता=प्रतिलोम क्रम में रचनाकार स्वयं अपने को अन्तिम बिन्दु मानकर, अपनी बात कहता है। मिलायौ प्रेरि बिधाता=विधाता ने प्रेरित करके मुझे गुरु दादू से मिलाया। द्यौसह आये=[रचनाकार के बचपन में] दादूजी जब द्यौसा नगर में पधारे थे। बालपनें दरसन पाये=बालकपन में ही [दादूजी के] दर्शन प्राप्त किये थे। नायौ माथा=मस्तक नवाया था। सिर हाथा=सिर पर आशीष का हाथ रक्खा था। स्वामी दादू गुरु है मेरौ=दादू जी मेरे गुरु हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दादूजी कौ गुरु अब सुनिये । बहुत भांति तिनिके गुन गुनिये ।
दादूजी कौं दरसन दीन्हौं । अकस्मात काहू नहिं चीन्हौं ।।8।।
वृद्धानन्द नाम है जाकौ । ठौर ठिकानौ कहूं न ताकौ ।
सहज रूप बिचरै भू मांही । इच्छा परै तहां सो जांहीं ।।9।।
वृद्धानन्द दया तब कीनीं । काहू पै गति जाइ न चीनीं ।
दादूजी तब निकट बुलायौ । मुदित होइ करि कंठ लगायौ ।।10।।
मस्तक हाथ धर्‌यौ है जब हीं । दिय दृष्टि उघरी है तबहीं ।
यौं करि कृपा बडौ दत दीनौ । बृद्धानन्द पयानौ कीनौ ।।11।।

दोहा : तिनि कौ कुशलानन्द गुरु, कहिये परम प्रसिद्धि ।
दशौं दिशा जाकै कुशल, पाई पूरण निद्धि ।।12।।

चौपई : बीरानन्द तिन्है गुरु कीन्हा । जिनि इन्द्रिय मन बसि कर लीन्हा ।
काम क्रोध मद मत्सर माया । सूरा तन करि मारि गिराया ।।13।।
धीरानन्द भयौ गुरु तिनकौ । धीरज सहित ध्यान है जिनकौ ।
धीरज सहित निरंजन ध्यायौ । धन्य धन्य सब काहू गायौ ।।14।।
तिनकौ गुरु अब कहौं सुनाई । लब्ध्यानन्द सकल सुखदाई ।
जाही कौं उपदेश बतायौ । तिनि ततकाल परम पद पायौ ।।15।।

8-9. अकस्मात=अचानक, सहसा। दादू जी कौ गुरु वृद्धानन्द नाम=दादू जी के गुरु का नाम वृद्धानन्द [-बुड्ढन] है । ठौर ठिकानौ कहूं न=उनका ठौर-ठिकाना, अता-पता कहीं नहीं मिलता। सहज रूप बिचरै=सहज रूप में वे मुक्त भाव से विचरते थे । भू मांहीं=पृथ्वी पर । इच्छा परै=इच्छानुसार ।

10-11. दया कीनीं=कृपा की, करुणा की । गति=उनकी दशा । चीनी=चीन्ही, पहिचानी । मुदित होइ=प्रसन्न होकर । कंठ लगायौ=हृदय से लगाया । मस्तक हाथ धर्‌यौ=शीश पर आशीष का हाथ रखा । दिब्य दृष्टि उघरी=प्रज्ञा चक्षु उघड़ जाने से दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। बड़ो दत दीनौ=बहुत बड़ा दान अर्थात् अमोघ दान दिया । पयानौ कीनौ=प्रस्थान किया ।

12. निद्धि=निधि, भण्डार ।

13. बीरानन्द तिन्है गुरु कीन्हा=वीरानन्द नामक [शायद कल्पित] सन्त ने उन वृद्धानन्द को गुरु बनाया अथवा उन वृद्धानन्द ने वीरानन्द को गुरु बनाया था । सूरातन करि=साधना की शूरवीता करके काम-क्रोधादि शत्रुओं को परास्त कर दिया था। अर्थात् साधना-विकारों को वशीभूत कर लिया था।

14. धीरानन्द भयौ गुरु=धीरानन्द वीरानन्द के गुरु हुए। धीरज सहित=धैर्य भावना से । निरंजन ध्यायौ=निराकार-निरंजन का ध्यान किया ।

15. लब्ध्यानंद तिनकौ गुरु=धीरानन्द के गुरु लब्धानन्द हुए । जाही कौं=जिस-किसी को भी । परमपद=परम प्राप्तव्य, परम लक्ष्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिन कौ गुरु कहिये विख्याता। समतानन्द परम सुखदाता।
कीरी कुंजर सम करि जानैं। नीच ऊंच कहुं भेद न आनैं ॥16॥
तिनि हूं क्षमानन्द गुरु पायौ। क्षमावन्त सब कै मन भायौ।
सहनशील ऐसौ नहिं कोई। काहू हुते क्षुभित नहिं कोई ॥17॥
तिन कौ गुरु है निर्गत रोषा। तुष्टानन्द लिये संतोषा।
तृष्णा सकल षोदि जिन गाडी। मुक्ति आदि सब इच्छा छाडी ॥18॥
तिन के गुरु समान को नाहीं। सत्यानन्द प्रगट जग मांही।
मुख तें सदा सत्य ही बोलैं। नहिं तो वदन कपाट न षोलैं ॥19॥
तिन के गुरु अब कहौं सुनाई। गिरानन्द गुरु मिलियौ आई।
जाकी गिरा सबनि कौं भावैं। गिरा मांहि गोविन्द बतावैं ॥20॥
तिन कौ गुरु अब कहौं विचारी। विद्यानन्द चतुर अति भारी।
एक ब्रह्म विद्या उर जाकै। और अविद्या रही न ताकै ॥21॥
तिन कौ गुरु है परम प्रवीना। नेमानन्द नेम यह लीना।
नारायण बिन और न भावै। याही नेम निरंजन ध्यावै ॥22॥

---

16. विख्याता=प्रसिद्ध। समतानन्द=लब्धानन्द के गुरु समतानन्द बताए हैं। कीरी कुंजर सम करि जानैं=चींटी से हाथी तक सभी जीवों को समता भाव से देखने-व्यवहार करने वाले। नीच ऊंच भेद न आनैं=उनकी दृष्टि में ऊँच-नीच का भेद नहीं रहता था।

17. क्षमानन्द गुरु=समतानन्द के गुरु क्षमतानन्द हुए। क्षमावन्त=क्षमावान्। सहनशील=सहिष्णु। काहू हुते=किसी केलिए भी। क्षुभित=क्षोभपूर्ण, क्रोधित।

18. निर्गत रोषा=क्रोध जिसने निकाल दिया है। तुष्टानन्द=क्षमानन्द के गुरु तुष्टानन्द हुए। तृष्णा=लोभ-वासना। षोदी गाडी=खोद कर ज़मीन के अन्दर दबा दी अर्थात् निर्मूल कर दिया। सब इच्छा छाडी=सारी इच्छाओं को त्याग दिया।

19. सत्यानन्द=तुष्टानन्द के गुरु सत्यानन्द हुए हैं। वदन कपाट न षोलैं=मुखद्वार नहीं खोलते, सत्य के अतिरिक्त कोई शब्द उच्चरित नहीं करते।

20. गिरानन्द=सत्यानन्द के गुरु गिरानन्द हुए। गिरा=वाणी, वचन। भावै=अच्छी लगती है। गिरा मांहि गोविन्द=वाणी में ही गोविन्द का वास है, ऐसा उपदेश देते थे।

21. विद्यानन्द=गिरानन्द के गुरु विद्यानन्द हुए। विद्या=ज्ञान। उर=हृदय। अविद्या=अज्ञान।

22. नेमानन्द=विद्यानन्द के गुरु नेमानन्द हुए। नेम=नियम, व्रत, संकल्प। नारायण बिन और न भावै=नारायण-भाव के अतिरिक्त उन्हें और कोई भाव नहीं सुहाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमानन्द भयौ गुरु ताकौ। प्रेम भक्ति करि दृढ़ मन जाकौ।
आठहू पहर मग्न ही रहै। देहादिक की सुधि नहीं लहै ॥23॥

दोहा : तिन कौ गलितानन्द गुरु, गलित रहै हरिनाम।
गलित भयौ गोविन्द सौं, निशि दिन आठौं जाम ॥24॥

चौपई : योगानन्द तासु गुरु कहिये। जोग युगति मैं निश दिन रहिये।
आतम परमातम सौं जोरै। याही योग जगति सौं तोरै ॥25॥
तिन कौ गुरु कबहूं न वियोगी। भोगानन्द ब्रह्म रस भोगी।
इन्द्रिय भोग मृषा करि जानै। इन्द्रिनि परैं भोग मन मानै ॥26॥
तिन कौ गुरु है ज्ञानानन्दा। सोलह कला प्रगट ज्यौं चन्दा।
सुधा श्रवै अरु शीतल रूपा। ताकौ दरसन परम अनूपा ॥27॥
तिनहूं कौ गुरु प्रकट बतायौ। नाम निष्कलानन्द सुनायौ।
सकल कला जिनि दूर निवारी। ज्ञान कला उर अन्तर धारी ॥28॥
तिन कौ गुरु है तत्व स्वरूपं। नाम पुष्पकलानन्द अनूपं।
पुष्कल प्रगट करी जिनि बांनी। पुष्कल कीरति सब जग जांनी ॥29॥

---

23. प्रेमानन्द=नेमानन्द के गुरु प्रेमानन्द हुए। दृढ मन जाकौ=निश्चल-अटल है मन जिसका। आठहू पहर=आठों प्रहर, हर समय। देहादिक=शरीरादि की। नहीं लहै=नहीं रखता था।

24. गलितानन्द=प्रेमानन्द के गुरु गलितानन्द हुए। गलित रहै=लयलीन रहता है। आठौं जाम=अष्ट याम, हर समय।

25. योगानन्द=गलितानंद के गुरु योगानन्द हुए। जोग युगति=योग-युक्ति में। जोरै=जोड़ता है, योग सम्बन्ध बनाता है। जगति सौं तोरै=जगत् से तोड़ता है, विच्छेद करता है।

26. वियोगी=विरही। भोगानन्द=योगानन्द के गुरु भोगानन्द हुए। ब्रह्म रस भोगी=ब्रह्म रस का आनन्द लेने वाले। मृषा करि जानै=झूठ [-मिथ्या] समझता है। इन्द्रिनि परैं भोग=इन्द्रियों के परे का आस्वाद।

27. ज्ञानानन्द=भोगानन्द के गुरु ज्ञानानन्द हुए। सुधा श्रवै=[वाणी में-]अमृत वर्षा करने वाले। शीतल रूपा=सुखद दर्शन। दरसन अनूपा=अनुपम दर्शन।

28. निष्कलानन्द=ज्ञानानन्द के गुरु निष्कलानन्द हुए। निवारी=निवारण की। कला [-परिवर्तनशीलता] का अंश, भाग, सोलहवाँ हिस्सा। ज्ञान कला=ज्ञान वृत्ति का अंश। धारी=धारण की।

29. पुष्कलानन्द=निष्कलानन्द के गुरु पुष्कलानन्द हुए। पुष्कल=प्रभूत, असीम। कीरति=यश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिन कौ गुरु सब रहित बिकारा। अखिलानन्द अनन्त अपारा।
अखिल विश्व मैं महिमा ऐसी। बरनी जाइ न काहू कैसी ॥30॥
तिन कौ गुरु या जग मैं नांमी। बुद्ध्यानन्द बुद्धि कौ स्वांमी।
सब के अन्तर्गत की जानैं। वा तैं कछु रह्यौ नहिं छानैं ॥31॥
तिन के गुरु के और न झौरा। रमतानन्द रमैं सब ठौरा।
तीनि लोक में अटक न कोई। तासौं मिलै सु तैसा होई ॥32॥
तिन के गुरु कौ पार न लहिये। अब्ध्यानन्द महद् गुरु कहिये।
पूरन ज्ञान भर्‌यौ जल जामैं। मुक्ताफल उपजै है तामैं ॥33॥
तिन के गुरु कीयौ भ्रम नाशा। सहजानन्द द्वन्द्व नहिं पासा।
सहजै ब्रह्म मांहि थिरि होई। कष्ट कलेश कियौ नहिं कोई ॥34॥
तिन कौ गुरु कहिये निःकामा। निजानन्द है ताकौ नामा।
निज आनंद मांहि सुख पायौ। तुच्छानन्द दृष्टि नहिं आयौ ॥35॥

दोहा : तिन कौ बृहदानन्द गुरु, बृहद् ब्रह्म मंहि वास।
वोर छोर ताकौ नहीं, जैसैं बृहदाकाश ॥36॥

---

30. रहित विकार=विकार रहित, प्रकृतिस्थ। अखिलानन्द=पुष्कलानन्द के गुरु अखिलानन्द हुए। अखिल विश्व=सम्पूर्ण विश्व। बरनी जाइ न=वर्णन नहीं की जा सकती।

31. बुद्ध्यानन्द=अखिलानन्द के गुरु बुद्ध्यानन्द हुए। अन्तर्गत की=हृदय की। वा तैं=उससे। छानैं=छिपा हुआ, गुप्त।

32. और न झौरा=ओर न छोर, असीम अथवा कोई और [प्रतिद्वन्द्वी-] नहीं। **टिप्पणी :** यहाँ 'झौरा' पाठ न होकर 'छौरा' [-छोरा] पाठ होगा। रमतानन्द= बुद्ध्यानन्द के गुरु रमतानन्द हुए। अटक न कोई=कोई रुकावट-अवरोध नहीं। तैसा होई=वैसा [-उस जैसा] होने पर ही।

33. पार न लहिये=गहराई [-विस्तार] की सीमा नहीं मापी जा सकती। अब्ध्यानन्द= रमतानन्द के गुरु अब्ध्यानन्द हुए। मुक्ताफल=मोती, मुक्ति रूप फल। तामैं= उसमें।

34. सहजानन्द=अब्ध्यानन्द के गुरु सहजानन्द हुए। द्वन्द्व नहिं पासा=द्वैत भाव जिसके निकट नहीं है। कष्ट कलेश=क्लेशकारक कष्ट।

35. निःकामा=निष्काम। निजानन्द=सहजानन्द के गुरु निजानन्द हुए। तुच्छानन्द= तुच्छ [-संकीर्ण, इन्द्रिय भोग-] सुख।

36. बृहदानन्द=निजानन्द के गुरु बृहदानन्द हुए। बृहद्=व्यापक। वोर छोर नहीं= आर-पार, या किनारा [-सीमा] जिसकी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौपई : तिन कौ गुरु आतम संलग्ना। शुद्धानन्द शुद्ध ज्यौं गगना।
हृदय शुद्ध बानी अति शुद्धा। जो परसै सो होइ बिशुद्धा ॥37॥
तिन कौ गुरु है अति गम्भीरा। अमितानन्द अमोलिक हीरा।
जाकी मति कछु कही न जाई। बहुत भांति करि ग्रन्थनि गाई ॥38॥
तिन कौ गुरु अब कहि समुझाऊं। नित्यानन्द जास कौ नाऊं।
नित्य मुक्त निर्मल मति जाकी। कोऊ लषि न सकै गति ताकी ॥39॥
तिन कौ सदानन्द गुरु ऐसौ। सदा एकरस कहूं न भैसौ।
एक सदा सबहिन महिं जानैं। द्वैत भाव कबहूं नहिं आनैं ॥40॥
तिनहूं चिदानन्द गुरु कीन्हौ। चेतन ब्रह्म आपु जिनि चीन्हौ।
जाकी सक्ति जगत सब होई। चेतन करि बरतावै सोई ॥41॥
तिनि गुरु कियौ अद्‌भुतानन्दा। अद्‌भुत आशय निकट न द्वन्द्वा।
अद्‌भुत गति मति अद्‌भुत बानी। अद्‌भुत लीला किनहुं न जांनी ॥42॥
तिन कौ गुरु है सुख कौ सागर। नाम अक्षयानन्द उजागर।
अक्षय ज्ञान सुनायौ जाकौ। अक्षय रूप कियौ ता ताकौ ॥43॥
तिन कौ गुरु सब ऊपर छाजै। नाम अच्युतानन्द विराजै।
अच्युत सदा रहै सुनि भाई। च्युत सब और जगत ह्वै जाई ॥44॥

---

37. आतम संलग्ना=आत्म-सुख में संलग्न। शुद्धानन्द=बृहदानन्द के गुरु शुद्धानन्द हुए। गगना=आकाश। वानी=वाणी। परसै=स्पर्श कर लेता है।
38. अमितानन्द=शुद्धानन्द के गुरु अमितानन्द हुए। अमोलिक हीरे=हीरा की भाँति अमूल्य। मति=बुद्धि। ग्रन्थनि गाई=ग्रन्थों में वर्णन है।
39. नित्यानन्द=अमितानन्द के गुरु नित्यानन्द हुए। जास=जिसका। नाऊं=नाम। लषि न सकै=देख नहीं सकता। गति=दशा।
40. सदानन्द=नित्यानन्द के गुरु सदानन्द हुए। एकरस=एकरूप। सबहिन महिं=सब में। द्वैत भाव=द्वितीया भाव।
41. चिदानन्द=सदानन्द के गुरु चिदानन्द हुए। चीन्हौ=पहिचाना, परिचय प्राप्त किया। बरतावै सोई=वही व्यवहार कराता है।
42. अद्‌भुतानन्द=चिदानन्द के गुरु अद्‌भुतानन्द हुए। अद्‌भुत आशय=उनका मर्म-मन्तव्य विलक्षण था। द्वन्द्वा=द्वन्द्व, क्लेश। अद्‌भुत गति=उनकी चर्या में अद्‌भुत तत्त्व विद्यमान रहता था।
43. अक्षयानन्द=अद्‌भुतानन्द के गुरु अक्षयानन्द हुए। उजागर=प्रसिद्ध, प्रत्यक्ष। अक्षय ज्ञान=अखण्ड ज्ञान।
44. छाजै=विराजमान है, शोभायमान है। अच्युतानन्द=अक्षयानन्द के गुरु अच्युतानन्द हुए। अच्युत=अक्षय, अविनाशी। च्युत=क्षीण, क्षयशील। ह्वै जाई=हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तिन कौ गुरु सबहिंन तें न्यारौ। नाम पूरनानन्द पियारौ।
सब बिधि पूरन परम निधाना। बाहरि भीतरि पूरन ज्ञाना ॥45॥
तिन कौ गुरु सब कै सिरमौरा। ऐसौ कोऊ सुन्यौ न औरा।
ब्रह्मानन्द नाम तिहि कहिये। तिन कैं मिलें ब्रह्म ह्वै रहिये ॥46॥
यह पद्धति प्रतिलोम सुनाई। जहं तें भई तहां पहुंचाई।
संप्रदाय यौं चली हमारी। आदि अन्त तुम लेहु बिचारी ॥47॥

दोहा : परम्परा परब्रह्म तें, आयौ चलि उपदेश।
सुन्दर गुरु तें पाइये, गुरु बिन लहै न लेश ॥48॥
सम्प्रदाय इहिं विधि चली, प्रगट करी जगदीश।
सुन्दर सिर तें नख गनहिं, नख तें गनिये शीश ॥49॥

---

45. न्यारौ=अलौकिक, अनोखा। पूरनानन्द=अच्युतानन्द के गुरु पूर्णानन्द हुए। पियारौ=प्रिय। परम निधाना=परम भण्डार। पूरन ज्ञाना=पूर्ण ज्ञान।

46-47. सिरमौरा=शिरोमणि, सर्वोपरि। औरा=अन्य। ब्रह्मानन्द=पूरनानन्द के गुरु ब्रह्मानन्द हुए। ब्रह्म ह्वै रहिये=ब्रह्म ही होकर रहिए। पद्धति प्रतिलोम= विपरीत क्रम से, उलटे क्रम से, नीचे से ऊपर की ओर जानेवाली पद्धति। सम्प्रदाय यौं चली हमारी=हमारा सम्प्रदाय [-प्रणाली] इसी क्रम से प्रवर्तित हुआ है। **टिप्पणी** : यहाँ 'चली' क्रिया स्त्रीलिंग है, जो पुलिंग सम्प्रदाय के साथ प्रयुक्त होकर खटकती है। 'गुरु' सम्प्रदाय की प्रणाली [-पद्धति] धुर ब्रह्म तक पहुँचा देना, वह भी कुल 36 गुरुओं के कन्धों पर रखकर, उचित नहीं लगता। जबकि, इनमें वृद्धानन्द से दादूदयाल और दादूदयाल से सुन्दरदास, ये तीन ही ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इस प्रतिलोम प्रणाली में सुन्दरदास ने अपने को परब्रह्म [-गुरु] से जोड़ कर प्रस्तुत किया है। अतः 'अनुलोम' पद्धति से यही प्रणाली ब्रह्म से चलकर सुन्दरदास तक मानी जा सकती है।

48. परम्परा परब्रह्म तें='गुरु सम्प्रदाय' की यह परम्परा परब्रह्म से निःसृत होकर अग्रसर हुई है। आयौ चलि उपदेश=वहीं से यह 'उपदेश' चलता हुआ यहाँ तक आया है। लहै न लेश=किञ्चित् भी प्राप्त नहीं कर पाता।

49. सम्प्रदाय···प्रगट करी जगदीश=गुरु सम्प्रदाय को स्वयं परमेश्वर ने प्रकट किया है, यहाँ यही विश्वास अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ भी 'करी' क्रिया 'चली' की भाँति, स्त्रीलिंग है, जो प्रयोग में खटकती है। सिर तें नख-नख तें शीश=अनुलोम क्रम शीश से [-सिर से, आदि से] नख की ओर तथा प्रतिलोम क्रम में नख से [-इस ओर से] शीश की ओर [ऊपर की ओर, आदि किनारे की ओर] गणना की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैरी पैरी उतरिये, पैरी ही चढि जाइ।
सुन्दर यौं अनुलोम है, अरु प्रतिलोम कहाइ ॥50॥
गनैं एक तें सौ लगैं, सौ तें गनिये एक।
कहिबे ही कौ फेरि है, सुन्दर समझि बिबेक ॥51॥
सुन्दर पृथ्वी आदि दे, गनैं व्योंम लौं कोइ।
व्योंम आदि दै जो गनैं, पृथ्वी आवै सोई ॥52॥
संप्रदाय यह ग्रन्थ है, ग्रन्थित गुरु कौ ज्ञान।
सुन्दर गुरु तें पाइये, गुरु बिन लहै न आन ॥53॥

॥ समाप्तोऽयं गुरु सम्प्रदाय ग्रन्थः ॥10॥

---

50. पैरी पैरी उतरिये-चढि जाइ=धीरे-धीरे, शनैः-शनैः पार उतरिए अथवा सीढ़ी-दर-सीढ़ी ही उतरते हैं। अनुलोम क्रम एवं प्रतिलोम क्रम से, उतरा-चढ़ा जाता है।
51. गनै एक तें··गनिये एक=एक से सौ तक तथा सौ से एक तक गणना करना, कहने भर केलिए अलग-अलग है। विवेकपूर्वक देखें तो यह 'एक' की संख्या सर्वत्र है।
52. पृथ्वी आदि-व्योंम लौं=पृथ्वी से आकाश तक अनुलोम-प्रतिलोम क्रम ही है।
53. पन्थ है=गुरु सम्प्रदाय ही गुरु-पन्थ है। ग्रन्थित=ग्रथित, गुँथा हुआ। गुरु तें पाइये=ज्ञान गुरु से ही मिलता है। लहै न आन=ज्ञान, गुरु के बिना और किसी से प्राप्त नहीं हो सकता। अर्थात् शिष्य को गुरु से ही 'नित्य ज्ञान' प्राप्त होता है। यही 'सम्प्रदाय' [=सम्यक् प्रदान]-ग्रन्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ११ ॥ अथ गुन उत्पत्ति नीसांनी ॥

प्रवेशार्थ : एक दोहा और बीस 'नीसांनी' छन्दों की यह रचना, त्रिगुणात्मक सृष्टि का प्रसार और त्रिगुणातीत चैतन्य की व्यापकता एवं उसकी सत्ता का सन्त-प्रभाव की दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत करती है। सन्त कवि सुन्दरदास का कहना है कि 'जड़' में भी सर्वत्र चेतन सत्ता व्याप्त है—'चेतन शक्ति जहां तहां घट घट नहिं छानीं'। प्रस्तुत अभिव्यक्ति में धरा-प्रकृति की व्यापक स्थिति और पौराणिक विश्वास के मार्मिक विम्ब अपने आप में प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

दोहा : मन उमग्यौ कछु कहन कौं, हृदय बढ्यौ आनन्द।
सुन्दर बहुत प्रकार करि, बन्दत गुरु गोविन्द ॥1॥

निसांनी : गुरु गोविन्द प्रसाद तें प्रकटी मुख बांनी।
जैसौ बुद्धि प्रकाश है बरनौं नीसांनी ॥2॥
प्रथम निरंजन आपुही मन मैं यहु आंनी।
पंच तत्व गुन तीन तें सब सृष्टि उपांनी ॥3॥
व्यौम वायु पावक किये जल भूमि मिलांनी।
राजस सात्विक तामसा तीनौं त्रिबिधांनी ॥4॥

चूर्णिका : नीसांनी=श्लेष—1. छन्द विशेष, 2. लक्षण, पहिचान, विशेष परिचय।
टिप्पणी : 'नीसांनी' छन्द के प्रत्येक चरण में 23 मात्राएँ होती हैं और 13, 10 पर यति रहती है। अन्त में दो गुरु [ऽऽ] रहते हैं।

1. उमग्यौ=उमंगित हुआ। बढ्यौ=वृद्धि को प्राप्त हुआ। 'बन्दत गुरु गोबिन्द' के द्वारा 'मंगलाचरण' रीति का निर्वाह।
2. मुख बांनी=मुख वाणी। बुद्धि प्रकाश=बुद्धि-ज्ञान, बोध-अनुभव। बरनौं नीसांनी=परिचय में नीसानी छन्द का वर्णन करता हूँ।

3-4. प्रथम=प्रारम्भ में। सृष्टि उपांनी=सृष्टि उत्पन्न हुई। त्रिबिधांनी=तीन गुणों के आधार पर तीन प्रकार की सृष्टि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रज गुण तें ब्रह्मा किये राजस अभिमानी ।
सात्विक बिष्णु उपाइया प्रतिपालक प्रांनी ।।5।।
तम गुण तें शंकर भये संहारक जांनी ।
ऐसी विधि भव पथ चलै यह रचना ठांनी ।।6।।
सत्य लोक ब्रह्मा रहै ताकै ब्रह्मांनी ।
बिष्णु बसै बैकुण्ठ मैं ठाकुर ठकुरांनी ।।7।।
रुद्र रहै कैलास मैं भव लिये भबानी ।
इन्द्र रहै अमरावती जाकै इन्द्रानी ।।8।।
सुर अरु असुर सबै किये अप अपने थानी ।
गन गंधर्व उपाइया हाहा हू गानी ।।9।।
किन्नर अरु विद्याधरा यक्षादि धनानी ।
भूत पिशाच निशाचरा राक्षस दुख दांनी ।।10।।

5-6. रज गुण तें ब्रह्मा=रजोगुण से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । अर्थात् ब्रह्मा जी रजोगुण प्रधान देवता हैं । वे ही सृष्टि करते हैं, सृष्टि का विस्तार करते हैं । राजस अभिमानी=ब्रह्मा रजोगुण अभिमानी-प्रधान देवता हैं । उपाइया=उत्पन्न किए । सात्विक विष्णु=विष्णु सत्त्व गुण की प्रधानता वाले हैं । प्रतिपालक प्रानी=विष्णु प्राणियों के प्रतिपालक [-रक्षक] देवता हैं । तमगुण तें शंकर=शंकर महादेव की उत्पत्ति तमोगुण से मानी गई है । संहारक जानी=शंकर को संवारक देवता माना जाता है । भव पथ=संसार मार्ग । रचना=सृष्टि ।

7. सत्य लोक ब्रह्मा=ब्रह्मा का निवास [-अधिष्ठान] सत्यलोक माना गया है । ब्रह्मांनी=ब्रह्माणी, ब्रह्मा की स्त्री । विष्णु बसै बैकुण्ठ मैं=वैकुण्ठ में विष्णु निवास करते हैं । ठाकुर ठकुरांनी=विष्णु [-पालक] रक्षक होने के कारण ठाकुर और उन पर महत्ता बनाए रखने के कारण लक्ष्मी ठकुरानी हैं ।

8. रुद्र रहै कैलास मैं = [पौराणिक विश्वास है कि-] महादेव कैलास पर्वत पर वास करते हैं । भव लिये भवानी=पार्वती [-पत्नी] के साथ उनका अपना संसार है । अमरावती=इन्द्रलोक की राजधानी । इन्द्रानी=इन्द्र की पत्नी शची ।

9-10. सुर अरु असुर=देवता और राक्षस । अप अपने थानी=अपने-अपने स्थान पर । गंधर्व=गन्धर्व जाति के लोग । ये संगीत विद्या में निपुण माने गए हैं । हाहा हू=हा-हा हू-हू संगीत-वाद्य सूचक ध्वनियाँ । गानी=गायक । **टिप्पणी :** गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर यक्षादि जाति-वर्ग के देवता संगीत-नृत्य के अधिकारी और कलाप्रिय माने गए हैं । धनानी=धन कुबेर । यक्ष वर्ग में कुबेर अधिपति था, जो धनाधिकारी माना गया है । निशाचरा=निशाचर, असुर वर्ग के लोग । दुख दांनी=दुःखदायक ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द सूर दीपक किये तारा नभ तांनी ।
सप्त दीप नव षंड मैं दिन रैंन थपांनी ॥11॥
सागर मेरु उपाइया पृथ्वी मध्यांनी ।
अष्ट कुली पर्वत किये विचि नदी वहांनी ॥12॥
भार अठार बनस्पती फल फूल फुलांनी ।
समये समये आइकैं घन बरषहिं पांनी ॥13॥
मानव पशु पंषी किये करतार बिनांनी ।
ऐसी विधि रचना रची कछु अकथ कहानी ॥14॥
स्वेदज अण्डज जरायुजा उद्भिज उपजांनी ।
षेचर भूचर जलचरा ये चारौं षांनी ॥15॥
कीट पतंक जहां लगे गिनती न गिनांनी ।
चौराशी लष कहन कौं जिव जाति वषांनी ॥16॥
शेष नागं वैकुण्ठ लौं बिस्तार वितांनी ।
चवदह तीनौं लोक मैं जाकी रजधानी ॥17॥

---

11. तारा=नक्षत्र । नभ तांनी=आकाश में तान दिए, लटका दिए । सप्त दीप नव खंड=सात द्वीप और नौ खण्डों वाली यह पृथ्वी । थपांनी=स्थापित की है ।

12. सागर मेरु उपाइया=सागर और सुमेरु पर्वत उत्पन्न किए। पृथ्वी मध्यांनी= पृथ्वी के मध्य में, धरती के ऊपर अथवा सागर और सुमेरु के बीच धरती बनाई है। अष्ट कुली पर्वत=अष्ट कुल वाले पर्वत, प्रसिद्ध अष्ट [या सप्त] पर्वत श्रृंखलाएँ । पुराणों में वर्णित अष्ट कुली नागों का भी उल्लेख है। वे हैं—शेषनाग, वासुकि, कंवल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक । वहांनी=प्रवाहित हुई ।

13. भार अठार बनस्पती=अठारह भार वन-वनस्पति, वन-सम्पदा । फुलांनी=खिली है, खिलाई गई है, प्रफुल्लित है । घन बरषहिं पांनी=मेघ वर्षा करते हैं ।

14. पंषी=पक्षी । करतार बिनांनी=विलक्षण-विज्ञानी कर्त्ता ईश्वर ने । रचना रची= धरती की ऐसी कुछ रचना रची है । अकथ कहानी=धरती की कहानी अकथ्य है, अवर्णनीय है, अद्भुत है ।

15. चारौं षांनी=चार खानि के प्राणी । ये चार खानि हैं—1. स्वदेज, 2. अण्डज, 3. जरायुज, 4. उद्भिज । उपजांनी=पैदा किए हैं । खेचर=पक्षी, कीट-पतंग जाति के आकाश गामी [-गगन चर] जीव । भूचर=पशु, वानर, सर्प जाति के प्राणी जो पृथ्वी पर विचरण करते हैं । जलचर=मछली, मगर-मच्छ एवं शंख जाति के जल-जन्तु । पातालचर=पाताल [पृथ्वी के गह्वर-] में रहने वाले प्राणी ।

16. चौराशी लष कहन कौं=चौरासी लाख योनियों के प्राणी कहने भर को [-कथन/उल्लेख केलिए] हैं ।

17. बिस्तार वितांनी=विस्तार [-वितान] फैला दिया है, तान दिया है । चवदह तीनौं लोक=चौदह लोक : सात पृथ्वी के नीचे—अतल-वितल-तलातल आदि और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपु न बैठै गोपि ह्वै व्यापक सब कानी।
अध ऊरध दशहू दिशा ज्यौं शून्य समानी ।।18।।
चेतनि शक्ति जहां तहां घट घट नहिं छांनी।
हलन चलन जातें भया सो हैं सेनानी ।।19।।
जड़ चेतन द्वै भेद हैं ऐसैं संमुझांनी।
जड़ उपजै बिनसै सदा चेतन अप्रवानी ।।20।।
लिपै छिपै नहिं सब करै जिन मंड मंडानी।
सुंदर अद्भुत देषिये अति गति हैरानी ।।21।।

।। समाप्तोऽयं गुन उत्पत्ति नीसांनी ग्रन्थः ।।11।।

सात पृथ्वी से ऊपर—भू-भव-स्व आदि। तीन लोक-पाताल, पृथ्वी और आकाश [-स्वर्ग] लोक। जाकी राजधानी=जिस [ईश्वर-] की राजधानी है, कार्य [-व्यापार] क्षेत्र है।

18. आपु न बैठै गोपि ह्वै=वह परमात्मा स्वयं गुप्त होकर नहीं बैठा है। व्यापक सब कानी=सर्वत्र सभी सीमाओं में वह व्याप्त है। अध ऊरध दशहू दिशा=नीचे-ऊपर, दसों दिशाओं में। ज्यौं शून्य समानी=जिसप्रकार आकाश सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार वह परमात्मा सर्वत्र समाया हुआ है।

19. चेतनि शक्ति जहां तहां=चैतन्य की शक्ति [या चेतन-शक्ति सर्वत्र है। नहिं छांनी = छिपी नहीं है। सेनानी=संज्ञपन [सं०] अर्थात् अस्तित्व-बोध या संकेत-इंगित करने वाला। हलन चलन जातें भया=जिसके संकेत से [ही] सृष्टि में स्पन्दन हुआ है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' रूप में चैतन्य ब्रह्म सिद्धान्त-वचन प्रमाण है।

20. द्वै भेद=जड़-चेतन [-अविद्या-विद्या] रूप में सृष्टि के दो भेद। ऐसैं संमुझांनी= इसप्रकार समझाया गया है। जड़ उपजै बिनसै सदा=जड़ पदार्थ पैदा [-आविर्भूत-रूपान्तरित] होता-रहता है और विनाश को प्राप्त होता है। अप्रवानी=चेतन तत्त्व अपरिमित होने के कारण प्रमाण रहित है, क्योंकि उसके पैदा होने और नष्ट होने का कोई प्रमाण [-लक्षण] नहीं मिलता अथवा वह अपरिमित है।

21. लिपै छिपै नहिं वह चेतन तत्त्व न तो लिप्त होता है और न गुप्त रहता है। मंड मंडानी=मण्डन [-सृष्टि] रूप में व्याप्ति है उसकी। अद्भुत देषिये=सृष्टि का रचना-स्वरूप विलक्षण है, इस विलक्षणता [-अद्भुत तत्त्व] को देखना [-अनुभव करना] चाहिए। अति गति हैरानी=इस अतिशय गति को देखकर हैरानी [-विलक्षण होने के कारण कौतुक-विस्मय] होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 12 ॥ अथ सद्गुरु महिमा नीसांनी ॥

प्रवेशार्थ : दो दोहे और बीस 'नीसांनी' छन्दों के माध्यम से इस रचना में सुन्दर दास ने अपने गुरुदेव दादूदयाल की महिमा [-प्रभाव] एवं उनका चरित्र [-स्वभाव] बड़ी तन्मयता से प्रस्तुत किया है। दादू के प्रति उनकी निष्ठा-भावना, सर्मपित मनोयोग की परिचायक है। इस रचना में सन्त हृदय में बैठा कवि हृदय उमंगित और हिलोरें लेता-सा जान पड़ता है। उनके ये हृदयोद्गार, गुरु के प्रति उनके समग्र-समर्पण के सूचक हैं। सद्गुरु महिमा वर्णन में वे अपने भावों के उभार [-ज्वार] को, छन्दादि की मर्यादा में बाँधने की अधिक चिन्ता नहीं करते। इस रचना में धारा या नदी के रूपक से बनने वाले बिम्ब प्रभावोत्पादक हैं। मूल पाठ देखिए—

दोहा : अद्भुत ष्याल रच्यौ प्रभू, बहुत भांति बिस्तार।
संत किये उपदेश कौं, पार उतारनहार ॥1॥

नीसांनी : पार उतारनहार जी गुरु दादू आया।
जीवनि के उद्धार कौं हरि आपु पठाया ॥2॥

चूर्णिका : 1. अद्भुत ष्याल रच्यौ प्रभू = प्रभु की यह रचना-सृष्टि, विलक्षण होने के कारण 'अद्भुत ख्याल' [-विलक्षण कल्पना] है। पार उतारनहार = पार उतारने वाले, भव सागर से उद्धार कराने वाले। **टिप्पणी** : 'प्रभू' शब्द के प्रयोग से 'मंगलाचरण' का दायित्व पूर्ण हुआ है।

2. गुरु दादू आया = गुरु दादू दयाल का धरा पर अवतरण सोद्देश्य हुआ, यह व्यंजना है। जीवनि के उद्धार कौं = प्राणियों के उद्धार-निस्तार केलिए। हरि आपु पठाया = परमात्मा ने स्वयं दादू को इस लोक में भेजा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम नाम उपदेश दे भ्रम दूरि उड़ाया।
ज्ञान भगति बैराग हू ए तीन दृढाया ।।3।।
विमुख जीव सन्मुख किये हरि पंथ चलाया।
झूठ क्रिया सब छाड़ि कै प्रभु सत्य बताया ।।4।।
माया मिथ्या सांपिनी जिनि सब जग षाया।
मुख तें मंत्र उचारि कैं उनि मृतक जिवाया ।।5।।
वूड़त काली धार मैं गहि नाव चढाया।
पैली पार उतारि कैं निज पद पहुंचाया ।।6।।
पर उपकारी हैं इसे मोटी निधि ल्याया।
जन्म जन्म की भूष थी सब जीव अघाया ।।7।।
दयावंत दुख मेटना सुखदायक भाया।
शीलवंत साचै मतै संतोष गहाया ।।8।।

---

3. भ्रम दूरि उड़ाया = भ्रम [-संशय-सन्देह]-द्विविधा को दूर किया। तीन दृढाया = विचार-भाव के तीन पक्षों को सुदृढ़ किया। दादू के अध्यात्म-उपदेश में केवल 'ज्ञान' न होकर 'ज्ञान-भक्ति और वैराग्य' का समन्वित त्रिक् विद्यमान है। यह शिष्य सुन्दरदास का अभिमत जान पड़ता है।

4. विमुख जीव सन्मुख किये = विपरीत दिशा अर्थात् संसारोन्मुख प्राणियों को सन्मुख परमात्मा की ओर मोड़ दिया। हरि पंथ चलाया = प्रभु के मार्ग पर अग्रसर किया। झूठ क्रिया = मिथ्याचार। प्रभु सत्य बताया = 'प्रभु' के सत्य को बताया अथवा प्रभु को ही सत्य बताया अथवा 'सत्य' ही प्रभु है, ऐसा उपदेश दिया।

5. माया मिथ्या सांपिनी = माया की स्थिति मिथ्या है, जो सर्पिणीवत् विषैला व्यवहार करती है। उसकी फूत्कार के प्रभाव से कोई संसारी नहीं बच पाता। वह सब को विमुग्ध कर निगल जाती है। मंत्र उचारि कैं = राम-नाम मन्त्र के उच्चारण से। उनि मृतक जिवाया = उन दयालु दादू ने माया के काटे हुए मृतक [प्राणियों-] को, अपने राम-मन्त्र से पुनः जीवन दिया अर्थात् उन्हें 'मरजीवा' बनाया।

6. बूड़त काली धार में = संसार रूपी बाह्य प्रवाह वाली काली नदी की धारा में डूबते हुए। गहि = पकड़ कर। नाव चढाया = भक्ति-अवलम्ब रूप नौका पर बैठाया। पैली पार उतारि कै = पल्ली पार उतार कर, उनके अन्दर चैतन्य की प्रतिष्ठा करके, विवेक-अवलम्ब रूप [-धारा का] दूसरा तट [पल्ली-पैली पार] प्रदान किया। निज पद = परम पद अर्थात् ज्ञान स्वरूप में प्रतिष्ठा।

7. मोटी निधि = भारी सम्पत्ति, ज्ञान रूप भण्डार। भूष = आकांक्षा, कामना, लिप्सा-लोलुपता-इन्द्रिय-विषयादि की भूख। सब जीव अघाया = ज्ञान-बोध से सब जीवों को तृप्त किया।

8. दयावंत = दयालु। दुख मेटना = दुःख निवारक। भाया = अच्छे लगने वाले अथवा भाई। संतोष गहाया = अनुयायियों को सन्तोष भाव का 'अवलम्ब' प्रदान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश मैं जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा रस अमृत पिवाया ।।9।।
अति गंभीर समुद्र ज्यौं तरवर ज्यौं छाया।
बानी बरिषै मेघ ज्यूं आनन्द बढ़ाया ।।10।।
चंदन ज्यौं लपटै बनी द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसें परसतैं कंचन ह्वै काया ।।11।।
चंवक ज्यौं लोहा लगैं भृति अंगि लगाया।
हीरा ज्यों अति जगमगै निरमोल निपाया ।।12।।
कामधेनु चिंतामनी तरु कल्प कहाया।
सब की पूरै कामनां जिनि जैसा ध्याया ।।13।।
अडिग इसा है मेरु ज्यौं डोलै न डुलाया।
भूमि जिसा भारीषवां जिनि सहन सिषाया ।।14।।
निर्मल जैसा नीर है मल दूरि बहाया।
तेजवंत पावक जिसा भय शीत नसाया ।।15।।

---

9. तिमिर मिटाया=अन्धकार [-अज्ञान] का निवारण किया। शशि ज्यौं शीतल= चन्द्रमा की तरह शीतल स्वभाव वाले। रस अमृत पिवाया=वाणी रूप अमृत से सबको तृप्त किया।

10. गंभीर समुद्र ज्यौं=वे समुद्र की तरह गुरु गम्भीर थे। तरवर ज्यों छाया=उनका सान्निध्य सघन वृक्ष की भाँति शीतल छाया प्रदायक था। बानी बरिषै मेघ ज्यूं= मेघ के समान सहज ही, लोकहित केलिए उनकी वाणी-वर्षा होती थी।

11. बनी द्रुम=बन के वृक्षादि। नाम गमाया=नाम गँवा दिया। **टिप्पणी :** अपने नामों का नानात्व मिटाकर, बन के नाना वृक्षादि, चन्दन-गन्ध से चन्दनमय होकर, चन्दन ही कहलाने लगते हैं। ऐसे ही गुरु की कृपा [-प्रभाव] के साधक-व्यक्तियों का त्रिगुणमयी नानात्व समाप्त होने पर, आत्मत्व अथवा ब्रह्मत्व ही शेष रहता है। कंचन=स्वर्ण।

12. चंवक=चुम्बक। भृति अंगि लगाया=जैसे चुम्बक भृति-प्राणी रूप लोहे को अपने अंग में लगाकर अपने जैसा बना लेता है। निपाया=निर्मित किया, गढ़ा।

13. चिंतामनी=चिन्तामणि, जो पुराण-कल्पना में चिन्ता को हरण करने अथवा कामना पूर्ण करने वाली मानी गई है। कल्प=कल्पवृक्ष, देवतरु—जिसकी छाया या आश्रय में पहुँचकर मनोकामना पूर्ण होने का विश्वास है। जिनि जैसा ध्याया=जिसने जैसा ध्यान लगाया, जिसने जैसी साधना की।

14. अडिग इसा है मेरु ज्यौं=सुमेरु पर्वत की तरह वह अटल है। भूमि जिसा भारीषवां=भूमि जैसा भारी है, गुरु गम्भीर है। सहन सिषाया=सहनशीलता सिखाई है।

15. निर्मल=स्वच्छ, दोष रहित। मल=दोष, कल्मष। तेजवंत=तेजस्वी [-ज्ञानवान्]। तेजवंत···नसाया=गुरु दादू अग्नि के समान तेजस्वी हैं, जिनकी उपस्थिति से भय रूप शीत समाप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवन जिसा सब सारिषा को रंक न राया।
ब्यौम जिसा हृदये बड़ा कहुं पार न पाया ॥16॥
टेक जिसी प्रहलाद है ध्रुव ज्यौं मन लाया।
ज्ञान गह्यौ शुकदेव ज्यौं परब्रह्म दिषाया ॥17॥
योग युगति गोरक्ष ज्यों, धंधा सुरझाया।
हद्द छाड़ि बेहद्द मैं अनहद्द बजाया ॥18॥
जैसें नाम कबीर जी यौं साधु कहाया।
आदि अंत लूं आइ कैं रमि राम समाया ॥19॥
सद्गुरु महिमा कहन कौं मैं बहुत लुभाया।
मुख मैं जिह्वा एक ही तातैं पछिताया ॥20॥
नमस्कार गुरुदेव कौं जिनि बन्दि छुड़ाया।
दादू दीन दयाल का सुन्दर जस गाया ॥21॥

दोहा : सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान।
सुन्दर अमित अनंत गुन, को करि सकै बषान ॥22॥

॥ समाप्तोऽयं सद्गुरु महिमा नीसांनी ग्रन्थः ॥12॥

---

16. पवन जिसा सब सारिषा=पवन के समान सबको समान [-समतुल्य] मानने वाला। रंक न राया=राजा और रंक का अन्तर नहीं। ब्यौम जिसा हृदये बड़ा=गुरु दादू का हृदय आकाश की तरह [विशाल-] व्यापक था।

17. टेक जिसी प्रहलाद है=प्रह्लाद जैसी संकल्प शक्ति है। ध्रुव ज्यौं मन=ध्रुव के समान [अटल-] मन है। ज्ञान गह्यौ शुकदेव ज्यौं=परम ज्ञानी शुकदेव मुनि के समान जो ज्ञानी हैं।

18. योग युगति गोरक्ष ज्यौं, धंधा सुरझाया=योग युक्ति वाले गुरु दादू, गुरु गोरखनाथ के समान हैं, जिन्होंने जीवन के गोरख-धन्धे को, अपनी तपस-योग-युक्ति से सुलझाया है। हद्द छाड़ि वेहद्द मैं=हद[-सीमा], सीमित दायरे को छोड़कर, भक्ति-योग प्रतिपादित वेहद्द[-असीमित]क्षेत्र में[-चौहद्दी मैदान, कबीर]चेतना को व्याप्त कर दिया है। अनहद्द बजाया=असीम में पहुँच कर 'अनहद नाद' झंकृत किया।

19. जैसें नाम कबीर जी=जिसप्रकार नामदेव और कबीर ने साधना की उच्चता प्राप्त की थी, उसीप्रकार। अथवा जैसे कबीर केलिए नाम-स्मरण था।

20. लुभाया=जिज्ञासु-उमंगित बना रहा हूँ अथवा उत्सुक बना रहा हूँ। मुख मैं जिह्वा एक ही [मुहा०]=मुख में एक ही जीभ है अर्थात् गुरु-महिमा गान केलिए जिह्वा रूप एक ही साधन है, इसलिए पश्चाताप बना रहता है।

21. बन्दि छुड़ाया=बन्दीगृह [-जीवन बन्धन, कर्म बन्धन आदि] से, ज्ञान देकर मुक्त किया है। जस गाया=यशगान किया है।

22. मति अपनी उनमान=अपनी बुद्धि के अनुसार या अनुमान से। अमित अनंत गुन=यद्यपि उनके गुण असीम और अनन्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 13 ॥ अथ बावन ग्रन्थ ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 'बावनी' काव्यरूप के अन्तर्गत 58 दोहा-चौपाई-छन्दों में, देवनागरी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को आधार बनाकर, प्राय: छन्द के प्रथम शब्द के प्रथम अक्षर के रूप में नियोजित करते हुए, अध्यात्म ज्ञान को बड़ी कुशलता से निहित अथवा निरूपित किया गया है। 'बावनी' रचना शैली की समृद्ध परम्परा बहुत पुरानी है। सन्त-वाणी-परम्परा में ऐसी 'बावनी' रचनाएँ दर्जनों मिलती हैं। इसके अन्य नाम हैं— 'ककहरा', 'बारहखड़ी', 'अखरी', 'तखती', 'कक्का' तथा अरबी-फारसी वर्णमाला के आधार पर 'अलिफनामा' 'सीं हरफी' आदि। इस काव्यरूप के प्रयोक्ताओं में प्रमुख हैं— गोरख, कबीर, नानक, रज्जब, बुल्ला साहब, भीखा साहब, पलटू साहब आदि-आदि। सन्त-वाणी में वर्णमाला को अक्षर-भाव [-अच्युत भाव] से मण्डित करते हुए सृष्टि में व्याप्त एकरसत्व को रेखांकित किया गया है। मूल पाठ देखिए—

दोहा : गुरु अविनाशी पुरुष है, घट का दादू नांव।
सुन्दर शोभा का कहूं, नख शिख पर बलि जांव ॥1॥
शब्द सुनत मुक्ता भया, काटे कर्म अनेक।
मनसा वाचा कर्मना, हृदये राषै एक ॥2॥

चूर्णिका : 1. गुरु अविनाशी पुरुष है = सद्गुरु अविनाशी पुरुष है, शरीर-भेद के अन्तर है। [कबीर ने भी कहा है—'गुरु गोंबिद तौ एक है, दूधा यहु आकार। आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥' —क०ग्रं०, 1/26]। 'अविनाशी' शब्द-प्रयोग से 'मंगलाचरण' विधि का निर्वाह हो गया है।

2. शब्द सुनत = गुरुवाणी, मन्त्र, शब्द का मर्म समझते ही। मुक्ता भया = मुक्त हो गया, जीवन्मुक्ति की चेतना आ गई। काटे = छिन्न कर दिए, निर्मूल कर दिए। हृदये राषै एक = हृदय में 'एक' की प्रतिष्ठा करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक अक्षर है एकरस, क्षरै सु है ओंकार।
तरवर ज्यौं का त्यौं रहै, छाया बहुत प्रकार ।।3।।
बावन अक्षर सब कथै, पण्डित वेद पुरान।
इक अक्षर सो अगम घर, बूझै सन्त सुजान ।।4।।

चौपई :

ओंकार आदि उतपन्ना। ओंकार त्रिधा भयौ भिन्ना।
ओंकार उरै यह माया। औंकार परै हरि राया ।।5।।
नमस्कार निश दिन है ताकौं। नित्य निरन्तर नमिये वाकौं।
निकट न दूरि नजरि नहिं आवै। नेति नेति कहि निगम सुनावै ।।6।।
मनतें अगम मरै नहिं जीवै। मुक्त न बंध शक्ति नहिं शीवै।
मौंन अमौन कह्या नहिं जाई। मोल माप नहिं रह्या समाई ।।7।।

---

3. इक अक्षर=एक अक्षर अर्थात् क्षर रहित अच्युत भाव। एकरस=समरस। क्षरै=क्षरित [-विकीर्ण] होता है। 'क्षर' अक्षर का ही विकार है। ओंकार=ॐ 'प्रणव', यह 'अच्युत' या 'अक्षर' का ही क्षरित रूप है। अतः ओंकार, ब्रह्म तत्त्व का प्रथम विकार है।

4. बावन अक्षर सब कथै='अ-आ' से 'ह' तक देवनागरी वर्णमाला के 52 अक्षरों में ही वेद-पुराणों की अभिव्यक्ति हुई है। पण्डित-विद्वान् भी इन्हीं अक्षरों के माध्यम से अपनी बात कहते हैं। अक्षर=अक्षर तत्त्व। अगम घर=अगम्य आवास। बूझै=बूझते-समझते हैं। **टिप्पणी :** 1. 'बावन' वर्ण इसप्रकार हैं—16 स्वर +33 व्यंजन तथा 3 संयुक्ताक्षर [क्ष त्र ज्ञ]=52 वर्ण। अथवा 'ओं नमः शिवं'—ये 5, अ से अः तक 12 स्वर [ऋ ॠ ऌ ॡ को छोड़कर] +33 व्यंजन +क्ष ज्ञ संयुक्ताक्षर[त्र को छोड़कर]।

5. आदि=सब के प्रारम्भ में। उत्पन्न=उत्पन्न हुआ। त्रिधा=तीन प्रकार से, त्रिगुण रूप में। भिन्ना=विभक्त। उरै=इधर, ओंकार के बाद सृष्टि की ओर आया है। परै=ओंकार से परे, उस ओर। हरि राया=परमात्मा हैं। **टिप्पणी**— चौपई में 'ओं' अक्षर को 'ओम्कार' रूप में पढ़ना चाहिए और उसे तीन मात्राओं वाले स्वर के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

6-7. नमिये=नमन करिए, नमस्कार करिए। नजरि नहिं आवै=वह आँखों से ओझल रहता है, चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता। 'नेति नेति'=वेद वचन, जो ब्रह्म-परिचय अर्थात् साक्षात्कार करने-कराने में निर्णय की ओर अग्रसर कराता है। निगम=वेद-शास्त्र। मनतें अगम=मन से भी अगम्य[-अग्राह्य]है। कहा भी है—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'—तैत्ति० उप० 2/4/1
'मन बानी कौ अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।'—सूरसागर, स्क० 1/2
'जहँ न जाइ मन, बिधि हरि हर को।'—राम० मा०, 2/241/1

'शक्ति नहिं शीवै=शक्ति और शिव नहीं हैं। मौंन अमौन=मूक और मुखर। मोल माप नहिं=उसका कोई मूल्य या परिमाण नहीं है। रह्या समाई=समाया हुआ है, सर्वव्यापक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सित न असित कछु हरित न पीरा। ससिहरि सूर तप्त नहिं सीरा।
सीस न पाव श्रवन नहिं नासा। सरस न निरस सब्द नहिं स्वासा ॥8॥

द्धन्ध अद्धन्ध धूप नहिं छाया। धीर अधीर न भूषा धाया।
धर्‌या अधर नहिं रूप कुरूपं। ध्ये ध्याता नहिं ध्यान स्वरूपं ॥9॥

अकह अगह अति अमित अपारा। अकल अमल अज अगम विचारा।
अलष अभेव लषै नहिं कोई। अति अगाध अविनाशी सोई ॥10॥

आदि न अंत मध्य कहु कैसा। आशा पास नहीं कछु ऐसा।
आवै जाइ न सुप्त न जागै। आहि अषण्डित पीछैं आगै ॥11॥

इत उत जित कित है भरपूरा। इडा पिंगला तें अति दूरा।
इच्छ रहित इष्ट कौं ध्यावै। इतनी जानैं तो इत पावै ॥12॥

ईश्वर एक और नहिं कोई। ईश शीश पर राषहु सोई।
ईहा और ईरषा भांनौं। ईतरता कबहूं नहिं आंनौं ॥13॥

---

8. सित न असित = न सफेद [-श्वेत] न काला [-श्याम]। हरित न पीरा = न हरा है न पीला। ससिहरि सूर = चन्द्रमा और सूर्य। तप्त नहिं सीरा = न गर्म न ठण्डा, न उष्ण न शीत। सरस न निरस = वह न रस युक्त है और न नीरस।

9. द्धन्ध अद्धन्ध नहिं = वह न धुन्ध है न अधुन्ध अर्थात् न धूमिल है और न स्वच्छ। अथवा न धन्ध [-धन्धा] है और न अधन्ध [-धन्धा रहित स्थिति अर्थात् क्रिया-व्यापार रहितता की स्थिति]। **टिप्पणी**—'द्ध' यह संयुक्ताक्षर छन्द के प्रारम्भ में दिया गया है, जो दोषपूर्ण है। यह 'ध' वर्ण के स्थान पर है और मात्रा-नियम के लिए प्रयुक्त हुआ है।

10-11. अकथ = अकथनीय, अवर्णनीय। अगह = अग्राह्य, अगम्य। अमित = असीम। अकल = कला रहित, अक्षय। अज = अजन्मा। अगम = अगम्य, बुद्धि से परे। अगाध = गहन। आशा पास = कामना-पाश अर्थात् कामना का बन्धन। आहि अखण्डित पीछैं आगैं = वह आगे-पीछे सर्वत्र अखण्डित ही है। **टिप्पणी :** छन्द 10-11 से 'अ-आ' वर्णों का **'बावनी'** काव्यरूप क्रम प्रारम्भ हुआ है।

12. इत उत जित कित = इधर-उधर-जिधर-किधर अर्थात् सर्वत्र। भरपूरा = भरापूरा, सम्पूर्ण। अति दूरा = [इडा-पिंगला नाड़ियों की पहुँच से-] बहुत दूर। इच्छा रहित = कामना रहित होकर। इतनी जानैं तो = जो उक्त-कथित बात के मर्म को जान लेता है वही। इत पावै = इधर, इस ओर, अध्यातम में परम लक्ष्य या परमगति को प्राप्त कर पाता है।

13. ईश शीश पर राषहु = ईश्वर को, ईश्वर अस्मिता को सर्वोपरि [-शिरोमणि] रूप में स्वीकार करो। ईहा = इच्छा, कामना, लालसा, लिप्सा। ईरषा = ईर्ष्या। भांनौं = तोड़ो, खण्डित करो। ईतरता = भेदभाव, भिन्नत्व।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम वहै उनमुनी लावै। उर मैं पैसि अपूठा आवै।
उरै उरै उरझ्यौ संसारा। उलटा चलै सु उतरै पारा ॥14॥
ऊंच नीच सम देषै दोऊ। ऊरा पूरा है नहिं कोऊ।
ऊपर तरै एक पहिचानैं। ऊवाबाई जगतहिं जानै ॥15॥
एकै व्रह्म अनेक दिषाये। एकाकी हूये तिनि पाये।
ए मेरे ये तेरे कीये। एही अन्तर इन करि लीये ॥16॥
ऐया वूझि तुम्हारी जानी। ऐयत कोटिनि दृष्टि भुलानी।
ऐश्वर्य हि मन कौं मति लावै। ऐसा ज्ञान गुरु समुझावै ॥17॥
ओत प्रोत ओ व्यापक सारै। ओछी बुद्धि ओस जल धारै।
ओर छोर वाकौ कहुं नाहीं। ओट आंषि की आवहिं जांहीं ॥18॥

14-15. उत्तम वहै=वही श्रेष्ठ है। उनमुनी=मुद्रा विशेष, अवस्था विशेष। उर मैं पैसि=हृदय में प्रवेश करके, अन्तर्मुखी होकर। अपूठा आवै=बहिर्मुखता त्याग कर अन्तर्मुखता को प्राप्त करता है। उरै उरै=इधर ही, इस पार ही, पर्दे के इस ओर, अर्थात् सांसारिकता-भौतिकता में। उरझ्यौ=उलझा हुआ है, बन्धन में पड़ा है। उलटा चलै=अन्तर्मुखी होकर क्रियाशील हो तो, मरजीवा होकर जिए तो। समदेषै दोऊ=दोनों को [-द्वन्द्व को] समभाव से जो देखता है। ऊरा=ऊणां [-ऊर्ण], अधूरा। पूरा=पूर्ण, सकल। ऊपर तरै=ऊपर से नीचे अर्थात् परम गति [-परम अवस्था] से नीचे एक तत्त्व की व्याप्ति की पहिचान करे, परिचय प्राप्त करे। ऊवाबाई [गुज०]=ऊआबाई, उदासी भरा, व्यर्थ का, निरर्थक, तथ्य रहित। **टिप्पणी**—यह प्रयोग गुजराती-राजस्थानी बोली का है। यद्यपि, सूर-वाणी में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है—'जन्म गमायौ ऊआबाई। भजे न चरण कमल जदुपति के रह्यौ बिलोकत छांई॥' 'ऊवाबाई' शब्द का प्रयोग आलस्यपूर्ण स्थिति केलिए भी होता है।

16. एकाकी हूये=एक चित्त वृत्ति होने पर, एक चेतना में प्रतिष्ठित होने पर, एकान्वित होने पर ही। ऐ मेरे ये तेरे=ये मेरे [-इष्ट] हैं, ये तेरे [-इष्ट] हैं ऐसे अन्तर के कारण, इस अन्तर मूल [-भेद वाली] अवधारणा के कारण।

17. ऐया बूझि तुम्हारी=ऐसी बुद्धि है तुम्हारी, इसप्रकार की समझ है तुम्हारी। ऐयत कोटिनि दृष्टि=अयुत् अर्थात् दश हज़ार और करोड़ों की धनाढ्यता वाली अहंकार भरी तुच्छ दृष्टि [-विचार] के कारण अन्य [-बाह्य व्यापक] दृष्टि भुला दी गई है। ऐश्वर्यहि=धनाढ्यता की वृत्ति, धन दौलत वाली अभिमान-बुद्धि।

18. ओत प्रोत सारै=सम्पूर्ण [-सर्वत्र] भरापूरा है। ओछी बुद्धि=तुच्छ बुद्धि, संकीर्णता वाली बुद्धि-वृत्ति। ओस जल धारै [मुहा०]=ओस बिन्दु अर्थात् तुच्छ [-सीमित] जलकणों को ही जल मान लेती है। ओर-छोर=किनारा, सीमा। ओट आंषि की आवहिं जांही [मुहा०]=आँख की ओट में आते-जाते हैं। अर्थात् चर्म-चक्षुओं के पर्दे के पीछे [रहस्य में छिपा हुआ] आवागमन होता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषध याही एक विचारी। और उपाइ सकल अंधियारी।
औसर बीतें फिरि पछितावै। औतरि औतरि यातें आवै ॥19॥

अंश उहै बोलै या माहीं। अंजन मांहि निरंजन छांहीं।
अंध न लहै और दिशि दौरै। अंतक आइ आइ आइ सिर फोरै ॥20॥

अह अह उपजै आतम ज्ञाना। अहन अहन मैं वाही ध्याना।
अहल ताहि कबहूं नहिं होई। अहटि रहै तौ बूडै सोई ॥21॥

कक्का करि काया मैं बासा। काया मांहें कंवल प्रकासा।
कंवल मांहिं कर ताकौं जोई। करता मिल कर्म नहिं कोई ॥22॥

खक्खा षेल पसारा वाका। खलकहिं तजै खसम होइ ताका।
खैंचि खैंचि मनस्यौं मन लावै। खरी बात खालिक कौं भावै ॥23॥

---

19. औषध=औषधि, इलाज, उपाय। और उपाइ=अन्य साधन। अंधियारी=अधूरे-अन्धे, अज्ञान-अंधकार पूर्ण हैं। औसर बीतें [मुहा०]=अवसर बीतने पर, समय हाथ से निकल जाने पर। औतरि औतरि=अवतरित हो-हो कर, नीचे गिरते या जन्म लेते हैं। यातें=इससे।

20. अंश उहै=उसका [-उसी का] अंश ['ईश्वर अंस जीव अविनासी'—तुलसी]। अंजन छांहीं=अंजन यह संसार है और निरंजन उस परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। अंध न लहै=अन्धा [-अज्ञानी] प्राप्त नहीं कर पाता, तत्त्व को नहीं समझ पाता। अंतक=अन्तक अर्थात् यमराज, यमदूत अथवा मृत्यु।

21. अह अह उपजै=अह<अहन् [सं०]=दिन-दिन से अर्थात् दिन-प्रतिदिन के ज्ञानानुभव से आता हुआ, उगता हुआ ज्ञान। अहन अहन [सं०]=दिन-दिन अर्थात् दिन-प्रतिदन। वाही=वही। अहल [फा०]=कर्म अर्थात् कर्म का बन्धन। अहटि रहै=हट कर अर्थात् विमुख होकर रहता है। बूडै=डूबता है। इस छन्द में 'अह' 'अ:' का पर्याय है।

22. कक्का=क वर्ण। कंवल प्रकासा=कमल का प्रकाश है अथवा हृदय प्रफुल्लित [-प्रकाशित] हुआ है। ताकौं जोई=उसको निहारता है। कर्म नहिं कोई = कर्ता से मिलने पर, कर्त्ता में मिल जाने पर, कर्म-क्रिया शेष नहीं रहती। **टिप्पणी :** व्याकरण की दृष्टि से भी, एक शब्द के वाक्य में, क्रिया कर्म में और कर्म कर्त्ता में समाहित बना रहता है।

23. षेल पसारा=खेल प्रसार, दृश्य विस्तार। वाका=उसका। खलकहिं तजै=खलक [अ०] दुनिया [-दुनियादारी] को त्याग देता है। खसम होइ=खसम [अ०] खाविंद, पति-स्वामी होता है। **टिप्पणी :** जो खलक [-दुनिया] को त्याग देता है, खसम [-स्वामी] उसी का हो जाता है। यह अर्थ द्वैत प्रतिपादक सिद्धान्त के अनुसार है। अर्थ इसप्रकार भी हो सकता है कि खलक [-संसार-प्रकृति] का स्वामी [-मालिक] होकर रहे, उसका गुलाम होकर [-आधीन होकर] न रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गग्गा गुप्त कहै गुरुदेवा। ज्ञान गुफा में अलष अभेवा।
गल गल स्वाद तजै गुण मारै। गगन गहै गोविन्द निहारै ॥24॥
घघ्घा घट मैं औघट कहिये। घट ही मांहिं घाट कौं लहिये।
घाट मांहिं घन घुरै निसाना। घण्टा घोर सुनै को कांना ॥25॥
नन्ना नेह निरंजन लागै। नारी तजै नरक तें भागै।
निशि दिन नैनहु नींद न आवै। नर तब ही नारायन पावै ॥26॥
चच्चा चित चहुं दिशि तें फेरै। चौकहि बैठि चहूं दिश हेरै।
चलत चलत जब आगै जाई। चारि पदारथ लागै पाई ॥27॥
छच्छा छाया देषि न भूली। छल बल करै छलैगी ऊली।
छिन छिन जौ तरवर तत पीवै। छाकि रहै तौ जुगि जुगि जीवै ॥28॥
जज्जा जांणत जांणत जांणैं। जतन करै तौ सहज पिछांणैं।
जोग जुगति तन मनहिं जरावै। जरा न व्यापै जोति जगावै ॥29॥

मनस्यौं मन लावै=मन से मन को आकर्षित करके केन्द्रित करे। खालिक [अ०]=मालिक, स्वामी, सृष्टिकर्त्ता। [देखिए—'कबीर खालिक जागिया और न जागै कोइ']

24. गग्गा=ग वर्ण। ज्ञान गुफा=ज्ञान के गह्वर [-अन्तस्] में, ज्ञान की तह में। गल गल स्वाद=नरम मुलायम जिह्वा [-सुखदायक] -स्वाद, हलवा-पूड़ी, खीर-रस मलाई आदि आस्वादक पदार्थ। अथवा गल गल [-खट्टा]स्वाद। गगन गहै= आकाश को ग्रहण करे अर्थात् सूक्ष्मता-व्यापकता को प्राप्त करे।

25. औघट=अवघट, [तिर्यक-] टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग। घट=हृदय। घाट=सन्तरण स्थल, स्थिति विशेष। घन घुरै निसाना>निशान [फा०]=नगाड़ा, मेघ गर्जन जैसी नगाड़े की ध्वनि होती है। घंटा घोर=घण्टे का घोर शब्द होता है, अन्तर्मुखी दुनिया]-मनस जगत्] में 'अनहद नाद' सुनाई देता है।

26. नन्ना='ङ' वर्ण केलिए प्रयुक्त। नारी तजै=स्त्री की आसक्ति का त्याग करे। नींद न आवै=चिन्तन और लगन के कारण सुख-भोग की कामनामयी आलस्य-पूर्ण निद्रा में डूबा नहीं रहता।

27. चच्चा='च' वर्ण। फेरै=फेर लेता है, अन्तर्मुखी कर लेता है। चौकहि बैठि= अन्तःकरण चतुष्टय में स्थित होकर बैठता है। यहाँ वेदान्त-प्रतिपादन की दृष्टि से 'चौका', जो सन्त-वाणी में पारिभाषिक शब्द है, का अर्थ समीचीन नहीं लगता। अन्य अर्थ—चौकहि=चौकस-चौकन्ना रहकर अथवा चौहद्दी मैदान[-असीम चेतना] में रहकर चारों ओर दृष्टि पात करता है।

28-29. छाया=प्रतिबिम्ब। भूलि=विभ्रमति। छलैगी ऊली=अपूर्ण [-अधूरी] माया अपनी तरंगों [-आकर्षणों] से छलती रहेगी। तरवर तत पीवै=मधुमक्खी होकर तरुवर तत्त्व अर्थात् पुष्प-रस पान करता रहे। छकि रहै=छका हुआ तृप्त रहे। तो जांणत जांणै=जानते-जानते ही. क्रमिक अनुभव-अभ्यास के द्वारा ही। जतन करै=यत्न [-साधना] करता है तो। जरावै=योग-अग्नि में शुद्ध करे। जरा न व्यापै=वृद्धावस्था नहीं सताती, दीर्घायु होती है। जोति जगावै=ब्रह्म ज्योति [-आत्म ज्योति] प्रज्वलित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झझ्झा झरत रहैं झल देषैं। झुकि झुकि नीझर पीव अलेषैं।
झूझि झटकि उलटा रस बूझै। झलमल झाल दशौं दिश सूझै ॥30॥
नन्ना नांव लिये निसतरिये। नषिर उपाइ कछू नहिं करिये।
नारी नष सिष करै सिंगारा। नाकिहि बिना फजीहति वारा ॥31॥
टट्टा टेरि कहा गुरु ज्ञाना। टूक टूक ह्वै मरि मैदाना।
टगै न टेक टूटि नहिं जाई। टलै काल औरहिं कौं षाई ॥32॥
ठट्टा ठगनी कौं मति धीजै। ठगै फेरि कैं तब का कीजै।
ठौर छोड़ि जिनि तकै पसारा। ठगनी पैठि करै घट छारा ॥33॥

---

30. झझ्झा = 'झ' वर्ण। झल देषैं = ज्योति [-ज्वाला] देखता है। झुकि झुकि = झुक-झुक कर, किञ्चित् प्रयत्न से ही। नीझर = झरना, अमृत रस। अलेषैं = अदृष्ट, जो लेखे में न आ सके। झूझि झटक = जूझकर, झटका मारकर, सिर काटकर अर्थात् आपा मारते हुए। उलटा रस = अन्तर्मुखी होकर अमृत रस का पान करे। **टिप्पणी** : योग में उन्मनी—[-खेचरी] मुद्रा लगाकर साधक, 'सहस्रार कमल' का 'ब्रह्म रन्ध्र' के द्वार से तालु मूल में झरने वाला 'चन्द्र' द्रव अर्थात् 'अमृत रस' पान करता है। यह रस जिह्वा उलट कर नासिका के पिछले छिद्रों में लगाकर, समाधि दशा में पिया जाता है। झाल = ज्वाला, ज्योति, ताप।

31. नन्ना = यहाँ यह वर्ण 'ञ' केलिए है। निसतरिये = निस्तार पाइए, पार उतरिए, स्वयं उतरिए। नषिर उपाइ = तुच्छ [-अल्प, न कुछ] उपाय। नाकिहि बिना = नाक [-मर्यादा] अथवा 'नाकिहि' [-संयम अनुशासन] के बिना। फजीहति वारा = खींचातानी का कारण होता है।

32. टेरि = बुलाकर। टूक टूक ह्वै मरि मैदाना = मैदान [-रण क्षेत्र] में टूक-टूक होकर [-टुकड़े-टुकड़े होकर] मरो अर्थात् सन्त-शूरवीरता का पराक्रम दिखाओ। कबीर ने कहा है—

'सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत॥—क० ग्रं०, 45/9

टगै न टेक = टेक [-मर्यादा] से विचलित न होवे। टलै काल = काल भी टल जाता है।

33. ठट्ठा = 'ठ' वर्ण। ठगनी = प्रपंचमयी माया। मति धीजै = विश्वास न करो। ठगै फेरि कैं = चक्कर में डालकर, धोखा देकर ठगती है। ठौर = असली स्थान, स्थिति। पसारा = प्रसार, संसार, मायिक सृष्टि। पैठि = घुसकर। छारा = छार, क्षय, विनाश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डड्डा डारि देह डर सबही। डोरी पकरि डिगै नहिं कबही।
डंड कमंडल डिढ करि राषी। डेरैं गये सु बोलै साषी ॥34॥
ढढ्ढा ढारत ढारै पासा। ढारै अब जिनि देषि तमासा।
ढूंढै चौपडि ढुलि मिलि जाई। ढबका तब काहे कौं षाई ॥35॥
णणा रुण झुण बाजै बीणां। णारायण मारग अति झींणां।
णाम प्रबीण होइ जे कोई। णागर मरण मिटावै सोई ॥36॥
तत्ता तरली लगै सरीरा। तन मन भूलै पैली तीरा।
तब त्रिभुवन पति पकरै बांही। तत्वै तत्व मिलै तूं नांही ॥37॥
थथ्था थावर जंगम थाना। थिरक रह्या सब मांहि समानां।
थिर सु होइ थकियौ जनि राहा। थाहत थाहत मिलै अथाहा ॥38॥
दद्दा दम गहि दिल कौं धोई। दिल मैं दर्द मिलैगा सोई।
दह दिश तोहि होइ दीदारा। देइ अभै पद सिरजनहारा ॥39॥

---

34. देह डर=शरीर का भय, शरीर सम्बन्धी भय। डोरी=डोर लगन, अवलम्ब। डिगै नहिं=डुलायमान नहीं होता, विचलित नहीं होता। डंड कमंडल=साधक की भेष सम्बन्धी सामग्री, ज्ञान-ध्यान के बाह्य साधन। डिढ=दृढ। डेरैं गये=डेरे पर, निवास पर अर्थात् निज घर [-आत्म स्थान] में। बोलै साषी=ज्ञान-प्राप्ति या साक्षात्कार होने पर साक्ष्य के उपदेश देता है।

35-36. ढारत=डालता है, फेंकता है। चौपडि=चौपड़ का खेल। ढबका=डबका, धोखा अथवा धक्का, ठोकर। रुणझुण=रुनझुन, झंकार। बीणां=वीणा, प्रपंची। णारायण मारग=नारायण मार्ग, अध्यात्म पंथ। झीणां=सूक्ष्म। णाम प्रवीण= नाम प्रवीण, नामोच्चारण में कुशल। णागर मरण मिटावै सोई=वही नागर [-इंद्रिय-समूह में कुशलता से जीने वाला] अपना मरण [-मृत्यु भय] समाप्त कर पाता है।

37. तत्ता='त' वर्ण। तरली लगै=तरलता का स्पर्श होता है। पैली तीरा=पल्ली पार, उस पार, मँझधार के उधर। पकरै बांही [मुहा०]=बाँह पकड़ता है, सहारा देता है, तत्वै तत्व मिलै=तत्त्व से तत्त्व मिलता।

38. थथ्था='थ' वर्ण। थावर जंगम=स्थावर-जंगम, जड़-चेतन। थाना=स्थान। थिरक रह्या=थिरकता हुआ, स्फुरित होता हुआ। थकियौ जनि राहा=मार्ग में चलते हुए, साधना-निरत रहते हुए, थको नहीं [-शिथिल न होओ]। थाहत थाहत मिलै अथाहा=थाहते-थाहते, खोजते-खोजते अथवा खोजते हुए अथाहा [-अगाध] परमातमा मिल [ही] जाता है।

39. दम गहि=प्राण-श्वास को थामकर, प्राणायाम करते हुए। धोई=स्वच्छ करो। दिल में दर्द=यदि दिल में दर्द [-बेचैनी-व्याकुलता] है तो। सोई=वही, परमातमा। दह दिश=दसो दिशाओं में। दीदारा=दीदार, दर्शन। अभै पद= अभय पद, परम पद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धध्धा धाम धणी का दीसै। धून्ध मार जौं नान्हां पीसै।
ध्यान धरै धुनि सौं लै लावै। धन्य धन्य सब कोई गावै ।।40।।
नन्ना निरनै करि निरवारा। निकट निरंजन सब तैं न्यारा।
न्यारै कौं नीकै करि जानैं। नाहीं कछू तहां मन मांनै ।।41।।
पप्पा परमिति लहै न कोई। परम पुरुष परलै नहिं होई।
पानी पादौ पेट न पृष्टी। पंच तत्व तें पैला इष्टी ।।42।।
फफ्फा फूल बिना फल चाषै। फूल जाइ तौ फिरि करि नाषै।
फटकि पिछौड़ि डारि चतुराई। फूंकि देह सब मानि बड़ाई ।।43।।
बब्बा बानिक बनिहै तेरा। बंद लगाइ शब्द सुनि मेरा।
बार बार बहुर्यौ नहिं भेटा। बेगि न मिलै बाप कौं बेटा ।।44।।

---

40. धाम धणी का=स्वामी का निवास, परमपद। धून्ध मार=औंधा झुककर अर्थात् जोर लगाकर। नान्हां पीसै=महीन [-बारीक सूक्ष्म विचार] पीसता है। अर्थात् तत्त्व प्राप्ति केलिए सूक्ष्म कर्म-साधना करता है। लै लावै=लगन लगाता है।

41. निरनै=निर्णय। निरवारा=निर्वार्य, अन्तिम या सुनिश्चित निर्णय। नीकै करि=भलीप्रकार से। तहां मन मांनै=वहीं मन विश्वास करता है, वहीं मन आसक्त होकर केन्द्रित रहता है।

42. परमिति=सीमा, हद, परिमाण। परलै=उधर, कहीं अन्यत्र, सर्वत्र होने के कारण परम पुरुष कहीं अन्यत्र नहीं होता। पानी पादौ=पाणि-पाद, हाथ-पाँव। पृष्टी=पीठ। पैला=पहला, प्रथम। इष्टी=इष्ट, परम तत्त्व।

43. फूल बिना=फूल की तरह प्रफुल्ल हुए बिना, मायिक सृष्टि अर्थात् संसार के बिना, सांसारिकता के बिना। फल=परम आस्वाद्य ईश्वर। फूल जाइ=यदि फूल हो भी जाय, मायिक सृष्टि अनुभव में आ भी जाए तो। फिरि फिरि=उलट कर, अन्तर्मुखी होकर। नाषै=नष्ट करे, निर्मूल करे, तिरोहित कर दे। फटकि पिछौड़ि=पिछौरे की हवा से जैसे अन्न साफ किया जाता है, भूसा उड़ाकर अलग किया जाता है, वैसे ही फटक-पिछोड़ कर। डारि चतुराई=चालाकी [-चतुरता] छोड़ दे। मानि बड़ाई=मान-बड़प्पन।

44. बानिक बनिहै=कार्य बन जाएगा। बंद लगाइ=योग-क्रिया का [-जालन्धर उड्डीयान आदि] बन्ध लगाकर। शब्द=उपदेश। बहुर्यौ=लौटा, पुनर्जन्म हुआ। नहिं भेटा=साक्षात्कार नहीं हुआ। बेगि न मिलै बाप कौं बेटा=बाप को बेटा शीघ्र नहीं मिलता, बाप [-ईश्वर] को, बेटा [-जीव] जल्दी [-आसानी से] नहीं मिल पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भभ्भा भयौ सिधौं का मेला। भारी भेद बूझि लै चेला।
भिष्या भोजन भरि भरि षाई। भंडारा गुरु बांट्या आई ॥45॥
मम्मा मरि ममता मति आनै। मोम होइ तब मरमहिं जानै।
मरदहिं मान मैल होइ दूरी। मन मैं मिलै सजीवनि मूरी ॥46॥
यय्या याकौं याही पावै। याहि पकरि याकै घर ल्यावै।
याकौ याही बैरी होई। याकौ इहै मित्र है सोई ॥47॥
रर्रा रती रती समुझाया। रे रे रंक सुमर लै राया।
रमिता राम रह्या भरपूरा। राषि हृदै पण छाड़ि न सूरा ॥48॥
लल्ला लगि करि उठै भभूका। लंबा गुरू लगावै लूका।
लूटि लाटि लोगन कौं षाई। लंका छोड़ि प्रलंका जाई ॥49॥
वव्वा वोरा ज्यौं गरि जावै। बैसा होइ उसी ल्यौ लावै।
वासौं कोई कहै न जूवा। वाहि वाहि करि वाही हूवा ॥50॥

45-46. सिधौं का मेला=सिद्ध पुरुषों का मेल-सत्संग अर्थात् उत्तम अवसर। भारी भेद=गूढ़ रहस्य। भंडारा=भण्डार, अक्षय खजाना। मरि=मरकर, मरजीवा होकर। ममता=ममत्व, आसक्ति। मोम होइ=मोम की तरह सुकोमल होने पर अर्थात् ज्ञानाग्नि से पिघलने [-जलने] का गुण होने पर। मरदहिं मान=गर्व-अभिमान का मर्दन करने पर। मैल होइ दूरी=मैल [-कल्मष-पाप] दूर होते हैं। सजीवनि मूरी=संजीवनी मूल, संजीवनी बूटी, अमरता प्रदायक विचार तत्त्व।

47. यय्या='य' वर्ण। याकौ=इसको। याही पावै=यही [-वही] प्राप्त कर पाता है। याहि पकरि याकै घर ल्यावै=इसी को पकड़ कर, ज्ञानोपदेश से, इसी के घर [-निज स्थान, आत्म पद] तक ले आता है। याकौ याही···सोई=इस जीवात्मा का यही जीवात्मा शत्रु होता है और यही मित्र होता है। गीता का साक्ष्य है—

'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।'—6/5
'आत्मानम् आत्मना विद्धि।'—योग वासिष्ठ

48. रती रती समुझाया [मुहा०] रत्ती-रत्ती भर विचार-तत्त्व समझाया अथवा रती [-रति-प्रेम, भक्ति, लय] को रत्ती भर तक [-अति सूक्ष्मता से] समझाया है। रे रे रंक=अरे निरुपाय प्राणी, साधनहीन जीवात्मा। रमिता राम=रमा हुआ व्याप्त राम। पण छाड़ि न सूरा=अरे शूरवीर, अपने प्रण [-संकल्प] को न छोड़।

49. भभूका=ज्वाला-ज्योति। लंबा गुरु=लम्बे हाथ वाला अर्थात् धोखेबाज गुरु। लूका चिनगारी। लूटि लाटि=लूट-लाट कर। लंका=लंका नगरी अर्थात् सीमा, शरीर की हद्द। प्रलंका=सीमा [-हद्द] से परे।

50. वोरा=ओला, बर्फ। गरि जावै=गल जाता है। जूवा=जुवा, झूठा, अन्य। वाहि वाहि करि='वह है-वह है' कर के, वही-वही करके अथवा वाह-वाह करके 'वह' वही हो जाता है। यहाँ 'तत्त्वमसि' विचार सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सस्सा सेत पीत नहिं स्यामा। सकल सिरोमनि जिसका नामा।
संसकार तें सुमरै कोई। सोधै मूल सुखी सो होई ।।51।।
षष्षा षतकौं फाडि जलावै। षोडि तजै षोटा नहिं षावै।
षुशी होइ षग चढि आकाशा। षाइ अभष तब निह्चल बासा ।।52।।
शश्शा शाहिब शेवक शंगा। शुरति करै जब सिमटै अंगा।
शोरस पी रसिया होइ ऐसा। शंकर शेष रसिक है जैसा ।।53।।
हह्हा हौंणहार पर राषै। हरषि हरषि करि हरि रस चाषै।
हाल हाल होइ हेत लगावै। हँसि हँसि हंसै हंस मिलावै ।।54।।

---

51. सस्सा='स' वर्ण। सेत पीत=श्वेत-पीत, सफेद और पीला। सिरोमनि=शिरोमणि, सर्वोत्तम। संसकार तें=संस्कार वश। सोधै मूल=मूल की जो शोध करता है। **टिप्पणी** : 'बावनी' वर्ण माला क्रम में सुन्दरदास ने श-ष-स क्रम को उलट कर स-ष-श क्रम में व्यवस्थित किया हैं, जो अप्रचलित है।

52. षष्षा='ष' वर्ण। **टिप्पणी** : मध्यकालीन भाषा-काव्यों में 'ष' का उच्चारण 'ख' होता रहा है और कभी-कभी 'ष' वर्ण से बना हुआ 'ख' ध्वनि का सूचक विधायक हो जाता है। जैसे यहाँ पर 'षष्षा षत कौं' 'खख्खा खत कौं' का अर्थ दे रहा है। षत [-खत] कौं फाड़ि जलावै=कागज़ [लिखित-संचित-]कर्मों का लेखा-जोखा जला कर राख कर दे। अर्थात् तप-ज्ञान के द्वारा संचित कर्मों के बीजत्व का क्षय कर दे। षोडि [-खोडि] तजै=बुराई [-दोष] को त्याग दे। षोटा [-खोटा]=बुरा, दोषपूर्ण। षुशी होइ=खुश [-प्रसन्न] होकर। खग=पक्षी, पक्षी रूप चेतना जो ऊर्ध्वमुखी होने की सामर्थ्य रखती है। षाइ अभष=अभक्ष्य को खाती है, भौतिक खाद्य पदार्थों को छोड़ कर अहंकारादि अभक्ष्य को निगल जाती है।

53. शश्शा='श' वर्ण। शाहिब शेवक शंगा=साहब और सेवक साथ-साथ। यहाँ 'स' के स्थान पर 'श' वर्ण का प्रयोग चिन्त्य है। शो रस पी रसिया होइ ऐसा=सो रस पीकर रसिया होता है अर्थात् उस रस को पीकर जो 'रसिया' होता है, वही सच्चा ज्ञानी-भक्त है। जैसे कि शंकर और शेषनाग। तात्पर्य है कि जो उस रस की रसानुभूति से जीवन्त होता है, वही सेवक और सेव्य [-साहब] के संग की अनुभूति का सही अनुमान लगा सकता है।

54. हौंणहार=होनी। हरषि हरषि करि=हर्ष-हर्ष करके, प्रसन्नता पूर्वक। हाल हाल होइ=प्रतिक्षण [-निरन्तर[होते हुए। अथवा 'हाल'=बेसुध होने की [सूफी-सिद्धान्त में वर्णित] दशा, तत्काल तन्मय होकर तल्लीन बने रहने की दशा। हेत लगावै=स्नेह [-राग भाव, भक्ति] को लगाता है। हंस मिलावे=हंस [-शुद्ध जीवात्मा] को मिलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षक्षा क्षिरि क्षिरि गये अनेका। क्षण क्षण मांहि षबरि करि येका।
क्षर संसार क्षाल जिनि कीया। क्षाली सही षरा करि लीया ॥55॥
ज्ञान उहै कोई जो पावै। ज्ञाता कैं हृदये ठहरावै।
ज्ञेय वस्तु कौं जानें सोई। ज्ञानी उहै और नहिं कोई ॥56॥
करत करत **अक्षर** का जौरा। निशा बितीत प्रगट भयौ भौरा।
सुन्दरदास गुरु मुषि जांनां। षिरै नहीं तासौं मन मांनां ॥57॥

दोहा : **क्षर** मांहे **अक्षर** लष्या, सतगुरु के जु प्रसाद।
सुन्दर ताहि बिचारि तैं, छूटा सहज विषाद ॥58॥

॥ समाप्तोऽयं बावनी ग्रन्थः ॥13॥

---

55. क्षक्षा='क्ष' [क्+ष] संयुक्त अक्षर। क्षिरि क्षिरि=खिरि-खिरि, क्षीर्ण हो-होकर। षवरि=खबर, याद, स्मरण। क्षर=क्षरणशील, क्षयशील। क्षाली जिनि कीया=जिन्होंने प्रक्षालित कर लिया है, धुन डाला है। क्षाली=प्रक्षालित किया हुआ। अथवा ख्याली, ख्याल करने वाला, महाराग में डूबा हुआ विचारक।

56. ज्ञान उहै=वही 'ज्ञान' है, जो उसको जान लेता है, वही ज्ञानी भी है। ज्ञेय वस्तु= ज्ञातव्य वस्तु, सार तत्त्व।

57. अक्षर का जौरा=अक्षर का जोड़ अर्थात् अखण्ड [-अक्षय, अविनाशी] तत्त्व-चिन्तन का जोड़ [-संग्रह] करते-करते। निशा बितीत=अज्ञान-रात्रि समाप्त हो जाती है। भयौ भोरा=भोर हो गया, प्रभात हो गया, ज्ञान-प्रकाश का उदय हो जाता है। षिरै नहीं=जो क्षरित नहीं होता, वही 'अक्षर' है।

58. क्षर=क्षरणशील, क्षयशील अर्थात् संसार, भौतिक जगत् सांसारिक पदार्थ। अक्षर=अक्षय, अच्युत, अव्यय अथवा, अविनाशी ब्रह्म। लष्या=देखा, साक्षात्कार किया। बिषाद=खेद, दुःख, ताप-त्रय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 14 ॥ अथ गुरुदया षट्पदी ॥

प्रवेशार्थ : प्रारम्भ में दो दोहे और फिर छः त्रिभंगी छन्दों को आधार बनाने वाली यह एक लघु रचना है। 'गुरुदया षट्पदी' इस रचना का नाम 'षट्पदी' इसलिए समीचीन है कि इसका प्रतिपादित आकार छः त्रिभंगी छन्दों का है। इन छः छंदों में सुन्दर ने गुरु-कृपा और उनकी महिमा का सरस मार्मिक और भावपूर्ण वर्णन किया है। प्रत्येक त्रिभंगी की अन्तिम पंक्ति है—'दादू का चेला चेतनि भेला···।' [टेक-धुन केलिए ही नहीं, कवि-कौशल की दृष्टि से भी] महत्त्वपूर्ण है। मूलपाठ देखिए—

दोहा : अलष निरंजन बन्दिकैं गुरु दादू के पाइ।
दोऊ कर तब जोरि करि सन्तन कौं सिर नाइ ॥1॥
सुन्दर तोहि दया करी सतगुरु गहियौ हाथ।
माता था अति मोहि मैं राता बिषया साथ ॥2॥

त्रिभंगी :

तौ मैं मतमाता विषया राता बहिया जाता इन बाता।
तब गोते षाता बूडत गाता होती घाता पछिताता॥
उनि सब सुख दाता काट्यौ नाता आप बिधाता गहि लेला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥1॥

चूर्णिका : दोहा : 1. अलष निरंजन बन्दि कैं=अलख [-अलक्ष्य] निरंजन [-अंजन-मायिक दोष रहित] परमात्मा की वन्दना करके। यहाँ **'मंगलाचरण'** विधि का निर्वाह। सिर नाइ = शीश झुकाकर।

2. गहियौ हाथ [मुहा०]=हाथ पकड़ा, अवलम्ब दिया। माता था=मदमाता था, बेसुध हो रहा था। राता=अनुरक्त, विषयासक्त। **टिप्पणी : त्रिभंगी :** छन्द विशेष। जिस छन्द के प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ हों और 10-8-8-6 के नियम से यति हो तथा अन्त में गुरु वर्ण का विधान हो, वह 'त्रिभंगी' छन्द होता है।

1. मतमाता = मदमाता अर्थात् बेसुध, मोह में निमग्न। अथवा मत माता=अपने सिद्धान्त के अभिमान [-घमण्ड] में चूर। विषया राता=विषयानुरक्त, विषयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ सतगुरु आया पंथ बताया ज्ञान गहाया मन भाया।
सब कृत्रिम माया यौं समुझाया अलष लषाया सच पाया ॥
हौं फिरता धाया उनमुनि लाया त्रिभुवन राया दत देला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥2॥
तौ माया बटके कालहि झटकै लै करि पटके सब गटके।
ये चेटक नटके जानहिं तटके नैंक न अटके वै सटके ॥
जी डोलत भटके सतगुरु हटके बन्धन घट के काटेला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥3॥

बहिया जाता=बाहर जाता हुआ, बहिर्मुखी। गोते षाता=डुबकी लगाता हुआ, मोह में डूबता-उतराता हुआ। गाता=गात, शरीर। घाता=घात, चोट। पछिताता=पश्चाताप करता हुआ। नाता=सम्बन्ध सूत्र, राग के पाश, मोह [-बन्धन]। विधाता=विधान करने वाला, विधायक। गहि लेला=थाम लिया, उद्धार कर दिया। दादू का चेला=दादू का शिष्य सुन्दरदास। चेतनि भेला=चैतन्य होगया, चैतन्य हुआ अर्थात् जीवन्मुक्त हो गया। मारग बूझेला=सत्य मार्ग को समझ लिया है जिसने, सन्मार्ग को जान लेने वाला। **टिप्पणी** : 'ला' अक्षरान्त से जो शब्द सुन्दरदास ने गढ़े हैं, वे न तो साहित्यिक ब्रज भाषा में ही मिलते हैं और न ब्रजांचल में ही बोले जाते हैं। इनसे रचनाकार की भाषा-शिल्पन योग्यता ही मुखर हो रही है।

2. सतगुरु आया=सद्गुरु दादू का सोद्देश्य अवतरण हुआ। पंथ बताया=साधना-मार्ग निर्देशित किया। सब कृत्रिम माया=यह सब कृत्रिम है, माया [-क्षरणशील] है, माया मिथ्या है। सच पाया=[-तत्त्व, परम] सुख-सत्य की प्राप्ति हुई। हौं=मैं। फिरता धाया=घूमता-फिरता था, निरुद्देश्य भटकता था। उनमुनि लाया='उन्मनी अवस्था', योग-साधना में वृत्ति को लीन करा दिया, उन्मुक्त दशा में प्रतिष्ठित कर दिया। दत देला=ईश्वर [-परम तत्त्व] रूप धन प्रदान करने वाला। सुन्दर मारग बूझैला=सन्त कवि सुन्दर अथवा सुन्दर [-श्रेष्ठ]-मार्ग को जानने वाला।

3. माया बटके=माया को बाँट के, माया का विच्छेद [-उच्छेद] करके अथवा रस्सी की तरह माया को बटके [-भान कर] अर्थात् समेट कर। कालहि झटकै=काल [-मृत्यु-जन्म] भय को झटक कर दूर कर दे। गटके=निगल लिए। चेटक नटके=नट जैसे तमाशे में विचित्र करामात दिखाता है, वैसे ही गुरु ने संसार-तमाशे में अद्भुत दृश्य दिखाए। जानहिं तट के=गुरु के अद्भुत करतब को वे ही जान सकते हैं, जो तटवासी [-तटस्थ] हैं, भव-सागर से तरने के उद्देश्य से तट पर विराजमान हैं अर्थात् महात्मा, साधु-सन्त। अटके=रुके, फँसे। सटके=वे माया जाल से [-बड़ी कुशलतापूर्वक] निकल भागे। भटके=भटकते-फिरते हैं, कुमार्गगामी बने-रहते हैं। हटके=वर्जन किया, अनुशासित किया, दिशा दी। काटेला=काटने वाला, बन्धन मुक्त करने वाला। **टिप्पणी** : 'टेक' अन्त्यानुप्रास से शब्द-लालित्य तो बढ़ा ही है, साथ ही शब्द-प्रयोग एवं सार्थक शब्दों के विधान से कवि प्रतिभा भी मुखर हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ पाई जरिया सिर परि धरिया बिस ऊषरिया तन तिरिया ।
जी अब नहिं डरिया चञ्चल थिरिया गुरु उच्चरिया सो करिया ॥
तब उमग्यौ दरिया अमृत झरिया घट भरिया छूटौ रेला ।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥4॥
तौ देष्यौ सीना मांझ नगीना मारग झीना पग हीना ।
अब हौ तूं दीना दिन दिन छीना जल बिन मीना यौं लीना ॥
जी सो परवीना रस मैं भीना अन्तरि कीना मन मेला ।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥5॥
तौ बैठा छाजं अन्तरि गाजं रण मैं राजं नहिं भाजं ।
जी कीया काजं जोड्या साजं तोडी लाजं यह पाजं ॥
उनि सब सिरताजं तबहि निवाजं आनन्द आजं अक्केला ।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥6॥8॥

॥ समाप्तोऽयं गुरुदया षट्पदी ग्रन्थः ॥14॥

---

4. जरिया=जड़ी, ज्ञान, ज्ञान-औषधि, ज्ञान-मूल । बिस ऊषरिया=विष उखड़ गया, विष[-वृक्ष की उत्पत्ति]जड़ सहित उच्छेद हो गया अर्थात् 'मोहासक्ति मूल' निर्मूल हो गया, सूख गया । तिरिया=सन्तरित हुआ । जी=प्राण तत्त्व, चेतना, अथवा दादू जी । चञ्चल थिरिया=जो मन चंचल [-अस्थिर] था, वह स्थिर हो गया । उमग्यौ दरिया=भक्ति-ज्ञान-भाव रूप दरिया का प्रवाह उमड़ पड़ा । छूटौ रैला=रेला[-रैला]-प्रवाह [-वेग] फूट पड़ा ।

5. सीना [फा०]=दिल, हृदय, अन्तःकरण । नगीना [फा०]=रत्न, मणि । मारग झीना पगहीना=साधना-मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म और भौतिक पगों से चलने में अगम्य है, सूक्ष्म चेतना से ही वहाँ पहुँचा जा सकता है । कबीर की साक्षी है—

'जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल ।'—क० ग्रं० 14/7

'कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल ।
पांव न टिकै पिपीलका, लोगनि लादे बैल ॥'—क०ग्रं० [पा०] 10/2

यौं लीना=इसप्रकार लयलीन हुआ । दीना=दीन, विनम्र, अभिमान रहित । छीना=क्षीण । परवीना=प्रवीण कुशल । रस-भीना=रस [-ब्रह्मानंद] में तन्मय । मन मेला=मन मिल गया है, मन एकमेक हो गया है ।

6. बैठा छाजं=छज्जे पर अर्थात् ऊपर बैठा है, ऊर्ध्वमुखी अवस्था में प्रतिष्ठित होकर शोभायमान है । गाजं=गर्जना करता है अर्थात् माया को ललकारता है । रण में राजं=साधक, साधना रूप युद्ध-क्षेत्र में शोभायमान बना रहता है । मोहासक्ति रूप प्रतिरोधक, शक्तियों से बराबर जूझता है । नहिं भाजं=भागता नहीं है, कायर की तरह पीठ नहीं दिखाता । पाजं=पाज [-पायजेब], पैर के बन्धन । तबहि निवाजं=उसी सयय उद्धार करने वाला । आजं=अद्य[सं०], तत्काल । अक्केला=अकेला, एकमात्र, अद्वितीय आनन्द ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 15 ।। अथ भ्रम विध्वंस अष्टक ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अष्टक रचना, आगे क्रमशः सम्पादित 12 अष्टकों में से एक है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि शीर्षकों में **'अष्टक'** सर्वमान्य होते हुए भी, विषय [-प्रतिपाद्य], प्रयोजन [-भेद] एवं छन्द-प्रयोग की दृष्टि से इन सभी अष्टकों की अपनी-अपनी अलग पहचान है। जैसा कि प्रस्तुत शीर्षक **'भ्रम विध्वंस'** से व्यंजित है कि इस रचना में **'भक्त-भेष'** की **'रहनी'** में जीने वाले पाखण्डी षट् दर्शनी, तपी, सेवड़ा, संन्यासी जोगी, अरहत धर्मी, पंडित, मुल्ला-शेखों को रचनाकार ने भ्रम-ग्रस्त बताया है। सुन्दरदास की दृष्टि में [आत्म-] तत्त्व-दर्शन न कर पाने वाला प्रत्येक व्यक्ति भ्रान्ति-ग्रस्त है। किन्तु, 'दादू का चेला' के रूप में सुन्दरदास ने स्वयं को, कबीर की तरह, अनौखी चर्या [-खेल] का अनुवर्तक बताते इस भ्रम से मुक्त दिखाया है। अन्तिम टेक-पंक्ति सभी 8 त्रिभंगी छन्दों में समान रूप से प्रयोजित है। यह भी ध्यातव्य है कि शीर्षक मर्यादा के कारण 8 त्रिभंगी छन्द ही अष्टक अन्तर्गत हैं, दो दोहे और एक छप्पय छन्द प्रतिपाद्य-प्रयोजन और [फल-] समाहार करने वाले-से लगते हैं। त्रिभंगी छन्द का प्रवाह मार्मिक बन पड़ा है। मूलपाठ देखिए—

दोहा : सुन्दर देष्या सोधि कैं सब काहू का ज्ञान।
कोई मन मानै नहीं बिना निरंजन ध्यान ।।1।।
षट दरसन हम षोजिया योगी जंगम शेष।
संन्यासी अरु सेवडा पण्डित भक्ता भेष ।।2।।

चूर्णिका : दोहा : 1. देख्या सोधि कैं=शोध कर, अन्वीक्षण करके देख-परख लिया है। सब काहू का ज्ञान=सभी मत-मतान्तरों का विचार [-चर्या पक्ष] सोच-समझ लिया है। कोई मन मानै नहीं=कोई भी मत [-विचार] मन [-विवेक] को सन्तुष्ट नहीं कर पाया।

2. षोजिया=खोज की है, शोध किया है। जंगम=चर, चल-गतिशील। किन्तु, यहाँ 'जंगम' शब्द दाक्षिणात्य लिंगायत शैव सम्प्रदाय के अनुयायिओं अथवा उनके दिशा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभंगी : तौ भक्त न भावै दूरि बतावैं तीरथ जावैं फिरि आवैं ।
जो कृत्रिम गावैं पूजा लावैं झूठ दिढावैं बहिकावैं ।।
अरु माला नांवैं तिलक बनावैं क्यौं पावैं गुरु बिन गैला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला ।।1।।
तौ योगी गहिला देषै सहिला नांहीं लहिला वो महिला ।
वै मांस भषैला मद पीवैला भूत जपैला पूजैंला ।।
जो गोरष कहिला सोनक रहिला बिनहीं चहला बींधेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला ।।2।।

निर्देशक गुरुओं केलिए प्रयुक्त हैं । अर्थात् जंगम-विचारधारा वाले लोग । इसके मानने वाले आजन्म ब्रह्मचारी रहकर, किसी मठ के अधीन शिक्षा-दीक्षा लेते हैं । 'लिंगायत सम्प्रदाय' के निर्देश इन्हीं जंगमों के अधीन रहते हैं। इनकी भी दो श्रेणियाँ होती हैं—[अ]गुरु-स्थल पर रहने वाले एवं [आ] विरक्त । शेष=शेख [अ०]पैगम्बर मुहम्मद के वंशजों की उपाधि, इस्लामी सिद्धान्त प्रतिपादक आचार्य-मौलवी । संन्यासी=संन्यासी, संन्यास-आश्रम में रहने और उसके नियमों का पालन करने वाले, जो तृष्णा त्याग कर निष्काम होकर समता भाव से, नित्य-नैमित्तिक कर्म करता हुआ लोक-कल्याण केलिए सदुपदेश देता है। सेवड़ा = जैन मतावलम्बी साधुओं का समुदाय अर्थात् जैन यती । ये **'ढूँढिया'** साधु कहलाते हैं । भेष=साधु [-वेश के] ।

त्रिभंगी : 1. दूरि बतावै=ईश्वर को दूर [-अपने से बाहर] तीर्थादि में बताते हैं । भक्त न भावै=ऐसे भक्त जो ईश्वर को दूर बताते हैं, अच्छे नहीं लगते । फिरि आवैं=घूम-फिर कर आते हैं । जो कृत्रिम गावैं=जो झूठ [-दिखावा करके] गाते-कीर्तनादि करते हैं । झूठ दिखावैं बहिकावैं = झूठ पर विश्वास दिलाकर बहकाते हैं। भरम पछेला=भ्रम को पीछे खदेड़ देने वाला । न्यारा ह्वै=विलक्षण ढंग से, अद्‌भुत तरीके से संसार में खेल-खेला है ।

2. गहिला=बावला, मूर्ख । देषै सहिला=सम्पूर्ण को देखता है अथवा [सहिला-]सहज रूप में देखता है। वो महिला = उस महल को, गन्तव्य-लक्ष्य को । वै=वे । मांस भषैला = मांस भक्षक हैं । मद पीवैला=मदिरा पान करने वाला । भूत जपैला= भूत-प्रेतादि की पूजा [-साधना] करने वाले । जो गोरष कहिला=उक्त प्रकार के योगी अपने को गोरख के अनुयायी बताते हैं और गोरख [-अलख] जगाते हैं। सोनक रहिला=जो केश [या पंच-केश] रखते थे। ऐसे मतावलम्बी 'सोनकादि' कहलाते थे। 'खालसा पन्थ' में भी 'पंच ककार' के अन्तर्गत केश-रक्षा का नियम है । चहला=चाहते हैं। बींधेला=बींध देने वाले, नागा साधु तांबे की कड़ी-छल्ला से लिंग [-मूत्रेन्द्रिय] को बींध कर दृढ़ ब्रह्मचर्य का प्रदर्शन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ तपी संन्यासी राष लगासी जटा बधासी भटकासी ।
जब जोबन जासी धौला आसी तब करि दासी बैठासी ।।
सब अकलि गमासी लोक हंसासी माया पासी अरझेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला ।।3।।
तौ जंगम अंगा लडिकैं लिंगा फिरै कुढङ्गा शिव मंगा ।
वै डसै अनङ्गा बडे भुजंगा दीप पतंगा सबंगा ।।
पुनि नांही चङ्गा देषे रङ्गा उनकौ संगा छाडेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला ।।4।।
तौ अरहत धरमी भारी भरमी केश उपरमी बेशरमी ।
जी भोजन नरमी षावै षुरमी मनमथ करमी अति उरमी ।।
अरु दृष्टि सु चरमी अन्तिर गरमी नाहीं मरमी गहि ठेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला ।।5।।

---

3. तपी=तपस्वी । राष लगासी=राख लगाते हैं, विभूति मलते हैं । जटा बधासी= जटाएँ [-भेषधारियों के उलझे हुए लम्बे केश] बढ़ाते हैं । भटकासी=भटकाते हैं, विभ्रमित करते हैं । जोवन जासी=योवन जाता है, युवावस्था ढलती है । धौला आसी=सफेदी आती है, सफेद बाल होते हैं । तब करि दासी बैठासी=तब दासी [-चेली] को घर में [-घरवाली के रूप में] बैठाकर जीवन जीता है । अकलि गमासि=बुद्धि गँवा देता है । लोक हंसासी=लोक-हँसाई करवाता है । माया पासी=माया के पाश [-बन्धन] में । अरझेला=उलझ जाते हैं, फँस जाते हैं ।

4. लिंगा=लिंगायत मत के योगी । फिरै कुढङ्गा=बेढंगे तौर-तरीके से घूमता-फिरता है, अभद्र वेश में । शिव मंगा=शिव के नाम से भीख माँगते हैं । वै=वे । डसै अनङ्गा=काम-वासना ग्रस लेती है । भुजंगा=सर्प । दीप पतंगा=[काम पीड़ित होकर वे-] दीप पर पतंगें की तरह जीवन नष्ट करते रहते हैं । चङ्गा=खुश, कुशल । देषे रङ्गा=उनके रंगीन दृश्य देखे अर्थात् देखने पर उनका संग साथ-साथ छोड़ देता है ।

5. अरहत धरमी=जैन मत को मानने वाले । भारी भरमी=बहुत बड़े भ्रम में पड़े हुए । केश उपरमी=केश-लुंचन करने वाले' केश उपाड़ने या उखाड़ने वाले । वेशरमी=वेशर्म, वेहया जो केश उखाड़ते हैं । भोजन नरमी=मुलायम-गुलगुला भोजन । षावै षुरमी=खुरमा[-चाशनी में पगी हुई एक मिठाई] खाते हैं । मनमथ करमी=वासना-तृष्णा के वशीभूत काम करने वाले । अति उरमी=बहुत बड़े प्रपंच [-लहरों]में पड़े हुए । टिप्पणी : त्यागी वेश धारणा करने पर भी षडूर्मियों में पड़े हुए भेषधारी साधु, भ्रान्ति-ग्रस्त बताए गए हैं । ये षडूर्मी=छः ऊर्मियाँ हैं—भूख, प्यास, शोक, मोह, बुढ़ापा और मृत्यु । दृष्टि सु चरमी=चर्म-दृष्टि अर्थात् बाह्य [-बहिरंग] दृष्टि [-विचार] की प्रधानता वाले । अन्तिर गरमी=हृदय में काम-वासना अथवा तृष्णा की आग है जिनके । नाहीं मरमी=ये मर्म को नहीं समझते । गहि ठेला=मर्म को न समझने के कारण ये योंही साधु जीवन में ठेल दिए गए हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ शेष मुलाना पढें कुराना पच्छिम जाना उनि ठाना।
जी भांगि भुजाना बगनी छाना भये दिवाना सैताना।।
अरु जीव दुषाना दरद न आना कह्या न माना बरजेला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला।।6।।

तौ पंडित आये बेद भुलाये षटक रमाये त्रपनाये।
जी संध्या गाये पढि उरझाये राना राये ठगि षाये।।
अरु बड़े कहाये गर्व न जाये राम न पाये थाघेला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला।।7।।

तौ ए मत हेरे सबहिन केरे गहि गहि गेरे बहुतेरे।
तब सतगुरु टेरे कानन मेरे जाते फेरे आघेरे।।
उन सूर सबेरे उदै किये रे सबै अंधरे नाशेला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला।।8।।

---

6. शेष मुलाना=शेख और मुल्ला लोग, इस्लाम धर्म के आचार्य-पुरोहित, मौलवी। पच्छिम जाना उनि ठाना=पश्चिम में जाने अर्थात् मक्का-मदीने की हज-तीर्थ यात्रा करने की उन्होंने ठानी हुई है। भांगि भुजाना=भाँग, विजया [-मादक] पौधे की पत्तियों को भून कर खाना। बगनी [देश०]=मादक घास। सैताना=शैतान। जीव दुषाना=जीवों की हिंसा करना, प्राणियों को कष्ट देना। दरद न आना=दर्द [-पराई पीड़ा] का अनुभव न करना। बरजेला=वर्जन करने वाला।
7. पंडित=कर्मकाण्डी पण्डित, पुरोहित। बेद भुलाये=वेद-ज्ञान की अहंमन्यता में विभ्रमित बने रहते हैं। षटक रमाये=षड् शास्त्र में रमण करते हैं, शास्त्र को ओढे रहते हैं। त्रपनाये=तर्पणादि कर्मकाण्ड में लगे रहते हैं। संध्या गाये=सन्ध्या-पाठ करते हैं, सन्ध्या गान गाते-रहते हैं। पढि उरझाये=पढ़ने के बाद भी उलझे रहते हैं। राना राये=राणा और राजा, छोटे-बड़े राजा। बड़े कहाये=बड़े कहलाते हैं। गर्व न जाये=घमण्ड नहीं जाता। थाघेला=थाघ लगाने वाले, पता लगा लेने वाले, खोजी।
8. ए मत हेरे=ये सभी मत-मतान्तर मैंने देख लिए हैं, परख लिए हैं। सबहिन केरे=सभी मतावलम्बियों के। गेरे=डाल दिये हैं। टेरे=पुकारे, पुकार लगाई, प्रार्थना की। जाते फेरे आघेरे=फिर कर जाते हुए को आकर घेर लिया। सूर=सूर्य। सूर सबेरे उदै किये रे [मुहा०] सूर्य]-ज्ञान] सबेरे ही [-प्रातःकाल अर्थात् प्रकाश की बेला में] उदित कर दिया गया। अंधरे नाशेला=अंधेरा नाश हो गया अथवा अंधेरा नाश करने वाले गुरु ने, जीवन में बहुत जल्दी ही ज्ञान-सूर्य को उदित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप्पय : सतगुरु मिले सुजान श्रवन जिनि शब्द सुनाया ।
सिर पर दीया हाथ भरम सब दूरि उड़ाया ॥
उपज्या आतम ज्ञान ध्यान अभिअंतरि लागा ।
किया ब्रह्म सौं नेह जगत सौं तोर्‌या तागा ॥
तौ राम नाम दत्त पाइया छूटै बाद बिबाद तें ।
अब सुन्दरदास सुखी भये गुरु दादू परसाद तें ॥1॥11॥

॥ समाप्तोऽयं भ्रम विध्वंस अष्टक ग्रन्थः ॥15॥

छप्पय : 1. सुजान=सुज्ञानी । सिर पर दीया हाथ [मुहा०]=सिर पर हाथ रख दिया अर्थात् आशीष दिया, अपने कृपा-हस्त से संरक्षित किया । **टिप्पणी** : इस छप्पय छन्द में सुन्दर जी द्वारा दादूजी से प्रथम बार कृपा[-शिष्यता]प्राप्त करनेका उल्लेख है । कहते हैं कि दादू जी, सुन्दरदास के बाल्यकाल में ही द्यौसा पधारे थे । तभी सुन्दर के पिता ने बालक सुन्दर को दादूजी को समर्पित कर दिया था और दादू जी ने बालक के सिर पर हाथ रखकर उसे अपना लिया था । उपज्या=उत्पन्न हुआ । अभिअंतरि=हृदय में, भीतर । तोर्‌या तागा=सूत्र तोड़ दिया, सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया । दत्त पाइया=दान रूप में प्राप्त किया । बाद बिबाद=वाद-विवाद, व्यर्थ का तर्क-वितर्क । परसाद तें=प्रसाद से, कृपा से ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 16 ।। अथ गुरुकृपा अष्टक ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अष्टक रचना में 9 दोहे, 8 त्रिभंगी और 1 छप्पय छन्दों के योग से 18 छन्द हैं। किन्तु, आठ त्रिभंगी छन्दों के आधार पर ही इस रचना को 'अष्टक' शीर्षक की सार्थकता प्राप्त हुई लगती है। यह बात यों भी सिद्ध है कि रचनाकार ने प्रत्येक त्रिभंगी छन्द की अन्तिम पंक्ति 'दादू गुरु आया शब्द सुनाया, ब्रह्म बताया अविनाशी' प्रत्येक छन्द के साथ जोड़ी है। यह पंक्ति गुरु-कृपा की स्वीकृति के रूप में सर्वत्र प्रतिध्वनित हुई है। प्रथम दो दोहों में **'मंगलाचरण'** की विधि का निर्वाह भी है। शिष्य को भौतिक रूप में सावधान रखना और अध्यात्म पथ पर निरन्तर अग्रसर बनाए रखना ही प्रत्येक छंद की मूल प्रेरणा है। दादू-द्वारों में एवं दादू पन्थ के अनुयायिओं में यह अथवा इसप्रकार के अन्य अष्टकों का नित्य पाठ होता था। ऐसा नित्य पाठ सुन्दर-वाणी की ग्राह्यता एवं महत्त्व को प्रतिपादित करता है। मूल पाठ देखिए—

दोहा :
दादू सद्‌गुरु के चरण, अधिक अरुण अरविन्द।
दुःखहरण तारण - तरण, मुक्त करण सुखकन्द ।।1।।
नमस्कार सुन्दर करत, निश दिन बारंबार।
सदा रहौ मम सीस पर, सद्‌गुरु चरण तुम्हार ।।2।।

त्रिभंगी : तौ चरण तुम्हारा प्राण हमारा तारणहारा भव पोतं।
जो गहै विचारा लगै न बारा बिन श्रम पारा सो होतं ।।
सब मिटै अंधारा होइ उजारा निर्मल सारा सुख राशी।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ।।1।।

चूर्णिका : दोहा : 1-2. चरण अरुण अरविन्द=चरण अरुणिम कमल के समान। आलंकारिकता के सहारे पूज्य चरणों की स्वीकृति [उपमा-रूपक]। तारण-तरण=[तारने-उद्धार-]निस्तार करने में समर्थ। मुक्त करण=मुक्त करने-कराने वाले। सुखकन्द=सुख के भण्डार, आनन्ददायक। मम सीस पर=मेरे शीश पर, मेरे लिए [सर्वश्रेष्ठ-] शिरोमणि रूप में प्रतिष्ठित रहें।

त्रिभंगी : 1. प्राण हमारा=प्राण-प्रिय। तारणहारा=तारक, निस्तारक, उद्धारक। भव पोतं=संसार रूप सागर में पोत [नौका] की तरह [तारक]। लगै न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : तन मन इन्द्री बशकरन ऐसा सद्गुरु सूर ।
शंक न आनै जगत की हरि सौं सदा हजूर ।।3।।

त्रिभंगी : तौ सदा हजूरं अरि दल चूरं भागै दूरं भकभूरं ।
तब बाजै तूरं आतम मूरं झिलि मिलि नूरं भरपूरं ।।
पुनि यहै अकूरं नांहीं ऊरं प्रेम हिलूरं बरषाशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनाशी ।।2।।

दोहा : दुन्द रहित निर्मल दशा सुख दुख एक समान ।
भेदाभेद न देषिये सद्गुरु चतुर सयान ।।4।।

त्रिभंगी : तौ चतुर सयानं भेद न आनं अबिचल थानं जिनि जानं ।
अरु सब भ्रम भानं नाहीं छानं पद निर्बानं मन मानं ।
जौ रहै निदानं सो पहिचानं पूरण ज्ञानं मम आशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनाशी ।।3।।

बारा=देर नहीं लगती। बिन श्रम=बिना कठिन परिश्रम के। सो होतं=वह पुरुष-साधक पार हो जाता है। अंधारा=अन्धकार, अज्ञान। उजारा=प्रकाश, ज्ञान-प्रकाश। सारा=सम्पूर्ण अथवा सार। सुखराशी=अक्षय सुख, आनन्द घन, सुख का भण्डार। दादू गुरु आया=गुरु दादू का लोक में आगमन हुआ, अवतरण हुआ। ब्रह्म बताया अबिनाशी=अविनाशी ब्रह्म का निर्देश किया। कबीर की साखी देखिए—'बलिहारी गुर आपने गोविंद दियो बताइ [-दिखाइ]।'

दो० 3. बशकरन=वश में करने वाला। सूर=शूरवीर, योद्धा, अध्यात्म के क्षेत्र में पराक्रमी। शंक न आनै जगत की=दुनिया [-लोक-चाल, भेड़ चाल] की परवाह नहीं करता, लोक-व्यवहार की चिन्ता न करने वाला, स्व-विवेक से अपना मार्ग निर्धारित करने वाला। सदा हजूर=सदा निकट। सायुज्य भक्ति की अवस्था।

त्रि० 2. अरि दल चूरं=शत्रु दल [अध्यात्म मार्ग के शत्रु—काम-क्रोध-लोभ-मोहादि तथा अहंकार, आसक्ति आदि] को चूर्ण करने वाला, निरस्त करने वाला [-शिकस्त देने वाला]। भकभूरं [देश०]=बेतहाशा अर्थात् मैदान छोड़ कर भागने वाले। तूरं=तूर्य [सं०] नगाड़ा, तुरही आदि, विजयघोष। नूरं=प्रकाश, विजयोल्लास की रोशनी, ज्ञान का प्रकाश। आतम मूरं=आत्मा ही मूल तत्त्व है, इस सिद्धांत की प्रतिष्ठा में विजयोल्लास और उसकी विजय-दुन्दुभी। अकूरं=अंकुर मात्र। नांहीं ऊरं=छोटा नहीं। हिलूरं=हिलोर, लहर। बरषाशी=वर्षा की तरह, प्रेम-मेह की झड़ी।

दो० 4. दुन्द=द्वन्द्व, संघर्ष। निर्मल दशा=अनाविल-पवित्र अवस्था। भेदाभेद=न देषिये=भेद-अभेद का आरोपण दिखाई नहीं देता। चतुर=कुशल। सयान=सज्ञान [सं०], बुद्धिमान।

त्रि० 3. भेद न आनं=भेद-फर्क नहीं लाता है अथवा अन्य भेद नहीं है। थानं=स्थान, स्थिति। जिनि जानं=जिन्होंने जान लिया है। भ्रम भानं=भ्रम विदीर्ण कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : समदृष्टी शीतल सदा अद्भुत जाकी चाल ।
ऐसा सद्गुरु कीजिए पल मैं करै निहाल ॥5॥

त्रिभंगी : तौ करै निहालं अद्भुत चालं भया निरालं तजि जालं ।
सो पिवै पियालं अधिक रसालं ऐसा हालं यह ष्यालं ॥
पुनि वृद्ध न बालं करम न कालं भागे सालं चतुराशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनाशी ॥4॥

दोहा : मनसा बाचा कर्मना सब ही सौं निद्दोंष ।
क्षमा दया जिनके हृदै लीयें सत सन्तोष ॥6॥

त्रिभंगी : तौ सत सन्तोषं है निर्दोषं कतहुं न रोषं सब पोषं ।
पुनि अन्तह कोषं निर्मल चोषं नांहीं धोषं गुन सोषं ॥
तिहिं सम सरि जोषं कोइ न होषं जीवन मोषं दरसाशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनाशी ॥5॥

[-करा] दिया है । अर्थात् समाप्त कर दिया है जिन्होंने । नाहीं छानं=कोई आड़ नहीं रही, कोई रहस्य उद्घाटित करने को नहीं रहा । पद निर्बान=मोक्ष पद । जो रहै निदानं=जो आदि से अन्त तक रहे । मम आशी=मुझे आवेगा अर्थात् मुझे प्राप्त होगा, यह निश्चय ।

दो० 5. समदृष्टी=समदृष्टि वाला, समता भाव वाला । शीतल=शान्त भाव का । अद्भुत चालं=विलक्षण गति वाला । निहाल=उद्धार, सफल, पूर्णकाम ।

त्रि० 4. जालं=जाल, पाश, बन्धन । पियालं=प्याला, चषक । रसालं=रसाल, रस । हालं=हाल, दशा, अवस्था । ष्यालं=ष्याल [अ०]=ध्यान, वृत्ति । करम न कालं=कर्म और काल नहीं अर्थात् साधना की परम परम-दशा में देश-काल नहीं रहते । सालं=चुभन, काँटा, शूल । चतुराशी=चौरासी लाख योनियों का परिभ्रमण ।

दो० 6. मनसा बाचा कर्मना=मन-वाणी और कर्म से । निद्दोंष=दोष रहित स्थिति में । हृदै=हृदय में ।

त्रि० 5. रोषं=क्रोध, आक्रोश । सब पोषं=सब को पोषण [-आश्रय] देने वाले । अन्तह कोषं=अन्तःकरण रूप भण्डार । चोषं=चोष्य, पेय [-रस], पान करने योग्य । धोषं=धोखा, आडम्बर, दिखावा । गुन सोषं=त्रिगुण-ताप का शोषण करने वाला अथवा जो त्रिगुणातीत हो चुका है । जोषं=जोश, आवेश । समसरि=साम्य-समवृत्ति रखने वाला । कोइ न होषं=कोई भी हौंस [-कामना, इच्छा या हविस] नहीं । जीवन मोषं=जीवन मोक्ष, जीवन्मुक्ति । दरसाशी=दिखाने वाला, साक्षात्कार कराने वाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : भान उदै ज्यौं होत ही रजनी तम कौ नाश ।
सुखदाई सदगुरु सदा जिनकै हृदै प्रकाश ।।7।।

त्रिभंगी : तौ हृदै प्रकाशं रटतै स्वासं भया उजासं तम नाशं ।
पुनि धर आकाशं मध्य निवासं कीया बासं अनयाशं ।।
सो है निज दासं प्रभु कै पासं करत विलासं गुणगासी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनासी ।।6।।

दोहा : सदगुरु प्रगटे जगत मैं मानहुं पूरण चन्द ।
घट मांहै घट सौं पृथक लिप्त न कोऊ द्वन्द ।।8।।

त्रिभंगी : तौ लिप्त न द्वन्द्वं पूरण चन्दं नित्यानंदं निस्पंदं ।
सो गुरु गोबिंदं एक पसन्दं गावत छंदं सुखकन्दं ।।
जे हैं मतिमन्दं बींधे फंदं वै सब रिंदं मुरझासी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनाशी ।।7।।

दोहा : सदगुरु सुधा समुद्र है सुधामई हैं नैंन ।
नष शिष सुधा स्वरूप पुनि सुधा सु बरषत बैंन ।।9।।

दो० 7. भान=भानु, सूर्य । होत ही=होते ही । रजनी तम=रात्रि का अन्धकार, भव-रात्रि का मोहान्धकार ।

त्रि० 6. रटतै स्वासं=श्वास-प्रश्वास में रटते हुए-जपते हुए, साँस-साँस में स्मरण करते हुए । उजासं=प्रकाश, ज्ञान-ज्योति । धर आकाशं=धरती और आकाश अर्थात् पंच भूतमयी काया, धरती और आकाश [-शून्य] स्वरूप निराकार ब्रह्म के बीच निवास करने लगी । अनयाशं=अनायास, सहज ही, सहज समाधि में । निज दासं=निज इन्द्रियों को वशीभूत करने वाला [-भूतजयी] दास, सेवक । प्रभु पासं=प्रभु की समीपता में । गुण गासी=गुणगान करता है ।

दो० 8. प्रगटे=अवतरित हुए, साकार होकर प्रत्यक्ष हुए । पूरण चंद=पूर्ण चन्द्रमा की तरह सुखदायी [उत्प्रेक्षा] । घट मांहै घट सौं पृथक=शरीर [-घर, घट, हृदय] में रहते हुए भी उससे, अनासक्त भाव के कारण, अलग रहते हैं । लिप्त न=आसक्त नहीं ।

त्रि० 7. नित्यानंदं=नित्य आनन्द भाव में रहने वाले । निस्पदं=स्पन्दन रहित, निश्चेष्ट, शान्त । एक पसन्दं=एक परमात्मा को पसन्द करने वाले । मतिमन्दं=मूर्ख, अज्ञानी, तुच्छ बुद्धि वाले । बींधे फंदं=फन्दे-पाश में बिंधे हुए । रिंदं [फा०]=स्वच्छन्द प्रकृति का, मनमौजी, धार्मिक बन्धनों को न मानने वाला । मुरझासी=मुरझा जाएगा, सूख जाएगा ।

दो० 9. सद्गुरु सुधा समुद्र=सद्गुरु अमृत सागर है [रूपक] । सुधामई=अमृतमय । सुधा स्वरूप=अमृत के समान प्रभावकारी । सुधा बैंन=अमृतमयी वाणी [-वर्षा] ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभंगी : तौ जिनिकी बांनी अमृत बषांनी संतनि मांनी सुखदांनी।
जिनि सुनि करि प्रानी हृदये आनी बुद्धि थिरांनी उनि जांनी।।
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नांहिन छांनी गंगा सी।
दादू गुरु आता शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अबिनाशी।।8।।

छप्पय : सदगुरु ब्रह्मस्वरूप रूप धारहिं जग माहीं।
जिनके शब्द अनूप सुनत संशय सब जाहीं।।
उर मंहि ज्ञान प्रकाश होत कछु लगै न बारा।
अन्धकार मिटि जाइ कोटि सूरय उजियारा।।
दादू दयाल दह दिश प्रगट झगरि झगरि द्वै पष थकी।
कहि सुन्दर पंथ प्रसिद्ध यह संप्रदाय परब्रह्म की।।1।।18।।

।। समाप्तोऽयं गुरु कृपाष्टक ग्रन्थः ।।16।।

त्रि० 8. बांनी=वाणी, शब्द, वचन। सुखदांनी=सुखदायक। बुद्धि थिरांनी=बुद्धि स्थिर [-निश्चय] भाव को प्राप्त हुई, स्थिति-प्रज्ञता प्राप्त हुई। प्रकट प्रवानी=प्रत्यक्ष प्रमाण। छांनी=छिपी हुई, गुप्त। गंगा सी=गंगा के समान अमृतमयी, लोकोपकारक [उपमा]।

छप्पय : 1. रूप धारहिं=रूप धारण करते हैं, साकार [-रूपायित] होते हैं, ब्रह्मांश को लेकर प्रकट होते हैं। शब्द अनूप=अनुपम शब्दों से। जांहीं=समाप्त [-निर्मूल] होते हैं। बारा=वार, देर, विलम्ब। सूरय=सूर्य, ज्ञान-सूर्य। दहदिश-प्रगट=दस दिशाओं में प्रकट अर्थात् सर्वत्र प्रख्यात। झगरि झगरि=झगड़ा कर-कर के। द्वै पष थकी=दोनों पक्ष, पूर्व पक्ष एवं उत्तर पक्ष अर्थात् स्वयं पक्षधरता ही थक गई, मध्यम मार्गी [-बिवेकमयी] स्थिति के कारण। पंथ=मार्ग। संप्रदाय परब्रह्म की='ब्रह्म सम्प्रदाय' की। दादू-पन्थ **'ब्रह्म सम्प्रदाय'** नाम से प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 17 ।। अथ गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक ।।

प्रवेशार्थ : यह अष्टक-रचना 10 दोहे एवं 8 गीतक छन्दों में नियोजित है। नाम की सार्थकता आठ गीतक छन्दों के आधार पर है। क्रम इसप्रकार है कि पहले दोहा छन्द में गीतक के प्रतिपाद्य को सूत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है, फिर उसी को गीतक में विस्तार दिया गया है। निर्गुण सन्त-वाणी प्रतिपादित 'गुरु' के महत्त्व, उपदेश और कार्य-विधि को सुविचारित सार के रूप में इन गीतक छन्दों में अभिव्यक्ति मिली है। ये छन्द पाठ्य-गेय और समूह-गान की दृष्टि से भी उपादेय हैं। यहाँ अध्यात्म-परम्परा में निरूपित गुरु के कार्य को प्रस्तुत करने में रचनाकार का स्वाध्याय-चिन्तन और विश्वास ही प्रधान रूप में मुखर हुआ है। मूलपाठ देखिए—

दोहा : दादू सद्गुरु सीस पर, उर मैं जिनकौ नाम।
सुन्दर आये सरन तकि, तिन पायौ निज धाम ।।1।।
बहे जात संसार मैं, सद्गुरु पकरे केश।
सुन्दर काढे डूबतें, दै अद्भुत उपदेश ।।2।।

चूर्णिका : दो० 1-2. सीस पर=शीश पर अर्थात् सर्वोच्च स्थिति में प्रतिष्ठित [-स्वीकृत]। सरन ताकि=शरणागत-वत्सलता को निहार कर। निज धाम=आत्म पद, परम पद। बहे जात संसार मैं=संसार-प्रवाह में बहे जाते हुए, भेड़-चाल में जीवन समाप्त करते हुए। पकरे केश=केश पकड़कर, विविश को सहारा देते हुए। डूबतें काढे=डूबते हुए को निकाला, उद्धार किया। यह कबीर की एक साखी का ही भाव रूपान्तरण है। देखिए—

'ऐसा कोई नां मिलै, हमकौं दे उपदेश।
भौसागर मैं डूबतां, कर गहि काढै केस ।।'—क० ग्रं० 43/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतक : उपदेश श्रवन सुनाइ अद्भुत हृदय ज्ञान प्रकाशियौ।
चिरकाल कौ अज्ञान पूरन सकल भ्रम तम नाशियौ ॥
आनंददायक पुनि सहायक करत जन निःकाम है।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम है ॥1॥

दोहा : सुन्दर सद्गुरु हाथ मैं, करडी लई कमांन।
मार्यौ पैंचि कसीस करि, बचन लगाया बांन ॥3॥

गीतक : जिनि बचन बान लगाइ उर मैं मृतक फेरि जिवाइया।
मुख द्वार होइ उचार करि निज सार अमृत पिवाइया ॥
अत्यन्त करि आनन्द मैं हम रहत आठौं जाम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ॥2॥

दोहा : सुन्दर सद्गुरु जगत मैं, पर उपगारी होइ।
नीच ऊंच सब ऊधरै, सरनै आवै कोइ ॥4॥

गी० 1. ज्ञान प्रकाशियौ=ज्ञान प्रकाशित किया, ज्ञान-प्रकाश हुआ। तम नाशियौ= अन्धकार [-मोहान्धकार] नष्ट हुआ। सहायक=सहाय्य देने वाले गुरु। करत जन निःकाम है=जन [-भक्त, अनुगामी] को निष्काम बना देता है। ताहि=उसको। मोर=मेरा। प्रनाम=प्रणाम-वन्दन।

दो० 3. करडी-कमांन=कठोर-धनुष, लक्ष्य-बेध केलिए चित्तवृत्ति रूप कमान [रूपक]। कसीस करि=कशिश [फा०] कर्षण करके, खूब खींचकर, प्रयत्नपूर्वक तानकर, पूरे वेग से। बचन-बांन=वचन रूप वाण, शब्द, उपदेश रूप तीर [-रूपक]। कबीर का वचन है—

'सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर ॥
सतगुरु सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक।'—क० ग्रं० 1/6-7

गी० 2. मृतक फेरि जिवाइया=पहले मार दिया, फिर जीवन दिया। [-विरोधाभास] मार कर जिलाना यह अद्भुत कार्य है। यहाँ तात्पर्य है मनुष्य के 'आपा' [-अहंकार] को मार कर नयी दृष्टि-चेतना वाला पुनर्जीवन देना। अर्थात् भाव रूपान्तरित जीवन प्रदान करने से है। उचार=उच्चारण करके। निज सार अमृत=जीवन का सार तत्त्व, आत्मतत्त्व रूप अमृत-रस। रहत=रहते हैं, 'रहति' बनाई हुई है, रहनी है। आठों जाम=अष्ट याम, रात-दिन।

दो० 4. पर उपगारी=परोपकारी। नीच-ऊंच=उच्च-नीच के भेद के बिना। ऊधरै=उद्धार करता है, निस्तार कर देता है। सरनै आवै=शरणागति में आने पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतक : जो आइ सरनैं होहि प्रापति ताप तिन तिन की हरै।
पुनि फेरि बदलैं घाट उनकौ जीव तैं ब्रह्महिं करै॥
कछु ऊंच नीच न दृष्टि जिनकै सकल कौ बिश्राम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहिं मोर प्रनाम हैं॥3॥

दोहा : सुन्दर सद्गुरु सहज में, कीये पैली पार।
और उपाइ न तिर सकै, भवसागर संसार॥5॥

गीतक : संसार सागर महा दुस्तर ताहि कहि अब कौ तरै।
जो कोटि साधन करै कोऊ वृथा ही पचि पचि मरै॥
जिनि बिना परिश्रम पार कीये प्रगट सुख के धाम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥4॥

दोहा : सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, याही निश्चय आनि।
जो कछु सुनिये देषिये, सर्व स्वप्न करि जानि॥6॥

गीतक : यह स्वप्न तुल्य दिषाइये जे स्वर्ग नरक उभै कहैं।
सुख दुःख हर्ष विषाद पुनि मानापमान सबै गहैं॥
जिनि जाति कुल अस वर्ण आश्रम कहे मिथ्या नाम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥5॥

गी० 3. प्रापति=प्राप्ति। हरै=हरण कर लेता है, शमन कर देता है। पुनि फेरि= फिर उन्हें फेर कर, उनकी क्रिया-दिशा बदल कर। बदलैं घाट=घाट अर्थात् निज स्थिति [-स्वरूप] बदल देते हैं। जीव तैं ब्रह्महिं करै=जीव से ब्रह्म कर देता है; बना देता है [-भृंगी-कीट न्याय से]। विश्राम=विश्राम अर्थात् निज स्वरूप में निवास।

दो० 5. पैली पार=पल्ली पर, उस ओर। भवसागर संसार=भव रूप सागर, सागर के समान भव-संसृति [रूपक]।

गी० 4. दुस्तर=दुर्गम, पार उतरने में दुस्साध्य। साधन=उपाय। पचि पचि मरै= बेहाल हो-होकर, विवश होकर मरता-रहता है। बिना परिश्रम पार किये=बिना परिश्रम के अर्थात् यम-नियमादि कठोर साधनों के बिना ही, सहज रूप में उद्धार किया।

दो० 6. याही=इसी को। आंनि=लाओ। सर्व स्वप्न करि जांनि=सभी कुछ स्वप्नवत् समझो।

गी० 5. स्वप्न तुल्य=स्वप्न के समान आभास मात्र। स्वर्ग नरक उभै=स्वर्ग और नरक दोनों ही। अर्थात् स्वर्ग-नरक की संकल्पना प्रतीति मात्र है। मानापमान= सम्मान और अपमान का द्वैत। कुल=वंश। वर्ण=ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादि वर्ण-व्यवस्था के अंग। आश्रम=ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यास रूप आश्रम-व्यवस्था के अंग। मिथ्या=न सत्य न असत्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, सत्य कछू नहिं रंच।
मिथ्या माया बिस्तरी, जो कछु सकल प्रपंच ॥7॥

गीतक : उपज्यौ प्रपंच अनादि कौ यह महामाया बिस्तरी।
नानात्व ह्वै करि जगत भास्यौ बुद्धि सबहिन की हरी॥
जिनि भ्रम मिटाइ दिषाइ दीनौ सर्व व्यापक राम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ॥6॥

दोहा : सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, भ्रम तें भासै और।
सीप मांहिं रूपो द्रसै, सर्प रज्जु की ठौर ॥8॥

गीतक : रज्जु मांहिं जैसें सर्प भासै सीप मैं रूपौ यथा।
मृग तृष्निका जल बुद्धि देषै बिश्व मिथ्या है तथा॥
जिनि लह्यौ ब्रह्म अखंड पद अद्वैत सबही ठाम है।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम है ॥7॥

दो॰ 7. रंच=किञ्चिन्मात्र भी। मिथ्या माया बिस्तरी=सृष्टि रूप में यह अनित्य [-मिथ्या] माया ही अपना विस्तार फैलाए हुए है। प्रपंच=जगत् जंजाल। **टिप्पणी :** 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' वाले वेदान्त सिद्धान्त को विस्तार देते हुए यहाँ कहा है कि पंच तत्त्वों की बनी यह सृष्टि अनित्य होने के कारण, सत्य [नित्य-अक्षर-चिदात्मक] नहीं है। यह दिखाई तो देती है और प्रतीत भी होती है। इसलिए जादूगर की रचना जैसी है, जो न तो सत् होती है और न असत्। यह तो अद्भुत होने के कारण अकथनीय है, अनिर्वचनीय है। उसीप्रकार जैसे स्वप्न-दृश्य तो होता है, जो न झूठा होता है और न सच्चा। सकल प्रपंच=माया कृत यह संसार-सृष्टि 'प्रपंच' मात्र होने के कारण **'मिथ्या'** है।

गी॰ 6. उपज्यौ प्रपंच अनादि कौ=सृष्टि, जिसका आदि अज्ञात है। अनादि कौ प्रपंच=अनादि तत्त्व से ही प्रपंच उद्भासित हुआ है। महामाया=बड़ी [-शक्तिशाली] अथवा आद्या माया। नानात्व=नाना रूप, गुण-कर्म स्वभाव के अनुसार नाना रूप में सृष्टि की व्यक्तियाँ [-अभिव्यक्तियाँ]। जगत भास्यौ=जगत् भासित मात्र है, उसकी प्रतीति होती है। बुद्धि सबहिन की हरी=[इस भासित जगत् ने] संसार के लोगों की बुद्धि आकर्षित करके हरण कर ली है। राम=ब्रह्म, परम प्रभु।

दो॰ 8. भ्रम तें भासै और=भ्रम के कारण और का और भासित होता है, जैसे सीप में चाँदी और रस्सी में सर्प की प्रतीति। यथार्थ पदार्थ, अज्ञान-भ्रान्ति के कारण, और का और भासित होने लगता है।

गी॰ 7. रज्जु=रस्सी। **टिप्पणी :** छन्द-भंग न होने की दृष्टि से 'रज्जु' को 'रजु' ऐसे उच्चारण के साथ पढ़ना अपेक्षित है। रूपौ=चाँदी। मृग तृष्निका=मृगतृष्णा, मृग मरीचिका। रेगिस्तान में, धूप-चिलका के कारण, रेत के टीलों में जल की प्रतीति ही मृग तृष्णा है। मिथ्या है तथा=[उक्त प्रकार से-] उसीप्रकार से यह संसार **'मिथ्या'** है, न झूठा है न सच्चा। यह तो विलक्षण [-अद्भुत] है। लह्यौ=प्राप्त किया है, अनुभव में पाया है। अद्वैत=द्वैत रहित एकत्व की दशा। ठाम=स्थान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, मुक्त सहज ही होय ।
या अष्टक तैं भ्रम मिटै, नित्य पढै जे कोय ।।9।।

गीतक : जौ पढै नित प्रति ज्ञान अष्टक मुक्त होइ सु सहज ही ।
संशय न कोऊ रहै ताकै दास सुन्दर यह कही ।।
जिनि ह्वै कृपाल अनेक तारे सकल विधि उद्दाम हैं ।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ।।8।।

दोहा : सुन्दर अष्टक सब सरस, तुम जिनि जानहुं आन ।
अष्टक याही कहै सुनै, ताकै उपजै ज्ञान ।।10।।18।।

।। समाप्तोऽयं गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक ग्रन्थः ।।17।।

दो० 9. मुक्त=मोक्ष दशा । या अष्टक तैं=इस अष्टक-रचना के पाठ से । अर्थात् पाठ-अनुभव उदय से ।

गी० 8. नित प्रति=नित्यप्रति, प्रतिदिन । ताकै= उसके, ऐसा पाठ करने वाले के हृदय में । ह्वै कृपाल =कृपालु होकर । तारे=सन्तरित किए, उद्धार किया । उद्दाम हैं=प्रबल हैं, तीव्र हैं, सर्व तन्त्र स्वतन्त्र हैं ।

दो० 10. आन=अन्य, दूसरी तरह से । याही=इसी को । ताकै उपजै ज्ञान=उसके हृदय में ज्ञानोदय होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 18 ॥ अथ गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत स्तोत्राष्टक में 4 दोहे और 8 भुजङ्गप्रयात छन्द हैं। आठ भुजङ्गप्रयात छन्दों के आधार पर ही रचना का 'अष्टक' नाम सार्थक है। प्रस्तुत रचना का प्रतिपाद्य, सद्गुरु को ईश्वर के समान ही नहीं, उससे भी बढ़कर, अतिशयता के साथ प्रतिपादित करना है। सन्त-वाणी में गुरु-महिमा का ऐसा ही प्रताप देखने-पढ़ने को मिलता है। ज्ञान-मार्ग के जिज्ञासु को गुरु के प्रति श्रद्धा और विश्वास ही, ज्ञान-मार्ग के परम पद तक पहुँचाने में सहायक होता है। भुजङ्गप्रयात छन्द की प्रवाह-गति मार्मिक है। छन्द का चतुर्थ चरण पन्थानुयायिओं को रागात्मक निष्ठा [-पूज्य भावना] प्रदान करने में समर्थ है। मूल पाठ देखिए—

दोहा : परमेश्वर अरु परम गुरु, दोऊ एक समांन।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरुतें पावै ज्ञांन ॥1॥
दादू सद्गुरु के चरन, वंदत सुन्दरदास।
तिनि की महिमा कहत हौं, जिनि तैं ज्ञान प्रकाश ॥2॥

भुजङ्गप्रयात :

प्रकाशं स्वरूपं हृदै ब्रह्म ज्ञानं, सदाचार येही निराकार ध्यानं।
निरीहं निजानंद जाने जुगादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥1॥

चूर्णिका : दो० 1-2. दोऊ एक समांन = परमात्मा और सद्गुरु दोनों एक समान हैं, फिर भी '**गुरु**' विशेष हैं। क्योंकि गुरु से प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है। वंदत = वन्दना करता है। 'परमेश्वर' शब्द-प्रयोग से यहाँ सहज ही 'मंगलाचरण' विधि का निर्वाह हो गया है।

भुजङ्ग०1. भुजङ्गाप्रयात = छन्द विशेष। **टिप्पणी**—'भुजङ्गाप्रयाता बने चार 'या' से'। उक्त परिभाषा के अनुसार चार '**यगण**' [।ऽऽ] की योजना से भुजङ्गप्रयात' छन्द का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अछेदं अभेदं अनंतं अपारं, अगाधं अबाधं निराधार सारं।
अजीतं अभीतं गहे हैं समादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥2॥
हते काम क्रोधं तजे काल जालं, भगे लोग मोहं गये सर्व सालं।
नहीं द्वन्द कोऊ डरै हैं जमादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥3॥
गुणातीत देहादि इन्द्री जहां लौं, किये सर्व संहार बैरी तहां लौं।
महा सूर बीरं नहीं को बिषादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥4॥
मनो काय बाचं तजै है बिकारं, उदै भान होतें गयौ अंधकारं।
अजोन्यं अनायास पाये अनादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥5॥
क्षमावंत भारी दयावन्त ऐसे, प्रमाणीक आगें भये संत जैसे।
गह्यौ सत्य सोई लह्यौ पंथ आदू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥6॥

विधान होता है। निराकार ध्यानं=निर्गुण [-निरंजन-निराकार] ध्यान केलिए चार आधार हैं—सदाचार, ब्रह्म ज्ञान, प्रकाशमय और स्वरूपमय होना। निरीहं=कामासक्ति रहित। निजानन्द=आतमानन्द, ब्रह्मानन्द। जुगादू=युगादि से, जो आदि से है, जो सनातन है। देव दादू=गुरुदेव दादू।

भुजङ्ग॰ 2. अछेदं=अछेद्य,खण्ड रहित। अनंतं=अनन्त, अन्त रहित। अपारं=असीम। अगाधं=गहन-गम्भरी। अबाधं=बाध रहित, निर्बाध। निराधार=आधार रहित, बिना किसी अन्य आधार के। क्योंकि वह प्रभु स्वयं सबका आधार है। अभीतं=निर्भय। समादू=समाधि सम्पत्ति के धनी, समता समाधि में लीन योगी अथवा सम्यक् रूप से जो 'आदि' हैं।

भुजङ्ग॰ 3. हते=धराशायी किए, नष्ट कर दिये। तजे=त्याग दिये। काल जालं=काल का फन्दा, मृत्यु भय। सालं=शूल, काँटा, चुभन, त्रय ताप, शंका-सन्देहादि शूल। जमादू=यमादि, यमराज आदि।

भुजङ्ग॰ 4. गुणातीत=त्रिगुणजयी, त्रिगुणातीत। जहां लौं=जहाँ तक। संहार=विनाश। बैरी=शत्रु, अध्यात्म पथ के अवरोध [-बाधाएँ]। सूरबीरं=शूरवीर, अध्यात्म रण-क्षेत्र का पराक्रमी। बिषादू=विषाद, क्लेश, क्लान्ति आदि।

भुजङ्ग॰ 5. मनो काय बाचं=कर्म-मन और वाणी से। बिकारं=विकार, विकृति। अजोन्यं=अजोनि [-अयोनि], अयोनिज। दादूजी के जन्म का आदि स्रोत न जानने के कारण इन्हें 'अयोनिज' कहा गया है। **टिप्पणी :** कहा जाता है कि दादू जी के पोषक पिता लोदीराम जी को, शिशु दादू नदी की धारा [-तट] पर मिले थे। इसीलिए उन्हें सुन्दरदास ने 'अनायास पाये' कहा है। अनादू=अनादि।

भुजङ्ग॰ 6. क्षमावंत=क्षमाशील। प्रमाणीक=प्रमाणिक। आगे भये संत जैसे=जैसे पहले और भी सन्त हुए हैं। पाठ॰ 'आगं'। पंथ आदू=आदि पन्थ, सनातन मार्ग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये आप आपै बड़े तत्व ज्ञाता, बड़ी मौज पाई नहीं पक्षपाता ।
बड़ी बुद्धि जाकी तज्यौ है बिबादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।7।।
पढ़ै याहि नित्यं भुजङ्गप्रयातं, लहै ज्ञान सोई मिलै ब्रह्म तातं ।
मनोकामना सिद्धि पावै प्रसाद्, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।8।।

दोहा : परमेश्वर महिं गुरु बसै परमेश्वर गुरु मांहि ।
सुन्दर दोऊ परसपर भिन्न भाव सो नांहि ।।1।।
परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारें गुरुदेव ।
घट कौं घट उपदेश दे सुन्दर पावै भेव ।।2।।12।।

।।समाप्तोऽयं गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक ग्रन्थः ।।18।।

भुजङ्ग० 7. किये आप आपै=आपको [-आपे को] आत्मवत् करने वाले । **मौज पाई**= परमानन्द की लहर से मण्डित । नहीं पक्षपाता=पक्षधरता नहीं रह गई जिनके आचरण में, ऐसे समतावादी । बड़ी बुद्धि=विशाल मनीषा वाले । तज्यौ है बिबादू=वाद-विवाद-द्वन्द्व [-वृत्ति] त्याग दिया है जिसने ।

भुजङ्ग० 8. पढै याहि=जो इस अष्टक को पढ़ता है[-पढ़ेगा] । ब्रह्म तातं=पिता रूप ब्रह्म को । सिद्धि पावै=सिद्धि को प्राप्त करता है, उसकी साधना [-कामना] पूर्ण होती है ।

दो० 1-2. भिन्न भाव सो नांहि=परमेश्वर और गुरु एक दूसरे से भिन्न भाव नहीं हैं । घट धारें गुरुदेव=सर्वव्यापक प्रभु ही, गुरुदेव के रूप में शरीर धारण करते हैं । पावै भेव=मर्म को जान लेता है । कबीर का विचार-सत्य भी यही है—

'गुरु गोविंद तो एक हैं, दूधा यहु आकार ।' —क० ग्रं० 1/26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 19 ॥ अथ रामाष्टक ॥

प्रवेशार्थ : आठ 'मोहिनी' छन्दों वाले प्रस्तुत 'रामाष्टक' में 'राम' का ब्रह्म नामावाची अर्थ में प्रयोग है। यह नाम अवतारी राम से भिन्न बोध देता है। हालांकि अवतारी राम में भी सद्गुरु के समान, उक्त गुण निरूपित हुए मिलते हैं। छन्द के अन्त में 'रामजी रामजी' धुन, समूह-गान में, टेक के रूप में दुहराई जाने केलिए है। प्रतिपाद्य सहज और प्रसाद गुण सम्पन्न है। हृदय की सात्विकता स्वयं हिलोरें लेती-सी जान पड़ती है। मूल पाठ देखिए—

मोहिनी : आदि तुम ही हुते अवर नहिं कोइ जी।
अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी॥
रूप नहिं रेष नहिं श्वेत नहिं श्याम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥1॥

चूर्णिका : मोहिनी : जैसा कि 'ग्रन्थावली' में लिखा मिलता है, यह 'मोहिनी' छन्द नहीं है। क्योंकि 15 अक्षरों वाला 'मोहिनी' छन्द तो स-भ-त-य-स इन पाँच गणों की योजना से निरूपित होता है। उक्त छन्द में कोई क्रम या नियम दिखाई नहीं देता। यहाँ प्रथम चरण के प्रथम अक्षर में भी गुरु है। द्वितीय चरण में लघु और अन्त में लघु-गुरु का नियम भी निर्वाहित नहीं हो सका है और अन्त में रगण का नियम का पालन भी नहीं हुआ है। कहीं रगण है तो कहीं सगण। कहीं 'विपिनितिलका' छन्द है और कहीं-कहीं 'निशि पाल' छन्द के कुछ चरण या चरणार्ध प्रयुक्त दिखाई देते हैं। यह बीस मात्राओं वाला कोई मात्रिक 'संकर छन्द' लगता है। यह प्रयोग सुन्दरदास जी की छन्द-प्रयोग-क्षमता का ही सूचक है।

1. हुते=थे। अवर=और, अन्य। बर्न नहिं=रंग-रूप नहीं अथवा वर्णन नहीं हो सकता। रूप नहिं रेष=रूप-रेखा बिना, निराकार। एक रस=एक रस-रूप, एकाकार। 'जी' की तुकान्तता अनुप्रास एवं सम्बोधन दोनों केलिए प्रतिध्वनित जान पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम ही आप तें मूल माया करी।
बहुरि वह कुर्ब्बि करि त्रिगुन ह्वै विस्तरी॥
पंच हू तत्व तैं रूप अरु नामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥2॥
बिधि रजो गुण लियें जगत उतपति करै।
बिष्णु सत गुण लियें पालना उर धरै॥
रुद्र तम गुण लिये संहरै धाम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥3॥
इन्द्र आज्ञा लियें करत नहिं और जी।
मेघ वर्षा करैं सर्ब्ब ही ठौर जी॥
सूर शशि फिरत है आठहूं जाम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥4॥
देव अरु दानवा यक्ष ऋषि सर्ब्बजी।
साध अरु सिद्ध मुनि हौंहि निह गर्ब्बजी॥
शेष हू सहस्त्र मुख भजत निष्कामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥5॥
जलचरा थलचरा नभचरा जन्तजी।
च्यारि हू षांनि के जीव अगिनन्त जी॥
सर्ब्ब उपजैं षपैं पुरुष अरु बामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥6॥

---

2. आप तें=अपने आप से ही [-'एकोऽहं बहुस्याम' की मूल प्रेरणा के अनुसार]। मूल माया=आद्या माया। कुर्ब्बि करि=[पाठा० गुरु विकरि] कुर+बिकरि=विकृत होकर, विकार पाकर। त्रिगुन ह्वै=त्रिगुणमयी होकर।
3. बिधि=विधाता, ब्रह्मा जी। सत गुण=सतोगुण से। पालना=पालन-पोषण। रुद्र=महादेव। तमगुण=तमोगुण से। संहरै=संहार करता है, विनाश करता है। धाम जी=धाम [-लोक] को।
4. सर्ब्ब ही ठौर=सब जगह, सर्वत्र। आठ हू जाम=आठो याम, निरंतर।
5. दानवा=राक्षस वर्ग। यक्ष=यक्ष-योनि के देवता। हौंहि निह गर्ब्बजी=निरंहकार अर्थात् अहंकार [-आपा] रहित होते हैं।
6. जलचरा-थलचरा=जलचर-थलचर। नभचरा=आकाशचारी जीव। अगिनन्त=अगणित, संख्यातीत। उपजैं-षपैं=उत्पन्न होकर मरते रहते हैं। पुरुष-बाम=पुरुष और बाम [-बामा, स्त्री]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रमत संसार कतहू नहीं वोरजी।
तीनहू लोक मैं काल कौ सोरजी।।
मनुष तन यह बड़े भाग्य तें पामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी।।7।।
पूरि दशहू दिशा सर्ब्ब मैं आपजी।
स्तुति हि कौ करि सकै पुन्य नहिं पापजी।।
दास सुन्दर कहै देहु विश्रामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी।।8।।

।। समाप्तोऽयं रामाष्टक ग्रन्थः ।।19।।

7. कतहू नहीं बोर=कहीं [-किधर] भी किसी ओर से नहीं। सोर=शोर, जोर शोर अर्थात् तहलका मचा है। पामजी=पाते हैं, करते हैं।

8. पूरि=परिपूर्ण, परिव्याप्त। पुन्य नहिं पाप जी=चित्त की विशद एवं निर्मल दशा में पाप-पुण्य का भेद शेष नहीं रहता। ज्ञान की यह दशा परमेश्वर की सर्वव्यापकता के अनुभव में होती है। विश्राम देहु=शान्ति दो, स्थिति प्रज्ञता प्रदान करो, विश्राम [-विकार रहित दशा] प्रदान करो, निर्विकल्पता की अवस्था दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 20 ॥ अथ नामाष्टक ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 'नामाष्टक' रचना में, प्रभु के कुछ नामों को आधार बनाकर अध्यात्म रस के रसज्ञ [-जिज्ञासु] द्वारा सस्वर नामार्चना है। भगवन्नाम और अन्त में प्रभु-नाम की चार बार आवृत्ति और उनकी ध्वन्यात्मकता बड़ी ही मार्मिक बन पड़ी है। छन्द 'स्रग्विणी' ['मोहिनी' नहीं] है, जिसने भावोत्कर्ष एवं प्रवाहमय सस्वरता में बहुत सहयोग दिया है। प्रयुक्त 'ईश्वरे', 'माधवे', 'केशवे', 'मोहने', 'सुन्दरे' शब्द, सम्बोधन रूप में भी अर्थ देते हैं और सप्तमी विभक्ति के रूप में भी। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

मोहिनी : आदि तूं अन्त तूं मध्य तूं व्योमवत्।
वायु तूं तेज तूं नीर तूं भूमि तत्॥
पञ्च हू तत्व तूं देह तैं ही करे।
हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे ॥1॥
च्यारि हू षानि के जीव तें ही सृजे।
जोनि हीं जोनि के द्वार आये बृजे॥
ते सबै दुःख मैं जे तुम्हैं बीसरे।
ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ॥2॥

चूर्णिका : 1. यह 'मोहिनी' छन्द न होकर 'स्रग्विणी' छन्द है। इस छन्द के विधान में चार रगण [ऽ।ऽ] होते हैं। व्योमवत्=आकाश के समान सूक्ष्म और व्यापक। भूमि तत्=भूमि तत्त्व। पञ्च हू तत्व=पाँचों ही तत्त्व। हे हरे=हे हरि।

2. च्यारि हू षानि के=चारों—अण्डज, पिण्डज, जरायुज और उद्भिज खानों के जीव। सृजे=निर्मित किए हैं। जोनि हीं जोनि के द्वार=योनियों के जीव योनि-द्वार से ही बाहर आए हैं। आये बृजे=जो आए-जन्में हैं, वही मरे हैं। बृजे <व्रज [सं०] <व्रजन [सं०]=गमन किया है, चले गए हैं। बीसरे=बिसरा दिया है, विस्मृत कर दिया है। ईश्वरे=हे ईश्वर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जे कछू ऊपजे ब्याधि हू आधवे।
दूरि तूं ही करै सर्व जे बाधवे।।
बैद्य तूं औषधी सिद्ध तूं साधवे।
माधवे माधवे माधवे माधवे।।3।।
ब्रह्म तूं विष्णु तूं रुद्र तूं वेषजी।
इन्द्र तूं चन्द्र तूं सूर तूं सेषजी।।
धर्म तूं कर्म तूं काल तूं देशवे।
केशवे केशवे केशवे केशवे।।4।।
देव मैं दैत्य मैं ऋष्य मैं यक्ष मैं।
योग मैं यज्ञ मैं ध्यान मैं लक्ष मैं।।
तीन हूं लोक मैं एक तूं ही भजे।
हे अजे हे अजे हे अजे हे अजे।।5।।
राव मैं रङ्क मैं साह मैं चोर मैं।
कीर मैं काग मैं हंस मैं मोर मैं।।
सिंह मैं स्याल मैं मच्छ मैं कच्छये।
अक्षये अक्षये अक्षये अक्षये।।6।।
बुद्धि मैं चित्त मैं पिंड मैं प्राण मैं।
श्रोत्र मैं बैन मैं नैन मैं घ्राण मैं।।
हाथ मैं पांव मैं सीस मैं सोहने।
मोहने मोहने मोहने मोहने।।7।।

---

3. ऊपजे=उत्पन्न होता है, जन्म लेता है। ब्याधि हू आधवे=आधि-व्याधि। बाधवे=बाधाएँ। वैद्य=उपचारक। औषधी=औषधि, दवा, उपचार। साधवे=साधक, साधु। माधवे=हे माधव !

4. ब्रह्म तूं=तू ही ब्रह्मा है। वेषजी=सविशेष निर्विशेष अथवा आकार विशेष। सेषजी=शेषावतार। काल तूं देशवे=तू ही देश-काल है। केशवे=हे केशव !

5. देव-दैत्य=देवता और राक्षस। ऋष्य मैं=ऋषि या ऋषियों में। लक्ष मैं=लक्ष्य-सिद्धि में। एक तूं ही भजे=एक तेरा ही भजन किया जाता है। हे अजे=हे अज, हे अजन्मे ईश्वर !

6. राव मैं रङ्क मैं=राजा और रंक में, अमीर-गरीब में। कीर=तोता। सिंह मैं स्याल मैं=शेर और शृगाल में। मच्छ=मगरमच्छ [प्रा०] <मत्स्य [सं०]। कच्छये=कच्छप, कछुवा। अक्षये=हे अक्षय अविनाशी, अच्युत !

7. पिंड मैं प्राण मैं=शरीर और चेतना में। श्रोत्र=कान। बैन=वाणी-वचन। घ्राण=नासिका। सोहने=शोभायमान। मोहने=हे मोहन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म तैं मृत्यु तैं पुन्य तैं पाप तैं।
हर्ष तैं शोक तैं शीत तैं ताप तैं ॥
राग तैं दोष तैं है द्वन्द तैं परे।
सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे ॥8॥

॥ समाप्तोऽयं नामाष्टक ग्रन्थः ॥20॥

---

8. जन्म तैं मृत्यु तैं=जन्म और मृत्यु से परे। शीत तै ताप तैं=शीतोष्णता से परे। राग=आसक्ति। दोष=बुराई। द्वन्द=द्वन्द्व, उभय पक्षता का संघर्ष। सुन्दरे=हे सुन्दर ईश्वर! [-कवि का नाम भी]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 21 ॥ अथ आत्मा अचलाष्टक ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अष्टक रचना में आत्मा की अचलता [-स्थिति-] का सरल भाषा में वर्णन है। रचनाकार की निपुणता यह है कि कुण्डलिया छन्द-विधान में ही, अनेक दृष्टान्तों के द्वारा, साधारण जन को, आत्म-ज्ञान के प्रति जिज्ञासु बनाने का प्रयत्न किया है। इसके लिए रचनाकार द्वारा विपरीत-ज्ञान प्रस्तुति [-शैली] में, सामान्य पाठक की चेतना को आर्कषित करने का प्रयत्न भी है। उलटवाँसी शैली में भी प्रायः ऐसा ही होता है। किन्तु वहाँ प्रतीकों की सामर्थ्य प्रबल रूप में अभिव्यंजित रहती है। भ्रान्ति के कारण ऐसी विपरीत ज्ञान-दशा अथवा मानसिकता प्रतीत होती रहती है अथवा व्यवहार में प्रायः ऐसा कह दिया जाता है। उदाहरण केलिए चलते तो बादल हैं, पर चन्द्रमा जलता दिखाई देता है। इसी प्रकार चलते तो बैल हैं, पर कोल्हू जो स्थिर रहता है, उसे चलता हुआ कहते हैं। लोक-चेतना के धरातल पर ज्ञान-दर्शन-चिन्तन को वाणीबद्ध करना सन्त कवि सुन्दरदास की विशेषता है। मूल पाठ देखिए—

कुण्डलिया : पांनी चलस सदा चलै चलै लाव अरु बैल।
षांभी चलतौ देषिये कूप चलै नहिं गैल॥
कूप चलै नहिं गैल कहै सब कूबो चालै।
ज्यौंफि रतो नर कहै फिरे आकाश पतालै॥
सुन्दर आतम अलच देह चालै नहिं छांनीं।
कूप ठौर कौ ठौर चलत है चलस रु पांनीं॥1॥

चूर्णिका : कुण्डलिया : यह छः चरणों का छन्द है। इसके प्रथम दो चरण दोहे के और शेष चार चरण रोला छन्द के होते हैं। दोहे का चतुर्थ चरण रोला का प्रथम चरण बनता है। छन्द का प्रथम शब्द और छठे चरण का अन्तिम शब्द एक समान होते हैं। प्रत्येक चरण में 24 मात्राओं के अनुसार पूरे छन्द में 144 मात्राएँ होती हैं। छन्द-कौशल की दृष्टि से सुन्दरदास के कुण्डलिया छन्द गिरिधर कविराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि सबाई चलत है चलै न कबहू राह।
अपने अपने काम कौं चलै चौर अरु साह ।।
चलै चौर अरु साह कहै सब मारग चालै।
जल हालत लगि पौन कहै प्रतिबिंबहि हालै ।।
सुन्दर आतम अचल देह आवै अरु जाई।
राह ठौर कौ ठौर चलत है सृष्टि सबाई ।।2।।

तथा अन्य कुण्डलियाकारों से किसी प्रकार भी कम नहीं हैं। अपितु, अर्थ चमत्कार की दृष्टि से कुछ बढ़-चढ़कर ही हैं।

कुण्ड० 1. पांनी चलस=पानी और पानी को निकालने का चरस [-चड़स-ढेकुली-रेंहट]। चलै=चलती है, चलाई जाती है। लाव अरु बैल=रस्सी [-वरत] और बैल चलते हैं, गतिशील बने रहते हैं। षांभी चलतौ देषिये=कहीं भी चलता देख लीजिए। 'षांभी', 'कहीं भी' का ग्राम्य उच्चारण है। गैल=मार्ग। कूप चलै= 'कुआँ चलता है'—ऐसा लोग कहते हैं। **टिप्पणी**—रेंहट आदि से खेतों में पानी दिए जाने पर, लोक में 'कुआँ चलता है या चल रहा है', ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार मार्ग में लोग चलते हैं, पर 'रास्ता या मार्ग चल रहा है', ऐसा कहा जाता है। फिरतौ नर=चक्कर काटता हुआ, चकफेरी भरता हुआ [बालक-] मनुष्य, आकाश को घूमता हुआ बताता है। आतम अचल=आत्मा [-आत्म-तत्त्व] तो अचल रूप में स्थित है। देह चालै=शरीर ही चलता है। नहिं छांनीं=उक्त तथ्य [-सत्य] छिपा नहीं है।

टिप्पणी : पुरोहित जी ने 'गैल' का अर्थ 'गहला', 'बावला' दिया है, जो सही होते हुए भी यहाँ उसकी संगति नहीं बैठती। इसी सन्दर्भ में 'लाव' का अर्थ रस्सी [-बरत] है। 'गैल चलै' की व्यंजना होगी—मार्ग पर चलने वाले।

कुण्ड० 2. सबाई=सम्पूर्ण, सब ही। राह=मार्ग [पुलिंग प्रयोग] उस पर चलते हुए कहै सब मारग चालै=सब कहते हैं [गैल-] मार्ग चल रहा है। यद्यपि लोग चलते हैं। जल हालत लगि पौन=पवन-वेग से शान्त जल तरंगित हो उठता है। प्रतिबिंबहि हालै=[कहा यह जाता है कि जल में पड़ी] परछाहीं [-छाया] हिल रही है। राह ठौर कौ ठौर=रास्ता तो अचल रूप में अपने स्थान पर ही रहता है।

टिप्पणी : ये वेदान्त-सिद्धान्त के प्रसिद्ध उदाहरण [-दृष्टान्त] हैं। इनके द्वारा आत्मा की अचल दशा व्यंजित है। जैसे कि सूर्य तो अचल रहता है, पर उसका प्रतिबिम्ब ही घट-पात्रानुसार पृथक्-पृथक् छोटा-बड़ा दिखाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेल जरै बाती जरै दीपग जरै न कोइ।
दीपग जरता सब कहै भारी अचरज होइ ॥
भारी अचरज होइ जरै लकरी अरु घासा।
अग्नि जरत सब कहै होइ यह बडा तमासा॥
सुन्दर आतम अजर जरै यह देह बिजाती।
दीपक जरै न कोइ जरत है तेल रु बाती ॥3॥

बादल दौरे जात हैं दौरत दीसै चन्द।
देह संग तें आत्मा चलत कहै मतिमन्द ॥
चलत कहै मतिमन्द आत्मा अचल सदाहीं।
हलै चलै यह देह थापि ले आतम मांहीं॥
सुन्दर चञ्चल बुद्धि संमझि तातें नहिं बौरे।
दौरत दीसै चन्द जात हैं बादल दौरे ॥4॥

गङ्गा बहती कहत हैं गङ्गा वाही ठौर।
पानी बहि बहि जात है कहै और की और॥
कहै और की और परत है षेषत षाडी।
गडी ऊषली कहै कहै चलती कौं गाडी॥
सुन्दर आतम अचल देह हलचल ह्वै भंगा।
पांनी बहि बहि जाइ बहै कबहू नहिं गङ्गा ॥5॥

कुण्ड० 3. दीपग जरै न कोइ=तथ्य यह है कि दीपक [-सकोरा, सराव] तो कभी जलता नहीं, बत्ती और तेल ही जलते हैं। पर, कहते सभी हैं कि दीपक जल रहा है। अचरज=आश्चर्य, विलक्षणता। अग्नि जरत=आग जलती है, यह कहा जाता है। यद्यपि जलती तो लकड़ी या घास है। बिजाती=पराई, आगन्तुक।

कुण्ड० 4. बादल दौरे जात हैं=हवा के वेग से मेघ [-बादल] दौड़ते दिखाई देते हैं। दीसै=दिखाई देता है। देह संग=शरीर के साथ ही साथ। मतिमन्द=मूर्ख, अज्ञानी। थापिले=स्थापित कर ले। संमझि=बुद्धि विवेक कर। बौरे=बावले, पगले [स्नेह पूर्वक सम्बोधन]।

कुण्ड० 5. गङ्गा वाही ठौर= गंगा नदी का जल प्रवाहित होता है, नदी का भूमिगत आकार-प्रकार तो स्थिर ही रहता है। वाही ठौर=उसी स्थान पर अचल बना रहता है। षाडी परत है=खाड़ी में, बंगाल की खाड़ी में जाकर गिरती या मिलती है। गडी ऊषली कहै=यहाँ 'ऊषली' [-ओखली] में श्लेष के बल पर पत्थर की 'ओखली' को उखड़ी हुई कहा जाता है, जबकि वह ज़मीन में गड़ी होती है। चलती को गाडी=यहाँ भी 'गाडी' में श्लेष है। लकड़ी निर्मित शकट, जो चलती है, को 'गाड़ी' [-गड़ी हुई] कहना लोक-कथन की विपरीत मति को व्यंजित करता है। देह-भंगा=चंचल शरीर तो भंगुर नाशवान् है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोल्हू चालत सब कहैं समझि नहिं घट मांहि ।
पाटि लाठि मकडी चलै बैल चलै पुनि जांहि ।।
बैल चलै पुनि जांहि चलत है हांकनहारौ ।
पेली घालत चलै चलत सब ठाट बिचारौ ।।
सुन्दर आतम अचल देह चञ्चल है मोल्हू ।
संमझि नहीं घट मांहि कहत है चालत कोल्हू ।।6।।
बिन जाने नर कहत हैं चल्यौ जाइ बाजार ।
लोग चलै सब जात हैं हाट न चलै लगार ।।
हाट न चलै लगार बिचार कछू नहिं लहते ।
नदी तीर के बृच्छ कहैं पांनी में बहते ।।
सुन्दर आतम अचल देह यह चलै दिवाने ।
चल्यौ जाइ बाजार कहत हैं नर बिन जाने ।।7।।
सब कोऊ ऐसें कहैं काटत हैं हम काल ।
काल नास सब कौ करै बृद्ध तरुन अरु बाल ।।
बृद्ध तरुन अरु बाल साल सबहिन कैं भारी ।
देह आपकौं जानि कहत हैं नर अरु नारी ।।
सुन्दर आतम अमर देह मरि है घर षोऊ ।
काटत हैं हम काल कहत ऐसें सब कोऊ ।।8।।

समाप्तोऽयं आत्मा अचलाष्टक ग्रन्थः ।।21।।

कुण्ड० 6. कोल्हू चालत=गन्ने या तेल पेरने वाला 'कोल्हू चलता है' ऐसा सब कहते हैं । पाटि लाठि मकड़ी चलै='कोल्हू' तो एक संवेत [-संवाय] नाम है, उसके अनेक अंग होते हैं । कोल्हू के बीच में एक 'लाठ' होती है, उसी के साथ एक दूसरी सपाट लकड़ी कोल्हू से जुड़ी रहती है, उसे 'पाठ या पाट' कहते हैं । उसी के साथ बैल के कन्धे पर रखी जाने वाली 'जुवा' की लकड़ी होती है, इसी को 'मकड़ी' कहते हैं । कोल्हू में ये सब बैल के चलने के साथ ही गतिशील होते हैं । कोल्हू की मूल लकड़ी तो एक स्थान पर अचल गड़ी रहती है । हांकनहारौ=हाँकने वाला । पेली घालत चलै=गन्ने के टुकड़े या तिलहन कोल्हू में डालने वाला चलाता है । मोल्हू [देश०] =मूर्ख, भौंदू या मूढ़ ।

कुण्ड० 7. चल्यौ जाइ बाजार=हाट-बाज़ार चलता है । अर्थात् बाज़ार में कारोबार होता है । हाट न चलै लगार=चलने वाले लोगों के साथ बाज़ार नहीं चलता । लहते=ग्रहण करते । बृच्छ=वृक्ष । दिवाने=मदहोश, पागल, ना समझ, मूर्ख ।

कुण्ड० 8. काटत हैं हम काल=लोक-कथन है—'समय काटते [-काट रहे] हैं ।' यद्यपि काल ही सब [-बृद्ध, तरुण और बाल्यावस्था वालों] को काटता, क्षय करता रहता है । मनुष्य **'समय'** का नाश नहीं कर सकता । साल=पीड़ा, दर्द, चुभन, शूल-काँटा । नर अरु नारी=बोली में यह नर है, यह नारी है, ऐसे कथन, आत्मन् को भ्रान्ति से शरीर मानकर ही कहे जाते हैं । देह मरि है=शरीर ही नाश को प्राप्त होगा । घर षोऊ=आत्मा का वह घर—शरीर विलुप्त हो जाएगा । अथवा 'घर षोऊ' अर्थात् अरे घर खोने वाले मनुष्य, 'आत्मा अमर है' ऐसा ज्ञानानुभव कर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥22॥ अथ पंजाबी भाषा अष्टक ॥

प्रवेशार्थ : आठ चौपइया [-चतुष्पदी] छन्दों की यह लघु अष्टक-रचना है। इसका वर्ण्य विषय अव्यक्त अचिन्त्य सर्वभूतात्मक परमात्मा की चिरन्तन खोज [-शोध] करना है। यह शोध भारतीय अध्यात्म-साहित्य में वैदिक काल से ही होती आ रही है। पर, वहाँ उस परब्रह्म सत्ता को समझने केलिए **'नेति नेति'** प्रकरण-विधि का सहारा लिया जाता रहा है। यहाँ भी 'यहु नहिं, यहु नहिं' द्वारा उसी शोध-वृत्ति को आगे बढ़ाया गया है। 'वेह जो अवशेष रहै सो तूं ही सो हूं ही' अपनी 'व्यक्त' सीमाओं में न बँधने वाला 'अव्यक्त' वर्णित है। छन्दों में कुछ पंजाबी शब्द प्रयोगों और ध्वनियों को अपनाए जाने के कारण ही इसे 'पंजाबी भाषा अष्टक' कहा गया है। मूल पाठ देखिए—

चौपइया : वहु दिलदा मालिक दिलदी जाणैं दिल मौं बैठा देषै।
हुंण तिसनौं कोई क्यौं करि पावै जिसदै रूप न रेषै॥
वै गोस कुतव पैकम्बर थक्कै पीर अवलिया सेषै।
भी सुंदर कहि न सकै कोइ तिसनौं जिसदी सिफ्ति अलेषै॥1॥

चूर्णिका : चौपइया : 'चतुष्पदी' छन्द का ही भाषा रूप चौपइया छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 30 मात्राएँ होती हैं और 10, 8, 12, पर यति का विधान रहता है।

1. दिल दा=दिल का ['दा' पंजाबी का षष्टि विभक्ति का सूचक]। दिलदी जाणैं= दिल की जानता है। दिल मौं=दिल में। हुण=इस समय। तिसनौं=उसको। क्यौं करि=किसप्रकार से। जिस दै=जिस [-ब्रह्म] के। वै=वे। गोस<गौस [अ०]=न्यायकर्ता, दुहाई सुनने वाला। कुतुब [अ०]=किताब [-का बहुवचन], कुरान, इस्लाम का धर्म ग्रन्थ। पैगम्बर [फा०]>पैकम्बर=मुसलमानों के धर्मावतार, खुदा का दूत। अवलिया [अ०, 'वली' का बहुवचन]=औलिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहु षोजनहारा तिसनौं पूछै जे बाहरि नौं दोडै।
वै केई जाइ गुफा मौं बैठे केई भीजत चौडै॥
भी दिट्ठे सौक हजारनि दिट्ठे दिट्ठे लष्षु करौडै।
कहि सुन्दर षोजु बतावै प्रभुदा वै केई जग मैं थोडै॥2॥

भी उसदा षोजु करैं बहुतेरे षोजु तिणां दैं बोलै।
वह भुल्ले नौं भुल्ला समुझावै सोभी भुल्ला डौलै॥
वै जित्थैं कित्थैं फिरै बिचारा फिरि फिरि छिल्लकु छोलै।
कहि सुन्दर अपना बन्धनु कप्पै सोई बन्धनु षोलै॥3॥

भी षोजे जती तपी संन्यासी सम्भो दिट्ठे रोगी।
वह उसदा षोजु न पाया किन्हीं दिट्ठे ऋषि मुनि योगी॥
वै बहुते फिरैं उदासी जग मौं बहुते फिरै बिवोगी।
कहि सुन्दर केई विरले दिट्ठे अमृत रस दे भोगी॥4॥

धर्माचार्य। सेषै [अ०]=शेख, मुसलमानों के पुरोहित-पण्डित, प्रतिष्ठित वृद्ध। सिपित < सिफ्त=[फा०] कारीगरी, बुनावट, कला। अलेषै—अलिखित, अप्रत्यक्ष, अदृष्ट। भी [पंजा०]=भाई, अरे भई।

2. षोजनहारा=खोजी, शोधकर्त्ता, अनुसन्धाता। जे=जो। नौं < नूं [पंजा०]=को। केई=कोई। भीजत चौडै=चौड़े में, खुले मैदान में भीगते हैं, भीगते हुए तपस्या करते हैं। सौक हजारनि=सौ [-सैकड़ों]-हजारों। दिट्ठे=देख गए हैं। लष्षु करोडै=लख्खु-लाखों [और]-करोड़ों। षोजु बतावै=खोज बताता है, दिशा बताता है। प्रभुदा=प्रभु का। जग मैं थोडै=वे जगत् में बहुत थोड़े हैं।

3. उसदा=उस [-प्रभु] का। तिणां दैं=उन्हीं के। बोलै=प्रकट होते हैं। भुल्ले नौं भुल्ला समुझावै=भूले हुए को भूला हुआ ही समझाता है। सो भी=वह स्वयं भी। भुल्ला डोलै=भूला [-विभ्रमित] हुआ डोलता है। जित्थें कित्थें फिरै=वह जिधर-किधर अर्थात् इधर-उधर मारा-फिरता है। बिचारा=बेचारा, निरुपाय। फिरि फिरि छिल्लकु छोलै=बार-बार छिलके [-प्याज आदि के] छीलता रहता है। बन्धनु कप्पै=बन्धन काटता है। सोई=वही। बन्धनु षोलै=बन्धन खोल [-पा]-ता है, पाश-मुक्ति करने की सामर्थ्य प्राप्त कर पाता है।

4. षोजे जती तपी संन्यासी=यति, तपस्वी, संन्यासी आदि सभी को खोज कर [-परख कर] देख लिया है। सम्भो=सभी। दिट्ठे रोगी=रोगी [-हीन रुग्ण मनोवृत्ति के] दिखाई दिए। उसदा षोजु न पाया किन्ही=उस प्रभु का खोज किसी ने भी प्राप्त नहीं कर पाया। उदासी=उदास, विरक्त अथवा उदासीन सम्प्रदाय के। बिवोगी=वियोगी, प्रभु-प्रेम में बावले, विरक्त। अमृत रस दे भोगी=अमृत रस का भोग लगाने वाले, ब्रह्मानन्द भाव का आस्वाद लेने वाले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहु षोजी बिना षोजु नहिं निकलै षोजु न हथ्थौं आवै ।
पंषीदा षोजु मीन दा मारगु तिसनौं क्यौं करि पावै ।।
है अति बारीकु षोजु नहिं दरसै नदरि किथौं ठहरावै ।
कहि सुन्दर बहुत होइ जब नन्हां नन्हेनौं दरसावै ।।5।।
भी षोजत षोजत सभु जुग हंढ़्या षोज किथौं नहिं पाया ।
तूं जिसनौं षौजै षोजतु सीमौं सतगुरु षोज बताया ।।
तें अपना आपु सही जब कीता षोज इथां ही आया ।
जब सुन्दर जागि पया सुपनै थौं सभु संदेह गमाया ।।6।।
भी जिसदा आदि अन्तु नहिं आवै मध्य हु तिसदा नांहीं ।
वहु बाहिर भितरु सर्ब निरंतरु अगम अगोचर मांहीं ।।
वहु जागि न सोवै षाइ न भुष्षा जिसदै धुप्पु न छांहीं ।
कहि सुन्दर आपै आपु अखंडित शब्द न पहुंचै तांहीं ।।7।।

---

5. षोजी=खोजी, शोधी, लगनशील । षोजु न हथ्यौं आवै=खोज [-खोज-विधि] हाथ नहीं लग पाती । पंषी दा षोजु=पक्षी का खोज । मीन दा मारगु=मछली की धारा के विपरीत दिशा में गति-मार्ग । तीन साधना-मार्ग हैं—1. पिपीलिका मार्ग, 2. मीन मार्ग, 3. खग-मार्ग । **पिपीलिका मार्ग** के साधक चींटी की गति से क्रमशः साधना-विकास करता है । मीन मार्ग **मछली की गति** का जैसे पानी में कोई चिह्न नहीं रहता, वैसे ही साधक अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते हुए प्रयत्न तो करता है, किन्तु प्रयत्न का कोई चिह्न पीछे नहीं छोड़ता । **पक्षी मार्ग** सहज साधना का मार्ग बताया गया है । जैसे पक्षी जब आकाश में उड़ता है, तो पीछे कोई निशान नहीं छोड़ता । अथवा पक्षी एक वृक्ष से उड़कर जैसे दूसरे वृक्ष पर अनायास ही बैठ जाता है, तब उसका कोई प्रयत्न-चिह्न दिखाई नहीं देता । नदरि किथौं ठहरावै=नजर [-दृष्टि] कहाँ ठहर सकती है । बारीकु=महीन, सूक्ष्म । नन्हा=बारीक, सूक्ष्म, अर्थात् सूक्ष्म दृष्टि होने पर । नन्हेनौं दरसावै=तभी वह नन्हा-सूक्ष्म तत्त्व [-आत्म तत्त्व] दृष्टिगोचर होता है अर्थात् प्रज्ञा चक्षुओं से ही परमात्म तत्त्व के दर्शन सम्भव हैं, चर्म चक्षुओं से नहीं ।

6. सभु जुग हंढ़्या=सब समय अथवा सारा जगत् खोजता फिरा, ढूँढ़ता फिरा । किथौं=कहीं भी । षोजतु सीमौं=खोजते हुए सीमा बद्ध बना रहा । सतगुरु षोज बताया=सद्गुरु ने ही उस खोज का रहस्य बताया । सही=ठीक, निश्चयपूर्वक । कीता=किया । षोज इथां ही आया=उस प्रभु का खोज यहाँ ही प्राप्त हुआ । जागि पया=जाग पड़ा, ज्ञान-चक्षु खुले । थौं [पंजा०]=से । गमाया=समाप्त किया ।

7. जिसदा [पंजा०]=जिसका । बाहिर भितरु=बाहर-भीतर, भौतिक जगत् और अन्तर्जगत् में । सर्ब निरंतरु=सभी जगह विद्यमान है । मांहीं=अन्दर है, सूक्ष्म है । षाइ न भुष्षा=वह न खाता है न भूखा है । धुप्प न छांहीं=जिसके लिए धूप और छाया नहीं है । आपै आप अखंडित=वह स्वयं में अखण्डित है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वै ब्रह्मा विष्णु महेस प्रलै मौं जिसदी षुसै न रूंहीं।
भी तिसदा कोई पारु न पावै सेसु सहंस फणु मूंहीं॥
भी यहु नहिं यहु नहिं यहु नहिं होवै इसदै परै सु तूंही।
वेह जो अवशेष रहै सो सुन्दर सो तूंही सो हूंहीं॥8॥

॥ समाप्तोऽयं पंजाबी भाषाष्टकः ॥22॥

8. जिसदी=जिसकी। षुसै न रूंहीं=रोंगटे भी नहीं उखड़ते अर्थात् बाल भी बाँका नहीं होता। प्रलै मौं=प्रलय काल में भी। सेसु सहंस फणु मूंहीं=शेषनाग अपने सहस्र फणों [-मुखों] से [भी उसका वर्णन कर पाने में समर्थ नहीं है]। यहु नहिं [-तीन बार]=['नेति-नेति के दो बार से अधिक कहना है कि-]परब्रह्म यही नहीं है, इतना ही नहीं है और भी है। इसदै परै सु तूंहीं=इस दृश्य-जगत् अथवा बुद्धि की सीमा से परे भी तू ही है। वेह=वह। अवशेष रहै सो=जो अविनाशी है, जो प्रलय के बाद भी शेष रहता है वही। अर्थात् वह ही है और 'वह तू ही है'। तूं ही सो हूं हीं=जो तू है, वही मैं हूँ। यह केवल 'तत्त्वमसि' एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' महा-वाक्यों की विचार-छाया ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 23 ॥ अथ ब्रह्मस्तोत्र अष्टक ॥

प्रवेशार्थ : यह 'अष्टक' आठ भुप्रजङ्गयात छन्दों में परिसमाप्त है। इन श्लोकों में निराकार परमात्मा की स्तुति बड़े तन्मय भाव से की गई है। भाषा-भूमिका में इन श्लोकों की भाव-चेतना जब गुजरती है, तो आद्य शंकराचार्य की **'चर्पट मंजरी'** और **'सौन्दर्य लहरी'** रचनाएँ स्मृत हो आती हैं। छन्द के अन्त में तीन बार 'नमस्ते' के पश्चात् एक ब्रह्मवाची शब्द का प्रयोग कितना मार्मिक है, जिसमें अनुप्रास के साथ परब्रह्म को नमन का लक्ष्य भी पूरा हुआ है। ज्ञानमार्गी सन्त की रचना होते हुए भी यह अभिव्यक्ति कितनी तरल और सहज बन पड़ी है, इसका अनुभव पढ़कर ही हो सकता है। छन्द का प्रवाह, संस्कृत शब्दावली को भी सामान्य जन तक केलिए सहज ग्राह्य बनाने में सहयोगी हुआ है। मूल पाठ देखिए—

भुजङ्गप्रयात :

अखण्डं चिदानन्द देवाधिदेवं। फणिन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादि सेवं।
मुनीन्द्रा कवीन्द्रादि चन्द्रादि मित्रं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ॥1॥
धरा त्वं जलाग्निं मरुत्वं नभस्त्वं। घट त्वं पट त्वं अणुत्वं महत्वं।
मनस्त्वं वचस्त्वं दृग त्वं दृश त्वं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते समत्वं ॥2॥

चूर्णिका : भुजङ्गप्रयात : छन्द विशेष, जिसमें चार यगण [ISS] होते हैं।

1. देवाधिदेवं=देवों के भी देव, महादेव, परमात्मा। फणिन्द्र=फणीन्द्र शेषनाग। रुद्रादि=ग्यारह रुद्र देवताओं में प्रमुख रुद्र-शिव। सेवं=सेवित। मित्रं=मित्र, सूर्य।
2. धरात्वं=तुम ही धरा [-पृथ्वी] हो। मरु त्वं=मरुत् [-वायु] तुम ही हो। नभ=आकाश। पट=वस्त्र। अणुत्वं महत्वं=अणु से महत् तक तुम ही हो। अणु [-परमाणु] को वैशेषिक मत में सृष्टि का आदि कारण माना गया है। दृश त्वं=[सम्पूर्ण-] दृश्य सृष्टि तुम ही हो। समत्वं=तुम समान अर्थात् एक रस हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अडोलं अतोलं अमोलं अमानं। अदेहं अछेहं अनेहं निधानं।
अजापं अथापं अपापं अतापं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं ॥3॥
न ग्रामं न धामं न शीतं न चोष्णं। न रक्तं न पीतं न श्वेतं न कृष्णं।
न शेषं अशेषं न रेषं न रूपं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं ॥4॥
न छाया न माया न देशो न कालो। न जाग्रन्न स्वप्तं न वृद्धो न बालो।
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं ॥5॥
न बद्धं न मुक्तं न मौनं न वक्तुं। न धूम्रं न तेजो न यामी न नक्तं।
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं ॥6॥
न रुष्टं न तुष्टं न इष्टं अनिष्टं। न जेष्ठं कनिष्ठं न मिष्ठं अमिष्ठं।
न अग्रं न पृष्टं न तूलं गरिष्टं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अदृष्टं ॥7॥
न वक्त्रं न घ्राणं न कर्णं न अक्षं। न हस्तं न पादं न सीसं न लक्षं।
कथं सुन्दरं सुन्दरं नामध्येयं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेयं ॥8॥

॥ समाप्तोऽयं ब्रह्म स्तोत्राष्टकः ग्रन्थः ॥23॥

---

3. अतोलं=अतुल्य, अनुपम, परिमाण [-परिमाप] से बाहर। अछेहं=अछेद्य। अनेहं=अन+इह अर्थात् काम अथवा नेह रहित। अतापं=ताप रहित। अमापं=माप रहित, अप्रमेय।
4. शीतं न चोष्णं=न तो शीत हो और न उष्ण हो। रक्तं=लाल रंग के। कृष्णं=श्याम [-काले] रंग के। रेषं न रूपं=रूप-रेखा रहित हो।
5. न देशो न कालो=न तो तुम देश हो और न काल अर्थात् देश-काल से परे हो। जाग्रन्न स्वप्तं=न जगे हुए हो और न सोए हुए। वृद्धो न बालो=न तो तुम वृद्ध हो और न बालक। ह्रस्वं न दीर्घं=न तुम लघु हो और न लम्बे [-दीर्घ]। रम्यं=रमणीय। अगम्यं=अगम्य हो, अग्राह्य हो।
6. बद्धं न मुक्तं=न तुम बँधे हुए हो और न मुक्त। वक्तुं=वाणी, वचनीय। धूम्रं=धुआँ। तेजो=प्रकाश। यामी न नक्तं=न प्रहर [-दिन] हो और न रात्रि। युक्तं=लगे हुए। अयुक्तं=विच्छिन्न। न रक्तं विरक्तं=न आसक्त हो और न विरक्त। अशक्तं=अनासक्त। अथवा शक्ति [-माया] से रहित हो।
7. रुष्टं न तुष्टं=न रूठे हुए हो और न प्रसन्न। न इष्टं अनिष्टं=न इष्ट हो और न अनिष्ट। न जेष्ठं कनिष्ठं=न ज्येष्ठ [-बड़े] हो और न कनिष्ठ [-छोटे]। न मिष्ठं अमिष्ठं=न मीठे [-मधुर] हो और मिठास रहित ही हो। न अग्रं न पृष्टं=न तो तुम अग्र [-अग्रिम] भाग हो और पृष्ठ भाग। न तूलं गरिष्टं=न तुम हल्के हो और न भारी। अदृष्टं=दृष्टि से परे, अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म।
8. वक्त्रं=वाणी, वाक्। घ्राणं=नासिका। कर्णं=कान। अक्षं=आँख। हस्तं=हाथ। पादं=पैर। सीसं=शीश। लक्ष=लक्ष्य। कथं=कैसे हो, क्या हो। सुन्दरं नामध्येयं=सुन्दर श्लेष नामधारी हो। अमेयं=तुम माप से परे हो। अर्थात् अननुमेय हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥24॥ अथ पीर मुरीद अष्टक ॥

प्रवेशार्थ : फारसी-अरबी के शव्द-प्रयोग की प्रधानता वाले इस 'अष्टक में एक दोहा और 8 चामर छन्द हैं। इनमें पीर [-गुरु] और मुरीद [-शिष्य] के संवाद के माध्यम से 'मारिफ़त' दशा [-ब्रह्म ज्ञान] अनुभव की राह बताई गई है। मंजिल या लक्ष्य तक पहुँचते ही, उस दशा के अनुभव की अनिर्वचनीयता के कारण, पीर कहते-कहते चुप [-मौन] हो जाता है। तब संकेत से ही उस दशा का अनुमान लगा सकते हैं अर्थात् उस अनुभव को संकेतों में ही बताया जा सकता है। इस अष्टक में फ़कीरों के अन्दाज़ जैसी उक्तियाँ हैं, जैसे—'जो खूब तालिब होइगा तो समझि लेगा सैन।' रचना को पढ़ते हुए, रचनाकार का भाषाधिकार, छन्द-विधान कौशल तथा विषय-प्रतिपादन एवं वस्तु हस्तामलकता आदि पक्ष पाठक को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करते जान पड़ते हैं। मूल पाठ देखिए—

दोहा : सुन्दर षोजत षोजतें पाया मुरसिद पीर।
कदम जाइ उसके गहे देष्या अति गम्भीर ॥1॥

चामर : औवलि कदम उस्ताद के मैं गहे दोऊ दस्त।
उनि मिहर मुझ पर करी ऐसी ह्वै गया मैं मस्त ॥
जब सषुन करि मुझ कौं कह्या तू बन्दिगी करि षूब।
इस राह सीधा जाइगा तब मिलैगा महबूब ॥1॥

चूर्णिका : दो० 1. मुरसिद<मुर्शिद [अ०]=धर्मगुरु। पीर=अनुभव वृद्ध मान्य धर्मगुरु। कदम [अ०]=पैर, पाँव। कदम-गहे=पाँव पकड़े अर्थात् चरण शरण ली। गम्भीर=गहरा, धीर।

चामर : यह चामर छन्द [रगण-जगण-रगण-जगण-रगण=15 वर्ण] न होकर 26 मात्राओं वाला 'गीतिका' छन्द लगता है।

1. औवलि<अव्वल [अ०]=प्रथम, पहला, प्रमुख। उस्ताद [फा०]=शिक्षक, गुरु। गहे दोऊ दस्त [फा०]=दोनों हाथों से। उनि=उन्होंने। मिहर=कृपा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब उठि अरज उस्ताद सौं मैं करी ऐसी रौस।
तुम मिहरि मुझ पर करौ मुरसिद मैं तुम्हारी कौस ।।
वह बन्दगी किस रौस करिये मुझै देहु बताइ।
वह राह सीधा कौन है जिस राह बन्दा जाइ ।।2।।
तब कहै पीर मुरीद सौं तूं हिरसरा बुगुजार।
यह बन्दगी तब होइगी इस नप्स कौं गहि मार ।।
भी दुई दिल तैं दूर करिये और कुछू न चाह।
यह राह तेरा तुझी भीतर चल्या तूं हीं जाइ ।।3।।
तब फिरि कह्या उस्ताद सौं मैं राह यह बारीक।
क्यौं चलै बन्दा बिगरि देषें सबौं सौं फारीक ।।
अब मिहरि करि उस राह कौं दिषलाइ दीजै पीर।
मुझ तलब है उस राह की ज्यौं पिवै प्यासा नीर ।।4।।
तब कहै पीर मुरीद सेती बन्दगी है येह।
इस राह पहुंचै चुस्तदम करि नांव उसका लेह ।।
तूं नांव उसका लेहगा तब जाइगा उस ठौर।
जहां अरस ऊपर आप बैठा दूसरा नहिं और ।।5।।

दया, अनुकम्पा। मस्त [फा०]=मतवाला, बेसुध, अति प्रसन्न। सषुन [फा०] =बात, शब्द, हिदायत वचन, भाव-विभोर होकर कहे गए शब्द। बन्दिगी= वन्दना, प्रार्थना, इबादत, उपासना, आराधना। षूब=पूरी तरह से। राह=मार्ग। सीधा जाइगा=सरल-सीधे अर्थात् ऋजु मार्ग से। महबूब<महबूब [अ०]= माशूक, प्रेमपात्र, प्रेमास्पद, इष्ट।

2. अरज<अर्ज़ [अ०]=विनती, प्रार्थना, गुज़ारिश। ऐसी रौस<रविश [फा०] =इस तरह से, इस पद्धति से, इस तर्ज़ से। मिहरि<मिह्र [फा०]=कृपा, दया। कौस<क़ौस [अ०]=धनुष, कमान। अर्थात् गुरु के लिए साधक [-शिष्य] कमान की करह से है, जिसको वह, लक्ष्य-भेद केलिए, जैसे चाहे वैसा खींच-तान सकता है। किस रौस=किस तरीके से। बन्दा [फा०]=शिष्य, भक्त, साधक, ईश्वर का उपासक।

3. हिरसरा<हिर्स [अ०]+रा [फा०, का-को]=इच्छा को, लिप्सा को, कामना को। बुगुजार [फा०]=द्वेष छोड़ दे। नफ्स [अ०]=बुजूद, आपा, अहंकार वृत्ति। भी=भई, अरे भई, अरे भाई। दुई=द्वैत, फर्क। राह=मार्ग [पुलिंग प्रयोग]।

4. कह्या मैं=मैंने कहा। राह-बारीक=सूक्ष्म मार्ग है अध्यात्म मार्ग। बिगरि देषें=बिना देखे हुए। फारीक<फ़ारकि [अ०]=अलग होकर, मुक्त होकर, निश्चिन्त होकर। तलब=ललक, चाह। नीर प्यासा=प्यासे केलिए पानी की तरह से।

5. सेती=से। चुस्तदम [फा०]=होशियार होकर, प्राण-साधना करते हुए। लेहगा =लेगा, स्मरण करेगा। अरस<अर्श [अ०]=तख्त, आसमान, आसमानी ताक़त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब कहै तालिब सुनौं मुरसिद जहां बैठा आप।
वह होइ जैसा कहौ तैसा जिसै माइ न बाप॥
बैठा उठा कहिये तिसे औजूद जिसकै होइ।
बेचूंन उसकौ कहत हैं अरु बेनिमूनै सोइ॥6॥
जब कह्या तालिब सषुन ऐसा पीर पकरी मौन।
कौ कहेगा न कह्या न किनहूं अब कहै कहि कौन॥
तब देषि वोर मुरीद की उन पीर मूंदे नैंन।
जौ षूब तालिब होइगा तौ समझि लेगा सैन॥7॥
हैरान है हैरान है हैरान निकट न दूर।
भी सषुन क्यौं करि कहै तिसकौं सकल है भरपूर॥
सम्बाद पीर मुरीद का यह भेद पावै कोइ।
जो कहै सुन्दर सुनै सुन्दर उही सुन्दर होइ॥8॥9॥

॥ समाप्तोऽयं पीर मुरीद अष्टक ग्रन्थः ॥24॥

---

6. तालिब=शिष्य, जिज्ञासु साधक। माइ न बाप=जिसके न माँ है न बाप। औजूद =अस्तित्व, अस्मिता। बेचूंन<बेचूँ [फा॰]=बेमिस्ल, अद्वितीय, अनुपम। बेनिमूनै=बिना नमूने के, अनुपम।

7. पीर पकरी मौन=उस्ताद [-सद्गुरु]ने मौन धारण कर लिया, यह संकेत है वाणी रहित होकर स्वयं अनुभव का। वोर=ओर, तरफ। मुरीद=शिष्य। मूँदे नैन= नेत्र मूँद लिए। यह संकेत भी अन्तर्मुखी होकर, अन्तर्दृष्टि से, स्वयं अनुभव का है। समझि लेगा सैन।=नेत्र-संकेतों से समझ लेगा। षूब तालिब होइगा=सच्चा शिष्य [-जिज्ञासु] होगा तो।

8. हैरान=विस्मित, चकित अचम्भित, अवाक्। निकट न दूर=परम तत्त्व के अनुभव में आने पर वह न तो निकट रहता है और न दूर। भरपूर=वह तो भरा-पूरा है, व्याप्त है, उससे कोई जगह खाली नहीं है। उही=वही।

टिप्पणी : इस अष्टक में सूफी विचारधारा की भी व्यंजना हो रही है। इसमें 'हैरान दशा' के द्वारा 'हक' अवस्था का संकेत मिलता है। सूफी मत में चार अवस्थाएँ हैं— शरीअत, तरीकत, मारिफत और हकीकत। साधक इन चार मंजिलों की पहुँच के फलस्वरूप—मलकूत, जबरूत, लाहूत और हाहूत इन चारों दिशाओं का अनुभव करने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 25 ।। अथ अजब ष्याल अष्टक ।।

प्रवेशार्थ : 'पीर-मुरीद अष्टक' के समान ही, अरबी-फारसी के शब्दों की प्रधानता वाला यह अन्य अष्टक है। इसका प्रतिपाद्य विचित्र [अजीब-अद्भुत] संयोजन वाली इस दुनिया की विचित्रताओं को रेखांकित करता है। यह संसार अजायबात से भरा हुआ होने के कारण ही 'अजायब घर' कहलाने योग्य है। वैसे भी इस लोक में आकर मनुष्य की बुद्धि, उस विधाता [-परवरदिगार] की महिमा [-सीमा] के विषय में सोचते-सोचते [परेशान-] हैरान होती हुई अवाक् रह जाती है। इस विचित्रता भरे जगत् के मर्म को समझने-समझाने केलिए किसी मर्मी उस्ताद की आवश्यकता होती है। तभी इसका भेद खुलता है। इसीलिए प्रत्येक गीतक छन्द के अन्त में, इस दुनिया की विलक्षणता को प्रतिपादित करने केलिए 'यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है' की आवृत्ति हुई है। आठ गीतक छन्द और दस दोहों में परिसमाप्त इस रचना [-हर दोहे के बाद एक गीतक छन्द] में अरबी-फारसी के शब्दों का सक्षम प्रयोग देखकर, प्रयोक्ता की प्रतिभा के विषय में सोचते हुए बुद्धि विस्मय चकित हो उठती है। आश्चर्य यह जानकर होता है कि, कथन की सहज-साधारणता में ही, विशेष [-अतिविशेष] प्रतिपाद्य को, पीर-मुरीद सम्वाद शैली में अनायास ही प्रस्तुत कर दिया गया है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

दोहा : सिजदा सिरजनहार कौं मुरसिद कौं ताजीम।
सुन्दर तालिब करत है बन्दौं कौं तसलीम ।।1।।
सुन्दर इस औजूद मौं अजब चीज है वाद।
तब पावै इस भेद कौं पूब मिलै उस्ताद ।।2।।

चूर्णिका : दो० 1-2. सिंजदा < सिज्दः [अ०]=दण्डवत् करना, नमाज़ अदा करते हुए सिर ज़मीन पर झुकाना। सिरजनहार=स्रष्टा, विधाता, परमात्मा। मुरसिद < मुर्शिद [अ०]=धर्मगुरु, पीर। कौं=को। ताजीम [अ०]=आदर-सत्कार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतक : उस्ताद सिर पर चुस्त दम कर इश्क अल्लह लाइये।
गुजरान उसकी बंदगी मौं इश्क बिन क्यौं पाइये ।।
यह दिल फकीरी दस्तगीरी गस्त गुंज सिनाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है ।।1।।

दोहा : सुंदर रत्ता एक सौं दिल मौं दूजा नेश ।
इश्क महब्बति बंदगी सो कहिये दुरवेश ।।3।।

इज़्ज़त-तस्लीम । तालिब [अ०]=जिज्ञासु, प्रार्थी, ख्वाहिशमंद, आर्जूमंद। तसलीम<तस्लीम[अ०]=सलाम, प्रणाम करना। बन्दौं कौं=परमात्मा के भक्तों को, खुदाई खिदमतगारों को। इस औजूद मौं= इस शरीर [-वजूद] अथवा संसार के अस्तित्व में, इस दृश्य जगत् में। अजब चीज=विचित्र[-अद्भुत] वस्तु। वसद [अ०]=प्रतिज्ञा, वचन अथवा दर्शन देने का करार, कलाम, मुँह दिखाने-दीदार कराने का वादा। पूब मिलै उस्ताद=भरा-पूरा [-पूर्ण] गुरु मिले तो।

गीतक : यहाँ 'गीतक' नाम 'हरि गीतिका' छन्द का है, जिसके प्रत्येक चरण में 16,12 की यति से 28 मात्राओं का विधान होता है और अंत में लघु-गुरु रहते हैं। इस पूरी रचना में आगे 'गीतक' के स्थान पर 'छन्द' लिखा मिलता है, जो 'गीतक' का ही पर्याय है। अतः 'छन्द' के स्थान पर पाठ के साथ यहाँ 'गीतक' लिखा गया है।

गी० 1. उस्ताद सिर पर=निर्देशक के रूप में शीश पर[-सर्वोपरि रूप में]गुरु विद्यमान है। चुस्त दमकर=प्राण-चेतना को सन्नद्ध [-सावधान] करके। इश्क अल्लह लाइये =अल्लाह [-परमात्मा] के प्रति प्रेम-भक्ति प्राप्त करिए अथवा लगाइए। गुजरान <गुज़रान-गुज़र [फा०]=निर्वाह, गुज़र-बसर, प्रवेश, पहुँच। गुजरान उसकी बंदगी मौं इश्क बिन क्यौं पाइये [सूक्ति]=परमात्मा की भक्ति में प्रेम-भाव के बिना प्रवेश [-निर्वाह]नहीं होता। दिल फकीरी=दिल की फकीरी अर्थात् फकीरों [-महात्माओं]जैसा दरिया-दिल। दस्तगीरी[फा०]='दस्तगीर', पकड़कर सहारा देने वाला[-मददगार]से बना है 'दस्तगीरी' शब्द। अर्थात् गिरते हुए को[थामने-] सहारा देने की क्रिया। गस्त<गश्त [फा०]=फेरी, मौज-मस्ती में घूमना अथवा चक्कर [-गर्दिश] में मारे-फिरना। गुंज [अ०]=आवभाव, नाज़ [-अदा]। सिनाल<सिनाँ [फा०]=अनी, बाण-बरछी की नोक अर्थात् प्रेमी [-भक्त] का जीवन बरछी की नोंक पर चलने के समान है। कब्ज<क़ब्ज़ [अ०]=गिरफ्त, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, सिकुड़न। दुन्दर<द्वन्द्व [सं०]=द्वैत, दुई। अर्थात् जिसका पकड़, [द्वन्द्व-] द्वैत समाप्त हो गया है, मिट गया है, निर्द्वन्द्व हो गया है। दुनिया में यह [-ऐसा] ख्याल अद्भुत [-विचित्र] है।

दो० 3. रत्ता=आसक्त, लगा हुआ। दूजा=दूसरा, अन्य। नेश<नेस्त [फा०] =नहीं है, नास्ति, समाप्त। दुरवेश<दरवेश [फा०]=पुनीतात्मा, रसीद : [पहुँचा हुआ] सिद्ध पुरुष।

दरवेश : जिममें खुदा केलिए इश्क, बन्दों केलिए मुहब्बत जौर चर्या-व्यवहार में बन्दगी हो वह 'दरवेश' कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतक : दुरवेश दर की षवर जानै दूर दिल की काफिरी।
दर दरदबंद षरा दरूंनै उसी बीच मुसाफिरी ।।
है बेतमा इसमाइ हर्दम पाक दिल दर हाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है ।।2।।

दोहा : सुन्दर सीनै बीच है वन्दे का चौगांन।
पहुंचावै उस हाल कौं इहै गोइ मैदान ।।4।।

गीतक : काब्दस्त इस मैदान मैं चौगांन षेलै षूब है।
असवार ऐसा तुरी वैसा प्यार उस महबूब है ।।
इस गोइ कौं लै जाइकै पहुंचाइ दे उस हाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजव ऐसा ष्याल है ।।3।।

गी० 2. दर की षवर जानै=दर-दरगाह-द्वार की, [लोक-लोकान्तर अथवा प्राणि मात्र की] याद रखता है और दूर दिल की 'काफिरी' भी जानता है। काफिरी [अ०]= काफिरपन, नास्तिकता की भावना, सत्य [-ईश्वर] को न मानने वाली नीयत। दरदबंद=दर्दमन्द, दिल में प्रिय से मिलने का विरह जनित दर्द। षरा दरूंने=खरा +दरूंनै अर्थात् खरा [-साफ शुद्ध] दरूं <दर [फा०] <दरून [फा०]=भीतर, हृदय, चित्त, आत्मा। 'षरा दरूंनै' अर्थात् अन्तःकरण की निर्मल [-पवित्रता के द्वारा]। मुसाफिरी=फकीरी की यात्रा, सन्त-महात्माओं की चर्या। बेतमा [फा०]=निस्पृह, निर्लोभी, बेनियाज़। इस माइ<इस्म [अ०]=नाम लेना। हर्दम=हर समय, श्वास-श्वास में। पाक दिल=शुद्ध हृदय, पवित्र अन्तःकरण। दर हाल=भीतर की दशा [-हालत], निरन्तर 'हाल' की दशा में।

दो० 4. सीनै<सीन : [फा०]=वक्षस्थल, हृदय में। बन्दे=साधक, भक्त। चौगांन< चौगान [फा०]=घोड़े पर चढ़ कर खेला जाने वाला खेल, पोलो। गोइ<गो [फा०]=गेंद, चौगान खेल की गेंद। मैदान [फा०]=क्रीड़ास्थल, हृदय [प्रती०] हाल=हक की दशा, साधना की उच्च अवस्था, तुरीयावस्था।

गी० 3. काब्दस्त<काब [अ०]=धनुष की मूंठ या बाण का सिरा है हाथ में जिसके अर्थात् होशियार, सावधान साधक। अथवा काब [फा०] पांसा हाथ में है जिसके, होशियार, तत्पर मुर्शिद। खूब=सम्यक् रूप से। असवार<सवार [फा०]= घुड़सवार, अश्वारोही, सवारी पर बैठा हुआ। तुरी=अश्व, घोड़ा [-घोड़ी], 'मन' की गति और चंचलता केलिए प्रतीक। गोइ=गेंद, इधर-उधर दौड़ने [-लुढ़कने] वाले मन के प्रतीक के रूप में गेंद। **टिप्पणी :** साधक [-खिलाड़ी], यम-नियम के दण्ड [-अनुशासन] में रहते हुए, गेंद [-मन] को लक्ष्य [-ईश्वर] की ओर ले जाने का प्रयत्न करता है। उस हाल मैं=उस दशा में, तुरीयावस्था या 'हाल' दशा में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सुन्दर उनका नांव ले एक उसी की चाह।
रब्बु रहीम करीम वह वह कहिये अल्लाह ॥5॥

गीतक : अल्लाह षुदाइ करीम कादिर पाक प्रवर्द्दिगार है।
सुबिहान तूं सत्तार साहिब साफ सिरजनहार है॥
मुस्ताक तेरे नांव ऊपर षूब षूबां लाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है॥4॥

दोहा : सुन्दर इस औजूद मौं इश्क लगाई ऊक।
आशिक ठंडा होइ तब आइ मिलै माशूक ॥6॥

गीतक : माशूक मौला हक्क ताला तूं जिमी असमान मौं।
है आब आतश बाद म्यानै षबरदार जिहान मौं॥
मालिक मलूक मालूम जिसकौं दुरस दिल हर साल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है॥5॥

दो० 5. नांव ले=नाम स्मरण करते हुए। चाह=चाहत, लक्ष्य-कामना। रब्बु<रब [अ०]=स्वामी, खुदा, परमात्मा। रहीम [अ०]=दयालु, कृपालु, ईश्वर। करीम [अ०]=मेहरबान, ईश्वर। अल्लाह [अ०]=खुदा, परमात्मा।

गी० 4 : षुदाइ [फा०]=अल्लाह, परमात्मा। कादिर<क़ादिर [अ०]=शक्तिशाली, समर्थ, परमात्मा का एक नाम। पाक=शुद्ध, पवित्र। प्रवर्द्दिगार<पर्वदगार [फा०]=पालन-पोषण करने वाला, खुदा, परमात्मा। सुबिहान [अ०]=पवित्र, शुद्ध। सत्तार [अ०]=पर्दे में रखने वाला, पर्दापोशी करने वाला, ईश्वर का एक नाम। साफ=शुद्ध-पवित्र। मुस्ताक<मुस्तह्क [अ०]=अटल, चिरस्थायी, यक़ीनी। अथवा मुश्ताक़ [अ०]=उत्कण्ठित, अभिलाषी।

दो० 6. इश्क=प्रेम, प्रेम-लगन, भक्ति-भावना। ऊक=उल्का, चिनगारी, दाह, आग, लगन [-प्यास], उत्कण्ठा। आशिक=प्रेमी-भक्त। माशूक=प्रेमास्पद, प्रिय-परमात्मा।

गी० 5. माशूक मौला=प्रेमास्पद मस्त मौला है। 'मौला' [अ०]=स्वामी, मालिक, ईश्वर। हक्क ताला='हक्क' दशा को बढ़ाने वाला। ताला∠तालल्लाह [अ०] अल्लाह बढ़ाए, वृद्धि करे। जिमी<ज़मीं [फा०]=ज़मीन, धरती। आब आतिश=जल और आग। बाद [फा०]=शराब, मदिरा, हाला। म्यानै=अन्दर, आभ्यन्तर, हृदय में। षबरदार=खबरदार, सावधान। जिहान=जहान, संसार। मलूक=फरिश्ते, देवतागण। मालुम=ज्ञात। दुरस दिल=दुरुस्त दिल, पवित्र हृदय, निर्मल मन। हर साल=सदा ही, सदैव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सुन्दर जो गाफल हुवा तौ वह सांई दूर।
जो बन्दा हाजिर हुवा तौ हाजरां हजूर ॥7॥

गीतक : हाजर हजूर कहैं गुसइया गाफिलों कौं दूर है।
निरसंध इकलस आप वोही तालिवां भरपूर है॥
वारीक सौं बारीक कहिये बड़ौं बड़ा बिसाल है।
यौं कहत सुन्दर कव्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है॥6॥

दोहा : सुन्दर सांई हक्क है जहां तहां भरपूर।
एक उसी के नूर सौं दीसै सारे नूर॥8॥

गीतक : उस नूर तें सब नूर दीसै तेज तें सब तेज हैं।
उस जोति सौं सब जोति चमकै हेज सौं सब हेज हैं॥
आफताब अरु महताब तारे हुकम उसके चाल है।
यौं कहत सुन्दर कव्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है॥7॥

दोहा : सुन्दर आलिम इलम सब षूब पढ्या आषूंन।
परि उसकौं क्यौं कहि सकै जो कहिये बेच्यूंन॥9॥

दो॰ 7. गाफिल<ग़ाफ़िल [अ॰]=बेहोश, असावधान बेखबर, आलसी। सांई= स्वामी, परमात्मा। हाजिर हुवा=समीप रहा तो। हाजरां हजूर [अ॰]=मालिक के निकट उपस्थित, सामीप्य भाव, सायुज्य भक्ति।

गी॰ 6. हाजर हजूर=सावधान रहकर जो सदा उपस्थित रहते हैं। गुसइया=गुसांई, स्वामी, इन्द्रियजयी महात्मा-सन्त। दूर है=दूर अर्थात् अपने से भिन्न है। निरसंध=अखण्ड, पूर्ण। इकलस=एकरस, इकसार। भरपूर=परिपूर्ण, व्याप्त। बारीक=सूक्ष्म। बिसाल=विशाल। **टिप्पणी :** दादू॰ बा॰ भा॰ 1 में भी 'निरसंध', 'इकलस' [-परचा कौ अंग] शब्द प्रयुक्त हुए मिलते हैं। 'बारीक सौं… बिसाल है' कथन 'अणो रणीयान् महतोमहीयान्' उपनिषद्-वाक्य का भाषान्तरण ही है।

दो॰ 8. सांई हक्क है=स्वामी ही सत्य है। तुलना केलिए-दादू॰ बा॰, भा॰ 1 [-परचा॰ सा॰ 89] द्रष्टव्य है। नूर=प्रकाश।

गी॰ 7. जोति=ज्योति, प्रकाश। हेज=प्रेम। आफताब<आफ़ताब [फा॰]=सूर्य, दिनकर। महताब [फा॰]=चन्द्रमा, चाँद [-चाँदनी]। तारे=नक्षत्र। हुकम< हुक्म [अ॰]=आज्ञा, आदेश, फ़रमान। चाल है=गति वाले हैं।

दो॰ 9. आलिम [अ॰]=ज्ञानी, विद्वान्। इलम=इल्म, ज्ञान। आषूंन<आखुंद [तु॰]=शिक्षक, अध्यापक। षूब पढ्या=भलीप्रकार पढ़ा हुआ, अनुभव में आया हुआ ज्ञान। बेच्यूंन<बेचून [फा॰]=बिना समानता के, अनुपम, अतुलनीय, अद्वितीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतक : बेच्यूंन उसकौं कहत बुजरग बेनिमून उसै कहैं।
अरु औलिया अंबिया वै भी गोस कुतब षड़े रहैं ।।
को कहि सकै न कह्या न किनहूं सषुन परै निराल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ष्याल है ।।8।।

दोहा : ष्याल अजब उस एक का सुन्दर कह्या न जाइ।
सषुन तहां पहुंचै नहीं थक्या उरै ही आइ ।।10।।18।।

।।समाप्तोऽयं अजब ष्याल अष्टक ग्रन्थः ।। 25 ।।

गी० 8. बुजरग < बुजुर्ग [फा०] = वृद्ध, ज्ञानी, अनुभवी । बेनिमून = बेमिसाल, अनुपम । अंबिया [अ०] = 'नबी', 'वली' का बहुवचन, पैगम्बर लोग, अवतारी औलिया । गोस < ग़ौस [अ०] न्यायकर्त्ता, दुहाई सुनने वाला । कुतब [अ०] = 'किताब' का बहुवचन, धर्म ग्रन्थ । सषुन [फा०] = वाणी, वचन [-बातचीत], प्रवचन । निराल = निराला, अनोखा, न्यारा ।

दो० 10. ष्याल अजब = अद्भुत-विलक्षण विचार । थक्या = थका हुआ, विरमित । उरै = इधर ही ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥26॥ अथ ज्ञान झूलनाष्टक ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 'अष्टक' रचना में अध्यात्म विषय अथवा तसव्वुफ विषय को, जन-सामान्य की मानसिकता के अनुकूल बनाकर भाषाबद्ध कर दिया गया है। इसमें सूफी-विचार के साथ ही उपनिषदों की विचारधारा का भी प्रतिफलन हुआ है। 'नेति नेति' की भारतीय तत्त्व-दर्शन पद्धति को भाषा में अभिव्यक्ति मिली है। वह परमतत्त्व—'नहिं सुन्दर भाव अभाव है रे'। उस परम की प्राप्ति—'कोई सुन्दर होय सु पावता हैं'। अतः विचारक ही उसे अनुभव में उतार पाता है। शब्दावली में संस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग सुन्दरदास की भाषा विषयक समन्वयी चेतना का प्रतिफल है। रचना में सन्त-वाणी के अनुरूप **'अनुभौ'** की प्रधानता पर विशेष ज़ोर दिया गया है। मूल पाठ देखिए—

झूलना : उस्ताद के कदम सिर पै धरौं अब झूलना पूब बषानता हूं।
अरवाह मैं आप बिराजता है वह जानका जान है जानता हूं॥
उसही के डुलायें डोलता हूं दिल षोलता बोलता मानता हूं।
उसही के दिषाये मैं देषता सुनता सुन्दर यौं पहिचानता हूं॥1॥

चूर्णिका : झूलना : यह छन्द मात्रिक एवं वार्णिक दोनों वर्गों में आता है। यहाँ वार्णिक 'भूलना' है। इसमें 7 सगण [।।ऽ], 1 यगण [।ऽऽ] के योग से 24 अक्षर होते हैं। अन्त में यगण का विधान आवश्यक है। प्रस्तुत झूलना छन्दों में यगण एवं सगण मिश्रित रूप में नियोजित हैं।

1. उस्ताद=गुरु। झूलना=छन्द विशेष। अरवाह [अ०] <'रूह' का बहु वचन। सूफी मत में 'मलकूत' मुकाम को 'मुकामे अरवाह' कहा गया है। वह जान का जान है=वह जीवात्मा का भी तत्त्वात्मा है। जानता हूं=अनुभव मैं पहचानता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नीरै कहै कोई दूरि कहै आपुहि नीरै दूर न है रे।
दिल भीतर बाहर एक सा है असमान ज्यौं वो भरपूर है रे॥
अनुभव बिना नहिं जान सकै निरसन्ध निरन्तर नूर है रे।
उपमा उसकी अब कौन कहै नहिं सुन्दर चन्द न सूर है रे ॥2॥
कोई वार कहै कोई पार कहै उसका कहूं वार न पार है रे।
कोई मूल कहै कोई डार कहै उसके कहूं मूल न डार है रे॥
कोई सून्य कहै कोई थूल कहै वह शून्य हुं थूल निराल है रे।
कोई एक कहै कोई दोइ कहै नहिं सुन्दर द्वन्द लगार है रे॥3॥
कोई योग कहै कोई जाग कहै कोई त्याग वैराग बतावता है।
कोई नांव रटै कोई ध्यान ठटै कोई षोजत ही थकि जावता है॥
कोई और हिं और उपाव करै कोइ ज्ञान गिरा करि गावता है।
वह सुन्दर सुन्दर सुन्दर है कोई सुन्दर होइ सु पावता है॥4॥
नहिं बैठता है नहिं ऊठता है नहिं आवनै का नहिं जावनै का।
नहिं बोलता है न [हिं] अबोलता है नहिं देषता है न दिषावनै का॥
नहि सूंघता है न असूंघता है नहिं सुंनता है न सुनावनै का।
नहिं सोवता है नहिं जागता है नहिं सुन्दर सषुन पावनै का ॥5॥

---

2. नीरै=निकट। एक सा है=निरन्तर [-व्याप्त] होने के कारण समान है, वर्तमान है। असमान ज्यौं=आसमान [-आकाश] के समान। अनुभव=आत्मानुभव, स्व-अनुभव। निरसन्ध=अखण्ड। निरन्तर नूर=निरन्तर [-व्याप्त] प्रकाश है। चन्द न सूर है=उसके प्रकाश के समक्ष सूर्य-चन्द्र भी कुछ नहीं ठहरते।
3. वार=इस ओर। पार=उधर, उस पार। वार-पार=ओर-छोर। मूल=जड़। डार=डाली, शाखा, टहनी। सून्य=शून्य, निराकार। थूल=स्थूल। निराल=निराला, अनोखा, विलक्षण। लगार=लगा हुआ। **टिप्पणी :** यहाँ शून्यवादी बौद्धों एवं स्थूलवादी वैष्णवों के मतों को निरस्त किया गया-सा लगता है।
4. जाग < जग्य=यज्ञ। वेदों में 'यज्ञ' को एक साधन माना गया है। यहाँ तक कि श्रुति में 'यज्ञो वै विष्णु:' कहा गया है। कोई···बतावता है=किसी के मत में योग, तो किसी के मत में यज्ञ, तो कोई त्याग-वैराग्य को उसकी प्राप्ति का साधन बताता है। ठटै=ठाठ रचता है, विश्वास करता है। उपाव=उपाय, साधन। ज्ञान गिरा=ज्ञान की वाणी। अन्तिम पंक्ति में प्रथम तीन 'सुन्दर' शब्द प्रयोग परम रूपवान्-परमोत्कृष्ट परमात्मा केलिए विशेषण हैं और अन्तिम 'सुन्दर' शब्द कवि की छाप है। अर्थ किसी दूसरे क्रम से भी किया जा सकता है।
5. इस झूलना छन्द में पंचेन्द्रियों के क्रिया-व्यापारों का वर्णन है। पर, वह 'परब्रह्म' इन इन्द्रियों की कार्य-सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। इसीलिए यहाँ ध्वनित है कि वह इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आता। वह तो 'इन्द्रियेभ्य: परं:' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहु कौन कहै कहु कौन सुनै वह कहन सुनन तैं भिन्न है रे।
कहुं ठौर नहीं कहुं ठांव नहीं कहुं गांव नहीं तिन किन्न है रे॥
तहां शीत नहीं तहां घांम नहीं तहां धांम न राति न दिन्न है रे।
तहां रूप नहीं तहां रेष नहीं तहां सुन्दर कछू न चिन्ह है रे॥6॥
नहिं गौस है रे नहिं नैन है रे नहिं मुख है रे नहिं बैन है रे।
नहिं ऐंन है रे नहिं गैंन है रे नहिं सैंन है रे न असैंन है रे॥
नहिं पेट है रे नहिं पीठ है रे नहिं कड़वा है नहिं मीठ है रे।
नहिं दुश्मन है नहिं ईठ है रे नहिं सुन्दर दीठ अदीठ है रे॥7॥
नहिं शीश है रे नहिं पांव है रे नहिं रंक है रे नहिं राव है रे।
नहिं षावनै पीवनै चाव है रे नहिं हारनैं जीतनैं दाव है रे॥
नहिं नीर है रे नहिं नाव है रे नहिं षाक है रे नहिं बाव है रे।
नहिं मौति है रे नहिं आव है रे नहिं सुन्दर भाव अभाव है रे।

॥ समाप्तोऽयं ज्ञान झूलनाष्टक ग्रन्थः ॥26॥

---

6. कहु = कहो, बताओ। अथवा 'कह कर बताओ'। क्योंकि 'वह' तत्त्व कहने में नहीं आता, इसीलिए वचनातीत है। श्रुति का प्रमाण है—'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' [-तैत्ति० उप०]। तिन किन्न है = तिन [-उस] का वह तहाँ [-वहाँ हीं] नहीं है। अपितु देश-काल की सीमा में आबद्ध न होने के कारण वह सर्वत्र है। घांम = धूप। इस झूलना छन्द में परब्रह्म के 'दिक्काल घन अनवच्छिन्न' दशा का वर्णन है।
7. गौस = गोस [-गोश] श्रवण या श्रोता, सुननेवाला। बैन = वाणी। ऐंन-ग़ैन = फारसी-अरबी वर्णमाला के अक्षर। **टिप्पणी :** सूफी मत में 'ऐन' निर्विशेष परम तत्त्व पर जब नुक़्ता [-बिन्दु] लग जाता है, तो वह 'ग़ैन' [-विशेष] मायाच्छन्न संसार हो जाता है। 'ऐन-ग़ैन' के सम्बन्ध में कुरान का प्रमाण है—'सिफा तुल्लाहे लैसा ऐने जातिन्।' अर्थात् [ईश्वर-] अल्लाह की जाति, गुणों में विशिष्ट नहीं है, अपितु निर्विशेष है। इसीलिए उसकी जाति 'ऐन' कही गई है और प्रकृति-माया के गुण 'ग़ैन' कहे गए हैं। एक 'ऐन' नामक फकीर की यह उक्ति प्रसिद्ध है—'जब इस नुक़्तए हस्ती को दिया दिल से उठा। ऐन में ग़ैन में क्या फेर है, अल्ला: अल्ला:।' [-सु० ग्रं०, खण्ड 1, पृ० 299, पाद-टिप्पणी]। ईठ = इष्ट। दीठ-अदीठ = दृष्टि और अदृष्टि [की सीमा में नहीं बँध पाता]।
8. रंक-राव = रंक-राजा, गरीब-अमीर। नहिं षावनै-पीवनै चाव है = खाने-पीने का चाव नहीं है। नाव = नौका। दाव = मौक़ा, अवसर। बाव = वायु। आव = आयु अथवा आव [-पानी]। नहिं भाव अभाव है = 'वह' तत्त्व भाव और अभाव दोनों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 27 ॥ अथ सहजानन्द ॥

प्रवेशार्थ : चार दोहे और बीस चौपई छन्दों में परिसमाप्त इस लघु रचना में रचनाकार का मुख्य प्रतिपाद्य 'सहजानन्द' प्राप्ति-क्रम बताना है। ऐसे अनुभव की प्राप्ति में आडम्बर पूर्ण आचरण किसी प्रकार भी सहायक नहीं हो सकता। विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों में जो विशेष विधि-विधान या चर्या-पद्धतियाँ हैं, जैसे—स्नान, सन्ध्या, जप-माला, तिलक-छापा, व्रत-तीर्थ, यज्ञादि अथवा सुन्नत, रोज़ा, नमाज़ हजादि अथवा पाठादि विधि हैं, उनसे तत्त्व-ज्ञान-प्राप्ति में कोई खास सहायता नहीं मिलती। तत्त्व ज्ञान पाने केलिए तो 'सहजै नाम निरंजन लीजै' ही पर्याप्त है। क्योंकि, इसी नाम-स्मरण के सहारे महादेव, नारद, ध्रुव-प्रह्लाद, सनकादि साधक पूर्वकाल में और गोरख, गोपीचन्द, कबीर, रैदास, नामदेव, पीपा, भर्तृहरि, दादू आदि वर्तमान समय में संतरण [-तारण] प्राप्त कर गए हैं। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, 'सहजानन्द' वह आनन्द अथवा आतमानंद है, जो बिना किसी विशेष काया-कष्ट वाले आचरण [कर्मकाण्ड-आडम्बर] के, सहज रूप में ही चित्त की निर्मलता एवं लय-निरन्तरता से प्राप्त हो जाता है, अथवा हो सकता है। इसीलिए तो कहा गया है कि—

'सुन्दर सहजैं चीन्हियां एकै राम अलाह।'

दादू कहते हैं—

'अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिंदू तुरक भेद कछु नाहीं, देषौं दरसन तोरा।'

—संत० संग्र० [-चतुर्वेदी], प० 255

कबीर कहते हैं—

'संतो राह दूनौं हम दीठा।
हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै, स्वाद सबनि को मीठा।'

—क० ग्रं० [-खण्ड 2], सबद 304

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ सन्त सुन्दरदास ने भी अनायास प्राप्त आनन्द केलिए समस्त बाह्याचारों को निरस्त करने की बात कही है। उन्होंने सन्त-वाणी के **'सहज ज्ञान'** को महत्त्वपूर्ण और उसके विचार-पक्ष को व्यवहार्य बताया है। रचना में दोहे-चौपाई शैली का अवलम्ब लिया है। मूल पाठ देखिए—

चौपई : प्रथमहिं निराकार निज बन्दं। गुरु प्रसाद सहजै आनन्दं ॥
पूरण ब्रह्म अकल अबिनाशी। पञ्च तत्व की सृष्टि प्रकाशी ॥1॥
चिन्ह बिना सब कोई आये। इहां भये दोइ पन्थ चलाये ॥
हिन्दू तुरक उठ्यो यह भर्मा। हम दोऊ का छाड्या धर्मा ॥2॥
नां मैं कृत्तम कर्म बषानौं। नां रसूल का कलमा जानौं ॥
नां मैं तीन ताग गलि नाऊं। नां मैं सुंनत करि बौराऊं ॥3॥
माला जपौं न तसबी फेरौं। तीरथ जाऊं न मक्का हेरौं ॥
न्हाइ धोइ नहिं करूं अचारा। उजू तैं पुनि हूवा न्यारा ॥4॥

चूर्णिका : चौपई<चौपाई : मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ और चार चरण होते हैं।

1. अकल=कला रहित, निर्विकार। प्रकाशी=प्रकाशित हुई, प्रतिभासित हुई।
2. चिन्ह बिना=बिना चिह्न या निशान के—जैसे चोटी धारी अथवा खतना किए हुए। इहां=इस संसार में आकर। दोइ पन्थ=दो मत [-मार्ग] अर्थात् हिन्दू मुसलमान चर्या-पद्धतियाँ। तुरक=मुसलमान। भर्मा=भ्रम, भ्रान्ति। हम दोऊ का छाड्या धर्मा=हमने दोनों सम्प्रदायों के रूढ़ विधि-विधान छोड़ दिए हैं।
3. कृत्तम कर्म=कृत्रिम, बनावटी, दिखावे मात्र के नित्य पंच कर्म या षोडशकर्म। रसूल [अ०]=नबी, पैग़म्बर। कलमा<कलिमः [अ०]=वह वाक्य जो इस्लाम में मूल-मंत्र या धर्म-मंत्र माना गया है। तीन ताग=जनेऊ। सुनंत<सुन्नत [अ०]=इस्लाम धर्मानुयायी, मुसलमानी स्वीकार करने केलिए, पुलिंग वर्ग मूत्रेन्द्रिय का अग्र भाग या उसकी चमड़ी का कुछ भाग काटकर उत्सव करते-करवाते हैं। इसे 'खत्नः' या 'मुसलमानी' रस्म कहा जाता है।
4. तसबी<तस्बीह [अ०]=माला। मक्का<मक्कः [अ०]=मुसलमानों का तीर्थ स्थान, जहाँ हज़रत मुहम्मद साहिब का जन्म हुआ था। यह अरब देश की राजधानी है। यहीं इस्लाम अनुयायी हज केलिए एकत्र होते हैं। काबः [-काबा] यहीं है। न्हाइ धोइ=नहा-धोकर। अचारा=आचार, विधि-विधान, कर्मकाण्ड। ऊजू<वज़ू [अ०]=नमाज पढ़ने से पहले हाथ-पाँव-मुँह धोकर पाक होना 'वज़ू करना' कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादशी न ब्रतहिं बिचारौं। रोजा धरौं न बङ्ग पुकारौं ॥
देव पितर नहिं पीर मनाऊं। धरती गड़ौं न देह जलाऊं ॥5॥

दोहा : हिन्दू की हदि छाडि कै तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजे चीन्हियां एकै राम अलाह ॥6॥

चौपई : [तौ] और अचंभा सुनियहु भाई। जो मुहि सतगुरु दिया बताई ॥
सहजैं नाम निरंजन लीजै। और उपाइ कछू नहिं कीजै ॥7॥
सहजैं ब्रह्म अगनि परजारी। सहज समाधि उनमनी तारी ॥
सहजै सहज राम धुनि होई। सहजहि मांहि समावै सोई ॥8॥
अब मो तैं कछु होइ न आवै। ब्रह्मा बिष्णु महेश बुझावै ॥
ना मोहि योग यज्ञ की आसा। ना मैं करौं पवन अभ्यासा ॥9॥
ना मैं कोई आसन साधौं। ना मैं सूती शक्त्याराधौं ॥
प्राणायाम धारणा ध्यानं। ना मैं रेचक पूरक ठानं ॥10॥

---

5. रौजा =रोजः [फा०], व्रत, उपवास। रमज़ान के दिनों में मुसलमान भाई व्रत के रूप में रोजा रखते हैं। बङ्ग=बाँग, 'अल्ला हो अकबर' की आवाज। धरती गड़ौं न=इस्लाम विधि से कब्र में नहीं गड़ता अर्थात् कब्र-दफनाने में मुझे विश्वास नहीं। न देह जलाऊं=हिन्दू रीति से चिता में जलना भी मैं ठीक नहीं मानता। **टिप्पणी :** मृतकों के अन्तिम संस्कार के रूप में हिन्दू अग्नि-दाह अथवा जल प्रवाह करते हैं और मुसलमान मृत्तिका-संस्कार अर्थात् दफनाते हैं। किंतु, पारसी-विधि पवन-प्रवाह अर्थात् आकाश के नीचे खुले में शव को रख देने की है। कहते हैं कि दादू जी की इच्छा के अनुसार उनका शव जंगल में रख दिया गया था। वहीं से वह [पशु-पक्षियों द्वारा] विलुप्त हो गया था। उनका कहना है—'दादू मरना तहाँ भला जहँ पसु पंछी खाइ।' इस विधि को मृतक का पवन-संस्कार कहा जाता है। मिट्टी, जल, अग्नि और पवन पंचभूतों में ये चार महत्त्वपूर्ण हैं। आकाश सभी में समान है। पंचभूतों से निर्मित यह शरीर, शव रूप में उन्हीं को समर्पित कर दिया जाता है। दादू-सम्प्रदाय के अनुयायिओं की शरीर सम्बन्धी यह अन्तिम-संस्कार विधि है।

6. हदि=सीमा, मर्यादा। तजी=त्याग दी। राह=मार्ग, पन्थ। चीन्हियां=पहचान लिया, परिचय प्राप्त कर लिया। एकै राम अलाह=तत्त्वतः राम और अल्लाह एक ही है।

7. सहजैं=सहज रूप में ही। उपाइ=साधन, उपाय।

8. ब्रह्म अगनि=ब्रह्माग्नि, आन्तरिक ज्योति। उनमनी=उन्मुनि दशा। तारी=तुरीयावस्था। सहजहिं मांहि समावै=सहज भाव में लयलीन बना रहता है।

9-10. पवन अभ्यासा=प्राणायाम। साधौं=साधता हूँ। सूती=सुषुप्त। शक्त्याराधौं=शक्ति की आराधना अर्थात् शक्ति-साधना में शक्ति [-कुण्डलिनी] का शिव [-सहस्रार चक्र] में संगम कराने की साधना। रेचक-पूरक-कुम्भक=प्राण को भीतर रोकना और निकालना रूप प्राणायाम। 'रेचक' प्राणायाम की तीसरी क्रिया है, जिसमें खींची गई श्वास को विधि पूर्वक धीरे-धीरे बाहर निकाला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ना मैं कुम्भक त्राटक लाऊं। नौलि भुवगंम दूरि वहाऊं ॥
नेती धोती करौं न कर्म्मा। उलटी पलटी ए सब भर्म्मा ॥11॥

दोहा : जोई आरंभ कीजिये, सोई शंसै काल।
सुन्दर सहज भाव गहि मेट्यौ सव जंजाल ॥12॥

चौपई : ना मैं मेघाडंबर भीजौं। शीतकाल जल मैं नहिं छीजौं ॥
ना मैं सिर परि करवत सारौं। ना मैं नींद भूष तिस मारौं ॥13॥
देह कष्ट मैं करौं न कोई। सहजैं सहजैं होइ सु होई ॥
ना मैं पंचा अग्नि जलाऊं। जातैं राज पाट कछु पाऊं ॥14॥
ना ले मरौं गले मैं पासा। मुये युक्ति की करौं न आसा ॥
ना मैं गलौं हिवांले मांहीं। स्वर्ग लोक कौं बंछौं नांहीं ॥15॥
ना मैं लटकि अधौमुख झूलौं। धूम पान करि मैं नहिं भूलौं ॥
ना बन मैं बसि करौं तपस्या। कंद मूल की करौं न हिंस्या ॥16॥

---

11. त्राटक = योग की एक मुद्रा, जिसमें टकटकी लगा कर लगातार देखा जाता है। नौलि = योग की क्रिया विशेष। नेती-धोती = योग के षट् कर्म। उलटी पलटी = ये सब क्रियाएँ उलटी-सुलटी हैं। इनसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं होती। ये तो विधि-विधान मात्र हैं।

12. आरंभ = कर्म, कार्य। शंसै काल = काल 'वंसति' अर्थात् अनिष्ट करता-रहता है। सहज सुभाव गहि = सहजता [-समता] का स्वभाव ग्रहण करके। जंजाल = प्रपंच, झंझट।

13-14. मेघाडंबर भीजौं = मेघ-घटा में भीगता हूँ। छीजौं = छीजता हूँ, क्षीण होता हूँ। करवत सारौं = शीश पर आरा चलवा कर शरीर को काशी में चिरवाता हूँ। तिस = तृषा, प्यास। देह कष्ट मैं करौ न कोई = मैं शरीर को कोई कष्ट नहीं देता। 'देह-कष्ट' न देने केलिए गीता-शास्त्र में भी निषेध है—'कर्षयन्तः शरीरस्थं भूत ग्राम सचेतसः।' [-17/6]। पंचा अग्नि = पंचाग्नि तप, जो अपने चारों ओर आग जलाए रखने से होता है। जातैं = जिससे। राज पाट पाऊं = राज-पाठ अर्थात् राज्य-सुख प्राप्ति की कामना से।

15-16. पासा = पाश, फन्दा। मुये-मुक्ति = मरने पर मुक्ति की कामना। न मैं गलौं हिवांले = हिमालय में जाकर न मैं बर्फ में गलता हूँ। बंछौं = वाञ्छा, इच्छा-कामना करता हूँ। अधौ मुख झूलौं = मुख नीचे करके लटकते हुए झूलता हूँ। धूमपान = धुएँ को घोंट कर पीने की विधि के रूप में योग-तप। भूलौं = विभ्रमित होता हूँ। हिंस्या = हिंसा। टिप्पणी—'तपस्या' शब्द के अनुप्रास के कारण हिंसा का 'हिंस्या' रूप बना पाया है, जो छन्द की दृष्टि से संकीर्णता ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुहमी दैव न दहिना वर्त्ता। नागें पाऊं फिरौं न मरता॥
दु:ख कलेश और बहुतेरा। तिन सौं मन मानैं नहिं मेरा॥17॥

दोहा : सतुगुरु कहि समुझाइया निज मत बारंबार॥
सुन्दर कष्ट कहा करै पाया सहज बिचार॥18॥

चौपई : [तौ] सहज निरंजन सब मैं सोई। सहजै संत मिले सब कोई॥
सहजैं शंकर लागे सेवा। सहजैं सनकादिक शुकदेवा॥19॥
सहजैं शैष भयौ लै लीना। सहजैं हनूमान तत चीन्हा॥
सहजैं ध्रुव कीनौं अहलादा। सहज सुभाव ग्रह्यौ प्रहलादा॥20॥
पहलैं गौरष कर्म दिढ़ावा। दत्त मिले तिन सहज बतावा॥
सहज सुभाव भरथरी लीधा। गोपीचन्द सहज ही सीधा॥21॥
नामदेव जब सहज पिछांनां। आतमराम सकल मैं जांना॥
दास कबीर सहज सुख पाया। सब मैं पूरण ब्रह्म बताया॥22॥
सोझा पीपा सहज समाना। सेन धना सहजैं रस पाना॥
जन रैदास सहज कौं बन्दा। गुरु दादू सहजैं आनंदा॥23॥

दोहा : एकै सहज सुभाव गहि संतनि कियौ बिलास॥
मनसा बाचा कर्मना तिहिं पथि सुन्दरदास॥24॥

॥ समाप्तोऽयं सहजानन्द ग्रन्थः ॥27॥

---

17. पुहमी = पृथ्वी। दहिना वर्त्ता = दक्षिणावर्त्त अर्थात् इष्ट को दक्षिण करके परिक्रमा करना। अथवा पृथ्वी की परिक्रमा या फिर पृथ्वी पर स्थित सभी तीर्थों का अटन। नागें पाऊँ = नंगे पैर। कलेश = क्लेश, ताप, कष्ट।

18. निज मत = अपना सिद्धान्त। पाया सहज बिचार = 'सहज' का तात्विक विचार प्राप्त कर लिया है। फिर 'साधना' के नाम पर कष्ट-सहन की क्या आवश्यकता?

19. सहज निरंजन = सहज रूप में प्राप्त निराकार तत्त्व। सब में सोई = जो सब में है, सभी में है। शंकर = महादेव। सनकादिक = सनक-सनन्दन। शुकदेवा = शुकदेव मुनि।

20-21. शेष = शेषनाग। लै लीना—लयलीन, तल्लीन। तत्त चीन्हा = तत्त्व जान लिया। अहलादा = आह्लाद, प्रसन्नता। ग्रह्यौ = ग्रहण किया। गोरष = योगी गोरखनाथ। दिढ़ावा = दृढ़ किया। दत्त मिले = योगी दत्तात्रेय की प्राप्ति। भरथरी = भर्तृहर।

22. नामदेव = महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त नामदेव। पिछांनां = पहचान लिया। आतमराम = आत्म राम, आत्मन्-परमात्मन्। दास कबीर = कबीरदास, ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख [-प्रखर] स्तम्भ, जुलाहा भक्त।

23. पीपा = एक भगवत् भक्त विशेष। सेन = प्रसिद्ध भक्त सेननाई। धना = जाट भक्त। रैदास = रविदास, चर्मकार भक्त। बन्दा = भक्त।

24. एकै सहज सुभाव गहि = एक 'सहज स्वभाव' को ग्रहण करके ही, सहज के अवलम्ब से ही। पथि = पथ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥28॥ अथ गृह वैराग बोध ॥

प्रवेशार्थ : कुल 21 रुचिरा छन्दों में परिसमाप्त प्रस्तुत लघु रचना 'गृह वैराग बोध' में गृहस्थ और वैरागी के सम्वाद के माध्यम से दोनों ही पक्षों के गुण-दोष बताए गए हैं। दोनों पक्षों के गुण-दोष बताते हुए सुन्दरदास ने दोनों के पारस्परिक समन्वय [-सहयोग] के रूप में अपना निष्कर्ष दिया है—

'बिरक्त धर्म रहै जु गृही तें, गृहि कौं बिरक्त तारै जू।'

इस रचना में नीति कथन अधिक है। मूल पाठ देखिए—

रुचिरा : गृही कहै जु सुनहुं वैरागी बिरक्त भये सु काहे जू।
कै तुम सौं परमेश्वर रूसे कै तुम काहू बाहे जू॥1॥
वैरागी बोलै जु गृही सुनि मेरैं ज्ञान प्रकासा जू।
मिथ्या देषि सकल संसारा तातें भये उदासा जू॥2॥
गृही कहै जु बुरी तुम कीनीं कछू बिचार न आयौ जू।
जनक बसिष्ठ और पुनि साधनि तिन घर ही मैं पायौ जू॥3॥

चूर्णिका : रुचिरा : इस छन्द में 14, 16 की यति के साथ 30 मात्राएँ होती हैं और अन्त में जगण [ISI] का निषेध रहता है। [दे०—छन्द प्रभाकर] एक अन्य भेद में 'रुचिरा' के प्रत्येक चरण में 16, 14 पर यति और अन्त में 2 गुरु बताए हैं। यह परिभाषा 'ताटंक' छन्द की परिभाषा से मेल खाती है, जिसमें 16, 14 पर यति तो होती है, पर अन्त में मगण [SSS] होता है। अतः सुन्दरदास जी द्वारा प्रयुक्त रुचिरा छन्द ताटंक ही है।

1. गृही = गृहस्थ। वैरागी = विरक्त। रूसे = रूठे। काहू बाहे = किसी ने तुम्हें घर से निकाल दिया है अथवा बहका-भड़का दिया है।
2. प्रकासा = प्रकाश। तातें = इससे। उदासा = उदासीन, विरक्त।
3. बुरी तुम कीनीं = तुमने बुरा काम किया। जनक बसिष्ठ = जनकराज और वशिष्ठ जैसे मनुष्य गृहस्थ रहते हुए भी प्रसिद्ध विरक्त हो गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैरागी बौलै जु गृही सुनि विरक्त बहुत सुनाऊं जू ।
ऋषभदेव अरु भरत आदि दै केते और बताऊं जू ।।4।।
गृही कहै जु बड़ौ सुख घर मैं पुत्र कलत्र रु माया जू ।
ताहि छांडि जौ मुक्ति कहत है तिन तौ ज्ञान न पाया जू ।।5।।
बैरागी बौलै जु गृही सुनि गृह दुख कौ भंडारा जू ।
मुक्ति हौन की सो कहा जानै अंध कूप मैं डारा जू ।।6।।
गृही कहै जु पुत्र धन देषत सब दुख दूरि बिसारूं जू ।
नवजोबना जबहिं हंसि बोलै कोटि मुक्ति गहि बारूं जू ।।7।।
बैरागी कहै जो जहां राता सोई तहां सुख पावै जू ।
नरकहिं रचै नरक कौ कीड़ा चन्दन ताहिं न भावै जू ।।8।।
गृही कहै जु त्रिया मृगनैनी कटि केहरि गजचाला जू ।
अधर पान जिन कीयौ नांही तिनकै भाग न भाला जू ।।9।।
वैरागी कहै हाड चाम सब नैंननि झलकत पानी जू ।
मज्जा मेद उदर मैं बिष्टा तहां न भूलै ज्ञानी जू ।।10।।

---

4. विरक्त बहुत = बहुत से विरक्त हुए हैं। जैसे—ऋषभदेव, इक्ष्वाकुवंश के प्रसिद्ध ज्ञानी-त्यागी महात्मा अथवा जैनमत के आदि प्रवर्त्तक। भरत = त्यागी मुनि, जड़ भरत। मरते समय इनकी वृत्ति-आसक्ति हरिणी के सद्य जातक में लगी रही थी।

5. पुत्र कलत्र = बेटा-स्त्री।

6. गृह दुख कौ भंडारा = घर तो, अनेक आवश्यकता के कारण, दुःख का भण्डार बना रहता है। अंध कूप = अन्धा कुआँ, संसार रूप अज्ञान-कूप।

7. बिसारूं = त्याग देता हूँ। नव जोबना = नवयुवती, कामिनी स्त्री। बारूँ = बलिहारी जाता हूँ, न्यौछावर करता हूँ।

8. जहाँ राता = जहाँ अनुरक्त है, जहाँ आसक्त है वहीं। जू = जी, ब्रज क्षेत्र में 'जू' 'जी' केलिए प्रयुक्त होता है। किन्तु, यहाँ अनुप्रासान्त होने से यह प्रयोग सम्वाद के सौहार्द्य को और अधिक आत्मीय [-निजी] बना रहा है। नरक कौ कीड़ा = नरक का जीव [-जन्तु], वे मनुष्य जो अपनी आसक्ति के कारण नरक-क्लेश [-संकीर्णता] का जीवन जीते हैं। न भावै = अच्छा नहीं लगता।

9. त्रिया = स्त्री, कामिनी स्त्री। मृगनैनी = मृगलोचनी, चंचलता एवं बड़ी-बड़ी अँखियों के कारण जो आकर्षक बनी रहती है। कटि केहरि = सिंह कटि, पतली कमर वाली। गज चाला = गजगति, गजगामिनी। अधर पान जिन कियौ नांहीं = जिसने मधुर ओठों का आस्वाद नहीं किया। भाग न भाला जू = उसके मस्तक में [भाग्य-] सौभाग्य नहीं लिखा। अर्थात् वह भाग्यशाली नहीं है।

10. हाड चाम = अस्थि चर्ममय देह। नैंननि पानी = नेत्रों से पानी टपकता है। मज्जा मेद = चरबी या वसामय हड्डियाँ और मांस का आकार। बिष्टा = बिष्टा, मैला मल। टिप्पणी—[illegible] [-[illegible]] पक्ष को उभारा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृही कहै जु चन्द्रबदनी त्रिय अंग अंग छवि सोहै जू।
चन्दन लेपन कुच मुंडल पर देव दानवा मोहै जू।।11।।

वैरागी कहै नव द्वार में निश दिन नरक बहाई जू।
लोहू मांस कुचन कै भीतर ताकी कहा वड़ाई जू।।12।।

गृही कहै जु विरक्त भये तुम त्रिया सही सौं त्यागी जू।
माया तुम पै छूटी नांहीं काहै कै वैरागी जू।।13।।

वैरागी कहै माया सोई जा पहिं आप बंधावै जू।
और सकल यह बरतनि कहिये अनबंछी ही आवै जू।।14।।

गृही कहै जु नही अनबंछी करहु हमारी आशा जू।
बार वार धरती तन चितवै चील्ह उडै आकाशा जू।।15।।

इस पक्ष को ही प्रायः नारी-निन्दा से जोड़ दिया जाता है, जो उचित नहीं। शंकराचार्य ने भी कहा है—'एतद्मांसवसादि विकारं। मनसि विचारय वारम्बारम्'—चर्पट मंजरी।

11. अंग अंग छवि सोहै=अंग-प्रत्यंग शोभित है जिसका। कुच मंडल=उरोज-उपरि स्थल। चन्दन लेपन=चन्दन-चर्चन अथवा कलात्मक लेपन। देव दानवा मौहे जू= [स्त्री के आकर्षक शरीर पर-] देवता और दानव सभी मोहित रहते हैं।

12. नव द्वार=शरीर में जल-मल-विसर्जन के नौ द्वार। नरक बहाई जू=नरक जैसा घृणित मैला बहता [-निकलता] रहता है। लोहू मांस=रक्त और मांस। कुचन कै भीतर=उरोजों के अन्दर भी। ताकी कहा बड़ाई=उसकी क्या और क्यों प्रशंसा की जाए।

13. त्रिया सही सौं त्यागी=मात्र साहस करके, वैराग्य की प्रेरणा से नहीं स्त्री का त्याग तो कर दिया, पर। **टिप्पणी**—बात यह है कि बाह्य दृष्टि से स्त्री को तो त्याग दिया जाता है। किन्तु मानसिकता से काम-क्रोध-वासनादि के प्रति वैराग्य नहीं हो पाता। अतः वैरागी-जीवन आडम्बर मात्र लगता है।

14. आप बंधावै=अपने आपको बन्धन में डालता है। बरतनि=व्यवहार-चर्या। अनुबंछी=अनवाञ्छित, अनपेक्षित।

15. तन=का, की ओर। बार बार धरती तन चितवै चील्ह उडै आकाशा [कहा०]= आकाश में उड़ने वाली चील्ह दाना या खुराक केलिए धरती की ओर बार-बार देखती रहती है। इसीप्रकार शून्य-सेवी साधु-सन्त आकाश की ऊँचाई [और विस्तार] में चित्त को रमाए रखते हैं। किन्तु, शरीर की भूख शान्त करने केलिए, धरती-आश्रय अर्थात् गृहस्थी की ओर ही निहारना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैरागी कहै आशा हरि की देह रहै जग मांहीं जू।
जैसे कमल रहै जल भीतर जल सौं सनमुख नांहीं जू।।16।।
गृही कहै जु बड़ौ गृह आश्रम जती तहां चलि आवै जू।
मन तौ तब ही होइ सुनिश्चल भिक्षा भौजन पावै जू।।17।।
बैरागी कहै धर्म देह कौ याही भांति बनायौ जू।
पंच दोष तेरे तब छूटें जती आइ कछु पायौ जू।।18।।
विरक्त धर्म रहै जु गृही तें गृहि कौं विरक्त तारै जू।
ज्यौं बन करै सिंघ की रक्षा सिंघ सु बनहिं उबारै जू।।19।।
बिरक्त सु तौ भजै भगवन्तहिं गृही सु ता की सेवा जू।
अश्व के कान बराबर दोऊ जती सती कौ भेवा जू।।20।।

---

16. हरि आशा=हरि दर्शन की आशा में। देह रहै=संसार में देह रहती है। जैसे कमल रहै जल भीतर [उदा०]=वैरागी स्वयं की अनासक्ति को जल में कमल के समान बताकर सिद्ध करता है। जल सौं सनमुख नाहीं=[कमल-] जल के सन्मुख अर्थात् उसमें हिला-मिला नहीं रहता।

17. बड़ौ गृह आश्रम=गृहस्थाश्रम [वैराग्य या संन्यासाश्रम से-] बड़ा-[महत्त्वपूर्ण] होता है। जती=यति, साधक-संन्यासी। सुनिश्चल=सुनिश्चित। भिक्षा भोजन पावै जू=जब भिक्षा में भोजन मिल जाता है, तभी संन्यासी-वैरागी का, मन के साथ तन भी सन्तुष्ट हो पाता है।

18. धर्म देह कौ=देह-धर्म, शरीर-स्वभाव। याही=यही। पंच दोष=गृहस्थ जीवन के पाँच दोष बताए गए हैं। वे हैं—चूल्हा-चक्की-झाड़ू-ओखली में अन्नादि कूटना और जल-घट से जीवादि की हिंसा। इन दोषों के निवारण केलिए 'पंच महायज्ञ'—सन्ध्या, तर्पण, देवता को अन्नादि की बलि ['वलवैश्व देवः'], आतिथ्य सत्कार एवं हवन आदि का विधान है। जती आइ कछु पायौ=जब साधु-महात्मा गृहस्थ के यहाँ आकर कुछ पाते [-खाते] हैं। तभी गृहस्थों के दोष-निवारण हो पाते हैं [ऐसी शास्त्र-विधि उल्लिखित है]।

19-20. **टिप्पणी**—इन दो छन्दों में सुन्दरदास ने गृहस्थ और वैरागी संन्यासी के जीवन-सिद्धान्तों को, एक दूसरे पर अवलम्बित करते हुए, अन्योन्याश्रित करते हुए समन्वित करके, प्रस्तुत किया है। बिरक्त धर्म रहै गृही तें=विरक्त का धर्म [-जीवन-चर्या], गृहस्थ पर अवलम्बित रहता है। गृहि कौं बिरक्त तारै=गृहस्थ का उद्धार सदुपदेश से होता है अर्थात् आसक्ति के बन्धन में न फँसने देकर साधु-महात्मा गृहस्थ का उद्धार करता है। ज्यौं बन करै—उबारै जू [उदा०]=जिसप्रकार निज सघनतादि के कारण बन सिंह की रक्षा करता है। वैसे ही सिंह [-शेर के भय से बन को नष्ट न कर पाता] बन की रक्षा करता है। अतः एक-दूसरे से, एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह वैराग बोध यहु कीनौं सुनियौ संत सुजांनां जू ।
सुन्दरदास जु भिन्न भिन्न करि नीकी भांति बषांनां जू ।।21।।

।। समाप्तोऽयं गृह वैराग बोध ग्रन्थः ।।28।।

दूसरे की रक्षा और पोषण होता-रहता है । विरक्त भजै भगवन्तहि=साधु-महात्मा तो भगवान् को भजता या शरण में रहता है । गृही सु ताकी सेवा=गृहस्थ विरक्त की सेवा को अपना धर्म समझता है । अश्व के कान बराबर दोऊ [उदा०]= जिसप्रकार अश्व के दोनों कान बराबर शोभा और सम महत्त्व के होते हैं, वैसे ही यति [-विरक्त साधु] और सती [-सत पर चलने वाला गृहस्थ] संसार की गति रूप अश्व केलिए समान रूप से हितकर और महत्त्वपूर्ण हैं । भेवा=भेद, रहस्य, मर्म ।

21. गृह वैराग बोध=रचना का शीर्षक । नीकी भांति=भलीप्रकार से ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥29॥ अथ हरिबोल चितावनी ॥

प्रवेशार्थ : तीस दोहों वाली इस लघु रचना में रचनाकार का प्रतिपाद्य—मनुष्य-जीवन में असावधानी पूर्ण भूलों [-विसंगतियों] के प्रति सामाजिक को सावधान [-सचेष्ट] करना और चेतावनी देते हुए दुर्लभता से प्राप्त मनुष्य-जीवन को अधिक सार्थक [-उपयोगी] एवं अधिक से अधिक सुखी बनाने केलिए प्रेरित करना है। रचना में मनुष्य-जीवन के अस्तित्व और महत्त्व को मुक्त कण्ठ से सराहा गया है। सन्त-रचना का विश्वास रहा है कि इस अमूल्य जीवन की सार्थकता ईश्वर-शरणागति और नाम-जप द्वारा ही सिद्ध हो सकती है। 'हरि बोलौ हरि बोल' की चतुर्थ चरणान्त ध्वनि सामूहिक उच्चारण केलिए उपयोगी एवं आस्तिक भावना को तुष्ट करती-सी प्रतीत होती है। विश्वास है कि इस ध्वनि से मोह-अज्ञान की तन्द्रा में पड़ा हुआ मनुष्य, चैतन्य का अनुभव करते हुए, सार्वभौम जीवन से अपने को जोड़ने की प्रेरणा प्राप्त कर सकेगा। अंत में मृतक की श्मशान-दशा का मार्मिक दृश्य मन को छू लेता है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

दोहा : रचना यह परब्रह्म की चौराशी झकझौल।
मनुष देह उत्तम करी [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥1॥
आयौ नर संसार में करि साहिब सौं कौल।
पवन लगत बीसर्यौ [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥2॥

चूर्णिका : दोहा : 13-11 की यति से 24 मात्राओं वाला छन्द।

1. रचना परब्रह्म की=यह सृष्टि परब्रह्म-परमात्मा की रचना है। झकझौल=झटका, झकझोर, धक्का। चौराशी झकझौल=चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण का चक्कर। मनुष देह उत्तम करी=चौरासी लाख योनि के प्राणियों में मनुष्य शरीर [-स्वरूप] का अवतरण सर्वोत्तम है।
2. साहिब सौं कौल=कौल अर्थात् स्वामी [-जन्मदाता] के समक्ष बचन देकर आना। **टिप्पणी**—भारतीय जनमानस में यह विश्वास कि मनुष्य-जन्म से पूर्व जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालपनैं समुझ्यौ नहीं तरुनापै भयौ लोल।
चपरि बुढापौ आइयौ [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥3॥
मेरी मेरी करत हैं देषहु नर की भोल।
फिरि पीछे पछिताहुगे [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥4॥
किये रुपइया एकठे चोंकूटे अरु गोल।
रीते हाथिन वै गये [सु] हरि बोलौ हरि बोल ॥5॥
चहल पहल सी देषि कैं मान्यौं बहुत अंदोल।
काल अचानक लै गयौ[सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥6॥
घर मैं धरे समेरु से अजहुं षाली ओल।
तृष्णा कबहू ना बुझी [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥7॥
हाहा हूहू मैं मुवौ करि करि घोलमथोल।
हाथि कछू आयौ नहीं[सु] हरि बोलौ हरि बोल ॥8॥

[-जीवात्मा] परमात्मा के समक्ष यह वचन भरता [-वायदा करता] है कि वह मनुष्य-जन्म में जाकर, अच्छे कर्म करके, जीवन को और अधिक उन्नत-व्यापक एवं दैवीय गुणों से सम्पन्न करेगा। किन्तु, यहाँ आकर सांसारिक आकर्षणों में फँसकर, लोभ-मोहादि में अंधे बने रहने के कारण, विस्मृत-चेतना होने से वह सब कुछ भूल जाता है और कुछ-का-कुछ करके, कर्म-बन्धन में फँस कर, ऊर्ध्वगामी होने के स्थान पर अधोगामी हो जाता है। पवन लगत ही[मुहा०]=हवा लगते ही। बीसर्यौ= विस्मृत हो गया, भुला दिया गया।

3. बालपनैं=बचपन में, अबोधता में। तरुनापै=तरुणपन, यौवन में। लोल=चंचल, मदहोश, आपे से बाहर। चपरि=शीघ्र ही, झटपट, तुरन्त। बुढापौ =वृद्धावस्था।
4. मेरी मेरी करत हैं [लोको०]=यह मेरा—यह मेरा, इस प्रकार की लिप्सा [-लोभ] में लिप्त होकर बोलते हैं। भोल=भोलापन, भूल। पीछे पछिताहुगे [मुहा०]=समय बीत जाने पर पश्चाताप करोगे।
5. रुपइया=रुपया-पैसा, धन-दौलत। एकठे=एकत्रित, संग्रह। चोंकूटे अरु गोल= [बादशाही-शासन काल के सिक्कों का संकेत कि वे चौकोर और गोल होते थे, जैसे अधन्ना-दुअन्नी] चौकोर और गोल [-रुपया] सिक्के। रीते हाथिन=खाली हाथ, हाथ पसारे हुए।
6. चहल पहल सी=मेले के समान रौनक। अंदोल=आनन्द की हलचल, हल्ला। काल=मृत्यु।
7. षाली ओल=मात्र ओले के समान गलने-पिघलने वाले, क्षयशील रूपाकार। तृष्णा कबहू ना बुझी [लोको०]=तृष्णा [-लिप्सा] कभी तृप्त नहीं [-हुई]होती।
8. हाहा हूहू=मनोरंजन सूचक शब्द-ध्वनियाँ, हो हल्ला। मुवौ=मरता रहा, पचता रहा। घोलमथोल=गोल-माल, गड़बड़, बखेड़ा। हाथ कछू आयौ नहीं [मुहा०]= पल्ले कुछ भी न पड़ा, अपने हिस्से में कुछ न आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनि लोक भटकत फिर्‌यौ हूवौ डांवांडोल।
कतहूं सच पायौ नहीं[सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।9।।

धाम धूम बहुतें करी अंध धन्ध धमसोल।
धेधक धीना ह्वै गये [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।10।।

सुकृत कोऊ ना कियौ राच्यौ झंझट झोल।
अंति चल्यौ सब छाडि कै[सु]हरि बोलौ हरि बोल ।।11।।

सूतौ है बहु जन्म कौ अज हूं आंषि न षोल।
आवत है दिन नीयरौ [सु]हरि बोलौ हरि बोल ।।12।।

मूंछ मरोरत डोलई ऐंठ्यौ फिरत ठठोल।
ढेरी ह्वै हैं राष की [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।13।।

पैंडौ ताक्यौ नरक कौ सुनि सुनि कथा कपोल।
बूडे काली धार मैं [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।14।।

---

9. भटकत फिर्‌यौ=मारा फिरता रहा, भ्रान्त घूमता रहा । हूवौ डांवांडोल= डांवांडोल [-अस्थिर] बना रहा, वेठिकाने रहा। सच=सुख।

10. धामधूम=मारधाड़, धमाचौकड़ी। अंध धन्ध=अन्धाधुन्ध, बेतहाशा, बिना सोचे-समझे। धमसोल=ऊधम। धेधक धीना=तीन-तेरह, चौपट।

11. सुकृत=सुकर्म, कल्याणकर कार्य। राच्यौ=अनुरक्त बना रहा। झंझट झोल= झगड़े के बखेड़े में पड़ा रहा, अपने को झंझट में डाले रखा। अंति चल्यौ=अन्तिम समय [-मृत्यु काल] में चल दिया।

12. सूतौ है बहु जन्म कौ=जन्म-जन्मान्तरों से माया का आवरण ताने सोता रहा है। अजहूं=आज भी, जगने के अवसर इस मनुष्य-जन्म में भी। आंषि न षोल [मुहा०]=आँखें नहीं खोलता, हिये की आँखें नहीं उघाड़ता। आवत है दिन नीयरौ=अन्तिम दिन [मृत्यु दिवस] निकट आ रहा है।

13. मूंछ मरोरत डोलई [मुहा०]=मूंछ मरोड़े डोलता है अर्थात् घमण्ड [-ताक़त के अभिमान] में इधर-उधर निरुद्देश्य घूमता-फिरता है। ऐंठ्यौ फिरत [मुहा०]= ऐंठ [-घमण्ड] में भरा फिरता है। ठठोल=ठलुआ, निरुद्देश्य, अथवा ठिठोली, निरुद्देश्य हँसी। ढेरी ह्वै है राष की=चिता में जलने के बाद राख की ढेरी होना जब अन्तिम परिणाम है, तो फिर घमण्ड क्यों?

14. पैंडौ ताक्यौ नरक को=नरक जाने का रास्ता तकता है, देखता है। कथा कपोल= कपोल कल्पित बातें[पुराण-कथा]सुन-सुन कर। बूडे काली धार में[लोको०]= काली अर्थात् वैतरणी नदी में अथवा तृष्णा-नदी में डूबते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम बिमुख नर होंहिगे सर्प गुहेरा नोल।
और जंतु कहि को गनै [सु] हरि बोलौ हरि बौल ।।15।।
मौति सु आई नीयरी भयौ श्याम तें धोल।
अब का सोचत बावरे [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।16।।
माल मुलक हय गय घने कामिन करत कलोल।
कतहू गये बिलाइकैं [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।17।।
मोटे मीर कहावते करते बहुत डफोल।
मरद गरद मैं मिलि गये [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।18।।
षासा मलमल पहरते वस्तर बहुत अमोल।
लई तनगटी तोरि कैं [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।19।।
चौवा चन्दन अरगजा सौंधै भीनी चोल।
सो तन माटी मिलि गये [सु] हरि बोलौ हरि बोल ।।20।।

---

15. राम बिमुख = राम से उल्टी दिशा में अर्थात् संसारोन्मुख। सर्प गुहेरा नोल = साँप, गुह और न्यौला जैसे जीव-जन्तु [-करनी के अनुसार] बनेंगे। का गनै = कौन गिनती करे अर्थात् असंख्य।

16. मौति सु आई नीयरी = मृत्यु अब निकट आ गई है। श्याम तें धोल = काले केशों से सफेद बालों वाले हो गए। अथवा शरीर रक्त सूखने पर सफेद [-पीला] पड़ गया। बावरे = पगले, मूढ़।

17. माल मुलक = [मुल्क-] संसार भर की धन-दौलत। हय गय घने = बहुत अधिक घोड़े-हाथी। कामिन करत कलोल = किल्लोल करती हुई मधुर-भाषिणी सुन्दरियाँ पास [-उपलब्ध] हैं। कतहू गये बिलाइके = कहीं-किधर ही लुप्त हो गए, समाप्त हो गए। 'बिलाइके' क्रिया [-मृत्यु के बाद] उक्त सभी संज्ञाओं के साथ जुड़ी है। अतः गये बिलाइकें क्रिया मृतक व्यक्ति के साथ जुड़कर अधिक सार्थक है।

18. मोटे मीर कहावते = जो बड़े-बड़े राव-मीर [-मुक़द्दम] कहलाते थे। डफोल करते = डींग मारते, ढोंग-आडम्बर करते थे। मरद गरद में मिलि गये = काल के दबाव में बड़े-बड़े पराक्रमी मर्द मिट्टी में मिल गए।

19. षासा मलमल पहरते = बहुमूल्य रेशमी और महीन सूती वस्त्र खासा और मलमल पहनने वाले। वस्तर = वस्त्र। अमोल = अमूल्य। लई तनगटी तोरि कैं = तनगती, वह रस्सी जो मृतक के शरीर और अर्थी से बाँधी जाती है, चिता पर धरने से पहले उसको तोड़कर-काटकर अलग फेंक दिया जाता है। तात्पर्य है कि मरने पर वस्त्रादि ही नहीं, रस्सी तक को साथ नहीं रहने दिया जाता।

20. चौवा चन्दन अरगजा = चोवा, चुआकर [-टपकाकर] प्राप्त किया गया सुगन्धित द्रव्य और अन्य चन्दन, सुगन्धित लेप आदि। सौंधे = सुगन्धित। भीनी चोल = सुगन्धित [लेप-] द्रव्य युक्त वस्त्र। सो तन माटी मिलि गये = जिन शरीरों पर सुगन्धित लेप-द्रव्य मले जाते थे, वे भी अपनी अन्तिम परिणति में खाक में मिल गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेज सुषासन बैठते चलते चढि चौडोल।
सूते जाइ मसान मैं [सु] हरि बोलौ हरि बोल ॥21॥
देह गली संग काटि कै ह्वै गई होहो होल।
षुर न षोज कहुं पाइये [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥22॥
जारि बारि भस्मी करी ऊपरि दीये टोल।
प्रेत प्रेत करि उठि चले[सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥23॥
ऐसी गति संसार की अजहूं राषत जोल।
आपु मुये ही जानि है [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥24॥
बांकि बुराई छाडि सब गांठि हृदै की षोल।
बेगि बिलंब क्यौं बनत है[सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥25॥
घटी बढी सब देषिलै मन अपने कौं तोल।
काहे कौ कलप्यौ मरै [सु] हरि बोलौ हरि बोल ॥26॥
हिरदै भीतरि पैठि करि अंतःकरण बिरोल।
को तेरौ तूं कौन कौ [सु] हरि बोलौ हरि बोल ॥27॥

---

21. सेज सुषासन=सुख की सेज। चौडोल=पालकी। सूते जाइ मसान में=श्मशान या कब्रगाह में जाकर सोते है।

22. देह गली संग काठ कै=[काष्ठ-]ईंधन के साथ ही देह जल-गल गई। होहो होल=हाहाकार होता रहा। अथवा 'होल' भयंकर-डरावना मृत्यु-दृश्य उपस्थित होते रहे। षुर न षोज कहुं पाइये=मरने के बाद जीवात्मा के पैर के निशान भी कहीं लक्षित नहीं होते। अर्थात् मृत्यु के बाद जीव अदृश्य [-अप्रत्यक्ष] हो जाते हैं।

23. जारि बारि भस्मी करी=जला-जुलू कर राख कर दिया जाता हैं। ऊपरि दीये टोल=ऊपर [टीला-चबूतरा-] छतरी वना दी जाती है। प्रेत प्रेत करि=मरने के बाद वही आतमीय व्यक्ति 'प्रेत' की संज्ञा पा जाता है।

24. गति=दशा, अवस्था। अजहूं राषत जोल=अब भी, ऐसी परिणति होती है, ऐसा जानते हुए भी, शक्ति का घमण्ड करता है। अर्थात् इतने मृतकों को देखकर भी, अपना मरना भूल जाने के कारण, घमण्ड करता है। आपु मुये ही जानि है [मुहा०]=अपने मरने पर ही [तू] समझ पाएगा।

25. बांकि=बांकापन, टेढ़ापन। बुराई=कुकर्म। गांठि=ग्रन्थि, कपट-ग्रन्थि, पूर्वग्रह। वेगि बिलंब क्यौं बनत है=शीघ्रता करो 'हरि बोलो', विलम्ब का कारण क्यों बनते हैं अर्थात् विलम्ब क्यों कर रहे हो।

26. घटी बढी=ऊँच-नीच, कम-ज्यादा। मन अपने को तोल=अपने मन में [-अपने कर्म को] तोलकर देख। कलप्यौ मरै=संसार के प्रति कलपता-मरता [-लालायित बना] रहता है।

27. हिरदै भीतर पैठि करि=हृदय [-अन्तःकरण] में प्रवेश करके, अन्तर्मुखी होकर। अंतःकरण बिरोल=हृदय के मनोभावों को बिलो अर्थात् मन्थन कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरौ तेरै पास है अपनें मांहि टटोल ।
राई घटै न तिल बढै [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥28॥
साध सबद लागै नहीं बडौ जगत कौ छोल ।
तासौं पचि पचि को मरै[सु] हरि बोलौ हरि बोल ॥29॥
सुन्दरदास पुकारि कैं कहत बजायें ढोल ।
चेति सकै तौ चेतियौ [सु]हरि बोलौ हरि बोल ॥30॥

॥समाप्तोऽयं हरिबोल चितावनी ग्रन्थः ॥29॥

---

28. तेरौ=जो तेरा है, आत्मन्, ब्रह्म। अपने मांहि टटोल=अपने अन्दर ही, जो तेरा है, उसकी खोज [-शोध] कर। राई घटै न तिल बढै [कहा०]=जो निश्चित है, जो नियत है वह न राई भर घटता है और न तिल भर बढ़ता है अर्थात् जो 'होनी' [-प्राप्तव्य] है वह होकर ही रहती है।

29. साध सबद=साधु-सन्त का उपदेश [-शब्द-वचन]। लागै नहीं=लगते नहीं, प्रभाव नहीं डालते। छोल=तलछट, फोक, ऊपरी आवरण। पचि पचि को मरै [मुहा०]=दुःखी हो-होकर [-कि लोग काल के प्रति सावधान नहीं हो रहे] कौन पचता-मरता रहे।

30. पुकारि कैं कहत=चिल्ला-चिल्लाकर, ज़ोर देकर कहता है। बजायें ढोल=ढोल बजा-बजा कर कहता है। चेति सकै तौ चेतियौ=यदि चेत सकता है, सावधान हो सकता है तो होजा, नहीं तो पीछे पछिताएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥30॥ अथ तर्क चितावनी ॥

प्रवेशार्थ : 'तर्क चितावनी' के रूप में अपने प्रतिपाद्य को प्रस्तुत करने वाली 56 चौपाई छन्दों की प्रस्तुत कृति, रचनाकार के नैतिक-साधनात्मक-आध्यात्मिक अनुभवों को, अनेक युक्तियों [-तर्क-दलीलों] द्वारा अभिव्यक्ति दे रही है। रचना का मुख्य सन्देश है कि इस संसार में जन्म लेकर मनुष्य को सावधान [-सचेत] रहते हुए, मनुष्य-जीवन का पूरा सदुपयोग करते हुए, अपनी यात्रा को सार्थक बनाना चाहिए। जब प्रश्नभरी मुद्रा में यह कहा जाता है कि 'अइया मनुषहुं बूझ तुम्हारी' अर्थात् मनुष्य रूप में क्या यही तुम्हारा बुद्धि-विवेक है ? तो कथन की व्याप्ति बहुत आगे तक गूँजती जान पड़ती है। बालक-युवक-प्रौढ़ और वृद्ध अवस्थाएँ अथवा ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यास दशाएँ अथवा माया ऐषणाओं के जाल में फँसे रहना और जीवनकाल को तुच्छ आसक्तियों में गँवा देना ही क्या मनुष्य की बुद्धि की परिणति मानी जा सकती है ? मानवीय चेतना को 'प्रभु' की ओर अग्रसर करना भी इस जीवन का उद्देश्य है, हो सकता है। यही 'तर्क चितावनी' का सार है। मूल पाठ देखिए—

चौपई :

पूरण ब्रह्म निरंजन राया। तिनि यहु नख शिख साज बनाया ॥
ता कहुं भूलि गये बिभचारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥1॥

चूर्णिका : 1. पूरन ब्रह्म=पूर्ण ब्रह्म, परब्रह्म। निरंजन राया=अंजन रहित निर्गुण-निराकार स्वामी। नखशिख साज=नख से शिखा तक अर्थात् सम्पूर्ण शरीर की साज-संरचना करके रूपायित किया है। ता कहुं=उसको। बिभचारी=व्यभिचारी, चंचल मति वाले, प्रतिकूल [-द्रोही] गति वाले। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी=मनुष्य होकर भी तुम्हारी यह—ऐसी [-अइया] बूझि [=समझ-बुद्धि-विवेक, मनीषा] है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भ मांहिं कीनी प्रतिपाला। तहां बहुत होते बेहाला ॥
जनमत ही वह ठौर बिसारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥2॥
बालापन मंहि भये अचेता। मात पिता सौं बांध्यौ हेता ॥
प्रथमहिं चूके सुधि न संभारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥3॥
बहुरि कुमार अवस्था आई। ताहू मांहि नहीं सुधिकाई ॥
षाइ षेल हंसि रोइ गुदारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥4॥
भयौ किशोर काम जब जाग्यो। पर दारा कौं निरषन लाग्यौ ॥
ब्याह करन की मन महिं धारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥5॥
मात पिता जोर्‌यौ सनमंधा। कै कछु आपुहि कीयौ धंधा ॥
लै करि पांस गरे महिं डारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥6॥
भयौ गृहस्थ बहुत सुख पाया। पंच सषी मिलि मंगल गाया ॥
करि संयोग बडी झष मारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥7॥

---

2. गर्भ मांहि=गर्भावस्था में, माँ के उदर में। प्रतिपाला=पालन-पोषण अर्थात् रक्षा की। बेहाला=बेचैन, व्याकुल। जनमत ही=जन्म लेते ही। वह ठौर बिसारी= जहाँ से आए थे वह स्थान अर्थात् उस स्थान पर किया गया कौल-वचन[-प्रतिज्ञा] भुला दिया।
3. बालापन=बाल्यावस्था। अचेता=अचेत, असावधान। बांध्यौ हेता=हेत-आसक्ति बाँधी अर्थात् प्रेम-बन्धन मानकर संकीर्ण मति बने रहे। प्रथमहिं चूके= यह मनुष्य की पहली चूक[-गलती]हुई। सुधि न संभारी=स्मृति को नहीं सँभाला, 'सुमिरण' की शरण नहीं ली।
4. कुमार अवस्था=किशोरावस्था। नहीं सुधिकाई=स्मृति को नहीं सँभाला। षाइ षेलि हंसि रोइ=खाते-पीते-हँसते-खेलते और रोते हुए। गुदारी=गुजार दी, गँवा दी।
5. काम-जाग्यौ=काम-वासना जब जागृत हुई। भयौ किशोर=कैशौर्य अवस्था [-युवावस्था] का प्रारम्भ हुआ। पर दारा=पराई स्त्री। निरषन लाग्यौ=देखने लगा, तकने लगा। मन महिं धारी=मन में धारणा बनाई।
6. जोर्‌यौ सनमंधा=सम्बन्ध [-विवाह-सम्बन्ध] जोड़ लिया, सगाई कर दी। कै कछु आपुहि कीयौ धंधा=अथवा स्वयं ही कोई धंधा-सम्बन्ध रच लिया। लै करि पांस गरे महिं डारी [मुहा०]=जान-बूझकर विवाह-बन्धन की पाश अपने गले में डाल ली अर्थात् खुशी-खुशी से सम्बन्ध स्वीकार कर लिया।
7. पंच सषी मिलि मंगल गाया=पंच सखियों ने मिलकर 'मंगलाचार' किया। विवाहोत्सव में सखी-सहेलियों ने मंगलाचार गीत गाए अथवा पत्नी के साथ विषय-भोग करते हुए पंचेन्द्रिय-रमण में अत्यन्त सुख का अनुभव किया, विषयासक्त होकर इन्द्रियों का सुख भोगा। करि संयोग=संभोग-क्रिया करते हुए। झष मारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ता पीछे जोबन मदमाता। अति गति ह्वै बिषया सन राता।।
अपनी गनै न पर की नारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी।।8।।
निलज काम बश शंक न आनैं। साष सगाई कछू न मानैं।।
लोक बेद मरजादा टारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी।।9।।
गर्ब करै पुनि ऐंठ्यौ डौलै। मुख तें जो भावै सो बोलै।।
लाज कानि सब पटकि पछारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी।।10।।
मूंछ मरोरै पाग संवारै। दर्प्पन लै करि वदन निहारै।।
षुशी होइ अति महा बिकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी।।11।।
आठहुं पहर बिषै रस भीनां। तन मन धन जुवती कौं दीनां।।
ऐसी बिषया लागी प्यारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी।।12।।

[मुहा०]=सन्त-महात्मा की कथन-मुद्रा में सम्भोगादि क्रियाएँ 'झख मारने' के समान व्यर्थ के काम हैं, जिनमें जीवन का बहुमूल्य समय बरबाद होता है। **टिप्पणी** : चौपाई 7 से 15 तक कामासक्त गृहस्थ की, कामिनी स्त्री के कारण विवशता [-पराधीनता]और 16 से 26 तक सन्तानोत्पत्ति एवं पुत्र-सुख के कारण सीना चौड़ा होने एवं घर के कारोबार तथा खुशहाली में जीवन का समय बीतने के रूप में भारतीय लोक-जीवन के एक सुख-सम्पन्न गृहस्थ की मानसिकता का वर्णन है।

8. जोबन मदमाता=यौवन में मदमस्त। अति गति ह्वै=इन्द्रियों से बेकाबू होकर। बिषया सन राता=विषयों से आसक्त बना रहा। अपनी गनै-नारी=काम-वासना की प्रबलता में नारी रूपाकर्षण बना रहता है, तब स्त्री अपनी है या पराई इसप्रकार की मर्यादा नहीं रहती।

9. निलज काम बश=काम-वासना के वशीभूत होकर निर्लज्ज [-बेहया] बना रहता है। साष=अपनी साख [-मान-इज़्ज़त]। सगाई=सम्बंध, सामाजिक मर्यादा। लोक बेद मरजादा टारी=लोक-लाज और वेद-शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करता रहा।

10. लाज कानि=लज्जा-मर्यादा। पटकि पछारी [मुहा०]=निरस्त कर दिया, पछाड़ दिया। **टिप्पणी** : व्यभिचारी के आचरण का स्वाभाविक वर्णन।

11. मूंछ मरोरै= जवानी के घमण्ड में मूँछ ऐंठता रहता है। पाग संवारै=अपने रूपवान् व्यक्तित्व को आकर्षित करने केलिए पगड़ी सँभालता रहता है। दर्प्पन-वदन निहारै=शीशे में अपना मुख देखकर सिहाता है। महा बिकारी=महा व्यभिचारी।

12. बिषया रस भीनां=विषयासक्ति में डूबा हुआ। जुवती=युवती। विषया= आसक्ति, विषय-भोग। **टिप्पणी** : साधु-सन्त तो विषयासक्ति से अलग रहते हैं अथवा इन्द्रिय-संयम रखते हैं [-इन्द्रियों की प्रबलता से डरते हुए]। परन्तु, उनका यह जीनव, उपदेश मात्र न होकर, विषयी जीवन के सभी पहलुओं को समझते हुए, उसके दुष्परिणामों को जानते हुए ही स्वेच्छया अपनाया जाता है। उक्त पंक्तियों में आसक्ति-प्रबल लोगों की मनोदशा का सही और सजीव चित्रण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षान पांन बस्तर लै आवै। बिधि बिधि कै भूषन पहरावै ।।
अति आधीन लेइ बलिहारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।13।।
कामिनि संग रह्यौ लपटाई। मानहुं इहै मोक्ष हम पाई ।।
कबहूं नैंक होइ जिनि न्यारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।14।।
जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै। निशि दिन कपि ज्यौं नाचत आगै ।।
मारउ सहै सहै पुनि गारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।15।।
षेती करै बनिज करि ल्यावै। चाकर होइ दशौं दिश ध्यावै ।।
आगैं आइ धरै भरि थारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।16।।
लकरी घास पोट पुनि ढोवै। लाज बडाई अपनी षोवै ।।
तासौं करै आइ मनुहारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।17।।
औरउ कर्म करै बहुतेरा। जन जन कैं आगै हुइ चेरा ।।
चौरी करै करै बटपारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।18।।

---

13. वस्तर = वस्त्र, सुन्दर वेश-भूषा। भूपन = आभूषण। अति आधीन = अत्यन्त परवश [-विवश], कामिनी की आसक्ति में बिका हुआ। लेइ बलिहारी = [सुन्दर स्त्री की-] बलिहारी जाता रहता है अर्थात् न्यौछावर होकर अपने स्वत्व को गुलाम बनाए रखता है।

14. कामिनि संग रह्यौ लपटाई = कामिनी स्त्री की आसक्ति में लिपटा रहता है। इहै मोक्ष हम पाई = ऐसी तल्लीनता दिखाता है, जैसे कोई मुमुक्षु साधक मोक्ष प्राप्ति के बाद दिखाता हो। नैंक होइ जिनि न्यारी = स्त्री [अपनी आँखों के सामने से-] थोड़ी-सी देर भी अलग न हो।

15. त्रिय कहै = त्रिया [-प्रिया] का कथन। कपि ज्यौं नाचत आगें [कहा०] = बन्दर की तरह उसके आगे नाचता रहता है। मारउ सहै = उसकी मार भी सहन करता है। सहै गारी = गाली सहन करता है।

16. षेती-बनिज = खेती अथवा वाणिज्य-व्यापार करता है। गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने केलिए, स्त्री की इच्छा के अनुकूल कर्म-क्षेत्र का प्रसार करता रहता है। चाकर होइ = नौकर होकर नौकरी करते हुए। आगे आइ धरै भरि थारी [लोको०] = स्त्री के आगे थाली भरकर अपनी कमाई रखता है।

17. लकरी घास पोट-ढोवै = लकड़ी-घास अथवा गठरी को ढोने का काम करता है। लाज बड़ाई-षोवै = लज्जा-बड़प्पन को नष्ट करता-रहता है। करै मनुहारी = मनुहार करता है, खुशामद करके उसे प्रसन्न करता है।

18. औरउ कर्म करै = और भी बहुत से काम करता है। चेरा = दीन, गुलाम, पराधीन। चोरी-बटपारी = चोरी-ठगी आदि करता है। तात्पर्य है कि स्त्री-सन्तान आदि केलिए, धर्माधर्म अथवा नीति-अनीति की चिन्ता न करते हुए, कर्म-कुकर्म करता हुआ धन कमाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यौं त्यौं करि कछु घर मैं आनैं। बनिता आगै दीन बषानै ।।
हौं तेरौ नित आज्ञाकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।19।।
यौं करते संतति हुइ आई। तब तौ फूल्यौ अंगि न माई ।।
देत बधाई ता परि वारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।20।।
मानैं मोद बहुत सुख पावै। ता सुत कौं ले गोदि षिलावै ।।
चिटकी देइ बजावै तारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।21।।
लरिका चारि पांचि हुइ आये। तिनकूं जूये घर करवाये ।।
साल बोबरा महल अटारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।22।।
पुत्र पौत्र बंध्यौ परिवारा। मेरै मेरै कहैं गँवारा ।।
करत बडाई सभा मंझारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।23।।
उद्दिम करि करि जोरी माया। कै कछु भाग्य लिष्यौ सो पाया ।।
अजहूं तृष्णा अधिक पसारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।24।।
जब दश बीस पचासक चाहै। सौ सहस्र लष कोरि उमाहै ।।
अरब षरब तौहू अंधियारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।25।।

---

19. ज्यों त्यों करि=येन-केन प्रकारेण, अच्छे-बुरे किसी भी तरीके से। बनिता आगै दीन=स्त्री के आगे दीनता से बोलता है कि 'हौं तेरौ नित आज्ञारी।'

20. संतति हुइ आई=सन्तान हो गई। अंगि न माई=खुशी अंगों में नहीं समाई। ता परि वारी=उस [स्त्री-] पर अपने को वारते हुए बधाई देता है।

21. मानैं मोद=खुशी [मानता-] मनाता है। ता सुत को=उसके बेटे को। चिटकी देइ बजावै तारी=[शिशु-पुत्र को गोद में लेकर-] चुटकी बजाते हुए, ताली बजा-बजा कर खुश होता या करता है।

22. लरिका चारि पांचि हुइ आये=[समय बीतते-बीतते, असंयम-अविवेक के कारण-] चार-पाँच लड़के हो गए। जूये घर करवाये=सभी को अलग-अलग घर बनवाए। साल=शाला, चित्रशाला, ऊँचा भवन। बोबरा=ऊँचा छज्जा। महल अटारी=भवन और अट्टालिकाएँ।

23. पुत्र पौत्र बंध्यौ=पुत्र-पौत्रों के परिवार में बँध गया। गँवारा=मूर्ख, मूढ़, अज्ञानी। सभा मंझारी=सभा के बीच, सभी के सामने।

24. उद्दिम करि करि=उद्योग [-परिश्रम] कर-कर के। माया=सम्पत्ति, वैभव। भाग्य लिष्यौ=प्रारब्ध कर्म के अनुसार। पाया=प्राप्त किया है। अजहूं तृष्णा-पसारी=आज भी, इतने पर भी, लिप्सा का प्रसार करता जा रहा है।

25. सौ सहस्र लष कोरि उमाहै=सैकड़ों-हजारों-लाखों के बाद करोड़ों पाने केलिए उमंगित [-उत्साहित] बना रहता है। अरब-षरब तोहू अंधियारी=अरबों-खरबों की धन-दौलत होने पर भी [अँधियारी-] आँखों पर अज्ञान छाया रहता है। इसीलिए धन बटोरने के निमित्त अन्धाधुन्ध तरीके से प्रयत्न करता-रहता है। **टिप्पणी :** 'अंधियारी' की जगह 'अधिकाई' [-आधिक्य] प्रयोग भी सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश बिलाइति हाथी घोरे। ज्यौं ज्यौं बांधै त्यौं त्यौं थोरे॥
करि संतोष न बैठै हारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥26॥
ऐसै करत बुढापा आया। तब काठी करि पकरी माया॥
कौडी षरचत कसकै भारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥27॥
मेरे बेटे पोते षैहैं। मेरी संची कोउ न लैहैं॥
ईश्वर की गति कछु न विचारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥28॥
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा। नैंननि आवन लाग्यौ नीरा॥
पौरी पर्‌यौ करै रषवारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥29॥
कानहुं सुनै न आंषिहुं सूझै। कहैं और की औरै बूझै॥
अब तौ भई बहुत विधि ष्वारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥30॥
बेटा बहू नजीक न आवै। तूं तौ मति चल कहि समझावै॥
टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥31॥

---

26. हाथी-घोरे=हाथी-घोड़े अर्थात् राजसी ठाट-बाट। देश बिलाइति=देश बिलाइत तक [कार्य-] व्यापार क्षेत्र अथवा प्रभाव है। ज्यौं ज्यौं-त्यौं त्यौं=इस प्रयोग में अधिक से अधिक हथियाने की हविस व्यंजित है। न बैठै हारी=हार कर, थक कर, तृप्त होकर नहीं बैठता।

27. बुढापा आया=बुढ़ापा आ पहुँचा, कुछ कर दिखाने का समय बीत गया। काठी करि पकरी माया=जैसे लालच, बन्दर को काष्ठ-पात्र में बाँध लेता है, वैसी ही लोभ-लिप्सा के कारण माया मनुष्य की बुद्धि को जकड़ लेती है। कोडी षरचत कसकै=कौड़ी [-किञ्चित्] खर्च करते हुए कसकती है। **टिप्पणी** : छन्द 27 से 35 तक वृद्ध मनुष्य और उसकी मोहासक्ति वाली मानसिकता का सजीव चित्रण है।

28. बेटे पोते षैहैं=संचित माया को, स्वयं के उपयोग में न लाकर 'बेटे-पोते खाएँगे—उपयोग करेंगे' इस लालसा में छुद्र बना रहता है। संची=संचित की। ईश्वर की गति=ईश्वरीय दशा, परमात्मा की कृपा।

29. निपट वृद्ध=पूरी तरह बूढ़ा। नैंननि-नीरा=आँखों से पानी ढलकने लगा। **टिप्पणी** : कमज़ोरी और अल्पवीर्यता के कारण शरीर में ऐसी शिथिलता आ गई। पौरी पर्‌यौ=पौढ़ी [-द्वार] पर पड़ा रहता है।

30. कानहुं सुनै न आंषिहुं सूझै=न कानों से सुन पाता है और न आँखों से देख पाता है। औरै बूझै=कहते कुछ हैं, समझता कुछ है। ष्वारी=दुर्दशा।

31. टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी [लोको०]=कुत्ते-बिल्ली को जैसे रोटी-टुकड़े डाले जाते हैं, वैसे ही उस वृद्ध को खाना दिया जाता है। **टिप्पणी** : मध्यकालीन संयुक्त परिवार में कुछ अविवेकी [निम्न आय-वर्ग के] लोग, अपने वृद्ध के प्रति ऐसा व्यवहार करते रहे होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकतौ रहै जीभ नहिं मोरै। मरिहुंन जाइ षाटली तोरै ॥
तैं षषारि सब ठौर बिगारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥32॥
षिजि करि उठै सुनै जब ऐसी। गारि देइ मुख भावै तैसी ॥
भौंडी रांड करकसा दारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥33॥
उठि न सकै कंपै कर चरना। या जीवन तैं नीकौ मरना ॥
तौहूं मन मैं अति अहंकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥34॥
ताकौ कह्यौ करै नहिं कोई। परवश भयौ पुकारै सोई ॥
मारी अपने पांव कुहारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥35॥
तासौं कछू होइ नहिं आवै। मन मैं बहुत भांति पछितावै ॥
सीस धुनै अति होइ दुषारी। अइया मनुषहुं बुझि तुम्हारी ॥36॥
अब तौ निकट मौति चलि आई। रोक्यौ कण्ठ पित्त कफ बाई ॥
जम दूतनि पासी विस्तारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥37॥
निकसत प्रान सैंन समुझावै। नारायन कौ नाम न आवै ॥
देषि सबनि कौं आंसू ढारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥38॥

---

32. जीभ नहिं मोरै=लगातार बोलता रहता है। जीभ तक नहीं मोड़ता अर्थात् उसका बोलना 'बकना' माना जाता है। मरिहुंन जाइ='मरता भी नहीं है' ऐसा कहते हैं। षाटली तोरै=पड़ा-पड़ा खाट तोड़ता रहता है। षषारि-ठौर बिगारी=थूक-थूक कर कफ से सारी जगह गन्दी कर डाली है।

33. षिजि करि उठै=खीझ उठता है। गारि देइ=गाली देता है। भौंडी रांड करकसा दारी=मुँह फट औरत केलिए ग्रामांचल में प्रयुक्त गालियाँ।

34. कंपै कर चरना=हाथ-पैर काँपते हैं। या जीवन तैं=इसप्रकार के दुर्दशा पूर्ण जीवन से। नीकौ मरना=मौत भली। तौहूं=तो भी। अहंकारी=घमण्डी।

35. परवश भयौ=विवश हुआ। मारी अपने पांव कुहारी [मुहा०]=अपने हाथों ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली अर्थात् अविवेकपूर्ण कार्यों से अपना अहित किया।

36. पछितावै=पश्चात्ताप करता है। सीस धुनै [मुहा०]=शीश धुनता-पछताता है। दुषारी=दुखी होता है।

37. अब तौ निकट मौति=अब तो मृत्यु काल निकट ही है। **टिप्पणी :** छन्द 37-47 तक मरणावस्था और मृतक-दशा की मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति हुई है। ऐसा लगता है कि परिवार जनों के साथ ही पाठक भी अपने जीवन को वाणी के दर्पण में भली प्रकार देखता चलता है। रोक्यौ कंठ=गला अवरुद्ध होने लगा है। पित्त-कफ-बाई=वात-पित्त-कफ की प्रबलता। जमदूतनि=यमदूतों ने। पासी=पाश, बन्धन।

38. निकसत प्रान सैंन समुझावै=प्राणान्त से पूर्व, वाणी अवरुद्ध होने के कारण संकेतों में समझाता है। नाम न आवै=फिर भी चित्त वृत्ति परमात्मा की ओर न लगने के कारण, नारायण का नाम चेतना में नहीं आता। आंसू ढारी=[आसक्ति की प्रबलता के कारण] आँसू ढालता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस बटाऊ किया पयाना। मृतक देषि करि सबै डराना ॥
घर महिं तैं लै जाहु निकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥39॥
वै श्रवना नैना मुख नासा। एक नहीं जो चलती स्वासा ॥
अब क्यौं यासौं प्रीति निवारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥40॥
निशि दिन षवरि बाग की लेता। पलक पलक मैं पानी देता ॥
माली गयौ जु सींचत क्यारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥41॥
लोग कुटम्ब सबै मिलि आये। आपुन रोये और रुलाये ॥
लैकर चालै धाह उचारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥42॥
लै मसान मैं आये जब ही। कीये काठ एकठे सब ही ॥
अग्नि लगाइ दियौ तन जारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥43॥
हितकारी सो रोवहिं गाढे। किरिया करैं जने द्वै ठाढे ॥
बेटा ठोकै मूण्ड कपारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥44॥
भस्म भयौ जब दीयौ दागा। प्रेत प्रेत कहि सब कोइ भागा ॥
न्हाइ धोइ करि छोति उतारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥45॥

---

39. हंस बटाऊ=यात्री-हंस ने, जीवात्मा ने। पयाना=प्रयाण। लै जाहु निकारी=निकाल कर [मृतक शरीर को-] ले जाओ।

40. वै श्रवना-नासा=कान-नाक-मुख-नेत्र सब वे ही हैं। नहीं स्वासा=मात्र [श्वास-] प्राण नहीं आते-जाते। निवारी=निवारण कर दी, समाप्त कर दी।

41. षवरि बाग···पानी देता=जो हर समय बाग की खबर रखता था, खेत में पानी देता था, क्यारी सींचता था वह 'माली' जो शरीर रूप बाग-फुलवारी की देख-रेख करता था, वह प्रयाण कर गया, जिससे शरीर रूप बगिया उजड़ गई। यही व्यंजना है।

42. लोग कुटम्ब सबै=कुटम्ब-परिवार के सम्बन्धी सभी एकत्रित हो गए। धाह उचारी=धाह मार कर रोने का ऊँचा स्वर उच्चारण करते हुए।

43. मसान=श्मशान। काठ एकठे=लकड़ी [शव-दाह केलिए] एकत्रित की। अग्नि लगाइ=आग जलाकर 'दाग' लगा दिया।

44. हितकारी=हितैषी, मित्र। रोवहिं गाढे=ज्यादा रोए। किरिया करैं=क्रिया-कर्म अथवा कपाल-क्रिया करते हैं। ठाढे=खड़े होकर। बेटा=पुत्र। ठोकै मूण्ड कपारी=मृतक का सिर ठोकता है, कपाल-क्रिया करता है।

45. दीयौ दागा [लोको०]=दाग दिया, दाह-संस्कार किया। 'दाग' शब्द 'दाह' का ही अपभ्रंश है। यह अरबी का 'दाग' [=धब्बा] शब्द नहीं है। कपाल-क्रिया करने से प्रेत-योनि नहीं मिलती, ऐसा विश्वास है। छोति उतारी=छूत या सूतक अर्थात् मृतक-दाह करने से प्राप्त अशौच, जो स्नानादि से निवृत्त किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारि बारि कै घर कौं आये। बेटा बहू सबै समुझाये ॥
अब जिनि रोवहु सौंह हमारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥46॥
संचि संचि करि राषी माया। औरहिं दिया न आपुन षाया ॥
हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुबारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥47॥
सुकृत न कियौ न राम संभार्‌यौ। ऐसौ जन्म अमोलिक हार्‌यौ ॥
क्यौं न मुक्ति की पौरि उघारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥48॥
कबहु न कियौ साधु कौ संगा। जिनकै मिलैं लगै हरि रंगा ॥
कलाकन्द तजि बनजी षारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥49॥
प्रभु सौं सनमुख कबू न हूये। धन्धा ही मैं पचि पचि मूये ॥
भजे न विश्वभरन बनवारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥50॥
किया कृत्य सो भुक्तन लागा। जन्म जन्म दुख सहै अभागा ॥
राम बिना को लेइ उबारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥51॥

---

46 : जारि बारि कै=जला-जलूकर, मृतक को फूंक-फाँक कर। अब जिनि रोवहु= अब मत रोओ। सौं हमारी=हमारी सौगन्ध है, ऐसी कसम दिलाकर चुप करते हैं।

47. संचि संचि करि राषी माया [लोको०]=संग्रह कर-करके माया [-धन-दौलत] इकट्ठी की। हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुवारी [लोको०]=जुवा में हार जाने पर जैसे जुवारी हाथ झाड़ते हुए विवश होकर उठ जाता है, वैसे ही जीवन के खेल में, सावधानी पूर्वक न खेलने [-आचरण न करने] पर प्राणी, मृत्यु समय पर हाथ पसारे चला जाता है।

48. सुकृत न कियौ=शुभ कर्म नहीं किए। न राम संभार्‌यौ=राम-परमात्मा की शरण में नहीं गया। जन्म अमोलक हार्‌यौ=इस जन्म में, असावधानी के कारण अमूल्य जीवन दाँव पर हार गया। मुक्ति की पौरि=मोक्ष द्वार। उघारी=उद्‌घाटित की।

49. साधु कौ संगा=साधु-महात्माओं का सत्संग, सत्पुरुषों का संग। हरि रंगा=हरि का रंग, भक्ति। कलाकन्द=दुग्ध निर्मित स्वादिष्ट मिष्टान्न के समान, आनन्द-दायक भक्ति। बनजी षारी=कसैले-खारे भोज्य पदार्थों का व्यापार किया, भक्ति को छोड़ अन्यान्य कर्म-व्यापार किए।

50. प्रभु सौं सनमुख=प्रभु के समक्ष, परमात्मा के अनुकूल। कबू=कभी। धन्धा= व्यापार, दुनियादारी। पचि पचि मूये=खप-खप कर मर गए। विश्वभरन बनवारी =विश्व का भरण-पोषण करने वाले परमात्मा।

51. किया कृत्य=कृत कर्म, अपने किए कुकर्म। भुक्तन लागा=भोगने लगा। अभागा =भाग्य हीन, ऐसा कुकर्मी जन्म-जन्मान्तर में किए हुए का फल पाता रहता है। उबारी=उद्धार कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूकर स्वान काग पै होई। कीट पतङ्ग गनैं कहा कोई ॥
औरौं जोनि भ्रमै हत्यारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥52॥
भूत पिशाच निशाचर जेते। राक्षस देह भयानक केते ॥
सो पुनि होइ जीव संसारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥53॥
भ्रमत भ्रमत जब आवै अन्ता। तब नर देह दैंहि भगवन्ता ॥
आपु मिलन की सौंज संवारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥54॥
सकल सिरोमनि है नर देहा। नारायन कौ निज घर येहा ॥
जामहिं पइये देव मुरारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥55॥
चेति सकै सो चेतहु भाई। जिनि डहकावो राम दुहाई ॥
सुन्दरदास कहै जु पुकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥56॥

॥ समाप्तोऽयं तर्क चितावनी ग्रन्थः ॥30॥

---

52. सूकर स्वान काग पै होई = कुकृत्यों के फलस्वरूप सूअर-श्वान-कौए तक की योनियों में जन्म लेता फिरता है। गनैं कहा कोई = कोई क्या गणना करे अर्थात् असंख्य योनियों में। हत्यारी = हत्यारी जीवात्मा, जिसने अपने मनुष्य जीवन में असावधानी पूर्वक समय की हत्या की, प्राणियों की हिंसा की हो।

53. भूत पिशाच-जेते = भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस योनियों के जितने भी जीव हैं।

54. भ्रमत भ्रमत = जन्म-जन्मान्तरों में भटकते हुए। नर देहा = मनुष्य शरीर। आपु मिलन की सौंज संवारी = मनुष्य-जन्म लेकर या प्राप्त कर लेने पर, इस नारायणी मनुष्य-शरीर में अर्थात् देव-वाञ्छित इस मानव-देह द्वारा स्वयं परमात्मा से मिलने की सुधि कहाँ सँभाली ?

55. सकल सिरोमनि = सर्वश्रेष्ठ। नर देहा = मनुष्य-शरीर। नारायन कौ निज घर = मानव-देह नारायण का घर-मन्दिर है। जामहिं पइये देव मुरारी = इस शरीर में, मानव-जीवन में ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। **टिप्पणी** : इसीप्रकार की उपदेशात्मक चेतावनी अन्य सन्तों द्वारा भी रची गई हैं, जो **'काया बेली'** अथवा **'बेली'** नाम से जानी जाती हैं।

56. चेति सकै सो चेतहु भाई = जीवन-काल बीत रहा है। अतः भाइयो, सावधान हो सकते हो, तो हो जाओ। जिनि डहकावो = बहकावे में [-भ्रम में, गफलत में] मत पड़ो। कहै पुकारी = पुकार कर, ज़ोर देकर कहता है। राम दुहाई = राम की शपथ है। **टिप्पणी** : परमात्मा की शपथ-साक्षी देकर, रचनाकार जीवन की सार्थकता को स्वीकार करने के लिए, लोगों को समझा रहा है, सावधान कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥31॥ अथ विवेक चितावनी ॥

प्रवेशार्थ : चालीस चौपाई छन्दों के कलेवर में प्रस्तुत रचना संसार की अनित्यता बता कर, काल गति के अनुसार, शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन करती है। साथ ही जीवन काल में ही, मनुष्य के विवेक को जागृत करने-कराने की बात कहते हुए मनुष्य-जीवन की सर्वाधिक उपयोगिता का भी प्रतिपादन किया गया है। रचनाकार ने अध्यात्म-मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए समय की मूल्यवत्ता एवं जीवन की बहुमूल्यता को अभिव्यंजित किया है। किसी अत्याचारी, दुराचारी, हत्यारे, आतंकवादी, उग्रवादी अथवा असामाजिक व्यक्ति के चित्त में यदि यह पंक्ति 'समझि देखि निश्चै करि मरना' घर कर जाए, तो निश्चित ही उसकी जीवन-दिशा का लोकमंगलकारी रूपान्तरण संभव है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

चौपई :

आपु निरंजन है अविनाशी। जिनि यहु बहु विधि सृष्टि प्रकाशी ॥
अब तूं पकरि उसी का शरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥1॥
जौ तूं जन्म जगत मैं आया। तौ तूं करि लै इहै उपाया ॥
निशि दिन राम नाम उच्चरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥2॥

चूर्णिका : 1. 'निरंजन', 'अविनाशी' शब्दों के प्रयोग से 'मंगलाचरण' विधि का निर्वाह। सृष्टि प्रकाशी=सृष्टि का प्रकाश अर्थात् अभिव्यक्ति हुई। अर्थात् उसी की इच्छा से सृष्टि प्रतिभासित हो रही है। उसी का शरना=उसी की शरण या आश्रय ['शरना' का पुलिंग प्रयोग, असाधु होने की सीमा में आता है]। निश्चै करि मरना=मृत्यु अवश्यंभावी है, निश्चित है, यह मन में निष्कर्ष निकाल कर जीवन-व्यवहार करे।

2. जगत में आया=जगत् में सीमित समय केलिए आया है। उपाया=उपाय, साधन। उच्चरना=उच्चारण करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया मोह मांहि जिनि भूलै । लोग कुटंब देषि मत फूलै ।।
इनकै संग लागि क्या जरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।3।।
मात पिता बन्धव किसके रे । सुत दारा कोऊ नहिं तेरे ।।
छिनक मांहि सब सौं बीछरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।4।।
अपने अपने स्वारथ लागे । तूं मति जानै मो सन पागे ।।
इनको पहिले छौडि निसरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।5।।
जिनि के हेत दशौं दिशि धावै । कोऊ तेरे संग न आवै ।।
धाम धूम धंधा परिहरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।6।।
गृह कौ दु:ख न बरन्यौ जाई । मानहु अग्नि चहूं दिश लाई ।।
तामैं कहु कैसौ विधि ठरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।7।।
करना है सो करि किन लेहू । पीछै हम कौं दोष न देहू ।।
इक दिन पांव पसारि उलरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।8।।
या शरीर सौं ममता कैसी । याकी तौ गति दीसत ऐसी ।।
ज्यौं पाले का पिंड पघरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।9।।

---

3. जिनि भूलै = विभ्रमित न हो, आसक्ति में न फँसे । लोग-कुटुंब देषि = अपने कुटुम्ब-परिवार के सदस्यों को देखकर । मत फूलै [मुहा०] = घमण्ड न कर । क्या जरना = इसके साथ क्या अथवा क्यों जलता है ।
4. बन्धव = बान्धव, सगे सम्बन्धी । सुत दारा = स्त्री-पुत्र । छिनक मांहि = क्षण भर में । बीछरना = बिछुड़ना है ।
5. मो सन पागे = मुझ में पगे हुए अर्थात् आसक्त हैं । छौडि निसरना = छोड़ कर निकल जाना है ।
6. जिनके हेत = जिनके लिए । दशौं दिशि धावै = दसों दिशाओं में दौड़ता है, मारा फिरता है । धाम धूम धंधा = भवन-आवास और धुआँधार धन्धा अर्थात् बड़ा कारोबार । परिहरना = त्यागना पड़ेगा ।
7. न बरन्यौ जाइ = वर्णन करते नहीं बनता । मानहु अग्नि चहूं दिशा लाई [लोको०] = मानो चारों ओर आग लगी हो । तामैं = उसमें । कैसी विधि ठरना = किस-प्रकार ठहरा जा सकता है ।
8. करि किन लेहू = कर क्यों नहीं लेते ? दोष न देहू = दोष न देना । पांव पसारि [मुहा०] = पाँव फैलाकर । उलरना = ऊपर मुँह करके पड़े रहना है ।
9. ममता = आसक्ति । गति = दशा । दीसत = दिखाई देती है । पाले का पिंड = बर्फ का टुकड़ा । पघरना = पिघलता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु पकरि कैं सबनि हिलावै। तेरी बारी नियरी आवै।।
जैसैं पात वृक्ष तें झरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।10।।
दिन दिन छीन होत है काया। अंजुरी मैं जल किन ठहराया।।
ऐसी जानि बेगि निस्तरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।11।।
देह षेह मांहे मिलि जाई। काग स्वान कै जंबुक षाई।।
तेल फुलेल कहा चोपरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।12।।
षंड बिहंड काल तन करिहै। संकट महा एक दिन परि है।।
चाकी मांहिं मूंग ज्यौं दरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।13।।
काहे कौं कछु मन मैं धारै। मौति सु तेरी वोर निहारै।।
वाला गिनै न बूढा तरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।14।।
सांप गहै मूसा कौं जैसें। मंजारी सूवा कौं तैसें।।
ज्यौं तीतर कौं बाज बिथुरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।15।।

10-11. सबनि हिलावै=सबको झकझोरती है। तेरी बारी=तेरा क्रम, तेरा नम्बर। नियरी आवै=निकट आ रही है। जैसे पात वृक्ष तें झरना [लोको०]=जैसे पेड़ से पत्ता झरता है। छीन=क्षीण। काया=शरीर। अंजुरी मैं जल [लोको०]=अँजुलि में जल कौन ठहरा [-रोक] पाया है। अर्थात् जीवन के दिन, अँजुलि के जल के समान हैं, जो एक-एक बूंद के रूप में टपक जाते हैं। बेगि निस्तरना= शीघ्र निस्तार [-छुटकारा] पाना है।

12. षेह मांहे=राख में, मिट्टी में। जंबुक=गीदड़, शृगाल। तेल फुलेल कहा चोपरना =इस शरीर पर, जो राख में मिलना है, सुगन्धित तेल [-द्रव-लेप] चुपड़ने से क्या लाभ ? काया की सजावट में समय नष्ट करने से क्या लाभ ?

13-14. षंड बिहंड=खण्ड-खण्ड, टुकड़े-टुकड़े। संकट महा=महान संकट, मृत्यु का सामना करने रूपी बड़ा संकट। चाकी मांहि मूंग ज्यौं दरना [लोको०] चक्की में मूंग दलने के समान शरीर को भी मौत के पाटों में पिसना पड़ता है। मौति तेरी वोर निहारै=मृत्यु तेरी ओर देख रही है। बाला=बालक। तरना=तरुण, युवक। **टिप्पणी :** छन्द 10-18 तक मृत्यु की भयावहता एवं शरीर कष्ट का भय दिखाकर सामाजिक की चेतना में अनैतिक-असामाजिक अथवा मात्र स्वार्थ केलिए किए जाने वाले कर्मों का वर्जन कराना ही वाणी-रचनाकार का लक्ष्य है। इन कुकर्मों में लगने वाले समय को सुकृत्यों में लगाने से जीवन में प्रासादिकता [-प्रसन्नता] बढ़ती है। वाणी में वर्णित 'सुखानन्द' ही प्रभु-प्रसाद है।

15. मृत्यु की अति प्रबलता के उदाहरण हैं—सांप गहै मूसा, मंजारी सूवा, तीतर कौं बाज=जिसप्रकार सर्प मूषक को, बिल्ली तोते को झपट कर निगल जाती है और बाज तीतर को झपट ले जाता है, वैसे ही मृत्यु जीवधारी को निगल जाती है। बिथुरना=बिखेर दिया जाता है, पंखादि नोच-नाच कर फेंक दिए जाने के रूप में खण्ड-खण्ड कर दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोक निलज्ज चरत नित डौलै। बकरी संग कामरत बोलै।।
पकरि कसाई पटकि पिछरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।16।।
काल षरा सिर ऊपर तेरै। तूं क्यौं गाफिल इत उत हेरै।।
जैसें बधिक हतै तकि हरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।17।।
क्षण भंगुर यहु तन है ऐसा। काचा कुंभ भर्‌या जल जैसा।।
पलक मांहि बैठें हीं ढुरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।18।।
जोरि जोरि धन भरे भंडारा। अर्व्व पर्व्व कछु अन्त न पारा।।
षोषी हांडी हाथि पकरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।19।।
हीरा लाल जवाहिर जेते। मानिक मोती घर मैं कैते।।
धर्‌या रहै रूपा सोबरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।20।।
रीता आया रीता जाई। उहै भली जो षरची षाई।।
माया संचि संचि क्या करना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।21।।
देश बिलाइति घोरा हाथी। इन मैं कोउ न तेरा साथी।।
पीछे ह्वै है हाथ मसरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।22।।

---

16. बोक=वोकरा, बकरा, मन। निलज्ज=बेशर्म। कामरत बोलै=बकरी के प्रति कामासक्त होकर मिमियाता रहता है। पटकि पिछरना=पटक कर पछाड़ देता है, मार डालता है।

17. षरा=खड़ा है। सिर ऊपर [मुहा०]=शक्तिशाली रूप में काल सिर पर दस्तक दिए रहता है। गाफिल=मदहोश। हेरै=देखता है। बधिक=बहेलिया, आखेटक। हरना=हरिण।

18 क्षण भंगुर=क्षयशील, क्षण-क्षण में विनष्ट होने वाला, नाशवान्। काचा कुंभ भर्‌या जल जैसा [लोको०]=जैसे कच्चे घड़े में जल भरा हो। ऐसा घड़ा अधिक देर नहीं टिकता। ढुरना=ढुलक जाता है, ढह जाता है।

19. जोरि जोरि=संग्रह कर-करके, परिग्रह की प्रवृत्ति से। भरे भंडारा=भण्डार भर लिए हैं। अर्व्व षर्व्व=अरब-खरब की संख्या तक अर्थात् अगणित संख्या में। अन्त न पारा [मुहा०]=जिसका अन्त न मिल सके। षोषी=खोखी, खाली। हांडी=हंडिया, मिट्टी का भांडा [-ठीकरा]।

20. जेते=जितने भी। हीरा लाल जवाहिर मानकि मोती=बहुमूल्य रत्न। रूपा सोबरना=चाँदी और स्वर्ण।

21. रीता आया रीता जाई [लोको०[=मनुष्य दुनिया में खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही लौट जाता है। उहै भली जो षरची षाई - वह दौलत जो खाई और खरची है अर्थात् जिसका उपयोग किया है, वही ठीक है।

22. देश बिलाइति=बिलाइत अर्थात् दूर देश तक भूमि पर राज्याधिकार। न तेरा साथी=अन्तिम समय में कोई तेरा साथी नहीं। हाथ मसरना [मुहा०]=पीछे हाथ मलना [पछताना] पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंदिर माल छोडि सब जाना। होइ बसेरा बीच मसाना।।
अंबर वोढन भूमि पथरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।23।।
बहु विधि संत कहत हैं टेरैं। जम की मारि परै सिर तेरैं।।
धर्मराइ कौं लेषा भरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।24।।
पाप पुन्य का ब्यौरा मांगै। कागद निकसै तेरैं आगै।।
रती रती का ह्वै है निरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।25।।
कंटक ऊपर चलि है भाई। ताते षंभनि सौं लपटाई।।
ऐसी त्रास जानि अति डरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।26।।
कबहू काहू दुःख न दीजै। अपनी घात आप क्यौं कीजे।।
बार बार चौराशी फिरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।27।।
जो बाहै लुनियेगा सोई। अंमृत षाइ कि विष फल होई।।
इहै बिचारि अशुभ सौं टरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।28।।

---

23. मंदिर माल=घर और दौलत अथवा घर का वैभव। बसेरा=निवास। मसाना=श्मशान में। अंबर वोढन=आकाश 'वोढन' अर्थात् चादर होगा। भूमि पथरना=पृथ्वी बिछौना होगी। **टिप्पणी** : मनुष्य जीवन की यही परिणति है, तो जीवन-काल में आपाधापी, छीना-झपटी, छल-कपट क्यों ? ऐसी कथन-व्यंजना ग्रहण करना अपेक्षित है।

24. कहत हैं टेरैं=टेर-टेर कर, बुला-बुला कर, समझा-समझा कर कहते हैं। जम की मार=मौत का ताड़न। धर्मराइ=मृत्यु का देवता यमराज। लेषा भरना=हिसाब चुकाना है।

25. ब्यौरा मांगै=हिसाब-किताब माँगता है, कर्मों का लेखा-जोखा रखता है। कागद निकसै तेरैं आगै=जीव के खाते में बकाया निकलता है। रती रती का=रत्ती-रत्ती भर का। ह्वै है निरना=निर्णय होगा।

26. कंटक ऊपर चलि है=काँटों के ऊपर चलना होगा। ताते षंभनि-लपटाई=गर्म खम्भों से लिपटा दिया जाएगा। त्रास जानि=भय मानकर। **टिप्पणी** : कुकर्म के फलस्वरूप नरक में दिए जाने वाले ऐसे कल्पित कष्ट गरुड़ आदि पुराणों में विस्तार से वर्णित हैं। ऐसे कष्ट, सामाजिक के आचरण-कर्म को नियमित-संयमित करने में, मध्यकालीन जन-चेतना [-बोध] के अंग रहे हैं।

27. दुःख न दीजै=किसी को दुःख-पीड़ा न दो। घात=बध, हत्या, कष्ट। चौराशी फिरना [लोको०]=चौरासी लाख योनियों में भ्रमते रहना होगा।

28. जो बाहै लुनियेगा सोई [लोको०]=जो बोएगा वही काटेगा, जैसा करेगा वैसा भरेगा। अमृत षाइ कि विष फल होई=अमृत खाने से कभी विष जैसा परिणाम नहीं होता। इहै विचारि=यह सोच-विचार कर। अशुभ सौं टरना=अशुभ [-अकल्याण कर, असामाजिक कर्म] से दूर रहना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद पुरान कहै समझावै। जैसा करै सु तैसा पावै ॥
तातैं देषि देषि पग धरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥29॥
भोजन करै तृपति सो होई। गुरू शिष्य भावै किन कोई ॥
अपनी करनी पार उतरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥30॥
काम क्रोध वैरी घट मांहीं। और कोऊ कहुं बैरी नांहीं ॥
राति दिवस इनहीं सौं लरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥31॥
मन कौं दंड बहुत विधि दीजै। याही दगाबाज बसि कीजै ॥
और किसी सेती नहिं अरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥32॥
जिनि कैं राग दोष कहुं नांहीं। ब्रह्म बिचार सदा उर मांहीं ॥
उन संतन के गहिये चरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥33॥
काचा पिंड रहत नहिं दीसै। यह हम जानी बिसवा बीसै ॥
हरि सुमरन कबहूं न बिसरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥34॥
जौ तूं स्वर्गलोक चलि जावै। इंद्रलोक पुनि रहन न पावै ॥
ब्रह्मा हू के घर तें गिरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥35॥

---

29. जैसा करै सु तैसा पावै [लोको०]=जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल पाता है। देषि देषि पग धरना [मुहा०]=समझ-बूझ कर कदम उठाना अर्थात् सोच-विचार कर काम करना चाहिए।
30. भोजन करै तृपति सो=जो भोजन करता है, उसी को तृप्ति होती है। अपनी करनी पार उतरना [लोको०]=अपनी करनी [-आचरण] के सहारे ही वेड़ा पार होता है, कार्य सम्पन्न होता है।
31. बैरी=शत्रु। घट मांहीं=हृदय के अन्दर। और कोऊ कहुं बैरी नांहीं=और कोई कहीं शत्रु नहीं है। राति दिवस=रात-दिन। लरना=लड़ना [-जूझना] है।
32. मन कौं दंड-दीजै=मन को सम्यक् रूप से अनुशासित करिए। दगाबाज=धोखा देने वाला। बसि कीजै=वशीभूत कीजिए, अनुशासन में रखिए। सेती=से। अरना=अड़ना, मुकाबला करना।
33. राग दोष=आसक्ति और द्वेष। ब्रह्म बिचार=ब्रह्म भावना, ब्रह्म-ज्ञान। उर मांहीं=हृदय में। गहिये चरना=चरणों को पकड़िए।
34. काचा पिंड=कच्चा घड़ा, कच्चे घड़े की तरह अस्थायी शरीर। कहावत है—'शब्द साँचा पिण्ड काचा'। बिसवा बीसै=विश्वाबीस, बीसों विषय, बीसों बीस अर्थात् भलीप्रकार से, निश्चय पूर्व। बिसरना=विस्मृत करना।
35. स्वर्गलोक—इंद्रलोक—ब्रह्मा [-लोक] हू के घर तें गिरना=शुभ कर्मों के फलस्वरूप यदि स्वर्गादि का निवास मिल भी गया तो, पुण्य क्षीण होने पर वहाँ से पतित होना पड़ेगा। गीता का प्रमाण है—

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥'—9/21

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्व न करिये राजा राना। गये विलाइ देव अरु दाना।।
तिनके कहूं षोज हू षुरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।36।।
धरती मापि एक डग करते। हाथौं ऊपर पर्बत धरते।।
केते गये जांहि नहिं बरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।37।।
आसन साधि पवन पुनि पीवै। कोटि बरस लगि काहि न जीवै।।
अंत तऊ तिनकौ घट परना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।38।।
कंपै धर जल अग्नि समंदा। वायु व्यौम तारागन चन्दा।।
कंपै सूर गगन आभरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।39।।
जुदा न कोई रहनै पावै। होइ अमर जो ब्रह्म समावै।।
सुन्दर और कहूं न उबरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना।।40।।

।। समाप्तोऽयं विवेक चितावनी ग्रन्थः।।31।।

---

36. गर्व न करिये=घमण्ड नहीं करना चाहिए। राजा राना=राजा हो या राव। गये बिलाइ=विला गए, विलुप्त हो गए। देव अरु दाना=[शक्तिशाली-] देवता और दानव। षोज हू षुरंना=खोज केलिए [पहिचान केलिए खुर-] पद-चिह्न तक नहीं मिलते।

37. धरती मापि एक डग करते [दृष्टान्त]=विष्णु ने बामन अवतार में, राजा बलि से दान माँगते हुए एक डग में ही पृथ्वी को माप लिया था। यह पुराण-कथा का संकेत भर है। हाथौं ऊपर पर्वत धरते [दृष्टान्त]=हाथों के ऊपर पर्वत उठा लेते थे। लक्ष्मण-बूटी प्रसंग में हनुमान-कथा का अन्तःप्रसंग। केते गये=कितने ही [पराक्रमी] दुनिया से कूच कर गए। जांहि नहिं बरना=वर्णन नहीं किए जा सकते।

38. आसन साधि=योग-आसनों की साधना करके। पवन पुनि पीवै=पवन पीते हैं अर्थात् प्राणायाम करते हैं। कोटि बरस लगि जीवै=सहस्र वर्ष तक चाहे जीवित रहें। परना=अन्त में पड़ना पड़ेगा, टूटना पड़ेगा, धराशायी होना होगा।

39. कंपै=काल के भय से काँपते हैं, प्रलय भय से डगमगाते हैं। कंपै सूर=सूर्य भी काँपता है। गगन आभरना=जो आकाश के आभूषण [-आभरण] हैं।

40. जुदा=पृथक्, अलग। होइ अमर=वही अमर होता है। ब्रह्म समावै=जो ब्रह्म-भाव में लीन होता है, बना रहता है। और कहूं न उबरना=और कहीं भी कोई उद्धार [-निस्तार] का मार्ग नहीं है। निश्चय करके जान ले कि 'मरना तो है ही'। अतः न मरना पड़े इसलिए ब्रह्म-भाव में लय हो जाने का प्रयत्न करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥32॥ अथ पवंगम छन्द ॥

प्रवेशार्थ : 'लाटानुप्रास' [-शब्द अथवा वाक्यों की आवृत्ति, जिसमें अन्वय करने पर अर्थ बदल जाता है] अलंकार के प्रयोग-कौशल से सुन्दरदास ने इस रचना में रीति-प्रवृत्ति को अपनाया है। इसके प्रत्येक छन्द के प्रत्येक चरण का अन्तिम शब्द एक-सा है। पर, अर्थ अलग-अलग हैं। **'पवंगम रचना'** का प्रतिपाद्य विरहिणी [-जीवात्मा] की विरहाकुल वेदना को, चमत्कार प्रधान शैली में अभिव्यक्ति देना है। अक्षर-वर्ण एवं पद-योजना में माधुर्य गुण की प्रधानता है। 'र' 'ल' वर्णों के प्रयोगाधिक्य से मार्मिकता और बढ़ी है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन्त कवि सुन्दरदास, सन्त काव्यधारा के होते हुए भी, रीतिकाल के ही प्रमुख रचनाकार हैं। प्रस्तुत रचना में कुल 18 पवंगम छन्द हैं। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

पवंगम : पिय कै विरह वियोग भई हूं बावरी॥
शीतल मंद सुगंध सुहात न बावरी॥
अब मुहि दोष न कोइ परौंगी बावरी॥
[परि हां] सुन्दर चहुं दिशि विरह सु घेरी बावरी॥1॥

चूर्णिका : पवंगम : इसे 'पवंगा' छन्द भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में 21 मात्राएँ होती हैं और 8, 13 पर यति होती है। किन्तु, जैसा कि उल्लिखित है, प्रस्तुत रचना में 'पवंगम' छन्द न होकर 'चान्द्रायण' छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में भी 21 मात्राएँ होती हैं, पर यति-विराम 11, 10 पर होता है। कोष्ठक में **'परि हां'**, जो अन्तिम चरण में प्रयुक्त रहता है, सम्वाद-योजना की-सी प्रतिध्वनि कराता है। इसे 'अरिल' छन्द कहना सही नहीं है, जिसका उल्लेख कई अन्य सन्त-बानियों में भी हुआ है।

1. बावरी=1. बावली, पगली, दिवानी। 2. बाव+री=अरी पवन सखि! 3. बावरी=बावड़ी, सीढ़ीदार तालाब। 4. भंवर चक्र। सुहात न=अच्छी अर्थात् रुचि कर नहीं लगती। परौंगी=पडूंगी, गिर पडूंगी। घेरी=घेर लिया है। परि हां=अरे, हाँ [निश्चयबोधक शब्द]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत उत चलत न चित्त थके दोउ पावरी ।।
छाडे सकल सिंगार चढत नहिं पावरी ।।
सुन्दर बिरहनि दुषित पीव नहिं पावरी ।।
[परि हां] इतनक बिष [अब] बांटि सषी मुहि पावरी ।।2।।

बिरह जरावत मोहि न कबहूं आरसी ।।
बिरहनि अति बेहाल न देखत आरसी ।।
शीतल मंद सुगन्ध पवन पुनि आरसी ।।
[परि हां] सुन्दर पिय परदेश न आयौ आरसी ।।3।।

बिरह हिये मैं पैठि सु लागी बारनै ।।
बिरहनि घर तें निकसिर आई बारनै ।।
और सषी समुंझाइ सु लागी बारनै ।।
[परि हां] सुन्दर पियहि मिलाइ जाउंगी वारनै ।।4।।

पिय नैंननि की वोर सैंन मुहि देहरी ।।
फेरि न आये द्वार न मेरी देहरी ।।
बिरह सु अंदर पैठि जरावत देहरी ।।
[परि हां] सुन्दर बिरहनि दुखित सीष का देहरी ।।5।।

---

2. पावरी=1. पद, चरण। 2. पावड़ी, खड़ाऊँ। 3. पौढ़ी, सीढ़ी। 4. मिलता है अथवा पिला दे।
पावरी=पिला दे। इत उत=इधर-उधर। सिंगार छाडे=शृंगार [-सज्जा] छोड़ दिया है। दुषित=दुखी। इतनक=इतना, तनिक-सा। **टिप्पणी :** चतुर्थ चरण में 'परि हां' के साथ पंक्ति के बीच में 'अब' का भी उच्चारण, पढ़ते हुए हो जाता है।

3. आरसी=1. आड़, ओट, रुकावट। 2. दर्पण। 3. आर [-कील-नोक, आरी]-सी। 4. आलसी, सुस्त। जरावत=जलाता है। बेहाल=व्याकुल। न आयौ=नहीं आया।

4. बारनै=1. जलाने। 2. बाहर को। 3. निवारण करने, दूर करने केलिए। 4. बलैया [-बलिहारी] जाऊँगी। पैठि=प्रवेश करके [यहाँ 'विरह', स्त्रीलिंग प्रयोग]। निकसिर=निकल कर। पियहि मिलाइ=प्रिय[-इष्ट] को मिलाकर।

5. देहरी=1. दे+हरी=देकर हरण की। 2. देहली, दहलीज। 3. देह+री= देह को, अरी सखि। 4. दे [-ह]+री=देती है, अरी सखि। सैंन=कटाक्ष। फेरि न आये=फिर लौट कर नहीं आए। जरावत=जलाता है, दग्ध करता है। सीष =शिक्षा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिरहनि के मन मांहि रहै यह सालरी ॥
तजि आभूषन सकल न वोढत सालरी ॥
बेगि मिले नहिं आइ सु अव की सालरी ॥
[परि हां] सुन्दर कपटि पीव पढे किहि सालरी ॥6॥
छाडे सकल सिंगार सीस पर मांग ना ॥
विरहै घेरी आइ सु कतहूं माग ना ॥
पिय के बिन दीदार और नहिं मांगना ॥
[परि हां] सुन्दर पतिव्रत मांहि नहीं यह मांगना ॥7॥
दीपक मंदिर मांहि सु राष्यौ जोइ री ॥
नैंन रहै पुनि थाकि सु मारग जोइ री ॥
पीव न आये भौंन भलौ रथ जोइ री ॥
[परि हां] सुन्दर कंत न और उसी कोइ जोइ री ॥8॥
पीव गया परदेश सु कत हूं सोधना ॥
अबहूं गृहते निकसि करौंगी सोधना ॥
जाकी सूनी सेज रहै क्यौं सो धना ॥
[परि हां] सुन्दर प्रान अधार सु मेरै सो धना ॥9॥

---

6. सालरी=1. साल+री=काँटा, शूल, अरी सखि ! 2. सालरी=शाल, सालर अथवा ओढ़नी, शाल-दुशाला । 3. साल=वर्ष । 4. साल=शाला<चटसार, पाठ-शाला । वोढ़त=ओढ़ती है । कपटि पीव पढे=प्रिय कपट [-चतुराई] कहाँ से पढ़े हैं ।

7. मांग ना=1. सीमन, सिन्दूर आदि से माँग का शृंगार । 2. माग ना=मार्ग+ना=मार्ग नहीं । 3. मांगना=[क्रिया०] याचना करना । 4. मांगना [संज्ञा]=भीख । दीदार=दर्शन । पतिव्रत मांहि=पातिव्रत्य सिद्धान्त में ।

8. जोइ री=1. जलाकर, प्रज्वलित करके । 2. देख करके, री सखि ! 3. तैयार-तत्पर करके, [बैल रथ में-] जुवा लगाकर तैयार करना । 4. स्त्री, पत्नी [-री] । थाकि=थक कर । भौंन=भवन, आवास, घर पर । भलौ रथ जोइ=अच्छा रथ जोत कर लेजा । कंत=स्वामी ।

9. सोधना=1. ढूँढ़ना । 2. सुध बुध+ना=नहीं । अथवा [तलाश-] पता नहीं है । 3. सो+धना=वह स्त्री । 'धण'=स्त्री [राजस्थानी में] । 4. सो धना=वह धन-दौलत । कतहूं=कहीं भी । सूनी सेज=शन्य[=खाली]सेज । प्रान अधार=प्राण प्रिय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूषन सकल उतार बषेरी मांग ही ।।
अंग बिभूति लगाइ चली तब माग ही ।।
मैं वासौं फिर कह्यौ अबै मुहि माग ही ।।
[परि हां] सुन्दर रहूं न बैठि जाउं पिय मांग ही ।।10।।
दूभर रैनि विहाय अकेली सेजरी ।।
जिनकै संगि न पीव विरहनी सेजरी ।।
बिरहै संकल वाहि बिचारी सेजरी ।।
[परि हां] सुन्दर दुःख अपार न पाऊं सेजरी ।।11।।
पंथी आवै कोइ सीस द्यौं बैसना ।।
कहूं उहां हीं जाइ अबै इहां बैस ना ।।
पीव हिं जाइ सुनाइ रहन की बैसना ।।
[परि हां] सुन्दर देवन और भई हूं ब्रैसना ।।12।।
हार हमेल उतारि उतारी राषरी ।।
चौवा चन्दन छाडि लगाई राषरी ।।
जैहौं देश बिदेश अब न मुहि राष री ।।
[परि हां] सुन्दर पिय बिन जारि करौं तन राषरी ।।13।।
पीव बिना तन छीन सूकि गई साषरी ।।
हाड रहै कै चाम विरहनी साषरी ।।
निश दिनजोवै माग बिचारी सा षरी ।।
[परि हां] सुन्दर पति कौं छाडि फिरत है सा षरी ।।14।।

---

10. मांग ही=1. माँग, सौभाग्य-शृंगार, मुकलित केश। 2. मार्ग। 3. मा+गही =मत पकड़ो अथवा नहीं पकड़ी। 4. मांगही, माँगेंगे, चाहेंगे। बिभूति=विभूति, भस्मी। बषेरी=बिखेर दी है।

11. सेजरी=1. सेज, शय्या-पर्यंक। 2. से=वह [-विरहिणी] +जरी=जलती है। 3. जरी=जड़ी अर्थात् जकड़ दी है, विरह रूप साँकल से बाँध कर। से+जरी= वे जड़ी-बूटी अर्थात् प्रिय रूपी जड़ी-बूटी पाऊँ तो। संकल=साँकल। दूभर=दुर्गम, दुस्तर।

12. बैसना=1. बैठने का आसन। 2. बैस+ना=वयस+नहीं, अभी आयु नहीं। अथवा बैठक नहीं। 3. बैसना=रीति। 4. बै+सना=वह सना हुआ। पंथी= यात्री, दूत, हरकारा। सीस द्यौं=शीशर पर।

13. राषरी=1. राखड़ी, शिर का आभूषणं, शीशफूल अथवा राखी। 2. राष+री= भस्म, हे सखि! 3. राष=रख, रोक। 4. राषरी=राख कर दिया, जलाकर भस्म कर दिया। हार हमेल=ग्रीवा के आभूषण। जारि=जलाकर।

14. साषरी=1. साष-साख+री=अंकुर-खेती, काया रूप फसल। 2. साख, शाखा। 3. सा+खरी=वह [विरहिणी-] खड़ी है। 4. सा+षरी [-षर]=वह खरी [-गधी] की तरह। चाम=चर्म, त्वचा। जोवै=देखती है। फिरत है=मारी-फिरती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाडि आपनौं नाथ आन की सेव का ॥
रुचै न षाटे बेर स्वाद अति सेव का ॥
को करि सकै बषांन प्रभू की सेव का ॥
[परि हां] सुन्दर अनत न जांहिं तुम्हारे सेवका ॥15॥
मूरष मानै मोद सेव करि आनकी ॥
पति अपनौं दे छाडि रहै क्यौं आनकी ॥
पैहैं दुःख अपार प्रभू की आनकी ॥
[परि हां] सुन्दर फिरि पछिताइ कहेगा आनकी ॥16॥
टेढी पाग बनाइ अंग कहा मोरना ॥
कीये बहुत सिंगार कहा कछु मोरना ॥
जंत्र सु झूटा साजि चढ़ाये मोरना ॥
[परि हां] सुन्दर देषि बिचार इहां कछु मोर ना ॥17॥
उपज्यौ आतम ज्ञान अबै या तन्न मैं ॥
देष्यौ बुद्धि बिचार वस्तु है तन्न मैं ॥
पूरन ब्रह्म अखंड बिराजै तन्न मैं ॥
[परि हां] सुन्दर यह सु प्रपंच देषिये तन्न मैं ॥18॥

॥ समाप्तोऽयं पवंगम छन्द ग्रन्थः ॥32॥

---

15. सेव का = 1. सेव [= सेवा] + का [= क्या], 2. सेव = फल विशेष [-मीठा स्वादिष्ट फल], 3. सेवा, 4. सेविका, स्त्री, दासी, दास, सेवक। नाथ = स्वामी, पति। रुचै न षाटे बेर = खट्टे बेर [— पर-पुरुष, उपपति]। अनत न जांहिं = अन्यत्र नहीं जाएँगे।

16. आनकी = 1. आन + की = अन्य की, दूसरे से सम्बन्धित, 2. आन = प्रण, टेक, 3. आन = सौगन्ध, 4. आने की कहकर। मोद = प्रसन्नता। सेव = सेवा, चर्या। पैहै दुःख = दुःख प्राप्त करेंगे [-सहेंगे]।

17. मोरना = 1. मोड़ना, तिरछा-टेढ़ा — ऐंठ भरा, 2. मोर + ना = मुहर [मौर-] सेहरा नहीं। अथवा मोरना कहा कछु = मयूर भी क्या है? अर्थात् तुच्छ है, 3. मोर + ना = मोड़ नहीं है, जिसमें, 4. मोर = मेरा-अपना + ना = नहीं है। पाग = पगड़ी। अंग = शरीरांग। झूटा साजि = झूठी सजावट।

18. तन्न मैं = 1. शरीर के अन्दर, 2. तत् + न = तत् ऐसा बोध [-ज्ञान] न होने पर, 3. तत् + नमैं = उसको नमन है, 4. तन्मय होकर। उपज्यौ आतम ज्ञान = आत्मज्ञान उदित हुआ है। वस्तु = सार तत्त्व। प्रपंच = मायिक सृष्टि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 33 ॥ अथ अडिला छन्द ॥

प्रवेशार्थ : तीस 'अडिला' छन्दों में संसार की असारता एवं विरहिणी जीवात्मा की विरह-दशा का कौशलपूर्ण चित्रण है। विरह-वेदना की यह अभिव्यक्ति लौकिक भाव-भूमि पर भी मार्मिक बन पड़ी है। 'यमक' के सहारे एक ही शब्द के चार-चार अर्थ-सम्पादन में रचनाकार की प्रतिभा और भाषा-कौशल दोनों ही स्वयं मुखर हैं। इस रचना में भी 'पवंगम' की तरह लाटानुप्रास का अवलम्ब लिया गया है। वहु अर्थी शब्द-प्रयोग में, रचनाकार की व्याकरण शास्त्रीय दक्षता के साथ ही शब्द-विच्छेद-शक्ति से अनेक अर्थों की सूझ को पिरो देने की क्षमता भी अपेक्षित रहती है। इस दृष्टि से सुन्दरदास पण्डित-कवि कहे जा सकते हैं। मूल पाठ देखिए—

अडिला :

पिय बिन सीस न पारूं पाटी। पिय बिन आंषिनि बांधौं पाटी ॥
पिय बिन और लिषूं नहिं पाटी। सुन्दर पिय बिन छतियां पाटी ॥1॥

चूर्णिका : 1. **अडिला** : यह 'अडिला' छन्द 'अडिल्ला' अथवा 'डिल्ला' आदि नामों से भी जाना जाता है। इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं और अन्त में भगण [ऽ।।]होता है। किन्तु, इसी 16 मात्रा वाले छन्द में यदि अन्त-गुरु [ऽ] हो तो **'लहुआ'** छन्द बन जाता है। इसमें अन्त-जगण [।ऽ।] नहीं होता। यदि अन्त में जगण हो तो **'पद्धरि'** छन्द हो जाता है, जिसमें 8, 8 पर यति-विराम होता है। किन्तु, अडिला में अन्त में दो गुरु होना आवश्यक हैं।

पाटी=1. केशों में पाटी [-पटिया] पारना अर्थात् कलात्मक ढंग से भाग-प्रभागों के साथ चोटी-गुहना, केश-शृंगार, 2. पाटी=पट्टी, कपड़े की लीर [-पट्टी], 3. तख्ती, लिखने की लकड़ी की पट्टी, 4. विरह दुःख से विदीर्ण हुई [-फट गई]। छतिया=वक्ष, छाती। पिय बिन=बिना प्रियतम के [—विरहिणी का आत्म कथ्य]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बिरहनि बिरहै वारी। प्रीति करत किनहूं नहिं वारी ॥
पिय कौं फिरी बाग अरु वारी। अब तौ आइ पहूंची वारी ॥2॥
पिय जी आपु लगाइसि वाना। पिय कारण यह कीया वाना ॥
विरहै कसै कंचन ज्यौं वाना। सुन्दर तन करि पिय सौं वाना ॥3॥
विरहै गहि दशहू दिश फेरी। किनहूं सीष देइ नहिं फेरी ॥
सुन्दर पीव करी नहिं फेरी। बिरहनि परी षाइ करि फेरी ॥4॥
पिय बिन हियरा होइ न सीरा। पिय बिन सजनी षांउ न सीरा ॥
मैं कीयौ पिव ही सौं सीरा। सुन्दर मेरै इहै नसीरा ॥5॥
मैं तौ प्रीति करत नहिं जानां। पिव सु लै आये नहिं जानां ॥
निश दिन बिरह जरावत जानां। सुन्दर अब्र पिय ही पै जानां ॥6॥
पिय कारन मैं दीन्हीं हेरी। पिय कौं गली गली सब हेरी ॥
अब का करूं सषी सुनि हेरी। सुन्दर पिय कबहू नहिं हेरी ॥7॥

---

2. वारी=1. जलादी, दाहित कर डाला, 2. वर्जित की, रोकी, 3. फुलवाड़ी, बाग-बगीचों में, 4. नौबत आ पहुँची, वक्त आ गया। कौं=केलिए। फिरी=घूमती-फिरी। आइ पहुंची=आ पहुँची।

3. वाना=1. बान, आदत, टेव, रुचि-आग्रह, 2. वेश विन्यास, पोशाक, पहनावा, भेष, अथवा तीर, बाण, 3. तरह से, आनबान से, शोभा केलिए, 4. [ताना-] बाना, बुनावट में एक होना। लगाइसि=लगाई है, अथवा लगाया है। तन करि=तन-शरीर को ताना करके। कंचन ज्यौं वाना=कंचन ज्यौं कसौटी पर।

4. फेरी=1. फिराई, घुमाई, 2. लौटाई, रास्ते पर जाने से रोका, 3. प्रत्यावर्तन अथवा साथ भाँवरि लेना, 4. चक्कर, घूम खाते हुए। सीष देइ=शिक्षा देकर, उपदेश देकर। परी=गिर पड़ी।

5. सीरा=1. ठण्डा, शीतल, 2. हलुवा, पतला हलुवा, 3. सीरा [-सीर]=संबंध, नाता, 4. नसीरा=(अ०) मददगार। अथवा नसीहत या नज़ीर [-उदाहरण]। हियरा=हृदय, छाती। सजनी=सखि। षांउ न=खाती नहीं हूँ। इहै=यही।

6. जानां=1. जान न पाई, जान न सकी, 2. जानां=यान[-वाहन बरात], 3. जीव, प्राण 4. गमन, गति, रवानगी। पिव<पीव=प्रियतम [यहाँ 'पीव' अपेक्षित है]। पिय ही पै=प्रियतम के निकट।

7. हेरी=1. हेला, आवाज़ अथवा फेरी, चक्कर, परिभ्रमण, 2. देखा, ढूंढ़ा, 3. हे+री=अरी सखि, हे सखि, 4. नहीं देखा, [मुझे-] नहीं ढूंढा। अब का करूं=अब मैं क्या करूं, मेरा क्या कर्त्तव्य है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिरह बिथा करि सूकत मासा। लोग सु पावन लागे मासा ।।
पिय बिन आयौ फागुन मासा। सुन्दर बिरहनि तोला मासा ।।8।।
पिय बिन नींद परै नहिं षाटा। पिय बिन बिरहनि षाइ न षाटा ।।
पिय बिन दिल मैं और न षाटा। सुन्दर मन सब सौं भया षाटा ।।9।।
पिय बिन जागी रजनी सारी। पिय बिन कबहुं न पहरी सारी ।।
सुन्दर बिरहै करवत सारी। बिरहनि कहौ रहै क्यों सारी ।।10।।
अब सषि अपना मन बसि करना। वह तौ पिय किस ही कै करना ।।
अपनी षुसी करै सो करना। तौ सुन्दर किस ही का करना ।।11।।
पिय कौं ढूंढै बारी बागा। पिय बिन क्यौं करि थंभौं बागा ।।
पिय कारन यह पहर्या बागा। सुन्दर डांका दह दिश बागा ।।12।।
मात पिता अरु काका काकी। सुत दारा अरु संपत का की ।।
ज्यौं कोइल सुत सेवै काकी। सुन्दर रिद्ध राषि कर काकी ।।13।।

---

8. मासा=1. मांस-मज्जा, गोश्त, 2. उडद [-माश], जैसे मा दी दाल [पंजा०]= उड़द की दाल, 3. माह, महीना, 4. तोला-माशा। माशा=आठ रत्ती तोल का एक माशा होता हैं। अर्थात् व्याकुल-बेचैन, दुबली। बिरह बिथा करि=विरह व्यथा से। पावन लागे=प्राप्त करने लगे।

9. षाटा<खाटा=1. खाट, पलंग, 2. खट्टा, कढ़ी आदि, 3. खटक, रंज, दुःख, 4. मन भया षाटा<खाटा-खट्टा [मुहा०]=मन खट्टा हो गया, दिल में फर्क आ गया, सम्बन्ध मधुर नहीं रहे।

10. सारी=1. सम्पूर्ण, पूरी, 2. साड़ी, 3. फेरी, चलवाई, 4. सा+री=वह [=नायिका] अरी सखि! अथवा पूरी न रही। रजनी=रात्रि। न पहरी सारी=सौभाग्य लक्षणा साड़ी [-ओढ़नी] नहीं धारण की। करवत=आरी, आरा।

11. करना=1. कर लेना चाहिए, करना चाहिए, 2. कर+ना=हाथ में नहीं, 3. कार्य, कर्त्तव्य, कृत, 4. कर+ना=महसूल, चुंगी, टैक्स, दण्ड नहीं। वह तौ पिय=वह प्रियतम तो। अपनी षुसी करै सो करना [लोको०]=अपनी खुशी केलिए जो करना चाहो वह करते रहो।

12. बागा=1. बाग-बगीचा, 2. वल्गा, लगाम, 3. पोशाक, पहनावा, भेष, 4. बजा, शोर हुआ, टंकारित हुआ। बारी-वाटिका, फुलवारी। थंभौं=थामूं, पकड़ूं। डांका दह दिश बागा [मुहा०]=दसों दिशाओं में डंका बज गया, खबर फैल गई।

13. काकी=1. ताई, चाची, 2. का+की=किसकी, 3. कौवी [मादा कौआ, कागली], 4. का+की=क्या किया। सुत दारा=पुत्र-स्त्री। ज्यौं कोइल सुत सेवै काकी [दृष्टान्त]=मान्यता है कि कोयल अपने अण्डे कौए के घोंसले में रख आती है और उसके अण्डे उठा लाती है। कौआ अपने अण्डे समझ कर उनका पोषण करता है और कोयल के घोंसले के अण्डे तोड़ देता है, खराब कर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर मैं बहुत भई अब माया। तब तौ फूल्यौ अंग न माया ॥
बहुरि त्रिया सौं बांधी माया। सुन्दर छाडि जगत की माया ॥14॥
गर्भ मांहि तब किन तूं पाला। अब माया कौं दौड़त पाला ॥
ऐसी कुबुधि ढांकि दे पाला। सुन्दर देह गलै ज्यौं पाला ॥15॥
षैंचि कमरि सौं बांध्या पटका। अधपति हुवा वैठि करि पटका ॥
काल अचानक मार्‌या पटका। सुन्दर पकरि जिमी सौं पटका ॥16॥
भूलौ कहा देषि या पल मैं। सब संसार भुलाया पल मैं ॥
देषत विनसि जायगा पल मैं। सुन्दर भार किता इक पल मैं ॥17॥
आपुहि जाल किया ज्यौं मकरी। पीछै फिर्‌या लाठि ज्यौं मकरी ॥
अजहूं संमुझि देषि कछु मकरी। सुन्दर मकर छाडि दै मकरी ॥18॥
पावण निमिति देहि जो दाना। सौ हाथी ह्वै षैहैं दाना ॥
उनकी मति षस षस का दाना। सुन्दर संत मिले नहि दांना ॥19॥

---

14. माया=1. पूंजी, सम्पत्ति, धन-दौलत, वैभव, 2. समाया, 3. मोह-आसक्ति, 4. प्रपंच, बखेड़ा। फूल्यौ अंग न माया [मुहा०]=खुशी से फूला नहीं समाता। त्रिया=स्त्री, कामिनी।

15. पाला=1. पालन-पोषण किया, 2. पाले में, दड़े-दगड़े में [-नंगे पाँव], 3. पाल, आवरण, चादर, 4. बर्फ, हिम, ओला। गर्भ मांहि=माँ के उदर में। कुबुधि= कुबुद्धि। देह गलै=शरीर गलता है, क्षय को प्राप्त होता है।

16. पटका=1. पटा, फेंटा, कटि पट्टिका, कमर बन्ध, 2. पाट, चौकी, सिंहासन, राजगद्दी। 3. पटा-पटक, पछाड़, झापड़, 4. गिराया, पछाड़ा। षैंचि कमर सौं बांध्या पटका [मुहा०]=खैंच कर कमर में फेंटा बाँधा अर्थात् सन्नद्ध हो गया। अधपति =अधिपति, स्वामी, राजा। जिमी=धरती।

17. पल मैं=1. या पल मैं=इस ढंग में, इस तौर-तरीके से, 2. पल मैं=निमिष मात्र में, क्षण भर में, 3. शरीर[-मांस-मज्जा] अर्थात् रूपाभिमान, 4. पल-पल्ला [ताखड़ी-] तखरी का पला। भार=बोझ। किता=कितना।

18. मकरी=1. मकड़ी, 2. घानी, खल की घानी, तेल निकलने के बाद तिली का फोक, 3. मगरूर, मगर [-घड़ियाल] से 'मगरी' [स्त्रीलिंग]। अर्थात् घमण्डी, अज्ञानी, 4. मक्कार, छली-प्रपंची। जाल=जाला। लाठि=[तेल-] कोल्हू में तिली को पेरने वाला बीच का लट्ठा। अजहूं=आज भी, अब भी। मकर=झगड़े, छद्म, छल प्रपंच।

19. दाना=1. दान, दत, 2. पशुओं का भक्ष्य, अन्न भोज्य, 3. बीज कण, क्षुद्र, लघु-सीमित दायरे का [-की], 4. उदार, अनुभवी, बुद्धिमान। पावंण निमिति= प्राप्त करने केलिए। मति = बुद्धि। षस-षस < खस-खस = पोस्त दाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगै महापुरुष जे भूता। तिन बसि कीया पंचौ भूता ॥
अब ये दीसत नाना भूता। सुन्दर ते मरि मरि ह्वै भूता ॥20॥
कोई षांहि लापसी मांडा। कोई पीवै पतरा मांडा ॥
जिन चरित्र ऐसा यह मांडा। सो तौ सुन्दर व्यापक मांडा ॥21॥
लालच लगि सेवा की हर की। भौंडी चाल लई तैं हर की ॥
मूरष फिरि पिछलीही हरकी। सुन्दर सबै बात भइ हरकी ॥22॥
जलतौ फिर्यौ तपति ज्यौं हरिकी। शीतलता उपजी नहिं हरि की ॥
बहु बिधि मार षाइ है हरिकी। सुन्दर सेवा करी न हरि की ॥23॥
ऐसैं रटि जैसैं सारंगा। अनत न भ्रमि जैसैं सारंगा ॥
रसिक होइ जैसैं सारङ्गा। तौ सुन्दर पावै सारङ्गा ॥24॥
जौ कर्मनि कौ ढारै पासा। तौ लगि परिहै जमका पासा ॥
सतसंगति का लागै पासा। तौ सुन्दर हरि ही कै पासा ॥25॥

---

20. भूता=1. हुए, उत्पन्न हुए, 2. पंचों भूता=पंच महाभूत-पृथ्वी, जल, तेज, वायु औरआकाश, 3. नाना भूता=भूत-प्रेत रूप में अनेक प्रेत-योनि के अथवा अनेक अन्य प्राणी, 4. प्राणी, जीवधारी।

21. मांडा=1. मैदा की मांड, स्वादिष्ट द्रव्य पदार्थ, 2. पतला घोल, चावल का मांड, 3. रचा, बनाया, फैलाया, 4. व्यक्ति, फैलाव। लापसी=लपसी, मीठा सीरा। पतरा=पतला।

22. हर की=1. हर किसी की, 2. मेंढक की, जो उछल-कूद तो करता है, किन्तु पथ-गति प्राप्त नहीं कर पाता, 3. हाँकी, अथवा हल की, लकीर के फकीर की तरह पिछलग्गू, 4. हलकी, लघु, तुच्छ। लालच लागि=लालच में फँसकर। भौंडी=बेढंगी, घटिया। पिछलीही=पिछली, पिछलग्गू, गतानुगतिक। बात=कथन।

23. हरि की=1. सूर्य की, 2. चन्द्रमा की, 3. यमराज की, 4. विष्णु-परमात्मा की। तपति=ताप, त्रय ताप। शीतलता=ठण्डक, सुखद स्पर्श, शान्ति। मार षाइ है=मार खाएगा। सेवा=भक्ति।

24. सारंगा=1. पपीहा, 2. हरिण, मृग, 3. भ्रमर, 4. सारंगपाणि अर्थात् भगवान् विष्णु। अनत=अन्यत्र। रसिक=रस लोभी।

25. पासा=1. चौपड़-खेल का पाँसा [-दाना], गोटी, 2. पाश, बन्धन, फन्दा, 3. पुट, स्पर्श, प्रभाव, 4. निकट, समीप, सामीप्य। कर्मनि कौ ढारै पासा=कर्मों की गोट [-पाँसा] डालता है, फेंकता है। तौ लगि=तब तक। जमका=यम का, मौत का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जौ तेरै ढिंग आवै नारी। तौ तूं कहि उठि नारी नारी॥
पल मैं शोषि लेइ सब नारी। सुन्दर रथ न चलै बिन नारी॥26॥
जामैं हुतौ सबनि कौ भागा। भांडा सोई भ्रम का भागा॥
अब तौ मस्तक जाग्यौ भागा। सुन्दर छाडि जगत कौं भागा॥27॥
बसनु छाडि तन कीया नागा। बन मैं जाइ रहै ज्यौं नागा॥
पवन अहार किये ज्यौं नागा। सुन्दर राम बिना सब नागा॥28॥
रिपु क्यौं मरै ज्ञान कौ सर ना। तातें मन मैबासी सर ना॥
देषि विचारि बहुरि ओसरना। सुन्दर पकरि राम कौ सरना॥29॥
जौ तौ तूं प्रभुजी कौ चरना। तौ तूं भयौ विमुख हरि चरना॥
अब तूं पहिरि कमरि मैं चरना। सुन्दर इत उत फिरि कछु चरना॥30॥

॥ समाप्तोऽयं अडिला छन्द ग्रन्थः ॥33॥

---

26. नारी=1. स्त्री, 2. न+आ+री=न आरी, अरी, न आ, [-निषेध वाचक], 3. नाड़ी-नाड़ियाँ [-रक्त-वीर्य की वाहिकाएँ]। 4. धुरी। शोषि लेइ=सोख लेगी, चूस लेगी। रथ=यान, गाड़ी।
27. भागा=1. भाग, हिस्सा, योग, 2. भांगा, भंग किया, तोड़ दिया, टूट गया। 3. भाग-भाग्य, 4. दौड़ गया, छोड़ दिया, त्याग दिया। जामैं हुतौ=जिसमें था। सबनि कौ भागा=सब का भाग अर्थात् कृत कर्म के फलस्वरूप जो मिथ्या ज्ञान या भ्रम का घट [-पात्र, शरीर] निर्मित हुआ था, वह ज्ञानोदय काल में भंजित हो गया, टूट गया। जाग्यौ भागा=भाग्योदय हुआ।
28. नागा=1. नग्न, विरक्त दशा का सूचक, 2. नागा अर्थात् नग्न, नागा लोग अथवा बनवासी-जीवन के लोग, 3. सर्प, 4. नग्न, दीनहीन। वसनु=वस्त्र। पवन अहार किए=पवन का आहार करने वाले अर्थात् सर्प।
29. सरना=1. सर+ना=तीर-बाण नहीं, ज्ञान रूप बाण न होने से, 2. वश में, विजित दशा में, संयम-अनुशासन में, 3. औसर+ना=अवसर नहीं, 4. शरण, शरणागति। रिपु=शत्रु। मैबासी=बली, शक्तिशाली। बहुरि=फिर, पुनः। राम को सरना=राम [-परमात्मा] की शरण। 'सरना' का पुलिंग प्रयोग।
30. चरना=1. दास, सेवक, 2. चरण, पद, 3. कमरबन्द, 4. चरना अर्थात् खाना। जौ तौ तूं=यदि तू। बिमुख=विपरीत। पहिरि कमरि मैं चरना=कमर मैं फेंटा बाँधना अर्थात् सावधान सन्नद्ध होना। इत उत फिरि=इधर-उधर फिरले [-भटकले]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 34 ॥ अथ मडिल्ला छन्द ॥

प्रवेशार्थ : उपदेश वृत्ति की प्रधानता वाले इस 'मडिल्ला' छन्द शीर्षक में कुल बीस छन्द हैं। लाटानुप्रास के सहारे इसके प्रत्येक पाद में यमक का नियोजन है। किन्तु, इस छन्द के यमकान्त में चार शब्द न होकर केवल दो शब्द ही प्रधान होते हैं। पर, अर्थ अलग-अलग रहता है। इस रचना का प्रतिपाद्य [-वस्तु] परिग्रह वृत्ति का निवारण एवं संसार की दृश्यात्मक क्षणभंगुरता को प्रस्तुत करना है। इस रचना में संसार-यात्री [-मनुष्य]को, विशद चेतना का जीवन जीने की प्रेरणा निहित है। मूल पाठ देखिए—

मडिल्ला :

बंधन भयौ प्रीति करि रामा। मुक्त होइ जौ सुमिरै रामा ॥
निश दिन याही करै बिचारा। सुन्दर छूटै जीव बिचारा ॥1॥
एक कर्म बंधन ह्वै मोटा। तैं बंधी कर्मनि की मोटा ॥
याही सीष सुनै किन काना। सुन्दर देह जगत सौं काना ॥2॥

चूर्णिका : मडिल्ला : यह मडिल्ला या मडिला छन्द, अडिला की भाँति ही 16 मात्राओं और अन्त दो में गुरु[ऽऽ] वाला छन्द है। किन्तु, दोनों में एक अन्तर भी है। 'अडिला' में यमक का सहारा जहाँ चार शब्दों में, जो कि चार चरणों में प्रयुक्त होते हैं, रहता है, वहीं मडिला में यह अन्तर केवल दो शब्दों में ही रहता है। इस अन्तर को और समझने केलिए अब तक अल्प ज्ञात **'रण पिङ्गल'** और **'मागधी पिङ्गल'** ग्रन्थ सहायक हो सकते हैं।

1. रामा=1. [अ] स्त्री, [आ] राम [-भगवान]। 2. विचारा=[अ] विचार, सोच, [आ] विचारा, दीन, निरुपाय।
2. मोटा=1. [अ] बड़ा भारी, भयंकर, [आ] मोट, गठरी, पोट, पोटली, बोझ। काना=2. [अ] कान, श्रवण, [आ] कन्नी काटना, अलग होना। बंधी=बाँध ली है। सीष=शिक्षा, उपदेश। देह जगत=शरीर और संसार से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूरष तृष्णा बहुत पसारी। हरद हींग ल भयौ पसारी ॥
औरनि कौं ठगि ठगि धन सांचा। सुन्दर हरि सौं होइ न सांचा ॥3॥
तृष्णा करि करि परजा भूले। तृष्णा करि करि राजा भूले ॥
तृष्णा लगि दशहूं दिश धाया। सुन्दर भूषा कबहु न धाया ॥4॥
माल मुलक हाथी अरु घोरा। बहुत गर्व करि घन ज्यौं घोरा ॥
काल आवतैं करी न बेरा। सुन्दर छिन मैं किया नवेरा ॥5॥
माया लै करि घर मैं गाडी। निश दिन भरि भरि ल्यायौ गाडी ॥
भगरि लूकसी सौं दिन काटै। सुन्दर सूम न कोडी काटै ॥6॥
औरहिं दई न आपु न षाई। माया धरी षोदि कर षाई ॥
मेल्ही रही सूम की थाती। सुन्दर दी आगै कौं थाती ॥7॥
मूंछ मरोरत टेढी पागा। रोमहिं रोम बिषै रस पागा ॥
काल अचानक आइ पछारा। सुन्दर भया छिनक मैं छारा ॥8॥

---

3. पसारी=1. [अ] प्रसारित की, फैलाई, [आ] पसारी=पंसारी। अर्थात् अल्प ज्ञानी होकर भी बहुज्ञता का अहंकार। सांचा=2. [अ] संचित किया, [आ] सच्चा, निष्ठावान्। हरद हींग लै भयौ पसारी [लोको०]=हल्दी-हींग लेकर पंसारी हो गया, अल्पज्ञान से ज्ञानी कहलाया जाने लगा। औरनि कौं=औरों को।
4. भूले=1. [अ] विस्मृत कर बैठे, [आ] भूल गए। परजा-राजा भूले=प्रजा और राजा भूले रहते हैं, तृष्णा में पड़े रहते हैं। राजा की तृष्णा राज्य-विस्तार और सिंहासन की आसक्ति में तथा प्रजा की तृष्णा धन-दौलत संग्रह करने में। धाया=[अ] दौड़ा, [आ] धाया<धापा=तृप्त हुआ।
5. घोरा=1. [अ] अश्व, घोड़ा, [आ] घुर्राया, गर्जन की। बेरा=2. [अ] वेर, वेला, विलम्ब। नवेरा=[आ] निवेड़ा, निवेरा, उद्धार किया, निस्तार किया।
6. गाडी=1. [अ] गाड़ी, ज़मीन के अन्दर दबा कर रखी, [आ] गाड़ी, छकड़ा, शकट [-शकटी]। काटै=2. [अ] काटता है, बिताता है, [आ] खरच करता है। भगरि लूकसी=रूखा-सूखा खाकर, तंगी के साथ। दिन काटै [मुहा०] कठिनाई में दिन व्यतीत करता है। सूम न कोडी काटै=लोभी [-कंजूस] कौड़ी भी खर्च नहीं करता।
7. षाई=1. [अ] खाई, भोगी, उपभोग किया, [आ] खड्डा, गड्ढा। माया=धन-दौलत। थाती=2. [अ] धरोहर, जमा पूंजी, [आ] धक्का दिया, खिसकाया। मेल्ही रही=रक्खी रह गई।
8. पागा=1. [अ] पाग, पगड़ी, [आ] पगा हुआ, मग्न। [प-] छारा=2. [अ] पछाड़ दिया, मारा, [आ] राख=छारा-छार, रेत। मरोरत=मरोड़ता है। विषै रस पागा=विषयासक्ति के रस में निमग्न। छिनक=क्षण भर में, अल्प समय में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाट पटंवर सोना रूपा। भूलौ कहा देषि यह रूपा ।।
छिन मैं बिलै जात नहिं बारा। सुन्दर टेरि कह्या कै बारा ।।9।।
जौ तूं देहि धणीं कौं लेषा। तौं तूं जो जाने सौ लेषा ।।
जौ तोपै नहिं आवै जाबा। तौ सुन्दर टूटेगी जाबा ।।10।।
जौ तैं हाथ लिया है आसा। तौ अब छाडि और की आसा ।।
निहचै पकरि एक ही भौना। तौ सुन्दर किस ही का भौना ।।11।।
बरषा सीस सीत मधि नीरा। उष्ण काल पावक अति नीरा ।।
ऐसी कठिन तपस्या साधी। सुन्दर राम बिना का साधी ।।12।।
अधो सीस ऊरध कौं पाया। राज पाट कछु चाहै पाया ।।
भीतरि भर्‍या कुबुधि सौं भांडा। सुन्दर राम बिनां ह्वै भांडा ।।13।।
सिर पर जटा हाथ नष राषा। पुनि सब अंग लगाई राषा ।।
कहैं दिगम्बर हम औधूता। सुन्दर राम बिना सब धूता ।।14।।

9. रूपा=1. [अ] चाँदी, [आ] रूप, नाम-रूप, वर्ण-सौन्दर्य। पाट पटंवर= रेशमी वस्त्र, कीमती वस्त्र। बारा=2. [अ] वार-विलम्ब, देरी, [आ] बारा= बार, कितनी बार।

10. लेषा=1. [अ] लेखा=हिसाब-किताब, [आ] ले+षा [-खा]=लेकर खा। धणीं [-धनी]=परमात्मा। जाबा=2. [अ] जवाब, उत्तर [आ] जवड़ा, जबड़ी, कनपटी।

11. आसा=1. [अ]>असा [फा०] छड़ी, लकड़ी, [आ] आशा। भौना=2. [अ] भवन, अवलम्ब, [आ] भौ=भय+ना=भय नहीं। निहचै=निश्चय पूर्वक।

12. नीरा=1. [अ] नीर, जल, [आ] निकट, नियरे। **टिप्पणी** : वर्षा का पानी सिर पर या शीत काल में जल-धारा के बीच एवं ग्रीष्म में अग्नि निकट रखकर तप किए। साधी=2. [अ] साधना की, [आ] सा+धी=वह धी [=बुद्धि]।

13. पाया=1. [अ] पाँव, [आ] प्राप्त किया। अधो सीस ऊरध कौं पाया=शीश नीचे—पैर ऊपर करके शीर्षासन जैसे कठिन योग-साधन किए। भांडा=2. [अ] बरतन, पात्र, शरीर, [आ] अंड-बंड [-भंड], तहस-नहस, चौपट। कुबुधि= कुबुद्धि, बुरे विचार।

14. राषा<राखा=1. [अ] रक्खे, बढ़ाए रखा, [आ] भस्मी, विभूति, राख। अंग= शरीरांग। नष=नाखून। धूता=2. [अ] औधूता<अवधूत, औगढ़ साधु, [आ] धूता=धूर्त्त। दिगम्बर=नग्न साधु, जैन मुनि या नागा साधु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी सो जु करै मन न्यारा। जैसैं कंचन काढै न्यारा ॥
कान फडाएं कोइ न सीधा। सुन्दर हरि मारग चलि सीधा ॥15॥
जो सब तें हुवा वैरागी। सो क्यौं होइ देह बैरागी ॥
निशि दिन रहै ब्रह्म सौं राता। सुन्दर सेत पीत नहिं राता ॥16॥
संन्यासी जो रहै उदासा। जानै सब का होइउ दासा ॥
तामस छाडि ज्ञान मैं रहना। सुन्दर या विन दूजी रह ना ॥17॥
जीव दया कहा कीनी जैनां। ज्ञान दृष्टि अभिअंतर जै नां ॥
जीव ब्रह्म कौ लह्यौ न षोजा। सुन्दर जती भये ज्यौं षोजा ॥18॥

---

15. न्यारा=1. [अ] अलग, विरक्त, [आ] न्यारिया, जो सोनो-चाँदी के कणों को, रेत से निकाल कर मशाले में शुद्ध करता है। कंचन काढै=कंचन [-कण] निकालता है। सीधा=2. [अ] सिद्ध योगी, [आ] ऋजु, जो वक्र या टेढ़ा न हो। कान फडाएँ=कान फड़वा कर, कनफटा होकर। हरि मारग=प्रभु-मार्ग, अध्यात्म मार्ग।

16. वैरागी=1. [अ] विरक्त, त्यागी, [आ] बै+रागी=विशेष अनुराग वाला। सबतैं=सबसे, सांसारिक सम्बन्धों से। राता=2. [अ] अनुरक्त, तन्मय, [आ] रक्त, लाल वर्ण का। सेत पीत नहिं राता=श्वेत, पीत और लाल रंग का नहीं, अपितु समता भाव वाला।

17. उदासा=1. [अ] उदासीन भाव वाला, संन्यासी, [आ] दासा=दास, परिचर। रहना=2. [अ] बना रहना, स्थित रहना, [आ] रह+ना=राह नहीं, मार्ग नहीं अर्थात् इस ज्ञान-बोध के बिना कोई अन्य मार्ग नहीं। तामस=तमोगुण।

18. जैनां=1. [अ] जैन मतावलम्बी, [आ] जै+ना=जो नहीं है। अथवा जय [-विजय] नहीं। **टिप्पणी :** 'ज्ञान दृष्टि अभिअंतर' अर्थात् यदि अन्तरात्मा को ब्रह्म-साक्षी होने का साधन न माना जाए और यदि इस मानने के कारण 'अज्ञान पर जय' प्राप्त न हो पाए तो, चाहे वह 'जीव दया' [-अहिंसा परमो धर्मः] के पक्ष को मानने वाले '**जैनी**' हों अथवा आत्म-ब्रह्म [-अयमात्मा ब्रह्मः] मानने वाला ब्रह्म-ज्ञानी हो, 'अन्तः ज्ञान दृष्टि' वाला ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। षोजा=2. [अ] खोज, पता, परिचय, [आ] षोजा<ख्वाजासरा [फा०]=नपुंसक। जती =जैन मुनि। **टिप्पणी :** अद्वैत ज्ञान की शोध न कर सकने या कर पाने के कारण तत्त्व ज्ञानियों को पुरुषार्थ हीन समझा जाता है। वे नपुंसकों की कोटि में आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित कहै पिंड की बाता। पृथ्वी आप तेज नभ बाता ।।
धर्म रू काम सुनावै अर्था। सुन्दर ढकहिं वेद कौ अर्था ।।19।।
कथा कहै बहु भांति पुराणी। नीकी लागै बात पुराणी ।।
दोष जाइ जब छूटै रागा। सुन्दर हरि रीझै सो रागा ।।20।।

।। समाप्तोऽयं मडिल्ला ग्रन्थः ।।34।।

---

19. बाता=1. [अ] बात, भेद [आ] वायु, पवन। **टिप्पणी :** पण्डित लोग, वेद की दुहाई देते हुए, कर्मकाण्ड अथवा पुरुषार्थ चतुष्टय की बात कहते हैं। अर्था= 2. [अ] अर्थ, वित्त सम्बन्धी, [आ] अर्थ, मर्म, रहस्य। ढकहिं वेद कौ अर्था= कर्मकाण्डी पंडित, कर्म काण्ड को प्रधानता देकर, अपनी कण्ठविद्या से वेद का मूल अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान को [ढकते-] छिपाते रहते हैं।

20. पुराणी=1. [अ] पुराण की अथवा पुराणपन्थी। [आ] प्राचीन। बात= कथन। रागा=2. [अ] राग [-आसक्ति], [आ] गान-गीत, **टिप्पणी :** उक्त एक-दो छन्दों में रचनाकार ने वेद-पुराण के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। किन्तु, इस महत्त्व-प्रतिपादन में सन्त कवि सुन्दर का यह विश्वास झलकता है कि वेद-पुराण अथवा शास्त्र-साहित्य में 'ब्रह्म-ज्ञान' निहित है। इस ब्रह्म ज्ञान को कर्मकाण्डी पण्डित उद्‌घाटित न करके, अपने कर्मकाण्ड के आडम्बर के द्वारा उसे ढकते [-वाक्‌जाल से आच्छादित करते-] रहते हैं। फलतः आत्म तत्त्व, प्राण अथवा प्राण-चेतना व्यवहार में ओझल बनी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥35॥ अथ बारहमासो ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 'बारहमासा' रचना के तेरह चान्द्रायण छन्दों में विरहिणी [-जीवात्मा] की व्याकुलता [-विरह दशा] को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। बारहमासा शैली में विरहिणी की 12 महीनों की मानसिकता अथवा भाव-दशा की मार्मिक व्यंजना निहित है। सन्त-बानियों में 'बारहमासा' पद्धति को पूरी क्षमता के साथ शब्द-बद्ध किया गया है। पर, इन रचनाओं में ऋतुओं के उतार-चढ़ाव और ऋतु-परिवर्तन का मन पर पड़ने वाला प्रभाव भी व्यंजित रहता है। गेयत्व की प्रधानता बारहमासा छन्दों का खास गुण माना जाता है। प्रस्तुत रचना में उत्तर भारत के ऋतु-परिवर्तन एवं विक्रम सम्वत्सर के माह क्रम को अपनाते हुए चैत्र मास के साथ प्रारम्भ है और अधिक मास [-लौंद, मल] का उल्लेख न करते हुए भी 13वें छन्द में फलागम की प्रार्थना की गई है। भाषा-काव्यों में इन 'बारहमासा' काव्य रूपों की एक लम्बी परम्परा मिलती है। प्रस्तुत बारहमासे में विरहिणी [-जीवात्मा] के साथ आध्यात्मिक अर्थ भी व्यंजित हो रहा है। मूल पाठ देखिए—

पवंगम : प्रथम सषी री चैत बर्ष लागौ नयौ ॥
मेरौ पिव परदेश बहुत दिन कौ गयौ ॥
बिरह जरावै मोहि बिथा का सौं कहौं ॥
[परि हां] सुन्दर ऋतु बसंत कंत बिन क्यौं रहौं ॥1॥

चूर्णिका : पवंगम : देखिए ग्रन्थ संख्या 32 की प्रारम्भिक टिप्पणी। यह चान्द्रायण [-चन्द्रायण] छन्द है, जिसमें 11, 10 की यति-विराम के साथ 21 मात्राएँ होती हैं।
1. चैत=चैत्र, मधुमास। नव वर्ष का प्रथम माह। मेरौ पिव=मेरा प्रियतम। अर्थात् [विरहिणी-] नायिका प्रोषित पतिका है। बिथा=व्यथा, पीड़ा, दर्द, बेचैनी। ऋतु बसंत=वसन्त ऋतु [पाठ में इसे 'ऋतू' पढ़ना अपेक्षित है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आयौ वैसाष भाष नहिं कंत की ॥
जुब्बन क्यौं बसि होइ छक्क मैमंत की ॥
तब ही मानै शंक सु विस्वाबीस री ॥
[परि हां] सुन्दर अंकुश पीव धरै जब सीस री ॥2॥
जेठ तपै दिन रैंनि सु मेरी छत्तियां ॥
पीव संदेस लिषाइ न भेजी पत्तियां ॥
चंदन चन्द वयारि लगै तन तीर री ॥
[परि हां] सुन्दर बिरहनि देषि धरै क्यौं धीर री ॥3॥
आयौ मास असाढ गाढ किन हूं किया ॥
राषे पिय बिरमाइ आबन नां दिया ॥
हूँ बरहूँ किस लागि अकेली सेज री ॥
[परि हां] सुन्दर बिरहनि रोइ मरै इस हेज री ॥4॥
सावन मास संदेस कहै को नेह के ॥
पंथी रहै सु वैठि डराने मेह के ॥
ना इततें कोउ जाइ न ह्वांतें आवई ॥
[परि हां] सुन्दर बिरहनि दुःखन रैंनि बिहावई ॥5॥

टिप्पणी : भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही, संयोगी और वियोगी दोनों ही मनोभावों पर बसन्त ऋतु के प्रभावों को रचनाकारों ने सम्यक् रूप से अंकित किया है। कंत=प्रिय, पति।

2. वैसाष=वैशाख माह। भाष=भाषा, वाणी, शब्द, सन्देशा। जुब्बन क्यौं वसि होइ=यौवन क्यों-कर वश में हो। अर्थात् यौवन की उमंग कैसे संयमित की जाए [व्यंजना]। छक्क=छकी, मदमाती। मैमंत=मदमस्त हाथी की तरह [-यौवन]। अंकुश पीव धरै=मदमस्त हाथी की तरह उन्मत्त मन को वश में करने केलिए, प्रियतम ही उमड़ते मन को अंकुश [-संयम] में ला सकता है।

3. जेठ तपै=अत्यन्त ताप वाला ज्येष्ठ माह। छत्तियां=वक्ष, उरोज-क्षेत्र। पत्तियां =पत्री, पत्र, चिट्ठी। चन्दन-चन्द-वयारि=विरहियों केलिए दाहकता प्रदान करने वाले रूढ़ उपादान—चन्दन, चन्द्रमा और पवन। तन तीर री=शरीर पर तीर के समान। धीर=संयम, धीरज।

4. मास असाढ=आषाढ माह, वर्षा का प्रथम माह। 'मेघदूत' काव्य-रचना का प्रथम माह। गाढ=गाढ़ापन, शत्रुता, ओछापन। बिरमाइ=विरमाकर, विराम-विश्राम देकर, लुभा कर। हूँ वरहूँ किस लागि=मैं किस को वर [-पति] मानूं। मैं अपने पतिव्रत का निर्वाह कैसे करूँ। अकेली सेज री=अरी सखि, मैं सेज पर अकेली रहती हूं। हेज=प्रेम-भाव। रोइ मरै=रो-रो कर प्राण दे रही है।

5. संदेस=सन्देशा, खबर। नेह के=प्रेम के। पंथी=यात्री। डराने मेह के=वर्षा से डरे हुए, मेह से भयभीत। ह्वांतें=वहां से। बिहावई=व्यतीत करती है, बिताती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भादौं गहर गंभीर अकेली कामिनी ॥
मेघ रह्यौ झर लाइ चमकत दामिनी ॥
बहुत भयानक रैनि पवन चहुं दिशि बहै ॥
[परि हां] सुन्दर बिन उस पीव बिरहिनि क्यौं रहै ॥6॥
आस रही आसोज आइहैं पीव री ॥
बार बार समुझाइ सु राष्यौ जीवरी ॥
निर्मल देषि अकाश शरद ऋतु की निसा ॥
[परि हां] सुन्दर पीव न पास अबहिं जीवन किसा ॥7॥
कातिक कंत समीप त्रिया ते हैं सुखी ॥
हूं तौ फिरौं उदास पीव बिन अति दुखी ॥
फूले कंवल अनंत चहुं दिशि चांदनी ॥
[परि हां] सुन्दर बिरहिनि देषि भई है मांदिनी ॥8॥
अगहन पिय की बात कहै को सुनि सषी ॥
हृदै और मुख और सु मैं मन मैं लषी ॥
आवन कौं कहि गये अजौं नहिं आइया ॥
[परि हां] सुन्दर कपटी कंत उंहीं बिरमाइया ॥9॥
पोस मास की राति पीव बिन क्यौं कटै ॥
तलफि तलफि जिय जाय करेजा अति फटै ॥
सूंनी सेज संताप सहै सो बावरी ॥
[परि हां] सुन्दर काढौं प्राण सु अबहिं उतावरी ॥10॥

---

6. भादौं = भाद्रपद माह। गहर गंभीर = वर्षा-मेघों के कारण गुरु गम्भीर। कामिनि = रमणी-प्रिया। झर लाइ = झड़ लगाए हुए। चमंकत दामिनी = बिजली चमकती है। भयानक रैनि = भयंकर रात्रि। बहै = प्रवाहित होती है। क्यौं रहै = कैसे रह सकती है, प्राण-रक्षा कैसे कर सकती है ?

7. आस रही = आशा [-कामना] शेष है। आसोज = आश्विन, क्वार का महीना। आइहैं = आएँगे। राष्यौ = रक्षा की है, रक्खा है। जीव = प्राण। अबहिं जीवन किसा = अब जीवन कैसा ? बिना प्रियतम के जीवन-रस कैसा ?

8. कातिक = कार्तिक माह। त्रिया ते हैं सुखी = वे स्त्रियाँ सुखी हैं जो। फिरौं = [फिरती-] मारी-फिरती हूँ। मांदिनी = मन्द, उदास, मन्दता भरी हुई।

9. अगहन = आग्रहायण, मार्गशीर्ष माह। हृदै और मुख और = ऊपर कुछ-भीतर कुछ। अजौं = अब भी, आज तक भी। उंहीं = उसी [-सौतिन की व्यंजना] ने, वहीं [-उसी के यहाँ]।

10. पोस मास = पौष माह। **टिप्पणी** : 'पूस की रात' अपने प्रबलतम शीत केलिए प्रसिद्ध है। क्यौं कटै = कैसे व्यतीत हो ? करेजा-फटै = कलेजा [-हृदय] फटता है, प्रिय की स्मृति में। सूनी सेज = शून्य सेज, सेज पर अकेली। संताप = सन्ताप,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माघ सु परै तुसार जतन अब को करै ।।
सौरि सुपेदी वोडि संग पिय कै परै ।।
हूं तौ भई अनाथ आसिरा को नहीं ।।
[परि हां] सुन्दर बिरहनि दुखित पुकारै मन मंहीं ।।11।।
फागुन घर घर फाग सु षेलहिं कंत सौं ।।
केसरि चन्दन अगर गुलाल बसंत सौं ।।
मेरैं नख सिख अग्नि बारि बिरहा दई ।।
[परि हां] सुन्दर मृतक समान देषि बिरहनि भई ।।12।।
बीते बारह मास बिरहनी तलफतैं ।।
मिहरि न आई तोहि निश दिन कलपतैं ।।
अबहिं दया करि आव जीव का दांन दै ।।
[परि हां] सुन्दर प्रानहिं राषि निकसि जिनि जांन दै ।।13।।

।। समाप्तोऽयं बारहमासो ग्रन्थः ।।35।।

पीड़ा, विरह दुःख । काढौं प्राण=प्राण निकाल लूं, प्राण त्याग दूं। उतावरी= [ऐसी-] उतावली, जल्दबाज़ी [-तालावेली] है, व्यग्रता है ।

11. माघ=माघ मास । तुसार=तुषार, पाला । जतन=यत्न, प्रयत्न । सौरि सुपेदी= श्वेत चादर, श्वेत खेस । वोडि=ओढ़कर । संग पिय कै परै=श्वेत चादर ओढ़ कर, प्रियतम के साथ शयन की कामना करती है । अनाथ=असहाय, निरुपाय, विवश । आसिरा=सहारा । मन मंहीं=मन में ही ।

12. फागुन=फाल्गुण मास । फाग=बसन्त-उत्सव । अगर=अगर-तगर, सुगन्धित पदार्थ । गुलाल=अबीर, लाल रंग, जो होली के अवसर पर लगाया (-मला) जाता है । अग्नि बारि दई=अग्नि जला दी, विरहाग्नि प्रदीप्त कर दी है । मृतक समान=मृतक तुल्य ।

13. बारह मास=बारह महीने । तलफतैं=तड़फते हुए । मिहरि=कृपा, दया । कलपतैं=कलपते हुए, कोसते हुए । जीव का दांन दै=जीवन (-प्राण) का दान देने का अनुग्रह कर। जांन देने की कृपा न करो। जिनि=मत, नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥36॥ अथ आयुर्बल भेद आत्मा विचार ॥

प्रवेशार्थ : कुल तेरह चौपई छन्दों में परिसमाप्त इस लघु रचना में जीवन-काल में किए कर्म-उद्देश्यों की सार्थकता को अंकित किया गया है। मनुष्य-जीवन-आयुष्य, अपनी अस्थिर और क्षण-भंगुर प्रकृति के कारण, कृतार्थ होने केलिए, कितनी सावधानी और तत्परता की अपेक्षा रखता है, यह सोच ही रचना का मुख्य प्रतिपाद्य है। इससे भी अधिक सम्प्रेषित मन्तव्य यह हो सकता है कि यह शरीर जड़ और चेतन का कैसा अद्भुत संगम [-संयोग] है। इस जड़ शरीर में अजर-अमर-स्वयं प्रकाश आत्मन् [चेतन-आत्मा] का होना कितना विलक्षण है। अतः अनित्य और नित्य, जड़ और चेतन का यह अद्भुत समागम है। अर्थात् इस रूपाकार में जहाँ क्षर एवं अक्षर का सम्मिलन हो, वहाँ शरीर के आयु-उद्देश्य को सम्यक् रूप से समझते हुए जीवन-चर्या के गति-स्वरूप को, विचार-विवेक पूर्वक समझ-समझाकर ही जीवन-यात्रा करना उचित रहता है। वैसे, इस लघु रचना का शीर्षक अपेक्षाकृत बड़ा है। मूल पाठ देखिए—

चौपई : गुरु बंदन करि करौं उचार। आयुर्बल कौ सुनहु बिचार॥
ब्रह्मा आदि कीट पर्यंत। आयुर्बल बीतैं ह्वै अन्त॥1॥
सतयुग लक्ष बर्ष की आव। त्रेता दश सहस्र ठहराव॥
द्वापर एक सहस्रहिं जांनीं। कलियुग मैं सौ बरष बषांनीं॥2॥

चूर्णिका : चौपई : 1. आयुर्बल=आयु की शक्ति, जीवनावधि, आयुष्य, आयु। आयुर्बल अर्थात् आयु की शक्ति क्षयशील होने के कारण नाशवान् है। गुरु बंदन= गुरु की वन्दना करके [यहाँ 'मंगलाचरण' रीति का निर्वाह]। उचार=उच्चारण। ब्रह्मा-कीट पर्यंत=ब्रह्मा से लेकर कीट-पतंगे तक [-सभी की आयु परिसीमित होती है]।

2. सतयुग-कलियुग : पुराण-प्रतिपादित सतयुगादि काल-विभाजन के अनुसार सुन्दरदासजी ने यहाँ अपना विचार प्रतिपादित किया है। तदनुसार 'सतयुग' में मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटत घटत नउवै रहिं जांहिं । असी बर्ष कै सत्तर मांहिं ॥
साठि पचास बर्ष चालीस । तीस बीस दश एक बरीस ॥3॥
एक बर्ष के बारह मास । ताहू मांहिं घटत हैं स्वास ॥
ग्यारह दश नव आठ कि सात । षट कै पांच च्यारि पुनि जात ॥4॥
तीन दोइ कै एकै होइ । आयुर्बल गति लषै न कोइ ॥
एक महीना के दिन तीस । घटत घटत दिन रहे जु बीस ॥5॥
बीसहु मैं पन्द्रह दश पांच । च्यारी तीन द्वै इक दिन सांच ॥
एक दिवस की घटिका साठि । कै पचास चालीस हु नाठि ॥6॥
तीस बीस दश पांच कि एक । एक घड़ी में गए अनेक ॥
एक घड़ी की साठि निमेष । घटत घटत एकै पल शेष ॥7॥
एक पलक षट स्वासा होइ । तासौं घटि बधि कहै न कोइ ॥
पंच च्यारि त्रिय द्वै इक स्वास । अर्ध पाव अध पाव विनास ॥8॥
यौं आयुर्बल घटतौ जाइ । काल निरंतर सब कौं षाइ ॥
ब्रह्मा आदि पतंग जहां लौं । उपजै बिनसै देह तहां लौं ॥9॥
यथा बांस लघु दीरघ होइ । तिनकी छाया घटि बधि होइ ॥
जब सूरज आवै मध्यान । दोऊ छाया एक समान ॥10॥

की आयु-सीमा एक लाख वर्ष बताई गई है। अनुलोम क्रम से यह आयु कम होती गई है। प्रतिलोम क्रम से यही बढ़ती हुई बताई जा सकती है। 'सतयुग' से आरम्भ करके 'कलियुग' तक दशमांश और कलियुग से सतयुग तक दस गुनी आयु वर्णित है। अर्थात् 1 लाख से लेकर 100 वर्ष तक और सौ से एक लाख वर्ष तक। अतः सतयुग में मनुष्य की आयु 1 लाख वर्ष, त्रेता में 10 हजार वर्ष, द्वापर में 1 हजार वर्ष और कलियुग में 100 वर्ष की निर्धारित है।

3. नउवै=नब्बे। [-सौ में दस कम]। बरीस=वर्ष।

4. ताहू मांहिं=उसमें भी। षट=छः।

5. आयुर्बल गति=आयु-सीमा-क्षीणता की दिशा। लषै=देखता है। जु=जो।

6. च्यारी=चार। सांच=सच्चा, सही। घटिका साठि=साठ घड़ी। नाठि=नष्ट होती हैं।

7. निमेष=पल-क्षण।

8. षट स्वासा=छः श्वास। अध पाव=अर्ध पाव, अर्ध क्षण। विनास=विनाश, क्षय।

9-10. काल=समय। निरंतर=लगातार, बिना किसी अवरोध के। पतंग=कीट, कीड़े-मकोड़े। उपजै बिनसै देह=शरीर जन्म लेता और विनष्ट होता-रहता है। तहां लौं=वहाँ तक। यथा बांस लघु दीरघ होइ [दृष्टान्त]=जैसे सूर्य की गति के साथ ही बाँस की छाया लम्बी और छोटी होती-जाती है। छाया घटि बधि=[छाया-]प्रतिबिम्ब घटता-बढ़ता रहता है। सूरज आवै मध्यान=सूर्य जब मध्याह्न में आता है। दोऊ छाया एक समान=तब बाँस और बाँस की छाया एकाकार हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौं लघु दीरघ घट कौ नाश। आतम चेतन स्वयं प्रकाश।।
अजर अमर अबिनाशी अंग। सदा अखंडित सदा अभंग।।11।।
घटै न बढै न आवै जाइ। आतम नभ ज्यौं रह्यौ समाइ।।
जो कोई यह समुझै भेद। संत कहैं यौं भाषै वेद।।12।।
ये चौपई त्रयोदश कही। आतम साक्षी जानों सही।।
सुन्दर सुनै बिचारै कोइ। सो जन मुक्ति सहज ही होइ।।13।।

।।समाप्तोऽयं आयुर्बल भेद आतमा बिचार ग्रन्थः।।36।।

---

11. लघु दीरघ घट कौ नाश=बाँस रूप घट [-शरीर] जिसके कारण से लघुता-दीर्घता प्राप्त होती है, का नाश होता-रहता है। पर, स्वयं चैतन्य आत्मा का प्रकाश यथावत् बना रहता है। अविनाशी अंग=अविनाशी आत्मा हृदयस्थ है।
12. आतम नभ ज्यौं रह्यौ समाइ [दृष्टान्त] आत्मन् आकाश की तरह से सर्वत्र व्याप्त [समाया हुआ] है। भेद=रहस्य, मर्म। भाषै वेद=वेद कहता है। अर्थात् शास्त्र का प्रमाण है।
13. आतम साक्षी=आत्मा साक्षी है। सुनै बिचारै=सुनकर विचार करे, चिन्तन करे। सो जन=वह विचारक, चिन्तक। मुक्ति सहज ही होइ=सहज ही में मुक्ति-लाभ प्राप्त कर लेता है।

टिप्पणी : चौपई 3-9 तक आयुर्मान अर्थात् आयु-सीमा के क्रमशः घटाव को दिखाकर, देहान्त से पूर्व के एक पल [-निमेष] तक के जीवन को अंकित किया गया है। आयु का यह घटाव-क्रम उसी क्षण से प्रारम्भ हो जाता है, जब से 'चेतन' पिण्डस्थ होता है। अतः जीवन के प्रत्येक क्षण को, सावधानी [-तत्परता] पूर्वक, स्मरण के साथ जीना ही आयुष्य की सफलता और सार्थकता है। आयु [-परिमिति] को, सूर्य और बाँस की छाया के दृष्टान्त से भलीप्रकार समझाया गया है। लेकिन, जिसप्रकार मध्याह्न सूर्य के समय बाँस की छाया उसी में समा जाती है, वैसे ही ज्ञान-प्रकाश के होने पर माया की छाया भी उसी बोध में समा जाती है। छन्द 11-13 में बाँस [-घट]-शरीर की अनित्यता और स्वयं प्रकाश आत्मन् की नित्यता वर्णित है। इस नित्यता के भावन [-अनुभावन] से 'मुक्ति' का सहज लाभ प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥37॥ अथ त्रिविध अन्तःकरण भेद ॥

प्रवेशार्थ : इस लघुतम रचना के 9 चौपई छन्दों में अन्तःकरण चतुष्ट्य में आने वाले मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों अंगों के तीन-तीन भेद करते हुए बारह उपभेद बताए गए हैं। बाह्य, अन्तः और परम अन्तः रूप इन तीन वर्गों में होने से इनके बारह उपभेद हुए हैं। 'अन्तःकरण चतुष्टय' के प्रतिपादन का विचार वेदान्त प्रतिपादित तत्त्व-विचार है। पर लगता है कि अन्तःकरण भेद की प्रस्तुत मीमांसा सुन्दरदास की अपनी उद्भावना है। जैसाकि उन्होंने स्वयं कहा है—'त्रिधा भेद सद्गुरु तें पाये'। वास्तव में यह विवेचन शास्त्र प्रतिपादित विषय न होकर, गुरु-परम्परा से गृहीत तत्त्व-चिन्तन है। इस चिन्तन में उभय वृत्तियों [बाह्य-अन्तः] से परे, 'परम' के अन्तर्गत निवृत्ति दशा या समाधि अवस्था [-ब्रह्मानन्द अनुभव] को रेखांकित किया गया है। प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत होने के कारण प्रतिपादन शैली और रचना का मन्तव्य सहज ही ग्राह्य हो जाता है। मूल पाठ देखिए—

चौपई :

प्रश्न—कौन बहिर मन कहिये स्वामी। अंतर्मन कहि अंतज्जर्मी ॥
कौन परम मन कहिये देवा। सुन्दर पूछत मन कौ भेवा ॥1॥
उत्तर—उहै बहिर्मन भ्रमत न थाकै। इंद्रिय द्वार बिषै सुख जाकै ॥
अंतर्मन यौं जानैं कोहं। सुन्दर ब्रह्म परम मन सोहं ॥2॥

1. **चूर्णिका :** बहिर मन=बाह्य, बहिर्मुखी, बाहर दौड़ने वाला मन। अंतर्मन=अन्तःमन। अंतज्जर्मी=अन्तर्यामी। परम=अन्तिम, सूक्ष्मतम [-सर्वोत्तम]।
2. उहै=वही, वह। भ्रमत न थाकै=बाहरी विषयों में, सांसारिकता में भटकते हुए नहीं थकता। इंद्रिय द्वार=इन्द्रियों के द्वार [-माध्यम]। विषै सुख जाकै=विषयों के रमण में ही जिसको सुख है। कोहं=मैं कौन हूँ, यह जानता है, वही अन्तर्मन है। सोहं=मैं वही हूँ। अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' यह जानकर अनुभव में ले आता है, वही ब्रह्ममय 'परम मन' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—बहिर्बुद्धि अब कहौ गुसांई। अंतर्बुद्धि कहौ किहिं ठांई॥
परम बुद्धि का कहौ बिचारा। सुन्दर पूछै शिष्य तुम्हारा॥3॥
उत्तर—बहिर्बुद्धि रज तम गुण रक्ता। अंतर्बुद्धि सत्व आसक्ता॥
परम बुद्धि त्रय गुण तें न्यारी। सुन्दरआतम बुद्धि बिचारी॥4॥
प्रश्न—बहिर्चित्त कैसैं पहिचानैं। अंतर्चित कवन बिधि जानैं॥
परम चित्त कैसैं करि कहिये। सुन्दर सद्गुरु बिन नहिं लहिये॥5॥
उत्तर—बहिर्चित चितवै अनेकं। अंतर चित्त चित्तवन एकं॥
परम चित्त चित्तवन नहिं कोई। चित्तवन करत ब्रह्ममय होई॥6॥
प्रश्न—बहि जो अहं सु कौन प्रकारा। अंतः अहं कौन निर्द्धारा॥
परम अहं कैसैं करि पइये। सुन्दर सद्गुरु मोहिं लषइये॥7॥
उत्तर—बहि जो अहं देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौं प्रानी॥
अंतः अहं कहै हरिदासं। परम अहं हरि स्वयं प्रकासं॥8॥
चतुष्ट अंतःकरण सुनाये। त्रिधा भेद सद्गुरु तें पाये॥
यह नीकें करि संमुझौ प्रानी। सुन्दर नौ चौपई बषानी॥9॥

॥समाप्तोऽयं त्रिविध अन्तःकरण भेद ग्रन्थः॥37॥

3. किहिं ठांई=किस स्थान पर। बिचारा=विचार, तत्त्व दर्शन।
4. बहिर्बुद्धि-रक्ता=बाह्य बुद्धि, रजोगुण-तमोगुणों से अनुरक्त बनी रहती है। अंतर्बुद्धि=सूक्ष्म अन्तर्बुद्धि, सतोगुण में आसक्त [-तन्मय] बनी रहती है। परम बुद्धि=जो तीनों गुणों से न्यारी [-अलग] हो।
5. बहिर्चित्त=बाह्यचित्त। अंतर्चित्त=अन्तःचित्त। कवन बिधि=किस प्रकार से, किस विधि से। जानैं=पहिचान करें। नहिं लहिये=नहीं प्राप्त कर सकते।
6. बहिर्चित्त-अनेकं=जो अनेकत्व का अनुभव करते हुए विभेद को देखता है, वह बहिर्चित्त है। अंतर चित्त=अन्तर्चित्त एक तत्त्व को ही देखता है। परम चित्त में विचार-तत्त्व [-चिन्तवन, विश्लेषण] शेष नहीं रहता।
7. बहि जो अहं=वह जो बाह्य अहं है। निर्द्धारा=निर्धारण। पइये=प्राप्त करिए। मोहि लषइये=मुझे दिखाइए, प्रत्यक्ष कराइए।
8. बहि अहं=बाह्य अहं देहाभिमान से युक्त रहता है। चारि वर्ण अंतिज लौं प्रानी=अन्त्यज [-अछूत] तक जो चार वर्णों का प्रतिपादन है, वे सभी बाह्य अहं अर्थात् देहाभिमान के कारण, हैं। अंतःअहं हरिदासं=आन्तरिक [-सूक्ष्म] अहं वाला मनुष्य, भगवान् का भक्त होता है। परम अहं=परम अहं परमात्ममय होने के कारण स्वयं प्रकाशमय होता है।
9. त्रिधा भेद=अन्तःकरण चतुष्टय के तीन स्तरों पर भेदोपभेद किए हैं। ये भेद सद्गुरु-ज्ञान-परम्परा से ग्रहण किए हैं। नीकें करि=भलीप्रकार से। चौपई=चौपाई छन्द। बषानी=वर्णित [कही-] है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 38 ॥ अथ पूरबी भाषा बरवै ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत रचना में ब्रह्म-ज्ञान सम्बन्धी सूक्ष्म तत्त्व-चिन्तन को भाषा-छन्द के कलेवर में निरूपित किया गया है। प्रतिपाद्य गूढ़ार्थक अथवा विपर्ययार्थक है। इसका पूरा खुलासा तो **'विपर्यय शब्द कौ अंग'** के अवगाहन के बाद ही सम्भव है। बरवै छन्द की अपनी सरस एवं प्रासादिक प्रवाहमयता में, सन्त-वाणी की पारिभाषिक एवं लाक्षणिक शब्दावली सहज ग्राह्य हो गई है। 19 बरवै छन्दों का फलागम 20वें बरवै में स्वयं रचनाकार ने ही रेखांकित कर दिया है। ये छन्द 'अध्यात्म' विषय प्रधान हैं। 'पूरबी भाषा' शीर्षक देने का प्रत्यक्ष अर्थ तो 'पूर्वी बोली' से है और सांकेतिक अर्थ 'पूर्व' अर्थात् उस [-आदि] लोक, परलोक की साधनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति कराना है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

बरवै : सद्गुरु चरण निनाऊं मस्तक मोर।
बरवै सरस सुनावऊं अद्भुत जोर ॥1॥
पण्डित होइ सु पावइ अरथ अनूप।
हेठ भरलय [प-] निहारिय ऊपर कूप ॥2॥

चूर्णिका : बरवै : मात्रिक छन्द, जिसके प्रथम और तृतीय चरण में 12-12 मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में 7-7 मात्राएँ होती हैं। अत: एक पंक्ति में 19 मात्राएँ होना इस छन्द की अनिवार्यता है। हिन्दी में बरवै छन्द की रचना बहुत समृद्ध रही है। तुलसी एवं रहीम के बरवै छन्द-मार्मिकता केलिए प्रसिद्ध हैं। बिम्ब-विधान एवं भाव-प्रयोग की दृष्टि से सुन्दरदास के बरवै छन्द भी किसीप्रकार से हेटे नहीं कहे जा सकते।

1. निनाऊं=नवाऊँ, नमन करूँ। मोर=मेरा। सुनावऊं=सुनाता हूँ। अद्भुत जोर=अद्भुत प्राणोत्साह से निर्मित।
2. पण्डित=विद्वान्, ज्ञानी। अरथ अनूप=अनुपम अर्थ। हेठ=नीचे। भरलय=भरता है। [प-] निहारिय=पनिहारिन, सुरति। ऊपर कूप=ऊर्ध्व कूप, अधोमुख कूप, ब्रह्मरन्ध्र

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुम्भ भरल संपूरन निर्मल नीर।
पंषि तिसाई गइले सागर तीर ॥3॥
गंगा जमुन दोउ बहइय तीक्षण धार।
सुमति नवरिया बैसल उतरब पार ॥4॥
औरउ अचिरज देषल बांझ क पूत।
पंगु चढल परबत पर बड अवधूत ॥5॥
जल महिं पावक प्रजल्यउ पुंज प्रकास।
कंवल प्रफुल्लित भइले अधिक सुवास ॥6॥
अंधकार मिटि गइले ऊगल भान।
हंस चुगै मुक्ताफल सरवर मान ॥7॥
बहुत जतन कै लावल अद्‌भुत बाग।
मूल उपर तर डरिया देषहु भाग ॥8॥

---

3. कुम्भ भरल=घट भर लिया या भर गया। पंषि=पक्षी। तिसाई=तृषित, प्यासे। पंषि तिषाई गइले सागर तीर [उलट०]=सागर [-भवसागर] के तट पर से, पक्षी [-जिज्ञासु साधक] प्यासे [-अतृप्त] ही जाते हैं।

4. गंगा जमुन=गंगा-यमुना, इड़ा-पिंगला योग नाड़ियाँ। बहइय=बहती हैं। सुमति=सुबुद्धि। नवरिया=नौका, नाव। बैसल=बैठकर, बैठने पर। उतरब पार=पार उतरता है, पार उतरेगा, उद्धार पाएगा।

5. औरउ अचिरज=और भी आश्चर्य। देषल बांझ क पूत [उलट०]=असम्भव प्रमाण से बन्ध्या-पुत्र। पंगु चढल परबत पर [उलट०]=विरोधाभासमूलक कथन से पंगु पर्वत पर चढ़ता है। **टिप्पणी :** 'वन्ध्या पुत्र' में निहित विरोधाभास के विरोध का निराकरण—सात्विक [-निर्बीज] बुद्धि में ज्ञानोदय रूप पुत्र-जन्म अर्थ करने से, होता है।

6. जल महिं पावक प्रजल्यउ [उलट०]=जल में आग प्रज्वलित हो गई है। विरोध का निराकरण सतोगुणमयी अन्तःकरण की समता [-शीतलता रूप जल] में ही 'ब्रह्म-ज्ञान रूप अग्नि' अर्थ से। अथवा साधक, ज्ञान-विरह की दशा में संसार रूप सागर को जलते हुए देखता है। कंवल प्रफुल्लित=कमल खिल उठे या उठते हैं। षट्कमल चक्र-वेधन के बाद सुरति प्रफुल्लित हो उठती है। सुवास=सुगन्धि।

7. अंधकार=अँधेरा, अज्ञानान्धकार। मिटि गइले=मिट गया। ऊगल भान=सूर्य उदित हुआ, ज्ञान रूप सूर्योदय। हंस=नीर-क्षीर विवेकी अर्थात् जिज्ञासु साधक। मुक्ताफल=मोती, मुक्ति रूप मोती अथवा ब्रह्म-विचार। सरवर मान=सरोवर का सम्मान अथवा सरोवर पर्यन्त।

8. लावल=लाया, लगाया है। अद्‌भुत बाग=विलक्षण उपवन। मूल उपर=जड़ [-मूल] ऊपर की ओर। अर्थात् मूल पुरुष परमात्मा ऊपर की ओर। डरिया-तर=शाखा [-संसार] नीचे की ओर। यह कथन गीता के श्लोक का ही भाव-रूपान्तर है। देखिए—

'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।' 15/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज फूल फर लागल बारह मास।
भंवर करत गुंजारनि बिबिधि बिलास ।।9।।
अंब डार पर बैसल कोकिल कीर।
मधुर मधुर धुनि बोलइ सुख कर सीर ।।10।।
अवर अनेक बिहंगम चातक मोर।
चकवा कोकिल केकिय प्रकट चकोर ।।11।।
सब के हू मन भावन सरस बसंत।
करत सदा कौतूहल कामिनि कंत ।।12।।
झूलत बैसि हिंडोरनि पिय कर संग।
उत्तम चीर बिराजल भूषन अंग ।।13।।
निशि दिन प्रेम हिंडुलवा दिहल मचाइ।
सेई नारि सभागिनि झूलइ जाइ ।।14।।
सज्जन मिलि कैं गावल मंगलचार।
प्रेम प्रकाश दशौं दिश भय उजियार ।।15।।

---

9. सहज फूल फर लागल=सहज ही अथवा 'सहज' के फूल-फल लगे हैं। भंवर=भ्रमर, अध्यात्म रस के लोभी, अन्तर्मुखी जिज्ञासु, सात्विक मन।

10. अंब डार=आम की डाली पर। बैसल=बैठते हैं। कोकिल कीर=कोकिला और शुक, भक्त, मुक्तात्माएँ।

11. बिहंगम=पक्षी। केकिय=मयूर।

12. मन भावन=लुभावनी। सरस=रसपूर्ण। कौतूहल=क्रीड़ा, किल्लोल। कामिनि-कंत=प्रिय और प्रिया, जीवात्मा-परमात्मा। **टिप्पणी** : बरवै 9-19 तक परमानन्द-मय दशा, परमावस्था अथवा मधुमती भूमिका जन्य सुखानुभूति का वर्णन है। समाधिगत सुख-विलास, योगी [-ध्यानी] पुरुषों का भाव-विलास माना गया है।

13. बैसि=बैठ कर। हिंडोरनि=झूलों पर बैठकर। कर=का। चीर=वस्त्र। भूषन अंग=अंगों में आभूषणों की शोभा।

14. प्रेम हिंडुलवा=प्रेम-हिंडोला। दिहल मचाइ=मचा दिया, चला दिया, क्रियाशील किया। **टिप्पणी** : ज्ञान रूप सुख-समाधि में, जीवात्मा [-स्त्री] अपने प्रिय [-ब्रह्म भाव] से मिलकर, लयावस्था में सरस बसन्त अथवा श्रावण-भादों में झूले पर झूलते हुए सुखानुभव का भावन करती है। बसन्त एवं हिंडोले का ऐसा वर्णन कबीर, दादू आदि अन्य सन्तों की 'बानी' में भी मिलता है। सेई नारि सभागिनी=वही स्त्री सौभाग्यवती है।

15. सज्जन=साधु-महात्मा, साधु-मति वाली जीवात्माएँ। गावल=गाते हैं। मंगल-चार=मंगलाचार, मांगल्य गीत। भय उजियार=उजाला हुआ है, मोहान्धकार समाप्ति पर ज्ञान-प्रकाश प्रस्फुटित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख निधान परमातम आतम अंस।
मुदित सरोवर महिया क्रीडत हंस ।।16।।

एक सेज वर कामिनि लागलि पाइ।
पिय कर अंगहि परसत गइलि बिलाइ ।।17।।

रस महिया रस होइहि नीरहि नीर।
आतम मिलि परमातम षीरहि षीर ।।18।।

सरिता मिलइ समुद्रहिं भेद न कोइ।
जीव मिलइ परब्रह्महि ब्रह्मइ होइ ।।19।।

इह अध्यातम जानहुं गुरु मुख दीस।
सुन्दर सरस सुनावल बरवै बीस ।।20।।

।।समाप्तोऽयं पूरबी भाषा बरवै ग्रन्थः।।38।।

।।'ज्ञान समुद्र' ग्रन्थ से लेकर 'पूरबी भाषा बरवै' तक
कुल अड़तीस ग्रन्थों की सर्व छन्द संख्या 1530 है।।

---

16. सुख निधान=सुख के भण्डार। आतम अंस=आत्मांश, जीवात्मा परमात्मा का अंश है। देखिए—'ईश्वर अंस जीव अविनानासी।'—तुलसी। मुदित=प्रसन्न। महिया=में। क्रीडत हंस=हंस [-मुक्त जीवात्माएँ] क्रीड़ा करते हैं।

17. एक सेज=एक सेज पर, एकावस्था में, लयावस्था में, समाधि-दशा में। वर कामिनि=प्रिय और प्रिया। लागलि पाइ=पैर [-छूती] लगती है, पति-मर्यादा भाव से सेवा करती है। परसत=स्पर्श करते ही। गइलि बिलाइ=प्रिय-भाव के अंग-स्पर्श करते हुए ही वह लय हो जाती है, विलय हो जाती है।

18. रस महिया रस होइहि=रस [-आनन्द] में ही रस की प्रवृद्धि होती है। आतम मिलि परमातम षीरहि षीर [दृष्टान्त]=जिसप्रकार दूध में दूध मिलने पर एकात्मता ही वृद्धि को प्राप्त होती है। अर्थात् आत्मा-परमात्मा की एकत्व दशा में एक रसमयता ही सिद्ध होती है।

19. सरिता मिलइ समुद्रहिं [दृष्टान्त]=जीवात्मा परमात्मा का मिलन, सरिता का सागर-मिलन के समान अभेद रूप है। जीव मिलइ परब्रह्महि=जीव परब्रह्म से [-में] मिलने पर, ब्रह्ममय होने से, ब्रह्म ही हो जाता है।

20. इह अध्यातम=यह अर्थात् इस रचना में अभिव्यक्त अध्यात्म-ज्ञान। गुरु मुख दीस=गुरु मुख से, गुरु-उपदेश [-दीक्षा] से प्राप्त हुआ ज्ञान है। वीस बरवै-सरस सुनावल=सरस बीस बरवै छन्द सुनाता हूँ अथवा सुनाए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ३१ ॥ अथ साखी ग्रन्थ ॥

साखी काव्यरूप : 'साषी' या साखी पद संस्कृत 'साक्षी' शब्द का भाषा रूप है, जिसका अर्थ है वह गवाह [-चश्मदीद], जिसने घटना विशेष अथवा अवस्था विशेष अपनी आँखों से देखी हो। अथवा [साख-] विश्वास करने वाला, चेतना में साथ चलने [-देखने] वाला दर्शक [-द्रष्टा] विशेष। साखी काव्यरूप के सम्बन्ध में स्वयं कबीर ने कहा है कि साखियों के द्वारा रचनाकार का मन्तव्य रचना-कौशल प्रस्तुत करना नहीं रहता। इनके द्वारा तो जीवन और जगत् की आध्यात्मिक [-मानसिक] समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ही लक्ष्य रहता है। देखिए—

'हरिजी यहै बिचारिया, साषी कहौ कबीर।
भौसागर मैं जीव है, जे कोइ पकड़ै तीर॥'—क० ग्रं० 34/1

इन 'साखी' छन्दों का प्रतिपाद्य, जीवन के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों को, लोक-मानस केलिए प्रस्तुत करना रहा है। इन पर विचार करते हुए मनुष्य, जीवन और जगत् की समस्याओं को सुलझा सकें, इसी बात को कबीर ने प्रस्तुत साखी में रेखांकित किया है—

'साखी आंखी ग्यान की, समुझि देखु मन मांहि।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नांहि॥'

'साखी' काव्यरूप की प्रेरणा का मूल स्रोत उपनिषद्-विद्या में देखा जा सकता है, जहाँ परमात्मा को समस्त भूतों का साक्षी कहा गया है [दे०—श्वेता० उप०, 6/11]। वह परम चैतन्य प्रभु साक्षी रूपेण जगत् में विद्यमान है। उसकी साक्षी देकर ही सन्तों ने अपनी साखी-विद्या का पल्लवन किया है।

पुरानी हिन्दी या अपभ्रंश में छन्द रूप में, 'साखी' का मूल रूप 'दूहा' छन्द था, जिसे वहाँ 'दूहा विद्या' कहा गया है। दो पंक्तियों वाला यह दोहा छन्द संस्कृत के 'आर्या' और प्राकृत के 'गाथा' छन्दों का ही, प्रयोक्ता भेद से दूसरा नाम-रूप है। वास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह छन्द लोक-मानस से सम्पृक्त रहा है। इसलिए सिद्धाचार्यों ने भी इस छन्द को अपनाया। सिद्ध कान्हपा ने 'साखि' शब्द का प्रयोग किया है[-'साखि करब जालन्धर पाए']। वाणी-साहित्य में आगे चलकर गुरु-वचनों को 'साखी' कहा जाने लगा। सन्त रोहल ने तो 'गुरु' को ही 'साखी' कहा है—

'सुनो चित्त, साखी कहै, ब्रह्म सूं इक गुन लेहु।'

इस परम्परा में ही आगे नीति-उपदेश-चेतावनी प्रधान साखी छन्द, दोहे के समानार्थी रूप में, अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बना रहा है। 'साखी' का यथापूर्व रूप गोरख के **'सबदी'** छन्द को माना जा सकता है। उनकी एक रचना 'जोगेश्वरी साखी' भी मिलती है। नामदेव के नाम से **'नामदेवजी की साखी'** का भी उल्लेख है। आगे चलकर कबीर ने तो 'साखी' को, अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के साथ-साथ, विचार-पक्ष की अभिव्यक्ति केलिए साखी-विधा को पूरी तरह से सक्षम बनाया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है—'असल में साक्षी[-साखी] का मतलब ही यह है कि पूर्वतर साधकों की बात पर कबीर साहब अपनी साक्षी या गवाही दे रहे हैं। अर्थात् इस सत्य का अनुभव वे भी कर चुके हैं।' [दे०—हि० सा० भूमि०, पृ० 42]। अतः कहा जा सकता है कि साखियों में सामाजिक ज्ञान-व्यवहार सम्बन्धी अनुभव, बिचार-चेतावनी-सजगता की प्रखर-भंगिमा विद्यमान मिलती है। सन्त-मत के प्रबल समर्थक सुन्दरदास उसी बिचाराभिव्यक्ति की परम्परा को अपनी साखियों में, पूरी सामर्थ्य के साथ, पुरस्सर करते दिखाई देते हैं।

सुन्दर-साखी : यदि यह कहा जाए कि सुन्दर कृत **'साषी [-साखी]ग्रन्थ'** 'सवैया ग्रन्थ' का सार है तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि, विषय-प्रतिपादन एवं संक्षेप में वही बात, जो सवैया या मनहर छन्द में कही गई है, उसी को अभिव्यक्ति-लाघव के साथ साखी में प्रस्तुत कर पाने की सामर्थ्य सुन्दर-साखियों में देखने को मिलती है। इससे यह अनुमान लगाना उचित न होगा कि 'साखी भाग' प्रायः 'सवैया ग्रन्थ' की रचना के बाद लिखा गया है। इस निष्कर्ष का आधार यह है कि विचार-प्रतिपादन की जो कसावट साखियों में देखने को मिलती है, वह सवैया ग्रन्थ के छन्दों में नहीं है। यह बात प्रयोक्ता के समय-सन्दर्भ पर अधिक निर्भर करती है। इस बात को यों भी कह सकते हैं कि सुन्दरदास एक ही विचार-चिन्तन या बात को व्यास शैली में कहना चाहते हैं तो, सवैया-कवित्त छन्द की रचना करते हैं और वही बात समास या संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहते हैं तो 'साखी' कहते हैं। अर्थात् गुरु-गम्भीर चिन्तन को संक्षेप में कहने की कला साखियों में पूर्णतः निहित है।

साखी-भाग के अंगों [-अध्यायों] पर विचार करने से पूर्व, **'सवैया भाग'** के अंगों का विवेचन और उनकी संक्षिप्त तुलना यहाँ अपेक्षित है। सवैया ग्रन्थ के 34 अंगों में 563 छन्द हैं और **'साखी ग्रन्थ'** के कुल 31 अंगों में 1351 साखियाँ हैं। अधिकांश साखियाँ सवैया ग्रन्थ के छन्दों की सार रूप में ही हैं। पर, बहुत-सी साखियाँ स्वतन्त्र रूप में अपने विचार-पक्ष को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। हाँ, कुछ अंग जैसे—सवैया ग्रंथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 'नारी निंदा' [-अंग 1], 'विपरीत ज्ञानी'[-अंग 13], निर्गुन उपासना' [-अंग 15], 'शब्द सार' [-अंग 18], 'भक्ति ज्ञान मिश्रित' [-अंग 21], 'ब्रह्म निःकलंक' [-अंग 27], 'निःसंशय' [-अंग 30], 'प्रेम परा ज्ञान ज्ञानी' [-अंग 31] और 'जगत मिथ्या' [-अंग 33] ये 9 अंग, इन्हीं शीर्षकों से, 'साखी भाग' में नहीं है। तो 'सुमिरण'[-अंग 2], 'बंदगी' [-अंग 4], 'नारी पुरुष श्लेष' [-अंग 8], 'अवस्था' [-अंग 25], 'अक्षर विचार' [-अंग 27] और 'अन्योऽन्य भेद' [-अंग 31] ये 6 अंग, इन्हीं नामों से 'सवैया ग्रन्थ' में नहीं है। पर, शेष 25 अंग, प्रायः दोनों ग्रन्थों में समान रूप से हैं। साखी-भाग में, यद्यपि, सवैया-भाग से 3 अंग कम हैं। पर, प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह समानता शेष 25 अंगों भी कम नहीं है।

अतः यह कहना कि 'साखी ग्रन्थ' 'सवैया भाग' का सार है, उचित नहीं। कारण साखी-भाग में, 'दादू-वाणी' से और 'सवैया ग्रन्थ' के प्रतिपाद्य के अतिरिक्त सुन्दरदास ने अपने अन्य ग्रन्थों एवं निजी अनुभव को भी समाहित किया है। पूर्व-अपर रूप में ये विचार कहीं टकराते नहीं है। यही नहीं, कबीर, रज्जब आदि की रचनाओं अथवा उनके समय में प्रचलित अन्य लम्बे-लम्बे छन्दों के विचार-सार को भी सुन्दरदास ने साखियों में अनस्यूत करके प्रस्तुत किया है। कवि ने अध्यात्म चिन्तन एवं समाज-आचरण [-चिन्तन] को बड़े कौशल से समन्वित करके प्रस्तुत किया है। अतः बताना कठिन है कि रचनाकार ने किस बिन्दु पर अध्यात्म-चिन्तन से समाज-चिन्तन को अलग किया है और किस पर आबद्ध किया है। अथवा यों कहें कि समाज-चिन्तन, किस सूक्ष्म रेखा के द्वारा अध्यात्म-चिन्तन से पृथक् किया जा सकता है, यह बताना कठिन है। उदाहरण केलिए 'सवैया' ग्रंथ के 'गुरुदेव कौ अंग' के छन्द 4 को, एक साखी [-अंग 1, सा० 1] में, और 'वचन विवेक' [-अंग 14] के कवित्त-2 के भाव-विस्तार को, साखी [-अंग 17]-भाग के 'वचन विवेक' [साखी संख्या 17-20 तक] की चार साखियों में निबद्ध किया है। इसीप्रकार 'अवस्था कौ अंग' [-25] की साखी संख्या 45-51 तक का सार उसी अंग के 52वें छप्पय छन्द में दे दिया गया है। यद्यपि, साखी-भाग में ऐसा करना बेमेल-सा और पुनरुक्ति जैसा लगता है। पर, अध्यात्म और समाज-चिन्तन केलिए अनेक साखियाँ दैनिक-व्यवहार और आचरण के आदर्श रूप में स्मरणीय वचन कही जा सकती हैं। यहाँ अगले पृष्ठों में सुन्दर कृत 'साखी ग्रन्थ' का मूल पाठ दृष्टव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥1॥ अथ गुरुदेव कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 102 साखियों वाला अंग, इसी शीर्षक वाले 27 सवैया-छन्दों का सार मात्र नहीं है। अपितु, साखी-विधा की सामासिक कसावट के साथ ही विचार-पक्ष कुछ अधिक सघन है। इनमें सद्गुरु दादूदयाल की महिमा गान के अतिरिक्त परम गुरु के लक्षण, शिष्य का गुरु से और गुरु का शिष्य से सम्बन्ध तो निरूपित हुआ ही है। साथ ही भारतवर्ष में गुरु-शिष्यों के माध्यम से जो सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ है, इन साखियों में उसकी भी व्यंजना मुखर दिखाई देती है। आधुनिक सन्दर्भ की प्रासंगिकता में इस वाचिक-परम्परा वाली गुरु-शिष्य प्रणाली से लोक-बोध के सम्बन्ध में बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इन साखियों का वर्ण्य-विषय तो सवैया छन्दों के प्रतिपाद्य से मेल खाता है, पर मन्तव्य को लाघव में प्रस्तुत करने की कला इन साखियों की अपनी विशेषता है। मूल पाठ देखिए—

साषी : दादू सद्गुरु बन्दिये सो मेरै सिर मौर।
सुन्दर वहिया जाय था पकरि लगाया ठौर ॥1॥
दादू सद्गुरु बन्दिये मन क्रम बिसबा बीस।
सुन्दर तिनकै चरण द्वै सदा रहौ मम सीस ॥2॥
दादू सद्गुरु बन्दिये सब सुख आनन्द मूल।
सुन्दर पद रज परस तें निकसि गई सब सूल ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. बन्दिये=वन्दना कीजिए। सिरमौर=शिरोमणि, सर्वोपरि। वहिया जाय था=बहा जाता था, लोक-प्रवाह या भेड़-चाल में जीवन व्यतीत कररहा था। ठौर=स्थान। मन क्रम=मन [-वाणी] और कर्म से। बिसबा बीस=बीसों बिस्वा अर्थात् पूर्ण निश्चय से। तिनकै=तिनके, उनके। चरण द्वै=दोनों चरण। आनन्द मूल=आनन्द का स्रोत। परस तें=स्पर्श से। सूल=शूल, पीड़ा, चुभन, क्लेशजन्य सन्ताप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दादू सद्गुरु बन्दिये सकल सुखनि की रासि।
सुन्दर पद रज परस तें दुःख गये सब नासि ॥4॥
दादू सद्गुरु बन्दिये सकल सिरोमन राइ।
बार बार करि जोरि कै सुन्दर बलि बलि जाइ ॥5॥
सुन्दर सद्गुरु बन्दिये नमस्कार प्रणपत्ति।
बिघ्न बिलै ह्वै जात हैं मन बच क्रम करि सत्य ॥6॥
सुन्दर सद्गुरु बन्दिये सोई बन्दन जोग।
औषध शब्द पिवाइ करि दूरि किया सब रोग ॥7॥
सुन्दर सद्गुरु बन्दिये ग्रहिये दृढ करि पांव।
मस्तक हस्त लगाइ जिनि किये रंक तें राव ॥8॥
सुन्दर सद्गुरु बन्दिये जिनके गुन नहिं छेह।
श्रवनहुं शब्द सुनाइ करि दूरि किया सन्देह ॥9॥
सुन्दर सद्गुरु बन्दिये निर्मल ज्ञान स्वरूप।
नैंननि मैं अंजन किया देष्या तत्व अनूप ॥10॥
सुन्दर सद्गुरु आपु तें किया अनुग्रह आइ।
मोह निशा मैं सोवते हमकों लिया जगाइ ॥11॥
सुन्दर सद्गुरु आपुतें गहे सीस के बाल।
बूडत जगत समुद्र मैं काढि लियौ ततकाल ॥12॥
सुन्दर सद्गुरु आपुतें मुक्त किये गृह कूप।
कर्म कालिमा दूरि करि कीये शुद्ध स्वरूप ॥13॥

4-6. रासि<राशि=भण्डार, समूह। नासि=नाश, नष्ट। सिरोमन राइ=शिरोमणि राय, सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी। बलि बलि जाइ=बलिहारी जाता है, न्यौछावर होता है। प्रणपत्ति=प्रणिपात, दण्डवत्, प्रणाम। बिघ्न बिलै ह्वै जात हैं=विघ्न-बाधाएँ-अवरोध विलुप्त हो जाते हैं। **विशेष**—'प्रणपत्ति' की तुलना में 'सत्य' के स्थान पर 'सत्त' का प्रयोग, अनुप्रासान्त की दृष्टि से अधिक ग्राह्य होता।

7-11. बन्दन जोग=बन्दन योग्य, वन्दनीय। औषध शब्द पिवाइ करि=शब्द-रूप औषधि को पिला कर। रोग=बीमारी, व्याधि, क्लेश-सन्ताप, आधि-व्याधि। ग्रहिये=ग्रहण कीजिए, पकड़िए। मस्तक हस्त लगाइ=मस्तक पर हाथ लगा देने से, हाथ शीश पर रख देने से। गुन नहिं छेह<छेव [हि०]=गुणादि का छल-छिद्र नहीं है। सन्देह=द्विविधा, भ्रान्ति। अंजन किया=अंजन लगाया, ज्ञान रूप अंजन लगाया अर्थात् ज्ञान-दृष्टि प्रदान की। अनुग्रह=कृपा, अनुकम्पा। मोह निशा=मोह [-अज्ञान] रूप रात्रि। जगाइ=जगा लिया, जाग्रत किया, सावधान चित्त-वृत्ति वाला बनाया।

12-15. गहे सीस के बाल=[रक्षार्थं-] सिर के बाल पकड़ लिए, डूबते को सहारा दिया। बूडत जगत समुद्र मैं=भव-सागर में डूबते हुए, विषय-भोगों की तुच्छ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सद्गुरु अपुतें बन्धन काटे सर्ब।
मुक्त भये संसार मैं विचरत हैं निहगर्ब ॥14॥
सुन्दर सद्गुरु आपुतें अलष षजीना षोल।
दुख दरिद्र जाते रहे दीया रत्न अमोल ॥15॥
सद्गुरुआया मिहरि करि सुन्दर पाया पूरि।
शब्द सुनाया आपना भरम उडाया दूरि ॥16॥
सुन्दर सद्गुरु मिहरि करि निकट बताया राम।
जहां तहां भटकत फिरै काहे कौं बेकाम ॥17॥
शंक न आनै जगत की सद्गुरु शब्द बिचारि।
सुन्दर हरि रस सो पिवै मेल्है सीस उतारि ॥18॥
सद्गुरु शब्द सुनाइ करि दीया ज्ञान विचार।
सुन्दर सूर प्रकासिया मेट्या सब अन्धियार ॥19॥
सद्गुरु कही मरंम की हिरदै बैसी आइ।
रीति सकल संसार की सुन्दर दई बहाइ ॥20॥
सुन्दर सद्गुरु सो मिल्या जो दुर्ल्लभ जग मांहि।
प्रभु कृपा तें पाइये नहिंतर पइये नांहि ॥21॥

आर्कषित लहरों में ऊब-डूब करते हुए को। काढि लियौ=निकाल लिया। गृह कूप=घर रूप कुएं से अर्थात् 'घर' की कूप-मण्डूकता या सीमा-बद्धता से मुक्त कर दिया। कर्म कालिमा=कर्मों की कालिमा, कलमषता, कर्मासक्ति जन्य कालुष्य। सर्ब=सभी। निहगर्ब=अहंकार रहित होकर। अलष षजीना षोल=अलक्ष्य [-अपरोक्ष सत्ता का] खजाना खोल दिया। जाते रहे=समाप्त हो गए। अमोल=अमूल्य, बहुमूल्य रत्न अर्थात् ज्ञान रूप रत्न के प्राप्त होते ही अज्ञान जन्य दुख-दर्द समाप्त हो गए।

16-19. मिहरि<मेहर[फा०]करि=कृपा करके, दया-भावना पूर्वक। पूरि पाया=पूर्ण या पूरा प्राप्त कर लिया। भरम=भ्रम, भ्रान्ति। निकट बताया राम=राम-परमात्मा को निकटस्थ[-अनुभव में] बताया। जहां तहां=इधर-उधर, अन्यान्य मतमतान्तरों में। भटकत फिरै [मुहा०]=मारा-फिरता है, भटकता-फिरता है। बेकाम=व्यर्थ ही, निष्फल रूप में। शंक न आनै=शंका नहीं लाता, भय नहीं लाता, भय नहीं मानता। हरि रस=परमास्वाद, आनन्द भाव, भक्ति रस। मेल्है=रखता है। सीस उतारि=शीश उतारकर अर्थात् आपा-अभिमान दूर करके। दीया ज्ञान विचार=ज्ञान-विचार-विवेक प्रदान किया। सूर प्रकासिया=सूर प्रकाशित हुआ अर्थात् ज्ञानोदय हुआ। अन्धियार=अंधिकार, मोहान्धकार।

20-26. कही मरंम की=मर्म-रहस्य-भेद की बात कही, कल्याणप्रद उपदेश दिया। हिरदै बैसी=हृदय में प्रवेश कर गई अर्थात् बोध में समा गई। रीति=लोक-रूढ़ि, लोकाचार,[दिखावा]। दई बहाइ=बहादी, दूर कर दी। दुर्ल्लभ जग मांहि=जगत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सद्गुरु तौ मिलै जो हरि देहिं सुहाग।
मनसा बाचा कर्मना प्रगटै पूरन भाग ॥22॥
सुन्दर सद्गुरु सारिषा उपकारी नहिं कोइ।
देषै तीनौं लोक मैं सरिभरि कछू न होइ ॥23॥
सुन्दर सद्गुरु पलक में मुक्त करत नहिं बार।
जीव बुद्धि जाती रहै प्रगटै ब्रह्म बिचार ॥24॥
सुन्दर सद्गुरु पलक मैं दूरि करै अज्ञांन।
मन बच क्रम यज्ञास ह्वै शब्द सुनैं जो कांन ॥25॥
सुन्दर सद्गुरु के मिलै भाजि गई सब भूष।
अमृत पान कराइ कैं भरी अधूरी कूष ॥26॥
सुन्दर सद्गुरु जब मिल्या पडदा दिया उठाइ।
ब्रह्म घौंट मांहें सकल जग चित्राम दिषाइ ॥27॥
सुन्दर सद्गुरु सारिषा कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान षजीना षोलिया सदा अटूट भंडार ॥28॥
बेद नृपति की बंदि मैं आइ परै सब लोइ।
निहगबांन पंडित भये क्यों करि निकसै कोइ ॥29॥

में जो दुर्लभ है, अनुपलब्ध है। नहितर=नहीं तो। सुहाग=सौभाग्य, भाग्यानुकूलता। पूरन भाग=पूर्ण भाग्य, सौभाग्य। सारिषा=समतुल्य, समान। सरिभरि=तुलना, समानता। पलक मैं=क्षण भर में। नहिं बार=विलम्ब नहीं, देर नहीं। जीव बुद्धि=कर्मासक्ति वाली मलिन बुद्धि। ब्रह्म विचार=ब्रह्म ज्ञान, तत्त्व ज्ञान। यज्ञास ह्वै=जिज्ञासु-मुमुक्षु होकर। भूष<भूख=तृष्णा-कामना। कूष<कोख<कुक्षि [सं०]=पेट अर्थात् उदर भरने की लालसा।

27-30. पडदा=आवरण, अज्ञान या भ्रमावरण। ब्रह्म घौंट मांहें=ब्रह्म [-भाव] को रस की तरह अभ्यन्तर दशा में आचमन कर लिया। अथवा ब्रह्म [-तत्त्व] को घोंट कर [-सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार के रूप में] पी लिया है अर्थात् अनुभव में ले लिया है। **विशेष**—'घौंट' शब्द का प्रयोग सुन्दरदास ने इसी अर्थ में अन्यत्र भी किया है [-'घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतर']। चित्राम=चित्र-विचित्र, इन्द्रजाल। सारिषा<सरिस=समान, समतुल्य। उदार=दयालु, विशाल, कृपालु। ज्ञान षजीना=ज्ञान रूप खजाना [-भण्डार]। बेद नृपति की बंदि=वेद-शास्त्र रूप राजा के बन्धन में, सभी लोग आकर पड़ जाते हैं। लोइ=लोग। निगहबांन=दृष्टि सम्पन्न, विचार-दृष्टि वाले। **टिप्पणी :** जैसे राजा अपराधी को कैद में डाल देता है। वैसे ही, गतानुगतिकता का आश्रय लेकर, वेद-शास्त्रानुकूल विधान [-रूप शासक] के द्वारा जकड़े गए लोग सदा पराश्रित बने रहते हैं। दृष्टि सम्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्गुरु भ्राता नृपति कै बैडी काटै आइ।
निहगबांन देखत रहैं सुन्दर देहिं छुडाइ ॥30॥
सुन्दर सद्गुरु शब्द का ब्यौरि बताया भेद।
सुरझाया भ्रम जाल तें उरझाया था बेद ॥31॥
बेद मांहि सब भेद हैं जाने बिरला कोइ।
सुन्दर सो सद्गुरु बिना निरवारा नहिं होइ ॥32॥
सुन्दर सद्गुरु यों कह्या शब्द सकल का मूल।
सुरझै एक बिचार तें उरझै शब्द स्थूल ॥33॥
सुन्दर ताला शब्द का सद्गृरु षोल्या आइ।
भिन्न भिन्न संमुझाय करि दीया अर्थ बताइ ॥34॥
गोरषधंधा बेद है वचन कडी बहु भांति।
सुन्दर उरझ्यौ जगत सब बर्णाश्रम की पांति ॥35॥
क्रिया कर्म बहुबिधि कहे बेद बचन बिस्तार।
सुन्दर समुझै कौन बिधि उरझि रह्यौ संसार ॥36॥
कर्मकांड के बचन सुनि आंटी परी अनेक।
सुन्दर सुनै उपासना तब कछु होइ बिबेक ॥37॥

आचार्य [-पण्डितों] के बताए मार्ग से भी बन्धन-मुक्ति नहीं हो पाती। किन्तु सद्गुरु, राजा के भाई होने के नाते, [बन्धन-] बेड़ी काट देते हैं और दूर-दृष्टि वाले पण्डित लोग देखते रह जाते हैं।

31-34. ब्यौरि=ब्यौरेवार, भलीप्रकार। भेद=मर्म, रहस्य। सुरझाया=सुलझाया, प्रपंच की ग्रन्थि खोल दी। उरझाया था बेद=वेद अर्थात् शास्त्र-विधान की रूढ़ [-जड़, विचारहीन] गतानुगतिकता ने मनुष्य को, मनुष्य की चेतना को, उलझाया है। निरवारा=निवारण किया, उद्धार किया। सकल=सम्पूर्ण, दृश्य जगत्। सुरझै एक बिचार तें=विचार तत्त्व से ही सुलझता है। उरझै शब्द स्थूल=[बाह्य-] लोकाचारमयी शब्दावली से [-मनुष्य की चेतना] उलझती [-जटिल होती] जाती है। ताला षोल्या शब्द का=शब्द का ताला अर्थात् शब्द का रहस्य [-मर्म] उद्‌घाटित किया। भिन्न भिन्न संमुझाय करि=नानात्व [-अनेकत्व] रूप प्रपंच [-नाम-रूपात्मक जगत्] को भलप्रकार समझाया। अर्थ=शब्द का मर्म, वाणी का मन्तव्य।

35-38. गोरषधंधा < गोरखधन्धा=उलझन, न समझ में आने वाली रहस्यपूर्ण गुत्थी। लोहे की सलाखों से तैयार किया गया रहस्यभरा असामान्य कटघरा। गोरषधंधा बेद है=वेद-शास्त्र का निर्देश [-अभिप्रेत], सहजगम्य न होने के कारण 'गोरख-धन्धे' जैसा जटिल बताया है। वचन कडी=वचन [-मन्त्र-ऋचाएँ रूप] कड़ियाँ [-सलाखें] हैं। बर्णाश्रम की पांति=वर्णाश्रम की पंक्ति अर्थात् वर्णाश्रम-व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सद्गुरु जब मिलै पेच बतावै आइ।
भिन्न भिन्न करि अर्थ कौं आंटी दे सुरझाइ ।।38।।
अंत वेद के बचन तें उपजै ज्ञान अनूप।
सुन्दर आंटी सुरझि कैं तब ह्वै ब्रह्म स्वरूप ।।39।।
गोरषधंधा लोह मैं कडी लोह ता मांहि।
सुन्दर जाने ब्रह्म मैं ब्रह्म जगत द्वै नांहि ।।40।।
सुन्दर सद्गुरु शब्द तें सारे सब बिधि काज।
अपना करि निर्वाहिया बांह गहे की लाज ।।41।।
सुन्दर सद्गुरु शब्द सौं दीया तत्व बताइ।
सोवत जाग्या स्वप्न तें भ्रम सब गया बिलाइ ।।42।।
सुन्दर जागे भाग सिर सद्गुरु भये दयाल।
दूरि किया बिष मंत्र सौं थकित भया मन ब्याल ।।43।।
सुन्दर सद्गुरु उमगि कै दीनी मौज अनूप।
जीव दशा तें पलटि करि कीये ज्ञान स्वरूप ।।44।।
सुन्दर सद्गुरु श्रम बिना दूरि किया संताप।
शीतलता हृदये भई ब्रह्म बिराजै आप ।।45।।

की गतानुगतिकता। क्रिया कर्म=कर्मकाण्ड। आंटी=अंटी, पेच, [घुमावदार-] रहस्यमयी ग्रन्थियाँ। उपासना=उपनिषद् तत्त्व की तरह परम सत्ता-भाव के सामीप्य में बैठना, सामीप्य का अनुभव करना। पेच बतावै=[पेच-] रहस्य को खोलने का उपाय, ग्रन्थि-मुक्ति का साधन बताता है। सुरझाइ=सुलझा देता है।

39-41. अंत वेद=वेदान्त ज्ञान। उपजै ज्ञान=ज्ञान उदय होता [-उगता] है। आंटी सुरझि कैं=ग्रन्थि-निवारण होने पर, अंटी [-खुलने] उद्घाटित होने से। ब्रह्म जगत द्वै नाहिं=जगत् की सत्ता ब्रह्म से अलग नहीं है। **टिप्पणी** : वेदान्त ज्ञान प्रतिपादन में सुन्दरदास का यह अपना योगदान है। सारे=बनाए, सम्पन्न किए। बांह गहे की लाज [मुहा०]=बाँह पकड़ने [-अवलम्ब देने] की मर्यादा का निर्वाह।

42-45. शब्द सौं=शब्द [-वचन]-उपदेश के माध्यम से। तत्व=सार, जीवन-निष्कर्ष, अध्यात्म सिद्धान्त, प्राप्तव्य, गन्तव्य। बिलाइ=विलुप्त। जागे भाग सिर [मुहा०] =भाग्योदय हुआ। बिष=जहर [प्रती०], घातक या दुष्ट परिणामी वस्तु, संसार में मोहित [-बेसुध] बनाए रखने वाली वस्तु। मंत्र=शब्द, वचन, वचन-मर्म, रहस्य-उद्घाटक वाणी। मन ब्याल=मन रूपी सर्प। **टिप्पणी** : यहाँ मन को सर्प कहा गया है, जो इन्द्रियागामी होकर मादक और बेसुध कराने वाली मनोन्मुखता का द्योतक है। इन्द्रिय-विषय-लोलुपता रूप विष को गारुड़ी रूप गुरु अपने शब्द रूप मन्त्र से कीलित कर देता है। उमगि कै=उमंगित होकर, उत्साहित होकर, हृदय के उल्लास से। जीव दशा=जीव की अवस्था अर्थात् मनोन्मुखता, इन्द्रिय बहिर्मुखता। संताप=पीड़ा, क्लेश, त्रय ताप। शीतलता [प्रती०]=शान्ति, आत्मिक शान्ति, आत्म राज्य का सुख। ब्रह्म बिराजै=परम-सत्ता विद्यमान [-वर्तमान] है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमातम सौं आतमा जुदे रहे बहु काल ।
सुन्दर मेला करि दिया सद्गुरु मिले दलाल ।।46।।
परमातम अरु आतमा उपज्या यह अविवेक ।
सुन्दर भ्रमतें दोइ थे सद्गुरु कीये एक ।।47।।
हम जांण्यां था आप थे दूरि परै है कोइ ।
सुन्दर जब सद्गुरु मिल्या सोहं सोहं होइ ।।48।।
स्वयं ब्रह्म सद्गुरु सदा अमी शिष्य बहु संति ।
दान दियौ उपदेश जिनि दूरि कियौ भ्रम हंति ।।49।।
राग द्वेष उपजै नही द्वैत भाव को त्याग ।
मनसा बाचा कर्मना सुन्दर यहु बैराग ।।50।।
सदा अषंडित एक रस सोहं सोहं होइ ।
सुन्दर याही भक्ति है बूझै बिरला कोइ ।।51।।
अहं भाव मिटि जात है तासों कहिये ज्ञान ।
बचन तहां पहुंचै नहीं सुन्दर सो विज्ञान ।।52।।

46-48. जुदे रहे=पृथक् बने रहे । आत्मन् परमात्मा से, भ्रान्ति के कारण [अलगाव-] पृथकत्व का अनुभव करता-रहता है । मेला=मिलन, ऐक्य, सन्धि । सद्गुरु मिले दलाल=दलाल रूप सद्गुरु के मिलते ही । **टिप्पणी** : 'दलाल' का उदाहरण दो अनजान स्थितियों को मिलाने वाले के रूप में सही बिम्ब प्रस्तुत कर रहा है । **'गुरु'** किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर दलाली नहीं करते, पात्र की जिज्ञासा देखते हुए, अपनी परोपकार-वृत्ति के कारण ही वे ऐसा करते हैं। अविवेक=अज्ञान, [माया-] मोहजनित मानसिकता । भ्रमते दोइ थे=भ्रम के कारण दो या अनेकत्व [-नानात्व] की स्थिति बनी रहती है । सद्गुरु कीये एक=उस अविद्या जनित आवरण को हटाकर, आत्म-बोध की दृष्टि देकर, गुरु जीव-ब्रह्म एकत्व स्थापित करा देते हैं । दूरि परै है कोइ=कोई सत्ता अपने से दूर [अन्यत्र कहीं] है । सोहं सोहं होइ=गुरु-प्रयत्न से **'सोहऽस्मि'**, **'अहं ब्रह्मास्मि'** बोध, प्राणों में ही अनुभव होने लगता है ।

49-52. अमी शिष्य=अमृत रूप शिष्य । संति=हैं । दान दियौ उपदेश जिनि=जिन्होंने 'उपदेश' [-तत्त्व ज्ञान] रूप दान दिया । भ्रम हंति=भ्रम का हनन करके । द्वैत भाव=द्वैत दशा, द्वन्द्व और द्वैत की मानसिकता । **टिप्पणी : 'वैराग्य भाव'** का लक्षण है—द्वैत भाव के त्यागने के बाद मन-वाणी और कर्म में राग-द्वेष उत्पन्न न हों । **'भक्ति'**, ज्ञानी की दृष्टि में अखण्डित भक्ति-भाव, एक निरन्तर रस-दशा और निरन्तर 'सोऽहं' भाव में स्मरण है । यही ज्ञान-बोध विवेक है । **'ज्ञान-दशा'**, जब 'अहं भाव' या कर्त्तापन की वृत्ति समाप्त हो जाती है, तो वही ज्ञान-दशा है । विज्ञान=विशेष ज्ञान, विज्ञानमय अनुभूति को वाणीबद्ध कर पाना कठिन माना गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षट सत सहस्र इकीस है मनका स्वासो स्वास।
माला फेरै राति दिन सोहं सुन्दरदास ॥53॥
ज्ञान तिलक सोहै सदा भक्ति दई गुरु छाप।
ब्यापक बिष्णु उपासना सुन्दर अजपा जाप ॥54॥
सुन्दर सूता जीव है जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन तें परै सद्गुरु कह्या अनूप ॥55॥
सुन्दर समुझै एक है अनसमझै कौ द्वीत।
उभै रहित सद्गुरु कहै सो है बचनातीत ॥56॥
बोलत बोलत चुप भया देषत मूंदै नैंन।
सुन्दर पावै एक को यहु सद्गुरु की सैंन ॥57॥
मूरष पावै अर्थ कौं पंडित पावै नांहि।
सुन्दर उलटी वात यह है सद्गुरु कै मांहि ॥58॥

53-56. षट सत सहस्र इकीस=21600 श्वास। मनका=मणिका [-मनिका], मणियाँ। श्वास-प्रश्वास की प्राण रूप माला में इक्कीस हजार छः सौ साँसें ही माला की गुरिया या मणियाँ हैं। जैसे प्रत्येक 'मनिका' पर एक मन्त्र जपा जाता है, इसी प्रकार प्रत्येक श्वास [-मनिका] सोऽहं रूप 'अजपाजाप' मन्त्र की पूर्ति करता हुआ विलय होता-रहता है। ज्ञान तिलक=ज्ञान रूप तिलक। भक्ति-छाप=भक्ति रूप छाप, छापा-तिलक रूप में 'भक्ति' की प्रतिष्ठा। लेकिन 'ज्ञान' को तिलक रूप में सर्वोपरि बताया गया है। ब्यापक बिष्णु उपासना=व्यापक विष्णु का अनुभव ही ज्ञानी की उपासना है और व्यापक विष्णु का श्वास-प्रश्वास में अनुभव ही 'अजपा-जाप' है। सूता जीव है=जब प्राणी सुषुप्त [-अज्ञान-मोह में सोया] रहता है, तभी वह 'जीव' संज्ञा से अभिहित होता है। जाग्या=जाग्रत, बोधमय। ब्रह्म स्वरूप=जाग्रत अवस्था का जीव ही ब्रह्म स्वरूप कहलाता है। सद्गुरु=सुषुप्त और जाग्रत इन दोनों ही अवस्थाओं से परे रहने वाला अर्थात् विलक्षण अवस्था वाला 'सद्गुरु कहा जाता है। अनसमझै=नासमझ, अज्ञानी। द्वीत=द्वैत, भेद-ज्ञान, द्विधाभाव। सद्गुरु=एक और द्वैत दोनों दशाओं से रहित, किन्तु विलक्षण तत्त्व वाला ही सद्गुरु है, जो अपनी समग्रता में वाणी-बद्ध नहीं किया जा सकता।

57-58. बोलत बोलत चुप भया=अध्यात्म दशा की गहनता और विशदता के सम्बन्ध में बताते-बताते मौन होने में उस दशा की विलक्षण [-वचनातीत] अवर्णनीय दशा का अनुभव व्यंजित है और वैखरी वाणी का, मध्यमा-पश्यन्ति और परा की ओर उन्मुख होने की व्यंजना कराता है। देषत मूंदै नैंन=अनुभव की असीमता को निहारने केलिए चर्म-चक्षुओं की बहिर्मुखता को अन्तर्मुखी करने का संकेत 'देखते हुए नैन मूंदने' से दिया गया है। सैंन=इंगित, दृष्टि-संकेत।

टिप्पणी : साखी में उलटबाँसी शैली का अवलम्ब लिया गया है। मूरष [प्रती०] =मूर्ख, संसार की दृष्टि में मूर्ख लगने वाला, संसार से विमुख, इन्द्रिय-प्रसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कोउ बिद्या देत है सो बिद्या गुरु होइ।
जीव ब्रह्म मेला करै सुन्दर सद्गुरु सोइ ॥59॥
गुरु शिष्यहि उपदेश दे यह गुरु शिष व्यवहार।
शब्द सुनत संसय मिटै सुन्दर सद्गुरु सार ॥60॥
सुन्दर गुरु सु रसायनी बहु बिधि करय उपाय।
सद्गुरु पारस परस तें लोह हेम ह्वै जाय ॥61॥
सुन्दर मसकति दार सौं गुरु मथि काढै आगि।
सद्गुरु चकमक ठोक तें तुरत उठै कफ जागि ॥62॥
सुन्दर गुरु जल षोदि कैं नित उठि सींचै षेत।
सद्गुरु बरषै इन्द्र ज्यौं पलक मांहि सरसेत ॥63॥

[क्रमश:]
अन्तर्मुखी हो गया है जिसका। अर्थ=मन्तव्य, मर्म, रहस्य। पंडित [प्रती०]=कण्ठ-विद्या प्रवीण, वाचक ज्ञानी, अनुभव ज्ञान से रहित। उलटी बात=उलटवाँ-सी बात अर्थात् उलटवाँसी।

59. **टिप्पणी** : इस साखी में 'विद्यागुरु' और 'सद्गुरू' में अन्तर बताया है। विद्या गुरु=लौकिक विद्या प्रदान करने वाला शिक्षक। सद्गुरु=जीव-ब्रह्म का एकात्म्य कराने वाला।

60-63. गुरु शिष व्यवहार=गुरु का शिष्य को उपदेश दिया जाना ही 'गुरु-शिष्य व्यवहार' है। संसय < संशय [सं०] = भ्रम-भ्रान्ति-सन्देह। सद्गुरु सार=सद्गुरु प्रदत्त ज्ञान ही उपदेश का सार है अथवा 'सद्गुरु' पद का अभिप्रेत है। रसाइनी=रसायन-क्रिया करने वाला। **टिप्पणी** : द्वैत भाव वाले जीव रूप लोहे को अद्वैत भाव वाले 'पारस तत्त्व' [-ब्रह्म भाव] से स्पर्श या एकातम करने वाला रसायनी [पारस-] रूप गुरु, मूल तत्त्व [-स्वर्ण] में रूपान्तरित कर देता है। हेम=स्वर्ण। मसकति < मसक्क़त [अ०]=मेहनत, प्रयत्न, उपाय, साधन, साधना, तपस्या। दार < दारु [सं०]=काष्ठ। मथि काढै आगि=मथकर, मन्थन करके आग उत्पन्न करता है। देखिए—

'अतिसै रगर करै जो कोई। अनल प्रगट चंदन तें होई।'—तुलसी,

चकमक ठोक तें=चकमक पत्थर की रगड़ से। कफ=सूत का गुच्छा। तुरत उठै कफ जागि=सूत के गुच्छे [-लच्छे] में तुरत आग जल उठती है। जल षोदि कैं [मुहा०]=रोज जल खोद कर निकालता है, नित्य-निरन्तर प्रयत्न करता है। षेत < खेत [प्रती०]=शरीर [-संसार] रूप क्षेत्र। **टिप्पणी** : गीता [-अध्याय 15] में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का उल्लेख है। नित उठि सींचै षेत [मुहा०]=नित्य उठकर खेत सींचता है। अर्थात् नित्य प्रयत्न से इन्द्रिय-चेतना को प्राणवत्ता प्रदान करता है। सद्गुरु बरषै इन्द्र ज्यौं [-उपमा, दृष्टान्त]=वर्षा के देवता इन्द्र के समान, सद्गुरु समभाव से कृपा-वर्षा करता है। सरसेत = सर-सरोवर पानी से भर जाते हैं। अथवा [खेत-] हरे-भरे हो उठते हैं, हरियाली छा जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर गुरु दीपक किये घर मैं को तम जाइ।
सद्‌गुरु सूर प्रकास तें सबै अंधेर बिलाइ ॥64॥
सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै सनमुख देषै दृष्टि।
सद्‌गुरु हृदय उमंगि करि करै अमी की बृष्टि ॥65॥
सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै शब्द ग्रहै मन लाइ।
तासौं सद्‌गुरु तुरत ही ज्ञान कहै संमुझाइ ॥66॥
सुन्दर शिष जिज्ञास है निश्चय आवै नांहिं।
तौ सद्‌गुरु कहिबौ करौ ज्ञान न उपजै मांहिं ॥67॥
सुन्दर शिष जिज्ञास है परि जो बुद्धि न होइ।
तौ सद्‌गुरु क्यौं पचि मरौ शब्द ग्रहै नहिं कोइ ॥68॥
जन सुन्दर निश्चय बिना क्यौं करि उपजै ज्ञांन।
सद्‌गुरु दोष न दीजिये शिष्य मूढ मति जांन ॥69॥
सुन्दर सद्‌गुरु प्रगट है तिनकौ आशय गूढ।
जो कृत देषै देह के सो क्यौं पावै मूढ ॥70॥
सुन्दर सद्‌गुरु प्रगट है बोलै अंमृत बैंन।
सूरय कौं देषै नहीं मूंदि रहै जो नैंन ॥71॥
सुन्दर सद्‌गुरु प्रगट है जिनि कै ब्रह्म बिचार।
मूरष औगुन काढि लै देषि देह व्यवहार ॥72॥

64-67. गुरु दीपक=दीपक रूप गुरु [—ज्ञान-विद्या रूप गुरु], जो सब को प्रकाश देता है। घर [प्रती०]=आवास, हृदय। तम=अन्धकार, अज्ञान-मोह। सद्‌गुरु सूर=सूर्य रूप सद्‌गुरू। अंधेर=अंधेरा, अज्ञानजन्य भ्रान्ति। जिज्ञास ह्वै=जिज्ञासु [-मुमुक्षु] होकर। अमी की बृष्टि=अमृत वर्षा, अमृत के समान कल्याण कर उपदेश-वचन। शब्द ग्रहै=[शब्द-वचन-]उपदेश ग्रहण करता है। मन लाइ [मुहा०]=मन लगाकर, ध्यान से। निश्चय=निश्चित आस्था, विश्वास। **टिप्पणी** : जब तक जिज्ञासा का परिणाम किसी निश्चय में नहीं बदलता, तब तक ज्ञानोदय सम्भव नहीं है।

68-70. जिज्ञास···बुद्धि न होइ=जिज्ञासा भाव के साथ, बुद्धि [-बोध-] वृत्ति की प्रखरता नहीं रहती। पचि मरौ=व्यर्थ सिर खपाओ, समय [-जीवन] नष्ट करो। शिष्य मूढ मति=ऐसे शिष्य को मूढ [-जड़] बुद्धि का समझो। आशय गूढ=गहरा मन्तव्य, गहन मर्म। जो कृत देषै देह के=जो शरीर के कर्म अर्थात् बाह्य लोकाचार की क्रियाओं पर ही ध्यान रखता है। मूढ=मूढ़, जड़, मूर्ख।

71. अंमृत बैंन=अमृत-वचन, अमृत के समान कल्याणकर वाणी। सूरय=सूर्य, सद्‌गुरु। मूंदि रहै जो नैंन [मुहा०]=जो आँखें बन्द किए हुए हैं।

72-74, औगुन काढिलै=अवगुणों को निकाल फेंक। देह व्यवहार=देह के कार्य, शरीर कृत्य, लोकाचारमयी चर्या। गुन देह=शरीर के गुण। कारय क्यों सरै=

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्गुरु सुद्ध स्वरूप है शिष देषै गुन देह।
सुन्दर कारय क्यौं सरै कैसैं बधै सनेह॥73॥
सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय परि शिष कीचम दृष्टि।
सूधी वोर न देषई देसै दर्पन पृष्टि॥74॥
सुन्दर सद्गुरु क्यौं द्रसै शिष की दृष्टि मलीन।
देषत हैं सब देह कृत षान पान सौं लीन॥75॥
सुन्दर सूक्षम दृष्टि ह्वै तब सद्गुरु दरसाइ।
देषै देह स्थूल कौं यौं शिष गोता षाइ॥76॥
सद्गुरु ही तें पाइये राम मिलन की बाट।
सुन्दर सब को कहत है कोडा बिना न हाट॥77॥
सद्गुरु जाइ कृपा करै सो जानैं सब भेव।
सुन्दर क्यौं करि पाइये एक बिना गुरुदेव॥78॥
सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै हृदै प्रकास।
वे अलिप्त हैं देह सौं ज्यौं अलिप्त आकास॥79॥
दूध मांहिं ज्यौं जल मिलै रंगनि मैं ज्यौं नीर।
सद्गुरु हंस जुदा करै सुन्दर पांणी षीर॥80॥
सुन्दर सद्गुरु कै मिलें संसै हूवा छिन्न।
यौं निश्चय करि जानिया देह आतमा भिन्न॥81॥

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कार्य कैसे सिद्ध हो। बधै=बढे, प्रवृद्ध हो। परि=पर। कीचम दृष्टि=कीचड़ जैसी दृष्टि, कल्मषमयी वृत्ति। सूधी वोर=सामने की ओर, प्रत्यक्ष। देषै दर्पन पृष्टि=दर्पन के पिछले भाग की ओर देखता है।

75-77. द्रसै=दिखाई दे। दृष्टि मलीन=मलिन दृष्टि से। देह कृत=देह के कार्य। षान-पान सौं लीन=[देह-] खाने-पीने तक में ही तल्लीन बनी-रहती है। सूक्षम दृष्टि ह्वै=सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त होने पर ही 'सद्गुरु' के दर्शन सम्भव हैं। गोता षाइ [मुहा०]=डुबकी लगाता है, जीवन-रक्षा में चूकता रहता है। बाट<वाट=मार्ग, दिशा। कोडा बिना न हाट [मुहा०]=कौड़ी-रोकड़-धन [-पूंजी] के बिना 'बाजार' अनुकूल नहीं लगता।

78-80. जाइ कृपा करै=जिस पर कृपा करता है। भेव=भेद, रहस्य। क्यौं करि पाइये=किसप्रकार प्राप्त कर सकता है। अलिप्त=अनासक्त। ज्यौं अलिप्त आकास=जैसे सब में समाया हुआ रहते हुए भी 'आकाश' अलिप्त रहता है। सद्गुरु हंस=हंस [-वृत्ति] रूप सद्गुरु। पांणी षीर=नीर-क्षीर।

81. संसै=संशय। छिन्न=विदीर्ण, खण्डित। जानिया=जान लिया है, समझ लिया है। देह आत्मा भिन्न=शरीर और आत्मा [-चेतना] भिन्न-भिन्न हैं अर्थात् शरीर, आत्मा नहीं है, जैसा कि भ्रम के कारण मान लिया जाता है। आत्म-अनात्म का विवेक हो जाने पर ही जड़-चेतन का ज्ञान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर काढै सोधि करि सद्गुरु सोनी होइ।
शिष सुवर्ण निर्मल करै टांका रहै न कोइ ॥82॥
सुन्दर सद्गुरु बैद ज्यौं पर उपकार करेइ।
जैसौ ही रोगी मिलै तैसी औषध देइ ॥83॥
सद्गुरु देषै नाडि कौं दूरि करै सब ब्याधि।
सुन्दर ताकौं छोडि दे जाकै रोग असाधि ॥84॥
सद्गुरु साह गजेन्द्र है सुन्दर बस्तु अपार।
जोई आवै लैंन कौं ताकौं तुरत तयार ॥85॥
सद्गुरु ही तें अकलि ह्वै सद्गुरु ही तें बुद्धि।
सुन्दर सद्गुरु तें संमुझि सद्गुरु तें सब सुद्धि ॥86॥
सद्गुरु ही तें ज्ञान ह्वै सद्गुरु ही तें ध्यांन।
सुन्दर सद्गुरु तें लगै योग समाधि निदांन ॥87॥
सद्गुरु महिमा कहन कौं रसना हुई न कोरि।
सुन्दर क्यौं करि बरनिये जो बरनिये सु थोरि ॥88॥
सद्गुरु महिमा अगम अति क्यौं करि कहौं बनाइ।
सुन्दर मुख तैं सरस्वती कहत कहत थकि जाइ ॥89॥
नभ मनि चिंतामनि कहैं हीरामनि मनि लाल।
सकल सिरोमनि मुकुटमनि सद्गुरु प्रकट दयाल ॥90॥

82-84. सोधि करि=शोधन करके, खोज करके। सद्गुरु सोनी=स्वर्णकार रूप सद्गुरु। शिष सुवर्ण=शिष्य रूप स्वर्ण। टांका=मैल, खोट वाली धातु जो जोड़ को मिलाने केलिए सुनार प्रयोग में लाता है। सद्गुरु बैद=वैद्य रूप सद्गुरु जो रोग की पहचान-निदान और उपचार करता है। औषध=औषधि, शरीर-व्याधि निराकरण का उपाय। नाडि=नाड़ी, नब्ज़ [-नाड़ी] देखकर वैद्य शरीरस्थ व्याधि-का अनुमान करते हैं। रोग असाधि=असाध्य रोग, मोह [-अज्ञान जन्य]-रोग, आधि-व्याधि। पर उपकार करेइ=जो परोपकार करता है, वह करेगा ही करेगा। इसी अर्थ में 'करेइ' क्रिया का प्रयोग है।

85-88. सद्गुरु साह गजेन्द्र है=शाह [-व्यापारी] रूप सद्गुरु गजेन्द्र के समान है। बस्तु अपार=[पण्य केलिए-] असीम [-असंख्य] वस्तु [-एँ] हैं। जोई=जो भी। अकलि=बुद्धि, मति। बुद्धि=बुद्धि-ज्ञान। संमुझि=ज्ञान, जानकारी। सुद्धि=शुद्धि, सात्विकता, सुधि-बुधि, बोध। योग समाधि निदांन=निर्णायक योग-समाधि, तत्त्व चिन्तनमयी एकाग्रता। रसना=जिह्वा, जीभ। कोरि=करोड़ों। जो बरनिये सु थोरि=जो कुछ भी कहो [-वर्णन करो] वह थोड़ा है।

89-91. महिमा अगम=अगम्य [-अग्राह्य] प्रभाव। सरस्वती=वाणी। नभमनि=आकाश मणि अर्थात् सूर्य। सिरोमनि=शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ। मुकुट मनि=मुकुट-मणि अर्थात् मूल्यवान् मणि। **टिप्पणी :** 'मनि' का विभिन्न सन्दर्भों में सुन्दर-प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुर तरु पारस कामधुक् कहियत नाव जिहाज।
सुन्दर इनतें डूबिये सद्गुरु सारै काज ॥91॥
नां कछु हुवा न होइगा सद्गुरु सब सिरमौर।
सुन्दर देष्या सोधि सब तोलें तुलत न और ॥92॥
सुन्दर सद्गुरु भक्तिमय भजनमई भजि राम।
सुखमय रसमय अमृतमय प्रेम मांहिं विश्राम ॥93॥
सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय नारायणमय ध्यान।
ईश्वरमय जगदीशमय गोबिन्दमय गलतान ॥94॥
सुन्दर सद्गुरु ज्ञानमय चेतनिमय चिद्रूप।
निर्गुन नित्यानन्दमय तन्मय तत्व अनूप ॥95॥
सुन्दर सद्गुरु सूरमय उदित भये हैं ऐंन।
मनसा बाचा कर्मना षोलत सब के नैंन ॥96॥
सुन्दर सद्गुरु शशिमयी सुधा श्रवै मुख द्वार।
पोष देत हैं सबनि कौं प्रगटे पर उपकार ॥97॥
सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत हैं घट मांहिं।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब कौं लिपै छिपै कछु नांहिं ॥98॥

है। कामधुक्=कामधेनु। नाव=नौका। जिहाज=जहाज, जलयान। सद्गुरु सारै काज=सद्गुरु सभी कल्याणकर कार्यों को सिद्ध करता है अर्थात् भवभागर से उद्धार जैसे कार्य करता है।

92-95. नां कुछ हुवा न होइगा=सद्गुरु के समान [विशिष्ट-श्रेष्ठ-] परोपकारी न कोई हुआ है न होगा अर्थात् 'न भूतो न भविष्यति'। सब सिरमौर=सर्व शिरोमणि। तोलें तुलत न और [मुहा०]=तोलने से, आँकने से, उपमा देने से, सद्गुरु के समान कोई और नहीं ठहरता। प्रेम मांहिं बिश्राम=प्रेम-भाव में शरण ही विश्राम [-स्थल] है। **टिप्पणी** : इन साखियों में सद्गुरु के कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषण दिए गए हैं, जैसे—भक्तिमय, भजनमय, सुखमय, रसमय, अमृतमय आदि। गलतान=लयलीन। चेतनिमय=चैतन्यमय, बोधमय। चिद्रूप=चित्त रूप, चैतन्य रूप। निर्गुन=निर्गुण, त्रिगुणातीत। तन्मय=तद्रूप, तल्लीन।

96. सूरमय=सूर्यमय अर्थात् सूर्य रूप। ऐंन=सूक्ष्म रूप से, प्रत्यक्ष, मूल तत्त्व। षोलत सब के नैंन [मुहा०]=सब के नेत्र उन्मीलित करता है, प्रज्ञा-चक्षु उघाड़ देता है।

97-98. शशिमयी=शशि स्वरूप शीतल [-अमृत युक्त]। सुधा श्रवै मुख द्वार=मुख द्वार से अर्थात् वाणी के द्वारा अमृत-वर्षा करते हैं। अमृत के समान कल्याणप्रद वाणी [-वचन] उच्चारते हैं। पोष देत हैं सबनि कौं=सबका पोषण करते हैं। प्रगटे=प्रकट हैं, प्रकट होते हैं, अवतरित होते हैं। दीसत है घट मांहिं=हृदय में दिखाई देते हैं, अनुभव में आते हैं। किन्तु, हृदय-वास होने पर भी वे असम्पृक्त बने रहते हैं। ज्यौं दर्पन प्रतिबिब कौं [उदा०]=जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई तो देता है, पर वह दर्पण में लिप्त एवं गुप्त नहीं रहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत घट मैं बास।
घट सौं सदा अलिप्त है ज्यौं अलिप्त आकास ॥99॥
सुन्दर सद्गुरु करि कृपा दीया दीरघ दांन।
हृदै हमारै आइया निश्चय अद्वय ज्ञांन ॥100॥
सुन्दर सद्गुरु आप तें अति ही भये प्रसन्न।
दूरि किया संदेह सब जीव ब्रह्म नहिं भिन्न ॥101॥
सुन्दर सद्गुरु है सही सुन्दर सिक्षा दीन्ह।
सुन्दर बचन सुनाइ कैं सुन्दर सुन्दर कीन्ह ॥102॥

—०—

99. ज्यौं अलिप्त आकास [उदा०]=जैसे घटाकाश, घट [-हृदय] में रहते हुए भी, अलिप्त [-अनासक्त] बना रहता है, वैसे ही सद्गुरु हृदय में वास करते हुए भी, आकाश की तरह अनासक्त [-असम्पृक्त] बने रहते हैं।

100. दीरघ दांन=बड़ा दान, न चुकने वाला दातव्य, अक्षय दान। अद्वय ज्ञांन=अद्वैत ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, वेदान्त। यह ज्ञान 'निश्चय' [-परिचय] होने के बाद ही उदित होता है।

101. आपतें=अपने आप, स्वयं ही, अपनी मौज से, सहज रूप में। सन्देह=संशय, भेद-ज्ञान जनित अनिश्चय। जीव ब्रह्म नहिं भिन्न=अद्वय ज्ञान की प्राप्ति पर जीव-ब्रह्म एकात्मता स्वत: अनुभव में आ जाती है।

102. **टिप्पणी :** साखी में 'सुन्दर' शब्द का चार बार प्रयोग है, पर अर्थ अलग-अलग है—1. कवि ने स्वयं केलिए, 2. शिक्षा के विशेषण के रूप में, 3. वचन-विशेषण के रूप में तथा 4. सुन्दर को और सुन्दर बना देने के अर्थ में। चौथे अर्थ में रचनाकार केलिए भी है। अर्थात् दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर जो द्रष्टव्य सुन्दर था, वह और अधिक सुन्दर हो गया। सही=वास्तव, सुग्राह्य। सिक्षा < शिक्षा=उपदेश। कीन्ह=बना दिया, रूपान्तरित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 2 ॥ अथ सुमिरन कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग में 56 दोहे [-साखियाँ] हैं, जिनमें सुरति **'सुमिरन'** [-स्मरण] भाव के द्वारा परम भाव [-अनुभव] की प्राप्ति का निर्देश है। 'सुमिरन' [-स्मृति-बोधमयता]-भाव के द्वारा मनोवैज्ञानिक पक्ष की भी व्यंजना हो रही **है।** सन्तों द्वारा प्रतिपादित **'सुमिरण'** भाव जाति-वर्ण या विद्यावाद से बाधित नहीं है। लेकिन, सुमिरण केलिए रुचि, जिज्ञासा और प्रीति का होना अपेक्षित है। अन्यथा, बिना भूख के भोजन की तरह सुमिरन अपचकारक ही सिद्ध होता है। साखी 26 में भजन, सुमिरन और जाप का अन्तर समझाया गया है। सुमिरण से चेतना को जो व्यापकता, विशदता एवं निरन्तरता मिलती है, वह मानवीय बोध को **'वर्तमान'** [-परम विष्णु] से जोड़ने में समर्थ है। मूलपाठ द्रष्टव्य है—

दोहा : सुन्दर सदगुरु यौं कह्या सकल सिरोमनि नांम।
ताकौं निस दिन सुमरिये सुखसागर सुखधाम ॥1॥
राम नाम श्रवनौ सुन्यौ रसना कियौ उचार।
सुन्दर पीछै सुरति सौं हृदय प्रगट रंकार ॥2॥

चूर्णिका : टिप्पणी : साखी-भाग में कहीं-कहीं 'दोहा' छन्द का लिखित उल्लेख मिलता है। सम्भव है प्रतिलिपिकार ने सन्त कवि सुन्दरदास की ही प्रेरणा से, साखी और दोहे का पार्थक्य मिटाया अथवा बताया है। दोहे में 'मात्रा-विधान' अर्थात् यति-विराम का कठोर अनुशासन रहता है, जबकि 'साखी' में थोड़ी-बहुत शिथिलता ग्राह्य और सह्य बनी रहती है।

1-2. नाम=प्रभु नाम। क्योंकि 'नाम' से 'नामी' की ओर चेतना का गतिशील होना सम्भव है। सकल सिरोमनि=सभी [दृश्य जगत-] में शिरोमणि है। श्रवनौ=कानों से। रसना=जिह्वा, जीभ। उचार=उच्चारण। पीछै=बाद में। सुरति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नांव निरंतर लीजिए अन्तर परै न कोइ।
सुन्दर सुमिरन सुरति सौं अंतर हरि हरि होइ ।।3।।
हृदये मैं हरि सुमरिये अन्तरजांमी राइ।
सुन्दर नीकै जत्न सौं अपनौं बित्त छिपाइ ।।4।।
काहू कौं न दिषाइये राम नाम सी बस्त।
सुन्दर बहुत कलाप करि आई तेरै हस्त ।।5।।
रंक हाथ हीरा छड्यौ ताकौ मोल न तोल।
घर घर डोलै बेचतौ सुन्दर याही भोल ।।6।।
राम नाम रटबौ करै निस दिन सुरति लगाइ।
सुन्दर चालै गांव जिहिं तहां पहूंचै जाइ ।।7।।
राम नाम संतनि धर्‌यौ राम मिलन के काज।
सुन्दर पल मैं पार ह्वै बैठे नाम जिहाज ।।8।।
राम नाम तिहुं लोक मैं भवसागर की नाव।
सद्‌गुरु षेवट बांह दे सुन्दर बेगो आव ।।9।।

सौं=प्रेम पूर्वक, तल्लीनता से। रंकार=राम-नाम की निरन्तर [-अनुगूँज] ध्वनि, अजपाजाप। **टिप्पणी :** 'सुमिरण' की तीव्रता [-गहनता] एवं परमता तक पहुँचने केलिए, जिज्ञासु द्वारा एक क्रम विशेष का अनुसरण अपेक्षित बताया गया है। सर्व प्रथम तो गुरुमुख से प्रभु-नाम की सार्थकता को सुनना, पुनः वाणी द्वारा, निष्ठा-पूर्वक उस पवित्र नाम का उच्चारण। उच्चारण-अभ्यास के साथ ही 'रंकार' या 'ररंकार' ध्वनि को अपनी निरन्तरता में अनुभव करते रहना होता है।

3-4. अन्तर परै न कोइ=कोई फर्क़ या अन्तराल न पड़े। अंतर=हृदय। अन्तर-जांमी,=अन्तर्यामी, हृदय की जानने वाले। नीके जत्न सौं=सही प्रयत्न से, भली प्रकार से। बित्त [प्रती०]=पूंजी, सम्पत्ति-धन, नाम-स्मरण रूप धन।

5-7. राम नाम सी वस्त=राम-नाम जैसी वस्तु। कलापकरि=कलाप करके। अर्थात् बड़ी कठिनाई से, समूह के साथ, सघनता से। हस्त=हाथ में, मुट्ठी में। रंक=निर्धन। रंक हाथ हीरा छड्यौ [मुहा०]=निर्धन के हाथ हीरा चढ़ गया, जिज्ञासु को मन वाञ्छित फल-प्राप्ति हो गई। ताकौ=उसका [-मोल-तोल नहीं। अर्थात् बहुमूल्य वस्तु]। भोल=भूल। घर घर डोलै बेचतौ [मुहा०]=घर-घर बेचता-फिरता है। सुरति लगाई=ध्यान लगा कर, तल्लीनता से। चालै गांव··जिहिं [कहा०]=जिस गाँव [-गन्तव्य] की ओर अग्रसर होता है, वहाँ पहुँच ही जाता है।

8-12. पल में पार ह्वै [मुहा०]=पल [-क्षण भर] में पार हो जाता है, उद्धार पा जाता है। नाम जिहाज=नाम रूप जहाज-जलयान [-नाम, भव-सागर से पार उतारता है]। भव सागर की नाव=संसार रूप सागर में नाम रूप नौका। षेवट <खेवट=नाविक, सन्तरण कराने वाला। बांह दे [मुहा०]=अवलम्ब देकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम नाम बिन लैन कौं और बस्तु कहि कौंन ।
सुन्दर जप तप दान व्रत लागे षारे लौंन ।।10।।
राम नाम मिश्री पियें दूरि जांहिं सब रोग ।
सुन्दर औषध कटुक सब जप तप साधन जोग ।।11।।
नाम लिया तिन सब क्रिया सुन्दर जप तप नेम ।
तीरथ अटन सनान व्रत तुला बैठि दत्त हेम ।।12।।
नाम बराबर तोलिया तुलै न कोऊ धर्म ।
सुन्दर ऐसै नाम का लहै न मूरष मर्म ।।13।।
राम भजन परिश्रम बिना करिये सहज सुभाइ ।
सुन्दर कष्ट कलेस तजि मन की प्रीति लगाइ ।।14।।
सब सुख हरि कै भजन मैं कष्ट कलेस न कोइ ।
सुन्दर देषै कष्ट कौं जगत षुसी तब होइ ।।15।।
सुन्दर सब ही संत मिलि सार लियौ हरि नाम ।
तक्र तजी घृत काढि कैं और क्रिया किहिं काम ।।16।।
राम नाम पीयूष तजि बिष पीवै मति हीन ।
सुन्दर डोलै भटकतें जन जन आगे दीन ।।17।।

सहारा देकर। बेगो आव=शीघ्र आओ। कौंन=कौंन-सी। षारे लौंन=कड़ुए [-खारे] नमक की तरह-से लगते हैं, सभी जप-तप-दान-व्रत आदि। मिश्री पिये= मिसरी पीकर, अनुकूल मात्रा में राम-नाम रूप मिसरी पीने पर। औषध कटुक सब= बन्धन मुक्त होने या भव-रोग से छुटकारा पाने केलिए अन्य योग-व्रतादि साधन कटु औषधियों के समान हैं। साधन जोग=साधन रूप योग। दत्त=दान। हेम=स्वर्ण।

13-17. तोलिया=तुलनीय, तुलना योग्य। अथवा तोलकर, समता करके देख लिया है। लहै न=प्राप्त नहीं कर पाता। मर्म=भेद, रहस्य। परिश्रम बिना=बिना परिश्रम के अर्थात् बिना अतिरिक्त दिखावा या आडम्बर-आरोपण के। कलेस= क्लेश, सन्ताप। देषै कष्ट कौं=राम-भजन अर्थात् पूजा-विधान में कष्ट [-अतिरिक्त श्रम] को देखकर जगत् प्रसन्न होता है। तक्र तजी घृत काढि कैं=घी निकालने पर [तक्र-] मट्ठे [-सार रहित वस्तु] को त्याग दिया है अथवा त्याग कर दिया जाता है। और क्रिया किहिं काम=[आध्यात्मिक-जीवन में, सार-ग्रहण के अतिरिक्त—] अन्य क्रियाओं को करने से क्या लाभ। पीयूष=अमृत। बिष <विष [सं०]=जहर, दुष्परिणामी वस्तु [-क्रिया]। डोलै भटकतें=भटकता-फिरता है। दीन=निरुपाय, असहाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम नाम कौं छाडि कै और भजैं ते मूढ।
सुन्दर दुख पावै सदा जन्म जन्म वै हूढ ।।18।।
राम नाम हीरा तजै कंकर पकरै हाथ।
सुन्दर कबहु न कीजिए उन मूरख कौ साथ ।।19।।
राम नाम भौजन करै राम नाम जल पान।
राम नाम सौं मिलि रहै सुन्दर राम समान ।।20।।
राम नाम सोवत कहै जागैं हरि हरि होइ।
सुन्दर बोलत ब्रह्म मुख ब्रह्म सरीखा सोइ ।।21।।
बैठत बनमाली कहै ऊठत अविगति नाथ।
चलतें चिंतामनि जपैं सुन्दर सुमिरन साथ ।।22।।
नारायण सौं नेह अति सन्मुख सिरजनहार।
परब्रह्म सौं प्रीतडी सुन्दर सुमिरन सार ।।23।।
राम नाम सौं रत भया हर्षत हरि कै नाम।
गलित भया गोबिंद सौं सुन्दर आठौं याम ।।24।।
लीन भया बिचरत फिरै छीन भया गुन देह।
हीन भई सब कल्पना सुन्दर सुमिरन येह ।।25।।

18-20. मूढ=मूर्ख, अज्ञानी। हूढ [राज०]=हूड़, हठी, उजड्ड, उद्दण्ड। कंकर=कंकड़, तुच्छ पदार्थ। राम नाम···समान=राम नाम [-निरन्तर स्मरण] द्वारा तादात्म्य बने रहने पर, राम के समान ही हो जाता है [-भृंगी-कीट न्याय से]।

21-22. ब्रह्म सरीखा सोइ=मुख से ब्रह्म [-परमात्मा] उच्चारण से ब्रह्म जैसा हो जाता है [-'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति']। **विशेष**—दादू ने भी 'जीव ब्रह्म की लार' [दे०-दादू० बा० 1, सुमिरण०, सा० 50] कहा है। इसी सन्दर्भ में इस अंग की 43वीं और 56वीं साखी भी देखी जा सकती है। बनमाली=राम [रूढ़ अर्थ में]। अविगत नाथ=अविनाशी स्वामी। चिंतामनि=चिन्ताओं को हरण करने वाले चिन्तामणि के समान परमात्मा। **टिप्पणी**: इस साखी में [एवं 23-24 में भी] परमात्मा के [विशेषण-] नामों के साथ क्रिया-पदों की सानुप्रासिकता द्रष्टव्य है। जैसे—'बैठत' के साथ 'बनमाली', 'चलतें' के साथ 'चिंतामनि' आदि।

23-27. सन्मुख=सामने, प्रत्यक्ष, व्यापक वर्तमान। प्रीतड़ी=प्रेम-निष्ठा। रत भया=निरत [-तल्लीन] हुआ। गलित भया=निमग्न हुआ। बिचरत फिरै=जीवन-व्यवहार करता है। छीन भया=क्षीण हो गया अर्थात् स्थूल शरीर की चिन्ता नहीं करता। गुन देह=स्थूल शरीर और त्रिगुण। हीन भई सब कल्पना=सारी कल्पनाएँ [-कामनाएँ] हीन अर्थात् क्षीण हो गईं अथवा हो जाती हैं। भजन करत भय भागिया=भजन [-प्रभु की व्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता और अविनाशित्व का स्मरण] करते हुए, तदभाव निष्ठा के कारण 'भय' [-जो मोह-भ्रम का परिणाम होता है] स्वतः ही तिरोहित हो जाता है। सोच=चिन्ता, अनिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन करत भय भागिया सुमिरन भागा सोच ।
जाप करत जौंरा टल्या सुन्दर सांची लोच ॥26॥
सुन्दर महिमा नाम की क्यौं करि बरनी जाइ ।
सेस सहस मुख कहत हैं सो भी पार न पाइ ॥27॥
सुन्दर महिमा नाम की कहत न आवै अंत ।
शिव सनकादिक मुनि जना थकित भये सब संत ॥28॥
राम भजन जाकै हृदै ताकै टोटा कौंन ।
मूरतिवंती लक्षमी सुन्दर वाकै भौंन ॥29॥
राम नाम जाकै हृदै सुन्दर बंदहि देव ।
पहल डिगावै आइ कै पीछै लागै सेव ॥30॥
राम नाम जाकै हृदै ताकं कौंन अनाथ ।
अष्ट सिद्धि नव निधि सदा सुन्दर वाकै साथ ॥31॥
राम नाम जाकै हृदै जगत षुसी सब होत ।
सुन्दर निंदा करत जे तेई करैं डंडोत ॥32॥
राम नाम जाकै हृदै ताहि नवें सब कोइ ।
ज्यौं राजा की त्रास तें सुन्दर अति डर होइ ॥33॥
सुन्दर भजिये राम कौं तजिये माया मोह ।
पारस कै परसे बिना दिन दिन छीजै लोह ॥34॥

की कल्पना । जौंरा टल्या=जमराज <यमराज अर्थात् मृत्यु का भय [-चिन्ता] टल जाता है । सांची लोच=सच्ची कोमलता [-सात्विक वृत्ति] प्राप्त होती है । सेस=शेषावतार, शेषनाग ।

28-32. कहत न आवै अंत=अन्तिम रूप से कहते नहीं बनती । अथवा असीमता के कारण कहते-कहते भी समाप्त नहीं हो पाती । शिव सनकादिक मुनिजनां=महादेव-सनक-सनन्दन आदि ऋषि-मुनि । अर्थात् अध्यात्म-परम्परा के पक्षधर । टोटा=घाटा, अभाव । मूरतिवंती लक्षमी=मूर्तिवान् लक्ष्मी [-गृहिणी अथवा लक्ष्मी की कृपा, ऋद्धि-सिद्धि रूप वैभव] । भौंन=भवन में । बंदहि देव=देव आकर स्वयं वन्दना करते हैं । क्योंकि, राम-भक्त [-ज्ञानी] को कोई कामना ही शेष नहीं रह जाती, जिसकी पूर्ति देवता कर सकें । पहल डिगावै आइ कै=पहले तो देवता—वर्ग भक्त की परीक्षा लेकर, निष्ठा को विचलित करने की चेष्टा करता है पीछै लागै सेव=जब अपनी चेष्टा में असफल [असमर्थ-] हो जाते हैं, तब फिर वे [-देवता] सेवा में निरत हो जाते हैं । अष्ट सिद्धि नव निधि=आठ सिद्धियाँ और नव निधियाँ अर्थात् सम्पूर्ण वैभव । निंदा करत···डंडोत=जो पहले निन्दा करते थे, वे ही दण्डवत् करने लग जाते हैं ।

33-35. नवै=नमन करते हैं । त्रास=राजा का भय, राजदण्ड का भय । दिन दिन छीजै लोह [कहा॰]=पारस-स्पर्श के बिना लोहा निरन्तर क्षयशील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर हरि कै भजन तें संत भये सब पार।
भवसागर नवका बिना बूडत है संसार ॥35॥
सुन्दर हरि कै भजन तें निर्मल अंतहकर्ण।
सब ही कौं अधिकार है उधरैं चारौं बर्ण ॥36॥
सुन्दर भजन सबै करहु नारायण निरपेछ।
प्रीति परम गुरु लेत हैं अंतिज हो कि मलेछ ॥37॥
प्रीति सहित जे हरि भजें तब हरि होंहि प्रसन्न।
सुन्दर स्वाद न प्रीति बिन भूष बिना ज्यौं अन्न ॥38॥
सुन्दर हरि प्यारा लग्या सोवत जाग्या जन्न।
प्रीति तजी संसार सौं न्यारा कीया मन्न ॥39॥
राम भजन तें रामजी मुदित होत मन मांहिं।
सुन्दर जाकै प्रीति अति ताकौं छाडै नांहिं ॥40॥
राम भजन रामहि मिलै तामैं फेर न सार।
सुन्दर भजै सनेह सौं वाकौं मिलत न बार ॥41॥

बना रहता है। पार=उद्धार, तर गए। भवसार···संसार=भवसागर में नौका [-विचार-ज्ञान अवलम्ब] के बिना, संसार के लोग, संसारी, डूब जाते हैं अर्थात् मोह के कारण अचेत बने रहते हैं।

36-37. उधरें चारौं बर्ण=चारों वर्णों [-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र] का उद्धार होता है। **टिप्पणी** : सन्त-मत पूरे समाज के उद्धार की बात कहता है, वर्ण विशेष की नहीं। इसलिए सन्त-मत वर्ण-व्यवस्था की सीमा को लाँघ कर एक उन्मुक्त-शोषण रहित समाज का पक्षधर बना रहा है। नारायण निरपेछ=परमात्मा [-वर्ण विशेष केलिए] सापेक्ष नहीं है, सबका होने के कारण वह निरपेक्ष है। अंतिज हो कि मलेछ=अन्त्यज हो अथवा मलेच्छ हो अर्थात् समाज में चाहे उसकी कितनी ही निम्न-हीन स्थिति मानी जाती हो, सन्त-विचार में वह 'निम्न' [-पिछड़ा] नहीं है।

38-42. प्रीति सहित=प्रेम पूर्वक, अध्यात्मक पथ के पथिक की प्रथम [आवश्यक-] शर्त यह है कि उसमें [-जिज्ञासा-रुचि,] निष्ठापूर्वक प्रेम-भाव हो। बिना प्रेम-भाव के अध्यात्म-अनुभव [-भक्ति] का कोई स्वाद नहीं। भूष बिना ज्यौं=बिना भूख के खाया हुआ भोजन जैसे अनिष्टकर होता है, वैसे ही बिना रुचि [-प्रीति] के की गई भक्ति, आडम्बर बताई गई है। जन्न=जन, भक्त। प्रीति तजी संसार सौं=संसार से आसक्ति त्याग दी। न्यारा कीया मन्न=मन को न्यारा [-अलग] कर लिया अर्थात् मन की गति अन्तर्मुखी कर ली। मुदित होत=प्रसन्न होते हैं। तामैं फेर न सार=उसमें कोई फेर-फार नहीं है। मिलत न बार=मिलने में, साक्षात्कार करने में देर नहीं लगती। भजन अखंडित=अखण्ड भजन [-जप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भजन तन सौं करै एक भजन मन होइ ।
सुन्दर तन मन कै परै भजन अखंडित सोइ ।।42।।
भजत भजत ह्वै जात है जाहि भजै सो रूप ।
फेरि भजन की रुचि रहै सुन्दर भजन अनूप ।।43।।
सुन्दर भजि भगवंत कौं उधरे संत अनेक ।
सही कसौटी सीस पर तजी न अपनी टेक ।।44।।
भजन किये भगवंत बसि डोली जन की लार ।
सुन्दर जैसें गाय कौं बच्छा सौं अति प्यार ।।45।।
सुन्दर जन हरि कौं भजै हरिजन कौ आधीन ।
पुत्र न जीवै मात बिन माता सुत सौं लीन ।।46।।
राम नाम शंकर कह्यौ गौरी कौं उपदेस ।
सुन्दर ताही राम कौं सदा जपतु है सेस ।।47।।
राम नाम नारद कह्यौ सोई ध्रुव कै ध्यान ।
प्रगट भये प्रह्लाद पुनि सुन्दर भजि भगवांन ।।48।।

स्मरण-समाधि] जो तन और मन अर्थात् माला अथवा जिह्वादि के उच्चारण से, परे होता है। वह जप निरन्तर होता-रहता है। इसलिए **'अजपाजाप'** कहलाता है।

43-47. भजत भजत=भजते-भजते अर्थात् नित्य-स्मरण में लीन रहते हुए। जाहि भजै =जिसका भजन किया जाता है, भजतव्य, भजनीय। भजि=भजकर, स्मरण करके। सही कसौटी सीस पर=सिर पर कसौटी सहन की अर्थात् कठोर परीक्षा में भी भजन की टेक को निभाया। टेक=प्रतिज्ञा, संकल्प। जन की लार=[जन-] भक्त के साथ। डोली=डोले, फिरे, साथ-साथ [-अनुभव में] रहे। जैसे गाय··· अति प्यार [कहा०]=जैसे गाय को अपने वत्स [-बछड़ा-बछिया] से अहेतुक प्रेम होता है। इसलिए वह उसके लिए आकर्षित बनी रहती है। ऐसे ही प्रभु अपने समर्पित भक्त के प्रति आकर्षित बने रहते हैं। पुत्र न जीवै···लीन [कहा०]=पुत्र [-शिशु] माता के बिना नहीं जीवित रह पाता और माता पुत्र के बिना, ममता वश आसक्त बनी रहती है। **टिप्पणी** : लोक-व्यवहार के उदाहरणों से आध्यात्मिक सम्बन्धों की सूक्ष्मता का संकेत मिलता है। गौरी कौं उपदेस=[पौराणिक महादेव ने-] राम-नाम का उपदेश पार्वती को दिया था। ताही राम कौं=उसी [व्यापक-अज-अविनाशी-] राम को।

48-49. **टिप्पणी** : साखी संख्या 47 से 51 तक ऐसे पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों का उल्लेख है, जिन्होंने जीवन-भर निष्ठापूर्वक, राम-नाम मन्त्र का निर्वाह किया था। सन्त-परम्परा में उनका उल्लेख उसी निष्ठा एवं सशक्त राममयता के [महिमा-] गायक रूप में किया जाता है। नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, रंका-बंका, त्रिलोचन, नामदेव, कबीर रैदास, सोझा-पीपा, दादूदयाल आदि ऐसे ही कुछ नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम नाम रंकै भज्यौ भज्यौ त्रिलोचन राम।
नामदेव भजि राम कौं सुन्दर सारे कांम ।।49।।
रामहि भज्यौ कबीरजी राम भज्यौ रैदास।
सोझा पीपा राम भजि सुन्दर हृदय प्रकास ।।50।।
सद्‌गुरु दादू राम भजि सदा रहै लैलीन।
सुन्दर याही समझि कैं राम भजन हित कीन ।।51।।
सुन्दर सुरति समेटि कैं सुमिरन सौं लैलीन।
मन बच क्रम करि होत है हरि ताकै आधीन ।।52।।
सुमिरन तें संसय मिटै सुमिरन मैं आनन्द।
सुन्दर सुमिरन कैं कियें भागि जाहिं दुख द्वंद्व ।।53।।
सुमिरन तें श्रीपति मिलै सुमिरन तें सुख सार।
सुमिरन तें परिश्रम बिना सुन्दर उतरै पार ।।54।।
सुमिरन ही मैं शील है सुमिरन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन मोष ।।55।।
जाही कौ सुमिरन करै ह्वै ताही कौ रूप।
सुमिरन कीयें ब्रह्म कैं सुन्दर ह्वै चिद्रूप ।।56।।

।। इति सुमिरन कौ अंग ।।2।।

हैं, जिनका उल्लेख सुन्दरदास ने पूर्ववर्ती ज्ञान-शाखा के पुरस्कर्ताओं के रूप में किया है। सारे कांम=कार्य सम्पन्न किए।

50-52. हृदय प्रकास=हृदय प्रकाशित हुआ। ज्ञानोदय हुआ लैलीन=लौ-लीन, तन्मय तदाकार, साक्षात्कारिता की दशा। राम भजन हित कीन=राम-भजन में उक्त लयलीनता ही हितकारक सिद्ध हुई है। सुरति समेटि कै=सम्पूर्ण रति-भाव को [समेट कर-] संचित कर अन्तर्मुखी दिशा में गतिमान करना ही 'सुरति' या 'सुमिरण-लय' है। हरि ताकै आधीन=परमात्मा उसके अधीन [-अनुसार] बने रहते हैं।

53-56. सुमिरन तें संसय मिटै=निष्ठा पूर्वक सुमिरण करते रहने से संशय समाप्त हो जाता है और जब संशय समाप्त हो जाता है तो 'आनन्द भाव' का होना उसका अवश्यंभावी परिणाम है। दुख द्वंद्व=दुःख-जनित द्वन्द्व, सन्ताप, क्लेश। श्रीपति= लक्ष्मीपति विष्णु अर्थात् व्यापकता का अनुभव। परिश्रम बिना=बिना अतिरिक्त श्रम के अर्थात् आडम्बर किए बिना। उतरै पार=पार उतर जाता है अर्थात् भव-सागर [-ससार] के जीवन को सहज ही सन्तरित कर लेता है। शील=आचरण, जीवन-व्यहार। जीवन मोष=जीवन-मोक्ष, जीवन्मुक्ति, जीवन में ही मुक्ति-भाव का अनुभव, मरजीवा भाव। जाही कौ···रूप=जिसका स्मरण-ध्यान किया जाता है, 'तदनुरूपे तदाकारिता' सिद्धान्त से उसी की चेतना में निमग्न हो जाता है [-भृंगी कीट-न्याय से]। चिद्रूप=चित्+रूप, चैतन्य रूप, चैतन्य ब्रह्म स्वरूप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।।3।। अथ बिरह कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : ज्ञान-मार्ग में 'विरह' भाव-योग की एक अवस्था विशेष है। विरहानुभूति द्वैत जन्य मिलनोत्कण्ठा है। प्रिया-जीवात्मा जब एक विशेष प्रकार की भाव-अपूर्णता का अनुभव करती है, तब वह अंश रूप में अंशी के प्रति भावातुर हो उठती है। वह अनुभव करती है कि 'अंगी' अंग से वियुक्त है। इसीलिए सन्त-वाणी परम्परा में विरह-भाव प्रतिपादक '**विरह कौ अंग**' का विशेष महत्त्व है। सन्त-चेतना में 'विरह' विशेष प्रकार की भाव-ऊष्मा का द्योतक रहा है, जो सन्त-मन के उत्कर्ष को प्रस्तुत करता रहा है। उसी परम्परा में सुन्दरदास ने प्रस्तुत अंग की 52 साखियों में, दाम्पत्य भाव के ताने-बाने से भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में, प्रेम की परिपक्वता व्यंजित की है। नाम-रूप से भिन्न निर्विशेष होते हुए भी वह विशेष प्रेमाकुलता और उसकी अभिव्यक्ति, विश्व-साहित्य की स्थायी धरोहर मानी जा सकती है। क्योंकि, इस विरह की आग में, कहने भर केलिए नहीं, वास्तव में, भाव-विरही मनीषियों ने अपनी चेतना को तपा-तपा कर कंचन बनाया है। प्रेमजन्य अतृप्ति के बिम्ब, जिन उदाहरणों [-दृष्टान्त-रूपकों] के माध्यम से यहाँ अभिव्यक्त हुए हैं, वे सभी विश्लेषण-समीक्षा का विषय होते हुए भी मनोभूमि को स्पर्श करने में समर्थ हैं। मूल पाठ देखिए—

दोहा : मारग जोवै बिरहनी चितवै पिय की वोर।
सुन्दर जियरै जक नहीं कल न परत निस भोर ।।1।।
सुन्दर बिरहनि अति दुखी पीव मिलन की चाह।
निस दिन बैठी अनमनी नैंननि नीर प्रबाह ।।2।।

चूर्णिका : 1-2. जोवै=देखती है। मारग जोवै [मुहा०]=वाट जोहती है, मार्ग देखती है, प्रतीक्षा रत है। चितवै=देखती है। पिय=प्रिय, इष्ट, पति परमात्मा। बिरहनी=विरहिणी, प्रिया-जीवात्मा। जक=झक [हिं०]=जिद, अड़, झक्क। जियरै=हृदय में। कल=चैन, सन्तोष। निस भोर=रात-दिन, व्यंजना है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर पिय कै कारणैं तलफै बारह मास।
निस दिन लै लागी रहै चातक की सी प्यास ।।3।।
सुन्दर ब्याकुल बिरहनी दीन भई बिललाइ।
दंत तिणां लीयें कहै रे पिय आप दिषाइ ।।4।।
बिरहै मारी बान भरि भई और की और।
बैद बिथा पावै नहीं सुन्दर लगी सु ठौर ।।5।।
सुन्दर बिरहनि मरि रही कहूं न पइये जीव।
अमृंत पांन कराइ कै फेरि जिवावै पीव ।।6।।
सुन्दर नख सिख परजरै छिन छिन दाझै देह।
बिरह अग्नि तबही बुझै जब बरषै पिय मेह ।।7।।
बिरह बघूरा लै गयौ चित्तहि कहूं उडाइ।
सुन्दर आवै ठौर तब पीय मिलै जब आइ ।।8।।
सुन्दर बिरहनि दूबरी बिरह देत तन त्रास।
अजा रहै ढिंग सिंह कै कहौ चढै क्यौं मांस ।।9।।

निराशा से आशा तक। चाह=उत्कण्ठा, कामना। अनमनी=उन्मनी, उदास, अन्यमनस्का, उर्ध्वमुखी। नैननि नीर प्रवाह=नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित बने रहते हैं।

3-5. तलफै=तड़फती है। लै लागी रहै=लौ-लगन लगी रहती है। चातक-प्यास=चातक पक्षी जैसी निष्ठा जन्य उत्कण्ठा। दीन=निरुपाय। बिललाइ=बिलबिलाती है, तड़फन भरी बेचैनी का अनुभव करती है। दंत तिणा लीयें कहै[मुहा०]=दाँतों तले तिनका दबाए हुए कहती है [विवशताजन्य बिम्ब]। मारी बान भरि=विरह ने, कमान पर खींच कर मारे गए तीर की तरह, वेध दिया है। भई और की और [मुहा०]=और की और होना अर्थात् चेतना परिवर्तन [-रूपान्तरण] होना। विरह जन्य प्रभाव से विरहणी और की और हो गई है। बैद=वैद्य। बिथा=व्यथा पीड़ा, रोग। लगी सुठौर=सही स्थान पर मर्माहत है। अर्थात् इलाजी [-वैद्य] विरह-पीड़ा का इलाज नहीं कर सकता।

6-9. कहूं न पइये जीव=[शरीर में कहीं-] प्राणों का [-प्राणवान् होने का] लक्षण नहीं दिखाई दे रहा है अर्थात् निष्प्राणवत्, निश्चेष्ट लगती है। परजरै=जलती है, दाहित बनी-रहती है। दाझै देह=शरीर दग्ध बना-रहता है। बिरह अग्नि=विरहाग्नि, विरही भावों की आग-ताप। पिय मेह=प्रिय [-इष्ट] रूप वर्षा। बिरह बघूरा=विरह रूप बगूला [-वायु प्रवेग]। आवै ठौर तब=स्थिति [-निश्चिन्तता-एकाग्रता] में तभी आ सकता है जब। दूबरी=दुबली, दुर्बल, क्षीण, कृश काय। त्रास=भय, सन्ताप। अजा रहै·· मांस [लोको-]=बकरी को शेर के ढिंग [-समक्ष] रखा जाए, तो उस पर मांस कैसे चढ़ सकता है? अर्थात् मृत्यु-भय से उसका खाया-पिया उसके अंग नहीं लगता। इसीप्रकार विरह रूप शेर जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बिरहनि दुख भरी कहै दुख भरे बैंन।
पिय कौ मारग देषतें अंसुवा आवत नैंन ॥10॥
सुन्दर बिरहनि कै निकट आई बिरहनि कोइ।
दुखिया ही दुखिया मिली दहुंवनि दीनौ रोइ ॥11॥
सुन्दर बिरहनि बंदि मैं बिरहै दीनी आइ।
हाथ हथकरी तौक गलि क्यौं करि निकस्यौ जाइ ॥12॥
सुन्दर बिरहनि बंदि मैं निस दिन करै पुकार।
पीय रह्यौ कहुं बैसि कै बंदि छुड़ावनहार ॥13॥
बिरहा बिरहनि सौं कहत सुन्दर अति अरि भाव।
जब लग तोहि न पिय मिलै तब लग घालौं घाव ॥14॥
बिरहा दुखदाई लग्यौ मारै ऐंठि मरोरि।
सुन्दर बिरहनि क्यौं जिवै सब तन लियौ निचोरि ॥15॥
सुन्दर बिरहनि कौं बिरह भूत लग्यौ है आइ।
पीय बिना उतरै नहीं सब जग पचि पचि जाइ ॥16॥
निस दिन बिरहा भूत लगि बिरहनि मारी गोडि।
सुन्दर पीय जबैं मिलै तब ही भागै छोडि ॥17॥

अजा रूप विरहिणी के निकट रहेगा तो वह कैसे मांसल हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती। 10, पिय कौ मारग देखतें [मुहा०]=प्रिय के मार्ग की ओर देखते हुए, वाट जोहते-जोहते। असुंवा=आँसू।

11-12. दुखिया ही दुखिया मिली [कहा०]=दुखियारी [-जीवात्मा] जब अन्य दुखी से मिलती है, तो सहानुभूति में द्रवित हो उठती है। तात्पर्य है कि एक दुःखी दूसरे दुःखी का दुःख समझ सकता है। कहा भी है—'जाकै पैर न फटी बिवाई। सो का जाने पीर पराई।' दहुंवन=दोनों ने। बंदि=बन्दीगृह, कैद। हाथ हथकरी तौक गलि [कहा०]=हाथ में हथकड़ी और गर्दन में तौक़ [-अपराधी के गले में पहनाई जाने वाली लोहे की हँसुली] पड़ी है। अर्थात् पूरी तरह से जकड़बन्दी में।

13-15. निस दिन करै पुकार=रात-दिन अरदास करती-रहती है। बैसि कै=बैठकर, निश्चित होकर। बंदि छुडावनहार=[प्रिय के अतिरिक्त-] बन्दीगृह से छुड़ाने वाला। अरि भाव=शत्रु भाव। घालौं घाव=घाव करूँगा, दग्ध करता रहूँगा। मारे ऐंठि मरोरि=ऐंठ-मरोड़ कर मारता है। सब तन लियौ निचोरि [कहा०] =सब शरीर निचोड़ डाला है, निर्बल-निस्तेज कर दिया है।

16-18. बिरह भूत लग्यौ=विरह रूप भूत [-पिशाच] लग गया है। पिय बिना उतरै नहीं=प्रिय के बिना उतरता नहीं है। अर्थात् विरह रूप प्रेत, प्रिय मिलन [-संयोग] के बिना शमित नहीं होता। पचि पचि जाइ=खपता-रहता है, निरुपाय होता रहता है। बिरहनि मारी गोडि=विरहिणी के गोड़ों [-पैरों] पर चोट की है। अर्थात् वह चलने-फिरने में असमर्थ हो गई है। भागै छोडि = छोड़ कर भागेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बिरहनि अधजरी दुःख कहै मुख रोइ।
जरि बरि कै भस्मी भई धुवां न निकसै कोइ ॥18॥
सुन्दर काची बिरहनी मुख तैं करै पुकार।
मरि माहैं मठ ह्वै रहै बोलै नहीं लगार ॥19॥
ज्यौं ठगमूरी षाइ कै मुखहि न बोलै बैंन।
टुगर टुगर देष्या करै सुन्दर बिरहा ऐंन ॥20॥
हाकी बाकी रहि गई न कछु पिवै न षाइ।
सुन्दर बिरहनि वह सही चित्र लिषी रहि जाइ ॥21॥
राम सनेही तजि गये प्रान हमारा लेइ।
सुन्दर बिरहनि बापुरी किसहिं संदेसा देइ ॥22॥
भूष पियास न नींदडी बिरहनि अति बेहाल।
सुन्दर प्यारे पीव बिन क्यौं करि निकसै साल ॥23॥
वहुतक दिन बिछुरें भये प्रीतम प्रान अधार।
सुन्दर बिरहनि दरद सौं निस दिन करै पुकार ॥24॥
सुन्दर तलफै बिरहनी बिलक तुम्हारे नेह।
नैंन श्रवैं घन नीर ज्यौं सूकि गई सब देह ॥25॥
सब कोई रलियां करै आयौ सरस बसंत।
सुन्दर बिरहनि अनमनी जाकौ घर नहीं कंत ॥26॥

अध जरी=अधजली। दुःख कहै मुख रोइ [कहा०]=मुख से रोते हुए अपने दुःख-दर्द को बताती है। जरि बरि कै भस्मी भई [कहा०]=जल-बल कर, भस्म हो गई है। **टिप्पणी** : ऊहात्मक अभिव्यक्ति, सूफी कवियों के विरह-वर्णन का प्रभाव। विरह-आग की विशेषता यह है कि उससे धुवाँ [-दिखावा] नहीं निकलता, क्योंकि यह भौतिक आग की तरह नहीं है।

19-21. काची बिरहनी=अपरिपक्व विरहिणी, अधीर जीवात्मा। मरि माहै मठ ह्वै रहै [लोको०]=भीतर ही मरकर मठ होना। अर्थात् प्रिय-भाव में स्तब्ध या सुन्न हो जाना। लगार=लौ लीन क्रिया। ठगमूरी=ठग के द्वारा दी गई मिठाई। टुगर टुगर देष्या करै [मुहा०]=टुकुर-टुकुर अर्थात् टकटकी लगाकर देखती-रहती है। अथवा विरह, टक-टकी लगाकर देखता-रहता है। ऐंन=सन्मुख, प्रत्यक्ष। हाकी बाकी रह गई [मुहा०]=हक्की-बक्की, भौचक्की रह गई। चित्र लिषी रहि जाइ [मुहा०]=चित्रलिखी-सी दिखाई देती है अर्थात् स्तब्ध [-निश्चेष्ट] दिखाई देती है।

22-24. राम सनेही=राम-प्रिय अर्थात् सन्त-साधक-भक्त जन। बापुरी=विचारी, निरुपाय। नींदडी=नींद, निद्रा। वेहाल=बेचैन, व्याकुल। साल=नोंक, कसक, गाँसी। प्रान अधार=प्राणाधार, जीवन-अवलम्ब।

25-26. तलफै=तड़पती है। बिलक < विलख [सं०] वि+लक्ष=विसूर-विसूर कर विलाप, बिलख-बिलखकर, फूट-फूटकर। सूकि गई सब देह [मुहा०]=शरीर सूख कर काँटा हो गया है। रलियां=रँगरेलियाँ, मौज-मस्ती, खुशियाँ। अनमनी=उदास, उन्मनी। कंत=प्रिय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर घर मंगल होत है बाजहिं ताल मृदंग।
सुनि सुनि विरहनि परजरै सुन्दर नस सिख अंग ॥27॥
अपने अपने कंत सौं सब मिलि षेलहिं फाग।
सुन्दर बिरहनि देषि करि उसी बिरह कै नाग ॥28॥
चोवा चन्दन कुमकुमा उडत अबीर गुलाल।
सुन्दर बिरहनि कै हृदै उठत अग्नि की झाल ॥29॥
पीय लुभाना सुनि सषी काहू सौं परदेस।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै आया नहीं सन्देस ॥30॥
जा दिन तें मोहि तजि गये ता दिन तें जक नांहि।
सुन्दर निस दिन बिरह की हूक उठत उर मांहि ॥31॥
बार लगाई बल्लभा बिरहनि फिरै उदास।
सुन्दर गई बसंत ऋतु अब आयौ चौमास ॥32॥
दिस दिस तें बादल उठे बोलत चातक मोर।
सुन्दर चक्रित बिरहनी चित्त रहै नहिं ठौर ॥33॥
दामिनि चमकै चहुं दिसा बून्द लगत है बांन।
सुन्दर ब्याकुल बिरहिनी रहै न निकसे प्रांन ॥34॥

27-31. मंगल होत है=मंगलाचार गीत होते हैं, खुशियाँ मनाई जाती हैं। ताल मृदंग= वाद्य, खुशी के बाजे। परजरै=जलती है, विरह दग्ध होती है। नख सिख अंग= पैर के नाखुन से शिखा तक सम्पूर्ण शरीरांगों में। षेलहिं फाग=फाग खेलते हैं। **टिप्पणी** : फाल्गुन माह में उल्लास से भरकर, सभी सुहागिनि स्त्रियाँ अपने-अपने प्रिय पति से फाग माँगती हैं और वे उत्सव में रंग-गुलाल आदि एक-दूसरे पर डालते हैं। तब स्त्रियाँ पुरुषों से उपहार प्राप्त करती हैं। इसी को **'फगुआ देना'** कहते हैं। विरह कै नाग=विरह रूप सर्प। अग्नि-झाल=आग की लपट। पीय लुभाना···काहू सौं परदेस=प्रिय किसी अन्य स्त्री [-कामिनी] से, परदेश में आकर्षित होकर उसके वशवर्ती हो गया है। जक=चैन, तृप्ति। हूक उठत उर [मुहा०]= हृदय में स्मृति की हूक [-भभका-सी] उठती है। हूक=हूला, भभूका।

32-34. बार लगाई=देर लगा दी, विलम्ब कर दिया। बल्लभा <वल्लभ [सं०]= स्वामी, पति। बसंत ऋतु=वसन्त ऋतु अर्थात् हर्षोल्लास का मौसम। चौमास <चौमासा <चातुर्मास [सं०]=वर्षाऋतु अर्थात् कठिनाई [-मुसीबत] के दिन। बादल उठे=मेघ उमड़े। चक्रित=चकित, भौचक्की, अवाक्। चित्त रहै नहिं ठौर=चित्त-मन स्थिर नहीं है, बेचैनी-व्याकुलता बनी रहती है। दामिनि=विद्युत, बिजली। बून्द-बांन=बाण रूप वर्षा-विन्दु, बूंदे रूप तीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्धेरी रैनि है दूजै सुनौ भौंन।
सुन्दर रटै पपीहरा बिरहनि जीवै कौंन ॥35॥
पावस नृप चढि आइयौ साजि कटक मम गेह।
सुन्दर बिरहनि थरसली कंपि उठी सब देह ॥36॥
चलैं हवाई दामिनी बाजै गरज निसांन।
सुन्दर बिरहनि क्यौं जिवै घर नहिं कंत सुजांन ॥37॥
बादल हस्ती देषिये सुन्दर पवन तुरंग।
दादुर मोर पपीहरा पाइक लीयें सङ्ग ॥38॥
घेर्‌यौ गढ दशहूं दिशा बिरहा अग्नि लगाइ।
सुन्दर ऐसै सङ्कटहिं जौ पिय करै सहाइ ॥39॥
सांई तूं ही तूं करौं क्यौं ही दरस दिषाव।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै ज्यौं ही त्यौं ही आव ॥40॥
पीय पीय रसना रटै नैंना तलफें तोहि।
सुन्दर बिरहनि अति दुखी हाइ हाइ मिलि मोहि ॥41॥
जोबन मेरा जात है ज्यौं अंजुरी का नीर।
सुन्दर बिरहनि बापुरी क्यौं करि बन्धै धीर ॥42॥

35-38. रैनि=रात्रि। भौन=भवन। पपीहरा=पपीहा। पावस नृप [रूपक]=नृप रूप पावस [वर्षा]। कटक=सेना। मम गेह=मेरे घर पर। थरसली [राज-]=कम्पित हो गई, हिल गई, विचलित हो गई। कंपि उठी सब देह [मुहा०]=शरीर कँपकपा उठा, रोमांचित हुआ [-अनुभाव]। हवाई=धूरगोले। बाजै गरज निसांन=नगाड़े रूप मेघ-गर्जन हो रहा है। क्यौं जिवै=कैसे जीवित रह सकती है। सुजांन=सुविज्ञ। बादल-हस्ती=हस्ती रूप बादल [-रूपक]। पवन-तुरंग=अश्व रूप पवन [-रूपक]। पाइक=पैदल, पदातिक सैनिक।

39-42. गढ=कोट, किला, शरीर रूप गढ़। सङ्कटहिं=संकट-मुसीबत में। सहाइ=सहायता। सांई तूं ही तूं करौं=हे स्वामी, तू ही तू है, ऐसी उच्चारण-ध्वनि करती-रहती हूँ। क्यों ही=किसी प्रकार भी। ज्यौ ही त्यौ=जैसे-तैसे, किसी प्रकार से, येन केन प्रकारेण। रसना रटै=जिह्वा पुकारती-रहती है। नैंना तलफैं=नेत्र [-दर्शन को] व्याकुल बने रहते हैं। हाइ हाइ=अरे, किसी भी प्रकार से। जोबन < यौवन=युवावस्था, अनुकूल जीवन-काल। ज्यौ अंजुरी का नीर [-दृष्टा०, कहा०]=जैसे अँजुलि गत जल बूँद-बूँद करके रिस जाता है, वैसे ही जीवन-काल, एक-एक दिन करके नष्ट होता-रहता है। बन्धै धीर=धीरज धरै, कैसे धैर्य धारण करे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस बिधि पीव रिझाइये सो बिध जानी नांहिं।
जोबन जाइ उतावला सुन्दर यहु दुख मांहिं ।।43।।
किये सिंगार अनेक मैं नष सिख भूषन साजि।
सुन्दर पिय रीझै नहीं तौ सब कौंनें काजि ।।44।।
सुन्दर बिरहनि बहु तपी मिहरि कछू इक लेहु।
अवधि गई सब बीति कैं अब तौ दरसन देहु ।।45।।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै जिनि तरसावौ मोहि।
प्रान हमारै जात हैं टेरि कहत हौं तोहि ।।46।।
ढोलन मेरा भावता बेगि मिलहु मुझ आइ।
सुन्दर ब्याकुल बिरहनी तलफि तलफि जिय जाइ ।।47।।
लालन मेरा लाडिला रूप बहुत तुझ मांहिं।
सुन्दर राषै नैंन मैं पलक उघारै नांहि ।।48।।
सुन्दर बिगसै बिरहनी मन मैं भया उछाह।
फल बिछाऊं सेजरी आज पधारैं नाह ।।49।।

43-44. जिस बिधि=जिस तरीके से । रिझाइये=प्रसन्न कीजिए। जोबन जाइ उतावला [कहा०]=जल्दबाज-चपल यौवन बीत रहा है, यह दुःख बना-रहता है। सिंगार=शृंगार, अलंकरण, सज्जा। भूषण साजि=आभूषण सजा कर। पिय··· कौंने काजि=यदि प्रियतम [-पति, स्वामी, मालिक] अपने कार्य-व्यवहार से प्रसन्न नहीं होते, तो शृंगारादि का क्या प्रयोजन ?

45-48. तपी=तपस्या की, ताप सहन किया, इसलिए तपस्विनी है। मिहिर=कृपा-दया। अवधि गई=आयु, समय किसप्रकार नष्ट हुआ। जिनि तरसावौ मोहि=मुझे तरसाओ-तड़पाओ मत। टेरि कहतु हौं=बुलाकर [-चिल्लाकर, सावधान होकर या करके] कहती हूँ। ढोलन<ढोला [राज०]=['ढोला' से ढोलन शब्द निष्पन्न] प्रिय, प्यारा। जिय जाइ=प्राण निकलते हैं। 'लालन' शब्द लाल से निष्पन्न। लाडिला=प्रिय। पलक उघारै नांहि [मुहा०]=पलक उघार कर [-उठाकर] नहीं देखती। अर्थात् अन्दर का बिम्ब कहीं बाहर न निकल जाए, इस शंका से पलक नहीं उघाड़ती।

49. बिगसै=विकसित होती है, प्रसन्न होती है। उछाह=उत्साह, उमंग। फूल बिछाऊं सेजरी [मुहा०]=फूलों की सेज बिछा दूं अथवा बिछाए-रखती हूँ। नाह=प्रिय, स्वामी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्या सन्देसा पीव का मन मैं भया अनंद ।
सुन्दर पाया परम सुख भाजि गया दुख दंद ।।50।।
दया करहु अब राम जी आवौ मेरैं भौंन ।
सुन्दर भागै दुःख सब बिरह जाइ करि गौंन ।।51।।
अब तुम प्रगटहु राम जी हृदै हमारैं आइ ।
सुन्दर सुख सन्तोष ह्वै आनंद अंग न माइ ।।52।।

।। इति बिरह कौ अंग ।।3।।

50-52. परम सुख=परमानन्द । दुख दंद=पीड़ा-क्लेश, दुःख-द्वन्द्व अर्थात् अभाव जन्य दुःख और द्विधा ग्रस्त व्यक्ति की मनोकामना कभी पूर्ण नहीं होती । भौंन=भवन, आवास । गौंन=गमन । आनंद अंग न माइ=अनुभवानन्द [-भावानन्द] शरीर [-हृदय] में नहीं समा पाता अथवा समा नहीं पा रहा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।।4।। अथ बंदगी कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 30 दोहों [-साखियों] के द्वारा कवि ने, सन्तमत के अनुयायी [-जिज्ञासु] की प्रथम आवश्यकता [-अपेक्षा] को पूर्ण करते हुए, वन्दना [-बन्दगी] का महत्त्व प्रतिपादित किया है रचनाकार का विश्वास है। कि [साधक-] विचारक का व्यक्तित्व बनता है। बन्दगी जनित विनम्रता से सात्विक चेतना का विस्तार तभी होता है। अनेक उदाहरण, दृष्टान्त, रूपक, मुहावरादि देते हुए सुन्दरदास ने अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया है। 'बंदगी' शब्द-चर्या, जिस समुदाय में व्यवहृत होती है, उसी में प्रचलित शब्दावली का बहुल प्रयोग इस अंग में देखने को मिलता है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

दोहा : सुन्दर अंदर पैसि करि दिल मौं गोता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये सांई सिरजनहार ।।1।।
सुन्दर दिल मौं पैसि करि करै बंदगी षूब।
तौ दिल मौं दीदार है दूरि नहीं महबूब ।।2।।
जिस बंदे का पाक दिल सो बंदा माकूल।
सुन्दर उसकी बंदगी सांई करै कबूल ।।3।।

चूर्णिका : 1-3. अंदर पैसि करि=अन्दर प्रविष्ट होकर, अन्तर्मुखी होकर। दिल मौं=हृदय में। गोता मारि=गोता लगा, डुबकी लगा, गहराई-सूक्ष्मता में प्रवेश कर। सांई=स्वामी। बंदगी [फा०]=प्रार्थना, प्रणाम, सलाम, पूजा, इबादत, आराधना, उपासना, अरदास, नमाज़। दीदार [फा०]=दर्शन, दीद, जल्वा, स्वरूप। महबूब [अ०]=प्रिय, प्रेमास्पद, प्रेमपात्र, माशूक, अज़ीज़-तरीन। पाक दिल=पवित्र हृदय। बंदा < बंदए [फा०]=सेवक, भक्त, निष्काम सेवा करने वाला। माकूल [अ०]=योग्य, ठीक, सही। कबूल=स्वीकार, मंजूर। भया=हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंदा सांई का भया सांई .बंदे पास।
सुन्दर दोऊ मिलि रहे ज्यौं फुलहु मैं बास ॥4॥
हर दम हर दम हक्क तूं लेइ धनी का नांव।
सुन्दर ऐसी बंदगी पहुंचावै उस ठांव ॥5॥
बंदा आया बंदगी सुनि सांई का नांव।
सुन्दर षोज न पाइये ना कहुं ठौर न ठांव ॥6॥
उलटि करै जो बंदगी हरदम अरु हर रोज।
तौ दिल ही मैं पाइये सुन्दर उसका षोज ॥7॥
सुन्दर बंदा चुस्त ह्वै जौ पैठै दिल मांहि।
तौ पावै उस ठौर ही बाहिर पावै नांहि ॥8॥
सुन्दर निपट नजीक है उठै जहां थी स्वास।
उहांहि गोता मारि तूं सांई तेरै पास ॥9॥
सषुन हमारा मांनिये मत षोजै कहुं दूर।
सांई सीने बीच है सुन्दर सदा हजूर ॥10॥
सुन्दर भूल्या क्यौं फिरै सांई है तुझ मांहि।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या दूजा कोई नांहि ॥11॥
सुन्दर तुझ ही मांहि है जो तेरा महबूब।
उस षूबी कौं जानि तूं जिस षूबी तें षूब ॥12॥
जौ बंदा हाजिर षड़ा करै धंणी का कांम।
सांई कौं भूलै नहीं सुन्दर आठौं यांम ॥13॥

---

4. पास = निकट, हजूर, सामीप्य भाव। ज्यौं फुलहु मैं बास [उदा०] = जैसे पुष्प में सुगन्ध रहती है।

5-7. हर दम = हर श्वास में। हक्क तूं < हक़-हक्क [अ०] = सत्य, यथार्थ, वाकई ईश्वर तू ही है। धनी = स्वामी, पति-परमात्मा। उस ठांव = उस गन्तव्य [-परम] पद तक। षोज न पाइये = खोज नहीं सकते, चिह्न प्राप्त नहीं होते। उलटि करै जो बंदगी = उलट कर अर्थात् अन्तर्मुखी होकर [-मरजीवा होकर] जो [ध्यान-] बन्दगी करता है। उसका षोज = उसके चिह्न, उसकी अनुभूति।

8-10. चुस्त = सावधान, तत्पर। पैठै = प्रवेश करता है, स्थित होता है। बाहिर = बाहर, बाह्य प्रसार में, इन्द्रियों के बहिर्मुखी प्रवाह में। निपट = पूरी तरह से। नजीक < नजदीक [फा०] = समीप, करीब। उहांहि = वहीं पर। जहां थी = जहाँ से। सषुन < सखुन-सुखन [फा०] = वचन, कथन, सलाह, उपदेश, बात। सांई सीने बीच है [कहा०] = परमात्मा हृदय में विद्यमान है।

11-13. तुझ मांहि = तेरे हृदय में। एकमेक ह्वै मिलि रह्या = [तदात्म-]एकात्म होकर जो रला-मिला रहता है। दूजा कोई नांहि = द्वितीयोनास्ति, एक [-ब्रह्म] ही है, दूसरा कोई है ही नहीं। षूबी < खूबी [फा०] सुन्दर, हसीन, उत्तम गुण। धणी का कांम = स्वामी [-पति-मालिक] का काम। आठौं यांम = अष्ट याम, हर समय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जौ यह उसका ह्वै रहै तौ वह इसका होय।
सुन्दर बातौं ना मिलै जब लग आपन षोय ।।14।।
सुन्दर बंदा बंदगी करै दिवस अरु रात।
सो बंदा कहिये सही और बात की बात ।।15।।
करै बंदगी वहुत करि आपा आंणै नांहि।
सुन्दर करी न बंदगी यौं जांणै दिल मांहि ।।16।।
बंदा आवै हुकम सौं हुकम करै तहां जाइ।
सुन्दर उजर करै नहीं रहिये रजा षुदाय ।।17।।
सांई बंदे कौं कसै करै बहुत बेहाल।
दिल मैं कछु आंणै नहीं सुन्दर रहै षुस्याल ।।18।।
सुन्दर बंदा बंदगी सदा रहै इकतार।
दिल मैं और न दूसरा सांई सेती प्यार ।।19।।
मुख सेती बंदा कहै दिल मैं अति गुमराह।
सुन्दर सो पावै नहीं सांई की दरगाह ।।20।।
सुन्दर ज्यौं मुख सौं कहै त्यौं ही दिल मैं जाप।
सोई बंदा सरषरू सांई रीझै आप ।।21।।
कै सांई की बंदगी कै सांई का ध्यान।
सुन्दर बंदा क्यौं छिपै बंदै सकल जिहांन ।।22।।

14-16. यह=इदं या त्वम् पद, अहं पुष्ट व्यक्तित्व। वह त्वं या तत्पद, परम पद, विगलित अहं की व्यापक चेतना, परमात्मा। बातौं ना मिलै [कहा०]=केवल बातों से कार्य-सिद्ध नहीं होता। आपन-षोय='आपा' विलय करने से, स्वयं को समर्पण करने, तन्मय होने से अथवा अन्तर्मुखी वृत्ति से अर्थात् अहं के रूपान्तरण किए बिना 'वह' [-अनुभव] नहीं मिलता। और बात की बात [मुहा०]=और तो बात की बातें हैं अर्थात् बातें ही बातें हैं, उनमें क्रिया रूप नहीं है। आपा=अहंकार, अभिमान, कर्त्तापन।

17-21. हुकम सौं=हुक्म से, ईश्वर इच्छा [-आज्ञा] से। उजर<उज्र [अ०]= ऐतराज, आपत्ति, विरोध। रजा षुदाइ=खुदा [-ईश्वर] की आज्ञा-इच्छानुसार। सांईं बंदे कौं कसै=ईश्वर सेवक को अनुशासित करता है, परीक्षा लेता है। वेहाल=व्याकुल, बेचैन। षुस्याल=खुशहाल, मालिक की मौज में। इकतार= एक-सा, एक रस, समरूप। सांई सेती प्यार=प्रभु से प्रेम [-निष्ठा]। मुख सेती बंदा कहै=मुख से तो अपने को ईश्वर का भक्त कहता है। गुमराह=भ्रमित, रास्ता भूला हुआ। सांई की दरगाह=स्वामी-प्रभु की शरणस्थली। दरगाह [फा०]=देहलीज, दरबार, राजसभा। सरषरू<सुर्खरू [फा०]=तेजस्वी, इज़्ज़तदार, रूहानी चमक वाला। रीझै=प्रसन्न होता है।

22-24. बंदगी ध्यान=पूजा तल्लीनता। छिपै=गुप्त रहता है, ओट में रहे। बंदै सकल जिहांन=सारा संसार, ऐसे बन्दे-भक्त की वन्दना करता है। छाना क्यौं रहै=गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत छिपावै आप कौं मुझे न जांणै कोइ।
सुन्दर छाना क्यौं रहै जग मैं जाहर होइ ।।23।।
औरत सोई सेज पर बैठा षसम हजूर।
सुन्दर जान्यां ष्वाब मौं षसस गया कहुं दूर ।।24।।
तलब करै बहु मिलन की कब मिलसी मुझ आइ।
सुन्दर ऐसै ष्वाब मौं तलफि तलफि जिय जाइ ।।25।।
कल न परत पल एक हूं छाडै सास उसास।
सुन्दर जागी ष्वाब सौं देषै तौ पिय पास ।।26।।
मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होइ ।।27।।
सुन्दर दिल की सेज पर औरत है अरवाह।
इस कौं जाग्या चाहिए साहिब बे परवाह ।।28।।
जौ जागै तौ पिय लहै सोयें लहियै नांहि।
सुन्दर करियै बंदगी तौ जाग्या दिल मांहि ।।29।।
जागि करै जो बंदगी सदा हजूरी होइ।
सुन्दर कबहुं न बीछुरै साहिब सेवग दोइ ।।30।।

।। इति बंदगी कौ अंग ।। 4 ।।

[-छिपा] हुआ कैसे रह सकता है ? जग में जाहर होइ [कहा०]=संसार में उजागर होता है, जाहिर हो जाता है, प्रसिद्ध हो जाता है। औरत=स्त्री, पतिव्रता, प्रिया। सेज=शरीर रूप सुखासन, सुखानुभूति। षसम हजूर [अ०]=खाविंद [-पति] समीप ही है। ष्वाब मौं=स्वप्न में, भ्रान्ति में, अज्ञान में।

25-27. तलब [अ०] करै=ढूंढता है, याचना करता है, कामना लिए रहता है। तलफि-तलफि जिय जाइ [मुहा०]=तड़प-तड़प कर प्राण-यातना सहन करता है। कल=चैन, तृप्ति। छाडै सास उसास [मुहा०]=विरह [-अभाव] जन्य लम्बी साँसें छोड़ता है। जागी ष्वाब सौं=स्वप्न से जाग्रत होने पर। गाफिल < ग़ाफ़िल [अ०]=बेहोश, मदहोश, असावधान, बेखबर। क्यौं करि मेला होइ= मिलन कैसे हो सकता है ? अर्थात् जीवात्मा-परमात्मा का ऐक्य सम्भव नहीं।

28-30. दिल की सेज=हृदय-शैय्या पर, सुखानुभूति में। औरत है अरवाह=स्त्री [-प्रिया, पत्नी] रूप आत्म-जीवात्मा [-एँ]। अरवाह < अर्वाह [अ०]=['रूह' का बहुव०], आत्माएँ, जीवात्माएँ, रूहें, फ़िरिश्ते। इस कौं जाग्या चाहिए=इस [-जीवात्मा] को जाग्रत [-चैतन्य] होना चाहिए। बेपरवाह=मस्त-मौला। जागै तौ=जाग्रत [-सावधान, चैतन्ययुक्त] रहे तो। सदा हजूरी होइ=निरन्तर सामीप्य [-साक्षात्कार] बना रहता है। बीछुरै=बिछुड़ता है। साहिब सेवग दोइ=भक्ति में सेवक-सेव्य [-बन्दा-माबूद, पूजक-पूज्य, जीव-ईश्वर भेद]-भाव से भिन्नत्व तो है परन्तु 'बन्दगी' [-ध्यान] के द्वारा तादात्म्य [-एकत्व] बना रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 5 ।। अथ पतिब्रत कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग में 51 दोहों के माध्यम से जीवात्मा अर्थात् चेतन-भाव [-मनुष्य-चैतना] द्वारा प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम-निष्ठा या पातिव्रत्य की अभिव्यक्ति कराई गई है। जिसके हृदय में निश्चय, निष्ठा अथवा समर्पण-भाव नहीं है, सन्तमत में वह 'स्त्री' [-जीवात्मा] 'व्यभिचारिणी' कही जाती है। सुन्दरदास ने परमात्मा के प्रति एक-निष्ठा भाव को ही पतिव्रत बयाया है। अन्य देवी-देवताओं के प्रति निष्ठा के कारण चेतना द्विधा ग्रस्त होने से व्यभिचारिणी मानी जाती है। इसलिए उनका कहना है—'तासौं पतिब्रत राषिये टेरि कहैं सब संत।' यह अंग सन्त-मत के सैद्धान्तिक पक्ष को उजागर और पुष्ट करता है। मूल पाठ देखिए—

दोहा :

सुन्दर हरि आराध करि है देवनि कौ देव।
भूलि न और मनाइये सबै भींति कै लेव ।।1।।
सुन्दर और कछू नहीं एक बिना भगवंत।
तासौं पतिब्रत राषिये टेरि कहैं सब संत ।।2।।
सुन्दर और न ध्याइये एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राषिये मन क्रम बिसबा बीस ।।3।।

चूर्णिका : 1-3. हरि आराध करि=हरि[-प्रभू]की आराधना कर। भूलि न और मनाइये=भूल कर भी किसी और की आराधना न करे। सबै भींति कै लेव [कहा०]=सभी [-देवी-देवता] पुरानी दीवाल के लेमना [-पर्तं, पपड़ी] की तरह तुच्छ [-क्षयशील] हैं। तासौं पतिब्रत राषिये=उस [-प्रभु] से पातिव्रत्य-एकनिष्ठा[-तत्परता]बनाए रखिये। टेरि कहैं=पुकार-पुकार कर कहते हैं। सिर ऊपर राषिये=शिरोमणि रूप में उसे सर्वोच्च सम्मान के साथ धारण कीजिए। बिसबा बीस=बीसों विषय अर्थात् पूर्ण रूप से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कछु न सराहिये एक बिना भगवांन ।
लच्छन लागै तुरत ही सबहिं सराहै आंन ।।4।।
सुन्दर और सराहतें पतिव्रत लागै षोट।
बालु सरायौ रेनुका बंधी न जल की पोट ।।5।।
सुन्दर जब पतिव्रत गयौ तब षोई सपतंग ।
मांनहुं टीका नील कौ बिप्र दियौ निज अंग ।।6।।
सुन्दर जिन पतिव्रत कियौ तिनि कीये सब धर्म ।
जबहिं करै कछु और कृत तब ही लागै कर्म ।।7।।
सुन्दर सब करनी करी सबै करी करतूति ।
पतिव्रत राष्यौ राम सौं तब आई सब सूति ।।8।।
पतिव्रत ही मैं योग है पतिव्रत ही मैं जाग ।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वहै त्याग बैराग ।।9।।

4-6. लच्छन लागै=ऐब-दोष [-आक्षेप] लग जाता है कि [पतिव्रता-] स्त्री ने किसी अन्य की ओर आसक्ति भाव से निहारा है। सराहै आंन=जो प्रिय [-परमात्मा] के अतिरिक्त किसी और की सराहना करता है, वह 'संसार' की सराहना करता है। अर्थात् पातिव्रत्य की तो सर्वकाल में सराहना होती है। षोट=खोट, दोष, आक्षेप। बालु सरायौ··· [कहा०]=बालू की सराहना करने से क्या बालु [-रेणुका], जल-प्रवाह रोकने केलिए, पक्का घाट बाँध सकती है? अर्थात् नहीं। जल की पोट=जल की पोटली, अर्थात् जल-प्रवाह की रोक, सृष्टि-प्रवाह। सपतंग=सप्तांग होना, विवाह के समय वधू द्वारा वर के साथ सप्तपदी लेना। षोई=खो दी, नष्ट कर दी। मांनहुं टीका नील···अंग [दृष्टा०]=मानहुँ पुरोहित [-विप्र] ने कालिख का टीका माथे पर लगा लिया हो। कबीर कहते हैं—

'जो हंसि बोलूं और सों नील रंगाऊं दंत।'

7-9. पतिव्रत कियौ=जिसने एक [-निष्ठा-] पातिव्रत्य कर लिया, उसने सम्पूर्ण धर्म निर्वाह कर लिए, ऐसा मानना चाहिए। कछु और कृत=पतिव्रत [-निष्ठा] भाव के अतिरिक्त अन्य लोकाचार। लागै कर्म=कर्म का दोष लगता है। करतूति= सभी प्रकार के क्रिया-कलाप। सूति [सं०]=पुण्य फलोदय, ज्ञानोदय, सात्विक वृत्ति में तल्लीनता।

टिप्पणी : कबीर ने भी इसी अर्थ में, 'सूति' शब्द का प्रयोग किया है—

'आई सूति कबीर की, पाया रांम रतन।'—क० ग्रं०, 2/7

जाग=याग, यज्ञ अथवा जाग्रति। वहै=वही, एकमात्र वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिव्रत ही मैं यम नियम पतिव्रत ही मैं दान।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं तीरथ सकल सनान ॥10॥
पतिव्रत ही मैं तप भयौ पतिव्रत ही मैं मौंन।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं और कष्ट कहि कौंन ॥11॥
पतिव्रत ही मैं शील है पतिव्रत मैं संतोष।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वह ई कहिये मोष ॥12॥
पतिव्रत मांहि क्षमा दया धीरज सत्य बषांनि।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं याही निश्चय आंनि ॥13॥
सुन्दर पतिव्रत राषि तूं सुधर जाइ ज्यौं बात।
मुख मैं मेलै कौर जब तृपति होइ सब गात ॥14॥
सुन्दर रीझै रामजी जाकै पतिव्रत होइ।
रुलत फिरै ठिक बाहरी ठौर न पावै कोइ ॥15॥
सुन्दर जो बिभचारिनी फरका दीयौ डारि।
लाज सरम वाकै नहीं डौलै घर घर बारि ॥16॥
बिभचारणि नाकी बिना लाज सरम कछु नांहि।
कालौ मुख कीयां फिरै सकल जगत कै मांहि ॥17॥
बिभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पीय सुजांन।
सुन्दर पतिबरता कहै काटौं तेरै कांन ॥18॥

10-12. तीरथ सकल सनान=सम्पूर्ण तीर्थों के पुण्य-स्नान के फल के समान है 'राम' के प्रति पतिव्रत' रखना। मौंन=मौन साधना। शील=आचरण या चर्याभाव। वह ई=वही। मोष=मोक्ष।

13-15. याही=यही, एकमात्र। पतिव्रत राषि=पातिव्रत्य रख, धारण कर, एक निष्ठा का जीवन जी। सुधर जाइ ज्यौं बात [मुहा०]=जिससे बात बन जाए, कार्य सिद्ध हो, जीवन सफल हो। मुख मैं मैले कौर जब [कहा०]=मुख में कौर [-ग्रास, निवाला] डालता है, तब ही। तृपति होइ=क्षुधा शान्ति पर तृप्ति होती। गात=शरीर। रुलत फिरै [मुहा०]=रुलता अर्थात् भटकता-फिरता है। ठिक बाहरी=बाहरी ठिकानों पर, भौतिक जगत् में अन्यान्य ठिकानों पर। ठौर=स्थिति, गन्तव्य।

16-18. बिभचारिनी=व्याभिचारिणी स्त्री, चंचल या अनिश्चित वृत्ति की जीवात्मा, द्विधाग्रस्त मानसिकता वाला मनुष्य। फरका दीयौ डारि [मुहा०]=चीर [-ओढ़नी, लज्जा-शील का प्रती०], जिसने उतार फेंका हो। लाज सरम=शर्म, लज्जा, हया। डौलै घर-घर बारि [मुहा०]=घर-घर द्वार-द्वार [-अन्यान्य देवों का अवलम्ब प्राप्त करने केलिए-] भटकती-फिरती है। नाकी बिना=नाक के बिना, नकटी, लज्जाहीना। कालौ मुख कीयां फिरै=काला मुख किए फिरती है अर्थात् निष्ठाहीन व्यक्ति सम्मानजनक जीवन नहीं जी सकता। काटौं तेरै कांन [मुहा०] =झूठ बोलने के अपराध में तेरे कान काट लूंगी। 'कान काटना' [मुहा०] दूसरे को लज्जित करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पिय अति पाक ।
सुन्दर पतिबरता कहै काटौं तेरौ नाक ।।19।।
बिभचारिणि यौं कहतु है शोभित मेरौ कंत ।
सुन्दर पतिबरता कहै तोडौं तेरै दंत ।।20।।
बिभचारिणि यौं कहत है मेरौ पिय अति रौंन ।
सुन्दर पतिबरता कहै तेरी जिह्वा लौंन ।।21।।
बिभचारिणि कहै देष तूं मेरे पिय कै बाल ।
सुन्दर पतिबरता कहै तेरै मांथै ताल ।।22।।
बिभचारिणि कहै देषि तूं मेरै पिय कौ गात ।
सुन्दर पतिबरता कहै तेरी छाती लात ।।23।।
बिभचारिणि कहै देषि तूं मेरै पिय कौ द्वार ।
सुन्दर पतिबरता कहै तेरै मुख मैं छार ।।24।।
पतिबरता पति सनमुखी सुन्दर लहै सुहाग ।
बिभचारिणि बिमुखी फिरै ताके बडे अभाग ।।25।।
पतिबरता छाडै नहीं सुन्दर पति की सेव ।
बिभचारिणि औगुन भरी पूजै देवी देव ।।26।।
जाचिग कौं जाचै कहा सरै न कोई काम ।
सुन्दर जाचै एक कौं अलष निरंजन राम ।।27।।

19-22. पाक=पवित्र । काटौं तेरौ नाक [मुहा०, पु०]=नाक काटना अर्थात् प्रतिष्ठा रहित करना । तोडौं तेरै दंत [मुहा०]=दाँत तोड़ना अर्थात् कमज़ोर [-हीन] सिद्ध करना । रौंन=रमणीय । तेरी जिह्वा लौंन [मुहा०]=जीभ से नमक चटवाना अर्थात् मुँह कड़वा करना, झूठ बोलने के अपराध में लज्जित करना । पिय कै बाल =प्रिय का केश-सौन्दर्य । मांथै ताल [मुहा०]=सिर [-माथे पर धाप-धाप होना अर्थात् सिर-] पिटाई करना ।

23-25. पिय-गात=प्रिय की शरीर-शोभा । तेरी छाती लात [मुहा०]=सीने पर लात का प्रहार [-पदाघात] अर्थात् असत्य-कथन पर दण्ड । पिय कौ द्वार= व्यभिचारी प्रिय के घर का सुन्दर दरवाजा, पर-घर का आकर्षण । मुख में छार [मुहा०]=झूठ बोलने के फलस्वरूप मुख पर धूल-राख । पति सनमुखी=पति के आमने-सामने, साक्षात्कार की दशा में । सुहाग=सौभाग्य, अखण्ड पातिव्रत्य । बिमुखी फिरै=बहिर्मुखी होकर भटकती-फिरती है । अभाग=दुर्भाग्य ।

26-27. सेव=सेवा, पतिव्रत धर्म । औगुन भरी=अवगुणों से भरी हुई । पूजै देवी देव =देवी-देवताओं को पूजती है, अपनी निष्ठा को बदलती या खण्डित करती-रहती है । जाचिक=याचक, भिक्षुक । सरै न कोई काम=कोई काम नहीं बनता । जाचै एक कौं=एक को ही भली प्रकार जाँच-परख कर अर्थात् विश्वास करके देख ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब ही दीसै दालदी देवी देव अनंत।
दारिद्र भंजन एक ही सुन्दर कमलाकंत ॥28॥
पतिबरता पति कै निकट सुन्दर सदा हजूरि।
बिभचारणि भटकति फिरै न्याय परै मुख धूरि ॥29॥
पतिबरता देषै नहीं आंन पुरुष की वोर।
सुन्दर वह बिभचारिणि तकत फिरै ज्यौं चोर ॥30॥
पति की आज्ञा मैं रहै सा पतिबरता जांनि।
सुन्दर सन्मुख है सदा निस दिन जोरे पांनि ॥31॥
प्रभू बुलावै बोलिये ऊठि कहै तव ऊठि।
बैठावै तौ बैठिये सुन्दर यौं जी चूठि ॥32॥
प्रभू चलावै तब चलै सोइ कहै तब सोइ।
पहरावै तब पहरिये सुन्दर पतिब्रत होइ ॥33॥
दिवस कहै तव दिवस है रैंनि कहै तब रैंनि।
सुन्दर आज्ञा मैं रहै कबहुं न फेरै बैंन ॥34॥
रीसि करै अत्यन्त करि तौ प्रभु प्यारौ लाग।
हंसि करि निकट बुलाइले सुन्दर माथै भाग ॥35॥

---

28. दालदी=दरिद्र, दरिद्री। दारिद्र भंजन एक ही=एक ही परमात्मा [-निष्ठा] दारिद्रय भंजन [-निवारण] करने में समर्थ है। कमलाकंत=लक्ष्मी का पति अर्थात् विष्णु, व्यापक परमात्मा।

29-30. भटकति फिरै=भटकती-फिरती है। न्याय परै मुख धूरि [मुहा०]=न्याय [-निर्णय, परिणाम] में अर्थात् अन्ततोगत्वा उसके मुख पर धूलि पड़ेगी, बदनामी होगी। आंन पुरुष=अन्य पुरुष अर्थात् एक निष्ठा के अतिरिक्त दूसरी ओर आकर्षण। तकत फिरै ज्यौं चोर=चोर की तरह इधर-उधर झांकती [-ताकती] फिरती है।

31-32. सा [सं०]=वह। जोरे पांनि=हाथ जोड़ती है, करबद्ध प्रार्थना करती है। यौं जी चूठि=इसप्रकार चित्त में चुन ले, चयन कर ले।

33-35. सोइ कहै तब सोइ=जब सोने केलिए कहै तभी सोना चाहिए। पतिव्रत होइ =उस [-पति-परमात्मा] की इच्छानुसार आचरण ही पातिव्रत्य है। कबहुं न फेरै बैंन=आज्ञा-वचनों का कभी उल्लंघन न करे। रीसि करै···प्यारौ लाग=प्रभु यदि गुस्सा करता है, तब भी वह प्रिय लगता है। हंसि करि···माथै भाग=हँस कर [-मुस्कराकर] निकट बुलाता है, तो यह सौभाग्य ही समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर पतिब्रत राम सौं सदा रहै इकतार।
सुख देवै तौ अति सुखी दुख तौ सुखी अपार ॥36॥
रजा राम की सीस पर आज्ञा मेटै नांहिं।
ज्यौं राषै त्यौं ही रहै सुन्दर पतिब्रत मांहिं ॥37॥
साहिब मेरा राम जी सुन्दर षिजमतिगार।
पाव पलोटै प्रीति सौं सदा रहै हुसियार ॥38॥
करै हजूरी बन्दगी और न कोई काम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै सुन्दर सदा गुलाम ॥39॥
पति कौ बचन लियें रहै सा पतिबरता नारि।
सुन्दर भावै पीव कौं आवै नहीं अवगारि ॥40॥
जौ पिय कौ व्रत ले रहै कन्त पियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि सुन्दर सनमुख होइ ॥41॥
अपना बल सब छाडि दे सेवै तन मन लाइ।
सुन्दर तब पिय रीझि करि राषै कण्ठ लगाइ ॥42॥
प्रीतम मेरा एक तूं सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥43॥
हृदये मेरै तूं बसै रसना तेरा नाम।
रोम रोम मैं रमि रह्या सुन्दर सब ही ठाम ॥44॥
जहं जहं भेजै राम जी तहं तहं सुन्दर जाइ।
दाणां पांणी देह का पहली धर्‍या बनाइ ॥45॥

36-39. इकतार=एकसा, समरस। अर्थात् सुख-दुख दोनों में ही समान रूप से। रजा [अ०]=उम्मेद, आशा, इच्छा, अनुकूलता। षिजमतिगार<खिद्मतगार [अ०, फा०]=दास, सेवक, अनुगामी। पाव पलोटै=पैर दबाता है, सेवा करता है। हुसियार<होश्यार [फा०]=सावधान। गुलाम=सेवक।

40. पति कौ बचन=पति-स्वामी [-प्रभु] की आज्ञा। अवगारि=अवज्ञा, अवमानना, गाली, तिरस्कार, उपेक्षा।

41-43. कन्त पियारी=पिउ प्यारी, भगवान् के भक्त, सन्त जन। अंजन मंजन=सुरमा लगाना, मज्जन [-सज्जा] करना अर्थात् टीका-टमका, बाह्याडम्बर, लोक दिखावा आदि। तन मन लाइ=तन-मन लगाकर, समर्पण भाव से। राषै कण्ठ लगाइ=गले से लगाकर रखेगा, आलिंगनबद्ध रखेगा। गुप्त भया किस कारनै=हे प्रिय [-प्रभु] तू किस कारण से छिप गया है ? अर्थात् प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता।

44-47. रसना=जिह्वा पर। सब ही ठाम=सब ही जगह, सर्वत्र। जहं जहं=जहाँ-कहीं भी अर्थात् जिस-किसी योनि में। दाणां पांणी देह का [मुहा०]=शरीर केलिए जहाँ भी दाना-पानी निश्चित कर दिया है, वहीं मिलता है। डोरी हरिके हाथ=सूत्र, प्रभु के हाथ में ही है, सभी को संचालित करने वाला 'सूत्रधार' वही है। डोलै

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपणां सारा कछु नहीं डोरी हरि कै हाथ ।
सुन्दर डोलै बांदरा बाजीगर कै साथ ॥46॥
ज्यौं हीं आवै राम मन सुन्दर त्यौं ही धारि ।
जो ही भावै पीव कौं सोई भावै नारि ॥47॥
सुन्दर प्रभु मुख सौं कहै सोई मीठी बात ।
डार कहै तौ डार ही पात कहै तौ पात ॥48॥
जौ प्रभु कौं प्यारौ लगै सोई प्यारौ मोहि ।
सुन्दर ऐसैं समुझि करि यौं पतिबरता होहि ॥49॥
सुन्दर प्रभु की चाकरी हांसी षेल न जांनि ।
पहलै मन कौं हाथ करि पीछै पतिव्रत ठांनि ॥50॥
सुन्दर कछू न कीजिये क्रिया कर्म भ्रम आन ।
करने कौं हरि भक्ति है समझन कौं है ज्ञान ॥51॥

॥ इति पतिव्रत कौ अंग ॥5॥

बांदरा बाजीगर के साथ [दृष्टा०]=जिसप्रकार बन्दर डोरी में बँधा बाजीगर के साथ-साथ डोलता-रहता है, वैसे ही प्राणी प्रभु की इच्छा से संचालित होता है। धारि=धारण कर। जो ही भावै···नारि [कहा०]=जो भी प्रिय को अच्छा लगता है, वही प्रिया [-जीवात्मा] को अच्छा लगे।

48-49. डार कहै तौ···पात [कहा०]=यदि प्रिय [-मालिक] डाली कहता है तो डाली है, पत्ता कहता है तो पत्ता है। अर्थात् उसकी रुचि के अनुसार ही वह बोलता है।

50-51. प्रभु की चाकरी=प्रभु की सेवा, सेवा व्रत, पतिव्रत भाव। हांसी षेल न जांनि [मुहा०]=हँसी-खेल न समझो। अर्थात् प्रभु सेवा-व्रत बड़ा कठिन कार्य है। कहा भी है—'सेवा धर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' गीता में भी कहा है—'मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते।'[-14/26]। मन कौं हाथ करि[मुहा०]= मन को हाथ में करना। अर्थात् मन को वशीभूत [-अनुशासित, अन्तर्मुखी] करने के बाद ही 'पतिव्रत' धारण करना अपेक्षित है। करने कौ···ज्ञान=जीवन में करने केलिए केवल प्रभु-भक्ति है और समझने केलिए केवल ज्ञान-मार्ग। **टिप्पणी :** इस साखी का निहित अर्थ है कि भक्ति और ज्ञान से भिन्न और सब कर्म-धर्म भ्रामक हैं। दादू के 'ब्रह्म सम्प्रदाय' का लक्ष्य 'भक्तिमय ज्ञान' का प्रसार करना ही था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 6 ॥ अथ उपदेश चितावनी कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की 55 साखियों में, सन्त-वाणी की परम्परा के अनुरूप सुन्दरदास ने जीवनावधि के सीमित होने, परिवर्तनशील [-नाशवान्] संसार के परिणाम का अनुभव करने, इस जगत् में **'जीवन'** रूप बहुमूल्य उपलब्धि और उसमें संसार-यात्रा का सदुपयोग एवं अगले जीवन केलिए सुकृत करने की प्रेरणा है। 'मानव-देह' को केन्द्रित करके चैतन्य होने अथवा करने वाली चेतावनी में कथ्य का विचार-पक्ष प्रमुख है। अनेक मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियों अथवा दृष्टान्तों के द्वारा सुन्दरदास ने अपने अभिप्रेत [-मन्तव्य] को बड़े लाघव के साथ अभिव्यक्त किया है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साखी : सुन्दर मनुषा देह की महिमा बरनहिं साध।
जामैं पइये परम गुरु अविगति देव अगाध ॥1॥
सुन्दर मनुषा देह की महिमा कहिये काहि।
जाकौं बंछै देवता तूं क्यौं षोवै ताहि ॥2॥
सुन्दर मनुषा देह यह पायौ रतन अमोल।
कोडी सटै न षोइये मीन हमारौ बोल ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. मनुषा देह=मनुष्य शरीर, मनुष्य योनि, मानव जीवन। महिमा= गुणवत्ता, प्रताप, विशेषता, महत्त्व। पइये=प्राप्त कीजिए। परम गुरु=परम मूल्य, परम पद, परम प्राप्तव्य, परम निर्देशक [-प्रेरक] विन्दु। अविगति= अविनाशी। देव अगाध=[अगम्य-] असीम देवता अर्थात् परमात्मा। बंछै देवता= देवता भी कामना करते हैं। रतन अमोल=अमूल्य रत्न, बहुमूल्य जीवन। कोडी सटै न षोइये [मुहा०]=कौड़ी [-के समान तुच्छ वस्तुओं] केलिए बहुमूल्य जीवन न गँवाइये। बोल=वचन, उपदेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सांची कहतु है मति आनै कछु रोस।
जौ तैं षोयौ रतन यह तौ तोही कौं दोस ॥4॥
बार बार नहिं पाइये सुन्दर मनुषा देह।
राम भजन सेवा सुकृत यह सौदा करि लेह ॥5॥
सुन्दर निश्चय आन तूं तौहि कहूं करि प्यार।
मनुष जन्म की मौज यह होइ न बारम्बार ॥6॥
सुन्दर मनुषा देह मैं सारे बंधन बाढि।
आयौ हाथ सिला तलै काढि सकै तो काढि ॥7॥
सुन्दर तूं भटकति फिर्‌यौ स्वर्ग मृत्यु पाताल।
अब कै या नर देह मैं काढि आपनौ साल ॥8॥
सुन्दर कछु संष्या नहीं बहुतक धरे शरीर।
अब कै तूं भगवंत भजि विलम करै जिनि बीर ॥9॥
सुन्दर या नर देह है सब देहनि कौ मूल।
भावै यामैं समझि तूं भावै यामैं भूल ॥10॥
सुन्दर मनुषा देह धरि भज्यौ नहीं भगवंत।
तौ पशु ज्यौं पूरै उदर शूकर स्वान अनंत ॥11॥

4-6. रोस<रोष [सं०]=क्रोध, गुस्सा। दोस<दोष [सं०]=बुराई। सुकृत=सुकृत्य, शुभ कर्म। यह सौदा करि लेइ=[शुभ कर्मों का-] सौदा [-वाणिज्य, व्यापार] कर लेना चाहिए। प्यार=प्रेम से। मौज=मस्ती, फक्कड़पन की सुखद अनुभूति।

7-10. बंधन बाढ़ि=मनुष्य जीवन में ही सारे बन्धन बढ़ते हैं। आयौ हाथ सिला तलै [मुहा०]=शिला के नीचे हाथ आना, अँगुली दबना अर्थात् दबाव में होना, अपनी अटक होना। **टिप्पणी :** मनुष्य-जीवन में ही जन्म-मरण या सुकृत्य-कुकृत्य के बन्धन होते हैं और इसी जन्म में विवेक-ज्ञान से, वे सारे बन्धन निवृत्त भी किए जा सकते हैं। भटकत फिर्‌यौ···पाताल=स्वर्ग-मृत्यु लोक और, पाताल लोक की योनियों में भटकता-फिरा। अर्थात् कर्म-फल के अनुरूप आवागमन के चक्कर में पड़ा रहा। साल<शल्य [सं०]=शूल, काँटा। अर्थात् अपना काँटा निकाल, त्रिविधि तापों से छुटकारा पा ले, जन्म-मरण के चक्कर से छूटने का प्रयत्न कर। संष्या=संख्या। धरे=धारण किए। बीर=भाई, मित्र। विलम करै जिनि=विलम्ब न कर। भावै यामैं समझि···भूल=चाहे तो इस मनुष्य-जीवन में ज्ञान-विवेक प्राप्त करके अपना उद्धार कर और चाहे मोह-भ्रम में पड़ा रह। अर्थात् विकल्प तेरे हाथ में है।

11-12. तौ पशु ज्यौं···अनंत=[यदि मनुष्य-जीवन में भगवान का स्मरण नहीं किया गया, प्रभु को सर्वोपरि मूल्य नहीं माना तो-] मनुष्य-योनि में ही सूकर-कूकर आदि अनेक पशु-योनियों की तरह केवल पेट भरने केलिए जीवन जीने वाला समझा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर या नर देह अब षुल्यौ मुक्ति कौ द्वार।
यौं ही बृथा न षोइये तोहि कह्यौ कै बार ॥12॥
सुन्दर सांची कहत है जौ मानै तौ मांनि।
यहै देह अति निंद्य है यहै रतन की षांनि ॥13॥
सुन्दर मनुषा देह यह तामैं दोइ प्रकार।
यातैं बूडै जगत मांहि यातैं उतरै पार ॥14॥
सुन्दर बंधै देह सौं तौ यह देह निषिद्धि।
जौ याकी ममता तजै तौ याही मैं सिद्धि ॥15॥
भूलत काहे बावरे देषि सुरंगी देह।
बंध्यौ फिरै अनादि कौ सुन्दर याके नेह ॥16॥
सुन्दर बंध्या देह सौं कबहु न छूटा भाजि।
और कियौ सनमंध अब भई कोढ मैं षाजि ॥17॥
मात पिता बंधव सकल सुत दारा सौं हेत।
सुन्दर बंध्या मोहि करि चेतै नहीं अचेत ॥18॥

जाएगा। **टिप्पणी :** संस्कृति में सूक्ति है—'मनुष्य रूपेण मृगाश्चन्ति'। षुल्यौ मुक्ति कौ द्वार=मनुष्य जीवन में ही मुक्ति का द्वार खुला है। अर्थात् और योनियों में कर्मों का भुगतान होता है। मनुष्य-योनि में कृत-कर्म का निवारण भी होता है और नये कर्मों का संचय भी, ऐसी शास्त्रों की मान्यता है। बृथा=व्यर्थ में, निरर्थक।

13-14. निंद्य=निन्दा के योग्य। रतन की षांनि=रत्नों की खान। अर्थात् बहुमूल्य वस्तुओं का भण्डार। यातैं बूडै···पार=मनुष्य-जीवन ही ऐसा जीवन है, जिसमें या तो डूबते हैं या पार उतरते हैं। अर्थात् मनुष्य-जीवन काल उत्कृष्टता या निकृष्टता प्राप्त करने की अवधि है।

15-17. देह निषिद्धि=शरीर [-कृत्यों] से जब वन्धन और जटिल होते हैं, तब वे [शरीर-कर्म] निषिद्ध माने जाते हैं। ममता तजै=ममत्व[-आसक्ति, सकामता] के त्याग से। बावरे=बावले, पागल, नासमझ। सुरंगी देह=रंग-बिरंगी देह अर्थात् सुन्दर आकर्षक शरीर। बंध्यौ फिर्‌यौ अनादि कौ=जब से प्रभु से अलग हुआ है, तभी से अनेकानेक योनियों में बँधा-फिरता है। याके नेह=इस शरीर की आसक्ति के कारण। और कियौ···षाजि [लोको०]=पहले तो शरीर-आसक्ति के कारण ही बन्धन में था। अब इस मनुष्य-जीवन में आकर सम्बन्धों के और अधिक आसक्ति-सूत्र बन गए हैं। यह आसक्ति तो कष्टकारक महारोग है। **टिप्पणी :** वेदान्त मत में जड़ देह को आत्मन् मान लेने में भी बन्धन माना गया है। अर्थात् जड़ देह में आत्मा का 'अध्यास' कर लेना बन्धन का कारण है।

18-21. बंधव=बन्धु-बान्धव। सुत-दारा=स्त्री-पुत्र। हेत=ममत्व, आसक्ति। अचेत=असावधान, मदहोश। स्वारथ पूजै नहीं=स्वार्थ [-लक्ष्य] पूर्ण नहीं होता। आपु आपु कौ जांहि=अपने-अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर त्यागते जाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर स्वारथ सौं बंधै बिन स्वारथ को नांहिं।
जब स्वारथ पूजै नहीं आपु आपु कौं जांहिं ॥19॥
सुन्दर अति अज्ञान नर समझत नाहिं न मूरि।
तूं इन सौं लाग्यौ मरै ये सब भागैं दूरि ॥20॥
सुन्दर अति अज्ञान नर समुंझत नहीं लगार।
जिनहिं लडावै लाड तूं ते ठोकि हैं कपार ॥21॥
सुन्दर माया मोह तजि भजिये आतम राम।
ये संगी दिन चारि कै सुत दारा धन धाम ॥22॥
सुन्दर नदी प्रवाह मैं मिल्यौ काठ संजोग।
आपु आपु कौं ह्वै गये त्यौं कुटंब सब लोग ॥23॥
सुन्दर बैठै नाव मैं कहूं कहूं तें आइ।
पार भये कतहूं गये त्यौं कुटंब सब जाइ ॥24॥
सुन्दर पक्षी बृक्ष पर लियौ बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यौं कुटंब सब जानि ॥25॥
सुन्दर समझि बिचार करि तेरौ इन मैं कौंन।
आपु आपु कौं जाहिंगे सुत दारा करि गौंन ॥26॥
सुन्दर तूं इन सौं बंध्यौ ये सब तोसौं फर्क।
याही बात बिचार करि तूं हूं दै अब तर्क ॥27॥
सुन्दर नाना जोनि मैं जन्म जन्म की भूल।
सुत दारा माता पिता सगलै याही सूल ॥28॥

सम्बन्ध तोड़ते-चलते हैं। मूरि=मूल, आदि कारण। लाग्यौ मरै=इनसे लगा हुआ [-आसक्त हुआ] मरता-खपता रहता है। लगार=आसक्त, मोह में पड़ा हुआ। जिनहिं लडावै लाड तूं [मुहा०]=जिन्हें लाड़-लड़ाता है अर्थात् प्यार करता है, जिनके प्रति ममता दिखाता है। ते ठोकि हैं कपार=वे ही कपाल-क्रिया करेंगे। अर्थात् मरने के बाद, मुखाग्नि देकर, मृतक के सिर पर बाँस-प्रहार करते हैं।

22-24. ये संगी=ये साथी। दिन चार कै [मुहा०]=चार-दिन के अर्थात् बहुत थोड़े समय केलिए। नदी प्रवाह···संजोग [दृष्टा०, लोको०]=जैसे नदी की धारा में नौका [-काष्ठाकार यान] का संयोग मात्र, स्थायी सम्बन्ध नहीं होता। किनारा आने पर सब अपने-अपने घर चले जाते हैं। ऐसे ही, परिवार के लोग भव-धारा के अन्त में अपने-अपने कर्मानुसार, अपनी यात्रा पर चले जाते हैं। बैठे नाव मैं=नदी-नाव संयोग के द्वारा घर-परिवार के सम्बन्ध को क्षणिक और अस्थायी बताया है।

25-28. बसेरा=निवास। पक्षी=पक्षी के वृक्ष-वास के उदाहरण से जीवन के क्षणिक आश्रय की व्यंजना कराई है। बिचार करि=चिन्तन कर के सोच। गौंन=गमन, अपनी-अपनी यात्रा। फर्क=अन्तर, भिन्नता। तर्क=तर्कना, बुद्धि पूर्वक अपनी बात प्रस्तुत करना। नाना जोनि=अनेक योनियों में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर मांथै बोझ लै यह तौ अति अज्ञान।
इनकौ करता और ही भय भंजन भगवान ॥29॥
सुन्दर काहे षैंचि ले अपने मांथै बोझ।
करता कौं जानै नहीं तूं रामां कौ रोझ ॥30॥
सुन्दर तेरी मति गई समुंझत नहीं लगार।
कूकर रथ नीचै चलै हूं षैंचत हौं भार ॥31॥
सुन्दर यह औसर भलौ भजि लै सिरजनहार।
जैसें ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार ॥32॥
सुन्दर औसर कै गयें फिर पछितावा होइ।
शीतल लोह मिलै नहीं कूटौ पीटौ कोइ ॥33॥
सुन्दर यौं ही देष तें औसर बीत्यौ जाइ।
अंजुरी मांहें नीर ज्यौं किती बार ठहराइ ॥34॥
सुन्दर अब तेरो षुसी बाजी जीति कि हारि।
चौपडि कौ सौ षेल है मनुषा देह बिचारि ॥35॥
सुन्दर जीतै सो सही डाव बिचारै कोइ।
गाफिल होइ सु हारि कै चालै सरवस षोइ ॥36॥

29-32. मांथै बोझ=सिर पर कर्मासक्ति का बोझ। अज्ञान=मूर्खता, भ्रान्ति। भय भंजन=भय को समाप्त करने वाला। रामां कौ रोझ [मुहा०]=जंगल का रुदन, अरण्य रोदन। अर्थात् जंगल में भटकता-फिरता है और अपने कर्त्ता परमात्मा को नहीं पहचानता। कूकर रथ···हौं भार [लोको०]=सांसारिक दायित्व को निभाने वाला व्यक्ति इस अभिमान में डूबा रहता है कि वही सब कुछ भार-वहन कर रहा है। यह सोचना उस कुत्ते के सोचने के समान है, जो चलती गाड़ी के नीचे-नीचे चलता हुआ यह सोचता होगा कि वही सारी गाड़ी के बोझ को उठाए लिए जा रहा है। औसर=अवसर। जैसें ताते लोह···लुहार [उदा०]=जैसे गर्म लोहे को, अपने घन से पीट-पीट कर, लुहार मिला कर एक रूप कर देता है, वैसे ही समय रहते, सृजनकर्त्ता का स्मरण करते हुए जीवन-अवसर का उपयोग करना चाहिए।

33-35. पछितावा होइ=पश्चाताप होता है। शीतल···पीटौ कोइ=ठण्डे लोहे को पीट-कर, ठण्डे लोहे से मिलाना, सन्धि रहित करना कभी सम्भव नहीं, चाहे वह कितना ही कूटा-पीटा जाय। अंजुरी मांहे नीर ज्यौं [दृष्टा०]=अंजुलि गत जल की तरह, जीवन भी निरन्तर क्षय होता-रहता है, आयु का रिसाव होता-रहता है। किती बार=कितनी देर। बाजी जीति कि हार=दाँव की जीत अथवा हार अर्थात् समय का उपयोग कर अथवा गँवा दे, यह तेरे हाथ में है। चौपडि-षेल=चौपड़ का खेल।

36. डाव=दाँव। गाफिल होइ=जो गाफिल [असावधानी, अचेतावस्था] में होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर याही देह मैं हारि जीति कौ षेल ।
जीतै सो जगपति मिलै हारे माया मेल ।।37।।
सुन्दर अब कै आंपणौ टोटौ नफौ बिचारि ।
जिनि डहकावै जगत मैं मेल्ह्यो हाट पसारि ।।38।।
सुन्दर भटक्यौ बहुत दिन अब तूं ठौहर आव ।
फेरि न कबहूं आइ है यह औसर यहु डाव ।।39।।
सुन्दर दुःख न मानि तूं तोहि कहूं उपदेश ।
अब तौ कछूक सरम गहि धौलै आये केश ।।40।।
सुन्दर वैठा क्यौं अबै उठि करि मारग चालि ।
कै कछु सुकृत कीजिये कै भगवंत संभालि ।।41।।
सुन्दर सौदा कीजिये भली वस्तु कछु षाटि ।
नाना बिधि का टांगरा उस बनिया की हाटि ।।42।।
सुन्दर बिष षलि षार तजि लै केसरि कर्पूर ।
जौ तूं हीरा लाल ले तौ तो सौं नहिं दूर ।।43।।
सुन्दर ठगबाजी जगत यह निश्चय करि जांनि ।
पहलै बहुत ठगाइयौ वहै घणौं करि मांनि ।।44।।

37-38. हारि जीति कौ षेल [कहा०]=इस शरीर [-जीवन] में हार-जीत का खेल विद्यमान है । जीतै···माया मेल=जीवन में जो 'जीत' प्राप्त कर लेता है, तो वह प्रभु से मिलता है और जो हारता है, वह माया के वशीभूत होता है । टोटौ नफौ बिचारि [मुहा०]=हानि-लाभ के सम्बन्ध में सोच-विचार कर । जिनि डहकावै= झंझट में न पड़ । हाट पसारि=बाजार फैला कर, बाह्य प्रसार करके ।

39-42. ठौहर=स्थान, निजी स्थान । यहु औसर यहु डाव [कहा०]=यही [जीवन-] अवसर है, यही [जीवन-] दाँव है । सरम गहि [मुहा०]=शर्म कर, लज्जा का अनुभव कर । धौले आये केश [मुहा०]=केश सफेद हो आए हैं । अर्थात् वृद्धावस्था आने ही वाली है, मृत्यु के बहुत निकट है । मारग चालि [मुहा०]=मार्ग पर अग्रसर हो, लक्ष्य प्राप्ति केलिए निरन्तर प्रयत्न कर । सुकृत=शुभ कर्म । बस्तु कछु षाटि=वस्तु को परख कर मोल ले । नाना बिधि=अनेक प्रकार का । टांगरा=सौदा, सामान, विक्रय-वस्तु । हाटि=बाजार, प्रती० संसार रूप बाजार । बनिया=वणिक, व्यापारी, परमात्मा ।

43-44. बिष षलि षार तजि=विष के समान दुष्परिणामी [-निरर्थक] खलि [प्रती० निस्सार, फोक वस्तु]-नमकादि की खरीद छोड़ दे । लै कैसरि कर्पूर=केसरि और कर्पूर जैसी बहुमूल्य वस्तुओं का व्यापार कर । ठगबाजी=ठग विद्या, ठगी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर ठग्यौ अनेक बर सावधान अब होइ ।
हीरा हरि कौ नाम लै छाडि बिषै सुख लोह ॥45॥
सुन्दर सुख कै कारनै दुःख सहै बहु भाइ ।
को षेती को चाकरी कोइ बणज कौं जाइ ॥46॥
पराधीन चाकर रहै षेती मैं संताप ।
टोटौ आवै बणज मैं सुन्दर हरि भजि आप ॥47॥
सुख दुख छाया धूप है सुन्दर कर्म सुभाव ।
दिन द्वै शीतल देषिये वहुरि तप्त मैं पांव ॥48॥
सुन्दर सुख की चाह करि कर्म करै बहु भांति ।
कर्मनि कौ फल दुःख है तूं भुगतै दिन राति ॥49॥
तें नर सुख कीये घने दुख भोगये अनंत ।
अब सुख दुख कौं पीठि दै सुन्दर भजि भगवंत ॥50॥
दीया की बतियां कहै दीया किया न जाइ ।
दीया करै सनेह करि दीयें ज्योति दिषाइ ॥51॥
दीयें तें सब देषिये दीये करौ सनेह ।
दीये दसा प्रकासिये दीया करि किन लेह ॥52॥

45-47. हीरा हरि कौ नाम लै=हरि का नाम-स्मरण हीरा [-बहुमूल पदार्थ] का नाम ले । छाडि सुख लोह=उसकी तुलना में विषय-'सुख' रूप लोहे का त्याग कर । को षेती=कोई खेती करता है । को चाकरी=कोई नौकरी करता है । बणज=वाणिज्य । चाकर=नौकर, नौकरी करने वाला पराश्रित बना रहता है । षेती में संताप=खेती में वर्षा [-सूखा] आदि के कारण त्रासमय सन्ताप बना रहता है ।

48-51. सुख दुख छाया धूप=सुख-दुःख का अनुभव, छाया-धूप का अनुभव । शीतल देषिये=शीतलता का अनुभव कीजिए, सुख-शीतलता अनुभव कीजिए । तप्त मैं पांव=तपी बालू में जैसे पैर झुलसते हैं, वैसे ही सुख के अवसर में शीतलता और दुःख के अवसर पर पैर गर्म रेत में झुलसने के समान हैं, ऐसे ही सुख-दुःख का अनुभव होता है । कर्मनि कौ फल दुःख=कर्मों का परिणाम [पुनः कर्म-बन्धन, अहंकार-आसक्ति के कारण] दुःख ही दुख है । भुगतै=भुगतता है, झेलता है । पीठि दै [मुहा०]=विमुख होकर रहे । दीया की बत्तियां=दीपक की बातें । तुलसीदास ने कहा है—'गृह मध्य दीप की बातें, तम निवृत्त नहिं होई ।' [—वि० पत्रि०] । ज्योति=प्रकाश । टिप्पणी : 'दीया, बत्ती और सनेह' शब्दों में श्लेष है ।

52-55. दीये दसा प्रकासिये=दीपक [प्रती० ज्ञान, दान] से स्थिति प्रकाशित होती है । दीये पवन लगै अहं=दीपक को अहंकार की पवन लगती है । दीया=दीपक, दीपक, ज्योति, लौ । टिप्पणी : 'दीया' शब्द में श्लेष के बल पर चमत्कार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीया राषै जतन सौं दीये होइ प्रकाश ।
दीये पवन लगै अहं दीये होइ बिनाश ॥53॥
सांईं दीया है सही इसका दीया नांहि ।
यह अपना दीया कहै दीया लषै न मांहि ॥54॥
सांईं आप दिया किया दीया मांहि सनेह ।
दीये दीये होत है सुन्दर दीया देह ॥55॥

॥इति उपदेश चितावनी कौ अंग ॥6॥

सृष्टि हुई है । दीया लषै न मांहि=दिव्य ज्ञान रूप दीपक को हृदय में नहीं देखता । टिप्पणी : दीपक रूप हृदय में ज्ञान रूप प्रकाश विद्यमान है । दीया देह=ज्ञान-प्रकाश [प्रती०]युक्त शरीर । दीये दीये होत है=जो [दान-] देते-रहते हैं, वे ही दीपक के समान हो जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 7 ।। अथ काल चितावनी कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की पचास साखियों में काल [-मृत्यु, परिवर्तन] के अनेक बिम्बों-उदाहरणों द्वारा, मृत्यु के [बीभत्स-] भयावह दृश्य प्रस्तुत करते हुए सुन्दरदास ने जीवधारी [-मनुष्य] को सावधान करते हुए उसको जीवन-यात्रा के वास्तविक लक्ष्य उसकी परिणति बताई है। साथ ही, 'काल' की सीमाओं का अतिक्रमण करने केलिए चिन्तन रूप में '**राम**' के अनुभव की प्रेरणा दी है। मनुष्य-जीवन में उस अखण्ड काल-बोध की अनुभूति कराना और जीवन की महत्ता [-सार्थकता] को प्रतिपादित करना [-कराना] ही सन्तों की काल-अवधारणा का मर्म है। अर्थात् चेतना को 'अकाल' में प्रतिष्ठित करना ही सन्तों का काल विषयक सिद्धान्त है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी [साखी] : काल ग्रसत है बादरे चेतत क्यौं न अजांन।
सुन्दर काया कोट मैं होइ रह्या सुलतांन ।।1।।
सुन्दर काल महाबली मारे मोटे मीर।
तूं कौनें की गनति मैं चेतत काहि न बीर ।।2।।
सुन्दर काल गिराइ दे एक पलक मैं आइ।
तूं क्यौं निर्भय ह्वै रह्यौ देषि चल्यौ जग जाइ ।।3।।

चूर्णिका : 1-3. काल ग्रसत है = [क्षण-प्रति क्षण में] काल सभी को ग्रसता जा रहा है [ऐसा बोध व्यंजित]। अजांन = अनजान, नासमझ। काया कोट = शरीर रूप गढ़। सुलतांन = नृपति [शरीर स्वस्थ-सुडौल है, इस अधिकार-अभिमान को पाले हुए]-सुलतान की तरह अहंकारी बना रहता है। महाबली = प्रचण्ड शक्तिशाली, सेना में अधिकारी। मोटे मीर = बड़े-बड़े योद्धा। कौनें की गनति [मुहा०] = तू किस गिनती में है। गिराइ दे = ढहा देगा, ध्वस्त कर देगा। देषि चल्यौ जग जाइ [मुहा०] = विचार कर देख कि देखते-देखते ही सारा संसार काल की गिरफ्त में चला जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर चितवै और कछु काल सु चितवै और ।
तूं कहुं जाने की करै वहु मारै इहिं ठौर ॥4॥
सुन्दर काल प्रवीण अति तूं कछु समुझै नांहिं ।
तूं जानैं जीवत रहूं वहु मारै पल मांहिं ॥5॥
सुन्दर तेरी ओर कौं ताकि रहे जमदूत ।
वैरी बैठे वारनैं तूं सोवै किंहि सूत ॥6॥
सुन्दर सूवा पींजरै केलि करै दिन राति ।
मिनकी जानैं षांव कब ताकि रही इहि भांति ॥7॥
सुन्दर मूसा फिरत है बिल तें बाहिर आइ ।
काल रह्यौ अहि ताकि करि कबहुंक लेइ उठाइ ॥8॥
सुन्दर मछरी नीर मैं बिचरत अपने ष्याल ।
बगुला लेत उठाइ कै तोइ ग्रसै यौं काल ॥9॥
सुन्दर बैठी मक्षिका मीठे ऊपर आइ ।
ज्यौं मकरी वाकौं ग्रसै मृत्यु तोहि लै जाइ ॥10॥
सुन्दर तोकौं मारि है काल अचानक आइ ।
तीतर देषत ही रहै बाज झपट ले जाइ ॥11॥
सुन्दर काल जुरावरी ज्यौं जाणैं त्यौं लेइ ।
कोटि जतन जौ तूं करै तोहूं रहन न देइ ॥12॥

4-5. काल सु चितवै और=काल तो कुछ और ही देखता-विचारता है अर्थात् उसका अपना अनुशासन है । तू जानें जीवत रहूं=जीवित बने रहना, जीवन का अधिकार-भोग करते-रहने में ही तेरी आकांक्षा बनी-रहती है। पल मांहि=क्षण भर में, अविलम्ब ।

6-8. तेरी ओर=तेरी तरफ । जमदूत=यमदूत, पौराणिक विश्वास में यम के आज्ञाकारी सिपाही । बैरी बैठे बारनें [कहा०]=शत्रु द्वार पर बैठे हैं। तू सोवै किंहि सूत [कहा०]=तूकौन सी चादर [-सूत] तान कर सो रहा है अथवा सूत-निबाड़ के किस पलंग पर सो रहा है अर्थात् निश्चिन्त बना हुआ पड़ा है । **टिप्पणी :** साखी 7-11. तक विभिन्न जीव-जन्तुओं की विवशता-निरुपायता बताते हुए क्रूर काल की निश्चिन्त गिरफ्त की व्यंजना कराई गई है । दृष्टान्त-बिम्बों से मृत्यु परिस्थिति साकार हो उठी है । सूवा=शुक, तोता, प्रती० शरीरस्थ जीवात्मा । केलि = क्रीड़ा । मिनकी=बिल्ली, प्रती०मृत्यु । ताकि रही=टकटकी लगाकर देख रही है । मूसा=मूषक, चूहा, प्रती० जीवात्मा । बिल=बांबी । अहि=सर्प, प्रती० काल, मृत्यु ।

9-12. मछरी = मछली, प्रती० जीवधारी, प्राणी । अपने ख्याल=अपनी मौज में । बगुला=बक, प्रती० काल, मृत्यु । मक्षिका=मक्खी, प्रती० जीवधारी । मकरी=मकड़ी, प्रती० मृत्यु । अचानक=सहसा, बिना किसी पूर्व सूचना के । तीतर<तित्तिर [सं०]=एक भोला [-तेज उड़ने वाला] पक्षी, प्रती० जीवात्मा । बाज=पक्षी विशेष, प्रती० काल, मृत्यु । जुरावरी=जोरावरी, जबरदस्ती, बलात्-हठात् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी मेरी करत है तोकौं सुद्धि न सार।
काल अचानक मारि है सुन्दर लगै न बार ॥13॥
मेरै मन्दिर माल धन मेरौ सकल कुटुम्ब।
सुन्दर ज्यौं को त्यौं रहै काल दियौ जब बंब ॥14॥
सुन्दर गर्ब कहा करै कहा मरोरै मूंछ।
काल चपेटौ मारि है समझि कहूं के भूंछ ॥15॥
यौं मति जानै बावरे काल लगावै बेर।
सुन्दर सब ही देषतें होइ राष की ढेर ॥16॥
सुन्दर संक रती नहीं बहुत करै उदमाद।
काल अचानक आइहै करिहै गुरदाबाद ॥17॥
सुन्दर क्यौं चेतै नहीं सिर पर सांधे काल।
पल मैं पटकि पछारि है मारि करै बेहाल ॥18॥
सुन्दर काहे कौं करै थिर रहणें की बात।
तेरै सिर पर जम षडा करै अचानक घात ॥19॥
सुन्दर गाफिल क्यौं फिरै साबधान किन होय।
जम जौरा तकि मारि है घरी पहरि मैं तोय ॥20॥
सुन्दर तौ तूं उबरि है समरथ सरनैं जाइ।
और जहां तहां तूं फिरै काल तहां तहां षाइ ॥21॥

---

13. मेरी मेरी=अहंता-ममता जन्य अपने-पराए का सम्बन्ध। सुद्धि=शुद्धि, सात्विकता। बार=देर, विलम्ब।

14. मन्दिर=घर, आवास। मेरौ⋯कुटुम्ब=ममता-आसक्ति के कारण, परिवार को 'अपना' बताना। बंब=उद्‌घोष, घोर शब्द [काल-आगमन की सूचना]।

15-17. कहा मरोरै मूंछ [मुहा०]=मूँछ मरोड़ना, अहंकार दिखाना [बिम्ब]। चपेटौ मारि है=चपेटा मारेगा। भूंछ=भुच्च, मूर्ख। बेर=देर, विलम्ब। राष की ढेर=शरीरान्त पर, भस्म होकर राख की ढेरी, जीवन का परिणाम राख। संक रती नहीं=रत्ती भर, किञ्चित् भी शंका नहीं। उदमाद=उन्माद, उछल-कूद। गुरदाबाद करि है=गुरदाबाज कर देगा अर्थात् धूल चटा देखा, मिट्टी में मिला देगा, ध्वस्त शहर की तरह।

18-21. सिर पर सांधे काल [कहा०]=सिर पर काल खड़ा [-सवार] है। पटकि पछारि है=पटक कर पछाड़ देगा, धराशायी कर देगा। बेहाल=बुरे हाल। थिर रहणें की बात=स्थिर बने रहने की बात। सिर पर जम षडा [कहा०]=मौत सिर पर सवार है। घात=हमला, झपट्टा। किन होय=क्यों न हो। घरी पहरि मैं=घड़ी-पल में अर्थात् क्षण-कालावधि में। उबरि है=उबरेगा, उद्धार पाएगा। समरथ सरनैं जाइ=समर्थ की शरण में जाने पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर अपनौ राम तजि जाइ और के भौंन।
काल गहै जब कण्ठ कौं तवहि छुडावै कौंन ॥22॥
सुन्दर राषै कौंन कौं संचि संचि धन माल।
तेरै संग चलै न कछु षोंसि लेहिंगे षाल ॥23॥
सुत कलत्र माता पिता भइया बंधु समेत।
सुन्दर सब कौं देषते काल ग्रास करि लेत ॥24॥
जोर चलै कहि कौंन कौ सब कुटंब घर मांहि।
सुन्दर काल उठाइ ले देषत ही रहि जांहि ॥25॥
सुन्दर पौन लगै नहीं राष्यौ तहां छिपाइ।
काल पकरि कै केस कौं बाहरि नाष्यौ आइ ॥26॥
काल ग्रसै सब सृष्टि कौं बचत न दीसै कोइ।
सुन्दर सारे जगत मैं तोबह तोबह होइ ॥27॥
सुन्दर घर घर रोवणों पर्‌यौ काल की त्रास।
केइक जारन कौं गये फिर केइक कौ नास ॥28॥
सुन्दर सब ही थरसले देषि रूप बिकराल।
मुख पसारि कब कौ रह्यौ महा भयानक काल ॥29॥
सत्य लोक ब्रह्मा डर्‌यौ शिव डरप्यौ कैलास।
विष्णु डर्‌यौ बैकुंठ मैं सुन्दर मानी त्रास ॥30॥

---

22. और के भौंन=दूसरे के भवन में। अर्थात् दूसरे की शरण में। तवहि छुड़ावै कौंन=उस समय कौन छुड़ाएगा, कौन रक्षा करेगा। यहाँ जीवधारी की काल के वशीभूत बने-रहने की विवशता व्यंजित है।

23-26. संचि संचि=संचय कर-कर के। षोंसि लेहिंगे षाल [मुहा०]=खाल खींच लेंगे, बुरी तरह बेहाल करेंगे। कलत्र=स्त्री। सब कौं···करि लेत=सबके द्वारा देखते-देखते, प्राणी को काल अपना कौर बना लेता है। अर्थात् उसे किसी का भय-संकोच नहीं है। उठाइ ले=उठा लेता है। देषत ही रहि जांहि [मुहा०]=देखते ही रह जाते हैं। पौन लगै नहीं तहां=वहां हवा तक भी नहीं लग सकती। अर्थात् अति सुरक्षित स्थान पर। बाहरि नाष्यौ आइ=बाहर खींच कर डाल देता है।

27-29. सब सृष्टि कौं=सभी जीवधारियों को। तोबह तोबह होइ [अ०]=त्राहि-त्राहि होती है, विवश-भयदायक-त्रस्त आवाज़ें। केइक=कितने ही। थरसले=थरति डरते-काँपते हैं। बिकराल=बिकराल, प्रचण्ड, भयावह। मुख पसारि=मुँह बाए, मुँह फाड़े।

30-31. ब्रह्मा=सृष्टि कारक पौराणिक देवता, विधाता। डर्‌यौ=डरता है, भयभीत रहता है। सत्यलोक=ब्रह्म-लोक। शिव=महादेव, विनाश-संहार का देवता। कैलास<कैलाश=शिव लोक। बिष्णु<विष्ण पालन-रक्षण का देवता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र डर्यौ अमरावती देवलोक सब देव।
सुन्दर डर्यौ कुबेर पुनि देषि सबनि कौ छेब ।।31।।
राक्षस असुर सबै डरे भूत पिशाच अनेक।
सुन्दर डरपे स्वर्ग कै काल भयानक एक ।।32।।
चन्द सूर तारा डरै धरती अरु आकास।
पांणी पावक पवन पुनि सुन्दर छाडी आस ।।33।।
सुन्दर डर सुनि काल कौ कंप्यौ सब ब्रह्मंड।
सागर नदी सुमेर पुनि सप्त दीप नौ खंड ।।34।।
साधक सिद्ध सबें डरे तपी ऋषीश्वर मौंन।
योगी जंगम बापुरे सुन्दर गनती कौंन ।।35।।
एक रहै करता पुरुष महाकाल कौ काल।
सुन्दर वहु विनसै नहीं जाकौ यह सब ष्याल ।।36।।
सुन्दर उठतें बैठतें जागत सोवत काल।
निर्भय कोइ न रहि सकै काल पसार्यौ जाल ।।37।।
सुन्दर षाते पीवते चलत फिरत डर होइ।
सब ही कौं भै काल कौ निर्भय नाहीं कोइ ।।38।।
सुन्दर सुनतें देषतें लेतें देतें त्रास।
यौंही मुख सौं बोलतें निकसि जात है स्वास ।।39।।
जगत जोइ जो कृत करै सो सो भय संयुक्त।
सुन्दर निर्भय राम जी कै कोई जन मुक्त ।।40।।

बैकुंठ < वैकुण्ठ = विष्णु लोक। मानी त्रास = भय माना है। अमरावती = इन्द्रलोक। कुबेर = यक्ष स्वामी, धन का देवता। छेब = छद्म अथवा छिद्र, कमज़ोरी।

32-34. काल भयानक एक = अकेले एकमात्र भयानक काल से [-परिवर्तनकारी शक्ति से]। छाडी आस = आशा त्याग दी। अर्थात् जीवनासक्ति को त्याग दिया। कंप्यौ = काँप उठता है, काँपता है। ब्रह्मंड = ब्रह्माण्ड, सृष्टि।

35-39. सबें डरे = सभी डरते हैं। गनती कौंन [मुहा०] = किस गिनती में हैं। अर्थात् नगण्य हैं। करता पुरुष = कर्त्ता पुरुष, परमात्मा, जो काल का भी काल है। एक रहै = वही एक [-अविनाशी] रहता है। जाकौ यह सब ष्याल = जिसकी यह सृष्टि है। काल पसार्यौ जाल [मुहा०] = सम्पूर्ण सृष्टि में काल ने अपना जाल फैला रखा है। भै काल कौ = काल का भय। यौंही···स्वास = योंही, मुख से बोलते-बोलते, सहसा श्वास निकल जाती है।

40-41. जोइ जो कृत करै = जो-जो काम करता है। सो सो भय संयुक्त = वह सब भय से युक्त है। निर्भय = निडर [तो केवल 'राम' और उसका भक्त ही है]। संसार तें = संसार के [पचड़े] प्रपंच से। काढ़ि न निकस्या भागि = [दौड़ कर-] जल्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर या संसार तें काहि न निकसत भागि।
सुख सोवत क्यौं बावरे घर मैं लागी आगि ॥41॥
काम काल त्रैलोक मैं मारै जान सुजान।
सुन्दर ब्रह्मा आदि दै कीट प्रयंत बषान ॥42॥
क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियौ सकल कौ नास।
सुन्दर कौरव पांडुवा छपन कोटि परभास ॥43॥
लोभ काल यौं जानिये भरमावै जग मांहिं।
बूडै जाइ समुद्र मैं सुन्दर निकसै नांहिं ॥44॥
मोह काल की पासि है सुन्दर निकसै कौंन।
पिता पुत्र संग जलि मुवौ अग्नि लगी जब भौंन ॥45॥
जो जो मन मैं कल्पना सो सो कहिये काल।
सुन्दर तूं निःकल्प ह्वौ छाडि कल्पना जाल ॥46॥
काल ग्रसै आकार कौं जामैं सकल उपाधि।
निराकार निर्लेप है सुन्दर तहां न ब्याधि ॥47॥
सुन्दर काल तहां तहां जब लग है अज्ञान।
ममत गयौ जब देह कौ तब व्यापक भगवान ॥48॥

से क्यों नहीं निकल भागता। घर मैं लागी आगि [मुहा०]=जब घर में आग लगी हो, तो सोना कैसा ?

42-45. काम काल=काम-वासना [-मोहासक्ति] रूप में काल। मारै जान सुजान= ज्ञानी-अज्ञानी सभी को पछाड़ता है। कीट प्रयंत=कीट-जीव जन्तु तक। क्रोध-काल=क्रोध रूप में काल। कौरव पांडुवा [दृष्टा०]=क्रोध [-काल] ने ही छप्पन करोड़ यादव सेनाओं सहित कौरव-पाण्डवों का विनाश किया था। परभास =प्रभास-पट्टन क्षेत्र में। लोभ काल=लोभ रूप काल। भरमावै=भ्रमित-मोहित करता-रहता है। बूडै समुद्र मैं=लोभ-समुद्र में डूबता-रहता है। मोह काल= आसक्ति [-सकामता] रूप काल। जलि मुवा=जल कर मर गया। अग्नि लगी जब भौंन [मुहा०]=घर में जब आग लगी हो।

46.-48. कल्पना जाल=कामनाओं वाली जितनी भी कल्पनाएं हैं, वे सब काल रूप ही हैं। निःकल्प हो=कल्पना [-कामना] रहित हो। काल ग्रसै आकार कौं=जो भी आकारधारी हैं, काल उसे अवश्य ग्रसता है। उपाधि=नानात्व, व्याधियाँ। निर्लेप=निर्लिप्त है। जब लग अज्ञान=जब-तक अज्ञान है, तब-तक काल है। ममत गयौ जब देह कौ=जब देहासक्ति समाप्त हो जाती है। तब व्यापक भगवान=तब वर्तमान [-व्यापक, व्याप्त-पूर्ण] परमात्मा का अनुभव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बंध्या देह सौं तब लग ग्रासै काल।
छाडि ममत न्यारौ भयौ रज्जु बिषै कत ब्याल ।।49।।
सुन्दर काल अखंड है तिमिर रह्यौ ज्यौं छाइ।
ज्ञान भान प्रगटै जबहिं दोन्यूं जांहि बिलाइ ।।50।।

।। इति काल चितावनी कौ अंग ।।7।।

49-50. बंध्या देह सौं=जब-तक देह से बंधा है, देह के प्रति आसक्त है। छाडि ममत न्यारौ भयौ=जैसे ही ममतासक्ति का त्याग होता है, वैसे ही प्रपंच [-भ्रम] से अलग हो जाता है। रज्जु बिषै कत ब्याल=तब वास्तविक दर्शन होने के कारण, रस्सी की रस्सी दिखाई देती है, सर्प-भय समाप्त हो जाता है। काल अखंड=काल [-बोध] की अखण्डता [-निरन्तरता] का अनुभव होता है। तिमिर=अन्धकार, अज्ञानान्धकार। छाइ=आच्छादित। ज्ञान भान=ज्ञान रूप सूर्य। प्रगटै=प्रकट होता है, उदित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।।8।। अथ नारी पुरुष श्लेष कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : जैसाकि अन्तिम साखी में उल्लिखित है, यह अंग 25 साखियों का है, 26वीं साखी में तो इन 25 साखियों में निहित अर्थ-व्याप्ति का संकेत है। इन साखियों में, श्लेष के सहारे, 'नारी' [-स्त्री, नाड़ी] शब्द-प्रयोग में रचनाकार की व्युत्पन्नता के दर्शन होते हैं। एक बात तो यहाँ स्पष्ट है ही कि सुन्दरदास को वैद्यक का सम्यक् ज्ञान था। साथ ही इन साखियों के द्वारा सन्त-वाणी पर नारी-निन्दा सम्बन्धी आक्षेप भी तिरस्कृत जान पड़ता है। क्योंकि, रचनाकार ने घर-परिवार में नारी-पुरुष सहयोग [-सन्तुलन] पर विशेष बल दिया है। एक बात यह भी कि परिवार-मर्यादा के माध्यम से, पर-पुरुष सम्पर्क को, स्त्री-पुरुष रूप में मानव मन की कमज़ोरी समझते हुए, सावधान रहने अथवा अनुशासित करने और बने रहने-रखने, की बात का सुन्दरदास ने पूरा समर्थन किया है। मूल पाठ अवलोकनीय है—

साषी [साखी] :

नारी पुरुष सनेह अति देषैं जीवै सोइ।
सुन्दर नारी बीछुरै आप मृतक तब होइ ।।1।।
नारी बोलै आकरी तब दुख पावै नाह।
सुन्दर बोलै मधुर मुख तब सुख सीर प्रवाह ।।2।।

चूर्णिका : टिप्पणी : इस अंग की साखियों में 'नारी' शब्द में प्रायः श्लेष का प्रयोग है, जो स्त्री एवं हाथ की नाड़ी अर्थों की व्यंजना कराता है।

1. देषैं जीवै सोइ=[स्त्री को, स्वास्थ्य की दृष्टि से नाड़ी को-] देखते-रहने से ही जीवन सहज बना रह पाता है। नारी बिछुरै=स्त्री[-नाड़ी] के बिछुड़ने से। मृतक=निष्प्राण।
2. नारी बोलै आकरी=नारी जब कर्कश बोलती है तब। दुख पावै नाह=नाह [-पति, प्राण] दुःख [-क्लेश] का अनुभव करता है। बोलै मधुर मुख=मुख से मीठा या सहज भाव से बोलती है। सुख सीर प्रवाह=तब सुख [-शान्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी बोलै प्यार सौं तब कछु पीवै षाइ।
जब नारी क्रोधहिं करै सुन्दर पिय मुरझाइ ।।3।।
नारी बोलै रस लिये कबहूं बिरसी बात।
सुन्दर जीवै बिरस तें रस तें पिय की घात ।।4।।
जाकै घर नारी भली सुन्दर ताकै चैंन।
जाकै घर मैं करकसा कलह करै दिन रैंन ।।5।।
नारी चलै उतावली नखसिख लागै भाहि।
सुन्दर पटकै पीव सिर दुःख सुनावै काहि ।।6।।
नारी घर बैठी रहै पर घर करै न गौंन।
सुन्दर पावै पीव सुख दोष लगावै कौंन ।।7।।
नारी प्यारी पीव कौं सुन्दर आठौं याम।
जब नारी असकी परै तब षरचै बहु दाम ।।8।।

शीतलता] का प्रवाह चलता है। **टिप्पणी** : हाथ की नब्ज़ [-नाड़ी] को देखकर शरीर-स्वास्थ्य और उसके रोग [-वात-पित्त कफादि]-दोषों की विषमता एवं उनकी जानकारी अच्छे वैद्योंको हो जाती है। नाड़ी देखकर ही वैद्य उसका निदान खोजता है।

3-4. बोलै प्यार सौं=जब प्यार से बोलती है, सन्तुलित [-समदशा में] गति करती है। क्रोधहिं करै=क्रोध करती है, उदण्ड [-विषम] हो उठती है। पिय मुरझाइ= प्रिय [-पति, जीव] उदास [-खिन्न] हो उठता है। रस लिये=रस युक्त होकर, रसाधिक्य वाली नाड़ी से विषमता [-उपद्रव] की जानकारी होती है। बिरसी बात =रस रहित बात, उदासी देने वाली चिन्ताजनक नाड़ी-गति। जीवै बिरस तें। वि + रस=रसाधिक्य से रहित, दूषित रसों के अभाव में। रस तें=लवण-अम्लादि [के आधिक्य से]। पिय की घात=प्रिय की हानि, रोग युक्त होने से जीव को परेशानी। **टिप्पणी** : अधिक रसगुल्ला-मिठाई आदि खाने-खिलाने से विकार वृद्धि ही होती है। इसीप्रकार अधिक वासना-रस में डूबे-रहने से चेतना का घात ही होता है।

5. घर=गृह, शरीर। भली=अच्छे स्वभाव की, समता भाव वाली। चैंन= सुख-शान्ति। करकसा=कर्कशा, उग्र स्वभाव की। कलह करै=क्लेश करती-रहती है।

6-8. नारी चलै उतावली=नारी-नाड़ी जब तीव्र गति से चलती है तो उसका दर्शक प्रिय [-पति, जीव]सिर पटकता है, यह सोचकर कि इस नाड़ी के लक्षण कैसे हैं? दुःख सुनावै काहि=अपने दिल के दुख-दर्द को वह किसे जाकर बताए। घर बैठी रहै=घर-शरीर में ही अनुशासित रहे। पर घर=दूसरे [-पर पुरुष अथवा विषम होने पर दूसरी नाड़ियों के घरों में प्रवेश] के घर में। असकी परै=आलस्यमयी [-सुस्त] होती है। दाम=पैसा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी नीकै बोलई सुन्दर तब सुख भौंन।
जब नारी चुप करि रहै तब पिय पकरै मौंन ॥9॥
पुरुष सदा डरपत रहै सुन्दर डोलै साथ।
नारी छूटै हाथ तैं तब कत आवै हाथ ॥10॥
नारी निरखै रात दिन अति गति बांध्यौ मोह।
सुन्दर बार लगै नहीं पल मैं होइ बिछोह ॥11॥
नारी मैं बल पुरुष कौ पुरुष भयौ बसि नारि।
अपनौ बल समुझै नहीं बैठौ सर्बस हारि ॥12॥
नारी जाकै हाथ मैं सोई जीवत जानि।
नारी कै संग बहि गयौ सुन्दर मृतक बषानि ॥13॥
नारी फिरै गली गली ताकौं लज्या नांहि।
सुन्दर मार्‌यौ सरम कौ पुरुष घुस्यौ घर मांहि ॥14॥
नारी डोलै भटकती पुरुषहिं नहीं बिसास।
मति कहुं अटकै और सौं मोतें होइ उदास ॥15॥
सुन्दर पिय की लाडिली नारी सौं अति नेह।
जाइ दिषावै और कौं चूक पुरुष की येह ॥16॥

---

9. नीकै बोलई=ठीक तरह से, सन्तुलित बोलती है। नारी चुपकर रहै=नारी [-नाड़ी] चुप हो जाती है, तो प्रिय [-पति, जीव] भी चिन्तित होकर चुप हो जाता है।

10. डरपत रहै=डरता-रहता है। डोलै साथ=साथ-साथ डोलता [चलता-फिरता] रहता है। नारी छूटै हाथ तैं=नारी [-नाड़ी] हाथ से निकल गई तो। कत आवै हाथ=फिर कैसे हाथ आएगी ? अर्थात् पुनः उसको ग्रहण कर पाना सम्भव नहीं।

11-13. अति गति बांध्यौ मोह=मोहासक्ति के कारण नारी-नाड़ी से गहरा सम्बन्ध बाँध रखा है। बार लगै नहीं=देर नहीं लगती। बिछोह=वियोग। बैठो सर्बस हारि [मुहा०]=सब कुछ हार कर बैठ जाता है, विवश है। नारी हाथ मैं=नारी [-नाड़ी] जिसके अनुशासन में है; वही जीवित [-व्यक्ति] है। नारी कै संग बहि गयौ=जो नारी [-नाड़ी] के साथ अस्थिर [-चंचल] है, वही मृतक [-अस्तित्वहीन] है।

14-16. नारी फिरै गली गली=नारी [-नाड़ी] गली-गली फिरती है। अर्थात् नारी के समान ही जब नाड़ी [-दोष कुपित होकर] अपने स्थान को त्याग कर, विकार-युक्त होती है, तब वैद्य को इधर-उधर नाड़ी देखनी पड़ती है। मार्‌यौ सरम कै= [शर्म-] शील-संकोच के मारे। बिसास=विश्वास। मति कहुं अटकै और सौं= अरे, कहीं और किसी से न उलझ जाए। लाडिली=प्यारी। चूक पुरुष की=यही पुरुष की गलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर पिय अति बावरौ ह्वै करि जाइ अनाथ।
नारी अपनी आनि कै देइ और कै हाथ ॥17॥
सुन्दर पीव कहा करै नारी चंचल होइ।
न्याइ दिषावै और कौं जे समुंझावै कोइ ॥18॥
छाड्यौ चाहै पीव कौं नारी पर घर जाइ।
सुन्दर चंचल चपल अति तासौं कहा बसाइ ॥19॥
समझावन कौं ल्याइये भलौ सयानौ कोइ।
तासौं बौलै आकरी कै कहुं षबर न होइ ॥20॥
ऐसैं बैसैं आइ कै कहै बहुत ही बैंन।
तिनकी कछु मानै नहीं पुरुषहि होइ न चैंन ॥21॥
भलौ सयानौ आइ जो समुझावै बहु भांति।
कुलवंती मानै कह्यौ सुन्दर उपजै स्वांति ॥22॥
सुन्दर नारी पुरुष की प्रीति परस्पर जांनि।
तब तैं संग तज्यौ नहीं जब तैं पकरी पांनि ॥23॥

17-20 बावरौ=मूर्ख, नासमझ, अपरिपक्व। नारी अपनी···हाथ=अपनी नारी-नाड़ी को दूसरे के हाथ में थमा देता है। नारी चंचल होइ=नारी [-नाड़ी धमनी] के चंचला होने पर। न्याइ दिखावै और कौं=न्यायपूर्वक और को दिखाने लगता है। पर घर=दूसरे के घर में, दूसरी धमनियों के क्षेत्र में। तासौं कहा बसाइ [मुहा०] =उससे कुछ वश नहीं चलता। सयानौ=कुशल, प्रवीण-वैद्य अथवा भूत-प्रेत-बाधा उतारने वाला 'सयाना' या 'ओझा'। बोलै आकरी=[कटु-] कर्कश बोलती है। कहुं षबर न होइ=किसी को जानकारी न हो।

21-23. ऐसें वैसें आइकै=आकर जो ऐसी-वैसी, सारहीन बातें करता है। तिनकी मानै नहीं=उनकी बात नारी [-नाड़ी] नहीं मानती और अपनी जिद्द को नहीं छोड़ती। भलौ सयानौ=पूर्ण कुशल, ज्ञानी, होशयार, अनुभवी। कुलवंती=उच्च कुल की नारी, स्वस्थ शरीर की नाड़ी। उपजै स्वांति=शान्ति-समता उत्पन्न होती है। प्रीति परस्पर=पारस्परिक प्रेम ही प्रधान है। जबतैं पकरी पांनि [मुहा०] =जब से हाथ पकड़ा है, जब से पाणि-ग्रहण किया है। संग तज्यौ नहीं=साथ नहीं छोड़ा, वियुक्त नहीं हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर नारी पतिब्रता तजै न पिय कौ संग।
पीव चलै सहि गामिनी तुरत करै तन भंग ।।24।।
दैव बिछोह करै जबहिं तब कोई बस नांहि।
सुन्दर नेह न निर्वहै आपु आपु कौं जांहि ।।25।।
इनि साषी पच्चीस मैं नारी पुरुष प्रसङ्ग।
सुन्दर पावै चतुर अति तीन अर्थ तिनि सङ्ग ।।26।।

।। इति नारी पुरुष श्लेष कौ अंग ।।8।।

24-26. नारी पतिब्रता=पतिव्रत धारण करने वाली स्त्री, अपनी गति [-निष्ठा] में व्यवस्थित नाड़ी। पीव चलै=प्रिय [-पति, जीव] के चलते ही, गुज़रते ही। सहि गामिनी=साथ चलने वाली पत्नी, अनकूल नाड़ी। तन भंग=शरीर त्याग कर देती है। दैव बिछोह करै जबहिं=दैवात जब वियोग होता है। आपु आपु कौं जांहि=अपनी-अपनी दिशाओं में, अपने-अपने लक्ष्य की ओर चले जाते हैं। इनि साषी पच्चीस मैं=इन पच्चीस साखियों में। तीन अर्थ तिनि सङ्ग=नारी-पुरुष-प्रसंग में तीन अर्थ संयुक्त हैं। **टिप्पणी :** संकेतित तीन अर्थों में दो अर्थ तो मुखर होने से यथास्थान व्यंजित हैं। तीसरा अर्थ 'पुरुष' [-परमात्मा] के साथ, जीवात्मा रूप नारी [अर्थात् जीवात्मा, आत्मा अथवा प्रकृति, माया] अर्थ भी है। यह तीसरा अध्यात्म पक्ष वाला अर्थ संकेतित भर है, बड़ी कठिनाई से उसकी अर्थ-सिद्धि हो पाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।।9।। अथ देहात्मा बिछोह कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की 25 साखियों में, सन्त-वाणी परम्परा के अनुरूप नयी विषय-वस्तु का प्रतिपादन है। मृत्यु या मृतक के सम्बन्ध में अथवा देह-विनाश [-क्षण भंगुरता] के सम्बन्ध में तो प्रभूत वाणी मिलती है। किन्तु, शरीर का संचालक 'प्राण-चैतन्य' है जो जीवन का प्रमुख केन्द्र [-केन्द्रभूत तत्त्व] है, इस विचार-पक्ष को परिवार सन्दर्भ में प्रथम बार यहाँ गहराई से रेखांकित किया गया है। अनेक रूपक-दृष्टान्त-बिम्बों के द्वारा यहाँ सिद्ध किया गया है कि तृण-तुल्य समझा जाने वाला यह शरीर भी मूल्यवान् है—'चेतनि मिश्री देह तृण तुलत संग देहिं दांम।' प्राणों की ऐसी महत्ता, उपनिषदों के बाद, सन्त-वाणी के अतिरिक्त अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। सन्तों की समाज-चेतना में यह प्राण-पुरुष ही है, जो सर्वाधिक मूल्यवान् एवं लोक-भूमिका में सार्थक है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी :
सुन्दर देह परी रही निकसि गयौ जब प्रान।
सब कोऊ यौं कहत हैं अब लै जाहु मसान ।।1।।
माता पिता लगावते छाती सौं सब अंग।
सुन्दर निकस्यौ प्रान जब कोउ न बैठै संग ।।2।।
सुन्दर नारी करत ही पिय सौं अधिक सनेह।
तिनहूं मन मैं भय धर्‌यौ मृतक देषि करि देह ।।3।।
सुन्दर भइया कहत हौ मेरी दूजी बांह।
प्राण गयौ जब निकसि कैं कोउ न चंपै छांह ।।4।।
सुन्दर लोग कुटंब सब रहते सदा हजूरि।
प्रान गये लागे कहन काढौ घर तें दूरि ।।5।।

चूर्णिका : 1-3. प्रान=प्राण, जीवात्मा। मसान=श्मशान। छाती सौं लगावते [मुहा०]=बहुत प्यार करते थे। मन मैं भय धर्‌यौ [मुहा०]=मन में भय धारण किया।

4-5. दूजी बांह होना [मुहा०]=सीधे हाथ की तरह अवलम्बन, सगे भाई का सहारा। न चंपै छांह=छाया भी नहीं छूना चाहता। काढौ घर तें दूरि=घर से दूर निकालो, श्मशान ले जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह सुरंगी तब लगें जब लगि प्राण समीप।
जीव जाति जाती रही सुन्दर बिदरंग दीप ।।6।।
चमक दमक सब मिटि गई जीव गयौ जब आप।
सुन्दर षाली कंचुकी नीकसि भागौ सांप ।।7।।
श्रवन नैंन मुख नासिका ज्यौं के त्यौं सब द्वार।
सुन्दर सो नहिं देषिये अचल चलावणहार ।।8।।
हँसै न बोलै नेंकहूं षाइ न पीवै देह।
सुन्दर अंनसन ले रही जीव गयौ तजि नेह ।।9।।
पाथर से भारी भई कौन चलावै जाहि।
सुन्दर सो कतहूं गयौ लीयें फिरतौ ताहि ।।10।।
सुन्दर पांणी सींचतौ क्यारी कंण कै हेत।
चेतनि माली चलि गयौ सूकौ काया षेत ।।11।।
ज्यौं कौ त्यौं ही देषिये सकल देह कौ ठाट।
सुन्दर को जांणै नहीं जीव गयौ किहिं बाट ।।12।।
सुन्दर देह हलै चलै चेतनि कै संजोग।
चेतनि सत्ता चलि गई कौंन करै रस भोग ।।13।।

---

6. देह सुरंगी=रंगी देह अर्थात् सुन्दर सुसज्जित शरीर। जीव जाति=प्राणी होने का गुण। बिदरंग=बदरंग, भदरंग, मृतक की कुरूपता।

7. चमक दमक=सजावट, शोभा। कंचुकी=खोल, शरीर रूप खोल। नीकसि भागौ =निकल कर भाग गया। सांप=वक्र-गति से चलने वाला श्वास-प्रश्वास रूप सर्प।

8-9. ज्यौं के त्यौं सब द्वार=प्राण निकल जाने पर भी शरीर-इन्द्रियों के द्वार ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। अचल चलावणहार=जो स्वयं अटल [-स्थिर] रहकर दूसरे [-अंगों] को चलाता था, ऐसा जीवात्मा-चेतन। अंनसन ले रही=अनशन ले रही अर्थात् प्राण निकलते ही 'काया अनशन कर देती है,' शरीर निराहार पड़ा-रहता है।

10-13. पाथर से भारी=मृतक होने पर शरीर पत्थर से भी भारी हो जाता है। क्यारी कंण के हेत=शरीर रूप खेत की क्यारी, कण [-अन्न] केलिए। चेतनि माली= चेतन-जीवता पुरुष रूप माली, जो शरीर रूप क्यारी [-वाटिका] को सींचता था। सूकौ काया षेत=प्राण-माली के निकलते ही, खेत रूप शरीर सूख जाता है, निष्प्राण हो जाता है। देह कौ ठाट=शरीर की आकृति-प्रकृति। बाट<वाट=मार्ग, रास्ता। हलै चलै=गतिशील बनी-रहती है। चेतनि के संयोग=चेतन-प्राण पुरुष के साथ रहते हुए। चेतनि सत्ता=चैतन्य अस्तित्व। रस भोग=सुख भोग, सुखानुभूति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलन चलन सब देह कौ चेतनि सत्ता होइ।
चेतनि सत्ता बाहरी सुन्दर क्रिया न होइ ॥14॥
सुन्दर देह हलै चलै तब लगि चेतनि लाल।
चेतनि कियौ प्रयान जब रूसि रहै ततकाल ॥15॥
चम्बक सत्ता कर जथा लोहा नृत्य कराइ।
सुन्दर चम्बक दूरि ह्वै चञ्चलता मिटि जाइ ॥16॥
नख सिख देह लगै भली सुन्दर अधिक स्वरूप।
चेतनि हीरा चलि गयौ भयौ अन्धेरा घूप ॥17॥
सुन्दर देह सुहावनी जव लगि चेतनि मांहि।
कोई निकट न आवई जब यह चेतनि नांहि ॥18॥
चेतनि कै संयोग तें होइ देह कौ तोल।
चेतनि न्यारौ ह्वै गयौ लहै न कोड़ी मोल ॥19॥
चेतनि मिश्री देह तृण तुलत संग देहिं दांम।
सुन्दर दोउ जुदे भये तन तृण कोणैं कांम ॥20॥
चेतनि तें चेतनि भई अति गति शोभित देह।
सुन्दर चेतनि निकसतें भई षेह की षेह ॥21॥

14-16. चेतनि सत्ता=चैतन्य के अस्तित्व से ही शरीर में हलचल बनी-रहती है। अर्थात् शरीर में क्रियाशीलता प्राण-सत्ता के कारण ही होती है। चेतनि लाल=रत्न रूप मूल्यवान् चैतन्य। अथवा चेतन रूप पुत्र [-बालक]। प्रयान=प्रयाण, गमन। रूसि रहै=रूठा रहता है। चम्बक सत्ता···कराइ [-रूपक]=चुम्बक की सत्ता [-अस्तित्व] से, हाथ में रखा हुआ लोह-कण [नृत्यवत्-] गतिशील हो उठता है। चञ्चलता=गतिशीलता।

17-20. अधिक स्वरूप=अधिक रूपवान्, शोभायमान। चेतनि हीरा=हीरे के समान जाजुल्यमान जीवात्मा। अन्धेरा घूप=घुप्प अँधेरा, घोर अन्धकार। देह सुहावनी =शोभायमान शरीर। देह कौ तोल=देह का मूल्य [-प्रतिष्ठा, मान]। लहै न कौडी मोल [मुहा०]=प्राणान्त होने पर शरीर का मूल्य कौड़ी के समान तुच्छ हो जाता है। चेतनि मिश्री=मिसरीवत् मधुर-मूल्यवान् चेतना के साथ। देह-तृण= तृण रूप शरीर। **टिप्पणी :** मिसरी [-मिठाई] के साथ जो तृण तुलता है, तो उसकी भी कीमत हो जाती है। लेकिन उसके अलग कर दिए जाने पर तृण की कोई कीमत नहीं रहती। वैसे ही, प्राणों के रहते शरीर की कीमत रहती है, प्राण निकलते ही शरीर की कोई कीमत नहीं रहती।

21. अति गति शोभित देह=अत्यन्त शोभायमान शरीर। षेह की षेह [मुहा०] =अन्त में मृतक देह राख की राख, मिट्टी की मिट्टी शेष रह जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनि ही लीयें फिरै तन कौं सहज सुभाइ।
सुन्दर चेतनि बाहरी षैल भैल ह्वै जाइ ।।22।।
देह जीव यौं मिलि रहै ज्यौं पांणी अरु लौंन।
बार न लाई बिछुरतें सुन्दर कीयौ गौंन ।।23।।
सुन्दर आइ शरीर मैं जीव कीये उतपात।
निकसि गये या देह की फेर न बूझी बात ।।24।।
सुन्दर आयौ कौंन दिसि गयौ कौनसी वोर।
या किनहूं जान्यौ नहीं भयौ जगत मैं सोर ।।25।।

।। इति देहात्मा बिछोह कौ अंग ।। 9 ।।

22-25. चेतनि बाहरी=चेतना बाहर निकलते ही। षैल भैल=खलबली मच जाती है, नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। पांणी अरु लौंन=पानी और नमक की तरह से एकमेक। किन्तु, प्राणान्त के बाद एक दूसरे से तत्काल अलग हो जाते हैं। उतपात=उत्पात, उपद्रव। फेर न बूझी बात [मुहा०]=फिर बात नहीं पूछी। वोर=ओर, दिशा में। जगत मैं सोर [मुहा०]=जगत में शोर होना अर्थात् मृत्यु होने पर सब ओर शोक, शोर [हाहाकार] होना, सबको मालूम हो जाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 10 ॥ अथ तृष्णा कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत पच्चीस साखियों वाले अंग में तृष्णा [-लोभ-आकांक्षा, लिप्सा, आसक्ति, लालच]-वृत्ति का, एक रचनाकार की दृष्टि से विवेचन हुआ है, न कि एक दार्शनिक [-तत्त्व चिन्तक] की दृष्टि। इसमें अनेक मुहावरों, दृष्टान्तौ एवं रूपकों द्वारा लोभी-लालची मनुष्य की मानसिकता का यथार्थ चित्रण है। निन्यानवे के चक्कर में पड़ा हुआ मनुष्य कितना केन्द्रित [-सीमित] और क्षुद्र वृत्तियों वाला हो जाता है, इसकी प्रभावी ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। साखियों की भाषा, भाव-भंगिमाओं को अभिव्यक्त करने में पूर्णत: समर्थ कही जा सकती है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : पल पल छीजै दहे यह घटत घटत घट जाइ।
सुन्दर तृष्णा ना घटै दिन दिन नौतन थाइ ॥1॥
बालापन जोबन गयौ बृद्ध भये सब कोइ।
सुन्दर जीरन ह्वै गये तृष्णा नव तन होइ ॥2॥
सुन्दर तृष्णा यौं बधै जैसैं बाढै आगि।
ज्यौं ज्यौं नाषै फूस कौं त्यौं त्यौं अधिकी जागि ॥3॥
जब दस बीस पचास सौं सहस्र लाख पुनि कोरि।
नील पदम संष्या नहीं सुन्दर त्यौं त्यौं थोरि ॥4॥

चूर्णिका : 1-3. छीजै = छीजती है, क्षयशील बनी-रहती है। नौतन = नूतन, नवीन। थाइ = स्थित बनी रहती है, प्रभावी बनी रहती है। बालापन = बाल्यावस्था। जीरन ह्वै गए = जीर्ण-क्षीण हो गए। नवतन = नित नवीन। बधै = बढ़ती है। नाषै फूस कौं = जैसे-जैसे अपने भक्ष्य घास-फूँस को खाती [-जलाती] जाती है, वैसे-वैसे ही अधिक प्रज्वलित होती-जाती है। तृष्णा = लालसा, कामना, अभिलाषा, लिप्सा, भोगेच्छा।

4. जब दस बीस···कोरि = वैभव को आँकने वाली [-रुपयों की] संख्या, दस-बीस-पचास-शत-सहस्र-लक्ष-कोटि-नील-पद्म-संख तक भी लिप्सा [-तृष्णा] की भूख नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुरि पृथीपति होन की इन्द्र ब्रह्म शिव वोक।
कब देहैं करतार ये सुन्दर तीनौं लोक ॥5॥
तृष्णा बहै तरंगिनी तरल तरी नहिं जाइ।
सुन्दर तीक्षण धार मैं केते दिये बहाइ ॥6॥
सुन्दर तृष्णा पकरि कैं करम करावै कोरि।
पूरी होइ न पापिनी भटकावै चहुं वोरि ॥7॥
सुन्दर तृष्णा कारनै जाइ समुद्रहि बीच।
फटै जहाज अचानचक होइ अबंछी मीच ॥8॥
सुन्दर तृष्णा लै गई जहँ बन बिषम पहार।
सिंह ब्याघ्र मारै तहां कै मारै बट पार ॥9॥
सुन्दर तृष्णा करत है सब कौं बांद गुलांम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै गनै शीत नहिं घांम ॥10॥
मेघ सहै आंधी सहै सहै वहुत तन त्रास।
सुन्दर तृष्णा कै लियें करै आपनौ नास ॥11॥
सुन्दर तृष्णा कै लियें पराधीन ह्वै जाइ।
दुसह बचन निस दिन सहै यौं पर हाथ बिकाइ ॥12॥
तृष्णा कै बसि होइ कै डोलै घर घर द्वार।
सुन्दर आदर मांन बिन होत फिरै नर ष्वार ॥13॥

मिटा सकती। त्यौं त्यौं थोरि=उतनी संख्या होने पर भी थोड़ी समझी जाती है।

5-7. पृथापति=राजा-सम्राट्। इन्द्र ब्रह्म शिव=इन्द्र-ब्रह्मा और महादेव की सामर्थ्य वाली अभिलाषा, कामना। वोक<ओक=प्यास, चाह, आकांक्षा। तीनों लोक=तीनों लोकों का अधिपति होने की अभिलाषा। तरंगिनी=नदी। तरी=सन्तरित। तीक्षण धार=प्रबल प्रवाह। केते दिए बहाइ=कितने ही बह गए [-डूब गए]। कोरि=करोड़ों। भटकावै=भटकाती है, परेशान करती-रहती है। पापिनी=दुष्टा।

8-11. फटै जहाज=जलयान में जब छेद हो जाता है। अचानचक=अचानक। अबंछी मीच=अवाञ्छिद्वत मृत्यु, अकाल मृत्यु। बन बिषम पहार=अरण्य और दुर्गम पर्वतों पर। बटपार=ठग, मार्ग के लुटेरे। बांद गुलांम=बाँध कर गुलाम कर देती है। गनै शीत नहिं घांम [मुहा०]=लोलुप व्यक्ति सर्दी-गर्मी नहीं गिनता-देखता। सहै=सहन करता है। आपनौ नास=आपना ही विनाश।

12-13. पराधीन=पराश्रित। दुसह बचन=कटु वचन, असह्य वचन। पर हाथ बिकाइ [मुहा०]=स्वार्थ के कारण दूसरों के हाथ बिकता है। डोलै घर घर द्वार=लालच के कारणा घर-घर द्वार-द्वार मारा-फिरता है। होत फिरै नर ष्वार [-ख्वार]=तृष्णा के वशीभूत होकर मनुष्य अपनी ख्वारी [-अपमान] कराता-फिरता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृष्णा पेट पसारियौ तृप्ति न क्यौंही होइ।
सुन्दर कहतैं दिन गये लाज सरम नहिं कोइ ॥14॥
तृष्णा डोलै ताकती स्वर्ग मृत्यु पाताल।
सुन्दर तीनहुं लोक मैं भर्यौ न एकहु गाल ॥15॥
तृष्णा डाइण होइ कैं षायौ सब संसार।
सुन्दर संतोषी बचै जिनके ब्रह्म बिचार ॥16॥
सुन्दर तोहि कितौ कह्यौ सीष न मानी एक।
तृष्णा तूं छाडै नहीं गही आपनी टेक ॥17॥
तृष्णा तूं बौरी भई तोकौं लागी बाइ।
सुन्दर रोकी नां रहै आगै भागी जाइ ॥18॥
सुन्दर तृष्णा बहु बधी धर्यौ बडो अति देह।
अध ऊरध दशहूं दिशा कहूं न तेरौ छेह ॥19॥
सुन्दर तृष्णा डाइनी डाकी लोभ प्रचण्ड।
दौऊ काढें आंषि जब कंपि उठै ब्रह्मण्ड ॥20॥
सुन्दर तृष्णा भांडिनी लोभ बडौ अति भांड।
जैसौ ही रंडुवौ मिल्यौ तैसी मिलि गई रांड ॥21॥

---

14. पेट पसारियौ [मुहा०]=पेट फैलाना अर्थात् अपनी भूख-कामना-चाहना को दिखाना। कहतैं दिन गये=कहते [-समझाते] हुए बहुत-से दिन बीत गए हैं।
15. डोलै ताकती=ताकती हुई [-लिप्सा लिए हुए] डोलती-फिरती है। गाला=गालन, निवाला, ग्रास, चक्की रूप मुख का कौर [-गाल] भी पूरा नहीं हो पाया।
16-18. डाइण होइ कै=डाइन-पिशाचिनी होकर। षायौ सब संसार=सारे संसार को खा लिया अर्थात् सारे संसार के लोगों पर तृष्णा की प्रबलता हावी बनी-रहती है। संतोषी=सन्तुष्ट। ब्रह्म विचार=ब्रह्म भावना, विवेक। सीष=सीख, शिक्षा। गही आपनी टेक=अपनी टेक [-प्रतिज्ञा, हठ] पकड़ रक्खी है। बौरी भई=पागल हो गई है। बाइ=वात रोग, सन्निपात, भूत-पिशाच-व्याधा। रोकी नां रहै=रोकने-संयम करने से नहीं रुकती।
19-21. बधी=बढ़ गई है प्रवृद्ध हो गई है। धर्यौ बडो अति देह=अत्यन्त विशाल शरीर को तूने वशीभूत रख कर है। छेह=छेद, छिद्र, भेद। डाकी=पिशाचनी। लोभ प्रचण्ड=प्रबल लोभ। काढें आंषि [मुहा०]=आँख निकालना, आँख दिखाना। कंपि उठै ब्रह्मण्ड=ब्रह्माण्ड काँप उठता है। अर्थात् तहलका मच जाता है। भांडिनी=नर्तकी, भाँड की स्त्री। भाँड=चापलूस, नर्तक-गायक। रंडुवौ=जिसकी पत्नी मर जाती है, वह आदमी। रांड=जिसका पति मर जाता है, ऐसी स्त्री [गाली रूप में प्रयोग]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर तृष्णा कोढनी कोढी लोभ भ्रतार।
इनकौं कबहुं न भींटिये कोढ लगै तन ष्वार ॥22॥
सुन्दर तृष्णा चूहरी लोभ चूहरौ जांनि।
इनके भींटें होत है ऊंचे कुल की हांनि ॥23॥
सुन्दर तृष्णा सर्प्पणी लोभ सर्प कै साथ।
जगत पिटारा मांहिं अब तूं जिनि घालै हाथ ॥24॥
सुन्दर तृष्णा है छुरी लोभ षङ्ग की धार।
इन तें आप बचाइये दोनौं मारणहार ॥25॥

॥ इति तृष्णा कौ अंग ॥ 10 ॥

22-23. कोढनी=कोढ़ रोग ग्रस्त स्त्री। कोढी=कोढ़ रोग ग्रस्त पुरुष। लोभ भ्रतार=लोभ रूप [भरतार-] पति। कबहुं न भींटिये=उक्त तृष्णा-लोभ रूप कोढ़िनि-कोढ़ी से कभी आलिंगन-बद्ध नहीं होना चाहिए। तन ष्वार=शरीर की ख्वारी हो जाती है। चूहरी चूहर=चूहड़ी-चूहड़ अर्थात् वर्णाधम समझे जाने वाले अकुलीन स्त्री-पुरुष। ऊंचे कुल की हांनि=उच्च कुल [-वंश] की हानि होती है, मर्यादा खण्डित होती है।

24-25. सर्प्पणी=सर्प [-सर्पिणी] के समान [विषैली-] बेहोश करने वाली। लोभ सर्प=सर्प रूप लोभ, सर्प के विष के समान प्रभावकारी लोभ। जगत पिटारा=जगत् रूप पिटारा, जिसमें सर्प [-लोभ, संशय] बन्द करके रखे जाते हैं। जिनि घालै=मत डाल। तृष्णा छुरी=छुरी के समान घातक प्रभाव करने वाली तृष्णा। षङ्ग की धार=तलवार की धार, उसके ऊपर से गुज़रना या साथ रहना बड़ा कठिन है। मारणहार=मारने वाले, घातक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 11 ॥ अथ अधीर्य उरांहने कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : पच्चीस साखियों वाले प्रस्तुत अंग में प्राणी मात्र केलिए **'पेट'** की सत्ता को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है। यहाँ तक कि सभी देवी-देवता पेट केलिए प्रयत्न-शील बताए गए हैं। व्यंजना रूप में, सन्त-मत की चिन्तना यह रही है कि 'बुराई' केलिए पेट[-भूख]एक आवश्यक कारण रहा है। लोग 'पेट' का बहाना करके छल-कपट में लिप्त बने रहते हैं। यहाँ तक कि साधक-आराधक भी पेट केलिए आडम्बर करते देखे-जाते हैं। विलक्षणता तो यह बताई गई है कि **'पेट'** रहित भगवान् [-निराकार परमात्मा] ने अपनी सृष्टि में सब के पेट लगा दिया है। इसी कारण सन्त-रचनाकार अधैर्य-प्रेरित होकर प्रभु को उपालम्भ [-उलाहना] दे रहा है और पेट-धारियों को धैर्य धारण केलिए प्रेरित कर रहा है। इसीलिए शायद इससे अगले अंग 'विश्वास' में पेट बनाने वाले पर विश्वास रखने के **'विचार'** को प्रमुखता दी गई है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साखी : देह रच्यौ प्रभु भजन कौं सुन्दर नख सिख साज।
एक हमारी बात सुनि पेट दियौ किंहि काज ॥1॥
श्रवन दिये जस सुनन कौं नैन देषने सन्त।
सुन्दर सोभित नासिका मुख सोभन कौं दन्त ॥2॥
हाथ पांव हरि कृत्य कौं जीभ जपन कौं नाम।
सुन्दर ये तुम सौं लगै पेट दियौ किंहि काम ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. रच्यौ=निर्मित किया है। नख सिख साज=पैर के नख से शिखा तक शरीर-शोभा। पेट दियौ किंहि काज=हे प्रभु, इस शरीर में पेट का निर्माण क्यों किया है? अर्थात् पेट-भूख के कारण ही, [शरीर-]जीवन में आपाधापी मची-रहती है। दन्त=दाँत [मुख-शोभा केलिए]। नैन=नेत्र [सन्त-दर्शन केलिए]। ये तुम सौं लगै=हे प्रभु, ये सभी शरीरांग-कर्मेन्द्रियाँ तुम से जुड़ी हुई हैं, केवल पेट को छोड़कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कीयौ साज सब समरथ सिरजनहार।
कौंन करी यह रीस तुम पेट लगायौ लार ॥4॥
और ठौर सौं काढि मन करिये तुम कौं भेट।
सुन्दर क्यौं करि छूटिये पाप लगायौ पेट ॥5॥
कूप भरै बापी भरै पूरि भरै जल ताल।
सुन्दर प्रभु पेट न भरै कौंन कियौ तुम ष्याल ॥6॥
नदी भरहिं नाला भरहिं भरहिं सकल ही नाड।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं कौंन करी यह षाड ॥7॥
षंदक षास बुषार पुनि बहुरि भरहिं घर हाट।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं भरयहि कोठी माट ॥8॥
चूल्हा भाठी भार महिं इन्धन सब जर जाइ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह कबहूं नहीं अघाइ ॥9॥
बम्बई थलहि समुद्र मैं पानी सकल समात।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह रहै षात ही षात ॥10॥
असुर भूत अरु प्रेत पुनि राक्षस जिनि कौ नांव।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह करै षांव ही षांव ॥11॥
सुन्दर प्रभु जी पेट की चिंता दिन अरु राति।
सांझ षाइ करि सोइये फिरि मांगै परभाति ॥12॥

4-7. समरथ=समर्थ, सामर्थ्यवान्। रीस=रिस, गुस्सा। लार=साथ में। पाप लगायौ पेट=मन, प्रभु में निष्ठ हो भी जाए, परन्तु पापी पेट साथ में होने के कारण, मन एकाग्र नहीं हो पाता। कूप···जल ताल=कुएँ-बावड़ी, ताल-तलैया, जो इतने गहरे [-बड़े] हैं, वे भी जल से भर जाते हैं। पेट न भरै [मुहा०]=किन्तु, यह पेट कभी नहीं भरता। कौन ष्याल=कौन-सी कल्पना करके। नाड=छोटा नाला। षाड=खड्डा, गड्ढा।

8-11. षंदक=खन्दक, खड्डा, छोटा गड्ढा। बुषार<बुखारी=कुठिया। घर-हाट=घर-बाज़ार। कोठी=कुठिया। माट=मटका। कब्रहूं नहीं अघाइ=कभी नहीं अघाता, तृप्त नहीं होता अर्थात् हमेशा केलिए भूख नहीं मिटती। बम्बई थलहि समुद्र=बम्बई नगर के नीचे समुद्र की गहराई में। रहै षात ही षात=हमेशा खाता ही रहता है। टिप्पणी : बम्बई-थल के परे[-नीचे]बम्बई समुद्र की गहराई से पेट-अतृप्ति की तुलना की गई है, वहाँ पानी भरते-रहने पर भी वह समुद्र-तल कभी पूरा नहीं होता, वैसे ही यह पेट का खड्डा है। करै षांव ही षांव=[भूत-प्रेत-राक्षसों की अपूर्णीय भूख से पेट की तुलना करते हुए-]हमेशा और खाउँ और खाउँ ही करता-रहता है।

12. सांझ षाइ···परभाति [कहा०]=सन्ध्या को पेट भर कर, खाकर सोते हैं, प्रभात में खाली होने पर वह फिर माँगने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर प्रभु जी पेट इनि जगत कियौ सब ष्वार।
को षेती को चाकरी कोई बनज ब्यौपार ॥13॥
सुन्दर प्रभु जी पेट इनि जगत कियौ सब दीन।
अन्न बिना तलफत फिरै जैसैं जल बिन मीन ॥14॥
सुन्दर प्रभु जी पेट बसि भये रंक अरु राव।
राजा राना छत्रपति मीर मलिक उमराव ॥15॥
बिद्याधर पंडित गुनी दाता सूर सुभट्ट।
सुन्दर प्रभुजी पेट इनि सकल किये षटपट्ट ॥16॥
सुन्दर प्रभुजी पेट यह राषै कछू न मांन।
बन मैं बैठे जाइ कैं उठि भागै मध्यांन ॥17॥
सुन्दर प्रभुजी पेट बसि चौरासी लष जंत।
जल थल कै चाहैं सकल जे आकाश बसंत ॥18॥
सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब भांड।
कोई पंचामृत भषै कोई पतरा मांड ॥19॥
सुन्दर प्रभुजी पेट कौं बहु बिधि करहिं उपाइ।
कौंन लगाई ब्याधि तुम पीसत पोवत जाइ ॥20॥
सुन्दर प्रभुजी सबनि कौं पेट भरन की चिंत।
कीरी कन ढूंढत फिरै मांषी रस लैजंत ॥21॥

13-14. ष्वार<ख्वार=नष्ट, चौपट। को षेती···ब्यौपार=इस पेट केलिए ही कोई खेती करता है, कोई नौकरी और कोई वाणिज्य-व्यापार करता है। दीन कियौ= दीनता से भर दिया, निरुपाय या बेवश बना दिया है। मीन=मछली।

15-18. पेट बसि=पेट के वशीभूत। राजा···उमराव=राजा, राणा-छत्रधारी, धर्म प्रमुख या सरदार, मीर[फा०], अधिपति, मलिक [अ०]जागीरदार[उमराव अ०, 'अमीर' का बहुव०] आदि। बिद्याधर=विद्वान्। पंडित=विधि वेत्ता। सूर= शूरवीर। सुभट=महायोद्धा। षटपट्ट<खटपट=खटपट कर दिए हैं, चौपट किया है, विवश करके रखा है। मांन=सम्मान। उठि भागै मध्यांन=दोपहर होते ही, भूख का समय होते ही, भाग उठते हैं। चौरासी लष जंत=चौरासी लाख योनियों के जीव-जन्तु। आकाश बसंत=जो आकाश में निवास करते हैं।

19-21. जगत कियौ भांड=जगत् में सारा भण्डा-फोड़ पेट ने ही किया है। पंचामृत =पंच गव्य, सुस्वाद पेय, स्वादिष्ट भोजन। पतला मांड=पतला माँड-जल। **टिप्पणी** : 'मांड' चावल का वह घोल जो चावल उबालते समय निकाला जाता है। व्याधि=बीमारी। पीसत पोवत जाइ [मुहा०]=सारा समय पीसते-बनाते-पकाते ही बीतता-रहता है। अर्थात् सारा जीवन आटा-रोटी की तैयारी में ही खप जाता है। पेट भरन की चिंत[मुहा०]=भेट-भरने की चिन्ता लगी रहती है। कीरी कन ढूंढत फिरै=चींटी तो कण ढंढती-फिरती है और मक्खी [-मधुमक्खी] रस-संग्रह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि देवी देव अपार।
दोष लगावै और कौं चाहै एक अहार ॥22॥
सुन्दर प्रभुजी पेट कौं दूधाधारी होइ।
पाषंड करहिं अनेक विधि षाहिं सकल रस गोइ ॥23॥
सुन्दर प्रभुजी पेट कौं साधै जाइ मसान।
यंत्र मंत्र आराध करि भरहिं पेट अज्ञान ॥24॥
सुन्दर प्रभुजी सब कह्यौ तुम आगै दुख रोइ।
पेट बिना ही पेट करि दीनी षलक बिगोइ ॥25॥

॥ इति अधीर्य उरांहने कौ अंग ॥ 11 ॥

अपना पेट पालती-रहती है।

22. पेट बसि···देव अपार=असंख्य देवी-देवता भी इस पेट के वशीभूत हैं। चाहै एक अहार=सभी एकमात्र आहार चाहते हैं।

23-25. पेट कौं=पेट के निमित्त। दूधाधारी होइ=दूध के अवलम्ब से जीने वाले बन जाते हैं। पाषंड करहिं=पेट केलिए ही अनेक आडम्बर [-प्रपंच] रचते-रहते हैं। षाहिं सकल रस गोइ=सभी छिप [-छिपा] कर रस-युक्त सुस्वाद भोजन करते-रहते हैं। साधै जाइ मसान=श्मशान-साधना करते हैं। आराध करि=आराधना करके। भरहिं पेट अज्ञान=अज्ञानग्रस्त बने रहकर पेट भरते-रहते हैं। तुम आगै दुख रोइ=दीन होकर, तुम्हारे समक्ष सारा दुःख-दर्द कह सुनाया। पेट बिना···षलक बिगोइ=हे प्रभु, आपके तो पेट है नहीं, पर आपने पेट रहित होकर भी, शरीरधारियों के पेट लगा दिया है। ऐसा करके आपने सारे संसार [-खलक के लोगों] को बहका कर छल लिया है। बिगोइ<विगोपन [सं०]=छलावा किया है, [भ्रान्ति-] बहकावे में डाल दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 12 ॥ अथ विश्वास कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : पच्चीस साखियों का यह अंग, पिछले अंग का उत्तरार्ध या पूरक माना जा सकता है । क्योंकि, इसमें अधैर्य के बाद विश्वास-भाव की प्रतिष्ठा की गई है। इस विश्वास-भाव-प्रतिष्ठा में, निरुद्यमी [-आलसी] बनाने की व्यंजना निकालना अथवा आरोप लगाना सन्त-वाणी के प्रति अन्याय करना है अथवा सन्त-रचना के मर्म को न समझना है । जिस विश्वास के अभाव में मनुष्य दर-दर भटकता है और तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति केलिए रिरियाता या निरुपाय बना हुआ दीन-हीन बना-रहता है, छल-कपट करता है, उसको सन्त-चेतना ने झकझोरा है । आत्म-विश्वास की सात्विकता के सम्बल पर वह निज उद्यम में आस्थाशील और स्वावलम्बी होकर निज प्रयत्न में निरत बना रह सकता है। 'धीरज' और 'विश्वास' मनुष्य के प्रयत्न में आस्था और स्फूर्ति प्रदान करते हैं । यही इस अंग का अभिप्रेत मन्तव्य है । **'अब विश्वास गहि'** के द्वारा रचनाकार कहता है— अरे मनुष्य, प्रभु तेरे साथ है, फिर किसी के समक्ष दीन होकर हाथ फैलाना कैसा ? इस प्रकार विश्वासपूर्वक अपने जीवन-धर्म के निर्वाह की प्रेरणा ही इन साखियों में व्यंजित है । तभी तो 'हाय हाय' करते-रहने वाले मनुष्य को सुन्दरदास ने धिक्कारा है । मूल पाठ देखिए—

साषी : सुन्दर तेरे पेट की तोकौं चिंता कौंन ।
विस्व भरन भगवंत है पकरि बैठि तूं मौंन ॥1॥
सुन्दर चिंता मति करै पांव पसारै सोइ ।
पेट कियौ है जिनि प्रभू ताकौं चिंता होइ ॥2॥
जलचर थलचर ब्योमचर सबकौं देत अहार ।
सुन्दर चिंता जिनि करै निस दिन बारंबार ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. तोकौं चिंता कौंन=तुझ को क्या चिन्ता ? विस्व भरन भगवंत है =परमात्मा विश्व-पोषक है। पांव पसारै सोइ [मुहा०]=पैर पसार कर सो । अर्थात् विश्वासपूर्वक निश्चिन्त जीवन व्यतीत कर । ब्योम चर=आकाश-चारी, आकाश में विचरने वाले । अहार=आहार, भोजन । जिनि करै=मत कर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर प्रभुजी देत हैं पाहन मैं पहुंचाइ।
तूं अब क्यौं भूषौ रहै काहे कौं बिललाइ ॥4॥
सुन्दर धीरज धारि तूं गहि प्रभु कौ बिश्वास।
रिजक बनायौ रामजी आवै तेरै पास ॥5॥
काहे कौं परिश्रम करै जिनि भटकै चहुं ओर।
घर बैठे ही आइ है सुन्दर सांझ कि भोर ॥6॥
रिजक बनायौ रामजी कापै मेट्यौ जाइ।
सुन्दर धीरज धारि तूं सहजि रहैगौ आइ ॥7॥
चंच संवारी जिनि प्रभू चूंन देइगौ आंनि।
सुन्दर तूं बिश्वास गहि छांडि आपनी बांनि ॥8॥
सुन्दर दौरै रिजक कौं सौ तौ मूरष होइ।
यौं जानै नहिं बावरौ पहुंचावै प्रभु सोइ ॥9॥
सुन्दर समुझि बिचारि करि है प्रभु पूरनहार।
तेरौ रिजक न मेटि है जानत क्यौं न गंवार ॥10॥

---

4. पाहन में पहुंचाइ=प्रभु जीवधारी को पाषाण के अन्दर भी उसका भोजन पहुँचा देते हैं। काहे कौं बिललाइ=काहे को [-क्यों] बिलबिलाता [-परेशान होता] है।

5-7. धीरज धारि=विश्वासपूर्वक धैर्य धारण कर। रिजक<रिज्क [अ०]=भोजन अन्न, गिजा, रोजी-रोटी। काहै कौं परिश्रम करै=क्यों परिश्रम करता है। **टिप्पणी :** यहाँ यह आक्षेप हो सकता है कि सन्त या सन्त-वाणी **'परिश्रम'** का तिरस्कार करती है और 'आलसी' बनने की प्रेरणा देती है। जैसाकि मलूकदास की प्रसिद्ध साखी 'अजगर करै न चाकरी' का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जाता है। ऐसा मानना या कहना सन्त-वाणी के मूल स्वर की अवहेलना करना है। यहाँ उस अतिरिक्त प्रयत्न या हीन मनोवृत्ति का, जिससे व्यक्ति का मान-सम्मान गिरता है, खुशामद करनी पड़ती है, छल-प्रपंच करना पड़ता है, तिरस्कार है। ऐसे प्रयत्न, अखण्ड विश्वास के अभाव में, अनुष्य के आत्म-परिचय को क्षीण करते हैं। जिनि भटकै चहुं ओर=अरे मनुष्य, चारों ओर भटकता न फिर, अपितु अपने विश्वास को जाग्रत कर। सांझ कि भोर=सन्ध्या समय अथवा प्रभात काल में। अर्थात् निश्चित रूप से। कापै मेट्यौ जाइ=किस पर मेटा [-टाला] जा सकता है? अर्थात् कोई निश्चित [-प्राप्तव्य] को टाल नहीं सकता।

8-10. चंच संवारी···आंनि [कहा०]=जिसने चोंच सँवारी [-बनाई] है, वही उसमें चून [-खुराक, भोजन] का भी प्रबन्ध करेगा। आपनी बांनि=अपनी आदत [-सन्देह करने की]। दौरै रिजक कौं=भोजन केलिए दौड़ता-फिरता है। मूरष =नासमझ, अविश्वासी। प्रभु पूरनहार=प्रभु ही पूर्ण करने वाला है। गंवार=

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर निस दिन रिजक कौं बादि मरै नर झूरि।
रिजक दे तुझे रामजी जहां तहां भरपूरि ॥11॥

सुन्दर जो मुख मूंदि कैं बैठि रहै एकंत।
आनि षवावै रामजी पकरि उघारै दंत ॥12॥

सुन्दर ऐसै रामजी ताकौं जानत नांहि।
पहुंचावत है प्रान कौं आपुहि बैठौ मांहि ॥13॥

सुन्दर प्रभुजी निकट है पल पल पोषै प्रांन।
ताकौं सठ जानत नहीं उद्यम ठांनै आंन ॥14॥

सुन्दर पशु पंषी जितै चूंन सबनि कौं देत।
उनकै सौदा कौंन सौ कहौ कौंन से षेत ॥15॥

सुन्दर अजिगर परि रहै उद्यम करै न कोइ।
ताकौं प्रभुजी देत हैं तूं क्यौं आतुर होइ ॥16॥

मूर्ख, मूढ। 11. बादि मरै नर झूरि=मनुष्य व्यर्थ ही भोजन केलिए मरता-खपता रहता है। जहां तहां भरपूरि=प्रभु तो जहाँ-तहाँ अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण है।

12-14. मुख मूंदि कैं बैठि रहै एकंत=जो मुँह बन्द करके एकान्त में बैठा रहता है। आनि षवावै रामजी=राम ही आकर उसे भोजन कराता है। पकरि उघारै दंत=स्वयं वह आकर [-पकड़ कर], दाँत खोलकर भोजन डाल देता है। आपुहि बैठौ मांहि=वह स्वयं ही अन्दर बैठा हुआ है। पल-पल पोषै प्रांन=प्रभु तो निरन्तर [-सर्वदा] निकट रहकर प्राणों का पोषण करता-रहता है। उद्यम ठांनै आंन=अन्यान्य प्रकार के प्रयत्न करता है।

15-17. चूंन=चून अर्थात् भोजन। उनकै सौदा···षेत [कहा०]=उन पक्षियों के कौन-सा वाणिज्य होता है और वे कौन-सी खेती करते हैं? अर्थात् वाणिज्य और खेती के बिना भी उनका पेट भरता ही है। अजिगर परि···कोइ=अजगर अपनी स्थूलता के कारण पड़ा रहता है और अपने भोजन केलिए कोई प्रयत्न भी नहीं करता। **टिप्पणी :** मलूकदास की साखी—'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गए सबके दाता राम॥' वैसी ही यह साखी है। ऐसी साखियों पर ही आक्षेप होता रहा है कि ऐसी रचना पराश्रित करने या आलस्य का पोषण करने वाली होती है। जबकि, आलस्य का पोषण सन्त-अभिमत नहीं हो सकता। क्योंकि, सन्त-वाणी जिस प्रयत्न [-उद्यम] और निरन्तर जागरूकता से जोड़ती है, वह सभी केलिए अनुकरणीय है। ऐसी वाणी के द्वारा तो सन्त-जन, मनुष्य के अन्दर जड़ीभूत 'अविश्वास' को उखाड़ कर फेंक देने का प्रयत्न करते हैं। सन्तों का यही राष्ट्रीय [-मानवीय] स्वाभिमान या चरित्र कहा जा सकता है। आतुर=उतावला। मच्छ···बिसतार=समुद्र में शत-योजन-विस्तार वाले अर्थात् बहुत बड़े-बड़े मत्स्य हैं, उनको भी तो वह प्रभु ही भोजन देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर मच्छ समुद्र मैं सौ जोजन बिसतार।
ताहू कौं भूलै नहीं प्रभु पहुंचावनहार ॥17॥
सुन्दर मनुषा देह मैं धीरज धरत न मूरि।
हाइ हाइ करतौ फिरै नर तेरै सिर धूरि ॥18॥
सुन्दर सिरजनहार कौं क्यौं न गहै बिस्वास।
जीव जंत पोषै सकल कोउ न रहत निरास ॥19॥
सुन्दर जाकी सृष्टि यह ताकै टोटौ कौंन।
तूं प्रभु के बिस्वास बिन परै न हांडी लौंन ॥20॥
सुन्दर जिनि प्रभु गर्भ में बहुत करी प्रतिपाल।
सो पुनि अजहूं करत है तूं सोधै धन माल ॥21॥
सुन्दर सबकौं देत है चंच संवानी चौंनि।
तेरै तृष्णा अति बढी भरि भरि ल्यावत गौंनि ॥22॥
सुन्दर जाकौं जो रच्यौ सोई पहुंचै आइ।
कीरी कौं कन देत है हाथी मन भरि षाइ ॥23॥
सुन्दर जल की बूंद तैं जिनि यह रच्यौ सरीर।
सोई प्रभु याकौं भरै तूं जिनि होइ अधीर ॥24॥
सुन्दर अब बिस्वास गहि सदा रहै प्रभु साथ।
तेरौ कियौ न होत है सब कछु हरि कै हाथ ॥25॥

॥ इति विश्वास कौ अंग ॥ 12 ॥

---

18. मनुषा…मूरि=फिर इस मनुष्य देह में, जीवन के मूलाधार वाले भाव '**धैर्य**' को वह क्यों नहीं धारण करता ? हाइ हाइ करतौ फिरै [मुहा०] = हाय-हाय करता-फिरता है, दुःखी होता-रहता है। सिर धूरि [मुहा०] =सिर पर धूलि। अर्थात् मनुष्य तुझे धिक्कार है।

19. क्यौं न गहै बिस्वास=विश्वास क्यों नहीं धारण करता। पोषै=पोषण करता है। निरास < निराश=निष्फल, खाली, अतृप्त।

20-21. ताकै टोटो कौंन=जिसकी यह सारी सृष्टि है, उसके कौन-सा घाटा या अभाव हो सकता है। परै न हांडी लौंन [लोको०] =प्रभु के विश्वास के बिना हाँडी [-पतीली] में नमक भी नहीं पड़ता। प्रतिपल=प्रति पालना, पालन-पोषण। अजहूं=आज भी, माँ के उदर से जन्म लेने के बाद से। तूं सोधै धन माल=तू धन-माल इकट्ठा करने की खोज में लगा रहता है।

22-25. चंच संवानी चौंनि=चंचु के अनुसार [-पात्र-योग्यता के अनुसार] चून [-भोजन, आहार] देता है। भरि भरि ल्यावत गौंनि=तृष्णा के कारण तू घर में गौनि [-काँठी, बोरी] भर-भर कर लाता-रहता है। जाकौं जो रच्यौ=जिसको जो रचा है, जो लिखा है। कीरी…भरि षाइ [लोको०] = चींटी को उसके आकार के अनुसार कण देता है और हाथी को मन भर [-बहुत अधिक भोजन-] खुराक देता है। जल की बूंद=विन्दु, वीर्य। याकौं भरै=इस शरीर का भरण-पोषण करेगा। अधीर=अधैर्य। अब बिसवास गहि=अब विश्वास धारण कर कि प्रभु सदा तेरे साथ है। तेरौ कियो…हरि कै हाथ=मनुष्य का किया कुछ नहीं होता, सब प्रभु के हाथ में है, ऐसी आस्था धारण कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 13 ॥ अथ देह मलिनता गर्ब प्रहार कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग के 25 दोहों में रचनाकार का मुख्य अभिप्रेत, देह-मलिनता का बखान करके, शरीर-रूप के कारण होने वाले गर्व-अभिमान को निरस्त करना है। यह शरीर जो चैतन्य [-जीवात्मा] के अभाव में, अपने आप में कुछ नहीं है [-निरर्थक ही है]। उसी को केन्द्रित करके लोग कितना घमण्ड करते हैं। सन्तों ने इस शरीर-अभिमान को मनुष्य जीवन केलिए बड़ा अहित कर माना है। उनका कहना है कि सभी मानसिक और सामाजिक बीमारियों की जड़ [-केन्द्र] शरीर ही है, जो स्वयं में अनेक प्रकार के मल-दोषों के कारण ही रूपायित हुआ है। अतः प्रकृति से प्राप्त ऐसे शरीर के प्रति मनुष्य को घमण्ड नहीं करना चाहिए। जीवन में अहंकार [-घमण्ड] विगलित या तिरोहित रहेगा, तो सात्विक भावों की प्रवृत्ति बढ़ेगी। फलतः व्यापक आध्यात्मिक भावों की ओर मनुष्य की चेतना उन्मुख बनी रह सकेगी। तभी प्रभु-[वर्तमान, व्यापक-व्याप्त] साक्षात्कार होना सम्भव है। इस अंग में जातिगत श्रेष्ठता और हीनता के विचार एवं छुआछूत की भावना को भी तिरस्कृत किया गया है। मूल पाठ देखिए—

दोहा : सुन्दर देह मलीन है राष्यौ रूप संवारि।
ऊपर तें कलई करी भीतरि भरी भंगारि ॥1॥
सुन्दर देह मलीन है प्रकट नरक की षांनि।
ऐसी याही भाकसी तामैं दोनौ आंनि ॥2॥
सुन्दर देह मलीन अति बुरी बस्तु कौ भौंन।
हाड मांस कौ कौथरा भली बस्तु कहि कौंन ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. देह मलीन = प्राणधारी यह शरीर अपने आप में मलिन [-मलयुक्त] है। ऊपर तें कलई करी [मुहा०] = ऊपर से त्वचा-वर्ण रूप में कलई कर दी है। भंगारि = कूड़ा-करकट, गन्दगी। नरक की षांनि = नरक, गन्दगी से भरी हुई खानि है। भाकसी [राज०] = खड्डा, खन्दक, पेट रूप खड्डा अथवा ऐसा यह शरीर रूप खड्ड है, जिसमें जीव को लाकर डाल दिया है। बुरी बस्तु कौ भौंन = मल मूत्रादि गन्दगी का घर। हाड मांस कौ कौथरा = अस्थि-मांस का थैला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर देह मलीन अति नख शिख भरे बिकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि सदा बहै नव द्वार ॥4॥
सुन्दर मुख मैं हाड सब नैंन नासिका हाड।
हाथ पांव सब हाड के क्यौं नहिं समुझत रांड ॥5॥
सुन्दर पंजर हाड कौ चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलि कै मो समान को आहि ॥6॥
सुन्दर न्हावै बहुत ही बहुत करै आचार।
देह मांहि देषै नहीं भर्‌यौ नरक भंडार ॥7॥
सुन्दर अपरस धोवती चौकै बैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै ताही कै संगि षाइ ॥8॥
सुन्दर ऐसी देह मैं सुच्चि कहौ क्यौं होइ।
झूठेई पाषंड करि गर्ब करै जिनि कोइ ॥9॥
सुन्दर सुच्चि रहै नहीं या शरीर के संग।
न्हावै धोवै बहुत करि सुद्ध होइ नहिं अंग ॥10॥
सुन्दर कहा पषारिये अति मलीन यह देह।
ज्यौं ज्यौं माटी धोइये त्यौं त्यौं उकटै षेह ॥11॥
सुन्दर मैली देह यह निर्मल करी न जाइ।
बहुत भांति करि धोइ तूं अठसठि तीरथ न्हाइ ॥12॥

---

4. बिकार<विकार=विकृति, दोष। रक्त···नव द्वार=शरीर में उल्लिखित नाली रूप नव द्वारों से [-रक्त-पीप-मल-मूत्रादि] गन्दगी बहती-रहती है।
5. हाड=हड्डियाँ। क्यौं नहिं समुंझत रांड=अरी अभागी जीवात्मा [-मूर्ख मनुष्य!] यह असलियत क्यों नहीं समझती?
6-8 पंजर=शरीर का ढाँचा। बैठ्यौ फूलि कैं [मुहा०]=फूल कर बैठना अर्थात् अभिमान [-गर्व] भरा व्यवहार करना कि मेरे समान है कौन? आचार= व्यवहार, कर्मकाण्ड। अपरस=मलिन, अशुद्ध। धोवती=अधोवस्त्र, धोती। चौकै बैठौ=चौके में बैठकर खाना खाता है। अर्थात् छुआछूत मानता है।
9-12. सुच्चि=शुचि, पवित्रता, शुद्धता। झूठेई पाषंड करि=झूठा पाखण्ड करके। गर्ब करै जिनि कोइ=कोई व्यर्थ ही घमण्ड न करे। न्हावै धोवै बहुत करि=बहुत नहाता-धोता है। पषारिये=प्रक्षालन करिए, धोइए। ज्यौं ज्यौं···उकटै षेह [लोको०]=जैसे-जैसे मिट्टी धोते हैं अथवा धोई जाती है, राख या धूलि और अधिक उखड़ती जाती है। अठसठि तीरथ न्हाइ=लोक प्रसिद्ध अड़सठ तीर्थों में पवित्रता के लिए स्नान करता फिरता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर ब्राह्मन आदि कौ ता महिं फेर न कोइ।
सूद्र देह सौं मिलि रह्यौ क्यौं पवित्र अब होइ ॥13॥
सुन्दर गर्ब कहा करै देह महा दुर्गंध।
ता महिं तूं फूल्यौ फिरै संमुझि देषि सठ अंध ॥14॥
सुन्दर क्यौं टेढौ चलै बात कहै किन मोहि।
महा मलीन शरीर यह लाज न उपजै तोहि ॥15॥
सुन्दर देषै आरसी टेढी नाषै पाग।
बैठौ आइ करंक पर अति गति फूल्यौ काग ॥16॥
सुन्दर बहुत बलाइ है पेट पिटारी मांहिं।
फूल्यौ माइ न षाल मैं निरषत चालै छांहिं ॥17॥
सुन्दर रज बीरज मिले महा मलिन ये दोइ।
जैसौ जाकौ मूल है तैसोई फल होइ ॥18॥
सुन्दर मलिन शरीर यह ताहू मैं बहु ब्याधि।
कबहूं सुख पावै नहीं आठौं पहर उपाधि ॥19॥

13-15. ब्राह्मन आदि कौ=आदि मूल से ही तू ब्राह्मण[-ब्रह्ममय]है। फेर=उलटापन। सूद्र देह=शूद्र देह। **टिप्पणी**: पवित्र जब अपवित्र से मिलता है, तो अपवित्र माना जाता है। विचार में इसके विपरीत भी हो सकता है। इसीप्रकार आत्म रूप ब्रह्म चैतन्य जब शरीर निष्ठ हो जाता है, तब अज्ञानवश उसे अपवित्र [-अछूत] मानना [भ्रम-] अज्ञान का ही परिणाम है। अतः वर्णाश्रम व्यवस्था को, जन्मगत न मानकर कर्मगत मानने में ही सन्त-वाणी की सार्थकता है। दुर्गंध=दुर्गन्धि। संमुझि देषि=समझ कर देख, सोच-विचार करके निर्णय ले। टेढौ चलै [मुहा०]=घमण्ड के कारण तुनक कर तिरछा चलता है। लाज न उपजै [मुहा०]=तुझे शर्म नहीं आती।

16-19. आरसी देषै=दर्पण देखता हैं, अपनी छवि देखकर सिहाता है। टेढी नाषै पाग [मुहा०]=टेढी-तिरछी पगड़ी बाँधता है, शरीर[-सज्जा]-शोभा पर इतराता है। बैठो···काग=शरीर पर गर्व करना उसीप्रकार है, जैसे हड्डी या शव पर बैठ कर कौआ घमण्ड करता हो। मनुष्य की चेतना भी अस्थि निर्मित शरीर पर ही टिकी हुई है। बलाइ=प्रेत-बाधा, बीमारी, व्याधि। पेट पिटारी [रूपक]=पिटारी रूप उदर में। फूल्यौ माइ न षाल में [मुहा०]=त्वचा निर्मित शरीर-सौन्दर्य पर फूला नहीं समाता। निरषत चालै छांहिं [मुहा०]=अपनी परछाँही निहारता [-सिहाता] हुआ चलता है, गर्व का भाव प्रदर्शित करता है। रज बीरज=माँ की रज-शक्ति और पिता की वीर्य-शक्ति के सम्मिलन से शरीर का अस्तित्व होता है। जैसौ···फल होइ [लोको०]=जैसी जिसकी जड़ या बीज होता है, वैसा ही उस पर फल लगता है। ब्याधि=रोग, बीमारी, विकृति। उपाधि=पचड़ा झंझट, बखेड़ा, उपद्रव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कबहू फुनसली कबहूं फोरा होइ।
ऐसी याही देह मैं क्यौं सुख पावै कोइ ।।20।।
कबहूं निकसै न्हारवा कबहुं निकसै दाद।
सुन्दर ऐसी देह यह कबहुं न मिटै बिषाद ।।21।।
सुन्दर कबहूं ताप ह्वै कबहूं ह्वै सिरवाहि।
कबहूं हृदय जलनि ह्वै नश शिख लागै भाहि ।।22।।
कबहूं पेट पिरातु है कबहूं मांथै सूल।
सुन्दर ऐसी देह यह सकल पाप का मूल ।।23।।
सुन्दर कबहूं कान मैं चीस उठै अति दुःख।
नैंन नाक मुख मैं बिथा कबहुं न पावै सुक्ख ।।24।।
स्वास चलै षांसी चलै चलै पसुलिया बाव।
सुन्दर ऐसी देह मैं दुखी रंक अरु राव ।।25।।

।। इति देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग ।। 13 ।।

---

20. फुनसली=फुँसी-फुड़िया। फोरा=फोड़ा, पका हुआ बड़ा घाव।

21-22. न्हारवा=ठेक, मांस-त्वचा की वृद्धि, जो शरीर में निकल कर पीड़ा देती है। दाद=चकत्ते वाला खुजली का रोग। बिषाद=दुःख, कष्ट। ताप=ज्वर, बुखार। सिरवाहि=शिरोवेदना, सिर-दर्द। हृदय जलनि=कलेजे पर जलन की बीमारी। भाहि=भारी होना, दर्द-पीड़ादि से शरीर का भारी होना।

23-25. पेट पिरातु है=कभी पेट-दर्द करता है [-उदर विकार]। मांथै सूल=सिर दुखता है। पाप का मूल=दोषों का भण्डार। कान मैं चीस=कान में दर्द। बिथा =व्यथा, बीमारी। स्वास चलै=श्वास ऊर्ध्व गति से चलने लगती है अर्थात् दमा का प्रकोप। षांसी=खाँसी की बीमारी। पसुलिया बाव=पसुली में वायु का दर्द। दुखी रंक अरु राव=इस शरीर को धारण करने के बाद राजा और रंक अथवा अमीर और गरीब सभी दुःखी होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 14 ॥ अथ दुष्ट कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : इन 25 साखियों में, लोक-व्यवहार प्रधान नीति-पक्ष को अभिव्यक्ति मिली है। सुन्दरदास की मान्यता है कि सज्जन, सरल-सहज जीवन जीने वाले साधु-पुरुषों को, दुष्ट [-छली-कपटी-दम्भी] व्यक्ति के व्यवहार से जितनी पीड़ा [-मानसिक क्लेश] होती है, उतना कष्ट संसार के किसी और घात-प्रतिघात से नहीं होती। यहाँ जीवन की सहजता [-सात्विकता-सदाशयता] के निर्वाह केलिए दुष्ट का परित्याग आवश्यक बताया है। प्रस्तुत अंग के प्रतिपाद्य के समान ही, अन्य अंगों में भी यह प्रतिपादित हुआ है कि सन्त-वाणी का मर्म, लोक-व्यवहार की व्यापक पृष्ठभूमि को लक्षित करके सम्पादित होता रहा है। यह मात्र [-थोथा] **'ज्ञानवादी'** मार्ग नहीं है, अपितु प्रेम-भक्ति के अवलम्ब से रूपायित मनुष्य-जीवन का विवेकपूर्ण व्यापक विचार-फलक है, जिसको सन्तों ने अपनी प्राण-चेतना से निरूपित किया है। इसी अर्थ में सन्त-वाणी का अध्यात्म पक्ष व्यापक सांस्कृतिक चेतना से परिपुष्ट है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर बातें दुष्ट की कहिये कहा बषांनि।
कहैं बिना नहिं जानियें जिती दुष्ट की बांनि ॥1॥
अपने दोष न देषई पर कै औगुन लेत।
ऐसौ दुष्ट स्वभाव है जन सुन्दर कहि देत ॥2॥
सुन्दर दुष्ट स्वभाव है औगुन देषै आइ।
जैसे कीरी महल मैं छिद्र ताकती जाइ ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. दुष्ट=दूषित, दोष युक्त, दुर्जन, दुराचारी, खल, पाजी। बांनि= आदत, बुराई। अपने दोष न देषई [मुहा०]=अपने दोष नहीं देखता। औगुन= अवगुण। दुष्ट स्वभाव=बुरी-दोषयुक्त आदत। जैसें कीरी···ताकती जाइ [लोको०]=जैसे चींटी, किसी महल में, और कुछ न देख कर अपने घुसने केलिए छिद्र ढूँढती-फिरती है। इसीप्रकार दुष्ट व्यक्ति दूसरों की बुराई खोजता-रहता है, अच्छाई की सराहना नहीं कर पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूझत नांहिं न दुष्ट कौं पांव तरै की आगि।
औरन के सिर पर कहै सुन्दर वासौं भागि ॥4॥
देषी अनदेषी कहै ऐसौ दुष्ट सुभाव।
सुन्दर निशदिन परिगयौ कहिबे ही कौ चाव ॥5॥
सुन्दर कबहुं न धीजिये सरस दुष्ट की बात।
मुख ऊपर मीठी कहै मन मैं घालै घात ॥6॥
व्याघ्र करै ज्यौं लुरषरी कूकर आगै आइ।
कूकर देषत ही रहै बाघ पकरि ले जाइ ॥7॥
सुन्दर काहू दुष्ट कौं भूलि न धीजहु बीर।
नीचै आगि लगाइ करि ऊपर छिरकै नीर ॥8॥
दुष्ट धिजावै बहुत विधि आनि नवावै सीस।
सुन्दर कबहुंक जहर दे मारै बिसवा बीस ॥9॥
दुष्ट करै बहु बीनती होइ रहै निज नास।
सुन्दर दाव परै जवहिं तबहिं करै घट नास ॥10॥
दुष्ट घाट घरिबौ करै धट मैं याही होय।
सुन्दर मेरी पासि मैं आइ परै जे कोय ॥11॥

4-5. पांव तरै की आगि [मुहा०]=तलवों के नीचे की आग अर्थात् घातक स्थिति नहीं सूझती। औरन के सिर पर कहै=औरों के सिरपर चढ़कर कहता-फिरता है। अर्थात् औरों को सावधान करता [-चेतावनी देता-फिरता] है, पर स्वयं उस पर अमल नहीं करता। देषी अनदेषी कहै=झूठी-सच्ची, बिना परख [-प्रमाण] के, कहता-फिरता है। कहिबे ही कौ चाव=दुष्ट को कहने की ही आदत बनी-रहती है।

6-7. धीजिये=विश्वास कीजिए। सरस दुष्ट की बात=दुष्ट की मधुर बात। मुख ऊपर मीठी कहै [मुहा०]=मुँह पर[तो-] मीठा बोलता है। व्याघ्र करै···आगे आइ [लोको०]=चालाक दुष्ट बाघ, अपने स्वार्थ की सिद्धि केलिए, कुत्ते के आगे अठखेलियाँ करता है। अर्थात् दुष्ट अपनी दुष्टता छिपाने केलिए, अपने बदले हुए [छद्म] स्वभाव को प्रस्तुत करता है। अर्थात् कुत्ते को पकड़-दबोच ले जाने तक, व्याघ्र रूप दुष्ट, अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिए प्रयत्न करता-रहता है।

8-11. भूलि न धीजहु बीर=अरे भाई, भूल कर भी किसी दुष्ट पर विश्वास न करो। नीचै···छिरकै नीर [कहा०]=दुष्ट का स्वभाव है कि वह जला कर मार डालने केलिए नीचे से तो आग प्रज्वलित करता है और ऊपर से पानी छिड़कता है। अर्थात् भीतर से लड़ाई कराने का प्रयत्न करता है और ऊपर से शान्ति करने-कराने का दिखावा करता है। धिजावै=विश्वास दिलाता है। नवावै सीस=शीश झुकाता है। कबहुंक जहर दे मारै=कभी-न-कभी जहर देकर, विश्वासघात करके, मार डालता है। बिसवा बीस =पूरी तरह से। बीनती=विनय, विनम्रता भरी प्रार्थना। दाव परै [मुहा०]=मौका पड़ते ही। घट नास=घड़ा फोड़ देता है, शरीर-घात करता है। दुष्ट घाट घरिबौ करै=दुष्ट नए-नए घाट [-कारनामे] निर्माण करता-रहता है। पासि=बन्धन, जाल। जे कोय=जो कोई भी, कोई भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात सुनौ जिनि दुष्ट की बहुत मिलावै आंनि।
सुन्दर मानैं सांच करि सोई मूरष जांनि ॥12॥
दुष्ट बुरी ही करत है सुन्दर नैंकु न लाज।
काम बिगारै और कौ अपनैं स्वारथ काज ॥13॥
पर कौ काम बिगारि दे अपनौ होउ न होह।
यह सुभाव है दुष्ट कौ सुन्दर तजिये वोह ॥14॥
घर षोवत है आपनौ औरनि हूं कौ जाइ।
सुन्दर दुष्ट सुभाव यह दोऊ देत बहाइ ॥15॥
दुर्जन संग न कीजिए सहिये दुःख अनेक।
सुन्दर सब संसार मैं दुष्ट समान न एक ॥16॥
बीछू काटे दुख नहीं सर्प डसै पुनि आइ।
सुन्दर जो दुख दुष्ट तें सो दुख कह्यौ न जाइ ॥17॥
गज मारै तौ नांहि दुःख सिंह करै तन भंग।
सुन्दर ऐसौ नांहि दुःख जैसौ दुर्जन संग ॥18॥
सुन्दर जरिये अग्नि महिं जल बूडे नहिं हांनि।
पर्वत ही तें गिरि परौ दुर्जन भलौ न जांनि ॥19॥

---

12. बहुत मिलावै=बहुत उलटी-सीधी मिलाकर, जोड़-तोड़ करके कहता है। मानैं सांच करि=जो सच्ची मान लेता है, वही मूर्ख है।

13-15. नैंकु न लाज=थोड़ी भी शर्म नहीं करता है। काम बिगारै…काज=अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिए औरों का काम बिगाड़ देता है। ऐसे पहले प्रकार के दुष्ट हैं। पर कौ काम…होइ=अपना काम हो या न हो, दूसरे का काम अवश्य बिगाड़ते हैं। ऐसे दूसरी कोटि के दुष्टतर व्यक्ति होते हैं। घर षोवत हैं…जाइ=अपना घर बर्बाद करके दूसरों का घर नष्ट करते हैं। अर्थात् दूसरे को हानि पहुँचाने केलिए अपनी हानि भी करते हैं। ऐसे तीसरे प्रकार के दुष्टतम व्यक्ति होते हैं।

16-19. दुर्जन संग न कीजिये=दुष्ट का साथ न करिए। यह नीति-वचन है। ऐसी विचार-नीति जीवन में निर्विघ्न बने रहने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। बीछू काटे…कह्यौ न जाइ=बिच्छू के काटे जाने पर, सर्प के डसने से उतना दुःख [-कलेश] नहीं होता, जितना कि दुष्ट-कृत व्यवहार द्वारा कष्ट होता है। यह दुःख अतिशय क्यों होता है? क्योंकि बिच्छू-सर्प-दंश की पीड़ा शारीरिक होती है, जबकि दुष्ट के व्यवहार से होने वाला क्लेश मानसिक होता है। तन भंग=शरीर विदीर्ण कर दे, जीवन नष्ट कर दे। दुर्जन संग=दुर्जन का साथ जितना कष्टकर है, उतना कष्ट हिंस्र [-उग्र] पशुओं द्वारा किए गए घात-प्रतिघात से भी नहीं होता। दुर्जन भलौ न जांनि=दुष्ट को कभी भला न समझो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर झंपापात ले करवत धरिये सीस।
वा दुर्जन के संग तें राषि राषि जगदीस ॥20॥
सुन्दर बिषहू पीजिये मरिये षाइ अफीम।
दुर्जन संग न कीजिये गलि मरिये पुनि हीम ॥21॥
सुन्दर दुख सब तोलिये घालि तराजू मांहि।
जो दुख दुर्जन संग तें ता सम कोई नांहि ॥22॥
सुन्दर दुर्जन सारिषा दुखदाई नहिं और।
स्वर्ग मृत्यु पाताल हम देषे सब ही ठौर ॥23॥
देह जरै दुख होत है ऊपर लागै लौंन।
ताहू तें दुःख दुष्ट कौ सुन्दर मानैं कौंन ॥24॥
जो कोउ मारै बान भरि सुन्दर कछु दुख नांहि।
दुर्जन मारै बचन सौं सालतु है उर मांहि ॥25॥

॥ इति दुष्ट कौ अंग ॥ 14 ॥

---

20. झंपापात=पर्वत से कूद कर शरीर-त्याग करना। करवत धरिये=काशी में करवत लेना। अर्थात् शीश पर आरा चलवा कर शरीर-त्याग करने का कष्ट। राषि राषि जगदीस=हे ईश्वर, रक्षा कर-रक्षा कर।

21-22. बिषहू पीजिये=विष घोल कर पी जाना आसान, दुष्ट के कष्ट से। गलि मरिये पुनि हीम=[हिम-] हिमालय में शरीर गला कर मरना आसान। दुख सब··· मांहि [कहा०]=सब दुःखों [-कष्ट जनित पीड़ा-क्लेश]को इकट्ठा कर तराजू में तोलिए। अर्थात् कुल मिलाकर विचार कीजिए। फिर भी, दुष्ट के साथ रहने से उत्पन्न कष्ट कहीं अधिक भारी सिद्ध होगा। **टिप्पणी :** तुलसीदास जी ने 'मानस' के प्रारम्भ में **'खल वन्दना'** की है और 'दुष्ट संग जनि देइ विधाता' कहा है।

23-25. दुर्जन सारिषा=दुष्ट के समान। दुखदाई=पीड़ा प्रद। देह जरै···लौंन= शरीर [-शरीरांग] जलने [-झुलसने] से पीड़ा होती है और उस जले पर नमक छिड़कने से और अधिक तीव्र पीड़ा होती है। उससे भी तीव्रतम दुःख, दुष्ट के साथ रहने से होता है। मारै बांन भरि=बाण तान कर मारता है, वह तो शरीर-वेदना ही देता है। दुर्जन मारै···उर मांहि=दुष्ट अपने वचन-बाण से जो लक्ष्य बेध करके मारता है, वह हृदय में चुभा रह कर निरन्तर कसकता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 15 ॥ अथ मन कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : इस अंग की 70 साखियों में मन की प्रबल शक्ति-सामर्थ्य और उसके असाध्य बने रहने की प्रवृत्ति को, अनेक उपमान, रूपक एवं उदाहरण-कहावत-लोकोक्तियों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। सुन्दरदास के अभिमत में मन को वशीभूत करने के सारे उपाय, विचार पक्ष के अभाव में, व्यर्थ हैं। निरन्तर विचार और ब्रह्म-विचार के द्वारा ही मन रूपान्तरित हो सकता है। अन्य सभी उपाय, मन को घेरने या स्थिर करने केलिए निरर्थक होते हैं। कहा जा सकता है [सा० 35] कि सुन्दरदास मनो-मारण के पक्ष में नहीं हैं। मन-निग्रह, चेतना-रूपान्तरण से सहज संभव है। श्लेषत्व के बल पर छन्द 58-70 तक 'मन' सम्बन्धी अनेक संकल्पनाओं को, सन्त-रचनाकार ने अपनी व्युत्पन्नता से सम्पुष्ट किया है। 'मानने वाला' अर्थ [-साखी 44] में, 'मन' की सर्वथा नवीन संकल्पना भी द्रष्टव्य है। मूल पाठ देखिए—

दोहा : मन कौं राषत हटकि करि सटकि चहूं दिसि जाइ।
सुन्दर लटकि रु लालची गटकि बिषै फल षाइ ॥1॥
झटकि तारि कौं तौरि दे भटकत सांझ रु भोर।
पटकि सीस सुन्दर कहै फटकि जाइ ज्यौं चोर ॥2॥

चूर्णिका : 1-2. हटकि करि=वर्जित करके, अनुशासित करके। सटकि जाइ=कुशलता पूर्वक खिसक जाता है, भाग-निकलता है। अर्थात् स्थिर नहीं रहता। लटकि रु लालची=लटका भरे और लालची मन की रुचि [-आदत है कि वह-] गटकि बिषै फल षाइ=लपककर विषय-वासना [-सुख-भोग] के फल [गटकता-] खाता-फिरता है। **विशेष** : 'टकि' अन्तमूलक शब्द-प्रयोगों से मन के स्वभाव को मुखर किया गया है। अगली साखी में भी ऐसे ही शब्दों का प्रयोग है। झटकि तार कौं तोरि दै=झटक कर [-तत्काल] आसक्ति के तार [-सूत्र, बन्धन] को तोड़ डाल। भटकत=भटकता-फिरता है। पटकि सीस कहै [मुहा०]=सिर पटक कर, पछताते हुए कहता है। फटकि जाइ ज्यौं चोर [कहा०]=मन बड़ी चालाकी से, चोर की तरह, निकल भागता है और पकड़ में नहीं आता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल ही मैं मरि जात है पल मैं जीवत सोइ।
सुन्दर पारा मूरछित बहुरि सजीवनि होइ ॥3॥
जातें कबहुं न जानिये यौं मन नीकसि जाइ।
आवत कछू न देखिये सुन्दर किसी बलाइ ॥4॥
घेरैं नैकु न रहत है ऐसौ मेरौ पूत।
पकरें हाथ परै नहीं सुन्दर मनुवा भूत ॥5॥
नीति अनीति न देषई अति गति मन कै बंक।
सुन्दर गुरु की साधु की नैंकु न मानै संक ॥6॥
सुन्दर क्यौं करि धीजिये मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं षेलै अपनौ दाव ॥7॥
सुन्दर या मन सारिषौ अपराधी नहिं और।
साष सगाई ना गिनै लषै न ठौर कुठौर ॥8॥
सुन्दर मन कामी कुटिल क्रोधी अधिक अपार।
लोभी तृप्त न होत है मोह लग्यौ सैंवार ॥9॥
सुन्दर यह मन अधम है करै अधम ही कृत्य।
चल्यो अधोगति जात है ऐसी मन की बृत्य॥10॥

---

3. पल ही मैं···सोइ=विभिन्न परिस्थितियों में पल-पल में मरता-रहता है और क्षण-क्षण में जीवित हो उठता है।

4. जातें कबहुं न जानिये=यह [-मन] जाते [-आते] हुए कभी दिखाई नहीं देता। किसी बलाइ=कैसी विचित्र मुसीबत [-बलाइ] है।

5-7. घेरैं=घेरने या रोकने पर। मेरौ पूत=यह मेरा बेटा [-व्यंग्य] अर्थात् लाडला मन। मनुवा भूत=भूत जैसी प्रकृति वाला मन। नीति अनीति न देषई=विधि-निषेध, वर्जित-अवर्जित को नहीं देखता। मन कै बंक=मन का टेढ़ापन, बांकापन। संक=शंका, मर्यादा। गुरु-साधु की=वरिष्ठ और सज्जनों की। धीजिये=विश्वास कीजिए। आइ बनै गुदरै नहीं [कहा०]=आ पड़ती है तो फिर तिरस्कार नहीं करता, पीछे नहीं हटता [अर्थात् ठान ही लेता है]। षेलै अपनौ दाव [मुहा०]=अपना ही खेल खेलता है।

8-10. सारिषौ=समान, समतुल्य। साष सगाई ना गिनै=विश्वास और सम्बन्ध को नहीं गिनता, नहीं मानता। लषै न ठौर कुठौर=अच्छा-बुरा [-स्थान, परिणाम] नहीं देखता। कामी कुटिल=विषयी और दुष्ट है। लोभी=लालची, अतृप्त। मोह लग्यौ सैंवार [कहा०]=जैसे पानी पर सिवार [-काई]आच्छादित हो जाती है, वैसे ही मन, चेतना पर छाया-रहता है और वास्तविकता नहीं देखने देता। अधम=दुष्ट, नीच। कृत्य=कार्य। अधोगति=हीन दशा। बृत्य <वृत्ति=आदत, स्वभाव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर मन कै रिंदगी होइ जात सैतान।
काम लहरि जागै जबहिं अपनी गनै न आन ।।11।।
ठग बिद्या मन कै घनी दगाबाज़ मन होइ।
सुन्दर छल केता करै जानि सकै नहिं कोइ ।।12।।
सुन्दर यहु मन चोरटा नाषै ताला तोरि।
तकै पराये द्रब्य कौं कब ल्याऊं पर फोरि ।।13।।
सुन्दर यहु मन जार है तकै पराई नारि।
अपनी टेक तजै नहीं भावै गर्दन मारि ।।14।।
सुन्दर मन बटपार है घालै पर की घात।
हाथ परे छोडै नहीं लूटि षोसि ले जात ।।15।।
सून्दर मन गांठी कटौ डारै गर मैं पासि।
बुरौ करत डरपै नहीं महा पाप की रासि ।।16।।
सुन्दर यहु मन नीच है करै नीच ही कर्म।
इनि इन्द्रिनि कै बसि पर्यौ गिनै न धर्म अधर्म ।।17।।
सुन्दर यहु मन भांड है सदा भंडायौ देत।
रूप धरै बहु भांति कै राते पीरे सेत ।।18।।

---

11. रिंदगी [फा०] = रंगीलापन। सैतान < शैतान = दुष्ट, राक्षस स्वभाव का। काम लहरि = विषय-वासना की लहर। अपनी गनै न आन [मुहा०] = न अपनी गिनता है न दूसरे की। अर्थात् किसी की परवाह नहीं करता।

12. ठग विद्या = ठगी, दगाबाज़ी, छल-कपट। घनी = प्रभूत, बहुत अधिक। छल = कपट। केता करै = कितना करता है।

13-15. मन चोरटा = चोर मन। नाषै ताला तोरि = ताला तोड़कर निकाल ले जाता है। तकै पराये द्रब्य कौं = दूसरे के धन [-वस्तु] को तकता-रहता है। घर फोरि = घर फोड़कर, चोरी से। मन जार = लम्पट मन, वृषली मन। तकै पराई नारि [महा०] = दूसरे की औरत को तकता-रहता है, पर-स्त्री के प्रति कुदृष्टि रखता है। टेक तजै नहीं = जिद्द नहीं छोड़ता। भावै गर्दन मारि = चाहे गर्दन ही क्यों न काट दो। बटपार = मार्ग का लुटेरा। घालै पर की घात = दूसरे की घात करता-रहता है। लूटि षोसि ले जात = लूट-खसोट कर ले जाता है।

16-18. गांठी कटौ = गँठकटा, अण्टी मारने वाला, जेबकट। गर-पासि = गले में फन्दा। पाप की रासि = बुराई [-दोषों] का भण्डार है। गिनै न धर्म-अधर्म = धर्म-अधर्म, विधि-निषेध की परवाह नहीं करता। भांड = दिखावटी, आडम्बरी, बक्कू बहुरूपिया। भंडायौ देत = भाँडपन अर्थात् बकवास करता-रहता है। रूप धरै बहु भांति कै = अनेक प्रकार के रूप धारण करता है, बहुरूपिया है। अर्थात् नाना विधि स्वांग करता-रहता है। राते पीरे सेत = लाल-पीले और श्वेत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर यहु तन डूम है मांगत करै न संक।
दीन भयौ जाचत फिरै राजा होइ कि रङ्क ॥19॥
सुन्दर यहु मन रासिभौ दौरि बिषै कौं जात।
गदही कै पीछै फिरै गदही मारै लात ॥20॥
सुन्दर यहु मन स्वान है भटकै घर घर द्वार।
कहूंक पावै झूंठि कौं कहूं परै वहु मार ॥21॥
सुन्दर यहु मन काग है बुरौ भलौ सब षाइ।
समुझायौ समुझै नहीं दौरि करङ्कहि जाइ ॥22॥
सुन्दर मन मृग रसिक है नाद सुनै जब कांन।
हलै चलै नहिं ठौर तें रहौ कि निकसौ प्रांन ॥23॥
सुन्दर यह मन रूप कौं देषत रहै लुभाइ।
ज्यौं पतंग बसि नैंन कै जोति देषि जरि जाइ ॥24॥
सुन्दर यह मन भ्रम रहै सूंघत रहै सुगंध।
कंवल मांहि निकसै नहीं काल न देषै अंध ॥25॥
सुन्दर यह मन मीन है बंधै जिह्वा स्वाद।
कंटक काल न सूझई करत फिरै उदमाद ॥26॥
सुन्दर मन गजराज ज्यौं मत्त भयौ सुध नांहि।
काम अंध जानै नहीं परै षाड के मांहि ॥27॥

---

19. डूम=डोम जाति का, निम्न वृत्ति वाला। दीन भयौ जाचत फिरै [मुहा०]=दीन-हीन बना हुआ सबसे याचना करता-फिरता है।

20-23. रासिभौ=गधा, गर्धव। दौरि बिषै कौं जात=दौड़ कर अपने विषय की ओर भागता है। गदही=गधी, गर्धवी। गदही मारै लात=गधइया लात मार कर उसे दुतकारती-रहती है। मन स्वान=मन रूप श्वान। भटकै=भटकता [-मारा-] फिरता है। मार परै=मार पड़ती है। मन काग=मन रूप काक। बुरौ भलौ सब षाइ=भक्ष्य-अभक्ष्य सब कुछ खाता है। दौरि करङ्कहि जाइ= दौड़कर [-आकर्षित होकर] हड्डी पर ही जाता है। मन मृग रसिक=मृग रूप चंचल रसिक मन। नाद=शब्द, संगीत स्वर। हलै चलै नहिं ठौर तें=अपने स्थान से, संगीत-मुग्ध होने पर, हिलता-डुलता भी नहीं है।

24-27. रूप कौं देषत रहै लुभाइ=लोभी [-लोलुप] बना रहकर यह मन, रूप-सौन्दर्य को निहारता-रहता है। ज्यौं पतंग बसि···जाइ [लोको०, दृष्टा०]= जैसे पतंगा, [प्रकाश-] नेत्राकर्षण के कारण जलकर अपनी प्राण-हानि तक कर लेता है। मन भ्रमर=[रस लोभी-] भ्रमर रूप मन। काल न देषै अंध=मूर्ख, काल [-समय, मृत्यु] तक को नहीं देख पाता। मन मीन=मछली रूप मन। जिह्वा स्वाद=रस, स्वादाकर्षण। कंटक काल=काँटा [-बंसी] रूप [काल]। उदमाद=उछल कूद, उन्मत्तता के कार्य। गजराज=[अहंकारी, कामी-] हाथी रूप मन [मत्त-] मदहोश बना-रहता है। काम अंध=कामान्ध, विषयी। षाड परै=खड्डे [-गाढ़] में पड़कर महावत के वशीभूत हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर यह मन करत है बाजीगर कौ ष्याल।
पंष परेवा पलक मैं मुवो जिवावत ब्याल ॥28॥
ज्यौं बाजीगर करत है कागद मैं हथफेर।
सुन्दर ऐसें जानिये मन मैं धरन सुमेर ॥29॥
सुन्दर यहु मन भूत है निश दिन बकतें जाइ।
चिन्ह करै रोवै हंसै षातें नहीं अघाइ ॥30॥
सुन्दर यह मन चपल अति ज्यौं पीपर कौ पांन।
बार बार चलिवौ करै हाथी कौ सौ कांन ॥31॥
सुन्दर यह मन यौं फिरै पांनी कौ सौ घेर।
बायु बघूरा पुनि ध्वजा यथा चक्र कौ फेर ॥32॥
सुन्दर अरहट माल पुनि चरषा बहुरि फिरात।
धूंवा ज्यौं मन उठि चलै कापै पकर्‌यौ जात ॥33॥
मन बसि करने कहत हैं मन कै बसि ह्वै जांहि।
सुन्दर उलटा पेच है समझि नहीं घट मांहि ॥34॥

---

28. बाजीगर कौ ष्याल=जादूगर की कल्पना, इन्द्रजालिक की कल्पना। पंष परेवा पलक मैं=जादूगर क्षण भर में पंखधारी कबूतर बना देता है। मुवो जिवावत ब्याल=[और क्षण भर में-] मृतक सर्प को जीवित करके दिखा देता है।

29-31. हथफेर=हाथ का जादू। मन मैं धरन सुमेर=मन की संकल्पना में ही धरणी और सुमेरु पर्वत हैं। भूत=पिशाच, दुष्टात्मा। चिन्ह करै रोवे हंसै=हँसने-रोने की मुद्रा बनाता है। षातें नहीं अघाइ=खाते-खाते अर्थात् भोग करते हुए तृप्त नहीं होता। चपल=चंचल। ज्यौं पीपर कौ पांन [उदा०]=पीपल के पत्ते की तरह चंचल। हाथी कौ सौ कांन [उदा०]=हाथी के कान की तरह बड़े आकार में चलायमान।

32-35. पानी कौ सौ घेर=पानी के भँवर [-घेर] की तरह चक्करदार गति में मन चलायमान रहता है। बायु बघूरा=वायु के बघूरे की तरह। ध्वजा=पताका [-की तरह चंचल]। अरहट माल=रेंहट की माला की तरह गतिमान कभी खाली-कभी भरा। चरषा-फिरात=चरखे की तरह घूमता-रहता है। धूंवा ज्यौं मन उठि चलै=धुएं की तरह ऊपर को उठता चला-जाता है। कापै पकर्‌यौ जात=मन किस पर पकड़ा जा सकता है। **टिप्पणी** : साखी 31-33 तक मन की चंचलता को बताने केलिए पीपर-पांन, हाथी-कांन, पांनी कौ घेर कहा है तथा वायु बघूरा, ध्वजा, चक्र, अरहट माल, चरखा, आदि उपमान दिए हैं, जो मन के स्वभाव की व्यंजना करते हैं। आगे भी साखी संख्या 54 से 56 में और अनेक उपमान गिनाए गए हैं। उलटा पेच=भेदपूर्ण स्थिति। घट मांहि=हृदय में। मन कौ मारत बैठि करि=बैठकर मन को मारते हैं अर्थात् मन को अनुशासित करते हैं। पर, उलटा ही होता है। वे स्वयं [-साधक] मन के वश में होते-जाते है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन कौं मारत बैठि करि मन मारै वै अंध।
सुन्दर घोरे चढन को घोरा बैठौ कंध ॥35॥
सुन्दर करत उपाइ बहु मन नहिं आवै हाथ।
कोई पीवै पवन कौं कोई पीवै काथ ॥36॥
सुन्दर साधन करत है मन जीतन कै काज।
मन जीतै उन सबनि कौं करै आपनौ राज ॥37॥
साधन करहिं अनेक विधि देहिं देह कौं दण्ड।
सुन्दर मन भाग्यौ फिरै सप्त दीप नौ षण्ड ॥38॥
सुन्दर आसन मारि कै साधि रहे मुख मौंन।
तन कौं राषै पकरि कैं मन पकरै कहि कौंन ॥39॥
तन कौ साधन होत है मन कौ साधन नांहि।
सुन्दर बाहर सब करैं मन साधन मन मांहि ॥40॥
साधत साधत दिन गये करहिं और की और।
सुन्दर एक विचार बिन मन नहिं आवै ठौर ॥41॥
सुन्दर यह मन रंक ह्वै कबहूं ह्वै मन राव।
कबहूं टेढौ ह्वै चलै कबहूं सूधे पाव ॥42॥
सुन्दर कबहूं ह्वै जती कबहूं कामी जोइ।
मन कौ यहै सुभाव है तातौ सियरौ होइ ॥43॥

घोरे चढ़न···कंध [उदा०]=जो घोड़े पर सवार होना चाहते हैं, घोड़ा उन पर सवार हो जाता है। अर्थात् मन-साधना [-अनुशासित] करने वाले स्वयं मन के वशीभूत होते-देखे जाते हैं।

36-39. मन नहिं आवै हाथ [मुहा०]=मन हाथ नहीं आता अर्थात् अनुशासित नहीं हो पाता। कोई पीवै पवन कौं=कोई तो पवन पीते हैं अर्थात् प्राणायाम करते हैं। काथ=क्वाथ, कथीर अथवा काढ़ा। **टिप्पणी:** योगी-साधक, काम-वेग के संयमन केलिए, विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों से निर्मित क्वाथ को पीते हैं। साधन=उपाय, अभ्यास। करै आपनौ राज=अपना राज चलाता है। देहिं देह को दण्ड=मन को वशीभूत करने केलिए, शरीर को अनेक प्रकार से दण्डित-संयमित करते-रहते हैं। मन भाग्यौ फिरै=फिर भी, मन भागा-फिरता है, असंयमित बना रहता है। नौ षण्ड=नव खण्ड पृथ्वी पर। अर्थात् दुनिया भर में। तन कौ···कहि कौंन=शरीर को तो पकड़ कर रखा जा सकता है, पर ऐसा कौन है, जो मन को पकड़कर वशीभूत कर पाया हो।

40-43. मन कौ साधन=मन की साधना। एक बिचार···आवै ठौर=विचार [-ज्ञान-विवेक] के बिना मन स्थिर नहीं हो सकता, अपनी चंचलता नहीं छोड़ सकता। कबहूं···सूधे पाव=इस मन की बड़ी विचित्र गति है। कभी तो यह टेढ़ा-टेढ़ा चलता है और कभी सीधे पैर [-सीधी गति में] चलता है। जती=यति, संयमी, साधक। कामी=विषयी। तातौ सियरौ होइ=उष्ण और शीतल होता-रहता है। अर्थात् ठण्डा-गर्म [-क्रोधी और शान्त-] स्वभाव का होता-रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप पुन्य यह मैं कियौ स्वर्ग नरक हूं जांउं।
सुन्दर सब कुछ मनि ले ताही तें मन नांउं ॥44॥
मन ही बडौ कपूत है मन ही महा सपूत।
सुन्दर जौ मन थिर रहै तौ मन ही अबधूत ॥45॥
मन ही यह बिस्तरि रह्यौ मन ही रूप कुरूप।
सुन्दर यह मन जीव है मन ही ब्रह्म स्वरूप ॥46॥
सुन्दर मन मन सब कहैं मन जान्यौ नहिं जाइ।
जौ या मन कौं जांणिये तौ मन मनहिं समाइ ॥47॥
मन कौ साधन एक है निस दिन ब्रह्म बिचार।
सुन्दर ब्रह्म बिचारतें ब्रह्म होत नहिं बार ॥48॥
देह रूप मन ह्वै रह्यौ कियौ देह अभिमान।
सुन्दर समुझै आपकौं आपु होइ भगवान ॥49॥
जब मन देषै जगत कौं जगत रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर देषै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ ॥50॥
मन ही कौ भ्रम जगत सब रज्जु मांहिं ज्यौं साप।
सुन्दर रूपौ सीप मैं मृग तृष्णा मंहिं आप ॥51॥
जगत बिझूका देषि करि मन मृग मानै संक।
सुन्दर कियौ बिचार जब मिथ्या पुरुष करंक ॥52।

44-47. हूं जांउं=मैं [ही] जाऊँगा। सब कुछ···मन नांउं=सब कुछ मान लेता है, इसीलिए 'मन' [-मानने वाला] इसका नाम पड़ा है। सपूत=सुपुत्र। मन अबधूत=मन जब स्थिरता ग्रहण कर ले तो वह 'अवधूत' [-साधक] बन जाता है। बिस्तरि रह्यौ=विस्तार [-प्रसार] किए हुए है। मन जीव है=मन ही जीवात्मा का रूप धारण कर लेता है और मन ही ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। जौ या मन कौं जांणिये=जो इस मन को जान लेता है, तभी वह मन अन्तर्मुखी [-सूक्ष्म, व्यापक] मन में समा जाता है। मन-समाइ=मन का मन में समा जाना ही निर्विकल्प समाधि, साक्षात्कार की दशा है।

48-51. मन कौ साधन···ब्रह्म बिचार=[सन्त-मत में-] मन की एक ही साधना है अर्थात् एक ही प्रकार से संयमन हो सकता है कि रात-दिन, निरन्तर ब्रह्म-विचार [-स्वरूप ज्ञान] में लीन बना रहे। देह अभिमान=देह का घमण्ड। ब्रह्म समाइ=ब्रह्म-लीन हो जाता है। रज्जु मांहि-साप=भ्रान्ति के कारण रस्सी में सर्प का आभास [-अध्यास] होता है। रूपौ सीप मैं=सीप में चाँदी का आभास [-भ्रम]। मृग तृष्णा मंहिं आप=मृग-मरीचिका में जल का भ्रम [-आभास]।

52. जगत बिझूका देषि करि=जगत् रूप बिझूका [-औझपा] देखकर। **टिप्पणी:** बिझूका [-औझपा], पुरुषाकार-लकड़ी के ढाँचे पर लटकाया हुआ वह कपड़ा, जिसे देखकर [-भ्रमित होकर] अथवा आदमी समझ कर, जंगली जानवर, खेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तबही लौं मन कहत है जब लग है अज्ञांन।
सुन्दर भागै तिमर सब उदै होइ जब भांन ।।53।।
सुन्दर परम सुगन्ध सौं लपटि रह्यौ निश भोर।
पुण्डरीक परमातमा चंचरीक मन मोर ।।54।।
सुन्दर निकसै कौंन बिधि होइ रह्या लै लीन।
परमानन्द समुद्र मैं मग्न भया मन मीन ।।55।।
दृष्टि न फेरै नैंकहूं नैंन लगै गोबिन्द।
सुन्दर गति ऐसी भई मन चकोर ज्यौं चन्द ।।56।।
इत उत कहूं न चल सकै थकित भया तिहिं ठौर।
सुन्दर जैसें नाद बसि मन मृग बिसर्या और ।।57।।
।।मनः श्लेष ।। धड़ तौ जाकै चारि हैं द्वै द्वै सिर हैं बीस।
ऐसी बडी बलाइ मन सिर करिले चालीस ।।1।।58।।
सिर तैं द्वै अध सिर करै सिर सिर चहुं चहुं पांव।
ऐसें सिर चालीस हैं मन कहिये क छलाव ।।2।।59।।

[-खेती] को नहीं उजाड़ते। मन मृग मानै संक=मृग रूप मन शंकित बना रहता है। कियौ बिचार=विचार करने पर, विवेक-ज्ञान होने पर। मिथ्या पुरुष करंक =आदमी के ढाँचे अथवा आदमी के नकली होने का ज्ञान हो जाता है।

53-54. जब लग=जब तक। भागै तिमर=अन्धकार तिरोहित हो जाता है। उदै भांन=भानु[-सूर्य]के उदय होने पर। पुण्डरीक परमात्मा=कमल रूप परमात्मा। चंचरीक मन मोर=भ्रमर की तरह रस-लोलुप मेरा चंचल मन।

55-57. परमानन्द समुद्र मैं [रूपक]=समुद्र रूप व्यापक [-असीम-अगाध परमानन्द-मय-]परमात्मा में। मन मीन =[मेरा] मछली रूप मन। नैंन लगै=नेत्र केन्द्रित बने-रहते हैं। मन चकोर=चकोर रूप मन। थकित भया=थक कर, उड़ने [-घूमने-फिरने]की आकांक्षा से रहित होकर। जैसे नाद बसि···और[दृष्टा०] = जैसे कर्णेन्द्रिय का विषय संगीत की मधुर ध्वनि के प्रति आसक्त होकर मृग अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है, वैसे ही मन भी केन्द्रित होकर तल्लीन बना-रहता है।

58-59. **टिप्पणी**: साखी 58 [अथवा 1] से 70 [अथवा 13] तक, श्लेष के बल पर 'मन' के अन्य अनेक पर्याय दिए गए हैं, जिनके अर्थ अलग-अलग हैं। इन प्रयोगों में रचनाकार की विद्वता, व्युत्पन्नता को देखा जा सकता है। साथ ही मन की अनन्त शक्ति और विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है। धड चारि= शरीर, धड़ी। **विशेष**—बड़ी धड़ी 10 सेर की और छोटी [-कच्ची] धड़ी 5 सेर की मानी जाती है। ये चार हैं। द्वै द्वै सिर-बीस=दो-दो सिर-सेर बीस अर्थात् 40 सेर। सिर करिले चालीस=सिर-सेर, मन के चालीस सेर तथा अनेक [-चालीस] सिरों [-सेरों] वाला 'मन' होता है। सिर तैं अध=एक सेर के दो अर्थात् आधा सेर। सिर सिर चहुं चहुं पांव=अर्थात् प्रत्येक सेर में चार पांव [-पौआ] होते हैं। इसप्रकार एक मन में चालीस सेर [-सिर] होते हैं। जिसके चालीस सिर [-सेर] हों, वह 'मन' है कि कोई प्रेत रूप छलावा है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर जाकै चालीस हैं असी अरध सिर जाहि।
पांव एक सौ साठि हैं क्यौं करि पकरै ताहि ।।3।।60।।
आधे पग हैं तीन सै और अधिक पुनि बीस।
तिनहूं तें आधे करै षट सत अरु चालीस ।।4।।61।।
डेढ हजार रु एक सौ इतने होहिं अंगुष्ठ।
चौंसठि सै अंगुली करै मन तैं कौंन सपुष्ट ।।5।।62।।
नख की गिनती को गिनै तन कै रोम अनंत।
ऐसै मन कौं बसि करै सुन्दर सो बलिवंत ।।6।।63।।
एक पालडे सीस धरि तौलै ताके साथ।
बर चालीस क तौलिये तब मन आवै हाथ ।।7।।64।।
पंच सीस करि येकठे धरै तराजू आइ।
आठ बार जो तोलिये तब मन पकर्‍या जाइ ।।8।।65।।

60-61. सिर जाकै···सिर जाहि=जिसके चालीस सेर [-सिर] होते हैं, उसके 80 [=40×2] आधा सेर होंगे और पाव होंगे 160 [=40×4]। अत: 160 पाव [-पाँव] वाला मन होता है। तथा [श्लेष से-] जिसके 160 पैर हों, तो वह कितना गतिमान होगा। अत: वह [मन] कैसे पकड़ा जा सकता है? आधे पग=आधे पाव [-पाँव], आध पाव गिने जाएँ तो होंगे 320 [=160×2]। तिनहूं तें आधे करै=आधे पाव [-पाँव] के भी आधे किए जाएँ तो 640 [=320×2] होंगे। षट सत=छः सौ।

62-64. डेढ़ हजार रु एक सौ···अंगुष्ठ=यदि मन में अंगुल [-आने या दाम या छटाँक] गिनाए जाएँ तो अँगुष्ठ होंगे 1600 [=40×40]। चौंसठि सै अंगुली करै=यदि एक मन की अँगुली [=विदाम, आने का भी आधा] की जाएँ तो 6400 [=1600×4] गिनी जाएँगी। मन तैं कौंन सपुष्ट=ऐसे 'मन' से और कौन पुष्ट या शक्तिशाली हो सकता है। नख···अनंत=नाखुनों की गिनती कौन करे और शरीर में रोम तो अनन्त होते हैं। एक पालडे सीस धरि=तराजु के एक पलड़े में शीश [-आपा, अहंकार] रखकर तोलना [-समता करना] चाहिए। वर चालीस···आवै हाथ=मन के चालीस [-सेर, सिर] तोल देने अर्थात् अर्पित कर देने पर ही 'मन' हाथ आ पाता है।

65. पंच सीस करि येकठे=पाँच सेर एकत्रित करके रखे जाएँ तब पसेरी और ये आठ बार रखे जाए तब 'मन' [=8×5=40 सेर] पूरा होता है। **टिप्पणी :** यहाँ 'पंच' पंचेन्द्रियों केलिए और 'आठ बार तोलिये' अर्थात् अष्टांग योग के अभ्यास से मन-साधना करने से ही, देहाभिमान निवारण के बाद, मन वशीभूत करने की व्यंजना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरै एक धड पालडै तौलै बरियां चोरि।
थोरे में बसि होइ मन पंडित लेहु बिचारि ॥9॥66॥
एक सेर कुंजर हणै अति गति तामहिं जोर।
सेर गहे चालीस जिनि मन तें बली न ओर ॥10॥67॥
इंद्री अरु रवि शशि कला धात मिलावै कोइ।
सुन्दर तोलै जुगति सौं तब मन पूरा होइ ॥11॥68॥

चौपई : पंच सात नौ तेरह कहिये। साढे तीन अढाई लहिये॥
सब कौं जोर एक मन होई। मन के गायें सत्य नहिं कोई ॥12॥69॥
ज्ञान कर्म इन्द्री दश जानहुं। मन ग्यारहों सु प्रेरक मानहुं॥
ग्यारह में जब एक मिटावै। सुन्दर तबहिं एक ही पावै ॥13॥70॥

॥ इति मन कौ ॥15॥

---

66. धरै एक धड···चारि=यदि एक धड़ [-धड़ी, पंसेरी, दस सेर की पक्की धड़ी] को न्याय की तराजू में रखकर तोलता है और चार बार तोलता है तो मन थोड़े-से प्रयत्न में ही, सत्य ज्ञान के वशीभूत हो जाता है। तात्पर्य है कि धड़ [-आपा-अभिमान के निवारण-] के साथ शीश का अलग अस्तित्त्व शेष नहीं रहता।

67-68. सेर गहे···बली न ओर=जिसने चालीस सेरों को अपने में समेट लिया है, ऐसे मन से अधिक बली शक्तिशाली कौन हो सकता है? अंत तक कोई नहीं। एक सेर कुंजर हणै=एक शेर [-सिंह] को तो हाथी बड़ी मुश्किल से हनन कर पाता है। वह हाथी जिसमें बहुत अधिक शक्ति होती है। ऐसे 40 सेरों [-शेरों]से मन बनता है। तब वह कितना ताक़तवर [-पराक्रमी] होगा। ऐसा मन तो चालीस हाथियों की ताक़त को परास्त करने की सामर्थ्य रखता है। [श्लेष से ये चालिस अंग हैं= इन्द्रिय 5+रवि 12+शशि 1+कला 16+धातु 6=40 अंग] **विशेष**— धातु तो आठ [-अष्ट धातु] प्रसिद्ध हैं। किन्तु, यहाँ छः का ही संकेत है। तोलै जुगति सौं=भलीप्रकार से सन्तुलित करे तभी पूरा 'मन' हो पाता है।

69-70. 5+7+9+13+3॥+2॥=इन सबको मिलाकर चालीस की शक्ति वाला एक मन होता है। मन के गायें=मन के गाने [-कहने] से। 5 [=ज्ञानेन्द्रियाँ]+5 [=कर्मेन्द्रियाँ]+1 [=मन]। मन 11वीं इन्द्रिय है, जो अन्य दसों को प्रेरित करता-रहता है। ग्यारह में···एक ही पावै=ग्यारह इन्द्रियों में से जब एक प्रेरक इन्द्रिय [राजा-] मन विलीन [-समाप्त] हो जाता है तभी एक ब्रह्म की प्राप्ति [-साक्षात्कार] सम्भव है। उक्त शेष संख्याएँ अव्याख्यायित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 16 ।। अथ चाणक कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की 25 साखियों में भेष-आडम्बर, सम्प्रदाय-पन्थों में व्याप्त दिखावे पर करारा प्रहार किया गया है। जहाँ दिखावा प्रधान होता है, वहाँ साध्य बहुत दूर छूट जाता है। 'चाणक' शब्द 'चाणक्य होने' की रूढ़ि से प्रेरित है, जिसका अर्थ 'कुशल [-प्रवीण, चालाक] होने' से है। किन्तु, यहाँ 'सावधान' होने की व्यंजना अधिक है। सुन्दरदास ऐसे मिथ्याचारों [-मिथ्याडम्बरों] को सामाजिक बुराइयों की जड़ मानते रहे हैं। ऐसे पाखण्डपूर्ण माहौल में आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्नता का उदय [-प्रकाश] सम्भव नहीं। तभी तो रचनाकार का कहना है कि—'बैठौ गटकैं माछली सुन्दर कैसौ ज्ञान' अथवा 'सुन्दर देषे भेष सब कहूं न देष्या चैन।' मूल पाठ स्वयं द्रष्टव्य है—

साषी : छूट्यौ चाहत जगत सौं महा अज्ञ मति मन्द।
जोई करै उपाइ कछु सुन्दर सोई फन्द ।।1।।
योग करै जप तप करै यज्ञ करै दे दांन।
तीरथ ब्रत यम नेम तैं सुन्दर ह्वै अभिमांन ।।2।।
सुन्दर ऊंचे पग किये मन की अहं न जाइ।
कठिन तपस्या करत है अधो सीस लटकाय ।।3।।
मेघ सहै सब सीस पर बरिषा रितु चौमास।
सुन्दर तन कौं कष्ट अति मन मैं औरै आस ।।4।।

चूर्णिका : 1-4. छूट्यौ चाहत=छूटना [-मुक्त होना] चाहता है। अज्ञ=अज्ञानी, नासमझ, मूर्ख। मन्द=मन्द बुद्धि। फन्द=फन्दा, पाश। योग करै। योग की क्रिया [-साधनाएँ] करता-रहता है। **टिप्पणी :** इन योग-जपतपादिक क्रियाओं से भी मनुष्य की चेतना, '**मैं ऐसा करता हूँ**' इस कर्तापन के भाव से, अभिमानी बनी-रहती है। ऊंचे पग=उलटे [ऊपर की ओर] पैर। अहं=अहंकार वृत्ति। कठिन तपस्या =घोर तप। अधो सीस लटकाइ=सिर नीचे को लटकाकर कठिन तप किया। मेघ सहै=वर्षा जल सिर पर सहन करता है। अर्थात् वर्षाकाल में खुले में बैठा रहता है। बरिषा रितु चौमास=वर्षा ऋतु, चातुर्मास। औरै आस=और-और ही आशाएँ-कल्पनाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीत काल कल मैं रहे करै कामना मूढ।
सुन्दर कष्ट करै इतौ ज्ञान न समझै गूढ ॥5॥
उष्ण काल चहुं वोर तें दीनी अग्नि जराइ।
सुन्दर सिर परि रवि तपै कौंन लगी यह वाइ ॥6॥
बन बन फिरत उदास ह्वै कंद मूल फल षात।
सुन्दर हरि कै नाम बिन सबै थोथरी बात ॥7॥
कूकस कूटहिं कन बिना हाथ चढै कछु नांहिं।
सुन्दर ज्ञान हृदै नही फिरि फिरि गोते षांहिं ॥8॥
बैठौ आसन मारि करि पकरि रह्यौ मुख मौंन।
सुन्दर सैन बतावतें सिद्ध भयौ कहि कौंन ॥9॥
कोउ करै पय पान कौं कौंन सिद्धि कहि वीर।
सुन्दर बालक बाछरा ये नित पीवहिं षीर ॥10॥
कोऊ होत अलौनिया षांहि अलौंनौ नाज।
सुन्दर करहिं प्रपंच बहु मान बढावण काज ॥11॥

5-8. सीतकाल=शीत ऋतु में। करै कामना=कामना करता है, फलेच्छा रखता है। इतौ=इतना। ज्ञान न समझै गूढ़=ज्ञान के मर्म-रहस्य को नहीं समझता। उष्ण काल=ग्रीष्म ऋतु में। सिर परि रवि तपै=सिर पर सूर्य तपता है। **टिप्पणी :** साधना में एक 'पंचाग्नि तप' है, जिसमें साधक बीच में बैठकर, अपने चारों ओर आग जला कर एवं ऊपर से ग्रीष्म ऋतु के सूर्य में तपता है। कौन लगी यह वाइ= यह कौन-सी व्याधि-बीमारी लगी है। उदास ह्वै=उदासीन [-विरक्त] होकर। सबै थोथरी बात=ये सब थोथी [निरर्थक] बातें हैं। कूकस कूटहिं कन बिना [लोको०]=अन्न-कण के बिना ही भूसे को कूटते-रहते हैं। अर्थात् निरर्थक प्रयत्न करते-रहते हैं। फिरि फिरि गोते षांहि=बार-बार धोखा खाते हैं। बेसुध बने रहकर साधना-क्रियाएँ करते-रहते हैं।

9-11. बैठौ आसन मारि करि=आसन-बैठ कर योग-क्रियाएँ करता है। सैन बतावतें= दृष्टि-संकेतों से बताने पर। सिद्ध भयौ कहि कौंन=कौन सिद्ध हो पाया है? अर्थात् कोई नहीं। पय पान=दुग्ध पान, दूधाधारी साधक। बीर=अरे भाई! बालक बाछरा···षीर[दृष्टा०]दूध के अवलम्ब पर जीने से ही यदि कोई सिद्ध हो जाए तो बच्चा और गाय का बछड़ा, जो नित्य ही क्षीर [-दूध] के सहारे जीते हैं, अवश्य ही सिद्ध हो जाते। अलौनिया=बिना नमक का भोजन करने वाला साधक। अलौंनौ =नमक रहित। करहिं प्रपंच बहु=यह सब प्रपंच हैं, जो दिखावे एवं दूसरों की दृष्टि में मान बढ़ाने केलिए, बंचक साधुओं द्वारा किए जाते हैं। अर्थात् सच्चा साधु इन आडम्बरों को नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोवन पीवै बावरे फांसू बिहरन जांहि।
सुन्दर रहै मलीन अति संमझ नहीं घट मांहि ॥12॥
एक लेत हैं ठौर ही सुन्दर बैठि अहार।
दाष छुहारी राइता भोजन बिबिध प्रकार ॥13॥
कोउक आचारी भये पाक करै मुख मूंदि।
सुन्दर या हुन्नर बिना षाइ सकै नहिं षूंदि ॥14॥
कोउक माया देत है तेरैं भरै भण्डार।
सुन्दर आप कलाप करि निठि निठि जुरै अहार ॥15॥
कोउक दूध रु पूत दे कर पर मेल्हि बिभूति।
सुन्दर ये पाषण्ड किय क्यौं ही परै न सूति ॥16॥
यंत्र मंत्र वहु बिधि करै झाडा बूंटी देत।
सुन्दर सब पाषण्ड है अंति पडै सिर रेत ॥17॥

12-13. धोवन पीवै बावरे=अरे मूर्ख, पैर का धोवन, चरणामृत मानकर पीता है। फांसू बिहरन जांहि=फाँसी का फन्दा [-बन्धन] विदीर्ण करना चाहते हैं। संमझ नहीं घट मांहि=हृदय में बोध नहीं आया, विवेक नहीं जाग्रत हुआ। ठौर ही=अपने स्थान पर ही। दाष···बिबिध प्रकार=अंगूर-छुहारा छुहारी [सं० क्षुध+हार=सूखा खजूर, छुआरा] एवं रायता आदि नाना विधि स्वादिष्ट भोजन।

14-15. आचारी=आचरणशील, कर्मकाण्डी। पाक करै=पाक क्रिया, भोजन बनाने का कार्य करता है। मुख मूंदि=मुख बन्द करके। हुन्नर=कला, कुशलता, चालाकी। षूंदि < खवीद [फा०]=ताजा भोजन, हरी खेती, जो घोड़ों या गाय-बैलों को खिलाई जाती है। **टिप्पणी :** यहाँ साधुओं के आडम्बर पर व्यंग्य है। माया देत है=दान-खाते से, भगवान के निमित्त, दान देते हैं। अथवा नकली साधु, भण्डार भरने का आशीर्वाद देते हुए माया-दान करते हैं। जबकि, स्वयं माया के लालची हैं। कलाप करि=कलप-कलप कर, कह-कह कर, बड़ी परेशानी से। निठि निठि जुरै अहार=बड़ी कठिनाई से आहार एकत्रित हो पाता है।

16-17. कोउक दूध रु पूत दे=कोई 'दूधों नहाओ-पूतों फलो,' अथवा 'दे माई सूत। ले माई पूत' का आशीर्वाद देते हैं। कर पर मेल्हि=हाथ पर रखते हैं। बिभूति=विभूति, भस्मी, प्रसाद रूप में राख। पाषण्ड किय=पाखण्ड करने से। सूति=सुरति, सहज सुख, आनन्द। यंत्र मंत्र···करै=तन्त्र-मन्त्र रूप टोटका करता है। झाडा बूंटी देत=ओझा [-सियाने] लोग गाँवों में मन्त्र पढ़ कर झाड़ा देते हैं अथवा जड़ी-बूटी बाँटते हैं। अंति पडै सिर रेत [मुहा०]=अन्त में सिर पर खाक पड़ती है। अर्थात् अन्तिम परिणाम तो खाक में मिलना ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोऊ होत रसाइनी बात बनावै आइ।
सुन्दर घर मैं होइ कछु सो सब ठगि ले जाइ ।।18।।

गल मैं पहरी गूदरी कियौ सिंह कौ भेष।
सुन्दर देषत भय भयौ बोलत जान्यौ मेष ।।19।।

मेल्है पाव उठाइ कै बक ज्यौं मांडै ध्यान।
बैठौ गटकै माछली सुन्दर कैसौ ज्ञान ।।20।।

सुन्दर जीव दया करै न्यौता मानै नाहिं।
माया छुवै न हाथ सौं परकाला ले जाहिं ।।21।।

भेष बनावै बहुत विधि जटा बंधावै सीस।
माला पहिरै तिलक दे सुन्दर तजै न रीस ।।22।।

केस लुचाइ न ह्वै जती कान फराइ न जोग।
सुन्दर सिद्धि कहा भई बादि हंसाये लोग ।।23।।

18-19. रसाइनी=रसायन क्रिया से पारा शोध कर औषधि तैयार करने वाला। अथवा रसायन-क्रिया से स्वर्ण बनाने वाला, ठग। गूदरी=गुदड़ी। सिंह कौ भेष=शेर जैसा स्वरूप बनाया। देषत भय भयौ=[आदमी होते हुए भी, उस भेष को-] देखते हुए भय लगता है। बोलत जान्यौ मेष=[उसके-] शब्दों को सुनकर मालूम हो जाता है कि वह स्वयं भयभीत भेड़ बना हुआ है, जबकि दिखावा कर रहा है शेर का। मेष=भेड़, भेड़ा।

20-22. मेल्है पाव उठाइ कै=एक पैर उठाए रखकर। बक ज्यौं मांडै ध्यान=बगुले की तरह ध्यान लगाए खड़ा रहता है। अर्थात् बगुले की तरह ध्यान लगाए, अपनी खुराक की ताक लगाए रहता है। गटकै माछली=मछली [अपना विषय-भोग-] गटकता-रहता है। कैसौ ज्ञान=यह कैसा ज्ञान है। अर्थात् साधक द्वारा यह आडम्बर भरा जीवन क्यों? न्यौता मानै नाहिं=निमन्त्र नहीं मानता। माया छुवै न हाथ सौं=माया-धन हाथ से न छूने का आडम्बर तो करता है, पर। परकाला लेजाहिं=परकाला [फा०]=चिथड़े में बँधी या बँधवाकर, धन-दौलत को उठाकर ले जाने में दोष नहीं मानते। जटा बंधावै सीस=दिखावे केलिए, सीधे-सादे संसारी को ठगने केलिए, सिर पर जटाएँ बढ़ा लेते हैं। माला···तजै न रीस [विसंगति] =माला पहरते [-तिलक-] छापा लगाते हैं, पर क्रोध का त्याग नहीं कर पाते। अर्थात् साधु के वेष को लजाते हैं।

23. केस लुचाई=जैन-साधु-तपस्वी केश-लुंचन-क्रिया [=केश उखड़वाने का विधान] कराते हैं। न जती=लेकिन, ऐसा करने से कोई यति [-तपस्वी] नहीं हो जाता। कान फराइ=कनफटा जोगी कान-छिदाकर कर्ण-मुद्रा पहनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर गये टटांबरी बहुरि दिगम्बर होइ।
पुनि बाघम्बर बोढि कै बाघ भयौ घर षोइ ॥24॥
रक्त पीत स्वेतांबरी काथ रंगै पुनि जैंन।
सुन्दर देषे भेष सब कहूं न देष्या चैंन ॥35॥

॥ इति चाणक कौ अंग ॥16॥

न जोग=लेकिन, इससे कोई योग सिद्ध नहीं होता। बादि हंसाये लोग=व्यर्थ में लोक हँसाई। [-मज़ाक] कराते हैं।

24-25. टटांबरी=टाटाम्बरी, टाट पहनने वाले साधु। दिगम्बर=नग्न साधु। बाघम्बर वोढि कै=शेर की खाल ओढ़ कर बाघम्बरी साधु। स्वेतांबरी=श्वेताम्बरी [-सफेद वस्त्रधारी] जैन साधु। काथ=कंथा, वस्त्र, चोगा। भेष=साधु वेश। कहूं न देष्या चैंन=कहीं भी आन्तरिक सुख-संतोष नहीं दिखाई दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 17 ॥ अथ बचन बिबेक कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की 25 साखियों में वाणी और सार्थक वाणी के मर्म को समझाते हुए वाक्-संयम की आवश्यकता पर बल दिया है। सन्त-वाणी [-वचन] में शब्द के प्रभाव को विशेष महत्त्व मिला है। वचन और कुवचन रूप वाणी-भेद के द्वारा सन्त और असन्त की परख की जा सकती है। सुवचन, जीवन-व्यवहार में सन्तुलन और समता प्रदान करता हैं, जबकि कुवचन दूध में खटाई की तरह फर्क पैदा करता है। सन्त-वाणी में सार 'अर्थ' [-सार्थकता] के बिना वाक् का लक्ष्य पूरा नहीं होता। सन्तों की दृष्टि में यह अर्थ ही 'हरि' है जो सन्त-जीवन का परम मूल्य है। इसके अभाव में कोई भी वाणी सन्त-वाणी नहीं मानी जा सकती, नहीं हो सकती। सुन्दरदास ने अपने इस अंग की अन्तिम साखी में अपनी रचनाधर्मिता को, देव-प्रतिष्ठा वाले देवालय के समान बताया है। रचना-विधान में 'अर्थ रूप हरि' की प्रतिष्ठा से ही उन्होंने रचना-कर्म रूप देवालय की शोभा बताई है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साखी : सुन्दर तब ही बोलिये समझि हिये मैं पैठि।
कहिये बात बिबेक की नहितर चुप ह्वै बैठि ॥1॥
सुन्दर मौंन गहे रहै जानि सकै नहिं कोइ।
बिन बोलै गुरुवा कहैं बोलैं हरवा होइ ॥2॥
सुन्दर मौंन गहें रहै तब लग भारी तोल।
मुख बोलें तें होत है सब काहू कौ मोल ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. तब ही बोलिये=तभी बोलना चाहिए। नहितर=नहीं तो। मौंन गहे रहै=चुप साधे रहने से। बिन बोलै···होइ = बिना बोले हुए को तो गुरु [=गुरु गम्भीर], पहुँचा हुआ कहा जाता है और बोलने पर, बोले हुए को [-सुनने-समझने पर, हल्का, तुच्छ या] लघु समझा जाता है। अर्थात् चुप बने हुए की गहराई अर्थात् ज्ञान-गरिमा का पता नहीं लग पाता, जबकि बोले हुए के शब्द, उसके अन्दर की सच्चाई उद्घाटित कर देते हैं। भारी तोल=ऊँचा वज़न, ऊँची कीमत। मुख बोलै···मोल [कहा०]=मुख से निकले शब्दों [-वाणी] से ही सबकी कीमत आँकी जाती है अथवा आँकी जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर यौं हीं बकि उठै बौलै नहीं बिचारि।
सब ही कौं लागै बुरौ देत ढीम सौ डारि ॥4॥

सुन्दर सुनतें होइ सुख तब ही मुख तें बोल।
आक बाक बकि और की बृथा न छाती छोल ॥5॥

सुन्दर वाही वचन है जा मंहि कछू बिबेक।
नातरु घैरा मैं पर्यौ बोलत मानौ भेक ॥6॥

सुन्दर वाही बोलिबौ जा बोलै मैं ढंग।
नातरु पशु बोलत सदा कौंन स्वाद रस रंग ॥7॥

घूघू कउवा रासिभा ये सब बोलहिं आइ।
सुन्दर जिनकौ बोलिबौ काहू कौं न सुहाइ ॥8॥

सारो सूवा कोकिला बोलत बचन रसाल।
सुन्दर सबकौं कान दे बद्ध तरुन अरु बाल ॥9॥

सुन्दर वचन कुवचन मैं राति दिवस कौ फेर।
सुवचन सदा प्रकासमय कुवचन सदा अंधेर ॥10॥

सुन्दर सुवचन सुनत ही सीतल ह्वै सब अंग।
कुवचन कानन मैं परै सुनत होत मन भंग ॥11॥

4-5. बकि उठै = बक उठता है, बक-बक करता है। अर्थात् बिना सोचे-समझे बोलता है। देत ढीम सौ डारि [कहा०] = बिना सोचे-समझे उच्चरित शब्द ढेले के लगने की तरह ही कष्टकर होते हैं। आक बाक···छोल [कहा०] = अण्ट-शण्ट बक कर, ऊटपटाँग बोलकर, दूसरे के हृदय को पीड़ित न करो। छाती छोल [मुहा०] = छाती छीलना अर्थात् मर्म छेदन करना, पीड़ा पहुँचाना।

6-9. वाही = वही। जा मंहि = जिसमें। नातरु = नहीं तो। झेर = गड्ढा, कीचड़-पानी भरा खड्ड। भेक = मेंढक। जा बोलै मैं ढंग = जिस बोलने में ढंग [-समझदारी, सलीका] हो। पशु बोलत = पशु भी बोलता है। घू घू कउवा रासिका-बोलहिं = उल्लू, कौआ और गधे भी बोलते हैं। काहू कौं न सुहाइ = किसी को भी अच्छा नहीं लगता। सारो···रसाल = सारिका या मैना, शुक, कोयल भी [मधुर वचन] बोलते हैं। कान दे = कान देकर [-ध्यान से, रुचि से] सुनते हैं। रसाल = रसपूर्ण, मधुर।

10-11. वचन-कुवचन = सुवचन और कुवचन, सुन्दर-सार्थक वाणी और कटु वाणी। फेर = अन्तर। टिप्पणी : सुवचन और कुवचन की प्रकृति [-प्रभाव] में अन्तर है। वचन या सुवचन तो सदा प्रकाशमय अर्थात् ज्ञान-विवेकपूर्ण होते हैं और कुवचन अन्धकारमय अर्थात् मोह-आसक्ति [-जड़ता-क्लेश] जन्य होते हैं। सीतल < शीतल = शान्तिदायक, सुख-तृप्ति प्रदान करने वाले। कानन मैं परै = कानों में पड़ते ही अर्थात् सुनते ही। होत मन भंग = मन विचलित [-अस्थिर] होने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सुवचन तक्र तें राषै दूध जमाइ।
कुवचन कांजी परत ही तुरत फाटि करि जाइ ।।12।।
सुन्दर सुवचन कै सुनै उपजै अति आनंद।
कुवचन काननि मैं परै सुनत होत दुख द्वंद ।।13।।
सुन्दर वचन सु त्रिविध हैं एक वचन है फूल।
एक वचन है असम से एक वचन है सूल ।।14।।
सुन्दर वचन सु त्रिविधि हैं उत्तम मध्य कनिष्ट।
एक कटुक इक चरपरै एक वचन अति मिष्ट ।।15।।
सुन्दर जान प्रवीण अति ताकै आगै आइ।
मूरष वचन उचारि कैं बांणी कहै सुनाइ ।।16।।
सुन्दर घर ताजी बंधे तुरकिन की घुरसाल।
ताकै आगै आइ के टटुवा फेरै बाल ।।17।।
सुन्दर जाकै बाफता षासा मलमल ढेर।
ताकै आगै चौसई आनि धरै बहुतेर ।।18।।
सुन्दर पंचामृल भषै नित प्रति सहज सुभाइ।
राकै आगै राबरी काहे कौं ले जाइ ।।19।।

---

12. सुवचन-तक्र=सुन्दर-सार्थक वचन रूप तक्र [-छाछ, जामन, जिससे दूध जमाया जाता है]। कुवचन कांजी परत ही=कष्ट कर अर्थात् निरर्थक शब्द रूप खटाई [-फिटकरी] पड़ते ही। फाटि करि जाइ=[दूध-] फट जाता है।

13-15. सुनै=सुनते ही। सुनत होत दुख द्वंद=सुनते ही दुःख[-क्लेश, द्वन्द्व] होता है। वचन सु त्रिविधि=तीन प्रकार के वचन, वचन-वाणी का तीन प्रकार से पड़ने वाला प्रभाव। फूल=पुष्प जैसे। असम<अश्म [सं०]=पत्थर जैसे। सूल< शूल [सं०]=काँटे जैसे। बचन सु···कनिष्ट=उत्तम, मध्यम और अधम रूप में तीन प्रकार के वचन। कटुक=कड़ुए। चरपरै=चटपटे। मिष्ट=मधुर।

16-19. जान प्रवीण=सुविज्ञ, समझदार [-कुशल, योग्य]। मूरष वचन उचारि= मूर्ख जब बोलता है। विद्वान् [-ज्ञानी] के समक्ष मूर्ख के द्वारा बोलना वैसा ही लगता है, जैसे तुरकी घोड़ों के बीच कोई टटुआ घोड़े को नचाए। ताजी=[ताजिकिस्तान का स्वस्थ-सुन्दर-] अश्व। तुरकिन की घुरसाल=तुर्कों [-अमीरों, राजाओं] की घुड़साल में। टटुवा=छोटे कद का देसी घोड़ा। टटुवा फैरै बाल= टटुआ जाति के छोटे [-बाल] घोड़े को फिराए [-नचाए] अथवा कोई बालक टटुआ घोड़े को नचाए। बाफता षासा मलमल ढेर=बाफता, खासा, मलमल रूप में उत्तम-सूक्ष्म और श्रेष्ठ किस्म के वस्त्रों का ढेर। चौसई=मोटे किस्म का बिछावन। पंचामृत=[मधुर-सुस्वादु] पंचामृत पेय। भषै=खाता है। ताकै आगै=उसके आगे [-समक्ष]। राबरी=गन्न के रस से बनाई गई 'राब' जो खाँड का घोल रूप जैसी होती है, और आम-आदमी द्वारा ग्रामांचल में जिसका प्रयोग होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरज के आगै कहा करै जींगणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर ताहि दिखावै पोति ॥20॥
बांणी मैं बहु भेद है सुन्दर बिबिध प्रकार।
शब्द ब्रह्म परब्रह्म कौं जानै जाननिहार ॥21॥
जा बांणी हरि कौं लिये सुन्दर वाही उक्त।
तुक अरु छन्द सबै मिलैं होइ अर्थ संयुक्त ॥22॥
जा बांणी मैं पाइये भक्ति ज्ञान बैराग।
सुन्दर ताकौं आदरै और सकल कौं त्याग ॥23॥
जा बानी हरि गुन बिना सा सुनिये नहिं कांन।
सुन्दर जीवन देषिये कहिये मृतक समान ॥24॥
रचना करी अनेक बिधि भलौ बनायौ धाम।
सुन्दर मूरति बाहरी देवल कौनैं काम ॥25॥

॥इति बचन बिवेक कौ अंग ॥17॥

20-22. जींगणा=जुगनूं, खद्योत। पोति=काँच के छोटे-छोटे मोती, पटवा जिनको गहनों में पिरोकर गूँथ देते हैं। शब्द ब्रह्म=शब्द ही ब्रह्म है। जानै जाननिहार=जानने वाले ही जान पाते हैं। जा वांणी···वाही उक्त=जो वाणी [हरि-भावना] से युक्त [-निष्ठ] हो वही वाणी [-उक्ति] है। उस उक्ति में, तुक-छन्द की पूर्ति और सन्तुलन के साथ ही, अर्थ-पूर्ण होना भी आवश्यक है। 'वाणी' का अर्थवान् होना सन्त-वाणी का अभिप्रेत रहा है।

23-25. ताकौं आदरै=उस वाणी का आदर करना चाहिए, जिसमें भक्ति-ज्ञान और वैराग्य भाव की प्रतिष्ठा हो। जा बानी हरि गुन बिना=जो वाणी हरि-गुण अर्थात् परम मूल्य से रहित है, उसे कान से भी नहीं सुनना चाहिए। मूरति बाहरी··· काम=जिस मन्दिर में देवमूर्ति ही न हो, वह देवालय अमान्य अथवा निष्प्रयोजन [-व्यर्थ] है। इसीप्रकार जिस शब्द-रचना विधान में 'हरि' [-परममूल्य] रूप अर्थ न हो, वह भी व्यर्थ समझना चाहिए, यही कथन की व्यंजना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 18 ।। अथ सूरातन कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : सन्त-बानी के 'अंगों' में 'सूरातन' का अभिप्रेत, सन्त-चेतना के केन्द्रीय भाव को अभिव्यक्त करता है। इसके अनुसार सन्त-भक्ति या आध्यात्मिकता, कायर [-पलायनवादी] मानसिकता का परिणाम नहीं है। अपितु, आध्यात्मिक जीवन जीना शीश-समर्पण की ऊर्जा से संपुष्ट जीवन संकल्प है। ऐसी विचार प्रतिबद्धता के कारण ही सन्त-बाणी के आदर्श साधु-सती और सूरमा माने गए हैं। यही बात प्रस्तुत अंग की 25 साखियों में सम्यक् रूप से व्यंजित हुई है। साथ ही इनमें यह भी बताया गया है कि परिस्थिति जन्य भयावहता [-विषमता] में शूरवीर अटल भाव से अविचलित बना रहकर प्रतिपक्ष को धराशायी करता है और ऐसा करते हुए वह अपने जीवन की बाजी तक लगा देता है। शूरवीर से भी अधिक विषम लड़ाई 'साधु' [अन्तर्बाह्य जीवन-मूल्यों के प्रतीक सन्त-सिपाही] को लड़नी पड़ती है। विचार यह है कि रण-क्षेत्र का शूरवीर तो एक निश्चित समय-सीमा तक युद्ध-मैदान में लड़ता है, किन्तु साधु उस लड़ाई को, अन्दर के काम-क्रोधादि एवं बाहर के दुष्ट-लम्पट आदि शत्रुओं से निरन्तर लड़ता रहता है। इसी क्रम में अलग से एक अंग 'साधु कौ अंग' भी है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर सूरातन करै सूरबीर सो जांनि।
चोट नगारै सुनत ही निकसि मँडै मैदांनि ।।1।।
सुन्दर सूर न गासणा डाकि पडै रण मांहि।
घाव सहै मुख सांमहां पीठि फिरावै नांहि ।।2।।

चूर्णिका : 1-2. सूरातन=शूरवीरता, पराक्रम। सूरबीर<शूरवीर=योद्धा, पराक्रमी। चोट नगारै सुनत ही=नगाड़े पर चोट पड़ने की आवाज़ सुनते ही, युद्ध-घोष सुनते ही। टिप्पणी : मध्यकाल में, विशेष रूप से राजपूत-युद्धों में और अति प्राचीन काल में भी, युद्ध सूचक नगाड़ा या बिगुल आदि युद्ध-बाजे बजाए जाते थे। निकसि मँडै मैदांनि=निकलकर मैदान में डँट जाता है। सूर न गासणा=शूरवीर गिरसना< गिरासणा, रोटिहा नहीं होता। तात्पर्य है कि योद्धा कौर [-निवाले, ग्रास] खाने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहरि संजोवा नीसरै सुणि सहनाई तूर।
सुन्दर रण मैं रुपि रहै तबहिं कहावै सूर ॥3॥
मुख तैं बैंण न उच्चरै सुन्दर सूर सुजांण।
टूक टूक जब ह्वै पडै सब को करै बषांण ॥4॥
घर मैं सब कोइ बंकुडा मारहिं गाल अनेक।
सुन्दर रण मैं ठाहरै सूरबीर कौ एक ॥5॥
सुन्दर सूरातन बिना बात कहै मुख कोरि।
सूरातन तब जाणिये जाइ देत दल मोरि ॥6॥
सुन्दर सूरातन कठिन यह नहिं हांसी षेल।
कमधज कोई रुपि रहै जबहिं होत मुख मेल ॥7॥

नहीं होता अर्थात् अधिक खाने वाला [-पेटू] नहीं होता। डाकि पडे रण मांहि= अवसर आते ही पराक्रम के साथ युद्ध में कूद भी पड़ता है। घाव सहै मुख सांमहों= बहादुरी के साथ, आमने-सामने चोट सहन करता है। पीठि फिरावै नाहि [मुहा०] =पीठ नहीं दिखाता, भय के कारण युद्ध से भागता नहीं है। **विशेष :** 'गिरासणा' शब्द राजस्थानी-हिन्दी का है, जिसका अर्थ है ग्रास, निवाला, अर्थात् खाऊ, पेटू। दादूजी ने भी 'गिरासन' शब्द का प्रयोग किया है [दे०—दा०-बा० 1, काल का अंग, सा० 5]। 3. पहरि संजोवा नीसरै=युद्ध-वेश धारण करके निकल पड़ता है। सुणि सहनाई तूर=शहनाई और तुरई [-युद्ध-वाद्यों] का शब्द सुनकर। रण मैं··· सूर=युद्ध में रुप जाता है, अथवा रण में सामना करता है, वही शूरवीर है।

4-7. उच्चरै=उच्चारण करता है। अर्थात् शूरवीर अपना पराक्रम अपने मुख से बखान नहीं करता। जब युद्ध में वह सामना करते हुए खेत रहता [वीरगति को प्राप्त होता] है, तब अन्य सभी उसका बखान [-वर्णन] करते हैं। बंकुडा=बाँका वीर, पराक्रमी। घर में=अपने क्षेत्र में, अपनी सीमा में। मारहिं गाल अनेक=अनेक [-कायर] गाल बजाते हैं, अपनी वीरता बखान करते हैं। रण मैं ठाहरै=जो युद्ध में टिकता है। सूरातन बिना···कोरि=बिना पराक्रम के ही करोड़ों बातें अपनी बहादुरी में कही जाती हैं। जाइ देत दल मोरि=शत्रु के समूह को मोड़ दे, तभी 'सूरातन' [शूरवीरता] कही जाती है। हांसी षेल [मुहा०]=शूरवीरता का होना कोई हँसी-खेल नहीं है। कमधज कोई=कोई-कोई कबन्ध [-बिना शीश के धड़]-बहादुर ही युद्ध-मैदान में डटता है। **टिप्पणी :** माना जाता है कि राजपूतों में भी राठौर वंश के वीरों को ही 'कमधज वीर' कहा जाता था। इस वंश के ही कई शूरवीर, बिना शीश-माथे के भी लड़ते-लड़ते धराशायी हुए थे। मुख मेल=आमना-सामना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

सुन्दर सूरातन किये जगत मांहि जस होइ।
सीस समर्पै स्याम कौं संक न आनै कोइ ॥8॥
सीस उतारै हाथ करि संक न आनै कोइ।
ऐसै मंहगे मोल का सुन्दर हरि रस होइ ॥9॥
सुन्दर तन मन आपनौ आवै प्रभु कै काम।
रण मैं तें भाजै नहीं करै न लौंन हराम ॥10॥
सुन्दर दोऊ दल जुरैं अरु बाजै सहनाइ।
सूरा कै मुख श्री चढै काइर दे फिसकाइ ॥11॥
सुन्दर हय हींसैं जहां गय गाजैं चहुं फेर।
काइर भागै सटकदे सूर अडिग ज्यौं मेर ॥12॥
सुन्दर धरती धडहडै गगन लगै उडि धूरि।
सूरबीर धीरज धरै भागि जाइ भकभूरि ॥13॥
सुन्दर बरछी झलहलैं छूटै बहु दिसि बांण।
सूरा पडै पतंग ज्यौं जहां होइ घंमसांण ॥14॥

8-10. जस=यश। सीस समर्पै स्याम कौं=[-श्याम] स्वामी को शीश-समर्पण [-शीशदान] में शूरवीर आशंका नहीं करता। सीस उतारै हाथि करि=अपने हाथ से अपना शीश उतारता है। **टिप्पणी :** बहादुरी के साथ अपना सिर उतारकर दिखाने वाला, भक्ति के क्षेत्र में अपना अहंकार शमन करने वाला शूरवीर ही **'हरि-रस'** का अधिकारी हो सकता है। अर्थात् भक्ति [-अध्यात्म]-मार्ग पर चलना कायरों का काम नहीं। महंगे मोल=ऊँचे मूल्य का। प्रभु के काम=प्रभु-सेवा में, महान् उद्देश्य की पूर्ति केलिए। रण मैं···भाजै नहीं=युद्ध-मैदान से पलायन नहीं करता। करै न लौंन हराम [मुहा०]=नमक-हराम अर्थात् कृतघ्नता नहीं करता, अपितु नमक-हलाली करके दिखाता है।

11-14. दोऊ दल जुरैं=दो सेना-दल आमने-सामने शत्रु-भाव से खड़े हों। सहनाइ=शहनाई, रणभेरी। सूरा कै मुख श्री चढै [कहा०]=सच्चे शूरवीर के मुख पर प्रसन्नता की शोभा-छवि उभरती है। काइर दे फिसकाइ=कायर फिस्स होकर ताक-झाँक करता है। हय हींसैं=घोड़े हिनहिनाते हों। गय गाजैं=हाथी चिंघाड़ते हों। काइर भागै सटकदे=कायर सटकते हुए भाग जाना चाहता है। सूर···मेर=शूरवीर सुमेरु पर्वत की तरह अटल अडिग बना रहता है। धरती धडहडै=धरती धड़धड़ाहट करती या थर्राती हो। गगन लगै उडि धूरि=आकाश तक [-सेना के अग्रसर होने या प्रयाण से उड़ी-] धूलि छाई हो। सूरबीर धीरज धरै=युद्ध की विषम परिस्थिति में भी शूरवीर धैर्य धारण किए रहता है। भकभूरि=भूरि+भक अर्थात् अधिक खाने वाला, पेटू। झलहलैं=चमचमाहट करती हों। सूरा पडै पतंग ज्यौं···घमसांण=जहाँ घमासान युद्ध हो रहा हो, वहाँ शूरवीर, पतंगे की तरह झपटकर पहुँचता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बाढाली बहैं होइ कडाकडि मार।
सूरबीर सनमुख रहैं जहां षलक्कैं सार ।।15।।
सुन्दर देषि न थरहरै हहरि न भागै बीर।
गहर बडे घंमसांण मैं कहर धरै को धीर ।।16।।
सुन्दर सोई सूरमा लोट पोट ह्वै जाइ।
वोट कछू राषै नहीं चोट मुहें मुंहं षाइ ।।17।।
सुन्दर सूरातन करै छाडै तन कौ मोह।
हबकि थबकि पेलै पिसण जाइ चषांवै लोह ।।18।।
सुन्दर फेरै सांगि जब होइ जाइ बिकराल।
सनमुख बाहै ताकि करि मारै मीर मुछाल ।।19।।
सुन्दर सोभै सूरिवां मुख परि बरिषै नूर।
फौज फटावै पलक मैं मार करै चकचूर ।।20।।
सुन्दर षैंचि कमान कौं भरि करि मारै बांन।
जाकै लागै ठौर जिहि लेकरि निकसै प्रांन ।।21।।

---

15. बाढाली बहैं=बाढ़ [-धार]+आली [-वाली] अर्थात् तलवारें चल रही हों। कडाकडि मार=कटाकट मार-काट हो रही हो। षलक्कैं सार=जहाँ फौलादी अस्त्र-शस्त्र चल रहे हों।

16-18. थरहरै=काँपता है। हहरि न भागै वीर=हरहराकर, भौचक्का होकर वीर भागता नहीं है। गहर घंमसांण मैं कहर=[गहरे-गम्भीर-भीषण-]घमासान युद्ध में कहर मचा हो अर्थात् घोर लड़ाई चल रही हो। धरै को धीर=ऐसे में कौन शूरवीर धैर्य धारण कर, युद्ध से विरत बना रहेगा? लोटपोट ह्वै जाइ=धराशायी होता है। वोट कछू राषै नहीं=कोई ओट-अवरोध बीच में नहीं रहने देता। चोट मुहें मुंहं षाइ=सम्मुख ही चोट सहन करता है। अर्थात् पीठ नहीं दिखाता। सूरातन करै=जो शूरवीरता करता है, करना चाहता है, उसे शरीर का मोह छोड़ देना चाहिए। हबकि थबकि पेलै पिसण=शत्रु [-काम-क्रोधादिक] को उलट-पुलट कर, कोल्हू की घाणी की तरह पेर देता है या भगा देता है। जाइ चषांवै लोह=लोहे[-तलवार]का मजा चखाता है अर्थात् तलवार [-अस्त्र-शस्त्र] के वार से घात करता है।

19-21. फेरै सांगि=जब तलवार घुमाता है। होइ जाइ बिकराल=भयंकर-पराक्रमी रूप में दिखाई देता है। बाहै=मारता है। मारै मीर मुछाल=बड़े-बड़े मूंछधारी [मीरों-] योद्धाओं को पछाड़ता है। नूर=प्रकाश, शोभा, चमक, यश। फौज फटावै पलक मैं=क्षण भर में फौज को विदीर्ण कर डालता है। मार करै चकचूर=मारकर चकनाचूर कर डालता है। षैंचि कमान कौं=कमान को खींचकर, संधान करके। लेकरि निकसै प्रांन=वह प्राण लेकर निकलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सील सनाह करि तोष दियौ सिर टोप।
ज्ञान षडग पुनि हाथ लै कीयौ मन परि कोप ।।22।।
सुन्दर निस दिन साधु कै मन मारन की मूठि।
मनकै आगै भागि करि कबहुं न फेरै पूठि ।।23।।
मारै सब संग्राम करि पिसुनहु जे घट मांहि।
सुन्दर कोऊ सूरमा साधु बराबर नांहि ।।24।।
साधु सुभट अरु सूरमा सुन्दर कहे बषांनि।
कहन सुनन कौं और सब यह निश्चय करि जांनि ।।25।।

।। इति सूरातन कौ अंग ।।18।।

22-25. सील सनाह करि=शील [-चर्या] को प्राण-रक्षक लोह-कवच बनाना चाहिए। तोष-टोप=सन्तोष को शिरस्त्राप बनाना चाहिए। ज्ञान षडग=ज्ञान रूप तलवार। कीयौ मन परकोप=तब मन रूप शत्रु पर क्रोध किया। मूठि=मुट्ठी, संकल्प, दाँव। अर्थात् तलवार की मूंठ हाथ में रहती है। पूठि=पीठ। संग्राम करि=संघर्ष करके। पिसुनहु जे घट मांहि=जो शत्रु घट [-हृदय] के भीतर [भी] हैं। सूरमा साधु=शूरवीर साधु, सन्त-सिपाही। साधु सुभट···बषांनि=साधु, योद्धा और शूरवीर ये इस अंग में वर्णित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 19 ।। अथ साधु कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : सन्त-विचार की दृष्टि से यह 'साधु अंग' सन्त-बानी का हृदय है। प्रस्तुत अंग की 60 साखियों में सुन्दरदास सन्त-सत्संग के द्वारा, मनुष्य जीवन में लक्षित परम मूल्य या परम पद की ओर अग्रसर होने अथवा बाह्य आकर्षणों में आबद्ध चेतना को रूपान्तरित करने की प्रेरणा देते हैं। भारतीय मनीषा के विकास में सत्संग-परम्परा, चेतना को अग्रसर बनाए रखने में, मुख्य भूमिका निभाती रही है। सत्संग में विचारों की सहज-स्वाभाविक [-शुद्ध पवित्र] भावना का ग्रहण, नदी-जल-प्रवाह में से आचमन करते हुए, ताज़गी एवं शक्ति-ग्रहण करने के रूप में, युगों से सम्मान्य बना रहा है। सत्संग के माहौल में मनुष्य की सदाचार सम्बन्धी पात्रता एवं हार्दिक पवित्रता की निरख-परख होती-रहती है। अनेक उदाहरणों, रूपकों और उपमानों के द्वारा साधु-सत्संग की महिमा को प्रतिपादित करते हुए रचनाकार ने सत्संग द्वारा 'हरि' रूप परम पद [-परम मूल्य] की प्राप्ति को ही साधु का परम लक्ष्य बताया है। मूल पाठ अवलोकनीय है—

साषी : संत समागम कीजिए तजिये और उपाइ।
सुन्दर बहुते उद्धरे सत संगति मैं आइ ।।1।।
सुन्दर या सतसङ्ग मैं भेदा भेद न कोइ।
जोई बैठै नाव मैं सो पारंगत होइ ।।2।।
सुन्दर जो सतसङ्ग मैं बैठै आइ बराक।
सीतल और सुगन्ध ह्वै चन्दन की ढिग ढाक ।।3।।

चूर्णिका : 1-3. संत समागम = सन्तों का सत्संग, साथ। उपाइ=उपाय, साधन। सत संगति=सत् भाव की संगति। सतसंग···कोइ=सत्संग में भेद-अभेद नहीं होता। अर्थात् ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का अन्तर [-फ़र्क़] नहीं किया जाता, समान भाव ही प्रधान रहता है। जोई···पारंगत होइ=जो सत्संग रूप नाव में आरूढ़ होता है, वही पार उतर जाता है। **टिप्पणी :** सत्संग का प्रभाव अमोघ [-अवश्यंभावी] बताया गया है। 'पारंगत' शब्द का प्र्योग महत्त्वपूर्ण है। बराक=बलाक, बगुला, अर्थात् [-अहंकारी-अभिमानी] दुष्ट। चन्दन की ढिग ढाक [उदा०]=सत्संग रूप चन्दन के निकट तुच्छ पलाश की लकड़ी भी शीतल और सुगन्धित हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर या सतसङ्ग की महिमा कहिये कौंन।
लोहा पारस कौं छुवै कनक होत है रौंन ॥4॥
जन सुन्दर सतसङ्ग मैं नीचहु होत उतंग।
परै क्षुद्र जल गंग मैं उहै होत पुनि गंग ॥5॥
सुन्दर या सतसङ्ग मैं शब्दन कौ औगाह।
गोष्टि ज्ञान सदा चलै जैसें नदी प्रवाह ॥6॥
सुन्दर जौ हरि मिलन की तौ करिये सतसङ्ग।
बिना परिश्रम पाइये अविगति देव अभंग ॥7॥
जौ आवै सतसङ्ग मैं ताकौ कारय होइ।
सुन्दर सहजै भ्रम मिटै संसय रहै न कोइ ॥8॥
संतनि ही तें पाइये राम मिलन कौ घाट।
सहजैं ही षुलि जात है सुन्दर हृदय कपाट ॥9॥
संत मुक्त के पौरिया तिनसौं करिये प्यार।
कूंची उनके हाथ है सुन्दर षोलहिं द्वार ॥10॥

---

4. महिमा=प्रभाव, गुणवत्ता, अमोघता। कनक होत है रौंन=सुन्दर-रमणीय स्वर्ण बन जाता है।
5. नीचहु होत उतंग=नीच [-हीन भाव वाला] भी ऊँचा [-उच्चाशय] हो जाता है। क्षुद्र जल=गन्दा [-तुच्छ] नदी-नालों का जल। उहै होत पुनि गंग=वह भी गंगा जल ही हो जाता है।
6-8. शब्दन कौ औगाह=शब्दों [-वचनों] का, श्रवण-आस्था और [मनन-] चिन्तन रूप अवगाहन। गोष्टि-ज्ञान सदा चलै······प्रवाह=सत्संग-गोष्ठी में स्वच्छ जल [-ग्रहणीय विचार-]तत्त्व, नदी-प्रवाह की तरह, निरन्तर प्रवाहित होता-रहता है। बिना परिश्रम···अभंग=सत्संग में, बिना परिश्रम के ही अविनाशी अखंड परमात्मा की अनुभूति हो जाती है। ताकौ कारय होइ=उसका कार्य-सिद्ध होता है।
9-10. राम मिलन कौ घाट=राम [-परम लक्ष्य, परम मूल्य] मिलन की [घाट-] स्थिति मिल जाती है। सहजै···हृदय कपाट=हृदय के द्वार [-पटल], प्रज्ञा-चक्षु सहज ही खुल जाते हैं, उन्मीलित हो जाते हैं। संत मुक्त के पौरिया=सन्त-जन मुक्ति [-चेतना का सभी बन्धन-आग्रहों से मुक्ति का अनुभव] के द्वारपाल [-संरक्षक] होते हैं। अर्थात् सन्त किसी प्रकार भी बन्धन या परतन्त्रता के पक्षधर नहीं होते। कूंची उनके हाथ है=ऊँचे महल [अध्यात्म-आवास] के द्वार [-अवरोधक पर्त या तत्त्व] खोलने केलिए द्वारपाल रूप सन्तों के ही पास मर्म [-रहस्य] रूप चाबी रहती है। षोलहिं द्वार=द्वार अनावृत करते हैं, अर्गला उद्घाटित करते हैं, अवरोधों को दूर करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर साधु दयाल हैं कहैं ज्ञान संमुझाइ।
पात्र बिना नहिं ठाहरै निकसि निकसि करि जाइ ।।11।।
सुन्दर साधु सदा कहैं भक्ति ज्ञान बैराग।
जाकै निश्चय ऊपजै ताकै पूरन भाग ।।12।।
संतनि कै यह बनिज है सुन्दर ज्ञान बिचार।
गाहक आवै लेन कौं ताही के दातार ।।13।।
संतनि कै सो बस्तु है कबहूं षूटै नांहि।
सुन्दर तिनकी हाट तें गाहक लै लै जांहि ।।14।।
साह रमइया अति बडा षोलै नहीं कपाट।
सुन्दर बांन्यौटा किया दीन्ही काया हाट ।।15।।
अपना करि बैठाइया कीया बहुत निहाल।
जो चाहै सो आइल्यौ सुन्दर कोठीवाल ।।16।।
सुन्दर आये संत जन मुक्त करन कौं जीव।
सब अज्ञान मिटाइ करि करत जीव तें सीव ।।17।।

---

11. दयाल=दयालु। पात्र बिना नहिं ठाहरै=पात्र [-बर्तन, योग्यता] के बिना वस्तु [द्रव्य, ज्ञान तत्त्व] ठहर नहीं पाता। जाकै निश्चय ऊपजै=जिसके हृदय में निश्चय [आस्था-] भाव जागता है।

12-13. बनिज=वाणिज्य, व्यापार, लेन-देन। ज्ञान विचार=ज्ञान-तत्त्व का व्यापार। गाहक <ग्राहक [सं०]=चाहक, जिज्ञासु, अभिलाषी, इच्छुक। दातार=दाता, देने वाला।

14-16. वस्तु=विपणन सामग्री। कबहूं षूटै नांहि=कभी घटती-कम नहीं होती। हाट तें=बाज़ार [-संसार रूप हाट] से। साह रमइया=राम रूप शाह, सब वस्तुओं का मालिक-व्यापारी, परमात्मा। कपाट=द्वार, वस्तु-तत्त्व के पर्दे [-अवरोध]। बांन्यौटा किया=छोटा-सा [लघु] वाणिज्य किया। अथवा रचनाकार सुन्दरदास अपने को छोटा-सा वणिक 'बांन्यौटा' कहते हैं, जिसने [काया-] हाट रूप शरीर में वाणिज्य किया है। अर्थात् व्यापार करके शुभ कर्म रूप वस्तु खरीदी है। कीया-निहाल=निहाल कर दिया, कृतकृत्य कर दिया। कोठीवाल=कोठी वाला, भरे पूरे भण्डार वाला। **टिप्पणी :** साखी 13-16 तक महाजनी वृत्ति के आधार पर, अध्यात्म-क्षेत्र के लेन-देन अर्थात् आत्मा-परमात्मा रूप वस्तु [अर्थात् शुभ कर्मों के नियोजन] को व्यंजित किया है।

17. आये संत जन=सन्त-लोग अपनी सोद्देश्य सांसारिक यात्रा पर आते हैं। करत जीव तें सीव=जीव को सीमाओं [बन्धनों] से मुक्त करके, 'अहम् ब्रह्मास्मि' के रूप में 'शिव' [-परमपद, परम चेतना] में प्रतिष्ठित कर देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै सब कौ भेद।
बचन अनेक प्रकार के प्रगट कहे जे बेद ॥18॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्गुन भक्ति।
प्रीति लगै परब्रह्म सौं तब तें होइ बिरक्ति ॥19॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्मल बुद्धि।
जानै सकल बिबेक करि जीव ब्रह्म की सुद्धि ॥20॥
जन सुन्दर सतसंङ्ग तें पावै दुर्लभ योग।
आतम परमातम मिलै दूरि होहिं सब रोग ॥21॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै अद्वय ज्ञान।
मुक्ति होय संसय मिटै पावै पद निर्बान ॥22॥
सुन्दर सब कछु मिलत है समये समये आइ।
दुर्लभ या संसार मैं संत समागम थाइ ॥23॥
मात पिता सब ही मिलै भइया बंधु प्रसंग।
सुन्दर सुत दारा मिलै दुर्लभ है सतसंग ॥24॥
राज साज सब होत है मन बंछित हू षाइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन बड़े भाग तें पाइ ॥25॥
लोक प्रलोक सबै मिलै देव इन्द्र हू होइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन क्यौं करि पावै कोइ ॥26॥

---

18. भेद=रहस्य, मर्म ।बचन···जे बेद=अनेक प्रकार के गूढ़ सैद्धान्तिक वचनों का मर्म सत्संग में उद्‌घाटित हो जाता है।

19. उपजै निर्गुन भक्ति=सत्संग के परिणाम स्वरूप निर्गुण-भक्ति का उदय होता है। प्रीति लगै परब्रह्म सौं=परम लक्ष्य [-परम गन्तव्य, परम मूल्य] के प्रति अडिग आस्था हो जाती है। बिरक्ति=अनासक्ति।

20-22. निर्मल बुद्धि=शुद्ध-सात्विक चेतना। जीव ब्रह्म की सुद्धि=जीव-ब्रह्म की सात्विकता को सत्संग-विवेक के द्वारा जाना जा सकता है। दुर्लभ योग=कठिन [दुष्प्राप्य] योग-सिद्धि। रोग=व्याधि [-भ्रान्ति, क्लेशादि]। अद्वय ज्ञान=अद्वैत ज्ञान। मुक्ति होय संसय मिटै=मुक्ति-भाव के अनुभव में संशय समाप्त हो जाता है। पद निर्बान=निर्वाण पद, परम लक्ष्य, परम मूल्य।

23-25. समये समये=समय-समय पर, शनैः शनैः। दुर्लभ···समागम थाइ [गुजा०]=इस संसार में सब कुछ मिल जाता है, किन्तु सन्त-समागम दुष्प्राप्य बना-रहता है। भइया बंधु प्रसंग=भाई-बान्धव सम्बन्ध। सुत दारा=पुत्र-स्त्री। राज साज=राज-कार्य। मन बंछित=मनोवांछित।

26. लोक प्रलोक मिलै=लोक-परलोक के सुखों की प्राप्ति। क्यौं करि=किसप्रकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा शिव कै लोक लौं ह्वै बैकुंठहु बास।
सुन्दर और सबै मिलै दुर्लभ हरि के दास ॥27॥
राग द्वैष तें रह्ति हैं रहित मान अपमान।
सुन्दर ऐसै संतजन सिरजे श्री भगवान ॥28॥
काम क्रोध जिनि कै नहीं लोभ मोह पुनि नांहिं।
सुन्दर ऐसै संतजन दुर्लभ या जगु मांहिं ॥29॥
मद मत्सर अहंकार की दीन्ही ठौर उठाइ।
सुन्दर ऐसै संतजन ग्रंथनि कहे सुनाइ ॥30॥
पाप पुन्य दोऊ परै स्वर्ग नरक तें दूरि।
सुन्दर ऐसै संतजन हरि कैं सदा हजूरि ॥31॥
आयें हर्ष न ऊपजै गयें शोक नहिं होइ।
सुन्दर ऐसै संतजन कोटिनु मध्ये कोइ ॥32॥
कोई आइ स्तुति करै कोइ निंदा करि जाइ।
सुन्दर साधु सदा रहै सबही सौं सम भाइ ॥33॥
कोऊ तौ मरख कहै कोऊ चतुर सुजांन।
सुन्दर साधु धरै नहीं भली बुरी कछु कांन ॥34॥
कबहूं षंचामृत भषै कबहूं भाजी साग।
सुन्दर संतनि कै नहीं कोऊ राग बिराग ॥35॥
सुखदाई सीतल हृदय देषत सीतल नैंन।
सुन्दर ऐसै संतजन बोलत अमृत बैंन ॥36॥

---

27. ह्वै बैकुंठहु बास=बैकुण्ठ-वास [भी] हो जाता है। दुर्लभ हरि के दास=भगवान् के भक्त होना या सन्त-सत्संग पाना दुष्प्राप्य है।

28-30. रहित=बिना। सिरजे श्री भगवान=स्वयं परमात्मा ने बनाए हैं। अर्थात् सन्तों का विलक्षण स्वरूप गढने में परमात्मा ने स्वयं रुचि ली है। दुर्लभ या जग मांहिं=इस संसार में दुष्प्राप्य हैं। मद-मत्सर=प्रमाद-आलस्य। दीन्ही ठौर उठाइ=उस स्थान को ही, उस अंग को ही, जहाँ अहंकारादि दुर्गुण ठहरते हैं, उठा दिया है। अर्थात् सन्त अहंकार के मूलाधार को ही समाप्त कर देते हैं। ग्रंथनि=शास्त्र-ग्रन्थों में।

31-34. दोऊ परै=दोनों से परे, द्वन्द्व से परे। हजूरि=सन्मुख, निकट, प्रत्यक्ष। कोटिनु मध्ये कोइ=करोड़ों में कोई। सम भाइ=समान भाव से, समता में। साधु धरै··· कछु कांन=सच्चा साधु निन्दा और स्तुति दोनों को ही कानों में [-ध्यान में] धारण नहीं करता अर्थात् इनको सुनता ही नहीं।

35-36. भाजी साग=शाक-पात, सामान्य-तुच्छ समझा जाने वाला भोजन। राग-बिराग =आसक्ति और विरक्ति भाव। सुखदाई सीतल हृदय=[सन्तों का-] शान्त-शीतल हृदय सुखदायक बना रहता है। अमृत बैंन=अमृत वचन, अमृत के समान कल्याण-कर वाणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमावंत धीरज लिये सत्य दया संतोष।
सुन्दर ऐसै संतजन निर्भय निर्गत रोष ।।37।।
द्वंद कछू ब्यापै नहीं सुख दुख एक समान।
सुन्दर ऐसै संतजन हृदै प्रगट दृढ ज्ञान ।।38।।
घर बन दोऊ सारिषें सबतें रहत उदास।
सुन्दर संतनि कै नहीं जिवन मरन की आस ।।39।।
रिद्धि सिद्धि की कामना कबहूं उपजै नांहिं।
सुन्दर ऐसै संतजन मुक्त सदा जग मांहिं ।।40।।
सूधि मांहिं बरतें सदा और न जानहिं रंच।
सुन्दर ऐसै संतजन जिनि कै कछु न प्रपंच ।।41।।
सदा रहै रत राम सौं मन मैं कोउ न चाह।
सुन्दर ऐसै संतजन सबसौं बेपरवाह ।।42।।
धोवत है संसार सब गंगा मांहें पाप।
सुन्दर सन्तनि के चरण गंगा बंछै आप ।।43।।
ब्रह्मादिक इंद्रादि पुनि सुन्दर बंछहिं देव।
मनसा बाचा कर्मना करि सन्तनि की सेव ।।44।।

---

37. क्षमावंत=क्षमाशील। निर्गत रोष=क्रोध रहित।

38-40. द्वंद ब्यापै नहीं=सन्त होने पर द्वन्द्व [-दो विरोधी प्रभाव] कभी विकृति या क्लेश उत्पन्न नहीं करता। दृढ़ ज्ञान=ज्ञानावस्था में अटल। घर बन···उदास=सच्चे सन्तों की चेतना, घर [-संसार] और बन [-उदासी, अरण्य जीवन] इन दोनों में ही समान [-सन्तुलित] बनी रहती है। रिद्धि+सिद्धि=ऋद्धि सिद्धि अर्थात् चमत्कारिक सुख-समृद्धि एवं सिद्धि।

41-44. सूधि मांहि बरतें सदा=सदा ऋजु [-सीधा-सादा]-मार्ग पर आचरण करते हैं। रंच=थोड़ा भी। प्रपंच=छल कपट, दुराव-छिपाव। रत=लगे हुए। चाह=कामना, आकांक्षा। बेपरवाह=निश्चिन्त, अनासक्त, मस्त। पाप=गन्दगी, दोष असामाजिक वृत्ति। सन्तनि के···बंछै आप=गंगा सन्तों के चरणों की [वाञ्छा-] कामना बनाए रखती है। अर्थात् गंगा के समान पवित्र चेतना वाले अथवा ज्ञान-गंगा प्रवाहित है जिनके हृदयों में, ऐसा सन्त-चेतना रूप गंगा-प्रवाह। बंछहिं देव=देवता भी कामना करते हैं। सेव=सेवा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कृष्ण प्रगट कहै मैं धारी यह देह।
सन्तनि कै पीछै फिरौं सुद्ध करन कौं येह ॥45॥
सन्तनि की महिमा कही श्रीपति श्रीमुख गाइ।
तातें सुन्दर छाडि सब सन्त चरन चित लाइ ॥46॥
संतनि की सेवा किये श्रीपति होहि प्रसन्न।
सुन्दर भिन्न न जानिये हरि अरु हरि के जन्न ॥47॥
सुन्दर हरि जन एक हैं भिन्न भाव कछु नांहिं।
सन्तनि मांहें हरि बसै सन्त बसै हरि मांहिं ॥48॥
सन्तनि की सेवा किये हरि की सेवा होइ।
तातें सुन्दर एक ही मति करि जानै दोइ ॥49॥
सन्तनि की सेवा किये सुन्दर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लडाइये अति सुख पावै बाप ॥50॥
सन्तनि कौं कोउ दुःख दे तब हरि करै सहाइ।
सुन्दर रांभै बाछरा सुनि करि दौरै गाइ ॥51॥

45-46. कृष्ण प्रकट कहै=प्रत्यक्ष अवतार श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि मैं सन्तों के लिए [धर्म-धारी सन्तों की रक्षा केलिए] देह-धारण करता हूँ। देखिए—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥'—4/8,

श्रीपति=लक्ष्मीपति विष्णु अर्थात् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण। श्री मुख=सुन्दर मुख [-प्रामाणिक शास्त्रोक्त विधि] से। चित लाइ=चित्त लगाकर।

47-48. भिन्न न जानिये···हरि के जन्न=हरि और हरि-जन पृथक् नहीं होते, तन्मय भाव के कारण, हरिजन हरि से एकमेक बने रहते हैं। संतनि माहें···हरि माहिं=सन्तों के हृदय में परमात्मा निवास करता है और लोक-रक्षण रूप [साधु-रक्षा] लक्ष्य के कारण परमात्मा के हृदय में सन्त निवास करते हैं। वास्तव में जिनकी चिन्ता सर्वाधिक रहती है, वही हृदय में निवसित माना जाता है।

49-51. हरि की सेवा होइ=परमात्मा की सेवा है। क्योंकि सन्त प्रत्यक्ष प्राण-आत्मधारी हैं और उच्चाशय [-उदाराशय-समताभाव] वाले होते हैं। आप=स्वयं परमात्मा। जाकौ पुत्र···बाप [दृष्टा०]=किसी के शिशु-पुत्र को प्यार [-दुलार] करो तो इससे उसका पिता सहज ही प्रसन्न होता देखा-जाता है। रांभै बाछरा···दौरै गाइ [दृष्टा०]=जन की पुकार पर भगवान् स्वयं दौड़े आते हैं, जैसे गऊ-वत्स जब रँभाता है तो गाय स्वयं दौड़ी चली-आती है। भक्त-भगवान् सम्बन्ध एवं पुत्र-माँ सम्बन्ध व्यंजित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठसठ तीरथ जौ फिरै कोटि यज्ञ व्रत दांन।
सुन्दर दरसन साधु कै तुलै नहीं कछु आंन ॥52॥
सन्तनि ही कौ आसरौ संतनि कौ आधार।
सुन्दर और कछू नहीं है सतसंगति सार ॥53॥
पावक जारै नीर कौं नीर बुझावै आगि।
सुन्दर बैरी परस्पर सज्जन छूटै भागि ॥54॥
उलवा मारै काग कौं काक सु हनै उलूक।
सुन्दर बैरी परस्पर सज्जन हंस कहूंक ॥55॥
सुन्दर कोऊ साध की निंदा करै सु नीच।
चल्यौ अधोगति जाइ है परै नरक कै बीच ॥56॥
सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै लगार।
जन्म जन्म दुख पाइ है तामहिं फेर न सार ॥57॥
सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै कपूत।
ताकौं ठौर कहूं नहीं भ्रमत फिरै ज्यौं भूत ॥58॥
सन्तनि की निंदा कियें भलौ होइ नहिं मूलि।
सुन्दर बार लगै नहीं तुरत परै मुख धूलि ॥59॥
सन्तनि की निंदा करै ताकौ बुरौ हवाल।
सुन्दर उहै मलेछ है वहै बडौ चण्डाल ॥60॥

॥ इति साधु कौ अंग ॥19॥

52-54. दरसन साधु···आंन=साधु-दर्शन के समान पुण्य-फल,तीर्थाटन और यज्ञ-व्रतादि से भी नहीं होता। आसरौ=अवलम्ब, आधार। सतसंगति सार=जीवन-मूल्यों का सार सत्संगति है। बैरी परस्पर=पारस्परिक वैर भाव वाले। सज्जन छूटै भागि=साधु[-सदाशयी] वैर भाव से भागकर निकलता है।

55-57. उलवा···उलूक [दृष्टा॰]=उल्लू काक पर घात करता है और कउआ उल्लू पर झपटता है, यह पारस्परिक बैर का उदाहरण है। सज्जन हंस कहूंक=हंस रूप सज्जन कहीं-कहीं होते हैं। इनका किसी से विरोध नहीं होता। नीच=दुष्ट, नराधम। नरक-बीच=नरक वास, अधोगति अर्थात् दुःखदायी जीवन। निंदा करै=बुराई करता है।

58-60. कपूत=कुपुत्र, दुष्ट सन्तान, जो अपने माता-पिता के गौरव को नष्ट करती है। भ्रमत फिरै ज्यौं भूत[उदा॰]=भूत-प्रेत की तरह अस्थिर भाव[-चंचल वृत्ति के कारण]मारा-फिरता है। मूलि=मूल में, परिणाम में। मुख धूलि[मुहा॰]=मुख पर धूल अर्थात् अपमान। ताकौ बुरौ हवाल=उसका बुरा हाल [-परिणाम] होता है। उहै म्लेछ=वही मलेच्छ [-नीच] है। चण्डाल, =चाण्डाल दुष्टकृत्य करने वाला, दुष्ट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 20 ॥ अथ बिपर्ज्जय कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग के प्रतिपाद्य एवं प्रतिपादन शैली सम्बन्धी परिचय के लिए 'सवैया ग्रन्थ' का 'विपर्यय कौ अंग' [-22] भी द्रष्टव्य है। यहाँ इन 50 साखियों में प्राय: उन सवैयों का ही सार निरूपित है। इस अंग की साखियों में 'त्रिपर्य' [-उलटवाँसी] केलिए 'उलटी बात', 'उलटी रीति', 'उलटौ ज्ञान', 'उलटी गंग', 'उलटी कही' आदि प्रयोग देखने को मिलते हैं। यहाँ उलट या उलटा विशेषण के द्वारा परम्परा [-रूढ़ि, लीक] से हटकर अपनी बात कहना तो स्पष्ट है ही, सुन्दरदास ने निजी अनुभव से अनेक नए सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग करके शैली [-पद्धति] की प्रयोग-क्षमता को और अधिक समृद्ध किया है। दोहे [-साखी] जैसे लघु छन्द में प्रतीक-संकेतों की दुरूहता एवं अर्थ-सामर्थ्य को बखूबी निर्वाहित करने में रचनाकार की सिद्धहस्तता स्वयं मुखर है। असम्भव प्रमाणों, प्रतीकों की विरोधी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के माध्यम से अपना अभिप्रेत अभिव्यंजित करा देना रचनाकार की कुशलता का ही द्योतक है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि सुन्दरदास उलटवाँसी शैली प्रयोग में, कबीर के बाद दूसरे महत्त्व-पूर्ण हस्ताक्षर हैं। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

दोहा [साषी] :

सुन्दर कहत बिचारि करि उलटी बात सुनाइ।
नीचे कौं मूंडी करै तब ऊंचे कौं पाइ ॥1॥

चूर्णिका : 1. कहत बिचारि करि उल्टी बात सुनाइ=विचारपूर्वक जो उलटी बात कही जाती है, वह साभिप्राय होती है। ऐसी ही साभिप्राय 'उलटी बात' [=उलट-वाँसी] सुन्दरदास कहते हैं। नीचे कौं मूंडी करै [मुहा०]=नीचे को सिर करे, शीर्षासन करे, योग साधे। अथवा सिर झुकाए, विनम्र हो, सिर [-अहं] नीचा करे [तभी—]। तब ऊँचे कौं पाइ=तब ही-ऊपर को पा सकते हैं, ऊर्ध्व गति हो सकती है, ऊँचा पद [-अवस्था या आत्मानुभव रूप उच्च गति] प्राप्त हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धा तीनौं लोक कौं सुन्दर देषै नैंन।
बहिरा अनहद नाद सुनि अति गति पावै चैंन ॥2॥
नकटा लेत सुगन्ध कौं यह तौ उलटी रीति।
सुन्दर नाचै पंगुला गूंगा गावै गीति ॥3॥
कीडी कुंजर कौं गिलै स्याल सिंह कौं षाइ।
सुन्दर जल तें माछली दौरि अग्नि मैं जाइ ॥4॥
समंद समानौं बून्द मैं राई मांहें मेर।
सुन्दर यह उलटी भई सूर्य कियौ अन्धेर ॥5॥

---

2. अन्धा=दृष्टिहीन, जिसकी बाह्य दृष्टि [-बाह्य प्रसार अवरुद्ध होकर अन्त:दृष्टि [-प्रज्ञा चक्षु] खुल जाते हैं, वही तीनों लोकों को [-अपनी सूक्ष्म दृष्टि से] देख सकता है। तीनों लोक अर्थात सृष्टि का रहस्य। इसीप्रकार 'बहिरा' [-बधिर] जो श्रवणेन्द्रिय अर्थात् बाह्य शोर-गुल भरी कर्ण-शक्ति से विरत होकर, अंतर्मुखी श्रवणेन्द्रिय को उद्घाटित कर लेता है, वही 'अनहदनाद' सुनने की सामर्थ्य रखता है। अतिगति पावै=वह अति विशिष्ट अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

3. नकटा=बिना नाक वाला, साधना में बाह्य घ्राण-वृत्ति को अनुशासित करके अतर्मुखी करने वाला। 'बिन नाक के सुगन्धि लेना' विसंगत या विरोधमूलक कथन ही 'उलटी रीति' [-पद्धति] है। पंगुला=पंगुल, लँगड़ा, जिसकी [पग-] गति बाहरी प्रपंच में दौड़ने वाली न रहकर अन्तर्मुखी हो जाती है, वही अन्त:स्थ बना रहकर आनन्द भाव में नृत्य करता-रहता है। गूंगा=मूक, जिसकी वैखरी वाणी, अर्थात् बाहरी लोक-व्यवहार के शब्द अनुशासित [-सीमित] हो जाते हैं, वही 'पश्यन्ती' अवस्था के साक्षात्कार में तल्लीन हुआ, आनन्द भाव में गीत गाता-रहता है, आन्तरिक राग में तल्लीन बना-रहता है।

4. कीरी=चींटी, सूक्ष्म [वृत्ति-] बुद्धि, ब्रह्मानन्दमयी [-बुद्धि] वृत्ति। कुंजर=हाथी, काम-वासना या अहंकार का प्रतीक गज। स्याल=शृगाल, जागरूक जीवात्मा, जो प्रपंच या प्रवाह में काल रूप शेर से डरती थी, चैतन्य होनेबोध [होने-] पर वही, 'सिंह' [-काल, क्रोध] को खाने [-नष्ट] करने अथवा उसके [डर-] प्रभाव को समाप्त करने में लग जाती है। यही शृगाल के द्वारा सिंह को खाया जाना है। जल=पानी, माया प्रभाव। माछली=मछली, [अज्ञान-] मोह-जल में पड़ी जीवात्मा [प्रसन्न बनी रहती थी], वही फिर बोध-काल में 'अग्नि' [-ज्ञानाग्नि, ब्रह्माग्नि] में लीन बनी रहकर सुख का अनुभव करने लग-जाती है।

5. समंद=समुद्र, संसार-सागर [-प्रसार, व्याप्ति, ब्रह्म तत्त्व]। बून्द=बिन्दु, जीवात्मा, आत्मन्। समानौं=समा गया है [-जीवात्मा-परमात्मा का ऐक्य]। राई=सरसों परिमिति का अन्नकण, प्रती० सूक्ष्म बुद्धि, सूक्ष्म तत्त्व, आत्मन्। मेर=सुमेरु पर्वत विशाल आकार वाला मिथ्या जगत् या सुमेरु रूप अहंकार। उलटी भई=उलटी विधि ही गई है, विपरीत क्रम की क्रियाएँ ही रही हैं। सूर्य कियौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मछली बगुला कौं ग्रस्यौ देषहु याके भाग।
सुन्दर यह उलटी भई मूसैं षायौ काग ।।6।।
सुन्दर उलटी बात है समुझै चतुर सुजांन।
सूवै काढे पकरि कै या मिनकी के प्रांन ।।7।।
गुरु शिष के पायनि पर्‌यौ राजा हूवौ रंक।
पुत्र बांझ के पंगुल सुन्दर मारी लंक ।।8।।

अन्धेर=सूर्य ने अन्धकार कर दिया है। अथवा सूर्य ने उत्पात मचा रखा है, अन्धेर-गर्दी कर रखी है। अर्थात् ज्ञान [-सूर्य] के उदित होते ही अज्ञान-अभाव रूप अँधेरा [या मोहान्धकार] भागता दिखाई देता है। भासमान मिथ्या संसार की प्रतीति समाप्त हो जाती है।

6. मछली=मीन, मनसा, चंचला वृत्ति। बगुला=वक, बगुला। मीन [-मनसा] ने [दम्भ-आडम्बरी] बगुला को ग्रस लिया है। अर्थात् मनसा ने स्वस्थ चित्त होकर [-चंचलता छोड़कर], आडम्बर को निगल लिया [-निरस्त कर दिया] है। अर्थात् शुद्ध चित्तवृत्ति से मन की दुष्टता समाप्त हो जाती है। याके भाग=इसके भाग्य। मूसैं षायौ काग=मूषक ने कौए को खा लिया है। चंचल बनी हुई मूषक रूप जीवात्मा ने, अन्तर्मुखी होते ही प्रबुद्ध होकर कुटिल कौए रूप संशय को समाप्त कर दिया है। **टिप्पणी :** 'सवैया' [-5] में 'काग' के स्थान पर संशय के लिए 'सांप' प्रतीक का प्रयोग किया गया है।

7. सुजांन=सुविज्ञ, ज्ञानी। सूवै काढे···प्रांन=शुक [-तोता] ने बिल्ली के प्राण निकाल डाले हैं। अर्थात् प्रवाह-काल में, इन्द्रियों के बाहरी प्रसार के कारण जो शुक रूप जीवात्मा, काल से भयभीत होने के कारण पिंजर बद्ध बनी-रहती थी, वही अन्तर्मुखी अवस्था में निर्भय होकर काल रूप बिल्ली को प्रभावहीन करने में समर्थ हो गई है।

8. गुरु शिष के पायनि पर्‌यौ=गुरु स्वयं शिष्य के पैरों पड़ गया है। अर्थात् चित्त अथवा सात्विक मन, जो अज्ञान दशा में, बाह्य आडम्बरी पुरोहितों का शिष्य [-गुलाम] बना रहकर अपने लघुता बोध से बोझिल बना रहता था, वही अब सात्विक होकर, गुरु भाव में प्रतिष्ठित है और बाह्य मन उसके अधीन रहकर शिष्य भाव दिखाता-रहता है। **विशेष**—'जीव' रजोगुणी मन के अधीन बना रहता है, ज्ञानावस्था अथवा विवेक दशा में प्रबुद्ध जीवात्मा उस मन को अनुशासित रखती है। इसी अर्थ में 'राजा' [-मन] का 'रंक' होना वर्णित है। पुत्र बांझ के=वन्ध्या के पुत्र जन्मा है। सात्विका [-निष्काम] बाँझ बुद्धि ने ज्ञान रूप पुत्र को जन्म दिया है। अर्थात् सात्विक बुद्धि के परिणामस्वरूप ज्ञानोदय सम्भव है। पंगुल मारी लंक=लंगड़े ने लंका पर विजय प्राप्त कर ली है। अर्थात् बहिर्मुखी चंचल मन, अन्तर्मुखी होते ही, पंगु [-चंचलता रहित] हो जाता है, तभी वह लंका [-स्वर्ण-मयी लंका, आकर्षण-प्रलोभनमयी सृष्टि] पर विजय प्राप्त कर पाता है। ज्ञान-दशा में मिथ्या प्रतीति समाप्त हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमल मांहिं पांणी भयौ पांणी मांहे भांन।
भान मांहिं ससि मिलि गयौ सुन्दर उलटौ ज्ञांन ॥9॥
धोबी कौं उज्जल कियौ कपरै बपुरौ धोइ।
दरजी कौं सीयौ सुई सुन्दर अचिरज होइ ॥10॥
सोनै पकरि सुनार कौं काढ्यौ ताइ कलङ्क।
लकरी छील्यौ बाढई सुन्दर निकसी बङ्क ॥11॥
जा घर मैं बहु सुख किये ता घर लागी आगि।
सुन्दर मीठौ न रुचै लौंन लियौ सब त्यागि ॥12॥

---

9. कमल मांहिं पांणी भयौ=कमल जो पानी में खिलता था, अब पानी कमल से उत्पन्न होता है। अर्थात् अन्तर्मुखी दशा में हृदय रूप कमल में [-हृदय की सात्विकता में] भक्ति रूप जल ओतप्रोत बना रहता है, भर गया है। पांणी मांहे भांन=पानी के अन्दर से सूर्य उदित हुआ है। सात्विकता या भक्ति के प्रवाह-प्रसार से ही ज्ञान-विवेक रूप सूर्य उदित होता है। भा मनांहि ससि मिल गयौ=सूर्य में शशि विलय हो गया है। अर्थात् ज्ञान रूप सूर्य में शशि की-सी शीतलता आ गई है। तात्पर्य है कि सात्विक मन में प्रेमाभक्ति और फिर भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से संसार-ताप [-क्लेश]समाप्त होकर सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म साक्षात्कार का अक्षय सुख-शीतलता प्राप्त होती है।

10. धोबी=रजक, कपड़ा धोने वाला, मल-प्रक्षालन करने वाला मन रूप धोबी। कपरै धोइ=कपड़े के द्वारा धोया जाता है, 'कपड़ा' अर्थात् काया-शरीर। अर्थात् शरीर-संयम [-तप] ने मन के मल को धो डाला है। दरजी कौं···होइ=दरजी को सुई ने सिल दिया है। अर्थात् सूक्ष्म सुरति रूप सुई ने. जीव या मन रूप दरजी को, जो शरीर में बैठा कतर-ब्यौंत करता-रहता था, सींव [-सिल] दिया है, सुरति-ध्यान ने जीव-ब्रह्म की एकात्मता स्थापित कर दी है। अचिरज होइ=आश्चर्य होता है।

11. सोनै पकरि···कलङ्क=स्वर्ण ने सुनार को पकड़कर[-तापित करके] उसकी सारी खोट-निकाल फेंकी है। सोनै=स्वर्ण, स्मरण रूप स्वर्ण [-सुवर्ण] ने मन रूप सुनार को तपाकर, तपश्चर्यादि के द्वारा शुद्ध[-निष्कलंक]बना दिया है। लकरी···बङ्क=लकड़ी ने बढ़ई को छीलकर उसकी सारी टेढ़ निकाल दी है। लय रूप लकड़ी ने मन [-कर्म] रूप बढ़ई को छीलकर अर्थात् विकार रहित करके, उसकी टेढ़ [-चालाकी, कुटिलता] निकाल फेंकी है और सरल-ऋजु [-साधु] बना दिया है।

12. घर=आवास, शरीर रूप घर, अज्ञान दशा। ता घर लागी आगि=उस बहिर्मुखी-वृत्ति वाले मन के रहते हुए, इन्द्रियों के आश्रय शरीर [-वास] में ज्ञानाग्नि [ब्रह्माग्नि] प्रज्वलित हो गई है। अर्थात् अब उसमें [विषय-] सुख-भोग प्राप्ति के उद्देश्य से निवास सम्भव नहीं है। मीठौ=मधुर, नमक [राज०] विषयादि का स्वाद-सुख। लौंन लियौ=लवण ग्रहण किया है, लावण्य ग्रहण [अथवा त्याग-] किया है। सब त्यागि=सर्वस्व त्याग कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर पर्बत उड़ि गये रुई रही थिर होइ।
बाव बज्यो इंहिं भांति कौ क्यौं करि मांनै कोइ ।।13।।

ल्याली षायौ गाडरै सुसले षायौ स्वांन।
सुन्दर यह कैसी भई बधिकहि लागौ बांन ।।14।।

ब्रह्मा ऊपर हंस चढि कियौ गगन दिशि गौंन।
गरुड चढ्यौ हरि पीठ पर सुन्दर मांनै कौंन ।।15।।

बृषभ भयौ असवार पुनि सुन्दर शिव पर आइ।
डाइन ऊपर जरष चढि भली दई दौराइ ।।16।।

---

13. पर्वत उड़ि गये=पहाड़, अहंकार रूप पर्वत, प्रबल ज्ञान के प्रवाह से उड़ [-तिरोहित हो-] गया। रुई रही थिर होइ=सात्विक वृत्ति रूप रुई, निर्मलता के कारण स्थिर होकर [-चंचलता छोड़कर] दृढ़ हो गई है। बाव बज्यौ इंहिं भांति कौ=वायु [-पवन] इसप्रकार का प्रवाहित हुआ है [-ऐसी हवा चली है] कि सब कुछ उलटा हो गया है।

14. ल्याली >ल्यारी [देश०]=भेड़िया। गाडरै=गाडर, भेड़। अर्थात् भेड़ ने भेड़िया को खा लिया। सात्विक [-ऋजु] वृत्ति रूप जीवात्मा ने, विकृत [-विकारी] मन रूप भेड़िये को विदीर्ण कर दिया है। सुसले षायौ स्वांन=शशक ने कुत्ते को खा डाला है। अर्थात् अन्तर्मुखी दशा में सीधे-सादे [-भोले-भाले] जीव ने, दर-दर भटकने वाले, टुकड़े-टुकड़े केलिए ललचाने वाले कुत्ते रूप मन को निरस्त कर दिया है। **टिप्पणी** : 'सवैया' भाग में यह उदाहरण नहीं है। यहाँ नए प्रतीकों का प्रयोग उल्लेखनीय है। बधिकहि लागौ बांन=स्वयं शिकारी ही तीर से विद्ध हो गया है। अर्थात् विषयों का शिकार करने वाला मन, शब्द-बाण लग जाने से बिंध-कर स्थिर [-एकाग्र] हो गया है।

15. ब्रह्मा ऊपर हंस चढ़ि='ब्रह्मा' विधाता [-रजोगुण], पर 'हंस' शुद्ध जीवात्मा। अर्थात् हंस, जो ब्रह्मा [-ब्रह्माणी, सरस्वती] का वाहन बताया गया है, ने ब्रह्मा के ऊपर आरूढ़ होकर [-रजोगुण को अनुशासित करके] ऊर्ध्व गमन किया है। गरुड़=पक्षिराज गरुड़, प्रती० ऊर्ध्व गतिवाला सात्विक मन-ज्ञान। हरि=विष्णु, प्रती० सतोगुण प्रधान परमात्मा। अर्थात् शुद्ध ज्ञान, सत्त्वगुण पर आधारित हुआ है। मांनै कौंन=लेकिन, कोई मानने को तैयार नहीं।

16. बृषभ=बैल, प्रती० बैल रूप शरीर-मन, जो कर्मों का बोझ ढोता था। शिव=महादेव, प्रती० तमोगुण पर आधारित शिव देवता। डाइन=प्रेतिनी, प्रती० क्रूर-वृत्ति मनसा, पदार्थों में तीव्र लालसा। जरष <जरठ [सं०]=कर्कश, कठोर बुड्ढा, पुराना, प्रती० संकल्प-विकल्प वाला आदि-मन। भली दई दौराइ=अच्छी दौड़ लगवाई अथवा दौड़ा दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजनी मैं दीसै दिवस दिन मैं दीसै राति।
सुन्दर दीपक जल गयौ रही बिचारी बाति ॥17॥
सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गये नदि नार।
मेर बूडि जल मैं रह्यौ झर लाग्यौ इकसार ॥18॥
कांसा पर्‌यौ पराकिदै बिजली ऊपर आइ।
घर कौ सब टाबर मुवौ सुन्दर कही न जाइ ॥19॥
सुन्दर माली नीपज्यौ फल अरु फूल समेत।
हाली के कोठा भरे सूके बाडी षेत ॥20॥

---

17. रजनी=रात, प्रती० साधक केलिए निवृत्ति दशा, आशा रहित दशा। दिवस= दिन, ज्ञान का प्रकाश, प्रती० ब्रह्म ज्ञान की स्थिति। दीपक=दीप, दीवा, प्रती० मोह-ममता रूप तेल [-विषयों] से भरा हुआ शरीर रूप दीवा। बिचारी बाति= वत्ती, बाती, प्रती० ध्यान रूप बत्ती, सुरति या नाम-स्मृति रूप वृत्ति।

18. बरिषा=वर्षा, प्रती० निरन्तर सुरति, ज्ञान-विचार की अमृत वर्षा। नदि नार= नदी-नाले, प्रती० इन्द्रिय-द्वारों से प्रवाहित विषय-वासनादि के स्रोत [-प्रवाह] सूख गए। मेर बूडि जल मैं रह्यौ=सुमेरु पर्वत, प्रती० उत्तुंग शृंग अहंकार। जल मैं रह्यौ=जल [ब्रह्म तत्त्व] में निमग्न हो गया, डूब गया। झर लाग्यौ=निरन्तर वर्षा, इकसार स्मरण [-सुरति]।

19. कांसा पर्‌यौ⋯आइ=काँसा [-धातु से निर्मित बरतन] 'पड़ाक' शब्द करते हुए बिजली के ऊपर गिरा। विरोध यह है कि लोक मान्यता में जो बिजली काँसे के ऊपर गिरती है, अब ज्ञानदशा में उलट कर काँसा, विद्युत [-चंचला वृत्ति] के ऊपर गिरा है। अथवा विषय-भोग करने वाला शरीर [-काया] रूप काँसा, गुरु-ज्ञान की चमकार [-ज्ञान प्रकाश] रूप बिजली के ऊपर आ गिरा है। अर्थात् ज्ञान रूप विद्युत की चमक काँसे-शरीर में समा गई है। टाबर मुवौ=[इन्द्रिय गुच्छ रूप-] टाबर धराशायी हो गया। अर्थात् इन्द्रिय वृत्तियों का अम्बार [-ऊँचा टीला] नष्ट हो गया है।

20. माली नीपज्यौ⋯समेत=माल्य जीवक [-मालिन, सं०] फल-फूलों समेत [-धरती के गर्भ से] पैदा हुआ है। अर्थात् अन्तर्मुखी अवस्था में क्षेत्रज्ञ जीवात्मा, काया रूप क्षेत्र के विषय [-भोग-आकर्षण] रूप फल-फूलों समेत, अपने अन्दर [माली-कर्म के परिणाम का आनन्द लेने केलिए] उत्पन्न हुआ है। हाली=हरहारा, किसान, प्रती० अन्तःकरण या मन रूप कृषक, अपनी अन्तर्मुखी अवस्था में नाम-स्मरण रूप अनाज से कोठा रूप अन्तरंग को भरे रखता है, किन्तु—। सूके बाडी षेत=खेत की [वाटिका-] फुलवाड़ी सूख गई है अर्थात् विषयादिक वृत्तियाँ, निवृत्ति प्रधानता होने के कारण [-बहिर्मुखता समाप्त होने से], फुलवारी सूख गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रमर सु तौ उज्जल भयौ हंस भयौ फिरि स्यांम ।
को जानै केते भये सुन्दर उलटे कांम ।।21।।
अग्नि मथन करि नीसरी लकरी सहज सुभाइ ।
पानी मथि घृत काढियौ सो घृत सुन्दर षाइ ।।22।।
पत्र मांहिं झोली धरै जोगी मांगै भीष ।
सोवै गोरष यौं कहै सुन्दर गुरु की सीष ।।23।।
पर धी लै करि घर धरै पर धन हरि हरि षाइ ।
पर निंदा निस दिन करै सुन्दर मुक्ति हि जाइ ।।24।।

21. भ्रमर=भौंरा, चंचल मन। हंस भयौ स्यांम=श्वेत पक्षी, नीर-क्षीर विवेकी हंस [-शुद्ध-जीवात्मा] अब 'श्याम' [-श्याम रंग का, स्वामी परमात्मा-] मय हो गया है। अन्तर्मुखत्व प्राप्त होने पर साधक के जीवन में ऐसे ही **'उलटे काम'** होते हैं।

22. अग्नि मथन···सुभाइ=लकड़ी अग्नि-मन्थन के बाद ही निकली है। अर्थात् भक्तिमय चेतना में विरहाग्नि के उदय से जो ज्ञान-प्रकाश हुआ है, उसी से 'लकड़ी' [-लय-ध्यान रूप ब्रह्माकार-] वृत्ति उत्पन्न हुई है। यह वृत्ति-रूपान्तरण दशा सहज योग के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई है, न कि कष्ट-सहन करने से। पानी मथि···षाइ=पानी को मथ कर घी निकाला है [-असम्भव प्रमाण]। 'पानी' अर्थात् भगवत्-प्रेम-जल[-भक्ति] अथवा भावना-जल, अथवा मनोवृत्तियों के प्रवाह के मन्थन से विचार-विवेक रूप घृत [-ब्रह्मानन्द सुख] प्राप्त हुआ है। इसी अर्थ में 'घी' केलिए अन्यत्र भी कहा है—'घी सौ घोंटि रह्यौ घट भीतर'। वास्तव में अनुभव-अवस्था में पहुँचने के बाद परावर्तित नहीं हुआ जाता—'यत्प्राप्य न निवर्त्तंते।'

23. पत्र=पत्ता, प्रती० हृदय पटल। झोली=थैली अथवा झकझोली। प्रती० सांसारिक कर्मों की कोथली [-थैली], जिसमें पाप-पुण्य रूप कृत्य भरे-रहते हैं। अथवा गुण-कर्मों का झकझोल [-ऊबड़-खाबड़पन]। अन्तर्मुखी होने पर, मन-शुद्धि के साथ ही शुभाशुभ कर्मों की गाँठ खुल पाती है और वे हृदय-पटल पर मुक्ति-भाव धारण किए रहते हैं, ग्रन्थि-बन्धन में नहीं। जोगी मांगै भीख=योगी भीख माँगता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी जिज्ञासु ज्ञानियों से, ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति की याचना करता है। और इस याचना में योगिराज गोरख 'जागता है'। यहाँ 'या निशा सर्व भूतानां' [-गी०, 2/69] की तरह 'गोरख सोता है [-निश्चिन्त है], यह कहा गया है। सीष=शिक्षा, उपदेश।

24. पर धी=पराई धी, पर कन्या, पराई स्त्री। प्रती० [पर-] परमात्मा में लगी हुई बुद्धि। घर धरै=उसकी चंचलता छुड़ाकर घर [-हृदय] में अनुशासित करके केन्द्रित करता है। पर धन=पराया धन, [पर-] परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान अथवा सन्तों द्वारा प्रदत्त ज्ञान। हरि हरि षाइ=हरण कर-कर के खाता है। अर्थात् हरि-हरि कहता हुआ अनुभव-आस्वाद लेता-रहता है। पर निंदा=पराई निन्दा, प्रती० [पर=आत्मा से परे अर्थात्] अनात्म [-जड़-मिथ्या]की निन्दा करे अर्थात् उसके प्रति उपेक्षा-ग्लानि का अनुभव करे। मुक्तिहि जाइ=जो ऐसा करता है, वह मुक्ति को प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांस भषै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध।
जौ ऐसी करनी करै सुन्दर सोई साध ।।25।।
जोई ह्वै अति निर्दयी करै पशुन की घात।
सुन्दर सोई उद्धरै और बहे सब जात ।।26।।
सुन्दर समुझावै बहू सुनि हे मेरी सास।
माइ बाप तजि धी चली अपने पिय के पास ।।27।।
बढई कारीगर मिल्यौ चरषा गढ्यौ बनाइ।
सुन्दर बहू सतेवरी उलटौ दियौ फिराइ ।।28।।
सुन्दर सब ही सौं मिली कन्या अषन कुमारि।
बेश्या फिरि पतिब्रत लियौ भई सुहागनि नारि ।।29।।

25. मांस भषै=मांसाहार करता है। प्रती० मांसलता [ममता-आसक्ति] का भक्षण करता है। मदिरा=मद्य, सुरा। प्रती० मदिरा पीता है अर्थात् मनमुखी बना रहकर जो मोह-मदिरा पीता था, उसके स्थान पर अब वह भगवत्-भक्ति की अगम और अगाध मदिरा पीकर मस्त बना-रहता है। अतः जो ज्ञानी [-शेर की तरह घात करके पशु-] इन्द्रियों का मांस-भक्षण करता है वही साधु है।

26. निर्दयी=निष्ठुर, दयाहीन। प्रती० इन्द्रिय बहिर्मुखता को अनुशासित करने केलिए, कठोरता-निर्दयता का व्यवहार करने वाला, जितेन्द्रिय। पशुन की घात=विषय [-चारे] को चरने वाली [पशु-] इन्द्रियों की घात करना, जितेन्द्रियता केलिए, साधना-विहित बताया है।

27-28. बहू=बधू, नवविवाहिता दुलहन। प्रती० शुद्ध [-पवित्र], शुभ गुण युक्त वधू रूप बुद्धि। सास=सासुलि, सासूजी। प्रती० अनुभवी आद्य सास रूप सुरति को समझाती है, ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देती है। माइ=माता, माँ। प्रती० माता रूप माया, वासना। बाप=पिता। प्रती० पिता रूप [वपु-]शरीर। धी=पुत्री। प्रती० सात्विक बुद्धि। अपने पिय=अपने प्रियतम, परम इष्ट परमात्मा। अर्थात् माँ-बाप को त्याग कर शुद्ध, बुद्धि पति [-परमात्मा] की ओर अग्रसर होती है। बढई=काष्ठ शिल्पी। प्रती० बेडौल शिष्य रूप काष्ठ को [शिल्पन-] अनुशासन से जो सँवारता है, ऐसा बढ़ई रूप गुरु। चरषा=सूत कातने का यन्त्र। प्रती० चरखा रूप चित्त को सँभालता है। बहू सतेवरी=सतवन्ती वधू। प्रती० चरखा रूप चित्त से वधू रूप शुद्ध [-सात्विक] बुद्धि द्वारा सूत [-सुरति-ध्यान-लय] निकालने केलिए, चरखे को, बाह्य क्रम से न फिराकर अन्तर्मुखी क्रम में, उलटा फिराया जाता है।

29. कन्या अषन अक्षत कुमारि=कुमारिका कन्या। प्रती०कच्ची बुद्धि वाली जीवात्माएँ, अपनी तुच्छ बुद्धि से संसारी कनफूंका गुरुओं अथवा शास्त्र-रूढ़ियों से आबद्ध बनी रहकर, बुद्धि के व्यभिचारीपन [-वेश्यावृत्ति] को प्रकट करती रहती हैं। वेश्या फिरि पतिब्रत लियौ=वेश्या रूप चंचला बुद्धि, जब एक परम तत्त्व का अनुभव कर लेती है, तो अपनी व्यभिचारिणी वृत्ति [-चंचलावृत्ति] का त्याग कर एकनिष्ठ हो जाती है। यही उसके द्वारा पतिव्रत-धारण करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलियुग मैं सतजुग कियौ सुन्दर उलटी गंग।
पापी भये सु ऊबरे धरमी हूये भंग ॥30॥
बिप्र रसोई करत है चौकै काढि कार।
लकरी मैं चूल्हा दियौ सुन्दर लगी न बार ॥31॥
रोटी ऊपर पोइकै तवा चढायौ आंनि।
षिचरि मांहे हण्डिका सुन्दर रांधी जांनि ॥32॥
पहराइत घर कौं मुसै साह न जांनै कोइ।
चोर आइ रक्षा करै सुन्दर सब सुख होइ ॥33॥

---

30. कलिजुग…उलटी गंग=मलिन कर्मों में निरत काया [-बुद्धि] ही कलियुग है। काया [-बुद्धि] रूपान्तरित होकर जब सात्विक ज्ञान पुष्ट होती है, तो वहीं 'सतयुग' व्यंजित होता है। साधक जब, सूर्यवंशी राजा भगीरथ की तरह, गंगा के बाह्य प्रवाह को, अन्तर्मुखी करता हैं, उलटी [-मोड़कर] गंगा बहाता है और जब उस उलटी गंगा में पशु घातक पापी अर्थात् इन्द्रिय जयी [-निग्रही] स्नान करते हैं तो उद्धार पा जाते हैं और जो इन्द्रियों का पोषण करते हुए सुख-भोग की कामना करते हैं अर्थात् जो कर्मकाण्डी [-धरमी] हैं, वे मझधार [संसार-प्रवाह] में डूब जाते हैं।

31. बिप्र रसोई करत है=वेद-शास्त्रादि का ज्ञाता [-पण्डित], दुनियादारी की रूढ़ियों [-कर्मकाण्ड] को निभाते हुए कर्मफल [-स्वाद] सम्बन्धी 'रसोई' करने में निरत होते हैं। अर्थात् वे शुद्ध-अशुद्ध, पुण्य-पाप के चक्कर में पड़े-रहते हैं। चौके काढ़ी कार=छुआछूत मानने वाले 'बामन', कोयले से काली-रेखा खींचकर, छोति निवारणार्थ 'चौके' का सीमांकन करते हैं। चौका=छोति-निवारण केलिए सीमा। प्रती० अन्त.करण चतुष्टय [-क्रिया रूप साधन-चतुष्टय] का स्थान। लकरी=लकड़ी, प्रती० लय [ध्यान में-]। चूल्हा=भोजन को पकाने का स्थान [-माध्यम]। प्रती० कर्मों को तपाने का चित्त रूप स्थान। बार=विलम्ब, देर। **टिप्पणी :** गीता का साक्ष्य है कि अनन्य भाव से भजने वाला तत्काल धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर शान्ति पाता है—'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति' [-9/31]

32. रोटी=चपाती। प्रती० सुमिरण [-रटण] रूप रोटी। रोटी…चढ़ायौ आंनि=भगवत् स्मरण रूप पकी रोटी के ऊपर तत्त्व ज्ञान रूप तवा चढ़ाकर सहज-साधना करते हुए योगारूढ़ होता है। षिचरी < खिचरी…रांधी जांनि=भक्ति [प्रेम-ज्ञान-वैराग्य भाव का समन्वय] रूप खिचड़ी में हँडिया रूप काया [-शरीर] को राँधा अर्थात्-तपस्या के द्वारा परिपक्व किया। तभी तो [साधु-] साधकों की काया को 'काया भई कपूर' कहा जाता है।

33. पहराइत=पहरुवा, पहरा देने वाले चौकीदार। प्रती० इन्द्रिय-देवता जो शरीर-नवद्वारों पर पहरे [-रक्षा] केलिए बैठे होते हैं। पहराइत…कोइ=कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति, जो शरीर-द्वारों पर [-शरीर रूप घर की रक्षा केलिए]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोतवाल कौं पकरि कैं काठौ राष्यौ जूरि।
राजा भाग्यौ गांव तजि सुन्दर सुख भरपूरि ।।34।।
नाइक लाद्यौ उलटि करि बैल बिचारै आइ।
गौन भरी लै बस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ ।।35।।
सुन्दर राजा बिपति सौं घर घर मांगै भीष।
पाय पयादौ उठि चलै घोरा भरै न बीष ।।36।।

बैठी मानी गई हैं। इन्द्रिय-शक्तियाँ जो प्रकृतिस्थ व सन्तुलित बने रहने पर, शरीर को स्व-स्थ रखती हैं, विषयाकर्षणों में बाहर फिरती-रहने के रूप में, घर को लूटती-रहती हैं अर्थात् शरीर रूप घर की सम्पत्ति [-शक्ति] का क्षय करती-रहती हैं। लेकिन, शरीर का स्वामी शाह [-आत्मन्] इससे बेखबर बना रहता है। चोर= चोरी करने वाला। प्रती० साधक, जो सुमिरण के द्वारा नारायण-नाम चुराता [-एकत्रित] करता हुआ, घर की रक्षा करते हुए, सुखप्रदायक बना रहता है।

34. कोतवाल···जूरि=कोटपाल। प्रती० शरीर रूप कोट [-क़िले] की रक्षा करने वाला कोतवाल रूप मन, जो मोह-अज्ञान के कारण मदहोश हो जाने से, अपना दायित्व नहीं निभाता, उसे संकल्पी मन ने पकड़कर काठे [-जुवे] में जोत दिया है अर्थात् कठोर अनुशासन में बाँध दिया है। राजा=नृपति। प्रती० रजोगुण। राजा ···भरपूरि=जो राजा [-रजोगुण], मदहोश मन रूप कोतवाल के सहारे मौज करता-रहता था, कोतवाल के पकड़े जाने पर [वह भी] गाँव [-अपना समुदाय] छोड़कर भाग जाता है। अर्थात् चित्त वृत्ति निरोध के फलस्वरूप, सतोगुणी वृत्ति की अभिवृद्धि से रजोगुण शान्त [-अप्रभावी] बना रहता है।

35. नाइक=मुखिया। प्रती० कर्म-फल का हिसाब-किताब रखने वाला जीवात्मा। बैल=वृषभ। प्रती० कर्म-फल वाहक मन। नाइक···बैल बिचारै आइ=अन्तर्मुखी होने पर विचार-विवेक का जीवन व्यतीत करने वाला अन्तःसत्व [-वृषभ] रूप मन ने स्वयं नायक को ही कर्म-फल के बोझ से लाद दिया है। अर्थात् समर्पण भाव के कारण मन अपने ऊपर कर्मों का फल [-बोझ] धारण नहीं करता। गौन =काँठी, गठिया, भरी बोरी। प्रती०वस्तु[-तत्त्व]रूप में कर्मों का थैला समा गया है। अर्थात् बाह्याकार समाप्त होकर सूक्ष्म हो गए हैं। यह सूक्ष्म चेतना हरिपुर [-परमपद] को ले जानी वाली है।

36. राजा=नृपति। प्रती० रजोगुण प्रधान जीवात्मा [-मन]। बिपति=संकट, मुसीबत। प्रती० तृष्णा-वासना में लिप्त होने के कारण संकट में फँसा हुआ जीव सबके सामने याचना करता-रहता है और इन्द्रिय द्वारों का आश्रय माँगता-फिरता है। पयादौ=पैदल ही। घोरा भरै न बीष=घोड़ा पग [-डग] तक नहीं भरता। विषय-भोगों के कारण शरीर रूप अश्व, निर्बल होकर [-क्षयशील होकर] थकित हो जाता है। अतः अशक्ति के कारण एक डग भी आगे नहीं बढ़ पाता। तात्पर्य है कि विषय-भोगों से तो मन की वासना कमज़ोर नहीं पड़ती। पर शरीर क्षय हो जाने के कारण वह अशक्त दिखाई देता है। बीष<बीख<बीखा (सं०) हल्के कदम, [गति-] डग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार।
पावक आयौ पूछनै सुन्दर वाकी सार ।।37।।
जौ तूं मेरी सीष लै तौ तूं सीतल होइ।
फिरि मोही सौं मिलि रहै सुन्दर दुःख न कोइ ।।38।।
पंथी मांहे पंथ चलि आयौ आकसमात।
सुन्दर वाही पंथ गहि उठि चाल्यौ परभात ।।39।।
चलत चलत पहुंच्यौ तहां जहां आपनौ भौंन।
सुन्दर निश्चल ह्वै रह्यौ फिरि आवै कहि कौंन ।।40।।
बन मैं एक अहेरिये दीनी अग्नि लगाइ।
सुन्दर उलटै धनुष सर सावज मारै आइ ।।41।।

---

37. पानी···जरनि अपार=जल अर्थात् प्रेम-भाव जन्य व्याकुलता [-विरह-भाव]। जल यह पुकारता-फिरता है कि मेरे अन्तस् में असीम विरहजन्य दाहकता उत्पन्न हो गई है। ज्ञान रूप अग्नि [-ज्ञान]ही उस जल [माया तत्त्व] की जलन को बुझा [-शान्त कर] सकता है। अर्थात् विरह की व्याकुलता, ज्ञान-परिपक्वता में ही, निवृत्त हो पाती है। ज्ञान से ही त्रिविध तापों का शमन होता है। पावक=अग्नि। प्रती० अग्नि स्वरूप ज्ञान, जिसकी प्रकृति शम जन्य होने कारण शीतल होती है।

38. जौ तूं···सीतल होइ=[संवाद रूप में ज्ञान, प्रेम [-भक्ति] से कहता है—] यदि तू मेरी सलाह माने तो, तू भी [विरह-दाहकता छोड़कर] शीतल होजा। अर्थात् प्रेम और ज्ञान के एकमेक हो जाने पर, द्वैत [-भक्ति का] समाहित हो जाता है। पराभक्ति तक पहुँचते-पहुँचते द्वैत का, अपरोक्षानुभूति की दशा में, अद्वैत भाव हो जाता है। वही ब्रह्म-साक्षात्कार की दशा है। दुःख=क्लेश, त्रय ताप, व्याधि।

39-40. पंथी=पथिक। प्रती० मुमुक्षु, जिज्ञासु। पंथी···आकसमात=अचानक ही, सहज ज्ञान से, साधक [-सन्त] के भीतर 'पंथ' चलकर आ जाता है। अर्थात् ज्ञान [-साध्य] स्वयं प्राप्त हो जाता है। जब ज्ञान रूप पंथ [-पथ] जिज्ञासु के भीतर समा जाता है, तब वह [प्रभात-] सुवेला [-ब्रह्म मुहूर्त्त] में ब्रह्ममय होने केलिए [-तत्पर होता]है। आपनो भौंन=अपना भवन, निज गन्तव्य। अर्थात् समाधिस्थ। निश्चल···कौंन=निश्चल [-समाधिस्थ, स्थितप्रज्ञ] होने पर फिर कौन लौट कर आता है? अर्थात् तब आवागमन की चेतना से मुक्ति मिल जाती है।

41. बन में=अरण्य में। प्रती० संसार के विषय-भोग रूप वन में। अहेरिये=अहेरी, शिकारी। प्रती० साधक-सन्त जो पशु [-इन्द्रियों] का शिकार करने में निरत रहते हैं। साधक रूप बहेलिए ने विषय-वासनाओं के जंगल में ज्ञान की आग लगा दी है। धनुष=कमान, ध्यान रूप धनुष। सर=बाण, लक्ष्य रूप चित्त। सावज=शिकार, काम-क्रोध लोभादि इन्द्रिय-बिकार रूप अहेर, दुष्ट पशु। इसमें उलटे धनुष से, लक्ष्य बेध करके अर्थात् अन्तर्मुखी ध्यान से [पशु-] विकारों का घात किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्यौ सिंह महाबली मार्यौ व्याघ्र कराल।
सुन्दर सब ही घेरि करि मारी मृग की डाल ।।42।।

सुन्दर सरवर सूकतें कंवल प्रफुल्लित होइ।
हंस तहां क्रीडा करै पंषी रहै न कोइ ।।43।।

कूप उसार्यौ कुंभ मैं पानी भर्यौ अटूट।
सुन्दर तृषा सबै गई धापे चार्यौं षूंट ।।44।।

सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गई सब साष।
नींव फल्यौ बहु भांति करि लागै दाड्यौं दाष ।।45।।

मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ करवो लाग्यौ मीठ।
सुन्दर उलटी बात यह अपनै नैंननि दीठ ।।46।।

---

42. मार्यौ सिंह महाबली=साधक शिकारी ने अहंकार-क्रोध या काम रूप सिंह को मार डाला, नष्ट कर दिया। व्याघ्र कराल=बाहर दौड़ लगाने वाला मन रूप भयंकर व्याघ्र मार डाला। अर्थात् बाहर जाने से अवरुद्ध कर दिया। मारी मृग की डाल=मृगों की पंक्ति अर्थात् इन्द्रिय समुदाय पर जय पाली, इन्द्रियजयी हो गया।

43. सरवर=सरोवर। प्रती० संसार रूप ताल [-समुद्र] अथवा वासना-सर। सूखना=निःशेष होना। कंवल=कमल, शुद्ध हृदय। प्रफुल्लित=प्रमुदित, खिला हुआ, ब्रह्मानन्द भाव में परम प्रसन्नता। हंस=पक्षी। प्रती० शुद्ध-बुद्ध जीवात्मा। क्रीडा करै=किल्लोल करता है, ब्रह्मानन्द सुख में मग्न रहता है। पंषी=पक्षी। प्रती० संसार में विषय [-भोग] कण चुगने वाले पक्षी [रूप वृत्तियाँ या जीवात्मा]।

44. कूप=कुआँ प्रती० गहन विषय रूप अंध कूप, जिसमें तृष्णा-वासना का अथाह जल भरा रहता है। कुंभ=घट, अन्तर्मुखी मन। उसार्यौ=उठाया। अर्थात् मन के एकाग्र [-ध्यानस्थ] होते ही, उस शुद्ध मन से [विषय-] वासनाओं के जल [-कूप] को निकालकर बाहर फेंक दिया। तृषा=प्यास। प्रती० विषय-वासना की इच्छा [-तृष्णा]। धापे=तृप्त हुए। चार्यौं षूंट=चारों कोणों से अर्थात् सब ओर से, पूर्ण रूप से।

45. बरिषा···सब साष=अन्तर्मुखी जीवन होने पर, गुरु कृपा से [-साधन चतुष्टय करने पर] ज्ञानामृत की ऐसी वर्षा होती है कि उस वर्षा से सारी शाखाएँ या कृषि [-शस्य] सूख जाती है अर्थात् ज्ञान-प्रभाव में आसक्ति की सारी कोपलें [-अंकुर] सूख जाती हैं। नींव=नीम, कड़ुवा पेड़। प्रती० जो पहले कड़ुवा लगता था अर्थात् नीम के समान कटु [-अरुचिकर उपदेश] वह [अनार-अंगूर जैसे-] मधुर फलों से फला-फूला हो जाता है।

46. मिष्ट सु तौ···मीठ=जो मीठा लगता था अर्थात् संसाराकर्षण, ज्ञानावस्था में पहुँचते ही कटु-फलदायी लगने-लगता है। और जो पहले कड़ुवा लगता था अर्थात् त्याग-वैराग्यमयी साधक जीवन, वह अब प्रिय लगने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र सु तौ बैरी भये बैरी हूये मित ।
सुन्दर उलटी बात सौं भागी सबही चित ।।47।।
ऊजर मैं बस्ती भई बस्ती भई उजारि ।
सुन्दर उलटे पेच कौं पंडित देषि बिचारि ।।48।।
नीच सु तौ ऊंचौ भयौ ऊंचौ हूवौ नीच ।
सुन्दर उलटौ ज्ञान है इनि साषिन कै बीच ।।49।।
सुन्दर सब उलटी कही संमुझै संत सुजांन ।
और न जानैं बापुरे भरे बहुत अज्ञांन ।।50।।

।। इति बिपर्ज्जय कौ अंग ।। 20 ।।

---

47. मित्र सु···मित = मोह [-ममता-आसक्ति] के सम्बन्धों वाले पुत्र-कलत्र अथवा कंचन-कामिनी आदि अप्रिय लगने-लगते हैं और जो साधन [-सन्त-सत्संगादि] पहले अप्रिय लगते थे, सच्चे सहयोगी होने के कारण, प्रिय लगने लग जाते हैं ।

48. ऊजर मैं···उजारि=अन्तर्मुखी अवस्था में पहुँचकर गुरुमुखी मन ने उजाड़ खण्ड में भी बस्ती बसा दी है । अर्थात् जहाँ बहिर्मुखी वृत्तियों के कारण उजाड़-सा बना रहता था, उस अन्तःकरण में [-वृत्तियों को केन्द्रित करके] सात्विक मन ने बस्ती बसा दी है । अर्थात् उनकी बाहर-गति को रोक कर एक स्थान पर स्थिर निवास कर दिया है । साथ ही जो बाह्य बस्ती [-परिवार, कुटुम्ब] मन में बसी हुई थी, अनासक्ति के कारण उजड़ आती है ।

49. नीच सु तौ···नीच=जो प्रथमतः कुसंग और कुकर्म रत था, वह साधु-संग से उत्तमता में बदल गया है । और जो अपने को उच्च वंश का मानता था, वह कुमार्गी होकर अधोगति को प्राप्त हो गया है । यही 'उलटा ज्ञान' है ।

50. उलटी कही=यह 'उलटी बात' या 'उलटी कही' उलटवासी मूलक [-कथन] है । ऐसी वाणी का अर्थ विवेकी ही प्राप्त कर सकता है । बापुरे=बिचारे, बुद्धिहीन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 21 ॥ अथ समर्थाई आश्चर्य कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की 61 साखियों में रचनाकार ने विधाता [-प्रभु] की असीम महिमा का बखान, वाणी-सामर्थ्य के परे बताया है। वह परम तत्त्व असीम [-अगाध, आदि-अन्त रहित], अद्भुत और विलक्षण है। वह तो 'अगह, अकह, निर्विशेष' है। अतः उसके भेद [-रहस्य, मर्म] को, जिसे वेद भी 'नेति नेति' कहते हुए बता पाने में असमर्थ है, कोई नहीं जान सकता। जानने का समग्र प्रयास 'नमक की डली [-डेली] द्वारा अगाध समुद्र की थाह लेने के प्रयत्न' के समान अल्प और निरर्थक बताया गया है। क्योंकि, वह डली बीच में ही उस असीम अनुभव में विलय हो जाती है। अर्थात् सब साधन [-उपाय, माध्यम] खोज के अन्तिम छोर तक पहुँच ही नहीं पाते। फिर वे अपना निर्णय कैसे दे सकते हैं? इसलिए तो प्रस्तुत अंग का शीर्षक, साखियों में प्रतिपादित सामर्थ्य की अल्पता एवं आश्चर्यमयता [-विलक्षणता] को ठीक ही प्रतिपादित कर रहा है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर समरथ राम है जे कछु करै सु होइ।
जो प्रभु कौं कछु कहत है ता सम बुरा न कोइ ॥1॥
कर्त्तुमकर्त्ता अन्यथा सुन्दर सिरजनहार।
पलक मांहि उतपति करै पलक मांहि संहार ॥2॥
ज्यौं हरि भावै त्यौं करै कौंन कहै यह नांहि।
अग्नि उपावै पलक मैं सुन्दर पाला मांहि ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. समरथ = सर्व सामर्थ्य सम्पन्न। ता सम बुरा न कोइ = उसके समान अन्य कोई बुरा [-दोषपूर्ण] नहीं है। कर्त्तुमकर्त्ता = यह पातञ्जल योग-सूत्र का एक मंत्र है—'कर्त्तुमकर्त्तमन्यथा कर्त्तुम् समर्थः।' अर्थात् अच्छा-बुरा करने-न-करने की जो सामर्थ्य रखता हो अथवा अकृत को कृत और कृत को अकृत करने की सामर्थ्य वाला हो, वही सर्वशक्तिमान परमात्मा है। सिरजनहार = विधाता, सृजनकर्त्ता। संहार = विनाश। भावै = रुचता है, अच्छा लगता है। पाला मांहि = हिम, बर्फ में। उपावै = उत्पन्न कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यौं हरि भावै त्यौं करै काले धौले रंग।
धौले तें काले करै सुन्दर आपु अभंग ॥4॥
सुन्दर संमरथ राम की मोपै कही न जाइ।
पल ही मैं जल थल भरै पल मैं धूरि उडाइ ॥5॥
सुन्दर संमरथ राम कौं करत न लागै बार।
पर्बत सौं राई करै राई करै पहार ॥6॥
सुन्दर सिरजनहार कौं करतें कैसी शंक।
रङ्कहि लै राजा करै राजा कौं लै रंक ॥7॥
सुन्दर सिरजनहार की सब ही अद्‌भुत बात।
गर्भ मांहि पोषत रहै जहां गम्य नहिं मात ॥8॥
सुन्दर संमरथ राम कौं कहत दूरि तें दूरि।
पलक मांहि प्रगटै सही हृदये मांहि हजूरि ॥9॥
सुन्दर संमरथ राम की महिमा कही न जाइ।
देषहु या अकाश कौं क्यौं करि राष्यौ छाइ ॥10॥
सुन्दर अगम अगाध गति पल मैं बादल होइ।
गरजै चमकै बिज्जली बरषन लागै तोइ ॥11॥
पल मैं कछुव न देषिये सुद्ध रहै आकाश।
सुन्दर समरथ राम जी उतपति करै रु नाश ॥12॥

---

4. काले धौले रंग=काले को श्वेत और श्वेत को काला रंग करने की सामर्थ्य वाला। धौले तें काले करै [मुहा०]=काले को सफेद, सफेद को काला करने वाला, सर्व समर्थ।

5. मोपै=मुझ पर। कही न जाइ=उस प्रभु की सामर्थ्य कहते नहीं बनती। पल ही ···उडाइ [कहा०]=क्षण में इतनी वर्षा कर देता है कि जल-थल एक हो जाते हैं, तो कुछ समय में ही वहाँ धूलि उड़ने लगती है।

6-9. पर्बत सौं···पहार [लोको०]=पर्वत जैसे बड़े आकार को राई के समान लघु-तुच्छ बना देने और कभी राई जैसे तुच्छ बीज को पर्वताकार रूप प्रदान कर देने वाला। शंक=शंका, सन्देह। रंक=निर्धन, गरीब। अद्‌भुत बात=विलक्षण बात, अनोखी रीति-नीति। पोषत रहै=पोषण करता-रहता है, रक्षा करता है। गम्य नहिं मात=माता की जहाँ गति नहीं है, जहाँ माता का उपाय कारगर नहीं हो पाता। कहत दूरि तें दूरि=उसे दूर से दूर बताते हैं। हृदये मांहि हजूरि=वह तो हृदय में ही प्रत्यक्ष-निकट रहता है।

10-12. महिमा=प्रभाव, सामर्थ्य। छाइ=आच्छादित। बिज्जली=विद्युत, बिजली। तोइ=जल, वर्षा। कछुव=कुछ भी। उतपति करै रु नाश=उत्पत्ति और विनाश, सृष्टि और प्रलय दोनों करने की सामर्थ्य वाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बूंद तें चित्र यह कैसौ कियौ बताइ।
सुन्दर सिरजनहार की रचना कही न जाइ ॥13॥
जड चेतनि संयोग करि अद्भुत कीयौ ठाट।
सुन्दर समरथ राम जी भिन्न भिन्न करि घाट ॥14॥
करै हरै पालै सदा सुन्दर संमरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहै सब मैं जिनकौ धाम ॥15॥
अंजन यह माया करी आपु निरंजन राइ।
सुन्दर उपजत देषिये बहुस्यौं जाइ बिलाइ ॥16॥
उपजै बिनसै जगत सब सुख दुख बहु संताप।
सुन्दर करि न्यारा रहै ऐसा संमरथ आप ॥17॥
सुन्दर करता राम है भरता और न कोइ।
हरता वहई जानिये ऐसा संमरथ सोइ ॥18॥
जाकी आज्ञा मैं सदा धरती अरु आकास।
ज्यौं राषै त्यौं ही रहैं सुन्दर मानहिं त्रास ॥19॥
पावक पानी पवन पुनि सुन्दर आज्ञा मांहि।
चन्द सूर फिरते रहैं निश दिन आवें जांहि ॥20॥
जाकी आज्ञा मैं रहै सुन्दर सप्त समुंद्र।
सबहीं मांनहिं त्रास कौं देवन सहित पुरंद्र ॥21॥
जाकी आज्ञा मैं रहै ब्रह्मा विष्णु महेस।
सुन्दर अवनि अनादि की धारि रहे सिर सेस ॥22॥
सुन्दर आज्ञा मैं रहै काल कर्म जमदूत।
गण गंधर्व निशाचरा और जहां लगि भूत ॥23॥

---

13. बूंद=बिन्दु, वीर्य। चित्र=रचना, शरीर-रचना, सृष्टि-रचना।

14-15. जड चेतनि संयोग=मनुष्य का जीवन जड़-चेतन का [-अद्भुत] संयोग है। ठाट=रचना, स्वरूपाकार। भिन्न भिन्न करि घाट=विभिन्न तरीके से पात्रों को गढ़ता है।

16-19. अंजन-माया=अंजन [-अविद्या, जड़ प्रकृति] रूप यह मलिन माया। आपु निरंजन=स्वयं निरंजन अर्थात् निर्मल [-निर्विकार] परमात्मा। बहुस्यौं जाइ बिलाइ=फिर विलीन हो जाती है। संताप=कष्ट, क्लेश। करि न्यारा रहै=स्वयं निर्माण करके भी निर्मिति से अलग रहता है। भरता=भरण-पोषण करने वाला। हरता=हरण करने वाला। वहई=वही। ज्यौं राषै त्यौं ही रहे=जैसी उसकी इच्छा [-आज्ञा] होती है, वैसे ही जीवात्मा रहता है। त्रास=भय।

20-23. पावक पानी···मांहि=अग्नि, जल, पवन, चन्द्र, सूर्य आदि सभी प्राकृतिक शक्तियाँ प्रभु-आज्ञा में निरत हैं। सप्त समुंद्र=सप्त सागर। पुरंद्र<पुरन्दर [सं०]=इन्द्र। ब्रह्मा विष्णु महेस=त्रिदेव। अवनि=धरती। अनादि की=प्रारम्भ से ही। सेस=शेषनाग। काल कर्म जमदूत=समय-कृत [-कार्य] और यमराज के अनुचर, यम-दूत। गण गंधर्व=गन्धर्वों का समूह। भूत=प्राणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिध साधक जोगी जती नाइ रहे मुनि सीस।
सुन्दर सबही कहत हैं जै जै जै जगदीस ।।24।।
आज्ञा मांहि सदा रहैं सुन्दर बरुन कुबेर।
अष्ट कुली पर्बत सहित आज्ञा मांहि सुमेर ।।25।।
सुन्दर आज्ञा मैं रहै दशौं दिशा दिग्पाल।
हलै चलै नहिं ठौर तें बीति गये बहु काल ।।26।।
छपन कोटि आज्ञा करैं मेघ पृथी पर आइ।
सुन्दर भेजैं रामजी तहं तहं बरषै जाइ ।।27।।
रिद्धि सिद्धि लौंडी सदा आज्ञा मेटै नांहि।
सुन्दर मानै त्रास अति प्रभु भेजै तहं जांहि ।।28।।
आज्ञा मांहीं लक्षमी ठाढी है कर जोरि।
सुन्दर प्रभु सनमुख रहै दृष्टि सकै नहिं चोरि ।।29।।
आज्ञा मांहें तत्व सब होइ देह कौ संग।
सुन्दर बहुरि जुदे रहैं आज्ञा करैं न भंग ।। 30।।
आज्ञा मांहें रहत हैं सप्त दीप नौ षंड।
सुन्दर प्रभु की त्रास तें कंपै सब ब्रह्मंड ।।31।।
ऐसै प्रभु की त्रास तें कंपै सबही लोक।
बार बार करि कहत हैं सुन्दर तुम कौं धोक ।।32।।
उभै बाहु चहु वाहु पुनि अष्ट बाहु भुज बीस।
सहस्रबाहु नहिं लिषि सकै सुन्दर गुन जगदीस ।।33।।

24-25. सिधि साधिक=सिद्ध और साधक। नाइ रहे=झुका रहे हैं। बरुन कुबेर= जल देवता वरुण और धन के देवता कुबेर। अष्ट कुली पर्बत=अष्ट कुल पर्वत अर्थात् आठ प्रमुख पर्वत। सुमेर=पर्वतराज सुमेरु।

26-27. दिग्पाल=दिक्पाल, दिशा-रक्षक। छपन कोटि मेघ=छप्पन कोटि मेघ प्रभु-आज्ञा से ही बरसते हैं।

28-31. लौंडी=दासी, सेविका। आज्ञा मेटै नांहि=आज्ञा [-मर्यादा] को नहीं टाल सकतीं। लक्षमी=लक्ष्मी। ठाढी है कर जोरि [बिम्ब]=हाथ जोड़े [विनम्र भाव से] खड़ी रहती है। दृष्टि सकै नहिं चोरि [मुहा०]=दृष्टि चुराकर बचा नहीं जा सकता। तत्व=तत्त्व, सूक्ष्म अस्तित्व। बहुरि जुदे रहैं=शरीरान्त के पश्चात चेतन तत्त्व और जड़ काया अलग-अलग रहने-लगते हैं। कंपै सब ब्रह्मंड=सारा ब्रह्माण्ड काँप उठता है।

32-33. गुन जगदीस'''नहिं लिषि सकै=प्रभु [-परमात्मा] के अनन्त गुणों को दो भुजाओं से मनुष्य, चार बाहुओं से विष्णु, अष्ट भुजाओं से दुर्गा, बीस भुजाओं से रावण, हजार भुजाओं से सहस्रबाहु [सहस्राजुन] भी लिख पाने में असमर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकानन चतुराननं पंचानन षटगीस।
दश सहस्रानन कहि थके सुन्दर गुन जगगीस ॥34॥
उभै अष्ट दश द्वादशा अरु कहिये पुनि बीस।
द्वै सहस्र लोचन थके सुन्दर ब्रह्म न दीस ॥35॥
एक रसन चहुं रसन पुनि पंच षष्ट दश आहि।
द्वै तहस्र सुनि सेस के बरनि सकै नहिं ताहि ॥36॥
एक सीस चहुं सीस पुनि पंच सीस षट सीस।
दश सिर और सहस्र सिर नमत सकल जगदीस ॥37॥
सूरित तेरी षूब है को करि सकै बषांन।
बानी सुनि सुनि मोहिया सुन्दर सकल जिहांन ॥38॥
पलक मांहि परगट करै पल मैं धरै उठाइ।
सुन्दर तेरै ष्याल की क्यौं करि जांनी जाइ ॥39॥
ज्यौं का त्यौं ही देषिये सुन्दर सब ब्रह्मंड।
यह कोई जानै नहीं कबकी मांडी मंड ॥40॥
सांई तेरी अगम गति हिकमति की कुरबांन।
सब सिरजै न्यारा रहै सुन्दर यह हैरान ॥41॥

---

34. एकानन=एक मुख मनुष्य। चतुरानन=चतुर्मुखी ब्रह्मा। पंचानन=पंच मुख महादेव। षटगीस=षन्मुख, षट् मुख, कार्त्तिकेय। दश सहस्रानन=दशों सहस्राननों द्वारा भी बखान नहीं किया जा सकता। दश=दस मुख रावण। सहस्रानन=शेष नाग। कहि थके=बखान करते-करते थक गए हैं।

35-36. द्वै सहस्र=दो हजार। लोचन थके=देखते-देखते नेत्र थक गए हैं। ब्रह्म न दीस=ब्रह्म दिखाई नहीं देता, वह तो अनुभव का विषय है। रसन=रसना, जीभ। **टिप्पणी :** साखी 33-36 में वर्णित देवताओं की जिह्वाएँ। यहाँ तक कि शेषनाग की दो सहस्र जिह्वाएँ। सर्प की जीभ बीच से दो फाँक होने से, दो हजार जिह्वाएँ बताई हैं। सर्प को द्वि जिह्व भी कहा जाता है।

37-39. एक सीस···सहस्र सिर=एक शीश—मनुष्य, चहुं शीश--ब्रह्मा, पंचशीश-महादेव, षट् शीश—कार्तिकेय, दश शीश—रावण, सहस्र शीश—शेषनाग। सूरति =स्वरूप। जिहांन=जहान [फा०], संसार, लोक। पल में धरै उठाइ=क्षण में उठाकर अलग रख देता है, स्थान परिवर्तित कर देता है। व्याल=सर्प। ख्याल [अ०]=कल्पना।

40-41. मांडी मंड=मण्डान-मण्डन, सृष्टि, ब्रह्माण्ड [-कब का रचा हुआ है, यह कोई नहीं जानता]। हिकमति=हुनर, कौशल। कुरबांन [अ०]=बलिहारी, न्यौछावर। सब सिरजै न्यारा रहै=सब कुछ सृजन करके भी न्यारा रहता है। हैरान=विस्मित, विलक्षण स्थिति, हैरानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष मसाइक औलिया सिध साधिक मुख मौंन।
वै भी बैठै थाकि करि सुन्दर बपुरा कौंन ॥42॥
प्रीतम मेरा एक तूं सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥43॥
धन्य धन्य मोटा धनी रच्या सकल ब्रह्मंड।
सुन्दर अद्भुत देषिये सप्त दीप नौ षंड ॥44॥
उतपति सांई तैं किया प्रथमहि वो ऊंकार।
तिसतें तीनौं गुन भये सुन्दर सब बिस्तार ॥45॥
तिनका रच्या सरीर यह महल अनूपम एक।
चौरासी लष जूनु ये सुन्दर और अनेक ॥46॥
आपन बैठा गोपि ह्वै सुन्दर सब घट मांहिं।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नांहिं ॥47॥
ऐसी तेरी साहिबी जानि न सक्कै कोइ।
सुन्दर सब देषै सुनै काहू लिप्त न होइ ॥48॥

---

42. शेष=शेख [अ०], पैगम्बर मुहम्मद के वंशज। मसाइक<मशाइख़ [अ० 'शेख' का बहुव०]=पीर लोग, सूफी लोग। औलिया [अ०, वली का बहुव०]='वली' के उत्तराधिकारी, जो मददगार और शुद्ध हृदय माने जाते हैं। सिध साधिक= सिद्ध और साधक पुरुष।

43-46. गुप्त भया किस कारनै=किस कारण से अपरोक्ष बना हुआ है। मोटा धनी= बड़ा मालिक। सप्त दीप नौ षंड=सात-द्वीप और नौ-खण्डों वाली पृथ्वी। ऊंकार ॐकार की उत्पत्ति [स्वामी-] परमात्मा से हुई है। **टिप्पणी :** उपनिषदों में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं, जिनमें परब्रह्म की [-'एकोऽहं बहुस्याम'] इच्छा के साथ ही 'ऊँकार' की उत्पत्ति बताई गई है। अर्थात् 'ओंकार' या 'ॐकार' परब्रह्म की प्रथम अभिव्यक्ति है। तिसतें तीनौं गुन भये=उस ऊँकार से ही तीनों गुणों की अभिव्यक्ति होती है, जिनसे यह सृष्टि, विस्तार को प्राप्त होती है। महल अनूपम=शरीर रूप यह अनुपम महल रचा गया है। जूनु=योनि, चौरासी लाख योनियाँ। **विशेष**—पुरोहित जी ने बताया है कि मूल [क] हस्तलिखित प्रति में 'जनु' की जगह 'जू जु' पाठ है, जिसका अर्थ, वर्षा ऋतु में रेंगने वाले छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़े बताया है। यह पाठ प्रतिलिपिकार का दोष या भ्रम भी हो सकता है, जो 'नु' की जगह 'जु' लिख गया है।

47-49. आपन बैठा गोपि ह्वै=स्वयं गुप्त [-अपरोक्ष] होकर स्थित है। करता हरता भोगता⋯नांहिं=वही कर्त्ता, हर्ता और भोक्ता होते हुए भी लिप्त [-आसक्त] नहीं होता और [-पूरी तरह से] गुप्त भी नहीं है। साहिबी=प्रभाव, यश, संचालन-शक्ति-सामर्थ्य। ज्यौं दर्पन⋯नांहिं=वह परमात्मा ही सब हृदयों में बैठकर उसी-प्रकार सब कुछ करता [-कराता] है और लिप्त [-गुप्त] भी नहीं होता, जैसे दर्पण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करै करावै रामजी सुन्दर सब घट मांहि ।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब है लिपै छिपै कछु नांहि ॥49॥
बाजीगर बाजी रची ताकी आदि न अंत ।
भिन्न भिन्न सब देषिये सुन्दर रूप अनंत ॥50॥
काढि काढि बाहिर करै राते पीरे रंग ।
सुन्दर चांवर धूरि के पंख परेवा संग ॥51॥
कबहुं मिलावै गोटिका कबहूं बीछुरि जांहि ।
सुन्दर नाचै जगत सब ऐसी कल तुझ मांहि ॥52॥
अंजन कीया नैंन मैं सबही राषै मोहि ।
सुन्दर हुन्नर बहुत है कोइ न जांनै तोहि ॥53॥
ब्रह्मादिक शिव मुनि जनां थाके सबही संत ।
सुन्दर कोउ न कहि सकै जाकौ आदि न अंत ॥54॥

में बिम्ब का प्रतिबिम्ब । **टिप्पणी** : गीता में ऐसा ही भाव-श्लोक द्रष्टव्य है—

'ईश्वरः सर्वभतानां हृद्देशेऽर्जुन, तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वं भूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥'—18/61

अर्थात् ईश्वर सर्व प्राणी जनों के हृदयों में वास करता है और अपनी माया की प्रेरणा से उन सब को, चाक पर चढे घट की तरह घुमाता रहता है ।

50. बाजी=खेल, चौपड़ । भिन्न···रूप अनंत=उसकी इस [रचना-] बाज़ी [फा०] =तमाशा [-खेल] में हर मोहरा भिन्न-भिन्न आकार-स्वरूप का दिखाई देता है। **टिप्पणी** : इस सृष्टि में कोई भी दो रचनाएँ [-निर्मिति] एक-सी नहीं हैं, इतनी अनन्त कला-छवियाँ हैं इसमें ।

51-54. काढि काढि बाहिर करै···रंग=निकाल-निकाल कर बाहर करता-रहता है—लाल-पीले आदि अनन्त रंगों में । चांवर धूरि···संग [लोको०]=धूलि धूसरित कबूतर के पंखों को देखा जा सकता है, जो धूलि के चावल के समान होते हैं । कबहुं मिलावै···जांहि=यह बाज़ी का खेल बड़ा विचित्र है, कभी तो गोटियों [-मोहरे, परिवार का संयोजन-] का संयोग दिखाई देता है और कभी वियोग [-हमेशा केलिए बिछोह] होता देखा जाता है । नाचै जगत···तुझ मांहि=हे परमात्मा, तेरे पास ऐसी कल [-कला या यन्त्र] है कि जिसके बल से सारा जगत् नाचता-रहता है । अंजन कीया···मोहि=नेत्रों में ऐसी भुरकी [-जादू] का अंजन लगा दिया है, दृष्टि में ऐसा आकर्षण भर दिया है कि सभी मोहित बने-रहते हैं । हुन्नर=कला, कलाकारी । थाके=थकगए हैं, तेरी सामर्थ्य-जानने में स्वयं असामर्थ्य का अनुभव करने लग जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सब चक्रित भये वचन कह्या नहिं जाइ।
टग टग रहे सु देषते ठगमूरी सी षाइ ।।55।।
बातैं कोउ न कहि सकै थकित भये सिध साध।
सुन्दरहू चुप करि रहे वह तौ अगम अगाध ।।56।।
वचन तहां पहुंचै नहीं तहां न ज्ञान न ध्यांन।
कहत कहत यौं ही कह्यौ सुन्दर है हैरांन ।।57।।
नेति नेति कहि थकि रहे सुन्दर चार्यौं बेद।
अगह अकह अविशेष कौं कोउ न पावै भेद ।।58।।
किनहूं अंत न पाइयौ अब पावै कहि कौंन।
सुन्दर आगें होहिंगे थाकि रहे करि गौंन ।।59।।
लौंन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचिही गई बिलाइ ।।60।।
अनल पंषि आकास मैं उडै बहुत करि जोर।
सुन्दर वा आकास कौ कहूं न पायौ छोर ।।61।।

।। इति समर्थाई कौ अंग ।। 21 ।।

55-56. चक्रित भये=चकित हैं, भौचक्के बने-रहते हैं, विस्मय-विमुग्ध बने रहते हैं। टग टग···मूरी सी षाइ=विमुग्ध हुए टुकुर टुकुर देखते-रहते हैं, जैसे उन्होंने 'ठगमूरी' [-ठग द्वारा दी गई मिठाई] खाली हो, जिसके प्रभाव में अवाक् हो गए हों।

57-58. वचन··· ध्यांन=उस परम पद या परब्रह्म की आदि अन्तमय सम्पूर्ण वास्तविकता जानने तक न तो वाणी की शक्ति पहुँच पाती और न ज्ञान-ध्यान की मति वहाँ तक जाती है। **टिप्पणी :** उस व्यापक सूक्ष्म तत्त्व की अभिव्यक्ति, 'वाणी' अपनी समस्त सामर्थ्य से भी, करने में असमर्थ है। इस आशय के अनेक उदाहरण वेद-उपनिषदों में भी मिलते हैं। मुण्डकोपनिषद् का कथन है—'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।' [-3/1/8]। अर्थात् वह तत्त्व न तो नेत्र से ग्रहण किया जा सकता है न वाणी से और न अन्य इन्द्रियों से और न तप एवं कर्म-विधान से [-उसकी] प्राप्ति सम्भव है। ज्ञान के प्रसाद से ही उस आत्म तत्त्व का साक्षात्कार सम्भव है। नेति नेति···बेद=वेदादि शास्त्र उस पर-ब्रह्म के सम्बन्ध में कहते-कहते अन्त में 'न इति-न इति' कह उठते हैं। अर्थात् उसके विषय में पूरा कह पाना उनकी सामर्थ्य के बाहर है।

59-61. किनहूं अंत न पाइयौ=अब तक तो कोई उस [पर-ब्रह्म-] के विषय में आद्यन्त जानकारी प्राप्त नहीं कर पाया है, तो अब आगे कौन प्राप्त कर पाएगा। थाकि रहे करि गौंन=उस दिशा में गमन करके सब थक कर बैठ गए हैं। लौंन पूतरी उदधि···जाइ [दृष्टा०]=उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने वाले की स्थिति नमक की उस डेली [-डली] की तरह से है जो समुद्र की थाह लेने जाए। उसका थाह प्राप्त करना तो दूर रहा, वह तो बीच में ही विलुप्त [-लय] हो जाती है। अनल पंषि=पक्षी विशेष, जो पक्षियों में आकाश की सर्वाधिक ऊँचाई पर उड़ने केलिए प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 22 ॥ अथ आपने भाव कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : पच्चीस साखियों के इस लघु अंग में 'सुन्दर जैसो भाव है तैसौई गोविन्द' अथवा 'अपनौ भाव है जहां तहां भरपूर' जैसे कथनों के माध्यम से बताया है कि मनुष्य [-जीवात्मा] अपने मनोभाव की ही अभिव्यक्ति, लोक में देखता अथवा देखना चाहता है। इस मूल भाव को द्रोह एवं प्रेम दोनों ही पक्षों में सिद्ध करने केलिए रचनाकार ने अनेक उदाहरण और दृष्टान्त देकर अपने कथन-विश्वास को पुष्ट किया है। सन्त-विचार-पक्ष की प्रस्तुति की दृष्टि से यह अंग महत्त्वपूर्ण है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर अपनौ भाव है जे कछु दीसै आंन।
बुद्धि योग बिभ्रम भयौ दोऊ ज्ञान अज्ञांन ॥1॥
जो यह देषै क्रूर ह्वै तौ वह होत कृतांत।
सुंदर जौ यह साधु ह्वै तौ आगै है सांत ॥2॥
सुन्दर जौ यह हंसि उठै तौ आगै हंसि देत।
जो यह काहू देत है तौ वह आगै लेत ॥3॥

चूर्णिका : 1. अपनौ भाव···आंन=जो कुछ अन्य रूप में दिखाई दे रहा है, वह सब अपने भाव [-भावों] का ही प्रतिबिम्ब है। बुद्धि योग बिभ्रम=इस दृश्य-संसार को देखने में, बुद्धि के संयोग से प्रतिभासित विभ्रम [-भ्रान्ति] ही प्रधान है।

2. जो यह देषै क्रूर···कृतांत=यदि इस दृश्य को [-दृश्य के अंगांगों को] क्रूरता भाव से देखा जाता है, तो यह कृतान्त [-यमराज] की तरह भयानक विकराल दिखाई देता है। यदि इसे साधु भाव से देखा जाता है, तो शान्त [-सात्विक] भाव की प्रतिच्छवि दिखाई देती है। **टिप्पणी** : ये साखी [और अन्य भी-] मानव मन के भाव अर्थात् मनोवैज्ञानिक पक्ष को गहराई से अभिव्यंजित करने में सहयोगी हैं। दर्पण-प्रतिबिम्ब उसी को प्रतिबिम्बित करता है, जो है।

3. जौ यह हंसि देत=यदि यह हँसता है तो उसके साथ हँसी के पक्ष उभर कर आते हैं। यदि यह 'देता' हैं तो 'लेने' के रूप में लौट आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो यह टेढौ होत है आगै टेढौ होइ।
सुन्दर परतष देषिये दर्पन मांहे जोइ ॥4॥
सुन्दर महल संवारि कै राष्यौ कांच लगाइ।
दैव योग सुनहां गयौ एक अनेक दिषाइ ॥5॥
अपनी छाया देषि कै कूकर जानै आंन।
सुन्दर अति ही जोर करि भुसि भुसि मूवौ स्वांन ॥6॥
सिंह कूप परि आइ कैं देषी अपनी छांहि।
सुन्दर जान्यौ दूसरौ बूडि मुवौ ता मांहि ॥7॥
फटिक सिला सौं आय करि कुंजर तोरै दन्त।
आगै देष्यौ और गज सुन्दर अज्ञ अतित ॥8॥
सुन्दर याकै ऊपजै काम क्रोध अरु मोह।
याही कै ह्वै मित्रता याही कै ह्वै द्रोह ॥9॥
आपुहि फेरी लेत है फिरते दीसै आंन।
सुन्दर ऐसै जानि तूं तेरौ ही अज्ञांन ॥10॥

---

4. परतष···जोइ=दर्पण [-हृदय] के मध्य प्रत्यक्ष ही [-स्वयं ही] देखकर अनुभव कीजिए।

5. राष्यौ कांच लगाइ=सुसज्जित सुन्दर महल में शीशे की पर्त लगाकर रखा। दैव योग=संयोग से। सुनहां=श्वान, कुत्ता। एक अनेक दिषाइ=एक कुत्ते को, शीशे की पर्त के कारण, अनेक कुत्ते [-अपने ही प्रतिबिम्ब] दिखाई देते हैं। इसी-प्रकार भ्रान्ति [-मोह की] पर्त के कारण, आत्मन् को जीवात्मन् रूप में अनेकत्व दिखाई देता है।

6-8. छाया=प्रतिबिम्ब, परछाईं। कूकर=कुत्ता। आंन=अन्य। भुसि भुसि मूवौ स्वांन [दृष्टा०]=भूंस-भूंस कर अर्थात् भौंक-भौंक कर, अन्य प्रतिद्वन्द्वी समझते हुए, कुत्ता मर मिटता है। सिंह···छांहि [दृष्टा०]=शेर जब कुएँ पर आकर, कूप-जल में अपना ही प्रतिबिम्ब देखता है, तो अन्य सिंह समझते हुए उसमें कूद कर अपने प्राण गँवा देता है। फटिक सिला···अतित [दृष्टा०]=स्वच्छ स्फटिक शिला में अपने प्रतिबिम्ब को ही, अन्य प्रतिद्वन्द्वी हाथी समझते हुए गज, दन्त-भिड़न्त करके अपने ही दाँत तुड़वा-बैठता है। अज्ञ=मूर्ख। अतित [वि०]=अत्यन्त। **विशेष**—यहाँ 'अतित' अनुप्रासान्त रूप में दोषपूर्ण लगता है। 'अत्यन्त' प्रयोग हो सकता है। क्योंकि, इससे अधिक मात्रा-दोष भी नहीं होगा।

9-10. याकै=इस जीवात्मा के। द्रोह=शत्रुता, विरोधी भाव। आपुहि फेरी···आंन [दृष्टा०]=बच्चा यद्यपि स्वयं चक्कर खाता है, पर उसे दूसरे घूमते दिखाई देते हैं। अर्थात् अपनी परिक्रम वृत्ति [-घूम] का प्रभाव अन्यों पर देखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर याकै शंक ह्वै याही ह्वै निहसंक।
याही सूधौ ह्वै चलै याही पकरै बंक ॥11॥
सुन्दर याकै अज्ञता याही करै बिचार।
याही बूडै धार मैं याही उतरै पार ॥12॥
सुन्दर अपनै भाव करि पूजै देवी देव।
यह मैं पायौ पुत्र धन बहुत करी तीं सेव ॥13॥
सुन्दर सूकै हाड कौं स्वान चचोरै आइ।
अपनौई सुख फोरि कै लोही चाटै षाइ ॥14॥
सुन्दर अपने भाव करि आप कियौ आरोप।
काहू सौं सन्तुष्ट ह्वै काहू ऊपर कोप ॥15॥
अपनौई सब भाव है जो कछु दीसै और।
सुन्दर समुझै आतमा तब याही सब ठौर ॥16॥
नीचै तैं नीचै सही ऊंचे ऊपरि ऊंच।
सुन्दर पीछै तैं पछै आगै कौं न पहूंच ॥17॥
बाहिर भीतरि सारिषौ व्यापक ब्रह्म अखण्ड।
सुन्दर अपने भाव तें पूरि रह्यौ ब्रह्मण्ड ॥18॥
याही देषत सूर सौ याही देषत चन्द।
सुन्दर जैसौ भाव है तैसौई गोबिन्द ॥19॥

11-12. शंक···निहसंक=शंकित और अशंकित होने की स्थिति अपनी ही चेतना में विद्यमान है। बंक=बांकापन, वक्रता। अज्ञता=नासमझी। धार=मझधार, भवसागर। उतरै पार=उद्धार प्राप्त करता है।

13. अपने भाव···देवी देव=अपनी भाव-निष्ठा के कारण ही, वैसा मान कर, देवी-देवताओं की पूजा करता है। यह मैं···सेव=उस [देवी-देवता] की सेवा के फलस्वरूप ही मैंने पुत्र-रत्न प्राप्त किया है, ऐसा वह अपने भाव के कारण ही मान लेता है। तीं=उसकी।

14-16. सूकै हाड=शुष्क हड्डी। स्वान<श्वान=कुत्ता। चचोरै=चचोरता है, चूसता है। अपनौई···चाटै षाइ [दृष्टा०]=हड्डी की नोंक से अपना मुख लोहू-लुहान करके वह स्वयं के रक्त का स्वाद लेता-रहता है। विशेष—यहाँ 'लोही' [राज० -हि०] प्रयोग 'लोहू' केलिए प्रयुक्त है। कबीर ने भी इसका प्रयोग किया है। आरोप=आरोपण। कोप=क्रोध। अपनौई···और=अपना ही भाव अन्य के रूप में दिखाई देता है।

17-19. पीछै तें पछै···पहूंच=अपना ही भाव पीछे से पीछे तक और आगे वहाँ तक जिसके आगे कोई पहुँच [-गति] न हो, है। बाहिर भीतरि सारिषौ=बाहर-भीतर समान रूप से विद्यमान। ब्रह्म अखण्ड=वर्तमान-व्यापक-निरन्तरं-अभेद ब्रह्म। पूरि रह्यौ=परिपूर्ण है। याही=इसी भाव के परिणामस्वरूप। जैसो भाव···गोबिन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याही देषत नूर कौं याही देषत तेज।
याही देषत जोति कौं सुन्दर याकौ हेज ॥20॥
सुन्दर अपने भाव तें जन की करै सहाइ।
बाहिर चढि कै बीठलौ दुष्टहि मारै आइ ॥21॥
सुन्दर अपने भाव तें मूरत पीयौ दुद्ध।
ठाकुर जान्यौं सत्य करि नांमां कौ उर सुद्ध ॥22॥
सुन्दर अपने भाव तें रूप चतुर्भुज होइ।
याकौं ऐसौई दृसै वाकै रूप न कोइ ॥23॥
काहू मान्यौ सींग सौ हृदये उपज्यौ चाव।
सुन्दर तैसौई भयौ जाकै जैसौ भाव ॥24॥
काहू सौं अति निकट है काहू सौं अति दूरि।
सुन्दर अपनौ भाव है जहां तहां भरपूरि ॥25॥

॥ इति आपने भाव कौ अंग ॥ 22 ॥

[लोको॰]=जिसका जैसा भाव होता है, वैसा ही परमात्म-स्वरूप अनुभव में आता है। **विशेष**—'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।' [-तुलसी]।

20. नूर=प्रकाश, आत्म-प्रकाश। जोति=ज्योति। हेज=प्रेम-भाव, स्नेह।

21. जनकी करै सहाइ=परमात्मा अपने भक्त की सहायता करता है। बीठलौ= बीठल, विट्ठल परमात्मा जो महाराष्ट्र में आराध्य देव है। नामदेव ने इन्हीं बीठल-देव [-विष्णु के अवतार] की आराधना की थी। दुष्ट=अन्यायी, अत्याचारी।

22-25. मूरत पीयौ दुद्ध[अन्तः॰]=मूर्ति ने दूध पिया था। यह अन्तर्कथा नामदेव के जीवन से जुड़ी हुई है। कहा जाता है कि नामदेव के सत्याग्रह को देखते हुए मूर्ति [-बिठोवा] ने दुग्ध-पान किया था। यह कथा 'भक्तमाल' में वर्णित है। ठाकुर जान्यौ सत्य करि=ठाकुर [-देव] की मूर्ति सत्य मानी। नांमां कौ उर सुद्ध= नामदेव का हृदय शुद्ध-पवित्र था। चतुर्भुज रूप=चतुर्भुजाधारी विष्णु देवता। दृसै=दिखाई देता है। मान्यौ सींग सौ दक्षिण के कुछ आस्थाशील [-लिंगाइत] श्रृंग [-लिंग] रूप में देव-प्रतीक पूजते हैं। जहां तहां भरपूर=वह सर्वत्र परिपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 23 ।। अथ स्वरूप विस्मरण कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : दृष्टान्त-मुहावरे एवं लोकोक्तियों से बहुल इस 50 साखियों के अंग में, अज्ञान-आवरण के कारण विस्मृति होने पर चेतना या जीवात्मा, कैसी-कैसी भ्रान्तियों में फँस जाती है, इसी का सन्त-मत के अनुरूप निरूपण किया गया है। इसमें 'विस्मरण' को बखूबी पुष्ट किया गया है। विस्मृति या विभ्रमित दशा की मानसिकता का अनुमान इस एक ही पंक्ति से लगाया जा सकता है कि 'स्वयं सूर्य ही, भ्रम के कारण, स्वयं को ढूंढता फिर रहा है और चन्द्रमा, चन्द्रमा को ['रवि रवि कौं ढूंढत फिरै चन्दहि ढूंढै चन्द']। सुन्दरदास ने अपने विचार की प्रस्तुति वेदान्त की पृष्ठभूमि में की है। मूलपाठ देखिए—

साषी : सुन्दर भूलौ आपकौं षोई अपनी ठौर।।
देह मांहिं मिलि देह सौ भयौ और कौ और।।1।।
जा घट की उनहारि है तैसौ दीसत आहि।
सुन्दर भूलौ आपु ही सो अब कहिये काहि।।2।।
हाथी मांहें देषिये हाथी कौ अभिमांन।
सुन्दर चीटी मांहिं रिस चीटी कै अनुमांन।।3।।
सिंह मांहिं है सिंह सौ स्याल मांहिं पुनि स्याल।
जैसी घट उनहार है सुन्दर तैसौ ष्याल।।4।।

चूर्णिका : 1-2. भूलौ आपकौं=अपने आप को भुला कर, स्वरूप विस्मृत करके, अपनी स्थिति खो देता है, भ्रान्ति की दशा में पड़ा-रहता है। भयौ और कौ और=भ्रान्ति के परिणामस्वरूप कुछ और का और हो जाता है। उनहारि=अनुहारि, समरूपता, सादृश्य। आहि=है। अब कहिये काहि=जब स्वयं ही विस्मृत [-विभ्रमित] है, तो फिर किस से क्या कहा जाए ?

3-4. चीटी मांहिं रिस···अनुमांन=चींटी की अपने परिमाण में ही रिस[-गुस्सा] होती है और हाथी का अभिमान हाथी के आकार का होता है। स्याल=शृगाल, गीदड़। घट उनहार=हृदय[-पात्र] के अनुरूप ही उसकी छवि होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस मांहिं है हंस सौ मोर मांहिं है मोर।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैषौई तिहिं वोर ।।5।।
बीछू मैं बीछू भयौ सर्प मांहि है सांप।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैसौ ह्वौ आप ।।6।।
बांदर मैं बांदर भयौ मच्छ मांहि पुनि मच्छ।
सुन्दर गाइनि मैं गऊ बच्छनि मांहे बच्छ ।।7।।
जलचर थलचर ब्योमचर गनै कहां लौं कोइ।
सुन्दर जैसौ घट जहां रह्यौ तिसौही होइ ।।8।।
सुन्दर पावक दार कै भीतरि रह्यौ समाइ।
दीरघ मैं दीरघ लगै चौरे मैं चौराइ ।।9।।
रंचक काढै मथन करि बहुरि होइ बलवन्त।
सुन्दर सबही काठ कौं जारि करै भस्मन्त ।।10।।
सुन्दर जड कै संग तें भूलि गयौ निज रूप।
देषहु कैसौ भ्रम भयौ बूडि रह्यौ भव कूप ।।11।।
सुन्दर इन्द्रिय स्वाद सौं अति गति बांध्यौ मोह।
मीन न जानै बावरौ निगलि गयौ सठ लोह ।।12।।
मरकट मूठ न छाडई बंध्यौ स्वाद सौं जाइ।
सुन्दर गर मैं जेवरी घर घर नाच्यौ आइ ।।13।।

5-6. मोर=मयूर। तैसोई तिहिं वोर - वैसा ही उस ओर होता है। बीछू<वृश्चिक [सं०]=बिच्छू। ह्वौ=होता है।

7-10. मच्छ=मगर-मच्छ, मकर। गाइनि मैं गऊ=गायों में गाय के रूप में। बच्छनि मांहे बच्छ=वत्स-बछड़ों के बीच बछड़े जैसा। ब्योमचर=आकाशचारी, गगनचर, खग। पावक दार कै भीतरि=काष्ठ [-लकड़ी] के भीतर अग्नि छिपी हुई है। चौरे मैं चौराइ=अग्नि का आकार चौड़े काष्ठ में चौड़ा होता है। रंचक काढै मथन करि=काष्ठ-मन्थन [-रगड़] करके अग्नि को थोड़ा-सा चमका देते हैं [फिर वही-]। बलवन्त=बलवान् [-प्रचण्ड] रूप धारण कर लेती है। जारि करै भस्मन्त=जलाकर भस्म कर देती है, राख कर डालती है।

11-13. जड कै संग=जड़ पदार्थ, भौतिक पदार्थों के साथ। निज रूप=स्वरूप। बूडि रह्यौ भव कूप=[भ्रम-] भ्रान्ति के कारण संसार रूप कुएँ में डूबा रहता है। इन्द्रिय स्वाद=इन्द्रिय-भोग, इन्द्रियों का आस्वाद। अति-गति=अतिशय। मीन न जानै···लोह [दृष्टा०]=ना समझ मछली जिह्वा-स्वाद के कारण लोह-काँटे [-बंसी] को अपने मुँह में डाल लेती है और उसमें अपने जबड़े को फँसा देती है। **विशेष**—'मीन' का पुलिंग प्रयोग है। मूठ=मुट्ठी। गर मैं जेवरी=गले में जेवरी-फन्दा लटकाए घर-घर नाचने केलिए [स्वाद के कारण-]विवश हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसें मदिरा पान करि होइ रह्या उनमत्त।
सुन्दर ऐसें आपु कौं भूल्यौ आतम तत्त ॥14॥
ज्यौं ठगमूरि षात ही रहै कछू नहिं बुद्धि।
यौं सुन्दर निजरूप की भूलि गयौ सब सुद्धि ॥15॥
जैसें बालक शंक करि कंपि उठै भय मांनि।
ऐसें सुन्दर भ्रम भयौ देह आपु कौ जांनि ॥16॥
जे गुन उपजै देह कौं सुख दुख ब्रहु संताप।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ ते सब मांनै आप ॥17॥
शीत उष्ण क्षुधा तृषा मोकौं लागैं आइ।
सुन्दर या भ्रम की नदी ताही मैं बहि जाइ ॥18॥
अंध बधिर गूंगौ भयौ मेरौ कौंन हवाल।
सुन्दर ऐसौ मांनि करि बहुत फिरै बेहाल ॥19॥
मिलि करि या जड देह सौं रह्यौ तिसौही होइ।
सुन्दर भूलौ आपु कौं सुधि बुधि रही न कोइ ॥20॥
सुन्दर चेतनि आतमा जड सौं कियौ सनेह।
देह षेह सौं मिलि रह्यौ रत्न अमोलक येह ॥21॥
दौरि दौरि जड देह कौं आपुहि पकरत आइ।
सुन्दर पेच पर्‌यौ कठिन सकै नहीं सुरझाइ ॥22॥

---

14. मदिरा पान करि=[सुरा-] शराब पीकर। उनमत्त=मदहोश। आतम तत्त= आत्म तत्त्व।

15-18. ठगमूरि=ठग के द्वारा दी जाने वाली मिठाई। सुद्धि=शुद्धि, शुद्धता, सात्विकता। कंपि उठै=काँप उठता है। देह आपु कौ जांनि=भ्रमवश अपने को शरीर मान कर। संताप=पीड़ा, त्रय ताप जन्य क्लेश। या भ्रम की···बहि जाइ [रूपक]=भ्रान्ति ही भ्रम-नदी है, जिसमें विस्मरण के कारण लोग बहते-रहते हैं।

19-22. अंध बधिर गूंगौ भयौ=अन्धा-बहिरा और गूँगा [-मान लेता] हो जाता है। बेहाल=बेसुध, परेशान, व्याकुल। तिसौहीं=वैसा ही। सुधि बुधि=होश-हवास। जड सौं कियौ सनेह=चेतन आत्मा जब जड़ पदार्थों से आसक्ति बाँध लेती है तो। रत्न अमोलक येह=यह आत्मा रूप बहुमूल्य रत्न। पेच पर्‌यौ कठिन=जड़-चेतन का यह सम्बन्ध ही 'जीव' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। तुलसी ने कहा है— 'जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।' यही 'पेच' है। सकै नहीं सुरझाइ=जड-चेतन की इस ग्रन्थि को सुलझा पाना कठिन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूवा पकरि नली रह्यौ वह कहुं पकर्यौ नांहि।
ऐसैं सुन्दर आपु सौं पर्यौ पींजरा मांहि ।।23।।
ज्यौं गुंजनि कौ ढेर करि मरकट मांनै आगि।
ऐसैं सुन्दर आप ही रह्यौ देह सौं लागि ।।24।।
बिप्र ह्वै रह्यौ शूद्र सौ भूलि गयौ ब्रह्मत्व।
सुन्दर ईश्वर आपही मांनि लियौ जीवत्व ।।25।।
राजा सोयौ सेज परि भयौ स्वप्न मंहि रंक।
सुन्दर भूलौ आपकौं देह लगाई पंक ।।26।।
ज्यौं नर बहुत स्वरूप है भ्रम तें कहै कुरूप।
सुन्दर भूलौ आपकौं आतम तत्व अनूप ।।27।।
बनिया मूंधौ ह्वै रह्यौ टूंगै फेर्यौ हाथ।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ मेरै तौ नहिं माथ ।।28।।
ज्यौं मनि कोऊ कंठ थी भ्रम तैं पावै नांहि।
पूछत डोलै और कौं सुन्दर आपुहि मांहि ।।29।।
सुन्दर चेतनि आपु यह चालत जड की चाल।
ज्यौं लकरी के अश्व चढि कूदत डोलै बाल ।।30।।

---

23. सूवा पकरि···नांहि [दृष्टा०]=पक्षी पकड़ने की चकरीदार नलिका को जब तोता पंजों से पकड़कर बैठता है, तो नीचे की ओर झूलते हुए लटकर ऐसा समझता है कि नलिका ने उसे पकड़ रखा है, जबकि यह केवल उसका भ्रम मात्र है। पर्यौ पींजरा मांहि=अपने ही भ्रम के कारण वह पिंजड़े में पकड़ कर डाल दिया जाता है।

24-26. ज्यौं गुंजनि कौ ढेर···आगि [दृष्टा०]=जैसे [घुंघची, चिरमटी-] गुँजाओं के ढेर को, उनकी सुर्खी को देखकर, बन्दर आग मान बैठता है। यह भ्रान्ति का उदाहरण है। विप्र=ब्राह्मण। ब्रह्मत्व=ब्राह्मणत्व, ब्रह्मभाव। ईश्वर···जीवत्व=स्वरूप-भ्रम के कारण ईश्वर अपने आप ही 'जीवत्व' संज्ञा से अभिहित हो जाता है। देह लगाई पंक=भ्रम [-स्वप्न] में अपने शरीर से कीचड़ लगा बैठता है।

27-30. कुरूप=असुन्दर। अनूप=अनुपम। मूंधौ=उलटा, नीचे को सिर किए हुए। टूंगै फेर्यौ हाथ=अपने नितम्ब पर जब हाथ फेरता है, तो लगता है कि केश वाला उसका सिर चिकना [-सपाट] कैसे हो गया? और तब मान बैठता है कि उसके सिर है ही नहीं। यह 'भ्रान्ति' का उदाहरण है। मनि=मणि, रत्न। चेतनि आपु···चाल=यह चेतनात्मा, जड़ के साथ रहते-रहते, जड़ पदार्थ जैसी अपनी [-बोध रहित दशा-] स्थिति समझ लेता है। ज्यौं लकरी···बाल [दृष्टा०]=जैसे कोई बच्चा डण्डे [-बाँस-लकड़ी] का घोड़ा बना कर, स्वयं कूदता हुआ, घोड़ा कुदाता रहता है और घोड़ा कूद रहा है, ऐसा कहता [-समझता] है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतनि मांहें मिल रह्यौ तातें हूवौ भूत।
सुन्दर भूलौ आपु कौं उरझ्यौ नौ मन सूत ॥31॥

आपुहि इन्द्री प्रेरि कैं आपुहि मांनै सुक्ख।
सुन्दर जब संकट परै आपुहि पावै दुःख ॥32॥

यौं भ्रम तें बहु दिन भये बीति गयौ चिरकाल।
सुन्दर लह्यौ न आपुकौं भूलि पर्‌यौ भ्रमजाल ॥33॥

देह मांहिं ह्वै देह सौ कियौ देह अभिमांन।
सुन्दर भूलौ आपु कौं बहुत भयौ अज्ञांन ॥34॥

कामी हूवौ काम रत जती हुवौ जत साधि।
सुन्दर या अभिमान तें दोऊ लागी ब्याधि ॥35॥

कतहू भूलौ नीच ह्वै कतहू ऊंची जाति।
सुन्दर या अभिमांन करि दोनौं ही कैं राति ॥36॥

कतहू भूलौ मौंनि धरि कतहू करि बकबाद।
सुन्दर या अभिमान तें उपज्यौ बहुत बिषाद ॥37॥

सुन्दर यौं अभिमान करि भूलि गयौ निज रूप।
कबहूं बैठै छांहरी कबहूं बैठै धूप ॥38॥

---

31. भूतनि मांहे···भूत=भूतों [-प्राणियों, प्रेतों] के बीच में रहकर वैसा ही हो जाता है। उरझ्यौ नौ मन सूत [मुहा०]=नौ मन सूत उलझ गया है अर्थात् जड़-चेतन की ग्रन्थि के कारण उलझाव [-भ्रान्ति या पेच] पड़ा हुआ है।

32-34. प्रेरि कैं=प्रेरित कर-करके। चिरकाल=भ्रान्ति में बहुत समय बीत गया या बीत जाता है। लह्यौ···भ्रम जाल=अपने स्वरूप को प्राप्त न करके, भ्रान्ति के कारण भ्रम-जाल में पड़ा-रहता है। देह मांहि···अभिमांन=देह में देह का [शरीर-] अभिमान करता है।

35-36. कामी हूवौ काम रत=विषयी इन्द्रिय-विषयों में डूबा [-आसक्त बना] रहता है। जती···जत साधि=यति [-साधक] तप करते हुए अपने को तपस्वी मान लेता है। दोऊ लागी ब्याधि=कामी होना या यति मान लेना दोनों ही भ्रम के परिणाम हैं और व्याधि [-क्लेशकारक] हैं। कतहू भूलौ···ऊंची जाति=भ्रम के कारण कभी अपने को नीचा मान लेता है, कभी उच्च वंश का। दोनौं ही कैं राति-यह दोनों प्रकार का मानना भ्रान्ति जन्य है और अज्ञान [-अन्धकार] रूप है।

37-38. बकबाद=बकवास, निरर्थक बातें। बिषाद<विषाद=खेद, दुःख। निज रूप=स्व-रूप। छांहरी=छाया, सुख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ छूटौ अपनौ भौंन।
दिशा भूल जानै नहीं पूरब पच्छिम कौंन ॥39॥
सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागौ भूत।
काहू सौं बनिया कहै काहू सौं रजपूत ॥40॥
सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागी बाइ।
कहै और की औरई जो भावै सो षाइ ॥41॥
काहू सौं बांभन कहै काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ यौं ही मारै गाल ॥42॥
ज्यौं अमली की ऊंघतें परी भूमि पर पाग।
वह जानै यह और की सुन्दर यौं भ्रम लाग ॥43॥
जैसें चिल्लीसेष हू कियौ मनोरथ और।
सुन्दर भूलौ आपु कौं यौं हूवौ घर चौर ॥44॥
देह आपकौं जानि करि ब्राह्मन क्षत्रिय होइ।
बैश्य सूद्र सुन्दर भयौ अपनी सुधि बुधि षोइ ॥45॥
देह पुष्ट ह्वै दूबरी लगै देह कौं घाव।
चेतनि मांनै आपुकौं सुन्दर कौंन सुभाव ॥46॥
देह बाल अरु बृद्ध ह्वै जोबनि ह्वै पुनि देह।
सुन्दर मानैं आपुकौं देषहु अचिरज येह ॥47॥

39-40. अपनौं भौंन=अपना भवन-आवास, निज स्थान। दिशा···पच्छिम कौंन [कहा०]=दिग्भ्रमित व्यक्ति को, दिशा-भ्रमित होने पर, पूर्व-पश्चिम का भान नहीं रहता। काहू सौं···रजपूत [कहा०]=प्रेत-बाधा वाला व्यक्ति, सुधि-बुधि खो जाने के कारण, किसी को 'वनिया' बताने लगता है, तो किसी को 'राजपूत' कहकर पुकारता है।

41-43. जाकौं लागी बाइ=जिसे वायु का प्रकोप हो जाता है। कहै और की औरई= वह कुछ-की-कुछ बोलने लगता है अर्थात् उसका वाणी-बोध समाप्त हो जाता है। चंडाल=चाण्डाल, क्रूर कर्म करने वाला। यौं ही मारै गाल [मुहा०]=यों ही गाल बजाता-रहता है। अमली=मदहोश, शराबी। ऊंघतें=नशे में, मदहोश [उनींदे-] होने पर। परी भूमि पर पाग=पगड़ी ज़मीन पर गिर पड़ी। यौं भ्रम लाग=इसप्रकार भ्रम ग्रस्त हो जाता है।

44-47. चिल्ली सेष=शेख चिल्ली। एक सूफी सन्त, इनका नाम कपोल कल्पना करने वाले आदमी के प्रतीक के साथ जुड़ गया है। मनोरथ=मनोकामना। देह आपकौं···होइ=अपने आपको देह [-भौतिक आकार] मान लेने के कारण ही अपने को ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र मान लेता है। सुधि बुधि षोइ=स्मृति खोकर। दूबरी=दुबली, क्षीण। देह···पुनि देह=शरीर को ही बालक-युवक और वृद्ध मान लेता है। अचिरज=आश्चर्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिहीन अति बावरौ देह रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर चेतनता गई जडता रही समाइ 48॥
सान्यौ घर मांहे कहै हूं अपने घर जांउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौ भूलौ अपनौ ठांउं ॥49॥
रवि रवि कौं ढूंढत फिरै चन्दहि ढूंढै चन्द।
सुन्दर हूवौ जीव सौ आपु इहै गोबिन्द ॥50॥

॥ इति स्वरूप विस्मरण कौ अंग ॥ 23 ॥

48-50. देह रूप ह्वै जाइ=शरीर के सान्निध्य से जड़ शरीर जैसा अपने को मान लेता है, जिससे चेतनता विलुप्त हो जाती है और जड़ता आच्छादित बनी-रहती है। सान्यौ घर···जांउं [उदा०]=स्याना, बावला अपने घर के अन्दर ही स्थिर रहकर कहता है कि मुझे अपने घर जाना है। अपनौ ठांउं=अपना स्थान, निज स्थान, निज स्वरूप। रवि रवि···चन्द [कहा०]=सूर्य सूर्य को ढूंढ़ता-फिरता है और चन्द्रमा चन्द्रमा को। आश्चर्य यह है कि स्वयं गोबिन्द अपने को 'जीव' मान बैठा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 24 ।। अथ सांख्य ज्ञान कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की 61 साखियों में, इसी नाम के 'सवैया अंग [-25] के 39 सवैया-कवित्त छन्दों का सार वर्णित है। सिद्धान्त की दृष्टि से सांख्य तत्त्व-चिन्तन का विचार-पक्ष इस अंग का मुख्य वर्ण्य-विषय है। पर, सुन्दरदास ने वेदान्त के जीव, आत्मन्-परब्रह्म चिन्तन को भी इस अंग में अनुस्यूत किया है। यहाँ विवेक-ख्याति केलिए 'सृष्टि' का, अनुलोम-प्रतिलोम क्रम-से, चिन्तन-विवेचन अपेक्षित बताया है। साखी-अंगों के क्रम में, ऐसा लगता है कि रचनाकार ने किसी विशेष अनुक्रम [-तारतम्य]-व्यवस्था [-योजना] को ध्यान में रखा है। इसीलिए अंग की अन्तिम साखी या साखियों में अगले अंग का उल्लेख प्रायः देखा जा सकता है। इस अंग को पढ़कर सुन्दरदास के विचारक एवं दार्शनिक पक्षों में परस्पर समन्वय की प्रवृत्ति दिखाई देती है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर सांख्य बिचार करि संमुझे अपनौ रूप।
नहितर जड के संग तें बूडत है भव कूप ।।1।।
माया कै गुन, जड सबै आतम चेतनि जानि।
सुन्दर सांख्य बिचार करि भिन्न भिन्न पहिचानि ।।2।।

चूर्णिका : 1-2. सांख्य विचार करि=सांख्य-सिद्धान्त पर विचार करते हुए अपने स्वरूप को समझना चाहिए। नहितर=नहीं तो। बूडत है भव कूप=अन्यथा चेतना, जड़-पदार्थों के संयोग के फलस्वरूप, संसार-कूप में डूबती रहती है। सांख्य···पहिचानि= सांख्य-सिद्धान्त में पुरुष-प्रकृति के भिन्नतत्व को समझकर, गुणों की जड़ता एवं आत्मा का चैतन्य समझना चाहिए। **टिप्पणी :** सांख्य मत में 25 तत्त्व गिनाए गएहैं, परन्तु इसप्रकार से नहीं। वहाँ 24वाँ तत्त्व 'प्रकृति' है और 25वाँ 'पुरुष' [दे०—सां० का०, का० 3]। वे इसप्रकार हैं—5 महाभूत + 5 कर्मेन्द्रियाँ + 5 ज्ञानेन्द्रियाँ + 5 तन्मात्राएँ + 1 मन + 1 अहंकार + 1 प्रकृति + 1 पुरुष [=25 तत्त्व]। सुन्दरदास ने वेदान्त-चिन्तन को भी इसमें अनुस्यूत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंच तत्व कौ देह जड सब गुन मिलि चौवीस।
सुन्दर चेतनि आतमा ताहि मिलै पच्चीस ॥3॥
छब्बीसवौं सु ब्रह्म है सुन्दर साक्षी भूत।
यौं परमातम आतमा यथा बाप तें पूत ॥4॥
देह रूपई ह्वै रह्यौ देह आपकौं मानि।
ताही तें यह जीव है सुन्दर कहत बषांनि ॥5॥
देह भिन्न हौं भिन्न हौं जब यह करै बिबेक।
सुन्दर जीव न पाइये होइ एक कौ एक ॥6॥
क्षीण सपुष्ट शरीर है शीत उष्ण तिहिं लार।
सुन्दर जन्म जरा लगै यह षट देह विकार ॥7॥
क्षुधा तृषा गुन प्रान कौं शोक मोह मन होइ।
सुन्दर साक्षी आतमा जानै बिरला कोइ ॥8॥
जाकी सत्ता पाइ करि सब गुन ह्वै चैतन्य।
सुन्दर सोई आतमा तुम जिनि जानहुं अन्य ॥9॥
बुद्धि भ्रमै मन चित्त पुनि अहंकार बहु भाइ।
सुन्दर ये तौ तैं भ्रमैं तूं क्यौं इनि संग जाइ ॥10॥

---

3. पंच तत्व···चौबीस-पच्चीस=पंच भूतात्मक शरीर चौबीस तत्त्वों से निर्मित है। पच्चीसवाँ तत्त्व यहाँ आत्मन् बताया है और छब्बीसवाँ परब्रह्म।

4-5. साक्षी भूत=साक्षी, साखी, द्रष्टा। यौं परमात्मा···पूत [दृष्टा०]=इसप्रकार जैसे पिता से पुत्र क्रम रहता है, वैसे। देह रूपई ह्वै रह्यौ=शरीरस्थ आत्मन् जीवात्मा रूप में, शरीर रूप ही हो जाता है। यही **'जीव'** संज्ञा से अभिहित होता है।

6-8. देह भिन्न···बिबेक=शरीर अलग है और मैं चेतन-आत्मन् पृथक् सत्ता हूँ, यह विचार करने पर ही विवेक-ख्याति होती है, तब 'जीव' अस्मिता समाप्त होकर एकमेक चेतना [-सत्ता] शेष रहती है। क्षीण सपुष्ट=दुर्बल और सुपुष्ट रूप में शरीर। लार=लगा हुआ। जन्म जरा लगै=जन्म और बुढ़ापा अथवा जन्म-मरण उसके साथ लगा रहता है। षट देह विकार=शरीर के ये षट् विकार हैं। क्षुधा···प्रान कौं=भूख-प्यास ये प्राण के गुण हैं। शोक मोह···होइ=शोक-मोह यह मन के गुण हैं। साक्षी आतमा=आत्मन् तो साक्षी भर है। **टिप्पणी :** इसी अर्थ-व्यंजना को लेकर सन्तों का 'साखी' छन्द प्रचलन में आया है। बिरला<विरल [सं०]=कोई-कोई।

9-10. सत्ता पाइ करि=जिसकी सत्ता-अस्मिता प्राप्त करके। जिनि जानहुं अन्य=अन्य न समझो। बहु भाइ=अनेक प्रकार से। तूं=तू, चेतन आत्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोत्र त्वचा दृग नासिका रसना रस कौं लेत।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमैं तूं क्यौं बांध्यौ हेत ।।11।।
बाक्य पानि अरु पाद पुनि गुदा उपस्थहि जांनि।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमैं तूं क्यौं लीने मांनि ।।12।।
सुन्दर तूं न्यारौ सदा क्यौं इन्द्रिनि संग जाइ।
ये तो तेरी शक्ति करि बरतैं नाना भाइ ।।13।।
सुन्दर मन कौं मन कहै बहुरि बुद्धि कौं बुद्धि।
तोहि आपने रूप की भूलि गई सब सुद्धि ।।14।।
कहै चित्त कौं चित्त पुनि सुन्दर तोहि बषानि।
अहंकार कौं है अहं जानि सकै तो जानि ।।15।।
सुन्दर श्रवणनि कौं श्रवण आहि नैंन कौं नैंन।
नासा कौं नासा कहै अरु बैननि कौं बैंन ।।16।।
सुन्दर सिर कौं सीस है प्राननि कौं है प्रांन।
कहत जीव कौं जीव सब शास्तर बेद पुरांन ।।17।।
सुन्दर तूं चैतन्य घन चिदानंद निज सार।
देह मलीन असुच्चि जड बिनसत लगै न बार ।।18।।
सुन्दर अविनाशी सदा निराकार निहसंग।
देह बिनश्वर देषिये होइ पलक मैं भंग ।।19।।

11-12. श्रोत्र त्वचा दृग नासिका रसना=कान-त्वचा-नेत्र-नाक-जीभ ये ज्ञानेन्द्रियाँ। रस-लेत=अपने-अपने विषयों का आस्वाद लेती-रहती हैं। हेत=सम्बन्ध। बाक्य-पानि-पाद-गुदा-उपस्थ=वाणी-पाणि [-हाथ]-पद, मल-मूत्र द्वार ये कर्मेन्द्रियाँ। तैं भ्रमें=तुझे भ्रमित करती-रहती हैं।

13-16. न्यारौ=पृथक् सत्ता। ये तो···नाना भाइ=ये इन्द्रियाँ तेरी ही शक्ति से, तेरा अनेक रूपों [-माध्यमों] में उपयोग करती-रहती हैं। सुद्धि=सुधि-बुधि, स्मृति। अहंकार कौं है अहं='अहं' के कारण ही 'अहंकार' है। बैननि कौं बैंन=वाणी को वाणी अर्थात् वाणी में निहित वाणी-शक्ति। **टिप्पणी :** उक्त जड़ अंगों के मूल को समझना चाहिए। अज्ञान के कारण इन्हें चेतन समझ लिया जाता है।

17-19. प्राननि कौं प्रांन=प्राणों को प्राण ही मानना चाहिए, इससे अधिक नहीं। शास्तर बेद पुरांन=वेद-पुराणादि शास्त्र। चैतन्य घन=पूर्ण चैतन्य। निज सार='स्व' रूप में सार तत्त्व। देह···बार=शरीर तो मलिन [-अशुचि, अपवित्र एवं जड़] है, जिसके विनष्ट होने में देर नहीं लगती। निहसंग=निःसंग, अनासक्त। बिनश्वर=नश्वर, विनाशशील। होइ पलक मैं भंग=क्षण में नष्ट होने वाली, क्षणभंगुर। **टिप्पणी :** सन्तों का यह क्षण-भंगुरता का पक्ष बौद्ध-प्रभाव माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर तूं तौ एकरस तोहि कहौं समुझाय।
घटै बढै आवै रहै देह बिनसि करि जाइ ।।20।।
जे बिकार हैं देह कै देहहि के सिर मारि।
सुन्दर यातें भिन्न ह्वै अपनौ रूप बिचारि ।।21।।
सुन्दर यह नहिं यह नहीं यह तौ है भ्रम कूप।
नाहिं नाहि करते रहैं सो है तेरौ रूप ।।22।।
एक एक कै एक पर तत्व गनैं तैं होइ।
सुन्दर तूं सब कै परै तो ऊपरि नहिं कोइ ।।23।।
एक एक अनुलोम करि दीसहिं तत्व स्थूल।
एक एक प्रतिलोम तें सुन्दर सूक्षम मूल ।।24।।
सूक्षम तें सूक्षम परै सुन्दर आपुहि जांनि।
तो तें सूक्षम नाहिं को याही निश्चय आंनि ।।25।।
इन्द्रिय मन अरु आदि दे शब्द न जानै तोहि।
सुन्दर तोतें चपल ये तूं इनितें क्यौं होहि ।।26।।
धूलि धूम अरु मेघ करि दीसै मलिनाकाश।
सुन्दर मलिन शरीर संग आतम शुद्ध प्रकाश ।।27।।
देहनि कै ज्यौं द्वार मैं पवन लिपै कहुं नांहि।
तैसैं सुन्दर आतमा दीसै काया मांहि ।।28।।

---

20. तूं तौ एकरस=तू आत्मन् समरस [-एकरस, अखण्ड, अविनाशी] है।

21. जे विकार···सिर मारि=शरीर में जो विकृतियाँ हैं, उन्हें शरीर के मत्थे ही मढे रक्खो। अर्थात् शरीर के गुण-विकारों को आत्मा के गुण-विकार न समझ कर शरीर के ही समझना चाहिए।

22-26. यह नहिं यह नहीं='नेति-नेति' के विचार-पक्ष के रूप में, जड़-पदार्थों को चेतन से अलग करके देखा जा सकता है। यह तौ है भ्रम कूप=संसार तो भ्रम का कुआँ है। तेरौ रूप=आत्म रूप, स्व-रूप। तूं सबके···नहिं कोइ=आत्म तत्त्व सब भौतिक-जड़ पदार्थों से परे है, उससे ऊपर या बढ़-चढ़ कर और कुछ नहीं है। अनुलोम करि=अनुलोम क्रम से। अर्थात् सुलटे क्रम से, जैसे सर्वसूक्ष्म से उत्तरोत्तर आगे बढ़ते हुए 'स्थूल' तक आना और 'प्रतिलोम क्रम' में स्थूल से अति सूक्ष्म की ओर बढ़ना। सूक्षम तें···आपुहि जांनि=अपने को सूक्ष्मतम रूप में समझ। **टिप्पणी :** उपनिषद् में आत्मन् को 'अणोरणीयान्' अर्थात् अणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म बताया है। तोतें चपल···होहि=अरे आत्मन्, ये चपल इन्द्रियाँ तुझसे ही अस्मिता ग्रहण करती हैं। पर, तेरा अस्तित्व इन सब से अलग है।

27-28. मलिनाकाश=धूलि-धुवाँ और मेघों के कारण आकाश 'मलिन' कहलाता है। मलिन शरीर···शुद्ध प्रकाश=शुद्ध चैतन्य आत्मन् मलिन शरीर के साथ जीवात्मा रूप में मलिन मान लिया जाता है। देहनि···कहुं नाहिं=इन्द्रिय-द्वारों से आती-जाती प्राण-वायु जैसे कहीं लिप्त नहीं होती, वैसे ही शरीर में आत्मा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावक लोह तपाइये होइ एकई अंग।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया संग ।।29।।
चोट परै घन की जबहिं पावक भिन्न रहाइ।
सुन्दर दीसै प्रगट ही लोहा बधता जाइ ।।30।।
सुन्दर पावक एकरस लोहा घटि बढि होइ।
तैसें सुख दुख देह कौं आतम कौं नहीं कोइ ।।31।।
नीर क्षीर ज्यौं मिलि रहे देह आतमा दोइ।
सुन्दर हंस बिचार बिन भिन्न भिन्न नहिं होइ ।।32।।
देह धात माहें मिलै आतम कनक कुरूप।
सुन्दर सांख्य,सुनार बिन होइ न शुद्ध स्वरूप ।।33।।
जबहिं कंचुकी होत है भिन्न न जानै सर्प।
तैसें सुन्दर आतमा देह मिले तें दर्प ।।34।।
सर्प तजै जब कंचुकी वा दिसि देषै नांहिं।
सुन्दर संमुझ आतमा भिन्न रहै तनु मांहिं ।।35।।
सुन्दर कला घटै बढै शशि मंडल कै संग।
देह उपजि बिनशत रहै आतम सदा अभंग ।।36।।

29-30. पावक लोह···अंग[दृष्टा०]=आग में तपाने पर लोहा आग के रंग का हो जाता है, वैसे ही शरीर के साथ आत्मा प्रतिभासित होती है। घन की चोट पड़ने पर, आग के चोट पड़ने पर, आग के तो चोट नहीं लगती, जबकि लोहा बढ़ता [-घटता] दिखाई देता है।

31-35. पावक एक रस=अग्नि तो सदा एक-सी रहती है। इसीप्रकार सुख-दुःख अवस्थाओं में शरीर में संकुचन-विस्तार होता है। पर ये सुख-दुःख प्रभाव आत्मा में व्याप्त नहीं होते। नीर क्षीर···दोइ=ये आत्मा और शरीर पानी और दूध की तरह से एकाकार बने रहते हैं। इनका पार्थक्य 'हंस-विचार-विवेक' से ही संभव है। देह धात···कनक कुरूप [दृष्टा०]=शरीर रूप धातु में आत्म रूप स्वर्ण मिलाने से, खोटे सोने के रूप में वह कुरूप मान लिया जाता है। सांख्य-सुनार अर्थात् सांख्य तत्त्व चिन्तन रूप सुनार ही उसे पुनः पृथक् करके शुद्ध रूप में प्रतिष्ठा दे सकता है। कंचुकी=केंचुली। देह मिले तें दर्प=देह से मिलने पर आत्मा ही जीवात्मा रूप में दर्प [-अहं]युक्त हो जाती है। लेकिन, जब सर्प केंचुली को त्याग देता है, तब फिर वह उस ओर [-अपने पूर्व सम्बन्ध के कारण भी] देखना तक पसन्द नहीं करता। ऐसे ही आत्मन् शरीर से भिन्न है।

36. कला=चन्द्र-अंश, चन्द्रमा के एक से सोलहवें भाग तक अंश। देह उपजि···अभंग =चन्द्र-कला की तरह ही शरीर जन्म लेता, बढ़ता और विनष्ट होता-रहता है। किन्तु, आत्मा सदा अभंग [-अक्षय] बनी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह कृत्य सब करत है उत्तम मध्य कनिष्ट।
सुन्दर साक्षी आतमा दीसै मांहि प्रविष्ट ॥37॥
अग्नि कर्म संयोग तें देह कडाही संग।
तेल लिंग दोऊ तपै शशि आतमा अभंग ॥38॥
सूक्षम देह स्थूल कौ मिल्यौ करत संयोग।
सुन्दर न्यारौ आतमा सुख दुख इनकौ भोग ॥39॥
हलन चलन सब देह कौ आतम सत्ता होइ।
सुन्दर साक्षी आतमा कर्म न लागै कोइ ॥40॥
सुन्दर सूरय कै उदै कृत्य करै संसार।
ऐसें चेतनि ब्रह्म सौं मन इंद्रिय आकार ॥41॥
ब्योम वायु पुनि अग्नि जल पुथ्वी कीये मेल।
सुन्दर इनतें होइ का चेतनि षेलै षेल ॥42॥
सुन्दर तत्व जुदे जुदे राष्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के षंभ मैं कौन बस्तु कहि बीर ॥43॥
देह आप करि मांनिया महा अज्ञ मतिमंद।
सुन्दर निकसै छीलकै जबहिं उचेरे कंद ॥44॥

37-38. देह कृत्य सब करत है=शरीर तो सारे कार्य करता-रहता है। इन्हीं कर्मों को लोग उत्तम, मध्यम और नीच कर्म कहते हैं। मांहि प्रविष्ट=आभ्यान्तर रूप में विद्यमान। अग्नि कर्म संयोग से [रूपक-सांग]=कर्म रूप अग्नि से। देह कडाही संग [रूपक] = कड़ाही रूप शरीर के साथ। तेल लिंग दोऊ तपै [रूपक]=तेल रूप लिंग[-सूक्ष्म शरीर]भी तप्त होता-रहता है। शशि आतमा अभंग[रूपक]= उसमें प्रतिबिम्बित शशि रूप आत्मा [-अभंग] अदाह्य बना- रहता है।

39-41. न्यारौ आतमा···भोग=आत्मन्, स्थूल शरीर से भिन्न है और सुख-दुःख तो शरीर का भोग है। आतम सत्ता होइ=आत्मा तो सत्तात्मक 'है', जो साक्षी भर है, कर्मों की आसक्ति उसे लिप्त नहीं कर पाती। कृत्य करै संसार=सूर्योदय होने पर संसार कर्मों में जुट जाता है। ऐसे ही 'चेतन ब्रह्म' [आत्मन्] मनादि इन्द्रियों के आकार में कार्य निरत बना-रहता है।

42-44. ब्योम-वायु-अग्नि-जल पृथ्वी=पंचभूत रूप 'छिति जल पावक गगन समीर' के संयोग मात्र से निर्मित जड़ शरीर तब तक निष्क्रिय रहता है, जब तक चेतन सत्ता उसमें अपना खेल नहीं खेलती। तत्व जुदे जुदे···शरीर=पंचभूत रूप भिन्न-भिन्न जड़ तत्त्वों का संयोग 'शरीर' रूप में देखना चाहिए। ज्यौं कदली···बीर [दृष्टा०] =अरे भाई, जैसे केले के स्तम्भ में छिलके, पर्त-दर-पर्त निकलते चले जाते हैं, कोई [ठोस-] सार तत्त्व नहीं होता। महा अज्ञ=वज्र मूर्ख, महामूर्ख। कंद=प्याज। अर्थात् प्याज के छिलके उतारते-उतारते अन्त में, छिलके ही छिलके निकलते हैं, कोई ठोस तत्त्व नहीं। इसीप्रकार शरीर के तत्त्व-विश्लेषण में, कोई ठोस तत्त्व हाथ नहीं आता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काष्ट सु जोरे जुगति करि कीया रथ आकार।
हलन चलन जातें भया सो सुन्दर तत सार ॥45॥
तत्व कहे इकतीस लौं मत जू जुवा बषांनि।
सुन्दर जल कौनें पिया मृग तृष्णा घर आंनि ॥46॥
देह स्वर्ग अरु नरक है बंद मुक्ति पुनि देह।
सुन्दर न्यारौ आतमा साक्षी कहियत येह ॥47॥
सुन्दर नदी प्रवाह मैं चलत देषिये चन्द।
तैसें आतम अचल है चलत कहैं मतिमंद ॥48॥
बहुत सुगंध द्रुगन्ध करि भरिये भाजन अंबु।
सुन्दर सब मैं देखिये सूरय कौ प्रतिबिंबु ॥49॥
देह भेद बहु बिधि भये नाना भांति अनेक।
सुन्दर सब मैं आतमा बस्तु बिचारें एक ॥50॥
तिलन मांहिं ज्यौं तेल है सुन्दर पय मैं घीव।
दार मांहिं है अग्नि ज्यौं देह मांहिं यौं सीव ॥51॥

---

45. काष्ट···रथ आकार [उदा०] अनेक प्रकार के काष्ठांगों का संयोजन ही रथ-आकार है। लेकिन, जिसके कारण गतिशीलता आती है, वही सा[-रथी तत्त्व है।]

46-48. तत्व कहे इकतीस···बषांनि=भिन्न-भिन्न मत-सिद्धान्तों में इन तत्त्वों की संख्या 31 तक बताई है [जैसे—5 महाभूत+5 तन्मात्राएँ [-सूक्ष्मभूत]+5 ज्ञानेन्द्रियाँ+5 कर्मेन्द्रियाँ+4 अन्तःकरण चतुष्ट्य+3 गुण+1 प्रकृति+1 जीव+1 ईश्वर+1 पर-ब्रह्म=31]। मत जू जुवा बषांनि=भिन्न-भिन्न, जुदे-जुदे मत-मतान्तर हैं। जल···घर आंनि='मृगतृष्णा' का जल घर लाकर किसने पिया है? अथवा मृगतृष्णा का मिथ्या जल पीकर कौन घर आया है? अर्थात् मिथ्या-प्रतीति सत्य नहीं होती। देह स्वर्ग···देह=यह शरीर तो स्वर्ग-नरक अर्थात् वन्धन-मुक्ति दोनों का कारक है। किन्तु, आत्मन् साक्षी रूप है, जो बन्धन-मुक्ति से न्यारा रहता है। उसके लिए बन्धन-मुक्ति है ही नहीं। नदी प्रवाह···चन्द[दृष्टा०]=जैसे नदी-जल के प्रवाह में चन्द[-प्रतिबिम्ब]चलता दिखाई देता है, यद्यपि वह अचल है। ऐसे ही आने-जाने वाले शरीरों के प्रवाह में आत्म-सत्ता अचल रहती है। मूर्ख लोग, अज्ञान के कारण उसे चलता हुआ, विनाशशील मान लेते हैं।

49-51. भाजन अंबु [दृष्टा०]=घटादि पात्रों में जल, सुगन्धित या दुर्गन्धपूर्ण, भरा हो, पर सूर्य-प्रतिबिम्ब सभी में दिखाई देता है। देह भेद=पात्रों के समान ही शरीराकारों के अनेक भेद देखे जाते हैं। तिलनि मांहिं···घीव [उदा०]=जैसे तिलों में तेल एवं दूध में घी अपरोक्ष रूप में रहते हैं। दार मांहिं···सीव=काष्ठ में जैसे अग्नि निवास करती है, ऐसे ही, असम्पृक्त भाव से शरीर में शिव-चैतन्य निवास करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल मांहिं ज्यौं बासना इक्षु मांहिं रस होइ।
देह मांहिं यौं आतमा सुन्दर जानै कोइ ॥52॥
पोसत मांहिं अफीम है बृक्षन मैं मधु जांनि।
देह मांहिं यौं आतमा सुन्दर कहत बषांनि ॥53॥
सुन्दर ब्रह्म अबर्न है ब्यापक अग्नि अबर्न।
देह दार तें देषिये पावक अंतह्कर्न ॥54॥
तेज प्रकास रु कल्पना जब लग संग उपाधि।
जब उपाधि सब मिटि गई सुन्दर सहज समाधि ॥55॥
सुन्दर देह सराव मैं तेल भर्‌यौ पुनि स्वास।
बाती अंतह्करन की चेतनि जोति प्रकास ॥56॥
सुन्दर पंद्रह तत्व कौ देह भयौ सौ कुम्भ।
नौ तत्वनि कौ लिंग पुनि मांहिं भर्‌यौ है अंभ ॥57॥
जीव भयौ प्रतिबिंब ज्यौं ब्रह्म इंदु आभास।
सुन्दर मिटै उपाधि जब जहं के तहां निवास ॥58॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती इनि तैं न्यारौ होइ।
सुन्दर साक्षी तुरिय तत रूप आपनौ जोइ ॥59॥

52-53. फूल मांहिं···रस होइ=फूल में जैसे सुगन्धि, गन्ने में रस रहता है, ऐसे ही शरीर में आत्मा। पोसत मांहिं···जांनि=पोस्त के पौधे में जैसे अफीम, वृक्ष वनस्पति में जैसे मधु-रस रहता है, ऐसे ही शरीर में आत्मा।

54-56. ब्रह्म अबर्न···अबर्न=व्यापक [-व्याप्त] अग्नि का जैसे कोई वर्ण-रंग नहीं होता, वैसे ही व्यापक ब्रह्म वर्ण रहित है। देह-दार···अंतह्कर्न=काष्ठ रूप शरीर में अग्नि रूप अन्तःकरण के संयोग से वह [-अग्नि-आत्मन्] उस वर्ण का-सा प्रतीत होता है। तेज प्रकास···उपाधि=कल्पना रूप तेज-प्रकाश, शरीर [-काष्ठ] में जब तक 'उपाधि' [-नानात्व] संलग्न है, तब तक भिन्नत्व बना रहेगा। उपाधि [-नानात्व] के मिट जाने पर ही 'सहज समाधि' सम्भव है। देह-सराव···स्वास [रूपक]=शरीर रूप सकोरे में श्वास [-प्राण] रूप तेल भरा हुआ है। बाती··· जोति प्रकास=अन्तःकरण रूप बत्ती से चेतन-ज्योति प्रकाशित रहती है।

57-59. पंद्रह तत्व···कुम्भ=यह शरीर रूप कुम्भ [-बाह्याकार] 15 तत्त्वों [-पंच महाभूत, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ] से निर्मित है। नौ तत्वनि···अंभ=नौ सूक्ष्म तत्त्वों [-पंच तन्मात्राएँ, चार अन्तःकरण चतुष्टय] का इसमें जल भरा रहता है। जीव भयौ···आभास=इस शरीर रूप जल-कुम्भ में, इन्दु [-चन्द्र] प्रतिबिम्ब की तरह से, आत्मन्-जीवात्मन् रूप में आभासित बना-रहता है। मिटै उपाधि···निवास=उपाधि [नानात्व] समाप्त होने पर, सब यथास्थान लय [-समाधिस्थ] हो जाते हैं। जाग्रत·· न्यारौ होइ=जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में जीव-चैतन्य पृथक् ही रहता है। साक्षी तुरिय तत···जोइ=वह तुरीयातीत, साक्षी रूप है। वह स्व-रूप देखता-रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन अवस्था जड कही ये तौ है भ्रम कूप।
सुन्दर आप बिचारि तूं चेतनि तत्व स्वरूप ।।60।।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनि अबस्था गौंन।
सुन्दर तुरिय चढ्यौ जबहिं षरी चढै तब कौंन ।।61।।

।। इति सांख्य ज्ञान कौ अंग ।। 24 ।।

60-61. तीन अवस्था···भ्रम कूप=उक्त तीनों अवस्थाएँ जड़ता सूचक हैं, जो जीव को भ्रम-कूप में डाले रखती हैं। तुरिय···तब कौंन=तुरीयारूढ़ होने का सुख पाकर गधंवी पर कौन आरुढ़ होगा ? [श्लेष से] तुरी [-घोड़ी, तुरीयावस्था] पर चढ़ने के सुख के बाद, षरी<खरी [खर-खरी=गधा-गधी, बाह्य-बैखरी] के प्रति किसी का भी आकर्षण शेष नहीं रहता। टिप्पणी : तुरीयातीत दशा, स्व-रूप प्रतिष्ठा के निकट की अवस्था है। अतः इसका अनुभव-सुख वर्णनातीत-विलक्षण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 25 ॥ अथ अवस्था कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग में 51 साखी और 1 छप्पय [-साखी] छन्द है, जिनमें जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का विस्तार और सूक्ष्मता से विवेचन है। चतुर्थ अवस्था तुरीय या तुरीयातीत है, जो साक्षी दशा है। यहाँ अवस्था-भेद के आधार पर, अनेक उदाहरण-दृष्टान्त देते हुए योग के सैद्धान्तिक पक्ष को प्रतिष्ठा मिली है। यह अध्याय योग के शास्त्रीय पक्ष को उजागर करने के साथ ही भाषा में विचार-पक्ष के लक्षण [-रीति] प्रस्तुत करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : एक अंग सो आतमा सुंन अवस्था तीन।
सुन्दर मिलि करि बांचिये न्यारे न्यारे कीन ॥1॥
एक सुंन तैं दस भये दूजी सत ह्वै जाहिं।
तीजी सुंन सहस्र ह्वै एक बिना कछु नाहिं ॥2॥
सुंन सुंन दस गुन बधै बहु बिधि ह्वै बिस्तार।
सुन्दर सुंन मिटाइये एक रहै निरधार ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. एक अंग सो आतमा=आत्मा एक अंग अर्थात् एकांगी है। सुंन=शून्य, शून्यावस्था। अवस्था तीन=वह एकांगी आत्मा तीन अवस्थाओं में व्यक्त [-होती] है। बांचिये=पढ़िए, विचार कीजिए। एक सुंन तैं दस भये=एक शून्य के योग [-सहयोग] से 10 हो जाते हैं। **टिप्पणी :** दशमलव प्रणाली से, 1 पर शून्य लगाते हुए 10, 100, 1000 बनते हुए दस गुना संख्या वृद्धि होती-जाती है। किन्तु, एक अपने स्थान पर 'एक' ही बना रहता है। अर्थात् एक चेतन आत्मा पर, आरोपण [-अध्यास] से नानात्व बढ़ता-जाता है। किन्तु, चेतन [-आत्मा-परमात्मा] एक ही रहता है। जिसप्रकार उस चेतन-आत्मा के बिना जड़-प्रकृति शून्य [-कुछ नहीं] है। ऐसे ही जड़ प्रकृति के बिना वह चेतनात्मा भी शून्य ही है। अत: शून्यत्व [-ब्रह्मत्व] प्राप्ति केलिए जड़-प्रकृति पर विजय आवश्यक है। सुंन मिटाइये एक रहै निरधार=शून्यावस्था [-मायिक दशा], जो 1 के आगे लगा देने के कारण प्रतीत होती है, को मिटा देने पर निराधार [-निरालम्ब-निर्गुण, पर-ब्रह्म] शेष रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनि अवस्था मांहिं है सुन्दर साक्षीभूत।
सदा एकरस आतमा ब्यापक है अनुस्यूत ॥4॥

अवस्था का प्रथम भेद :

सुन्दर जागत भींत महिं लिष्यौ जगत चित्रास।
स्वप्न घौंट सनमुख भई दृसै सकल घट नास ॥5॥
चित्र कछू नहिं देषिये जबहिं अंधेरौ होइ।
सुन्दर सुषुपति मैं गये जाग्रत स्वप्ना दोइ ॥6॥
तीन अवस्था तैं जुदौ आतम ब्योम समान।
भीति चित्र पुनि घौंट तम लिप्त नही यौं जान ॥7॥

अवस्था का द्वितीय भेद :

सुन्दर जाग्रत धूप है स्वप्न जौन्ह ज्यौं जानि।
दोऊ माहें देषिये रूप सकल पहिचानि ॥8॥
सुषुपति मावस की निसा अभ्र रहे पुनि छाइ।
सुन्दर कछु सूझै नहीं रूप सकल छिपि जाइ ॥9॥

---

4. तीनि अवस्था···साक्षीभूत=जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति रूप तीनों अवस्थाओं में वह साक्षीभूत [-परमात्मा] है। सदा एक रस···अनुस्यूत=व्यापक आत्मा एक रस अर्थात् अखण्ड रूप में है, जो सब में व्याप्त है। वह माला में सूत्र की तरह अनुस्यूत है।

5-7. जागत···चित्रास=जाग्रतावस्था में भीत [-फलक] पर जगत रूप चित्र, रेखांकित [-चित्रांकित]-सा लगता है। स्वप्न घौंट=गहरी नींद न होकर स्वप्निल अवस्था। स्वप्न घौंट···घट नास=स्वप्नावस्था, गहरी नींद से पूर्व की [-उनींदी] दशा है, जिसमें जाग्रत अवस्था के दृश्य अदृष्ट हो जाते हैं। किन्तु, उसी की समरूपता में स्वप्न दशा कुछ अन्य चित्र प्रस्तुत करती है। चित्र कछू···स्वप्ना दोइ [दृष्टा०]= अन्धकार में चित्र की आकृति नहीं दिखाई देती। इसीप्रकार सुषुप्ति दशा में जाग्रत एवं स्वप्न दोनों अवस्थाएँ लय बनी-रहती हैं अथवा लय हो जाती हैं। तीन अवस्था ···ब्योम समान=तीनों अवस्थाओं में आत्मन्, शरीर में रहते हुए भी, आकाश के समान पृथक् एवं अलिप्त बना-रहता है। जैसे कि अन्धेरे में रहते हुए भी, भित्ति-चित्र और स्वप्नावस्था उससे अलग बने रहते हैं। फिर भी, वे इसी में लय रहते हैं। भीति चित्र=फलक-चित्र, तस्वीर। तम=अन्धकार।

8-9. जाग्रत धूप=धूप के समान जाग्रतावस्था। स्वप्न जौन्ह=जौन्हाई [-चन्द्रिका या ज्योत्स्ना] के समान स्वप्नावस्था। इन दोनों ही अवस्थाओं में आकृति रूप या पृथकत्व की पहिचान हो जाती है। सुषुपति···छाइ=सुषुप्ति दशा मेघाच्छादित अमावस्या की रात्रि के समान होती है, जिसमें भिन्नत्व, आकृति अथवा रूप विलीन बने रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूप जौन्ह तम रूप सौं नैंन लिपै कहुं नांहिं।
सुन्दर साक्षी आतमा तीन अवस्था मांहि ॥10॥

अवस्था का तृतीय भेद :

बाजीगर परदा किया सुन्दर बैठा मांहिं।
षेल दिषावै प्रगट करि आप दिषावै नांहिं ॥11॥
नर पशु पंषी काठ कै प्रगट दिषावै षेल।
हस्त क्रिया सब करत हैं सुन्दर आप अकेल ॥12॥
सुन्दर चेतनि शक्ति बिन नाचि सकै नहिं कोइ।
त्यौं यह जाग्रत जानिये जो कछु जाग्रत होइ ॥13॥
बहुरि व्रहै रजनो बिषै परदा करै बनाइ।
सुन्दर बैठा गोपि ह्वै बाहरि षेल दिषाइ ॥14॥
नर पशु पंषी चर्म कै दीसहिं रूप अनेक।
सुन्दर चेतनि शक्ति करि नांच नचावै एक ॥15॥
यौं यह स्वप्नै देषिये जाग्रत कौ आभास।
सुन्दर दोऊ भ्रम भये जाग्रत स्वप्न प्रकास ॥16॥
अब सुनि सुषुपति की कथा सुन्दर भ्रम कछु नांहिं।
काठ कर्म कौ षेल सब धर्‌यौ पिटारा मांहिं ॥17॥

---

10. धूप जौन्ह तम रूप···नांहिं=तीन अवस्थाओं की प्रतीक धूप, चाँदनी और अन्धकार, नेत्रों के समक्ष आते-जाते रहते हैं। किन्तु, नेत्र उन तीनों ही दशाओं में लिप्त या प्रभावित नहीं होते। इसीप्रकार आत्मन् इन तीनों ही दशाओं में लिप्त नहीं होता। अवस्था-भेद ज्ञान-साधनों के कारण भिन्न बना-रहता है।

11-12. परदा=आवरण। वैठा मांहिं=भीतर बैठा हुआ। अर्थात् कठपुतली के नृत्य में बाजीगर परदे के पीछे रहकर भी खेल [-दृश्य] का अंग बना-रहता है। पर, वह अपने को दिखाता नहीं है। हस्त क्रिया=हस्त कौशल। आप अकेल=स्वयं अकेला रहकर।

13-14. चेतनि शक्ति=चैतन्य शक्ति, प्राण शक्ति। नाचि सकै नहि कोइ=कोई नृत्य नहीं कर सकता, गतिशील नहीं हो सकता। बहै=वही, चेतन पुरुष। गोपि ह्वै=गुप्त होकर। षेल दिषाइ=बाहर खेल दिखाता-रहता है।

15-17. रूप अनेक=[चर्म से आवृत-] मनुष्य-पशु-पक्षी आदि रूप में नानात्व देखने को मिलता है। नांच नचावै एक=वही एक, सभी को नाच नचाता-रहता है। स्वप्न···आभास=स्वप्न दशा में जो दिखाई देता है, वह जाग्रतावस्था का आभास है। दोऊ···प्रकास=प्रकाशोदय के समय जाग्रत और स्वप्न दोनों भ्रम-दशा ही लगते हैं। सुषुपति की कथा···मांहि [दृष्टा॰]=सुषुप्ति दशा के अनुभव में कोई भ्रम नहीं रहता। जिसप्रकार कठपुतली-नर्तक खेल दिखा चुकने के बाद सब कुछ समेट कर पिटारे में रख लेता है, इसीप्रकार सुषुप्ति अवस्था में सारा पसार केन्द्रीभूत होकर सूक्ष्म एवं अन्तरंग हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बाजीगर जुदौ षेल करै दिन राति।
वहै षेल रजनी करै वहै षेल परभाति ॥18॥
जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार।
सुन्दर बाजीगर जुदौ षेल दिषावनहार ॥19॥
तीन अवस्था के परै चौथी तुरिया जांनि।
सुन्दर साक्षी आतमा ताहि लेहु पहिचांनि ॥20॥

अवस्था का चतुर्थ भेद :

एक अवस्था के बिषै तीनहुं बर्तैं आइ।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती सुन्दर कहत सुनाइ ॥21॥
जाग्रदवस्था जानिये सब इन्द्रिय ब्यापार।
अपने अपने अर्थ कौं सुन्दर करै बिहार ॥22॥
जाग्रत मैं स्वप्ना बहै करै मनोरथ आंन।
नैंन न देषै रूप कौं शब्द सुनै नहिं कांन ॥23॥
जाग्रत मैं सुषोपति भई जबहिं तंवारौ होइ।
सुन्दर भूलै देह कौं सुधि बुधि रहै न कोइ ॥24॥
स्वप्नै मैं जाग्रत बहै बचन कहै मुख द्वार।
ज्वाब देत हैं और कौं सुन्दर शुद्धि न सार ॥25॥

18-20. बाजीगर जुदौ=दृश्य-कलाकार; सबसे अलग होकर भी दिन-रात खेल दिखाता-रहता है। जाग्रत स्वप्न···दिषावनहार=**टिप्पणी** : इस साखी में उक्त तीनों साखियों के प्रतिपाद्य एवं प्रयुक्त प्रतीकों के कथ्य को, रचनाकार ने अपनी ओर से ही स्पष्ट कर दिया है। जाग्रत और स्वप्न अवस्थाएँ तो मंच की यवनिका या परदे की तरह से हैं एवं सुषुप्ति-अवस्था पिटारी की तरह और बाजीगर आत्मन्-परमात्मन् के रूप में प्रतीकित है। वह इन तीनों से पृथक् बना रहकर भी खेल दिखाता रहता-रहता है। तुरिया-अवस्था = उक्त तीनों अवस्थाओं से परे [-सूक्ष्म तुरीयावस्था] है, वही साक्षीभूत या आत्म-दशा है।

21-23. एक अवस्था कैं बिषै=एक तुरीय अवस्था के अन्तर्गत ही उक्त तीनों अवस्थाएँ वर्तमान बनी-रहती है। जाग्रदवस्था···ब्यापार=सब इन्द्रियाँ अपना **'ब्यापार'** करती दिखाई दें, तब जाग्रत अवस्था समझनी चाहिए। अपने···बिहार=इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में विचरण करती हैं। करै मनोरथ आंन=स्वप्न में, कुछ अन्य प्रकार की कामना करने लगता है।

24-25. जाग्रत मैं···होइ=जब जाग्रत दशा में, उनींदापन [-बेहोशी-जैसी दशा] होती है, तब शरीर की सुधि-बुधि भूल जाती है। स्वप्नै मैं···शुद्धि न सार=स्वप्न मैं जाग्रत अवस्था के समान ही मुख [-विवर] से शब्द निकलते हैं, दूसरों को उत्तर दिया जाता है, पर, इसका बोध नहीं होता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नै मांहैं स्वप्न है देषै नाना रूप।
जागैं तैं सब कहत हैं सुन्दर छाया धूप ॥26॥
सुन्दर ऐसैं जानियें सुषुपति स्वप्ना मांहिं।
स्वप्नै ही मैं अनुभवै जागै जानैं नांहिं ॥27॥
सुषुपति मैं जाग्रत उहै जानी करि अनुमांन।
जागे तें ततपर भयौ सब इन्द्रिनि कौ ज्ञांन ॥28॥
सुषुप्ति ही मैं स्वप्न है जागैं बक्रित चित्त।
कछूक बार लषै नहीं सुन्दर चित्त अबित्त ॥29॥
सुषुप्ति मैं सुषुप्ति उहै सुख अनुभवै प्रभाति।
सुन्दर जागैं कहत है सुख सौं सूते राति ॥30॥
तीन अवस्था भेद है तीनौं ही भ्रम कूप।
चौथी तुरिया ज्ञानमय सुन्दर ब्रह्म स्वरूप ॥31॥

अवस्था का पंचम भेद :

बर बरियान बरिष्ट पुनि तीनहुं कौ मत एक।
भिन्न भिन्न ब्यौहर है सुन्दर समुझ विबेक ॥32॥

---

26. स्वप्नै···छाया धूप=स्वप्न में जब स्वप्न होता है, तो जो नाना रूपत्व [-चित्रत्व] दिखाई देता है, उस अनुभव को जगाने पर, धूप-छाँह की तरह से कुछ-कुछ याद कुछ-कुछ विस्मृति के रूप में बताया जाता है।

27-29. सुषुपति स्वप्ना मांहिं=स्वप्न में सुषुप्ति का अनुभव। यह अनुभव चेतना में होता है। किन्तु, जागने पर वह अनुभव स्मृति में प्राय: नहीं रहता। सुषुपति मैं··· ज्ञांन=सुषुप्ति में जाग्रत का अनुभव अनुमान से ही लगाया जा सकता है। जागने पर तो इन्द्रिय-ज्ञान ही होता है। सुषुप्ति···चित्त=सुषुप्ति में स्वप्न का अनुभव हो आता है। किन्तु, वह अनुभव जाग्रत अवस्था में चित्त को [वक्र-] चलायमान बनाता है, सहज-सरल नहीं रहने देता। कछूक बार···अबित्त=कुछ समय तक चित्त कुछ नहीं देख पाता अर्थात् आन्तरिक अनुभव-प्रभाव में लिप्त बना रहकर वित्त रहित अर्थात् खाली-खाली-सा अनुभव करता है।

30-31. सुषुप्ति में···सूते राति=सुषुप्ति में सुषुप्ति का अनुभव ऐसा लगता है, जैसे प्रभात काल में उठकर कोई यह कहे कि रात को सुखपूर्वक [-गहरी नींद में] सोए। तीन अवस्था···भ्रम कूप=ये तीनों ही अवस्थाएँ भ्रम-कूप अर्थात् भ्रम का [खड्ड-] केन्द्र हैं। चौथी तुरिया···ब्रह्म स्वरूप=चतुर्थ तुरियावस्था ब्रह्म स्वरूप है।

32. बर बरियान बरिष्ट··मत एक=श्रेष्ठ-श्रेष्ठतर-श्रेष्ठतम, महात्मा, गुरु एवं सिद्ध पुरुष। अर्थात् अष्टावक्र, वशिष्ट आदि श्रेष्ठ या महात्मा, दत्तात्रेय और शुकदेव मुनि जैसे श्रेष्ठतर गुरु [-वरियान] तथा ऋषभदेव जैसे बरिष्ठतम-सिद्ध पुरुष। इन तीनों ही कोटियों के महापुरुषों का एक ही मत है कि 'विवेक पूर्वक समझने पर भिन्नत्व, व्यवहार की प्रतीति भर है, वैसे सर्वत्र एक ही सत्ता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर सो जीवन मुक्त है तुरिया साक्षीभूत।
लिपै छिपै नहिं सब करै अंनकरता अवधूत ॥33॥
महा मुक्त अक्रिय सदा सो कहिये बरियान।
तुरिया तुरियातीत कै मध्य कहैं सज्ञान ॥34॥
जाकी गति न लषि परै सो कहिये जु बरिष्ट।
तुरियातीत परातपर बचन परै उतकृष्ट ॥35॥
ब्रह्म समुद्र जहां तहां ता महिं तीनौं लीन।
एक किनारे आइ करि सब कौं सिक्षा दीन ॥36॥
दूजौ रहै समुद्र मैं सीस दिषावै आइ।
पूछै बोलै बचन कौं फेरि तहां छिपि जाइ ॥37॥
ब्रह्मानंद समुद्र तैं तीजौ निकसै नांहि।
गहरै पैठौ जाइ कैं मगन भयौ ता मांहि ॥38॥
अष्टाचक्र वसिष्ट मुनि प्रगट कियौ निज ज्ञांन।
क्रम ही क्रम उपदेश करि किये ब्रह्म सामांन ॥39॥
दत्तात्रय शुकदेवजी बोले बचन रसाल।
नृपति परीक्षत भूप जदु मुक्त किये तत्काल ॥40॥

33-35. बर सो···साक्षीभूत=जो श्रेष्ठ है, वह जीवन्मुक्त दशा में विचरण करता हुआ, तुरीयावस्था का साक्षीभूत बना-रहता है। वह सब कुछ करता हुआ भी लिप्त [-गुप्त] नहीं रहता और अकर्त्ता रूप में अवधूत साधक बना-रहता है। अंनकरता =अकर्त्ता। बरियान<वरीयस्[सं०]=श्रेष्ठतर-गुरु रूप में। 'वरियान्' वह है जो सदा मुक्त रहते हुए अक्रिय [-अकर्त्ता] बना-रहता है। यह दशा तुरिया और तुरियातीत दशा के बीच की स्थिति है। बरिष्ट<वरिष्ठ [सं०]—जिसकी आन्तरिक दशा इन्द्रिय गोचर नहीं होती और जो तुरियातीत दशा में रहता है। वह वरिष्ठ अर्थात् सिद्ध पुरुष है। उसकी स्थिति परात्पर अर्थात् 'पर' से भी परे की होती है।

36-38. ब्रह्म समुद्र···तीनों लीन=उक्त तीनों श्रेणियों के वर-वरियान् वरिष्ठ पुरुष, सागर रूप ब्रह्म में तल्लीन बने-रहते हैं। उनमें से एक [-जाग्रत], किनारे [-तट] पर आकर सब को शिक्षा देता है। दूसरा स्वप्न दशा वाला समुद्र में ही रहता है। वहाँ से ही, जब-तब सिर ऊपर करके दिखा देता है। वह शब्द को बोलता और सुनता भी है। पर, फिर वहीं छिप जाता है। तीसरी अवस्था 'सुषुप्ति' की है, जहाँ वरिष्ठ, ब्रह्मानन्द रूप समुद्र की गहराई में पैठ किए रहता है।

39-40. निज ज्ञांन=आत्म ज्ञान, स्व-रूप ज्ञान। क्रम ही···किये ब्रह्म सामांन=उन अष्टावक्र और वसिष्ट ऋषि ने अपने 'निज ज्ञान' के उपदेश से जिज्ञासु को ब्रह्मवत् बनाया है। नृपति परीक्षत भूप जदु=यदुवंशी राजा परीक्षित जैसे नृपति को, शुकदेव मुनि ने अपने उपदेश से तत्काल मुक्त किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषभदेव बोले नहीं रहे ब्रह्मै होइ।
गरक भये निज ज्ञान मैं द्वैत भाव नहिं कोइ ॥41॥
जाग्रदवस्था जानिये जबहिं होइ साक्षात।
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि कही सबनि सौं बात ॥42॥
स्वप्न अवस्था मांहिं है पूछै बौलै सैंन।
दत्तात्रय सुकदेव जी कहे कछूइक बैंन ॥43॥
सुषुपति मैं कछु सुधि नहीं ऐसी परम समाधि।
ऋषभदेव चुप करि रहे छूटी सकल उपाधि ॥44॥

अवस्था का षष्ठ भेद :

मावस अति अज्ञान कै निसा अंधेरी कीन।
ससि आतमा दृसै नहीं ज्ञान कला करि हीन ॥45॥
है अज्ञान अनादि कौ जीव पर्यौ भ्रम कूप।
श्रवन मनन निदिध्यास तें सुन्दर ह्वै चिद्रूप ॥46॥
श्रवण सु कहिये प्रतिपदा ज्ञान कला दरसाइ।
दुतिया तृतयिा चतुर्थी सुनि पंचमी दिषाइ ॥47॥
मनन किये षष्टी द्रसै अर्थ लेइ पहिचांनि।
होइ सप्तमी अष्टमी नवमी दशमी जांनि ॥48॥
निदिध्यास एकादशी पुनि द्वादशी बदंति।
आगै होइ त्रयोदशी चतुर्दशी पर्यंत ॥49॥

---

41. ब्रह्मै होइ=ब्रह्ममय होकर। गरक भये निज ज्ञान मैं=स्वरूप ज्ञान में तन्मय रहकर द्वैत भाव समाप्त कर दिया।

42-44. जाग्रदवस्था···साक्षात=साक्षात [-प्रत्यक्ष] दशा ही जाग्रदावस्था है। स्वप्न ···सैंन=स्वप्न अवस्था में बोलना और पूछना नेत्र-संकेतों से ही सम्भव है, वैखरी वाणी से नहीं। कछूइक बैंन=उपदेश रूप में कुछ शब्द कहे। सुषुपति···समाधि= सुषुप्ति दशा सुधि-बुधि रहित परम समाधि की अवस्था है।

45-46. मावस···अंधेरी कीन [दृष्टा०]=अज्ञान दशा में मति-भ्रम का अज्ञान-अन्धकार, अमस्या की अँधेरी रात के समान है, जिसमें आत्मा रूप शशि, जो ज्ञान कला से रहित होने के कारण दिखाई नहीं देता। अज्ञान=मूर्खता, जड़ता, मतिभ्रम। श्रवन मनन निदिध्यास तें···चिद्रूप=श्रवण-मनन और उससे प्राप्त ज्ञान का पुन: स्मरण करने अर्थात् पुन: पुन: चिन्तन करने से चित् रूप होता है।

47-49. श्रवण···दरसाइ=श्रवण की स्थिति पड़वा के चन्द्र जैसी बताई है, जो ज्ञान की कला के रूप में प्रतिष्ठित है। मनन···पहिचांनि=मनन के परिणाम स्वरूप षष्टि-दर्शन होता है और दर्शन से ही सही रूप में अर्थ को समझा जा सकता है। मनन में सप्तमी से दशवीं तक की चन्द्र-स्थितियाँ वर्णित हैं। अर्थात् निदिध्यासन [-बार-बार स्मरण रूप मनन] में एकादशी व्रत जैसी एकाग्रता होती है। इसके बाद द्वादशी-त्रयोदशी-चर्तुदशी रूप में प्रकाशोत्कर्ष होता-रहता है। पर्यंत=तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदाकार पूरन कला पूरनमासी होइ।
पूरन ज्ञान प्रकाश शशि भ्रम संदेह न कोइ ।।50।।
ताहि कहत हैं ब्रह्म बिदु शास्त्र बेद पुरांन।
सुन्दर या अनुक्रम बिना और सकल अज्ञांन ।।51।।

छप्पय : प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै।
दुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ बिचारै।।
तृतीय भूमिका निदिध्यास नीकी बिधि करई।
चतुर्भूमि साक्षातकार संशय सब हरई।।
अब तासौं कहिये ब्रह्म-बिदु बर बरयान बरिष्ट है।
यह पंच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुन्दर कहै ।।52।।

।। इति अवस्था कौ अंग ।। 25 ।।

50-51. तदाकार···होइ=तदाकारिता [-तन्मयता] रूप पूर्णमासी होती है, जहाँ सम्पूर्ण कलाओं की निगति हो जाती है। उस दशा में पहुँच कर अखण्ड ज्ञान रूप पूर्ण शशि उदित होता है, जिससे भ्रम-सन्देह रूप अन्धकार का निवारण हो जाता है। **टिप्पणी :** चन्द्र रहित दशा में अमस्या रूप जो सुषुप्ति है, वहाँ प्रतिपदा से लेकर दशमी तक हलके-से प्रकाश को 'स्वप्न' कहा है और एकादशी से पूर्णिमा तक के वर्धमान प्रकाश को 'जाग्रत' दशा कहा गया है। किन्तु, इन उदाहरणों को व्यावहारिक रूप में जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति पर घटित करना कठिन-सा लगता है। ब्रह्म बिदु<ब्रह्मविद् [सं०]=ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी। या अनुक्रम=इस अनुक्रम से, इस अनुक्रम-पद्धति से।

52. **टिप्पणी :** ज्ञानावस्था की सप्त-भूमिकाएँ बताई गई हैं। इनका सम्बन्ध तीन अवस्थाओं से नहीं है। रचनाकार ने यहाँ प्रसंगवश उनका वर्णन कर दिया है। **प्रथम भूमिका**—श्रुति से सुनकर चित्त की एकाग्रता धारण करे। **द्वितीय भूमिका**—उस श्रुत ज्ञान का मनन, पुनः श्रवण, फिर मनन क्रम से [अर्थ-] विचार करे। **तृतीय भूमिका**—श्रुत और विचारित ज्ञान को 'निदिध्यास' विधि से पुनः पुनः भलीप्रकार स्मरण करता रहे। **चतुर्भूमिका**—पुनः पुनः स्मृत ज्ञान से, चौथी भूमिका में साक्षात्कार बताया गया है, जिसमें सर्व संशय समाप्त हो जाते हैं। साक्षात्कार जन्य अनुभव से मुमुक्षु [-द्रष्टा] की स्थिति वर-वरियान्-वरिष्ठ जैसी होती है, जो पंचमी, षष्ठी और सप्तमी भूमिकाएँ हैं। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन सात भूमिकाओं का उल्लेख अन्य भाषा-ग्रन्थों में भी है। 'ब्रह्म विलास' ग्रन्थ में ये सात भूमिकाएँ इस प्रकार हैं—1. शुभेच्छा, 2. शुभ विचार, 3. तनमनसा [-तन्मयता], 4. सत्वाप्ति, 5. असंसक्ति, 6. पदार्थाभाविनी, 7. तुरीया [दे०—सु० ग्रं०, खण्ड 2, पृ० 788, पाद टिप्पणी]। भूमि भेद=भूमिका भेद [-वर्गीकरण]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 26 ॥ बिचार कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : ज्ञान-मार्गी शाखा के सन्त-रचनाकारों ने 'विचार-विवेक' को विशेष महत्त्व दिया है। 50 साखियों के इस अंग में विचार तत्त्व का जो पक्ष प्रस्तुत हुआ है, वह जीवन-मुक्ति केलिए ही नहीं, जीवन-व्यवहार केलिए भी बड़ा सार्थक लगता है। इन साखियों का वर्ण्य-विषय है कि 'अज्ञान' ही हमारे समस्त रोगों [-व्याधियों], संशय-भ्रान्तियों की जड़ है। इस विचार-तत्त्व की अवस्था तक पहुँचने केलिए श्रवण-चिन्तन-निदिध्यासन प्रक्रिया आवश्यक हैं, जो बहुत ही तर्कपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक है। उक्त विचार-विवेक दशा में चेतना जब प्रतिष्ठित होती है, तब जिस समता का अनुभव मनुष्य करता है, उसका निष्कर्ष सुन्दरदास ने इस साखी में दिया है—

'प्रान वोर [ओर] जो देषिये सब कौ एकै प्रान।
सुन्दर क्षुधा तृषा लगै सब कौं एक समान॥'

अपने मन्तव्य को सहज सुलभ बनाने केलिए रचनाकार ने अनेक रूपकों-उदाहरणों एवं दृष्टान्तों का सहारा लिया है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साखी : सुन्दर साधन सब थके उपज्यौ हृदय बिचार।
श्रवन मनन निदिध्यान पुनि याही साधन सार ॥1॥
सुन्दर या साधन बिना दूजौ नहीं उपाइ।
निस दिन ब्रह्म बिचार तें जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥2॥
सुन्दर एक बिचार है सुरझावन कौं सूत।
उरझि रह्यौ संसार मैं नख सिख प्रानी भूत ॥3॥

चूर्णिका : 1-3. हृदय विचार=हृदय में चिन्तन, मनन। साधन सार=साधन-साधना [-क्रिया, उपाय]का सार। **टिप्पणी** : श्रवण-मनन-निदिध्यास ही, परम पद पाने में सार है। निस दिन···ब्रह्म ह्वै जाइ=रात-दिन अर्थात् निरन्तर ब्रह्म-भावना रहने से जीवात्मा ब्रह्मात्मा हो जाती है, 'भृंगी-कीट न्याय' से। एक बिचार···सूत= उलझे हुए सूत को अर्थात् जीवन की समस्या [-पेच, ग्रन्थि] को सुलझाने केलिए 'विचार' ही एकमात्र साधन [-उपाय] है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपजै एक बिचार जब तब यह पावै ठौर।
भरमावन कौं जगत महिं सुन्दर साधन और ॥4॥

सुन्दर एक बिचार तें हिरदौ निर्मल होइ।
फिरत रहै जो मसक लौं काटन लागै कोइ ॥5॥

सुन्दर साधन सब किया बरकति दीसै नांहि।
आयौ हृदय बिचार जब तब संमुझै हरि मांहि ॥6॥

करत देह के कृत्य सब जौ उर होइ बिचार।
सुन्दर न्यारौई रहै लिपै न एक लगार ॥7॥

दधि मथि घृत कौं काढि करि देत तक्र मंहि डार।
सुन्दर बहुरि मिलै नहीं ऐसैं लेहु बिचार ॥8॥

जैसैं जल मंहि कंवल है जल तैं न्यारौ सोइ।
सुन्दर ब्रह्म बिचारि करि सब तैं न्यारौ होइ ॥9॥

मनि अहि कै मुख मैं सदा विष नहिं लागै ताहि।
सुन्दर ब्रह्म बिचारि तैं सब सौं न्यारौ आहि ॥10॥

---

4. उपजै एक बिचार जब=जब एक विचार [-एकनिष्ठा, एक विश्वास] उदित होता है, तभी विचार-स्थिति मिलती है। भरमावन कौं=भ्रमित करने, चक्कर में डालने केलिए। साधन और=और भी बहुत से साधन हैं।

5-7. हिरदौ=हृदय, अन्तःकरण, चेतना। फिरत रहै···कोइ=जो अन्य मत-मतान्तरों में फिरता-रहता है, भटकता-रहता है, वह मच्छर की तरह, अपने तर्क-डंक से, सब को काटता ही रहता है। बरकति<बरकत [अ०]=बढ़ती, बहुतायत, प्रवृद्धि। हरि मांहि=विचार तत्त्व के माध्यम से ही हृदय में हरि का अनुभव होता है। देह के कृत्य=शरीर कृत [-कार्य]। टिप्पणी : विचार तत्त्व की प्रधानता में शरीर की सारी क्रियाएँ होते-रहने पर भी, चेतना उनमें लिप्त नहीं होती। अपितु न्यारी बनी रहती है। यहाँ 'मसक', बुद्धिजीवी के लिए प्रयुक्त है।

8-10. दधि···डार=सार तत्त्व को ग्रहण करने केलिए 'दही को मथ कर घी [-नवनीत] निकाल देने के बाद तक्र [-छाछ, मट्ठा] त्यागने का चलन है। जैसे जल ···न्यारौ सोइ=जैसे जल के बीच रहते हुए [-प्राण-शक्ति ग्रहण करते हुए] भी कमल, जल-आसक्ति से अलिप्त बना-रहता है। मनि···ताहि [दृष्टा०]=जैसे मुख में मणि-धारण करने के कारण, सर्प अथवा मणि के ऊपर विष का प्रभाव नहीं होता। ऐसे ही ब्रह्म-विचारमय रहने पर संसार-विष का प्रभाव नहीं व्यापता। आहि=है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर एक बिचार तैं सुख दुख होइ समांन।
राग दोष उपजै नहीं तजै मान अपमांन ॥11॥
सुन्दर एक बिचार सौं बुद्धि तजै नानत्व।
जानै एकै आतमा उपजै भाव समत्व ॥12॥
सुन्दर ब्रह्म बिचार है सब साधन कौ मूल।
याही मैं आये सकल डाल पान फल फूल ॥13॥
कीयौ ब्रह्म बिचार जिनि तिनि सब साधन कीन।
सुन्दर राजा कै रहै प्रजा सकल आधीन ॥14॥
परा पश्यंति मध्यमा हृदये होइ बिचार।
सुन्दर मुखतैं बैषरी वांणी कौ बिस्तार ॥15॥
सुन्दर रूप रहै नहीं रूप रूप मिलि जाइ।
एक अखंडित आतमा सब मैं रह्यौ समाइ ॥16॥
इनि दहुंवनि कै मध्य है नव तत्वनि कौ लिंग।
सुन्दर करै बिचार जब उहै होत तब भंग ॥17॥
पंच तत्व सौं मिलि रह्यौ सूक्षम लिंग शरीर।
सुन्दर एक बिचार बिन चेतन मानत सीर ॥18॥

11-14. राग-दोष उपजै नहीं=विचार तत्त्व की प्रधानता में राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते। बुद्धि तजै नानत्व=विचार की प्रधानता के कारण बुद्धि अपने विभेदक गुण [-नानात्व] को छोड़ देती है। विशेष—'समत्व' के तुक-अनुप्रास में 'नानत्व' शब्द-प्रयोग है। साधन कौ मूल=सब उपायों का मूल उपाय। डाल पान फल फूल= टहनी-पत्ते-फूल और फल अर्थात् मूल [-जड़] आधार है। अर्थात् विचार के फलस्वरूप ही सारा आकार बनता है। सब साधन कीन=जिसने 'उपाय' तत्त्व को अपना लिया, उसने सभी साधन सम्पन्न कर लिए। 'विचार' सभी साधनों का राजा है।

15-17. परा···विचार=वैखरी वाणी के अनभिव्यक्त [पूर्व-पूर्व] तीन अन्य रूप परा वाणी, पश्यन्ति वाणी, मध्यमा वाणी में उदित [-रूपायित] 'विचार' ही वैखरी वाणी में अभिव्यक्त होकर विस्तृत होता है। सबमैं रह्यौ समाइ=एक अखण्डित आत्म तत्त्व ही सब में समाया हुआ है। इनि दुहुंवनि···लिंग=इन दोनों के मध्य अर्थात् भौतिक रूप [-नानात्व] और आत्मा के बीच नव तत्त्वों [-पंचभूत एवं अन्तः-करण चतुष्टय] का लिंग [-शरीर] है। विचार के द्वारा ही उसका अहं तिरोहित होता है।

18. सूक्ष्म लिंग शरीर=बाह्य पंचभूतों एवं मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार के पीछे इन्हीं के सूक्ष्म तत्त्व हैं, जिनका समवाय ही सूक्ष्म [-लिंग] शरीर कहलाता है। चेतन मानत सीर=चेतन सीर [-ठण्डापन, जड़ता] का अनुभव करता है। अर्थात् विचार-तत्त्व से ही चेतना में ऊष्मा आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यौं काहू कै रोग ह्वै नारी देषै बैद।
सुन्दर अपनी सी कहै वायु कियौ तन कैद ॥19॥
बहुरि बुलायौ ज्योतिषी उन यह कियौ बिचार।
सुन्दर ग्रह लागै सबै किये पुन्य उवार ॥20॥
भोपै भोपी आइ कै बहुत लगायौ दोष।
सुन्दर या ऊपर कीयौ देवी देवन रोष ॥21॥
अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोइ।
सुन्दर बहुत मता सुनैं कछू बिचार न होइ ॥22॥
जे बिषई अत्यन्त करि रहे बिषै फल षाइ।
सुन्दर मावस की निसा अभ्र रहे अति छाइ ॥23॥
कोऊ एक मुमुक्षु कौं दीयौ गुरु उपदेश।
सुन्दर वासौं यौं कह्यौ यह संसार कलेश ॥24॥
जन्म मरण बहु भांति के आगै जम की त्रास।
चौरासी के दुःख सुनि सुन्दर भयौ उदास ॥25॥

19-21. नारी देषै बैद=रोग-निदान केलिए वैद्य रोगी की नाड़ी देखता है। **टिप्पणी :** वैद्य अपने अनुभव [-कार्य-क्षेत्र] के अनुरूप अपनी बात कहता है कि यह रोगी वायु-ग्रस्त [-वात-पीड़ित] है। जब वही रोगी ज्योतिषी के निकट जाता है, तो वह उसे ग्रह-ग्रस्त अर्थात् ग्रहों की कुदृष्टि का परिणाम बताता है। जब वही रोगी 'भोपा-भोपी' के निकट जाता है तो वे उस रोगी पर देवी-देवता का कोप बताते हैं। विचार तत्त्व के बिना यह सब मति-भेद देखा जा सकता है। भोपा-भोपी=स्याने [-सियाने] अर्थात् झाड़-फूंक करने वाले ओझादि।

22-25. अटकर परै न कोइ=कोई अटकल [-अनुमान] सही नहीं बैठता। बहुत मता सुनैं=बहुत से मत-वादों को सुनने पर भी, कोई एक विचार नहीं बनता, कोई धारणा निश्चित नहीं होती। बिषई=विषयी, भोगासक्ति वाले प्राणी। मावस··· अति छाइ=विषयी की मानसिकता मेघाच्छादित अमावस्या की रात्रि जैसी होती है अर्थात् घुप्प अँधेरा। क्योंकि, वे भोग-विषयों से बाहर सोच भी नहीं सकते। मुमुक्षु=जिज्ञासु-साधक। वासौं यौं कह्यौ···कलेश=उससे यह कहा कि '**संसार** क्लेश या व्याधि है'। जम की त्रास=यमदूत का भय। चौरासी के दुःख=चौरासी-लाख योनियों में होने वाले दुःख। उदास=उदासीन। गुरु उपदेश से मुमुक्षु की चेतना उदासीन [-उन्मन] हो उठने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल गये बिलाइ कैं तारनि कैं उजियार।
देष्यौ रजु कौ सर्प तब सुन्दर बिना बिचार ॥26॥
सुन्दर कियौ बिचार जब प्रगट भयौ तब भान।
अंधकार रजनी गई सर्प मिट्यौ रजु जान ॥27॥
सूतौ जीव नरेस यह सुख सज्जा परि आइ।
बडी अबिद्या नींद मैं सुन्दर अति सुख पाइ ॥28॥
आयौ कर्म षवास चलि नृपति जगावन हेत।
सुन्दर दीनी पुटपरी अतिगति भयौ अचेत ॥29॥
देष्यौ भक्त प्रधान जब राजा जाग्यौ नांहि।
सुन्दर संक करी नहीं पकरि झंझेरी बांहि ॥30॥

26-27. बादल गये···उजियार···बिचार=[गुरु-उपदेश को सुनते ही-] अमावस्या-रात्रि में जैसे आच्छादित बादल छट जाते हैं और तारों का प्रकाश छिटकने लगता है। लेकिन, विचार-रवि का उदय न होने के कारण, उन तारों के प्रकाश में भी चेतना, रस्सी को 'सर्प' मान कर भय मानती है। कियौ बिचार···रजु जान=विचार करते-रहने पर ज्ञान-सूर्य उदित होता है। फलतः अज्ञानान्धकार रूप रात्रि समाप्त होते ही भ्रान्ति जन्य सर्प समाप्त हो जाता है और रस्सी की रस्सी ही दीखने लगती है।

28-30. सूतौ जीव नरेस···आइ [दृष्टा०, रूपक]=यह जीवात्मन् रूप राजा अपनी सुप्त [-मोहित] अवस्था में, इन्द्रिय-भोग में तृप्ति मानते हुए [-सुख-शैय्या पर] सुख की नींद सोया-रहता है। अबिद्या-नींद=यह निद्रा 'अविद्या' रूप है। कर्म षवास···जगावन हेत [दृष्टा०, रूपक]=उस सुप्त जीव नरेश को जगाने केलिए कर्म-खिदमतगार आता है। अर्थात् कर्म-सिद्धान्त से जीवात्मन् को जाग्रत करने [-कराने] का प्रयत्न किया जाता है। षवास<खवास [अ०]=खिदमतगार, राजा-रईसों का सेवक। विशेष—इसी अर्थ में 'खवास' शब्द का प्रयोग तुलसी ने भी किया है—'पठयौ है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ, खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को।' [दे०-कविता०]। दीनी पुटपरी=पुटपरी<पुटपाक [सं०] अर्थात् कर्म-पुष्टि केलिए पुटपाक रूप अवलेह खिला दिया है, जिससे वह और अचेत हो जाता है। अर्थात् कर्मों के परिणाम के अनुसार जीवन-फल [-सुख-भोग] के सिद्धान्त से एक प्रकार की [जड़ता-] अबोधता का होना सम्भव है। देष्यौ भक्त···झंझेरी बांहि [दृष्टा०, रूपक, बिम्ब]=जब प्रधान [-सचिव] रूप भक्त ने देखा कि जीव-नरेश, कर्म-खिदमतगार की 'पुटपरी' से नहीं जगा, तब उसने अपने दायित्व को निभाते हुए, शंका [-चिन्ता] न करते हुए, उसकी बाँह पकड़ कर झँझोर डाली और उठने केलिए उद्बद्ध किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तव उठि करि बैठौ भयौ बहुरि जंभाई षात।
सुन्दर कियौ बिचार जब तब जाग्यौ साक्षात ।।31।।
देह वोर जो देषिये पंच तत्व कौ देह।
सुन्दर ब्रह्मा कीट लौं करहु बिचार सु येह ।।32।।
प्रान वोर जो देषिये सब कौ एकै प्रान।
सुन्दर क्षुधा तृषा लगै सब कौं एक समान ।।33।।
मनहूं कौं जो देषिये मन सबहिन कौ एक।
सुन्दर करै बिकलपना अरु संकल्प अनेक ।।34।।
सुन्दर एकै आतमा जब यह करै बिचार।
तब कछु भ्रम दीसै नहीं एक रहै निरधार ।।35।।
प्रश्न : कै दुख पावै देह यह कै इन्द्रिनि दुख होइ।
सुन्दर कै दुख प्रान कौं यह समुंझावौ कोइ ।।36।।
कै दुख अंतह्करण कौं मन बुधि चित अहंकार।
सुन्दर कै दुख त्रिगुन कौं यह तुम कहौ बिचार ।।37।।
कै दुख है महतत्व कौं कै दुख प्रकृतिहि मांनि।
सुन्दर कै दुःख पुरुष कौं श्री गुरु कहौ बषांनि ।।38।।
बहुबिधि देष्यौ सोच करि कछु जान्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर यह दुःख कौन कौं सद्गुरु कहि संमुझाइ ।।39।।

31-33. जंभाई खात=भक्त [-प्रधान] के उद्‌बोध से जीव-नरेश, जँभाई खाते [-अलसाते] हुए जगा। किन्तु, सही ढँग से तभी जगा, जब उसने विचार किया कि अब 'जगने' का समय है। वोर=ओर, तरफ। ब्रह्मा कीट लौं='ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त सभी शरीरधारी समान हैं' ऐसा सोचना ही विचार की प्रधानता है। प्रान वोर जो देषिये···समान=प्राण-चेतना की ओर जब विचार करते हैं, तो यही ज्ञात होता है कि भूख-प्यास सभी को समान रूप से लगती है।

34-35. मनहूं कौं·· एक=मन की ओर देखने पर अर्थात् सब के मनों पर विचार करने पर अनुभव होता है कि सब के 'मन' एक समान हैं। क्योंकि, सभी के मन संकल्प और विकल्प करते हैं। एकै आतमा···निराधार=जब यह विचार किया जाता है कि सब की आत्मा एक है, तब कोई भ्रम शेष नहीं रहता। तब तो निराधार रूप एकमात्र तत्त्व [-विचार] ही शेष रह जाता है। **टिप्पणी** : प्रश्न-जिज्ञासा-शरीर, प्राण और मन पर विचार करते हुए आत्मन् तक पहुँचती है।

36-39. कै दुख पावै···कोइ=जिज्ञासु शिष्य का प्रश्न है कि दुःख की अनुभूति शरीर, प्राण, अन्तःकरण चतुष्टय [-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का समवाय], त्रिगुण, महतत्त्व, प्रकृति अथवा पुरुष में से किसको होती है ? अर्थात् यह दुःख-भाव किसको साता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर : सुन्दर दुख नहिं देह कौं इंद्रिनि कौं दुख नांहिं।
दुख नहिं दीसै प्रान कौं स्वास चलै तनु मांहिं ।।40।।
दुख नहिं अंतहकरन कौं जिनतें देह प्रवृत्य।
सुन्दर दुख नहिं त्रिगुन कौं यह तुम जानहु सत्य ।।41।।
दु:ख नहीं महतत्व कौं प्रकृति सुतौ जड रूप।
सुन्दर दुख नहिं पुरुष कौं सूक्षम तत्व अनूप ।।42।।
जड चेतन संयोग तें उपज्यौ एक अज्ञान।
सुन्दर दुख ताकौं भयौ सद्गुरु कहै सुजान ।।43।।
जौ बिचार यह ऊपजै तुरत मुक्त ह्वै जाइ।
सुन्दर छूटै दुखन तें पद आनंद समाइ ।।44।।
यह बिचार सुख रूप है और सबै दुख रासि।
सुन्दर यातैं कहत है नाना बिधि की पासि ।।45।।
भरमावन कौं और सब पहुंचावन कौं एक।
सुन्दर साधू कहत हैं जाकौ नाम बिबेक ।।46।।
याही एक बिचार तें आतम अनुभव होइ।
सुन्दर संमुझै आपु कौं संशय रहै न कोइ ।।47।।

---

40. स्वास चलै तनु मांहि=यह दु:ख न तो शरीर को होता है, न इन्द्रियों को और न प्राण को। क्योंकि, प्राण-वायु शरीर में, सहज रूप से, संचालित बनी-रहती है।

41-42. देह प्रवृत्य=शरीर-प्रवृत्ति। जानहु सत्य=इसे सत्य समझो। प्रकृति सु तौ जड रूप=प्रकृति तो जड़ रूप है। सूक्षम तत्व अनूप=पुरुष भी दु:ख-भोक्ता नहीं है, वह तो [अनुपम-विलक्षण-] सूक्ष्म तत्त्व है।

43-44. जड चेतन···अज्ञान=जड़-पदार्थ एवं चेतन-चैतन्य के अद्भुत संयोग से 'अज्ञान' उदित हो जाता है, उस अज्ञान को ही दु:ख का अनुभव होता है। पद आनंद समाइ=पद [-स्थिति] के आनन्द-भाव [-परमपद भाव] में समाहित हो जाता है।

45-47. दुख रासि=दु:ख की राशि अर्थात् विचार रहित अथवा अज्ञान जन्य स्थिति ही दु:ख का भण्डार है। पासि<पाशि<पाश [सं०] =बन्धन, जाल। भरमावन कौं=भ्रमित करने केलिए। पहुंचावन कौं एक=एक विचार तत्त्व ही गन्तव्य तक पहुँचाने में सहायक होता है। साधु-सन्त उस 'एक' विचार को 'विवेक' नाम से अभिहित करते हैं। आतम अनुभव होइ=इस विचार तत्त्व से ही आत्मानुभव सम्भव है। संमुझैं आपु कौं=यह विचार क्या है—'अपने आप को समझना'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाही कौं चितवन करै तैसौं ही ह्वै जाइ।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तें ब्रह्महिं मांहिं समाइ ।।48।।
करत बिचार बिचारिया एकै ब्रह्म बिचार।
सुन्दर सकल विचार मैं यह बिचार निज सार ।।49।।
ब्रह्म बिचारत ब्रह्म ह्वै और बिचारत और।
सुन्दर जा मारग चलै पहुंचै ताही ठौर ।।50।।

।। इति बिचार कौ अंग ।।26।।

48-50. जाही कौं···ह्वै जाइ=जिसका चिन्तन करता है, वैसा ही हो जाता है। करत बिचार=ब्रह्म विचार-चिन्तन करते-करते सब विचारों के सार रूप में एक विचार प्राप्त होता है, वह है 'ब्रह्म-विचार' और यह ब्रह्म-विचार ही निज सार [-आत्म चिन्तन-तत्त्व] है। ब्रह्म···ठौर=ब्रह्म का विचार करते हुए ब्रह्म ही होता है। ब्रह्म के अतिरिक्त और [-माया-जड़ता-भौतिकता-धनासक्ति आदि] का विचार किया जाएगा तो चेतना वैसी ही हो जाएगी। पन्थ पर चलकर जिस ओर गति होती है, उसी दिशा में ठौर [-लक्ष्य] प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 27 ।। अथ अक्षर बिचार कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : विचार-प्रतिपादन की दृष्टि से 20 साखियों वाला यह लघु अंग 'गागर में सागर' की संज्ञा पाने के योग्य है। अरबी-फारसी वर्णकाला के ऐन-ग़ैन एवं देवनागरी वर्णकाला के व्यंजन-स्वर तथा संयुक्त अक्षरों के माध्यम से जीव-माया-ब्रह्म-सिद्धान्त, बिन्दु-सिन्धु रूप में आतमन्-परमातमन् का विचार, लघु-गुरु और संयुक्त वर्णों के माध्यम से गुरुत्व प्राप्ति का विचार एवं सन्धि-नियम के आधार पर रूपान्तरित चेतना को 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' की आध्यात्मिक पद्धति के विचार-पक्ष को प्रतिपादित किया गया है। सामाजिक दृष्टि से इन साखियों में जिस विचार-पक्ष का प्रतिपादन है, उसमें ब्राह्मण-शूद्र सम्बन्धी पक्ष का जातिगत अन्तर मानना या रखना, अज्ञान जनित बताया गया है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : ऐंस नहीं अरु ऐंन है गैंन नहीं अरु गैंन।
सुन्दर नुकता आरसी दूरि किये तें ऐंन ।।1।।

चूर्णिका : टिप्पणी : इसप्रकार का विचार-प्रतिपादन सुन्दरदास ने अन्यत्र अपनी लघु रचना 'ज्ञान झूलना अष्टक' में भी किया है। इस सम्बन्ध में वहाँ दी गई चूर्णिका द्रष्टव्य है। ऐंन=अरबी-फारसी वर्णकाला का एक अक्षर [ع], चश्म, नेत्र, प्रत्यक्ष, यथार्थ, वास्तविक। इसी से ऐनक शब्द बनता है। गैंन=अरबी-फारसी वर्णमाला का एक अक्षर ऐन पर जब ऊपर नुक़्ता लगा दिया जाता है, तो ग़ैन बन जाता है। इसका अरबी भाषा में अर्थ है—अभ्र, बादल, अंधेरा अर्थात् अप्रत्यक्ष, आवरण युक्त, विकारमय। नुकता<नुक्त [अ॰]=बिंदी, बिन्दु, सिफ़्र, निशान। आरसी<आदर्श [सं॰]=दर्पण, शीशा, आईना। **टिप्पणी** : ऐन पर नुक़्ता लगाने से अरबी-फारसी वर्णमाला में ग़ैन बन जाता है। इस स्थिति को आधार बनाकर यहाँ वेदान्त-ज्ञान की अध्यास-प्रक्रिया को समझाया गया गया है। यह बिन्दु ही यहाँ माया-प्रभाव [विवाद या मिथ्या-प्रतीति] का कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर नुकता भिन्न है मिल्यौ ऐंन सौं नांहिं।
मिलि करि दोऊ बांचिये मिले अमिल यौं मांहिं ।।2।।
ऐंन आतमा जानिये नुकता भयौ शरीर।
सुन्दर दोउ भिन्न हैं मिले देषिये बीर ।।3।।
ऐंन सु दीरघ देषिये नुकता तनक दिषाइ।
सुन्दर नुकता तनक तैं ऐंन गैंन ह्वै जाइ ।।4।।
उहै ऐंन उह गैंन है नुकता ही कौ फेर।
सुन्दर नुकता भ्रम लग्यौ ज्ञान सुपेदा हेर ।।5।।
ऐंन ऐंन के ऊपरैं नुकता फूला होइ।
ऐंन गैंन ह्वै जात है ऐंन न सूझै कोइ ।।6।।

बताया गया है। 'आरसी' शब्द को संधि द्वारा आर+सी=आड़ जैसा [-मल, आवरण, विक्षेप] अर्थ होगा। इसका तात्पर्य है कि 'नुक़्ता' आर [-सी] के समान है और इससे बना हुआ 'ग़ैन' [-माया, मिथ्यावरण, अध्यास] 'ऐंन' [-ब्रह्म, परम तत्त्व] से भिन्न है। फिर भी 'ग़ैन' रूप में 'ऐंन' से जुड़ा रहने अथवा माया से आरोपित बने रहने के कारण 'ऐंन' [-ब्रह्म]' 'ग़ैन' [-माया, संसार] बना रहता है। यही बात शरीर में विद्यमान [-वर्तमान] आत्मन् के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

2. नुकता भिन्न···सौं नाहिं=नुक़्ता [-बिन्दु] ऐंन से मिला हुआ नहीं है, भिन्न है। जब उन दोनों [-बिन्दु सहित ऐंन] को पढ़ा जाता है तो वे 'अमिल' [पृथक्-] होते हुए भी, मिले हुए ग़ैन रूप में पढ़े जाते हैं।

3-5. ऐंन आतमा जानिये=[मन्तव्य को अथवा प्रतीक में निहित अर्थ को स्पष्ट करने केलिए बताया है—] ऐंनको आत्मा [-सार, तत्त्व, परम पद] रूप में समझिए। नुकता भयौ शरीर=शरीर नुक़्ता [-आवरण रूप] है। ऐंन सु दीरघ···दिषाइ= वर्ण-आकार में ऐंन बहुत बड़ा है और नुक़्ता बहुत लघु है। फिर भी तनिक-सा नुक़्ता ऐंन को ग़ैन बना देता है। माया का तनिक-सा आवरण ब्रह्म को ढक लेता है। नुकता ही कौ फेर=नुक़्ता [-माया, शरीरादि] सब प्रपंच है, जिसके कारण वही ऐंन, ग़ैन होता-रहता है। नुकता भ्रम लग्यौ=भ्रम रूप नुक्ता लग जाने पर, उसे दूर करने केलिए, ज्ञान रूप सुपेदा [-सफेदा, स्याही मिटाने की 'गरताल' या रबड़] को खोजते हैं।

6. ऐंन ऐंन···फूला होइ=ऐंन रूप पुतली-नेत्र [ऐंन] के ऊपर नुक़्ता रूप फूला [-मोतियाबिन्द या पुतली पर छाया हुआ सफेद जाला] हो जाता है। अर्थात् नेत्रों [-दृष्टि, चेतना, अन्तः चक्षु या आत्मन्] पर, शरीर-संयोग से माया का बिन्दु, आच्छादित हो जाता है, तभी 'ऐंन' का 'ग़ैन' हो जाता है और फिर अक्षर-ऐंन [आत्मन्] दिखाई नहीं देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुकता फूला ऊपरै सुन्दर अंजन लाइ।
नुकता फूला दूरि ह्वै ऐंनहि ऐंन दिषाइ ॥7॥
ज्यौं आकार अक्षरनि मैं त्यौं आतम सब मांहि।
सुन्दर एकै देषिये भिन्न भाव कछु नांहि ॥8॥
जैसैं बिंजन मिलत है पर अक्षर सौं जाइ।
अहंकार सुन्दर गयें आतम ब्रह्म समाइ ॥9॥
बिंजन पर अक्षर मिलै द्वैत भाव दरसाइ।
भक्त मिलै भगवंत कौं सुन्दर दास कहाइ ॥10॥
बिंजन पर अक्षर मिलै द्वैत भाव नहिं कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय एकमेक मिल होइ ॥11॥
बिंजन स्वर अक्षर मिलै होइ और ही रूप।
रज बीरज संयोग तें उपजै देह स्वरूप ॥12॥
देषत दीसै एक ही अरथ बिचारय दोइ।
सुन्दर अद्‌भुत बात है संमुझै पंडित कोइ ॥13॥

7-8. नुकता फूला···दिषाइ=फूला रूप नुक़्ता जब दूर लगा हो तो ऐंन का ऐंन ही दिखाई देता है। अर्थात् नेत्र[-पुतली]यदि निर्मल हो तो पूरा दृश्य[-संसार]अपनी असलियत में दिखाई देता है। ज्यौं आकार···मांहि=जिस प्रकार वर्णाक्षरों में 'अकार' सभी में व्याप्त रहता है, वैसे ही आकार-धारी शरीरों में आत्मन् विद्यमान रहता है।

9-10. बिंजन < व्यंजन [सं०] = वर्णमाला में वह वर्ण जो बिना स्वर की सहायता के, न बोला जा सके, जैसे देवनागरी वर्णमाला के 'क' से 'ह' तक के वर्ण व्यंजन हैं। जैसे बिंजन···जाइ=जैसे व्यंजन [-स्वर रहित], अपने अगले अक्षर से मिलता है अर्थात् संयुक्त होता है। ऐसे ही अहंकार [-अहंता] के तिरोहित होने पर, आत्मन्, परमात्मा में मिलता [-समा जाता] है। बिंजन पर अक्षर···दरसाइ = व्यंजन जब पर-अक्षर [-परात्पर] से संयुक्त होता है, तो यह योग, भक्ति में द्वैत भाव के रूप में देखा जाता है। ऐसे ही भक्त जब भगवान् से मिलता है, तो 'दास' कहलाता है।

11-13. बिंजन···कोइ=जब व्यंजन, पर-अक्षर [-अक्षर ब्रह्म] से मिलता है, तो मिल जाने पर द्वैत भाव नहीं रहता। तब ब्रह्मविद् [-ज्ञानी] ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। बिंजन स्वर···देह स्वरूप[दृष्टा०] = 'अक्षर' के रूप में व्यंजन और स्वर जब मिलते हैं, तो एक नया रूपाकार बन जाता है। यह नया रूपाकार उसी प्रकार है, जैसे [माँ की-] रज और [पिता के-] वीर्य के संयोग से शरीर का यना स्वरूप निर्मित हो जाता है। देषत···दोइ=यह स्वर-व्यंजन का मिला हुआ शरीर रूप अक्षर देखने में तो एक दिखाई देता है। किन्तु, अर्थ-विचार की दृष्टि से ये दो हैं। अर्थात् शरीर और आत्मन्। **टिप्पणी :** शरीर में आत्मन् अथवा प्रकृति में परमात्मा की व्यापकता के कारण भिन्नत्व का ज्ञान [-विवेक रहित] मनुष्य को नहीं होता। उसे तो स्वर मिले व्यंजन, अक्षर रूप में ही दिखाई देते हैं। विवेक [-भाषा-अभ्यास] से ये दोनों पृथक्-पृथक् देखे जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : बिंजन होइ तकार तालिब होइ शकार जो।
सुन्दर होइ छकार उभय बरन नहिं देषिये ॥14॥
यौं द्विज सूद्र सु एक ज्ञान विषै नहिं भेद है।
उभय बरन तजि टैक ब्रह्म रूप सुन्दर भये ॥15॥

दोहा : दीरघ कै पीछै भये ह्वै अनयास गुरुत्व।
सुन्दर लघु दीरघ करै ज्यौं अक्षर संयुत्व ॥16॥
आपुन लगु ह्वै जात है औरहि दे सनमांन।
सुन्दर रीति बडेन की जानहिं संत सुजांन ॥17॥
जो कोउ आइ बडौ कहै धरैं बडाई सीस।
तौ हू आप समा करै सुन्दर बिस्वा बीस ॥18॥

14-15. बिंजन होइ तकार···देषिये=[व्याकरणान्तर्गत सन्धि नियमों के अनुसार—] यदि व्यंजन 'तकार' हो और तालिब [अ०, जिज्ञासु, ख्वाहिशमंद, इच्छुक] 'शकार' हो, तो दोनों की सन्धि होने पर 'च्छकार' बन जाता है। जैसे—उत्+श्वास= उच्छ्वास। उभय बरन=[पूर्व के-] दोनों वर्ण। यौं द्विज सूद्र···सुन्दर भये= ज्ञान-दृष्टि से देखने पर द्विज [-ब्राह्मण] और शूद्र इन दोनों वर्णों में कोई भेद नहीं है। उभय बरन···भये=संकलपपूर्वक दोनों वर्णों [-दो व्यंजन अथवा ब्राह्मण-शूद्रादि वर्ण] को त्याग देने पर, परब्रह्म रूप [-एकाकार] एक वर्ण हो जाते हैं।

16-17. दीरघ=दीर्घ वर्ण, दीर्घ मात्रा वाला अक्षर। गुरुत्व=गुरु अक्षर। **टिप्पणी :** सन्धि-नियम और छन्द-विधान में संयुक्त अक्षर से पहले वाला अक्षर स्वतः गुरु [ऽ] हो जाता है। अर्थात् संयुक्त अक्षर लघु को दीर्घ कर देता है। ऐसे ही, जब परमात्मा से जीव संयुक्त होता है, तो उसका लघुत्व दीर्घत्व में बदल जाता है। अतः दीर्घ या गुरु [ऽ] के पीछे चलने पर अनायास गुरुत्व प्राप्त हो जाता है। नियम है—'संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रं। विज्ञेयमक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन।' यह 'गुरुत्व' सत्संगति अथवा गुरु-भक्ति से भी मिल जाता है। 'अक्षर ज्ञान बोध' के माध्यम से साधक [-जिज्ञासु, मुमुक्षु] रूप लघु [-शिष्य] की चेतना में गुरुत्व [-अध्यात्म-मर्म] स्वतः आ जाता है। आपुन लघु···सनमांन=स्वयं को लघु बनाए रखकर दूसरों को सम्मान देना ही बड़प्पन है। रीति बडेन की=महा-पुरुषों की ऐसी ही रीति-नीति रहती है।

18. धरैं बड़ाई सीस=विनम्रता पूर्वक शीश पर धारण करने में ही 'बड़प्पन' [-गुरुत्व] है। बिस्वा बीस=पूरी तरह से। **टिप्पणी :** हलन्त 'र', अगले व्यंजन पर, उसके शीश पर विराजमान हो जाता है। जैसे—क+र्+म=कर्म। इसमें 'म' व्यंजन का बडप्पन यही है कि वह 'र्' [-आधा] को सिर पर बैठा कर सम्मान देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर लघुता गहि रहै दूरि करैं जब गर्ब।
गुरु ताही कौं देत है बित्त आपनो सर्ब ।।19।।
जौ गुरु कै पीछै रहै तो लघु दीरघ होइ।
आगै लघु कौ लघु रहै सुन्दर पुस्तक जोइ ।।20।।

।। इति अक्षर बिचार अंग ।।27।।

19-20. लघुता गहि रहै=लघुत्व या लाघव [-चेतना-ज्ञान के वैशद्य के कारण] -भाव [जिज्ञासु को-]धारण किए रखना चाहिए। इससे अहंकार प्रबल नहीं होता। गुरु ताही···सर्ब=ऐसे विनम्र जिज्ञासु को सद्‌गुरु सर्वस्व अर्थात् पूरा वित्त [-ज्ञान धन] प्रदान कर देते हैं। जो गुरु···पुस्तक जोइ=जो छन्द-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों में देखा जा सकता है। वहाँ यही सिद्धान्त मिलेगा कि 'गुरु' का अनुगामी होने पर लघु भी गुरु हो जाता है। जो गुरु के आगे चलने का प्रयत्न करता है, वह लघु का लघु ही बना-रहता है। यह उदाहरण विचार-साधना-क्षेत्र में, ज्ञान-प्राप्ति के लिए भी चरितार्थ होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 28 ।। अथ आत्मानुभव कौ अंग ।।

प्रवेशार्थ : साखी अंगों में यह अंग इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसमें सन्तों के विचार-चिन्तन का मूलाधार 'आत्मानुभव' अभिव्यक्त हुआ है। प्रस्तुत अंग की 51 साखियों में **'अनुभौ'** के सैद्धान्तिक पक्ष को प्रमुखता मिली है। आग, विद्युत और बड़वाग्नि के उदाहरणों से श्रुतज्ञान, मनन ज्ञान एवं निदिध्यास ज्ञान को समझाते हुए और 'अनुभौ' ज्ञान को सर्वोपरि बताते हुए उसे प्रलयाग्नि के समतुल्य बताया है। साथ ही कहा गया है कि **'गुलाब'** के पौधे अथवा फूल को जान लेना तब तक समग्र और सार्थक नहीं है, जब तक उसकी सुगन्धि को न जान लिया जाए। यह गुलाब का पौधा या फूल मनुष्य [-जीवन] -शरीर है और 'आत्मानुभव' उसमें निहित सुगन्धित [के अनुभव] के समान है। जो इस अनुभौ रूप अमृत का आस्वाद ले-लेता है, वही उसके आनन्द [-आस्वाद] को सम्यक् रूप से जान पाता है। मूल पाठ देखिए—

साषी : मुख तैं कह्यौ न जात है अनुभव कौ आनंद।
सुन्दर संमुझै आप कौं जहां न कोई द्वंद ।।1।।
उमगि चलत है कहन कौं कछू कह्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर लहरि समुद्र मैं उपजै बहुरि समाइ ।।2।।
कह्यौ कछू नहिं जात है अनुभव आतम सुक्ख।
सुन्दर आवै कंठ लौं निकसत नांहि न मुक्ख ।।3।।

चूर्णिका : 1-3. अनुभव कौ आनंद=अनुभव का सुखात्मक आस्वाद। संमुझै आपु कौं=अपने को समझे [-पहिचाने]। द्वंद=क्लेश, द्वैत जनित टकराहट। उमगि=उमंगित। लहरि···समाइ [दृष्टा०]=जैसे समुद्र में से ही लहर उत्पन्न होती है और उसी में समा जाती है। अनुभव आतम सुक्ख=आत्म-सुख का अनुभव कहते नहीं बनता। कण्ठ तक तो वह मुखर होता है, लेकिन मुख से यथावत् अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर जैसैं सर्करा गूंगै षाई होइ।
मुख सौं कहि आवै नहीं कांष बजावै सोइ ।।4।।
सदा रहै आनंद मैं सुन्दर ब्रह्म समाइ।
गूंगा गुड कैसैं कहै मन ही मन मसकाइ ।।5।।
जाकै निश्चय ऊपजै अनुभव आतम ग्यांन।
सुन्दर सो बोलै नहीं सहज भया गलतांन ।।6।।
जाकौं अनुभव होत है सोई जानै सार।
सुन्दर कहैं बनैं नहीं मुख तैं एक लगार ।।7।।
कामी जानै काम सुख सोऊ कह्यौ न जाइ।
आतम अनुभव परम सुख सुन्दर बचन बिलाइ ।।8।।
सो जानैं जाके भयौ आतम अनुभव ग्यान।
मुख सौं कहें बनै नहीं सुन्दर जानै जान ।।9।।
सुन्दर जिनि अमृत पियौ सोई जानै स्वाद।
बिन पीये करतौ फिरै जहां तहां बकबाद ।।10।।

4-5. जैसें सर्करा···होइ [दृष्टा०]=अनुभवानन्द अर्थात् आत्म सुख [-ब्रह्म सुख] उसी प्रकार है, जैसे किसी गूँगे आदमी ने शर्करा[-कन्द] तो खा ली हो, पर वाणी से मूक होने के कारण, उसके आस्वाद-अनुभव के विषय में कुछ न कह पाये। कांष बजावै सोइ [मुहा०]=काँख बजाना अर्थात् खुशी प्रकट करना। **टिप्पणी** : काँख [-बगल] में, हथेली लगाकर, तेज़ी से हाथ दबाते-जाने से, एक प्रकार का शब्द ध्वनि निकलती है, वह प्रसन्नता की अभिव्यक्ति मानी जाती है। गूंगा गुड़ कैसें कहै मन ही मन मुसकाइ [दृष्टा०]=गूंगे के द्वारा गुड़ खाने पर, उसके आस्वाद की अभिव्यक्ति न कर पाने के कारण 'गूंगे का गुड़' यह मुहाबरा ही बन गया है।

6-8. निश्चय ऊपजै=निश्चय का उदय। देह-भ्रान्ति का निवारण ही 'निश्चय का उगना' है। गलतांन=लीन, तन्मय। सार=मर्म, रहस्य। कहैं बनें नहीं [मुहा०] =कहते नहीं बनता। कामी जानै···कह्यौ न जाइ=विषयी अपने विषय-सुख को जानता है, वह भी उसके आस्वादजन्य अनुभव को बता सकने में असमर्थ ही रहता है। आतम···बिलाइ=आत्मानुभव तो परम सुख है, उसकी अभिव्यक्ति में वचन विलीन या अन्तर्मुखी हो जाते हैं।

9-10. सो जानै जाके भयौ=जिसको यह आत्मानुभव हो जाता है, वही इसको जान [-समझ] सकता है। जानै जान=सुजान ही जान सकता है। जिनि अमृत··· बकबाद=जो अमृत-रस को पीते हैं, वही उसका स्वाद जानते हैं और जो बिना पिये होते हैं वे, इधर-उधर की काट-छाँट करके, बकवास [-व्यर्थ की बातें] करते-रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर जाकै बित्त है सो वह राखै गोइ।
कौडी फिरै उछालतौ जो टटपूंज्यौ होइ ॥11॥
जाकै घट अनुभव नहीं ताकै सुख नहिं लेश।
सुन्दर बहु बकबाद करि करतौ फिरै कलेश ॥12॥
जाकै अनुभव होत है ताही के सुख चैन।
सुन्दर मुदित रहै सदा पूछैं बोलैं बैन ॥13॥
सुन्दर डुबकी मारि कै सुख मैं रहै समाइ।
वह सब कौं देषत फिरै वह नहिं देष्यौ जाइ ॥14॥
अनुभव करिकै आतमा जानैं ज्यौं आकास।
सदा अखंडित एक रस सुन्दर स्वयं प्रकास ॥15॥
ताकौ आदि न अंत है मध्य कह्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर ऐसौ आतमा सब मैं रह्यौ समाइ ॥16॥
नां वह सूक्षम स्थूल है नां वह एक न दोइ।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव ही गमि होइ ॥17॥
नां वह रूप अरूप है नां वह मूल न डाल।
सुन्दर ऐसौ आतमा नां वह बृद्ध न आल ॥18॥
लघु दीरघ दीसै नहीं नां वह भीत अभीत।
सुन्दर ऐसौ आतमा कहिये बचनातीत ॥19॥

11-12. बित्त=पूंजी [संपत्ति]। कौड़ी फिरै उछालतौ···जो टटपूंज्यौ होइ [कहा०]=टटपूंज्या [तुच्छ-क्षुद्र या अल्प वित्त वाला व्यक्ति, वह-] जुए में कौड़ियाँ उछालता-फिरता है।

13. सुख चैन=सुखानुभूति। मुदित रहै सदा=सदा प्रसन्न रहता है। पूछैं बोलै बैन=पूछने पर ही बोलता है।

14-16. डुबकी मारि कै=गोता लगाकर, ध्यानस्थ होकर, लयावस्था में। अनुभव··· आकास=अनुभव करने पर ही आकाश की भाँति चेतना-विस्तार का अनुभव होता है। स्वयं प्रकास=निज प्रकाश, आत्म चैतन्य [-प्रकाश]। सब मैं रह्यौ समाइ= वह आत्मन् सब में समाया हुआ है।

17-18. अनुभव ही गमि होइ=[आत्म तत्त्व तक-] अनुभव के द्वारा ही गति होती है। नां वह···डाल=वह न तो रूपमय है और न रूप रहित, न मूल [-जड़] है और न शाखा। वास्तव में उसे किसी एक विशेषण में बाँधा नहीं जा सकता। वह तो विलक्षण है। वृद्ध न बाल=न तो वह वृद्ध है और न बालक। अर्थात् हर विशेषण से वह विशेष्य अलग है, फिर भी उन विशेषणों में वह है, अपनी व्याप्ति के कारण।

19. भीत अभीत=भयभीत अथवा निर्भय। बचनातीत<वचनातीत=वाणी से परे, अनिर्वचनीय। टिप्पणी : 'आतमा' का सर्वत्र पुलिंग प्रयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रिय पहुंचि सकै नहीं मनहू की गमि नांहिं।
सुन्दर जानैं आपु कौं आपु आपु ही मांहिं ॥20॥
वृद्धिहु पहुंचि सकै नहीं करै दूरि लग दौर।
सुन्दर ऐसौ आतमा पहुंचि सकै क्यौं और ॥21॥
शब्द तहां पहुंचै नहीं बहु बिधि करै बषांन।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव होइ प्रमांन ॥22॥
बेद कह्यौ बहु भांति करि शास्त्र कही बहु युक्ति।
सुन्दर स्मृति पुरान पुनि कही बहुत बिधि उक्ति ॥23॥
क्यौं ही कर्‌यौ न जात है ब्योम मांहिं चित्रांम।
सुन्दर कहि कहि सब थके है अनुभव विश्रांम ॥24॥
रवि ससि तारा दीप पुनि हीरा होइ अनूप।
सुन्दर उनकै तेज तें दीसै उनकौ रूप ॥25॥
त्यौं आतम के तेज तें आतम करै प्रकास।
सुन्दर इन्द्रिय जड सबै कोइ न जाणैं तास ॥26॥
कोई थापत कर्म कौं कोई थापत काल।
को कहै सृष्टि सुभाव तें सुन्दर बाइक जाल ॥27॥

20-21. गमि = गति, पहुँच। जानै आपु कौं = अपने आप को जानना, अपने आप में ही सम्भव है। दूरि लग दौर = दूर तक दौड़ लगाती है।

22. शब्द···बषांन = उस आत्म तत्त्व के सम्बन्ध में वाणी बहुत व्याख्यान करती-रहती है, फिर भी, बिना 'अनुभव' के वहाँ तक पहुँच नहीं हो सकती। अनुभव होइ प्रमांन = आतम तत्त्व के सम्बन्ध में 'अनुभव' ही प्रमाण है।

23-24. युक्ति = उपाय, साधन, विधि-रीति। स्मृति पुरान = शास्त्र-परम्परा के स्मृति पुराणादि ग्रन्थ। उक्ति = कथन। ब्योम मांहिं चित्रांम = आकाश में चित्र बनाना, बिना फलक के चित्र बनाना असम्भव है। अनुभव विश्रांम = अनुभव ही विश्राम [-चरम परिणति] है।

25-27. दीप = दीपक। उनकै तेज तें···रूप = प्रकाश रूप सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, दीपादि के अपने प्रकाश से ही उन्हें देखा जाता है। त्यौं आतम···प्रकास = इसीप्रकार आत्म-तेज से ही आत्म-प्रकाश अनुभव में आता है। तास = उसको। कोई थापत···काल = सृष्टि के सम्बन्ध में कोई मत 'कर्म-सिद्धान्त' की स्थापना करता है, तो कोई 'काल-तत्त्व' को प्रधान मानता है। किसी के मत में 'सृष्टि' अपने स्वभाव से ही ऐसी है। बाइक जाल = [यह सब-] वाणी का जंजाल, शब्दों की ऊहापोह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कहै माया ब्रह्म पुनि दोऊ सदा अनादि।
जैसें छाया बृक्ष की सुन्दर यौं प्रतिपादि ।।28।।
नास्तिबादी यौं कहै कर्त्ता नाहीं कोइ।
सुन्दर मिल्या सजोग सब पुनि बियोग ह्वै होइ ।।29।।
षट दरसन सब अंध मिलि हस्थी देष्या जाइ।
अंग जिसा जिनि कर गह्या तैसा कह्या बनाइ ।।30।।
झगरन लागै परस्पर काकी मानै कौंन।
सुन्दर देष्या दृष्टि सौं तिनि तौ पकरी मौंन ।।31।।
बांधि गरगदा सब चलै करी मुक्ति कौं दौर।
सुन्दर धोषा मैं परे मुक्ति कहौ किहिं ठौर ।।32।।
मुक्ति बतावत ब्योम परि कहि धोषै के बन।
सुन्दर अनुभव आतमा उहै मुक्ति सुख चैंन ।।33।।
कोऊ मुक्ति शिला कहै दूरि बतावत प्रोक्ष।
सुन्दर अनुभव आतमा यह ई कहिये मोक्ष ।।34।।

28-31. को कहै···अनादि=किसी-किसी के मत में ब्रह्म और माया अनादि तत्त्व हैं। प्रतिपादि=प्रतिपादित, समर्थित। अर्थात् यह माया ब्रह्म के साथ उसीप्रकार अनादि है, जैसे वृक्ष के साथ छाया। वृक्ष होगा तो उसकी छाया अवश्य होगी। नास्तिबादी ···कोइ=नास्तिकों का मत है कि इस सृष्टि का कोई कर्त्ता नहीं है। यह सृष्टि तो 'संयोग' से मिला हुआ एक समवाय मात्र है, जो संयोग से ही बिछुड़ता[-बिखरता, विनष्ट होता], रहता है। षट दरसन=षट् दर्शनों में प्रतिपादित विचार-सिद्धान्त और उनके मानने वाले अन्ध विश्वासी[-लकीर के फकीर] हैं। **टिप्पणी :** यहाँ षट्-दर्शन के मानने वाले अनुयायियों को, आग्रह[-अन्धविश्वास]के कारण 'अन्ध' की संज्ञा दी गई है, जो टटोल-टटोल कर, अनुमान से ही हाथी के अंगों को देखते हैं और जो या जैसा अंग उनके अनुमान में आता है, वैसा ही वे [कह-] सुनाते हैं। 'हाथी' रूप ब्रह्म के सम्बन्ध में षट्दर्शनियों का कथन ऐसा ही कुछ है। झगरन लागै परस्पर ···कौंन=किस की बात [या अनुमान] प्रामाणिक मानी जाय, इस आधार पर आपस में [झगड़ते-] विवाद करते दिखाई देते हैं। देष्या दृष्टि ··मौंन=जिन्होंने दृष्टि [-प्रज्ञा चक्षुओं] से उस ब्रह्म का अनुभव किया है, वे उसकी अनिर्वचनीयता के कारण मौन ही धारण कर लेते हैं।

32-34. बांधि गरगदा सब चलै=कमरबन्धा [-कमर फेंटा] बाँध कर अर्थात् कमर कस कर [-पूरी तैयारी से] सब मुक्ति प्राप्त केलिए आगे दौड़ रहे हैं। धोषा मैं परे =सब धोखे में पड़े हैं [क्योंकि, मुक्ति किसी स्थान पर नहीं रखी है, जो जाकर कोई उठा लाए]। धोषै के बैंन=धोखा <धूक [सं०]+ता=धूर्तता-शठता के वचन, मिथ्या प्रतीति के शब्द। प्रोक्ष=परोक्ष, सूक्ष्म। अनुभव आतमा··· मोक्ष= आत्मा का अनुभव ही मोक्ष है। **विशेष**—साखी संख्या 30-31 की, 'सवैया ग्रन्थ' अंग [-28] के छन्द संख्या 17 से तुलना अपेक्षित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर साधन सब करैं कहैं मुक्ति हम जांहि।
आतम के अनुभव बिना और मुक्ति कहुं नांहि ।।35।।
सुन्दर मीठी बात सुनि लागे करवा षांन।
कष्ट करै बहु भांति के तातें अति अज्ञांन ।।36।।
दूरि करै सब बासना आशा रहै न कोइ।
सुन्दर वहई मुक्ति है जीवत ही सुख होइ ।।37।।
सुन्दर कोऊ कहत हैं नाभि कंवल मैं ईस।
कोऊ ऐसैं कहत हैं हृदय मांहि जगदीस ।।38।।
कोऊ कंठ बिषै कहैं अग्र नासिका कोइ।
कोऊ भृकुटी मैं कहैं सुन्दर अचिरज होइ ।।39।।
कोऊ कहैं लिलाट मैं कौऊ तालू मांहि।
कोऊ भौंर गुफा कहैं सुन्दर अनुभव नांहि ।।40।।
अनुभव बिन जानै नहीं सुन्दर ब्यापक रूप।
बाहिर भीतर एकरस ऐसा तत्व अनूप ।।41।।
पंच कोस तें भिन्न है सुन्दर तुरिय स्थांन।
तुरियातीतहि अनुभवै तहां न ज्ञान अज्ञांन ।।42।।
श्रवन ज्ञान है तब लगै शब्द सुनै चित लाइ।
सुन्दर माया जल परै पावक ज्यौं बुझि जाइ ।।43।।

35-37. आतम के···नांहि=आत्मानुभव के बिना मुक्ति अन्यत्र कहीं नहीं है। करवा षांन=कड़वा स्वाद। बासना<वासना=कामना, इच्छा। वहई=वही। जीवत ही सुख होइ=उस वासना रहित, आशा रहित जीवन को जीने से अपरिमित सुख मिलता है। अथवा जीवत ही सुख=ब्रह्मानन्द सुख, जीवन्मुक्ति का अनुभव। **विशेष**—इन [-35-37] साखियों का सार 'सवैया ग्रन्थ' के [-अंग 28] छन्द 13-14 में देखा जा सकता है।

38-41. नाभि कंवल=मणिपूर चक्र। हृदय मांहि जगदीस=[अनाहत चक्र-] हृदय-कमल के बीच परमात्मा का वास है। कोऊ···तालू मांहि=कोई मनुष्य उस परमात्मा को, कण्ठ में निवास करने वाला और कोई नासिका के अग्रभाग में स्थित बताते हैं। कोई-कोई उस परमेश्वर को लिलाट [-ललाट या आज्ञा चक्र] में प्रतिष्ठित मानते हैं। भौंरगुफा=भ्रमर गुफा अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र। ऐसा तत्त्व रूप ही, एकरस, बाहर-भीतर अनुपम तत्त्व के रूप में जाना-जाता है। **विशेष**—साखी 38-42 तक 'सवैया ग्रन्थ' के [-अंग 28] छन्द 16 में भाव-अनुरूपता देखी जा सकती है।

42-43. पंच कोस=पाँच कोश अर्थात अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोश। तुरिय स्थांन=पंचकोश की सीमा से परे तुरीयावस्था है। तुरियातीतहि अनुभवै=ऐसी तुरीय दशा से भी परे जो अवस्था है, उसका अनुभव करना ही लक्ष्य है। उस अवस्था में ज्ञान और अज्ञान दोनों की ही गति नहीं है। श्रवन ज्ञान है तब लगै=श्रुत ज्ञान, वेदादि शास्त्रों का ज्ञान, तभी तक है, जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन ज्ञान नहिं जात है ज्यौं बिजुरी उद्दोत।
माया जल बरषत रहै सुन्दर चमका होत ॥44॥
निदिध्यास है ज्ञान पुनि बडवा अनल समांन।
माया जल भक्षन करै सुन्दर यह हैरांन ॥45॥
आतम अनुभव ज्ञान है प्रलय अग्नि की अंच।
भस्म करै सब जारि कैं सुन्दर द्वैत प्रपंच ॥46॥
नित्य कहत गुरु आतमा सो है शब्द प्रमांन।
जैसें ब्यापक ब्योम पुनि सुन्दर यह उपमांन ॥47॥
जाकी सत्ता इन्द्रियनि यह कहिये अनुमांन।
सुन्दर अनुभव आतमा यह प्रत्यक्ष प्रमांन ॥48॥
सुन्दर तत्व जुदे जुदे राष्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के षम्भ मैं कौंन बस्तु कहि बीर ॥49॥

शब्द और कान का संयोग होता है। जब माया रूप जल उस श्रुत-ज्ञान पर पड़ता है, तब वह ज्ञान-ऊष्मा, अग्नि की तरह धीरे-धीरे बुझ जाती है।

44-46. मनन ज्ञान=श्रुत ज्ञान के वाद, चिन्तन से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह मनन-ज्ञान कहलाता है। वह ज्ञान मेघों में अन्तर्निहित बिजली के प्रकाश की तरह होता है। माया रूप जल उसके ऊपर बरसता-रहता है, तब भी वह बुझता नहीं, उसका प्रकाश मन्द नहीं होता। निदिध्यास ज्ञान=श्रुत-मन्तव्य ज्ञान के बाद, पुनः पुनः उस ज्ञान का स्मरण किए रहना ही निदिध्यास-ज्ञान है। यह ज्ञान वडवाग्नि की तरह होता है। वडवाग्नि सागर-जल में ही निहित रहती है। माया रूप जल उस पर प्रभाव नहीं डाल पाता है। अपितु, उलटा यह [निदिध्यास-बडवानल-] उस का भक्षण भी करता-रहता है। आतम अनुभव···अंच=आत्मानुभव रूप अग्नि, प्रलय-अग्नि की तपन की तरह होती है, जो समूचे द्वैत प्रपंच को भस्म करके एकाकार कर देती है। **टिप्पणी :** इन साखियों का विचार-प्रतिपादन भी 'सवैया ग्रन्थ' [-अंग 28] के छन्द 29 में देखा जा सकता है।

47-49. शब्द प्रमांन=शब्द प्रमाण, जिसके द्वारा गुरु आतमा के नित्य स्वरूप का प्रवचन करता है। प्रवचन की सिद्धि, दृष्टान्त और उपमानों के द्वारा प्रमाणित होती है। जैसे—'नित्य आत्मन् व्यापक आकाश की तरह से है' [-यह 'शब्द प्रमाण' है]। अनुमांन प्रमांन=अनुमान प्रमाण, जो अनुमित ज्ञान से प्रतिपादित होती है। जैसे आत्मन् की सत्ता इन्द्रियों की कार्य-शक्ति से प्रमाणित होता है। प्रत्यक्ष प्रमांन=साक्षात् प्रमाण, जिसमें प्रमेय, अनुभव से प्रमाणित होता है। अर्थात् आतम सत्ता अनुभव में आ जाए तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। तत्व जुदे···शरीर='शरीर' यह नाम अनेक तत्त्वों के संयोग से निर्मित 'आकृति' का नाम है। जैसे केले के स्तम्भ में सार-वस्तु क्या है, यह कहना कठिन है। वहाँ पर्त-दर-पर्त [-छिलकों] से ही कदली का आकार बनता है। कहि बीर=[वीर-] भाई, बताओ तो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है सो सुन्दर है सदा नहीं सु सुन्दर नांहिं।
नहीं सु परगट देषिये है सो लहिये मांहिं ॥50॥
बिरवा बुद्धि गुलाब है शब्द सु फूल प्रकास।
सुन्दर आतम ज्ञान कौं अनुभौ मध्य सुवास ॥51॥

॥ इति आत्मानुभव कौ अंग ॥ 28 ॥

50-51. है सौ···मांहिं—जो 'है' वह सदा ही है, जो 'नहीं' है, वह कभी नहीं है। [लेकिन संसार में-] जो 'नहीं' है[-क्षर, नाशवान् संसार], वह प्रगट दिखाई देता है और जो 'है' वह अन्तर्गत ही प्राप्त किया जा सकता है। बिरवा बुद्धि···फूल प्रकास—[इस साखी में ज्ञान की तीनों अवस्थाओं को एकान्वित करके बताया गया है-] बुद्धि रूप गुलाब के पौधे में शब्द रूप पुष्प प्रकाशित होता है, खिलता है। उस पुष्प में अनुभव, [-ज्ञान] रूप सुगन्धि वास करती है। ऐसे ही यह जड़-चेतन के संयोग से बना शरीर, अनुभवरूप आत्म [-ज्ञान] से ही पूरी तरह जाना जा सकता है। सुगन्धि को जाने बिना केवल गुलाब के पौधे या पुष्प को जान लेना काफी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 29 ॥ अथ अद्वैत ज्ञान कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत 50 साखियों के इस अंग में, जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, वेदान्त-सिद्धान्त का प्रतिपादन है । किन्तु, सुन्दर का यह 'अद्वैत' विचार-प्रतिपादन न केवल बृहत् त्रयी [-उपनिषद्, वेदान्त सूत्र एवं गीता] के ब्रह्म-विचार प्रतिपादन को अभिव्यक्ति देता है, अपितु अपने विशेष योगदान केलिए भी जाना जाता है । यह योगदान है—'जगत् को ब्रह्म रूप में स्वीकार करना।' सुन्दर की दृष्टि में जगत् मात्र **'मिथ्या'** नहीं है । उसीप्रकार जैसे स्वर्ण के आभूषण, स्वर्ण ही होते हैं, वैसे ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति रूप यह जगत् भी ब्रह्म-सत्ता का ही रूपान्तरण है । इस मौलिकता के साथ ही यह उल्लेखनीय है कि रचनाकार ने 'भाषा' में उदाहरण एवं उपमानादि के द्वारा, समास शैली में बड़ी सामर्थ्य के साथ विचार-सिद्धान्त प्रतिपादन किया है । यह प्रतिपादन सन्त-वानी में अद्वितीय कहा जा सकता है । ऐसे ही विचार-प्रतिपादन को देखकर कहा कहा जा सकता है कि सन्त-बानी का पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है । मूल पाठ स्वयं द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर हूं नहिं और कछु तूं कछु और न होइ ।
जगत कहा कछु और है एक अखंडित सोइ ॥1॥
सुन्दर हौं नहिं तूं नहीं जगत नहीं ब्रह्मण्ड ।
हौं पुनि तूं पुनि जगत पुनि व्यापक ब्रह्म अखंड ॥2॥
सुन्दर पहली ब्रह्म था अबहू ब्रह्म अखंड ।
आगैं हू यह ब्रह्म है मृषा पिण्ड ब्रह्मण्ड ॥3॥

चूर्णिका : 1-2. एक अखंडित सोइ = वही [-ब्रह्म सत्ता] ही एक अखण्डित [-एक रस] सत्ता है । हौं नहिं···ब्रह्मण्ड = न मैं हूँ, न तू है, न जगत् है, न ब्रह्माण्ड है और यदि है तो, व्यापक अखण्ड ब्रह्म के माध्यम से ही मैं भी हूँ, तू भी है और यह संसार भी है । मृषा पिण्ड ब्रह्मण्ड = यह शरीर और ब्रह्माण्ड तो 'मिथ्या' है । उस अखण्ड वर्तमान ब्रह्म के कारण ही, शरीर से ब्रह्माण्ड तक की सत्ता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृक्षन कौं बन कहत हैं बन मैं बृक्ष अनेक।
सुन्दर द्वैत कछू नहीं बृक्ष रु बन तौ एक ॥4॥
घर कहिये सब भूमि पर भूमि घरनि मैं होइ।
सुन्दर एकै देषिए कहन सुनन कौं दोइ ॥5॥
सुन्दर घर सब गांव मैं गांव सकल घर मांहिं।
घर अरु गांव बिचारिये तौ कुछ दूजा नांहिं ॥6॥
वापी कूप तलाब मैं सुन्दर जल नहिं और।
एक अखंडित देषिये ब्यापक सबही ठौर ॥7॥
कोरि किये चित्रांम बहु एक शिला कै मांहिं।
यौं सुन्दर सब ब्रह्ममय ब्रह्म बिना कछु नांहिं ॥8॥
दीप मसाल चिराक बहु दौं लागी घर लाइ।
सुन्दर पावक एक ही ऐसें ब्रह्म दिषाइ ॥9॥
सुन्दर यह सब ब्रह्म है नाम धर्‌यौ संसार।
एक बीज मैं पलटि कैं हूवौ बृक्षाकार ॥10॥

---

4. द्वैत··· एक = यह द्वैत बुद्धि भ्रम ही है। यहाँ द्वैत है नहीं, वृक्षों को 'वन' मान लेने से द्वैत की प्रतीति मात्र होती है।

5. कहन सुनन कौ दोइ = विचार करने पर एक ही तत्त्व है, कहने-सुनने केलिए अलग-अलग हैं।

6-7. दूजा नांहिं = विचार करने पर द्वैत नहीं है। व्यवहार में नानात्व का आरोपण होता है, जैसे सभी घर भूमि पर हैं और सभी घरों में भूमि [-कारण] विद्यमान है। घर अरु गांव बिचारिये = घर और गाँव का तात्विक विचार कर लेने पर ज्ञात होता है कि सभी घर, गाँव में होते हैं और गाँव सभी घरों में विद्यमान हैं। वापी कूप तलाब = बावड़ी, कुआँ और तालाब के नाम अलग-अलग हैं, किन्तु जल सभी में समान है।

8-10. कोरि किये = कोर [-खोद]कर, खुदाई-[-शिल्प]करके बनाए है। चित्रांम = चित्र, तस्वीरें। शिला = प्रस्तर, भित्ति, फलक। दीप-मसाल चिराक बहु··· लाइ = दीपक, मशाल अथवा चिराक < चराग़ [फा०] आदि जो भाषा-भेद से भिन्नत्व बता रहे हैं, वे सब ज्योति या ज्वाला के ही अनेक रूप हैं। लेकिन, इन सभी से घर में आग लग सकती है। दौं < दव [सं०] < धौं-धौंकना [हि०] = आग, ताप। **टिप्पणी :** कबीर ने भी 'दौ' शब्द का प्रयोग ['दौ लागी साइर जल्या'— क० ग्रं० 4/6 तथा 58/2] किया है। इसप्रकार अग्नि एक ही है, आकार भिन्न-भिन्न हैं। नाम धर्‌यौ संसार = आधारभूत ब्रह्म ही है, जिसका दृश्य रूपात्मक नाम 'संसार' रख दिया है। जैसे एक बीज ही होता है, जो रूपान्तरित [-अंकुरित] होकर वृक्षाकार हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सबकी आदि है सुन्दर सबका मूल।
यथा बृक्ष मैं देषिये डाल पांन फल फूल ॥11॥
भयौ सरकरा ईक्षु रस ब्यापि मिठाई मांहि।
सुन्दर ब्रह्म सु जगत है जगत ब्रह्म द्वै नांहि ॥12॥
सुन्दर घृतई बन्धि गयौ धर्‌यौ डरा सौ नाम।
ऐसैं रामहि जगत है जगत देषिये राम ॥13॥
सुन्दर पांनी तैं कछू पाला भिन्न न होइ।
ऐसैं जगत सु ब्रह्म है जगत ब्रह्म नहिं दोइ ॥14॥
सुन्दर नीर समुद्र कौ जमि करि हूवौ लौंन।
तैसैं यह सब ब्रह्म है दूजा कहिये कौंन ॥15॥
सुन्दर जैसैं लोह के किये बहुत हथियार।
ऐसैं यह सब ब्रह्म है जो दीसै बिस्तार ॥16॥
कारन तैं कारज भयौ कारन कारज एक।
जैसैं कंचन तैं कियौ सुन्दर घाट अनेक ॥17॥
जैसैं कीये मैंन के हय हाथी बहु जन्त।
सुन्दर ऐसैं ब्रह्म है आदि मध्य अरु अन्त ॥18॥
जैसैं मनिका सूत के बीचि सूत कौ तार।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म सब याही है निरधार ॥19॥

11-13. यथा वृक्ष···फूल=जैसे वृक्ष में शाखा-पत्ते-फूल और फल दिखाई देते हैं। सरकरा=शर्करा, खांड। ईक्षु=ईख-गन्ना। ब्रह्म सु जगत···नांहि=ब्रह्म ही जगत् है, अर्थात् जगत् और ब्रह्म दो सत्ताएँ नहीं हैं, रूपान्तरण का आभास है। घृतई=घी ही। डरा=डली, लौंदा। ऐसैं रामहि···राम=इसीप्रकार जगत् रूप में राम ही लौंदा [-रूपाकार] बन गया है।

14-16. पाला=हिम, ओला। नीर समुद्र···लौंन=समुद्र का पानी जमकर नमक के आकार का हो जाता है। दूजा कहिये कौंन=दूसरा है कौन ? अर्थात् कोई नहीं। जो दीसै बिस्तार=संसार रूप में जो बिस्तार दिखाई देता है, वह ब्रह्म ही है।

17-19. कारन तैं···कारज एक=कारण से ही कार्य होता है। यद्यपि, कारण कार्य एक हैं, पर अध्यास के कारण अलग-से प्रतीत होते हैं। **टिप्पणी** : सन्त-मत पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वह '**शाश्वत्वाद**' को मानता है, कारण-कार्य शृंखला को नहीं। इस साखी से आरोप स्वतः खण्डित होता है। घाट=गढ़ना, निर्मिति, आभूषणादि। मैंन=मैण [राज०], मोम। छोटे आकार का एक कटीला पौधा, जिसके तने के रस से मोम तैयार किया जाता था। हय हाथी-जन्त=घोड़े-हाथी आदि जानवर। मनिका सूत के=सूत निर्मित मणिकादि [-गुरिया-बटनादि] में सूत का धागा ही जोड़ने का कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर तांना सूत का बानै बुनियां सूत।
नांव धर्‌यौ फिरि और ही यथा बाप तैं पूत ॥20॥
सुन्दर मैं सुन्दर जगत सुन्दर है जग मांहि।
जल सु तरंग तरंग जल जल तरंग द्वै नांहि ॥21॥
सुन्दर ब्रह्म अखंड पद सुन्दर यह बिस्तार।
ज्यौं सागर मैं बुदबुदा फेन तरंग अपार ॥22॥
सुन्दर मैं जग देषिये जग मैं सुन्दर सोइ।
कुंजर मैं नारी प्रगट नारी कुंजर होइ ॥23॥
जैसें बुनत महीर मैं फुलरी परती जांहि।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तैं जगत भिन्न कछु नांहि ॥24॥
चीर मांहि ज्यौं चूनरी गिलम मांहि बहु भांति।
ऐसें सुन्दर देखिये जगत ब्रह्म नहिं द्वांति ॥25॥
राजा प्रजा तुरंग गज पशु पंषी बहु जन्त।
सुन्दर पट ज्यौं आतमा जग चित्राम अनंत ॥26॥

20-22. नांव धर्‌यौ ··पूत=जैसे कारण रूप पिता से कार्य रूप पुत्र होता है, यद्यपि नाम दोनों के अलग-अलग होते हैं। ऐसे ही एक ब्रह्म से अनेक सत्तात्मक जगत्। जल सु···द्वै नांहि=जल ही लहर रूप बन जाता है और लहर फिर जल रूप। अत: जल और तरंग दो पृथक् सत्ता न होकर, रूपान्तरण की प्रतीति भर हैं। ज्यौं सागर मैं बुदबुदा=जैसे सागर में बुलबुले-झाग और असंख्य लहरें होती हैं, ऐसे ही जगत् का यह नानात्व सागर रूप एक ब्रह्म सत्ता का ही प्रतिभास है।

23-25. कुंजर मैं नारी··होइ=हाथी में नारी प्रकट होकर, नारी गज रूप हो जाती है। **अन्तर्कथा**—यह कथा भागवतादि पुराण में उल्लिखित है कि गोपियों ने प्रेम-भाव से अपने शरीरों को मिलाकर, गजाकार बना लिया था। उस गज पर श्रीकृष्ण ने सवारी की थी। 'गोपी-कुंजर' शीर्षक से कहीं-कहीं ऐसे चित्र भी मिलते हैं। यह श्रीकृष्ण लीलाओं में से एक है। महीर=वस्त्र विशेष अथवा छाछ में पकाया हुआ मीठा चावल। फुलरी=फूल, पत्ती-बूटे, फुन्दे, जो बुनावट के रूप में जुलाहों द्वारा वस्त्र में डाले जाते हैं। इसीप्रकार यह जगत् ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है, नानात्व उसीका प्रतिभास है [दे०—'सवैया ग्रन्थ' अंग 32, छन्द 18]। चीर=वस्त्र। चूनरी=चुनरी, ओढ़नी, अनेक वस्त्रों में से एक। गिलम <गिलीम [फा०] =मुलायम [-चिकना ऊनी कालीन या मुलायम गद्दा, बिछौना]। द्वांति=द्वैत, दो। **विशेष**—'भांति' प्रयोग के अन्त्यानुप्रास केलिए ऐसा प्रयोग किया गया है।

26. जग चित्राम अनंत=जगत् रूप पट [-वस्त्र रूप फलक] पर अनेक चित्र बने होते हैं, जैसे राजा-प्रजा, घोड़ा-हाथी, पशु-पक्षी आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक क्रीडहिं इक मारियंहि बस्तर कौं कछु नांहि।
सुन्दर जग चित्राम ज्यौं पट आतम के मांहि ।।27।।
कोट कांगुरे एक हैं देषत दीसहिं दोइ।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं होइ ।।28।।
लोक हाथ पर देषिये ज्यौं सीलता सरीर।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं बीर ।।29।।
सुन्दर मैं संसार है ज्यौं सरीर मैं अंग।
हस्त पांव मुख नासिका नैंन श्रवन सब संग ।।30।।
हस्त पांव अरु अंगुली नैंन नासिका कांन।
सुन्दर जगत सरीर ज्यौं निंदै कौंन स्थांन ।।31।।
सुन्दर जिह्वा आपुनी अपने ही सब दंत।
जौ रसना बिदलित भई तौ कहा बैर करंत ।।32।।
सुन्दर ज्यौं आकाश मैं अभ्र होइ मिटि जांहि।
त्यौं आतम तें जगत है ताही मध्य समांहि ।।33।।

27-28. बस्तर कौं कछु नांहि=वस्त्र पर बने हुए पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, चाहे क्रीड़ा करते हों अथवा एक दूसरे से घात-प्रतिघात करने में लगे हों, उन सबसे वस्त्र तटस्थ बना रहता है। वह लोक-दृष्टि में निरपेक्ष है। इसीप्रकार इस जगत् का नाना रूपत्व, वस्त्र रूप आत्मन् पर अनेकानेक रूपाकृतियों के समान ही है। कोट कांगुरे =महल या क़िले के ऊपर बने हुए कँगूरे और महल एक होते हुए भी, भिन्न दिखाई देते हैं।

29. लोक हाथ पर देषिये···सरीर=उदाहरण केलिए एक हथेली पर अनेक रेखाएँ दिखाई देती हैं। अथवा एक ही शरीर पर छोटे-बड़े अनेक चेचक के निशान दिखाई देते हैं। इसीप्रकार एक आत्म तत्त्व में ही जगत् का नानात्व प्रतिभासित है। सीतला < शीतला [सं०]=चेचक।

30-31. सुन्दर मैं···सरीर मैं अंग=जिसप्रकार शरीर में अनेक अंग हैं, वैसे ही सुन्दर-ब्रह्म या आत्म तत्त्व में संसार का नानात्व संयोजित हो जाता है। निंदै कौंन स्थांन=जिसप्रकार शरीर में किसी अंग विशेष की निन्दा नहीं की जा सकती, वैसे ही शरीर के समान इस जगत् के कौन से अंग का तिरस्कार किया जा सकता है ? अर्थात् किसी का भी नहीं।

32-32. जिह्वा···कहा वैर करंत=शरीर-मुख में जीभ भी अपनी है और दाँत भी अपने हैं। यदि रसना विचलित या असंयमित होकर दाँत से कट या दब जाने से पीड़ित होती है, तो इससे उसका वैर सिद्ध नहीं होता। अभ्र=मेघ। जैसे आकाश में बादल उमड़ते हैं और वहीं विलीन हो जाते हैं, ऐसे ही आत्मन् के आधार पर यह जगत् प्रतिभासित होता है और उसी में विलीन हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहं सुन्दर तहं जग नहीं जग तहं सुन्दर नित्य।
जहं पृथ्वी तहं घट नहीं घट तहं पृथ्वी सत्य ॥34॥
वोहं सोहं एक ही तूं ही हूं ही एक।
कहिबे ही कौ फेर है सुन्दर संमुझि बिबेक ॥35॥
ज्यौं माता हाऊ कहै बालक मांनै त्रास।
त्यौं सुन्दर संसार है मिथ्या बचन बिलास ॥36॥
जगत नाम सुनि भ्रम भयौ मान्यौ सत्य स्वरूप।
सुन्दर मृग जल देषिये है सूरय की धूप ॥37॥
जैसें महदाकाश तैं घटाकाश नहिं भिन्न।
यौं आतम परमातमा सुन्दर सदा प्रसन्न ॥38॥
आतम अरु परमातमा कहन सुनन कौं दोइ।
सुन्दर तब ही मुक्त है जबहिं एकता होइ ॥39॥

---

34. जहं पृथ्वी···सत्य=पृथ्वी [-मिट्टी] के बिना घट सम्भव नहीं है। किन्तु, घट [-मृत्तिका पात्र] के बिना भी पृथ्वी [-मिट्टी] सत्य है। ऐसे ही, जहाँ जगत् है वहाँ आत्म तत्त्व अवश्य है। किन्तु, यह आवश्यक नहीं कि जहाँ आत्म तत्त्व है, वहाँ जगत् हो ही।

35-37. वोहं सोहं···एक=सोऽहं [-सः अहं], वोहं <ॐ<ओ३म् अर्थात् 'त्वम् पद' और 'तत्पद' अथवा तू ही—हूँ ही, तू और मैं एक ही हैं। अध्यास के कारण अथवा कहने भर केलिए अलग लगते हैं। समझ या विवेक से एकत्व सिद्ध होता है। हाऊ=हौवा, भयावह आकृति का पिशाच-भूत आदि। त्रास=भय। मिथ्या बचन विलास=संसार का वाणी-विलास उसीप्रकार मिथ्या है, जैसे कोई माता बच्चे को डराने केलिए 'हौआ' [-हउवा] कहती है और बालक सच समझकर भय मान लेता है। यद्यपि, 'हउवा' है ही नहीं, तो भय कैसा? जगत नाम=यह जगत् है यह मान लेने पर ही भ्रान्ति हो जाती है। जैसे मृगमरीचिका जन्य जल है ही नहीं, यह तो सूर्य की किरणों का प्रतिबिम्ब मात्र है। फिर भी, हरिण उसे सत्य मानकर उसके पीछे दौड़ता है।

38-39. जैसे महदाकाश··भिन्न=जैसे महाकाश जब घटाकाश के रूप में देखा जाता है, तो आकाश की अखण्डता और स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ऐसे ही आत्मा और परमात्मा [-आकार में अन्तर होते हुए भी,] के प्रकार अर्थात् तत्त्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता। कहन-सुनन कौं दोइ=कहने-सुनने केलिए अर्थात् व्यवहार में दो कहे जाते हैं, यद्यपि हैं एक ही। इस एकत्व का अनुभव होते ही मुक्तावस्था का भी अनुभव हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह धरैं यह जीव है ईश्वर धरैं बिराट।
कारज कारन भ्रम गयें सुन्दर ब्रह्म निराट ।।40।।
जगत जगत सबको कहै जगत कहौ किंहि ठौर।
सुन्दर यह तौ ब्रह्म है नाम धर्‌यौ फिरि और ।।41।।
षोज करत ही जगत की जगत बिलै ह्वै जाइ ।
सुन्दर यह सब ब्रह्म है जगत कहां ठहराइ ।।42।।
जगत कहे तें जगत है सुन्दर रूप अनेक।
ब्रह्म कहे तें ब्रह्म है बस्तु बिचारें एक ।।43।।
प्रगट भयौ भ्रम जगत कौ करतें जगत बिचार।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तें जगत न रह्यौ लगार ।।44।।
ज्यौं रवि के उद्योत तें अंधकार भ्रम दूरि।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तें ब्रह्म रह्या भरपूरि ।।45।।
सुन्दर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहतु है वेद।
चतुर श्लोको मांहि पुनि सकल मिटायौ भेद ।।46।।

---

40. जीव=शरीर धारण करने के कारण आत्म तत्त्व की संज्ञा 'जीव' है। ईश्वर = इस महाभूतात्मक विराट् ब्रह्माण्ड को धारण करने के कारण ही परमात्मा की संज्ञा 'ईश्वर' है। कारज कारन भ्रम···निराट=कारण-कार्य श्रृंखला का भ्रम समाप्त होने पर वह अकेला परब्रह्म शेष रहता है। निराट=एक, अकेला, निरा खालिस।

41-43. जगत जगत···ठौर=जगत्-जगत् सभी कहते-रहते हैं, पर 'जगत्' है कहाँ ? मिथ्या होने के कारण जगत् की सत्ता है ही नहीं, तो फिर जगत् को बदनाम क्यों किया जाता है ? यह तो ब्रह्म ही है, जिसका नाम 'जगत्' रख लिया है। क्योंकि, जब जगत् की खोज की जाती है, तो जगत् कहीं अवशेष बचता ही नहीं, अर्थात् अनुभव में आता ही नहीं। ब्रह्म को···बिचारें एक=विचार करने पर एक तत्त्व ब्रह्म ही शेष रहता है, जो जगत् कहे जाने पर, नानात्व धारण करके, जगत् मान लिया जाता है।

44-46. जगत बिचार=जगत् का विचार अर्थात् जगत् के सम्बन्ध में सोचते हुए, जगत् एक भ्रान्ति बन जाता है। और 'ब्रह्म विचार' करते हुए जगत् शेष नहीं रहता। रवि के उद्योत तें=ज्ञान रूप सूर्य के प्रकाश से। अंधकार भ्रम=भ्रम रूप अंधकार। 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' नेह नानाऽस्ति किंचन=यह सब [-दृश्य-जगत्] निश्चय ही ब्रह्म है, इसमें जो नानात्व प्रतिभासित होता है, वह कुछ नहीं है। कहतु है वेद=यह वेदान्त सिद्धान्त है। चतुर श्लोकी मांहि पुनि···भेद=चतुःश्लोकी भागवत् में अर्थात् भागवत् के चार श्लोकों के द्वारा नारद के सभी भ्रम-सन्देह निवृत्त हुए बताए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कह्यौ वसिष्ट मुनि रामचन्द्र सौं ज्ञांन।
ब्रह्म बतायौ एक ही दूरि कियौ भ्रम आंन ।।47।।
सुन्दर अष्टावक्र ऋषि ब्रह्म बतायौ एक।
दूरि कियौ भ्रम सकल ही जो नानात्व अनेक ।।48।।
दत्तात्रय मुनि यौं कह्यो ब्रह्म बिना कछु नांहि।
सुन्दर सोई कृष्णजी भाष्यौ गीता मांहि ।।49।।
सुन्दर यहै निरूपियौ बहु बिधि करि वेदांत।
ब्रह्म बिना दूजा नहीं सबकौ यह सिद्धांत ।।50।।

।।इति अद्वैत ज्ञान कौ अंग ।।29।।

---

47. कह्यौ वसिष्ट मुनि=महर्षि वसिष्ठ ने अपने 'योग वासिष्ठ' ग्रंथ में, वेदान्त का यही उपदेश श्री रामचन्द्र जी को दिया था, जिसमें एक ब्रह्म-उपदेश से सारा भ्रम-निवारण सम्भव बताया है।

48-50. अष्टावक्र ऋषि···एक=महामुनि अष्टावक्र ने, 'अष्टावक्र गीता' में, उसी एक ब्रह्म का उपदेश दिया है। दत्तात्रय मुनि···नांहि···गीता मांहि=महामुनि दत्तात्रेय ने 'दत्तात्रेय संहिता' एवं श्रीकृष्ण ने 'श्रीमद्भगवत् गीता' में एक ब्रह्म का यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यहै निरूपियौ···वेदांत=सुन्दरदास का कहना है कि इस 'अंग' में उन्होंने भी उन्हीं महापुरुषों के विचार-सिद्धान्त से प्रेरणा पाकर वेदान्त-मत का ही निरूपण किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ 30 ॥ अथ ज्ञानी कौ अंग ॥

प्रवेशार्थ : प्रस्तुत अंग की इन 65 साखियों में श्रीमद्भगवत्गीता की विचार-परम्परा का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। एकतत्व की विचार-सिद्धि केलिए सुन्दरदास ने जितने उदाहरण, दृष्टान्त और मुहावरे दिए हैं, उनसे वेदान्त जैसा नीरस दर्शन भी सहज ग्राह्य बन गया है। ज्ञानियों के उदाहरणों से भारतीय पुराणेतिहास की अन्तर्कथाएँ पाठक के मन को, सामाजिक सन्दर्भ से जोड़ती हैं। रचनाकार ने इस अंग की कई साखियों द्वारा ब्राह्मण-शूद्रादि के वर्ण-जाति वंश-भेद की रूढ़ अवधारणा को, विचार-व्यवहार के धरातल पर [निरस्त-] धराशायी करने का प्रभावी उपकार किया है। ऐसा लिखना सुन्दरदास के तत्कालीन सामाजिक बोध का ही परिणाम है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर ज्ञानी जगत मैं बिचरै सदा अलिप्त।
यह गुन जानै देह कै भूषौ रहै क तृप्त ॥1॥
षाइ पिवै देषै सुनै सुन्दर ले पुनि स्वास।
साधै तीर पताल कौं फिरि मारै आकास ॥2॥
देषै परि देषै नहीं सुनता सुनै न कांन।
जानै सब जानै नहीं सुन्दर ऐसा ज्ञांन ॥3॥

चूर्णिका : 1-2. बिचरै = विचरण करता है, व्यवहार करता है। भूषौ रहै क तृप्त = ज्ञानी देह-धर्म मानकर भूख अथवा तृप्ति को सहज ही ग्रहण करता है। षाइ पिवै ···स्वास = खाने-पीने, देखने-सुनने और स्वास लेने को वह सहज क्रिया मानता है। साधै तीर···आकास = ज्ञानी [-साधक] सुरति-तीर को पाताल [-मूलाधार चक्र] पर साधता हुआ फिर आकाश [-सहस्रारचक्र] को अनुसन्धानित करता है। **टिप्पणी :** कबीर-वानी में भी इसी भाव की साखी मिलती हैं। जाने सब···ऐसा ज्ञान = ज्ञानी के ज्ञान की विलक्षणता यह है कि वह देखता है फिर भी नहीं देखता, सुनता है फिर भी नहीं सुनता, जानता है फिर भी नहीं जानता। अर्थात् कर्तृत्व में अकर्त्तापन बनाए रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ष करै न भषै कछू सूंघत सूंघै नांहिं।
ऐसै लक्षण देषिये सुन्दर ज्ञानी मांहि ।।4।।
बोलत ही अनबोलता मिलता ही अनमेल।
सोवत ही अनसोवता सुन्दर ऐसा षेल ।।5।।
बैठैं तैं बैठा नहीं ऊठत उठ्या न मांनि।
चलतैं सो चालै नहीं सुन्दर ज्ञानी जांनि ।।6।।
देत कछू नहिं देत है लेत कछू नहिं लेइ।
यह सब जानै स्वप्न करि सुन्दर ज्ञानी सेइ ।।7।।
काज अकाज भलौ बुरौ भेदाभेद न कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब होइ ।।8।।
काइक बाइक मानसी कर्म न लागै ताहि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब आहि ।।9।।
पहलैं कियौ न अब करौं आगै की नहिं आस।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान करि काटे बंधन पास ।।10।।
बिधि निषेध जाकै नहीं नां कछु पाप न पुंन्य।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं सब करि जानै शुंन्य ।।11।।
हर्ष शोक उपजै नहीं राग द्वेष पुनि नांहिं।
सुन्दर ज्ञानी देषिये गरक ज्ञान के मांहि ।।12।।
बंध मोक्ष जाकै नहीं स्वर्ग नरक नहिं दोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय संशय रह्यौ न कोइ ।।13।।

---

4. भक्ष करै=खाता है। लक्षण=चिह्न, पहिचान।

5-7. बोलत ही अनबोलता=बोलते हुए भी अनबोलता रहता है अर्थात बोलने की क्रिया में 'अनबोलने' का भाव होने अर्थात् अकर्त्तापन के कारण 'अनबोलता' कहलाता है। ऊठत उठ्या न मांनि=उठते हुए भी उसे उठा हुआ नहीं मानना चाहिए। देत··· लेइ=देते हुए भी वह कुछ नहीं देता, लेते हुए भी वह कुछ नहीं लेता। सेइ= वही।

8-11. ज्ञानी ··सब होइ=ज्ञानी की शरीर-क्रियाएँ ज्ञानावस्था में ही होती हैं। काइक बाइक मानसी=कायिक-वाचिक और मानसिक। कर्म न लागै ताहि=अनासक्त भाव होने के कारण उसे कर्म-फल का प्रभाव नहीं लगता। आस=आशा, कामना। काटे बंधन पास=बन्धन के पाश अर्थात् बन्धन के मूल कारण काट दिए। बिधि निषेध=विधि-निषेध। अर्थात् क्या करना है, क्या नहीं, सम्बन्धी विचार। किन्तु ज्ञानी पर यह सीमा लागू नहीं होती। शुंन्य=शून्य, मिथ्या।

12-13. गरक ज्ञान के मांहि=ग़र्क़ [अ०]=निमग्न, डूबा हुआ। अर्थात् जो ज्ञानावस्था में निमग्न रहता हो। बंध मोक्ष···नहिं दोइ=ज्ञानी अपने ज्ञान-प्रभाव में बन्धन-मोक्ष अथवा स्वर्ग-नरक की अवधारणा में विश्वास नहीं करता। ज्ञानी= वह विचारक जिस में कोई संशय शेष न रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर बन दोऊ सारिखे ना कछु ग्रणह न त्याग।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ना कहुं राग बिराग ॥14॥
निंदा स्तुति देह की कर्म शुभाशुभ देह।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय कछू न जानैं येह ॥15॥
काहू सौं घटि बढि नहीं काहू निकट न दूरि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ब्रह्म रह्या भरपूरि ॥16॥
शब्द सुनैं सो ब्रह्ममय कहै ब्रह्ममय बैंन।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय ब्रह्महि देषै नैंन ॥17॥
पंच तत्व पुनि ब्रह्ममय ब्रह्मा कीट पर्यंत।
ज्ञानी देषै ब्रह्ममय सुन्दर संत असंत ॥18॥
सुन्दर बिचरत ब्रह्ममय ब्रह्म रह्या भरपूर।
जैसैं मच्छ समुद्र मैं कहां जाइ कहु दूर ॥19॥
जौ पग पहरी पानहीं कांटा चुभै न कोइ।
सुन्दर ज्ञानी सुमखई जहां तहां सुख होइ ॥20॥
जलचर थलचर व्योमचर जीवनि की गति तीन।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्मचर जहां तहां लयलीन ॥21॥
अपने मन आनंद है तौ सगरै आनंद।
सुन्दर मन शीतल भयौ दह दिशि शीतल चन्द ॥22॥
ऊठत बैठत फिरत हूं षातहुं पीवत प्रांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ॥23॥

14-15. सारिषे=समान। राग बिराग=आसक्ति और वैराग्य। निंदा स्तुति देह की=निन्दा और स्तुति केवल शरीर-सम्बन्धों तक ही सीमित होती है।

16. घटि बढि=छोटा-बड़ा। ज्ञानी…देषै नैंन=ज्ञानी साक्षात् [-प्रत्यक्ष] ही ब्रह्म को देखता है, इसलिए ब्रह्ममय बना रहता है। ब्रह्मा कीट पर्यंत=ब्रह्म से लेकर कीट-पतंगे के आकार वाले जीवधारियों तक। जैसें मच्छ…कहु दूर [दृष्टा०]=इस 'पूर्ण' में जब ब्रह्म ही ब्रह्म है, तो ब्रह्म में ही विचरण होगा। जैसे कि मगरमच्छ समुद्र में कहीं भी जाए, समुद्र में ही रहेगा। बताओ न दूर कहाँ जाएगा?

20-23. जौ पग…चुभै न कोइ [दृष्टा०]=जैसे पैरों में पानहीं [-जूते] पहन लेने पर कोई काँटा नहीं चुभ पाता। इसी अर्थ में ज्ञानी अपने को सर्वत्र सुख में अवस्थित पाता है। जीवनि की गति तीन=जीवन में जलचर, थलचर और गगनचर [-खग] ये तीन प्रकार के प्राणी होते हैं। चौथे प्रकार के प्राणी 'ब्रह्मचर' बताए हैं, ये ब्रह्म की व्यापकता में ही लयलीन बने-रहते हैं। अपने मन…आनंद [मुहा०]=मन चंगा तो कठौती में गंगा। अर्थात् अपने मन में आनन्द है, तो सर्वत्र आनन्द दिखाई देता है। पीवत=पीते हुए। केवल ज्ञान=केवल-निष्कलुष ज्ञान, कैवल्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागत सोवत जोवते सुख सौं करत वषांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ।।24।।
भूत हु भव्य हु वर्त्तते दूजा नांहीं आंन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ।।25।।
अध ऊरध दशहूं दिशा पूरन ब्रह्म समांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ।।26।।
घटाकाश ज्यौं मिलि गयौ महदाकाश निदांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ।।27।।
मुक्ति शिला मूर्यें कहै ते तौ अति अज्ञांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ।।28।।
भावै तनु काशी तजौ भावैं बागड मांहि।
सुन्दर जीवन मुक्त कै संशय कोऊ नांहि ।।29।।
जैसौ कासी क्षेत्र है तैसौ बागड देस।
सुन्दर जीवन मुक्त कै संक नहीं लवलेस ।।30।।
अज्ञानी कौं जगत सब दीसै दुख संताप।
सुन्दर ज्ञानी कै सकल ब्रह्म बिराजै आप ।।31।।
अज्ञानी कौं जगत यह दुख दाइक भै त्रास।
सुन्दर ज्ञानी कै जगत है सब ब्रह्म बिलास ।।32।।
अज्ञ क्रिया कछु करत है अहं बुद्धि कौं आंनि।
सुन्दर ज्ञानी करत है अहंकार बिनु जांनि ।।33।।
अज्ञानी सुख दुखनि कौं जानत अपने मांहि।
सुन्दर ज्ञानी आपु मैं सुख दुख मानै नांहि ।।34।।

24-25. जोवते=देखते हुए। भूत भव्य हु बहर्त्तते=भूत-भविष्यत् और वर्तमान काल में एक ही अखण्ड तत्त्व निवास करता है।

26-27. अध ऊरध=अधः और ऊर्ध्व, नीचे से ऊपर तक। घटाकाश···केवल ज्ञान=लघु आकार के घट में विद्यमान 'आकाश' घटाकाश कहलाता है।

28-30. मुक्ति शिला=जैन-मत के अनुसार वह पाषाण-शिला, जिस पर बैठकर जैन-साधक मोक्ष प्राप्त करते थे। काशी तजौ=काशी में शरीर-त्याग करके मोक्ष प्राप्ति की बात कहते हैं।

31-34. दुख संताप=दुःख और क्लेश से परिपूर्ण। दुखदाइक भै त्रास=अज्ञानी व्यक्ति केलिए यह संसार दुःखपूर्ण, भयद और त्रासद बना-रहता है। ज्ञानी···ब्रह्म विलास=ज्ञानी केलिए यह जगत्, विलास अथवा ईश्वर की लीला जैसा लगता है। अज्ञ···आंनि=अज्ञानी या मूर्ख अहंतापूर्वक अर्थात् अहंकारी बुद्धि से क्रिया करता है। किन्तु, ज्ञानी अहंकार रहित होकर कर्म करता है। अज्ञानी अपने मांहि=अज्ञानी, अज्ञान-भ्रम के कारण दुःख-सुखादि को अपने भीतर ही अनुभव करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर अज्ञ रु तज्ञ कै अंतर है बहु भांति।
वाकै दिवस अनूप है वाहि अंधेरी राति ॥35॥
ज्ञानी शुभ कर्मनि करै लोक आचरन हेत।
बहुत भांति के शब्द कहि सुन्दर सिष्या देत ॥36॥
जानत है सब स्वप्न करि इन्द्रिनि कौ व्यवहार।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान तैं भिन्न न होइ लगार ॥37॥
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं गरक भयौ निज ठौर।
दंत दिषावै और गज दसन षान कै और ॥38॥
तम रज गुण करि जगत है भक्त सतोगुण रुद्ध।
सुन्दर तीनौं गुन परै ज्ञानी सात्विक सुद्ध ॥39॥
तवा अधोमुख आरसी दर्पण सूधौ होइ।
ऐसें तम रज सत्व गुण सुन्दर देषहु जोइ ॥40॥
तवा मांहि नहि देषिये सूरय कौ उद्दोत।
सुन्दर मूंधी आरसी तामैं कछूक होत ॥41॥
जब दर्पन सूधौ करै रवि आभासै आइ।
सुन्दर दर्पन मिटि गयें सूरयई रहि जाइ ॥42॥

35-38. अज्ञ रु तज्ञ···भांति=अज्ञानी और ज्ञानी में बहुत प्रकार से अन्तर है। ज्ञानी को तो सदा-सर्वदा दिन का-सा प्रकाश अनुभव में बना-रहता है। किन्तु अज्ञानी, मोहान्धकार के कारण घुप्प काली रात का-सा अनुभव करता है। ज्ञानी···हेत= ज्ञानी जो भी शुभ कार्य करता दिखाई देता है, वह लोकादर्श केलिए ही करता है। उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। सिष्या देत=शिक्षा देता है। इन्द्रिनि कौ व्यवहार=ज्ञानी को इन्द्रिय-व्यवहार स्वप्नवत् दिखाई देता है। गरक भयौ निज ठौर=अपने स्थान पर ही तल्लीन बना-रहता है। दंत दिषावै···षान कै और [दृष्टा०]=हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं एवं खाने के और। इसीप्रकार ज्ञानी की क्रिया हाथी के दाँतों की तरह बताई गई है।

39-42. तम रज गुण करि जगत=जगत् की स्थिति तमोगुण और रजोगुण के परिणाम-स्वरूप है। भक्त सतोगुण रुद्ध=ज्ञानी-भक्तों का स्वरूप सतोगुण प्रधान रहता है। ज्ञानी···सुद्ध=ज्ञानी की स्थिति त्रिगुणातीत एवं सात्विक होती है। तम रज सत-गुण=तमोगुण-रजोगुण-सतोगुण का स्वरूप समझने केलिए तवा [-उलटा तवा], अधोमुख आरसी [-फौलाद का उलटा दर्पण] और दर्पण [-शीशा] का उदाहरण उपयुक्त ही है। तवा में देखने से सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्बित रूप झाँकता भर है। किन्तु, सीधे दर्पण में रवि प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव ब्रह्म मिलि जात है सुन्दर उपजें ज्ञान।
दूर भयौ प्रतिबिंब जब रह्यौ एक ही भांन ।।43।।
सुन्दर ज्ञान प्रकास तें धोषौ रहै न कोइ।
भावै घर माहें रहौ भावै बन मैं होइ ।।44।।
बन तैं घर आवै नहीं घर तैं बन नहिं जाइ।
सुन्दर रवि उद्दोत तैं तिमिर कहां ठहराइ ।।45।।
पंषी कौ पर टूट कैं भूमि पर्‌यौ जिहिं ठौर।
सुन्दर उडिबे तें रह्यौ मिटी सकल ही दौर ।।46।।
एक क्रिया षेती करै बंधन होत अपार।
एक क्रिया भोजन करत बंधन उतनी बार ।।47।।
एक क्रिया मल मूत्र कौं तजत नहीं कछु प्यार।
सुन्दर ज्ञानी की क्रिया बंधन नहीं लगार ।।48।।
चौपरि षेलहिं द्वै जने सुन्दर बाजी लाइ।
जीतै सु तौ षुसाल ह्वै हारै सो मुरझाइ ।।49।।
एक जनौं दुहुं वोर कौं चौपरि षेलै आंनि।
सुन्दर हारनि जीत कछु ऐसें ज्ञानी जांनि ।।50।।
सुन्दर देष्या आपु कौं सुने आपुनै बैंन।
बूझ्या अपनी बूझि कौं समुझ्या अपनी सैंन ।।51।।

43-45. ज्ञान=ज्ञानोदय तभी होता है, जब जीव-ब्रह्म मिल जाते हैं। किन्तु, सूर्य [-ब्रह्म] के हटने पर प्रतिबिम्ब नहीं रहता। धोषौ=धोखा, भ्रान्ति। भावै=चाहो तो। रवि उद्दोत तें··· ठहराइ=सूर्योदय के बाद अन्धकार कहाँ ठहर सकता है।

46-48. पंखी कौ पर···ठौर [दृष्टा०]=पक्षी के पाँव [-पर] कट जाने पर वह उसी स्थान पर पड़ा रहता है। वह उड़ने से वंचित हो जाता है और उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। पाठ० 'की' [स्त्री०] दौर=दौड़, गति। एक क्रिया=खेती करने की क्रिया से अनेक प्रकार के अन्य बन्धन होते हैं, भोजन की क्रिया से भी बन्धन होते हैं। किन्तु, मल-मूत्र त्याग की क्रिया में कोई बन्धन नहीं रहता। इसी प्रकार से 'ज्ञानी की क्रिया' में आसक्ति का कोई बन्धन नहीं रहता।

49-51. चौपरि षेलहिं···मुरझाइ [दृष्टा०]=दो व्यक्ति बाजी लगाकर चौपड़ का खेल-खेलते हैं। उनमें से जो जीतता है, वह प्रसन्न होता है और जो हारता है वह [उदास-] मुरझा जाता है। **टिप्पणी :** ऋग्वेद में भी एक वृक्ष पर दो पक्षियों के बैठने या उस वृक्ष के फल खाने के प्रभाव को अभिव्यक्त किया गया है। जैसे, एक ही व्यक्ति दोनों ओर की चौपड़ का खेल नहीं खेलता। उसी प्रकार स्वभाव एक ही का पक्षी दोनों प्रकार के फल नहीं खा सकता। समुझ्या अपनी सैंन=अपने संकेत से ही समझ-प्राप्ति या ज्ञानानुभव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर भाया आपु कौं आया अपुनी ठांम।
गाया अपने ज्ञान कौं पाया अपना धांम ॥52॥
अंत्यज ब्राह्मण आदि दै दार मथै जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं प्रगट हुतासन होइ ॥53॥
दीपग जोयौ बिप्र घर पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौ तत्काल ॥54॥
अंत्यज कै जल कुम्भ मैं ब्राह्मन कलस मंझार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया दुहुंवनि मैं इकसार ॥55॥
अंत्यज ब्राह्मन आदि दै किंवा रंक कि भूप।
सुन्दर दर्पन हाथ लै सो देषै निज रूप ॥56॥
सुन्दर सब कौं ज्ञान की बातैं कहै अनेक।
ज्यौं दर्पन बहु भांति कै अग्नि परै कहुं एक ॥57॥
देह चलै आतम अचल चलत कहैं मतिमंद।
अभ्र चलत ज्यौं देषिये सुन्दर चलै न चन्द ॥58॥

---

52. भाया आपु कौं=अपने आप को ही अच्छा लगता है। गाया अपने···धांम=अपना [राग-] गान गाकर ही अपना धाम प्राप्त किया जा सकता है।

53-55. अंत्यज ब्राह्मण···जो कोइ=चाहे शूद्र हो अथवा ब्राह्मण, जो काष्ठ-रगड़ करता है, उसी को अग्नि उत्पन्न करने का श्रेय मिलता है। अतः जातिगत या वर्ण-गत भेद का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि, दोनों के हाथों से अग्नि ही उत्पन्न होती है। दीपग जोयौ···ततकाल=दीपक चाहे ब्राह्मण के घर प्रज्वलित हो अथवा चाण्डाल के घर, जहाँ भी वह प्रकाशित होगा, अन्धकार ही दूर करेगा। अंत्यज कै जल···इकसार=शूद्र-घर के घट-जल में और ब्राह्मण के घर के कलश-जल में जब सूर्य प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो दोनों में एक समान ही चमकता है। अर्थात् सूर्य वर्ण-भेद मान कर किसी को भी कम या अधिक प्रकाश नहीं देता घट और कलश की कीमत से।

56-58. अंत्यज···भूप···रूप=अछूत हो या ब्राह्मण, रंक हो या राजा, जब अपना प्रतिबिम्ब दर्पण में देखता है तो दर्पण उनकी वंश कुलीनता या सामाजिक प्रतिष्ठा को न देखकर, जो है उसी की प्रतिच्छवि प्रस्तुत कर देता है। ज्यौं दर्पन···कहूं एक [उदा०]=अनेक प्रकार के दर्पण जब आग में डाले जाते हैं, तो अग्नि केलिए वे सभी एक से ही होते हैं। **टिप्पणी :** पहले दर्पण, फौलाद [-लोहे] के भी बनते थे। चलत कहै मतिमंद=देहान्त होने पर नाशवान् जड़ शरीर चल-बसता है। जबकि, मूर्ख-अज्ञानी कहते हैं कि आत्मा चल बसी। आत्मा तो सदा-सर्वदा विद्यमान रहती है। वह कहाँ चलकर जाएगी? अभ्र चलत···चन्द [दृष्टा०]=जैसे आकाश में पवन-प्रवेग से बादल चलते-दीखते हैं, पर बाल-बुद्धि के लोग 'चन्दा चल रहा है' ऐसा कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरय करि कैं देखिये तवा आरसी दोइ।
सूरय सूरय सौं दृसें सुन्दर संमुझै कोइ ॥59॥
जो भिक्षा मांगत फिरै कै जो भुक्तै राज।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है नां कछु काज अकाज ॥60॥
इंद्री अर्थनि कौं गृहै लिप्त न कवहूं होइ।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है कर्म न लागै कोइ ॥61॥

चार प्रकार के ज्ञानो :

रागी त्यागी शांति पुनि चतुर्थ घोर बषांनि।
ज्ञानी चारि प्रकार है तिनिह लेहु पहिचांनि ॥62॥
रागी राजा जनक हैं त्यागी शुक सम थोर।
शांति जानि जमदग्नि कौं दुर्वासा अति घोर ॥63॥
क्रिया सु तिनकी भिन्न है भिन्न देह व्यवहार।
ज्ञान बिषै नहिं भेद है सुन्दर एक लगार ॥64॥
क्रिया देषि ज्ञानीनि की सब कोऊ भ्रम जांहि।
सुन्दर देषैं देह कृत आशय पावै नांहि ॥65॥

॥इति ज्ञानी कौ अंग॥30॥

59-61. सूरय करि ··आरसी दोइ = सूर्य के समक्ष चाहे तवा करो अथवा दर्पण, उनमें सूर्य का ही प्रतिबिम्ब दीखेगा। ऐसे ही आत्म तत्त्व सभी प्राणियों में [-घटाकाश की तरह] दिखाई देता है। जो भिक्षा···भुक्तै राज=जो भीख माँगता-फिरता है अथवा जो राज्य-भोक्ता [-शासक] है, दोनों ही भ्रम में पड़े हैं। 'ज्ञानी' को कार्य-अकार्य दोनों ही नहीं हैं, इसलिए वह मुक्त-भाव रहता है। इंद्री अर्थनि···होइ =ज्ञानी की इन्द्रियाँ अपने विषय के अर्थ का सहज रूप में ग्रहण [-खाना-पीना, चलना-फिरना आदि।] करती हैं, उसकी चेतना उनमें लिप्त नहीं रहती। इसलिए कर्म की आसक्ति उसे व्याप्त नहीं होती।

62-65. **टिप्पणी** : इन साखियों में 'ज्ञानी' के उदाहरण सहित चार प्रकार बताए गए हैं। रागी त्यागी शांति चतुर्थ घोर बषांनि=राग तत्त्व के विस्तार में प्रतिष्ठित ज्ञानी, त्यागवृत्ति की प्रतिष्ठा वाले ज्ञानी, शान्त भाव के ज्ञानी, उग्र [-वैराग्य या क्रोध] भाव के ज्ञानी। रागतत्त्व के ज्ञानी हैं—विदेहराज जनक, जो राज्य-संचालन करते हुए भी 'विदेह' ही बने रहे। त्याग तत्त्व के ज्ञानी हैं—शुकदेव मुनि, जो त्याग के बल पर ही ज्ञान में प्रतिष्ठित बने रहे। शान्त भाव के ज्ञानी हैं—महात्मा यमदग्नि, जो परशुराम के पिता थे। और चौथे घोर भाव के ज्ञानी हैं—महर्षि दुर्वासा। उक्त चारों प्रकार के ज्ञानियों की क्रियाएँ और देह-धर्म भिन्न-भिन्न प्रतीत होते है। पर, सभी का ज्ञान-विषय [-आसक्ति रहितता] एक समान ही है। शुक सम थोर=शुकदेव मुनि जैसे ज्ञानी बहुत कम हैं। क्रिया देषि···जांहि= ज्ञानियों की क्रिया-व्यवहार देखकर लोगों को भ्रम होता है [-कि यह कैसा ज्ञानी है, जो ऐसा कार्य कर रहा है ?] किन्तु, उनका ऐसा भ्रम, उनका देह-कर्म देख कर ही उत्पन्न होता है। ज्ञानियों का मन्तव्य [-मर्म] अथवा आशय जान लेने पर ऐसा भ्रम नहीं रहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। 31 ।। अथ अन्योऽन्य भेद अंग ।।

प्रवेशार्थ : कुल 39 साखियों वाला यह 'साषी अंग', 'सवैया ग्रन्थ' में नहीं है। जैसा कि इसके शीर्षक 'अन्योऽन्य भेद' से ध्वनित होता है कि रचनाकार अन्योन्याश्रय बताते हुए परस्पर भेद-सम्बन्ध का निरूपण करना चाहता है। इसीलिए सन्त-मत के विचार-पक्ष के प्रतिपादन में इस अंग का विशेष महत्त्व है। इसका कारण यह है कि ज्ञान और व्यवहार, विचार और क्रिया अथवा रहनी-करनी और कहनी की एकरूपता के द्वारा ही गन्तव्य [-लक्ष्य] की सिद्धि सम्भव है। जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति केवल कथन मात्र से सम्भव नहीं है। सामाजिक विचार-क्रिया प्रतिपादन की दृष्टि से यह अंग और भी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि, ऐसे विचार-प्रतिपादन से सन्त-वाणी के सही मूल्यांकन में पूरा सहयोग मिलता है। मूल पाठ द्रष्टव्य है—

साषी : सुन्दर ज्ञानी नृपति कै सेना है चतुरङ्ग।
रथ अश्व गज त्रय अवस्था इन्द्रिय पाइक संग ।।1।।
तुरिया सिंहासन कियौ तुरियातीत सु वोक।
ज्ञान क्षत्र है सीस पर सुन्दर हर्ष न शोक ।।2।।

चूर्णिका : 1. ज्ञानी नृपति [रूपक]=सम्राट् रूप ज्ञानी। सेना चतुरङ्ग= चतुरंगिणी सेना—पदातिक, अश्वारोही, गजारोही और रथारूढ़। रथ···पाइक संग=रथ, अश्व, गज और पैदल ये सेना के चार अंग साथ हैं। यहाँ इन्द्रियों के साथ अर्थात् इन्द्रिय कार्य-व्यापार के रूप में लक्षित हैं।

2. तुरिया सिंहासन=ज्ञानी नृपति का सिंहासन 'तुरियावस्था' है। वोक<ओक [सं०]=भवन, स्थान। तुरियातीत सु वोक=तुरीय से परे की अवस्था ही ज्ञानी की चेतना के निवास का स्थान [-भवन, प्रासाद] है। ज्ञान छत्र है सीस पर= ज्ञानी नृपति के शीश पर ज्ञान-छत्र विराजता है। हर्ष न शोक=ज्ञानी सुख-दुःख से परे रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथ चौबीस हु तत्व कौ कर्म सुभासुभ बैल।
सुन्दर ज्ञानी सारथी करै दशौं दिशि सैल ।।3।।
तीनौं गुन इंद्रिय सकल ये सब चालै गैल।
सुन्दर बिचरत जगत मंहिं ताहि न लागै मैल ।।4।।

अन्य भेद [2] :

देह तमूरा काठ जड जीभ तार तिहिं लाग।
सुन्दर चेतन चतुर बिन कौंन बजावै राग ।।1।।5।।
जीभ तार दोऊ बर्जहिं सुन्दर देषहु आइ।
एक बजावत देषिये एक न देष्या जाइ ।।2।।6।।

3-4. रथ चौबीस हु तत्व कौ=ज्ञानी नृपति का रथ चौबीस तत्त्वों से निर्मित शरीर रूप रथ है। कर्म सुभासुभ बैल=जैसे रथ में बैल जुते होते हैं, वैसे ही शरीर रूप रथ का संचालन क्रियमाण शुभाशुभ कर्म रूप बैल करते हैं। ज्ञानी सारथी=ज्ञानी रूप सारथी उस शरीर रूप रथ का स्वेच्छया संचालन करके दशों दिशाओं में अर्थात् सर्वत्र विचरण करता है। **टिप्पणी** : लगभग इसीप्रकार का भाव कठोपनिषद् के इस श्लोक में मिलता है—

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च ।।'—1/3/3

अर्थात् 'तू आत्मा को रथी जान और शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि जान और मन को लगाम समझ।' सुन्दरदास ने शुभाशुभ कर्म रूप बैल वाला चौबीस तत्त्वों का शरीर-रथ बताया है, जिस पर सांख्य-योगादि दर्शन के चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। गैल=मार्ग, रास्ता। मैल=मल, कलमष, दोष।

5-6. देह तमूरा [रूपक]=तमूरा रूप शरीर में। तमूरा<बंबूरा<तानपूरा [हि०]=बीन या सितार की तरह का एक बाजा। ठाट<स्थातृ [सं०]=लकड़ी या बाँस-पट्टी का बना ढांचा [-विन्यास]। ठाट [-शरीर रूप ढांचा] जड़ है। जीभ-तार=शरीर रूप तानपूरे में तार या स्वर झंकार का सूत्र जिह्वा है। चेतन चतुर=कुशल चेतनात्मा ही शरीर रूप तानपूरे से राग बजाती है। 'राग' अर्थात् धुन में बैठाए गए स्वर, जिनके उच्चारण [-अनुशासन] से गीत बनता है। जीभ तार दोऊ बर्जहिं=जिह्वा से उत्पन्न स्वर रूप तार तो बजते-दीखते हैं, लेकिन जो रसना को संचालित करती है, वह चेतन-शक्ति दिखाई नहीं देती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कह्या अनुमान करि एक देषियै अक्ष।
सन्दर अनुभव होइ जब तब देषियै प्रत्यक्ष ।।3।।7।।
किनहूं पूछ्यौ फेरि कें अनुभव कैसी होइ।
सुन्दर तुम अनुभव कही चिन्ह बतावौ कोइ ।।4।।8।।
तेरें अनुभव होइ है तबहिं जानि है बीर।
मुखतें कही न जात है सुन्दर सुख की सीर ।।5।।9।।
कन्या पूछत और त्रिय पुरुष मिलै कौ सुक्ख।
सुन्दर परसी पीव कौं तब कछु कहै न मुक्ख ।।6।।10।।
गूंगै षाई सरकरा सुन्दर मन मुसक्याइ।
सैंन बतावै हाथ सौं मुख तैं कही न जाइ ।।7।।11।।
जिन जिन कौं अनुभव भयौ तिन तिन पकरी मौंन।
सुन्दर अनुभव गोपि है चिन्ह बतावै कौंन ।।8।।12।।
सुन्दर जैसें पुरुष तें अंगुरी ह्वै चेतन्य।
अंगुरी जंत्र बजावई राग अन्य ही अन्य ।।9।।13।।
पुरुष सु तौ चेतन्य है अंगुरी अंतहकर्ण।
सुन्दर बाजै जंत्र तनु शब्द कहै बहु वर्ण ।। ।।10।।14।।

7-8. अनुमानि करि=अनुमान प्रमाण के आधार पर। दर्शन या साक्षात्कार तो अनुभव के द्वारा ही सम्भव है। अनुभव कैसी होइ=अनुभव कैसा होता है ? अर्थात् अनुभव के लक्षण क्या हैं। **विशेष**—यहाँ 'अनुभव' का स्त्रीलिंग प्रयोग है।

9-11. सुख की सीर=सुख की भूमिका। सीर [सं०]=स्वयं की भूमि, जोती गई निजी ज़मीन। कन्या पूछत···सुक्ख=कन्या अर्थात् अविवाहित स्त्री अन्य विवाहित स्त्री से पूछती है कि पुरुष-संयोग से होने वाला सुख कैसा होता है ? किन्तु, जब उसे स्वयं प्रिय-स्पर्श का सुख मिल जाता है तब, अत्यन्त निजी होने अथवा अनुभूति की सघनता के कारण, वह उसे मुख से बता पाने में असमर्थ रहती है। गूंगै षाई सरकरा [कहा०]=यदि गूंगे ने शर्करा [-मिष्टान्न, गुड़] खाई हो, तो वह उसका स्वाद सैन-संकेतों से ही बता सकता है, मुख या वाणी से नहीं।

12-14. जिनि जिनि···मौंन=जिस-जिसको उस परम तत्त्व का अनुभव हो जाता है, वे अनुभव के अनिर्वाच्य होने के कारण मौन धारण कर लेते हैं। अनुभव गोपि है=अपनी सूक्ष्मता के कारण अनुभव गुप्त रहता है। चिन्ह<चिह्न=लक्षण, पहिचान, जानकारी। जैसे पुरुष तें अंगुरी ह्वै चेतन्य=जैसे पुरुष-चैतन्य से अँगुली चेतन हो उठती है और वह चेतन-अँगुली वाद्य यन्त्र को बजाने में कार्यशील रहती है। उस अंगुलि-स्पर्श से ही अनेक प्रकार के राग-रागनियाँ बज निकलते हैं। पुरुष चेतन्य=आत्मन्-जीवात्मन् अथवा आत्मन् तो स्वयं चेतन-पुरुष है। अंगुरी अंतहकर्ण=अँगुली रूप अन्तःकरण से स्पर्श होता है, तभी शरीर रूप वाद्य कार्यशील होता है। जंत्र=यन्त्र, बाजा। बाजै जंत्र तनु=शरीर में यंत्र बजता है। वर्ण=स्वर-व्यंजनों का संयुक्त रूप वर्ण, संगीत स्वर-लहरी, गीत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य भेद [3] :

सत् अरु चित आनंदमय ब्रह्म बिशेषण तीन।
अस्ति भाति प्रिय आतमा वहै बिशेषण कीन ।।1।।15।।
असह जानि जड दुःख मय तीन बिशेषण देह।
उपजै बर्तै लीन ह्वै सब विकार कौ गेह ।।2।।16।।
ब्रह्म देह कै मध्य है अंतहकरण उपाधि।
तत् संबंधी आतमा ताहि लगी यह व्याधि ।।3।।17।।
याही सुद्ध असुद्ध है याकै ज्ञान अज्ञांन।
जड सौं मिलि जडवत भयौ जीवातम सो जांन ।।4।।18।।
अस्ति असत सौ जानिये भाति भयौ जड रूप।
प्रिय पुनि हूवौ दुःखमय भूलि पर्यौ भ्रम कूप ।।5।।19।।
यह लक्षण अज्ञान कौ देह सु मान्यौ आप।
सुन्दर या अभिमान तैं व्यापैं तीनौं ताप ।।6।।20।।

15-18. ब्रह्म बिशेषण तीन = ब्रह्म के तीन विशेषण सत्-चित्-आनन्द [उपनिषद् एवं दर्शन-सिद्धान्तों में-] कहे गए हैं। अस्ति भाति प्रिय···बहै बिशेषण कीन = वही विशेषण आत्मा के साथ अस्ति [-सत्], भाति [-चित्], प्रिय [-आनन्द] रूप में प्रयुक्त होते हैं। भाति [सं०] = कान्ति, शोभा, प्रफुल्लता। **टिप्पणी :** सूरदास ने 'भाति' का प्रयोग किया है—'मनोहर है नैनने की भाति।' [—सूरसागर, प्रथम०] उपजै बर्तै लीन ह्वै···गेह = यह शरीर सब विकृतियों का घर है, जो उत्पत्ति, स्थिति और संहार को प्राप्त होता है। ये तीन विशेषण शरीर केलिए हैं। **टिप्पणी :** चेतन-सत्ता से ही 'विकार' [-विकृति], जो प्रकृति गुण-भेद के कारण होते हैं, सब प्रपंच का कारण बनते हैं। ब्रह्म देह···उपाधि = शरीर के भीतर, अन्तःकरण 'उपाधि' के रूप में ब्रह्म सत्ता ही है, जो आत्मा के साथ संयुक्त होकर, संयोग रूप से प्रतिभासित होकर 'व्याधि' के रुप में लगी रहती है, जिससे नानात्व प्रतिभासित होता है। जड़ सौं मिलि···जांन = उपाधि, संयोग से शुद्ध आत्मा ही 'अशुद्ध' जीवात्मा कहलाने लगती है। यह सब चेतन-सत्ता का, जड़ से संयोग का ही परिणाम है।

19-20. अस्ति असत···जड रूप = चेतन और जड की ग्रन्थि पड़ते ही अर्थात् 'जीव' होते ही अस्ति-सत्, असत् भासने लगता है। भाति-चित् 'जड' रूप हो जाता है और प्रिय [आनन्द] दुःखमय लगने लगता है। अतः 'जीव' अपनी विस्मृति के कारण भ्रम रूप कुएँ में पड़ा-रहता है। व्यापैं तीनौं ताप = अज्ञान के कारण जब शरीर भ्रान्ति-ग्रस्त हो जाता है। अथवा स्वतः मान लेता है, तब अभिमान के कारण उसे दैहिक-दैविक-भौतिक ताप सताने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताही तें यह जीव है अहं ममत जब होइ।
भूलि गयौ निज रूप कौं सुधि बुधि अपनी षोइ ।।7।।21।।
जो कोई जज्ञास ह्वै सद्गुरु सरणै जाइ।
सुन्दर ताहि कृपा करै ज्ञान कहै समुझाइ ।।8।।22।।
वासौं सद्गुरु यौं कहै समझि आपनौ रूप।
सकल भेद भ्रम दूरि करि तूं है तत्व अनूप ।।9।।23।।
अस्त होइ सत रूप तब भाति होइ चैतन्य।
प्रिय पुनि ह्वै आनन्दमय आतम ब्रह्म न अन्य ।।10।।24।।
जीव भयौ अनुलोम तें ब्रह्म होइ प्रतिलोम।
सुन्दर दारु जराइ कें अग्नि होइ निर्धोम ।।11।।25।।

अन्य भेद [4] :

गऊ देह कै मध्य है पय अरु उत्तम ज्ञान।
सुन्दर घृत ज्यौं आतमा ब्यापक एक समान ।।1।।26।।

21-23. ताही तें···जब होइ = उस 'अभिमान' के कारण ही उसे यह 'जीव' संज्ञा मिलती है। इस संज्ञा में अहंता-ममता का बना रहना अपेक्षित है। भूलि गयौ···षोइ= उस अहंता-ममता के परिणाम स्वरूप जीवात्मान्, विस्मृति के गर्त्त में पड़कर निज स्वरूप को भूल जाता है। **टिप्पणी :** 'जीव' रूप इस भ्रान्ति से छुटकारा कैसे मिले, इस प्रक्रिया को यहाँ बताया गया है। जज्ञास ह्वै··· सरणै जाइ=जिज्ञासु-[मुमुक्षु, जानने की इच्छा करने वाला] होकर, सद्गुरु की शरण में जाता है। तब गुरु कृपापूर्वक ज्ञान-पक्ष का उद्घाटन करता है। समझि आपनौ रूप=अपने स्वरूप को समझ कर। सकल भेद···अनूप=[गुरु कहता है कि—]तेरी चेतना पर भ्रमात्मक नानात्व आच्छादित है, तू उसे अनावृत कर। तू तो स्वयं अनुपम तत्त्व है।

24-25. आतम ब्रह्म न अन्य=गुरु-ज्ञान से चेतना के अनावृत होने पर, ब्रह्मात्म के एकत्व का अनुभव होते ही, पुनः अस्ति [-सत्] भाति [-चैतन्य] और प्रिय [-आनन्दमय] होकर अनुभव में आता है। जीव भयौ···प्रतिलोम=अनुलोम [अवरोह या उतार]-प्रक्रिया द्वारा ब्रह्म से 'जीव' संज्ञा, अज्ञान या भ्रान्ति के कारण मिलती है। किन्तु, प्रतिलोम [-विपरीत, आरोह]-प्रक्रिया द्वारा, गुरु प्रेरणा से जिज्ञासु पुनः ब्रह्म रूप हो जाता है। दारु जराइ कें···निर्धोम = काष्ठ [-बीच की भ्रान्ति] के जल जाने से, अग्नि निर्धूम < निर्धूम्र [सं०]=धुआँ रहित हो जाता है। **टिप्पणी :** यहाँ 'धुआँ' अग्नि में उपाधि है। इसीप्रकार आत्मा में 'माया' उपाधि है। कहा भी है—'धूमेनाग्निरिवावृता' [गीता—18/48]।

26. गऊ देह···उत्तम ज्ञान [रूपक]=गाय और शरीर अथवा गाय के शरीर में जिस प्रकार पय [-दूध] रहता है, उसी प्रकार शरीर [मानव शरीर] के अन्तर्गत तत्त्व ज्ञान विद्यमान है। जिस प्रकार दूध में घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार शरीर में आत्म तत्त्व की (निहित) व्याप्ति रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारि श्रवन जब नीरिये बांट मनन अभ्यास।
सुन्दर दुहिये धेनु कौं सो कहिये निदिध्यास ।।2।।27।।
दुग्ध ज्ञान जब पाइये जा मन निश्चै तात।
सुन्दर दधि मथि अनुभवै निकसै घृत साक्षात ।।3।।28।।
सुन्दर या अनुक्रम बिना ज्ञान प्रगट नहिं होइ।
बात कहैं का होत है भ्रम मति भूलै कोइ ।।4।।29।।

अन्य भेद [5] :

क्रिया करत है बहुत विधि ज्ञान दृष्टि जो नांहिं।
अंध चल्यौ मग जात है परै कूप के मांहिं ।।1।।30।।
ज्ञान दृष्टि करि निपुनि है क्रिया नहीं पग दौर।
अग्नि लगै जब सदन मैं पंगु जरै वहि ठौर ।।2।।31।।

---

27. चारि श्रवन जब नीरिये=गुरु-मुख से अथवा स्वाध्याय पूर्वक चारा [-तृणादिक] रूप श्रुत ज्ञान जब शरीर रूप गऊ को खिलाया जाए। बांट मनन अभ्यास=मनन रूप बाँट [-बाँटा-कुटी, खली बिनौले की सानी-] के खाने का अभ्यास [-जुगाली] चलती रहे, तब जो गाय को दुह कर दूध प्राप्त किया जाता है, वह 'निदिध्यास' है। श्रुत-मनन किया हुआ, पुनः पुनः स्मृत ज्ञान निदिध्यास कहलाता है।

28-29. दुग्ध ज्ञान...निश्चै तात=गुरु का शिष्य से कथन है कि जब मन में निश्चय हो जाता है, तभी दुग्ध रूप ज्ञान की प्राप्ति होती है। दधि मथि...घृत साक्षात= ज्ञान रूप दुग्ध के जमाने पर, अनुभव रूप दधि के मन्थन से, साक्षात्कार रूप घृत निकलता है, वह पूरे जीवन केलिए बहुत उपयोगी है। या अनुक्रम...नहिं होइ= इस अनुक्रम [-विधि] के बिना तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। बात कहैं...भूलै कोइ=बातें करने से कोई लाभ नहीं, बातों के भ्रम अर्थात् शब्द-ज्ञान के कारण कोई भ्रमित न बना रहे।

30-31. ज्ञान दृष्टि नांहिं=बोध-दृष्टि न होने पर जो क्रिया-व्यवहार किया जाता है, वह अन्ध-गति है, जिसका परिणाम कुएँ में गिरने के समान हो सकता है। कूप= कुआँ, गर्त। ज्ञान दृष्टि करि...ठौर=और यदि ज्ञान-दृष्टि है भी, क्रिया [-गति-आचरण] नहीं है, तो उस लँगड़े की तरह, उस घर [-संसार] में जलकर मर जाएगा, जिसमें आग लगी हो। **टिप्पणी :** सन्त-मत का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष समाज-सन्दर्भ से बहुत अधिक जुड़ा हुआ एवं लोकानुमोदित है। यह बात इन साखियों के अभिप्रेत से स्वतः स्पष्ट है। हिन्दी-सन्त-मत समीक्षा में ऐसे विचार-पक्ष का अभी सम्यक् अध्ययन नहीं हो पाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान क्रिया दोऊ मिलहिं तब ही होइ उबार।
यथा अंध के कंध पर पंगु होइ असवार ।।3।।32।।
कूप अग्नि दोऊ बचहिं तामैं फेर न कोइ।
सुन्दर ज्ञान क्रिया बिना मुक्त कदे नहिं होइ ।।4।।33।।
क्रिया भक्ति हरि भजन है और क्रिया भ्रम जांन।
ज्ञान ब्रह्म देषै सकल सुन्दर पद निर्बांन ।।5।।34।।

अन्य भेद [6] :

कर्त्ता कर्म न भोगता पद्गल जीव न कोइ।
सुन्दर यह भ्रम स्वप्न मैं जागैं एक न दोइ ।।1।।35।।
भ्रम कर्त्ता भ्रम भोगता भ्रम सु कर्म भ्रम काल।
भ्रम पुद्गल भ्रम जीव है सुन्दर सब भ्रम जाल ।।2।।36।।

32-34. ज्ञान-क्रिया···उबार=विचार-पक्ष और व्यवहार-पक्ष दोनों जब एकाकार हो जाते हैं, तभी चेतना का उद्धार होता है। यथा अंध के कंध···असवार [दृष्टा०] जैसे अन्धे, किन्तु पग-गति युक्त व्यक्ति के कन्धे पर बैठकर लंगड़ा [किन्तु, आँख वाला व्यक्ति] आरूढ़ होकर, अपने वाहक के साथ गन्तव्य तक सहज ही पहुँच सकता है। **टिप्पणी :** यहाँ 'अन्धा', विचार या ज्ञान से रहित व्यक्ति का प्रतीक है और लंगड़ा व्यक्ति ज्ञान-विचार वाला होने पर भी, क्रियाचरण से रहित होने के कारण गतिहीन व्यक्ति का प्रतीक है। **'प्रेम'** [-राग, आसक्ति] अन्धा है और ज्ञान [-विचार, तर्क-वितर्क] लँगड़ा। इन दोनों के संयोग से सहज ही गन्तव्य तक पहुँचा जा सकता है। अन्यथा, कबीर के शब्दों में—

'अंधै अंधा ठेलिया दून्यूं कूप पड़ंत।' —क०ग्रं० 1/15

कूप अग्नि दोऊ बचहिं=अपने विवेक और क्रियाशीलता [-करनी] के बल पर दोनों ही कूप-अग्नि [संसार की आग-दुःख, क्लेशादि] से बच सकते हैं। ज्ञान क्रिया··· नहिं होइ=ज्ञान और उसका क्रिया-पक्ष दोनों मिलकर ही मुक्तिदायक हैं। क्रिया-भक्ति···भ्रम जांन=क्रिया रूप भक्ति, हरि-स्मरण ही है और शेष सारी क्रियाएँ भ्रम रूप हैं। ज्ञान ब्रह्म···निर्बांन=ज्ञान-प्रसाद से ब्रह्म के सर्वत्र दर्शन होते हैं, यही निर्वाण-पद है।

35-36. कर्त्ता कर्म···जीव न कोइ=तात्विक ज्ञान-दृष्टि में कर्त्ता-कर्म और उनका भोक्ता अथवा पुद्गल [-शरीर] और जीव ये सब कुछ नहीं है। यह प्रतीति ब्रह्म-सत्ता का रूपान्तरण होने के कारण है। यह भेदात्मक प्रतीति, भ्रम-जनित होने के कारण स्वप्नवत् है। जाग्रत होने पर [ज्ञानावस्था में-] एक तत्व की ही प्रधानता अर्थात् "द्वितीयोनाऽस्ति' की मानसिकता बनती है। भ्रम···काल=यह जो कर्त्ता-भोक्ता, कर्म और काल की प्रतीति होती है, यह सब भ्रम-जनित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचन जाल उरझैं सबै सुरझावैं गुरुदेव।
नेति नेति करते रहैं सुन्दर अलष अभेव ।।3।।37।।
एक अखंडित ब्रह्म है दूसर नांहीं आंन।
सुन्दर भ्रम रजनी मिटै प्रगट होइ जब भांन ।।4।।38।।
कठिन बात है ज्ञान की सुन्दर सुनी न जाइ।
और कहौं नहिं ठाहरै ज्ञानी हृदय समाइ ।।5।।39।।

।। इति अन्योऽन्य भेद अंग ।। 31 ।।

।।इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित साषी ग्रन्थ समाप्तम् ।।

।।सर्व साखी संख्या 1351।।

106290

37-39. बचन जाल···गुरुदेव=सभी लोग वाणी-विलास में अर्थात् शब्दों की ऊहापोह [-तर्क-वितर्क) में उलझे-रहते हैं। इस उलझाव को सद्गुरुदेव ही सुलझाते हैं। नेति नेति···अलष अभेव=उस अलक्षित अभेदपूर्ण तत्त्व [-ब्रह्म सत्ता] को 'न इति, न इति' विधि से ही समझा जा सकता है। भ्रम रजनी···भांन [दृष्टा०]=ज्ञान रूप सूर्योदय होने पर ही भ्रम रूप रात्रि समाप्त होती है। कठिन बात···सुनी न जाइ= ज्ञान-विवेक की बात कठिन [-दुष्कर, अग्राह्य एवं अगम्य] मानी जाती है। यह ज्ञान रूप अमृत तत्त्व, 'सिंहनी का दूध' है जो स्वर्ण-पात्र में ही ठहरता है। इस कहावत की तरह ज्ञानी-चेतना, कनक-पात्र की तरह है, जिसमें ही शुद्ध ज्ञान ठहरता है। अर्थात् अपात्र-अनधिकारी और अयोग्य के पास ज्ञान-तत्त्व रूप पय टिक नहीं पाता। **विशेष**—हस्तलिखित प्रति [क] में, 31 वें अंग के उपभेद 6 के अन्त में 2 शार्द्धूल-विक्रीड़ित, 2 अनुष्टुप और 1 भुजंगप्रयात, ये पांच संस्कृत छन्द भी दिए गए हैं। इन्हें हस्तलिखित प्रति [ख] में फुटकर काव्य के अन्त में व्यवस्थित किया गया है, जो संगत प्रतीत होता है। पर, हमने उन्हें संस्कृत-रचना शीर्षक से अलग स्थान दिया है। 'सुन्दर ग्रन्थावली' के पारायण से लगता है कि 'साषी ग्रंथ' की रचना सुन्दरदास की अन्तिम रचना रही होगी। क्योंकि, अनेक प्रकार के निष्कर्ष [-समन्वय] आदि का विचार या सिद्धान्त-पक्ष भी इन साखियों में उपसंहृत हुआ है। साथ ही, यह बात भी संभव है कि रचनाकार अपनी आयु-प्रौढ़ि के साथ ही इन साखियों की रचना करता रहा हो। बाद में विषयानुसार अंग-विशेष में उनको संकलित कर दिया गया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ 544 + भूमिका पृष्ठ 124 = कुल पृष्ठ 668

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Accession 5.2.93
Class on 8.7.93
Cat on 9.7.93
Tag etc. 7.7.93
Checked
Any Other
10.7.93

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

Recommended By Dr. Sant Ram Vaid

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

रमेशचन्द्र मिश्र

जन्म स्थान : निधौली कलाँ [एटा, उत्तर प्रदेश]

शिक्षा : साहित्यरत्न, एम.ए. [हिन्दी, संस्कृत] पी-एच.डी., डी. लिट्.

रचनाएँ : **सृजनात्मक** : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, होगा कब नामकरण मरजीवा, [कविता संग्रह], एक विश्वास और [आख्यान काव्य], अभिशप्त शिला, रक्त सरोवर [नाटक]

समीक्षात्मक : कामायनी-व्याख्या, गीतावली विमर्श, हिन्दी सन्तों का उलटवाँसी साहित्य, पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्त, उलटवाँसी शैली और सन्त कबीर, कबीर वचनामृत, लोक साधक सन्त, सिन्धी कवि सन्त रोहल की हिन्दी बानी, सुन्दर सवैया ग्रन्थ, सुन्दर साखी ग्रन्थ, सुन्दर पदावली, सुन्दर ग्रंथावली, सन्त साहित्य और समाज [यन्त्रस्थ]

कोश : सन्त-साहित्य सन्दर्भ कोश [प्रकाश्य]

अभिरुचि : स्वाध्याय और देशाटन

सम्प्रति : रीडर, हिन्दी-विभाग, आर.एल.ए., दिल्ली विश्वविद्यालय

सम्पर्क : ए-1/341, जनकपुरी, नई दिल्ली-58
दूरभाष : 5551840

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

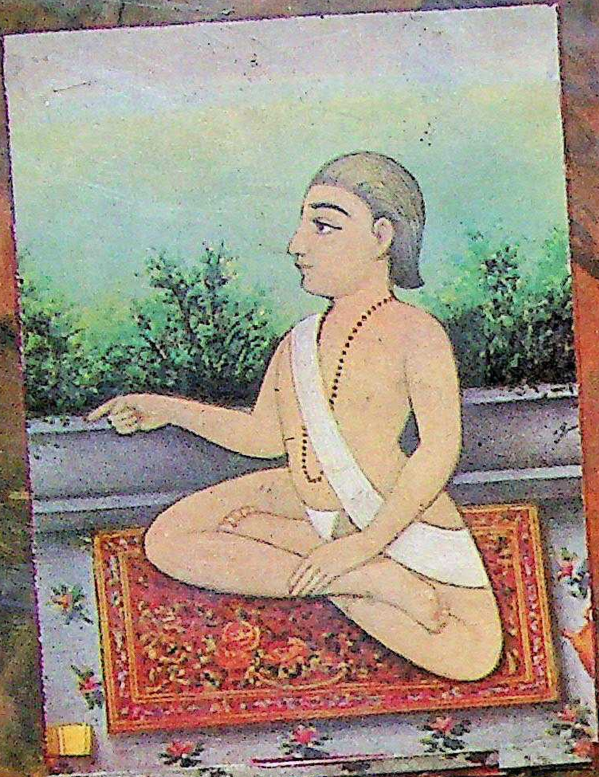

संत सुन्दर दास

1

सुन्दर ग्रन्थावली

रमेशचन्द्र मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar